वैदिक कोश

पं. चन्द्रशेखर उपाध्याय
एवं
श्री अनिल कुमार उपाध्याय

वैदिक कोश

भाग २

पं० चन्द्रशेखर उपाध्याय

एवं

श्री अनिल कुमार उपाध्याय

I.A.S.

नाग प्रकाशक

११ ए/ यू. ए. जवाहर नगर,

दिल्ली-११० ००७

THIS PUBLICATION HAS BEEN BROUGHT OUT WITH THE FINANCIAL ASSISTANCE FROM RASHTRIYA SANSKRIT SANSTHAN, NEW DELHI.

NAG PUBLISHERS

(i) 11A/U.A. (Post Office Building), Jawahar Nagar, Delhi 110 007.

(ii) Sanskrit Bhawan, 12,15, Sanskrit Nagar, Plot No. 3, Sector-14, Rohini, New Delhi - 110 085

(iii) Jalalpur Mafi, Chunar, Dist. Mirzapur, U. P.

ISBN 81-7081-292-5

FIRST EDITION : 1995

Price : Rs.

PRINTED IN INDIA

Published by Surendra Pratap for Nag Publishers, 11A/U.A., Jawahar Nagar, Delhi-110007 and printed at G. Print Process, 308/2, Shahzada Bagh, Dayabasti, Delhi-110035.

Laser Typesetting By:
Compu-Media-The D.T.P. People,
43, Bunglow Road, Kamla Nagar, Delhi-110 007
Phone : 2911869

वैदिक कोश

भाग २

च

च – (१) समुच्च में अर्थ में । यथा
'अहं च त्वं च वृत्रहन्'
ऋ. ८.६२.११, तै.सं. ७.४.१५.१, का.सं.(अश्व). ४.४, आप.श्रौ.सू २०.३.१४, नि. १.४.
(२) 'न च' का प्रयोग 'इत्' के साथ तब होता है जब एक प्रश्न का उत्तर देने पर पुनः प्रश्न किया जाय । जैसे, प्रश्न–तिष्ठन्ति गृहे वृषलाः? उत्तर–तिष्ठन्ति । पुनः प्रश्न – ततः यदितिष्ठन्ति किमिति नागच्छन्ति
उत्तर – न चेत् सुरां न पिबन्ति ।
अर्थ होगा–यदि नहीं (न चेत्)
आधुनिक अर्थ– (१) चन्द्रमा, कच्छप, चोर, समुच्चयार्थक अव्यय ।

चक – इच्छा करना । अंग्रेजी का seek धातु इससे मिलता जुलता है । तृप्ति, गमन और प्रतिघात अर्थ में भी इस धातु प्रयोग हुआ है ।

चकद्द्र – (१) कुद्राति –कद् द्रांति (कु का कत्) कुत्ते के समान कुत्सित गति से चलता है । कद्द्राति या चकद्द्राति समानार्थक है, (२) अथवा श्वभि साकं गतिः यस्य (कुत्तों के साथ कुत्तों सी गति वाला । अर्थ है–कुत्ते सा जीवन व्यतीत करने वाला ।

चक्रद्द्राति – कुत्ते के समान या साथ कुत्सित गति से चलता है ।

चकमानः – अर्थ की कामना करता हुआ ।
'चकमानः पिबतु दुग्धमंशुम्'
ऋ. ५.३६.१
(२) प्रबल कामना या संकल्प करता हुआ ।
'दूरात् चकमानाय'
अ. १९.५२.३
(३) अन्नो को चाहने वाला बुभुक्षित याचक ।
'म आध्राय चकमानाय पित्वः'
ऋ. १०.११७.२

चक्रम् – चक् (तृप्ति, गमन और प्रतिघात अर्थ में) + रक् = चक्र । अर्थ–(१) चक्का, पहिया । चर् + अच्न =क्रच
'वर्वति चक्रं परि द्यामृतस्यं'
ऋ. १.१६४.११, अ. ९.९.१३.
कालचक्र अन्तरिक्ष के चारों ओर घूमता रहता है । (२) चलन (चलना) ।
(३) ग्रहचक्र
'सूरश्चक्रं प्रवृहत् जात ओजसा'
ऋ. १.१३०.९.
सूर्य अपनी शक्ति से उत्पन्न ग्रहचक्र की अच्छी तरह से धारण करता है (प्रवृहत्)
अथवा क्रम् (गतिअर्थ में) + उ = चक्र (क्र का द्वित्व)

चक्रमासजः – (१) संवत्सररूपी चक्र में या मास मास में प्रकट होने वाला सूर्य (२) राज चक्र या सैन्य चक्र के मुखस्थल पर प्रकट होने वाला, (३) सैन्यादि को अति स्नेह करने वाला या उस में तन्मय राजा ।
'वित्वक्षणः समृतौ चक्रमाजः'
ऋ. ५.३४.६

चक्रवाक – चकोर ।
'वरुणाय चक्रवाकान्'
वाज.सं २४.२२, मै.सं. ३.१४.३, १७३.४

चक्रवाका – (१) चकवा चकई के समान उत्तम वचन बोलने वाले स्त्री पुरुष, (२) अश्विद्वय ।
'चक्रवाकेव प्रति वस्तोरुस्रा'
ऋ. २.३९.३

चक्षण – (१) साक्षात् दर्शन (२) ज्ञान ।
'कद् वरुणस्य चक्षणम्'
ऋ. १.१०५.६
सर्वश्रेष्ठ परमेश्वर का साक्षात् दर्शन और ज्ञान कहां है ?
(३)स्रोत ।

'तत्रामृतस्य चक्षणम्'
अ. ५.४.३,६.९५.१, १९.३९.६,८
(४) प्रकाशनम् -(दया)
(५) वचन, (६) ज्ञान दर्शन ।
'दिदृक्षेण्यं सूर्यस्येव चक्षणम्'
ऋ. ५.५५.४

चक्षदानः - चक्षि + आनक् = चक्षदान । (दुक् का आगम) । अर्थ-(१) व्यक्तोपदेशक -दया. (२) शासन करने में समर्थ

चक्षस् - चक्ष् (व्यक्तवाणी बोलना या दर्शन करना) + असुन् = चक्षस् । बाहुलक नियम से यहां चक्ष का का ख्याङ् आदेश नहीं हुआ है । अर्थ (१) ख्यान (२) आंख ।
'येना पावक चक्षसा
भुरण्यन्तं जनां अनु
त्वं वरुण पश्यसि ।'
ऋ. १.५०.६, अ. १३.२.२१, २०.४७.१८, आ.सं. ५.११, वाज.सं. ३३. २२, नि. १२.२२.२५.
(३) ज्ञान ।
'महेरणाय चक्षसे'
ऋ. १०.९.१, अ. १.५.१, साम. २.११८७, वाज.सं. ११.५०, ३६.१४, तै.सं. ४.१.५.१, ५.६.१.४, ७.४.१९.४, मै.सं. २.७.५, ७९.१७, ४.९.२७, १३९.४, का.सं. १६.४, ३५.३, तै.आ. ४.४२.४, १०.१.१२. आप.मं.पा. २.७.१३, नि. ९.२७.
हे जलो, तुम महान् एवं रमणीय ज्ञान के लिए अनुग्रह करो ।
(४) सम्यक् दर्शन ।
'सोमस्य जिह्वां प्रजिगाति चक्षसा'
ऋ. १.८७.५
उत्पादक के गुणों को देखने से ही (सोमस्य चक्षसा) वाणी भी (जिह्वा) तदनुरूप व्यवहार योग्य नामों को कहती है (प्रजिगाति) ।
(५) भीतरी चक्षु, आत्मा की दर्शन शक्ति ।
'मत्यै श्रुताय चक्षसे'
अ. ६.४१.१.
(६) ज्ञान दर्शन ।
'नेमिं नमन्ति चक्षसा'
८.९७.१२, अ. २०.५४.३, साम. २.२८१.
आधुनिक अर्थ - दर्शन, ज्ञान, शिक्षक, अध्यात्म विद्या पढाने वाला, दीक्षागुरु, बृहस्पति का एक विशेषण ।

चकानः - कामना करने वाला या करता हुआ ।
कम + शानच्
'श्रवस्यवो वाजं चकानाः'
ऋ. २.३१.७

चकार - करोति (लट् के अर्थ में लिट) अर्थ है । करता है ।

चक्राणः - (१) भृशं युद्धं कुर्वन् (बार बार युद्ध करता हुआ), (२) प्रजाजनों के ऊपर शासन प्रबन्ध करने वाला ।
'चक्राणासः परीणहं पृथिव्याः'
ऋ. १.३३.८
पृथ्वी में प्रजाजनों पर शासन करने वाले (चक्राणासः) राष्ट्र के तेजस्वी स्वामी को (परीणाहम्)

चक्षथि - चक्ष धातु के लोट् प्र. पु.द्वि.व. का रूप । अर्थ है - करो ।
'आरोहथो वरुण मित्र गर्तम्
अतश्चक्षाथे अदितिं दितिं च'
ऋ. ५.६२.८, मै.सं. २.६.९, ६९.१२, का.सं. १५.७, नि. ३.५.
हे वरुण और मित्र ! तुम दोनों रथ पर चढ़ो (गर्तम् आरोहथः) और चढ़कर अपने पक्ष को अनुपक्षीण (अदितिम्) और शत्रु पक्ष को उपक्षीण करो (दितिं चक्षाथे) ।

चक्षाणः - दिखाता हुआ, देखता हुआ । चक्ष + शानच् ।
'शंत चक्षाणो अक्षभि र्देवो वनेषु तुर्वणिः'
ऋ. १.१२८.३, का.सं. ३९.१५
अपने किरण प्रकाशों से सैकड़ो पदार्थों को दिखाता हुआ (अक्षभिः शतं चक्षाणो)-सूर्य
अन्य-अर्थ ।
अपने अध्यक्षों द्वारा सैकड़ों कार्यों का विचार करें ।

चक्रिः - (१) कर्मों को करने वाला इन्द्र या परमात्मा, (२) साधु करणशील ।
'चक्रिं विश्वति चक्रये'
ऋ. १.९.२, अ. २०.७१.८.
साधु करणशील सोम रस को सभी कर्मों को करने वाले इन्द्र को सम्मुख हो प्रस्तुत करो ।
(३) रथ का चक्का ।

'अक्षो न चक्र्योः शूर बृहन्'
ऋ. ६.२४.३
चक्कों की धुरी के समान ।
(४) क्रियाशील जीवात्मा, (५) समस्त लोकों को जीवात्मा, (६) समस्त लोकों को बनाने वाला परमात्मा ।
'चक्रिं विश्वानि चक्रये'
(६) सैन्यचक्र ।
'वर्तयत तपुषा चक्रियाभितम्'
ऋ. २.३४.९

चक्रिया, चक्री- (द्वि. व.) एक वचन काटने वाले घूमने वाले चक्के ।
'विवर्तेते अहनी चक्रियेव'
ऋ १.१८५.१, नि. ३.२२.
(२) चक्रवती (पहिया वाली) चक्र + घ + टाप् = चक्रिया । घ का इप ।

चक्री - कृ + कि = चक्री । अर्थ-रथाङ्गी, रथ का पहिया ।
'ऋणो रक्षं न चक्र्योः'
ऋ. १.३०.१४, अ. २०.१२२.२, साम. २.४३५.
दो चक्रों के बीच का धुरा जैसे स्वयं चलता और औरों को भी चलाता है ।

चुक्रुधम् - क्रोधित करूं ।
'भूर्णिं मृगं न सवनेषु चुक्रुधम्'
ऋ. ८.१.२०, साम. १.३०७, नि. ६.२४.
हे इन्द्र ! मैं तुझ धारण कर्त्ता को (भूर्णिम्) यज्ञों में (सवनेषु) सिंह के समान (मृगं न) क्रुद्ध न करूं (न चुक्रुधम्) ।
अथवा, जैसे गालादि कन्यजीव भ्रमणशील सिंह को (भूर्णिम् मृगम्) क्रुद्ध नहीं करता, उसी प्रकार हे इन्द्र! मैं तुझे क्रुद्ध न करूं (मा चुक्रुधम्)

चक्रुष् - करने वाला ।
'उतागश्चक्रुषं देवाः
देवाजीवयथा पुनः'
ऋ. १०.१३७.१, अ. ४.१३.१, मै.सं. ४.१४.२, २१८.१.

चक्षुः - आंख ।
'चित्रं देवाना मुदगादनीकम्
चक्षु र्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः'
ऋ. १.११५.१, अ. १३.२.३५, २०.१०७.१४, आ.सं. ५.३, वाज.सं. ७.४२, १३.४६, तै.सं. १.४.४३.१, २.४.१४.४, मै.सं. १.३.३७: ४३.८, का.सं. ४.९.२२.५. श.ब्रा. ४.३.४.१०, ७.५.२.२७, तै.ब्रा. २.८.७.३, ऐ.आ. ३.२.३.१०, तै.आ. १.७.६, २.१३.१, नि. १२.१६.
किरणों का पुजनीय या विचित्र समूह उदित हुआ । यह मित्र, वरुण एवं अग्नि नाम से ज्ञात सूर्य की आख है ।
(२) दर्शन शक्ति ।
'चक्षुरक्षणोः'
अ. १९.९०.१, वै.सू. ३.१४.

चक्षुर्मन्त्रः - (१) आंखों के इशारों से बातें करने वाला या गुप्त मन्त्रणा करने वाला (२) दुष्ट हृदय ।
'चक्षुर्मन्त्रस्य दुर्हार्दः'
अ. २.७.५, १९.४.५.१.

चक्षुष् - इरुया (प्रकथन अर्थ में) + उस् , अथवा चक्ष् (व्यक्त वचन या दर्शन अर्थों में) + उस् = चक्षुष् (चक्षेः शिच्च सूत्र से) । रुया का बाहुलक नियम से चक्ष । अर्थ है-नेत्र ।
'वयः सुपर्णा उपसेदुरिन्द्रं
प्रियमेधाऋषयोनाधमानाः
अपध्वान्तमूर्णुहिपूर्धिचक्षुः
मुमुग्ध्यस्मान् निधयेव बद्धान्'
ऋ. १०.७३.११, साम. १.३१९. का.सं. ९.१९, ऐ.ब्रा. ३.१९.१२, तै.ब्रा. २.५.८. तै.आ. ४.४२.३, आप.श्रौ.सू. ६.२२.१, नि. ४.३.
चलने वाली सूर्य की रश्मियाँ (वयः सुपर्णाः) सूर्य के निकट गईं (इन्द्रम् उपसेदुः) । वे रश्मियां यज्ञ से प्रेम करने वाली (प्रियमेधाः) प्रकाशक होने के कारण सर्वद्रष्टा (ऋषयः) तथा लोगों की प्रज्ञा को जांचने वाली हैं (नाधमानाः) । हे आदित्य, इस चक्षुरोधक अन्धकार को (ध्वानाम्) दूर कर (अपोर्णुहि), प्रकाश से चक्षु को पूर्णकर तथा बंधन में बंधे पक्षियों की तरह अपनी किरणों को मुक्त कर (निधया बद्धान् मुमुग्धि) ।
आधुनिक अर्थ-आंख, दृष्टि ।

चक्षुषः पिता - ज्ञान दर्शन करने वाले । इन्द्रियगण या सूर्य आदि का निर्माता
'चक्षुषः पिता मनसा हिधीरः'
ऋ. १०.८२.१, वाज.सं. १७.२५, तै.सं. ४.६.२.४,

मै.सं. २.१०.३, १३४.१, का.सं. १८.२., आप.श्रौ.सू. १७.१४.२.

चक्षुष्पाः – चक्षु का पालक ।
'चक्षुष्पाः श्रोत्रपाश्च ेे'
वाज.सं. २०.३४

चक्षुष्यत् – चक्षुवाला, मृत्यु का विशेषण ।
'चक्षुष्मते श्रृण्वते ते ब्रवीमि'
ऋ. १०.१८.१, अ. १२.२.२१, वाज.सं. ३५.७, श.ब्रा. १३.८.३.४, तै.ब्रा. ३.७.१४.५, तै.आ. ३.१५.२, ६.७.३, तै.आ. (आंध्र) १०.४६, आप श्रौ.सू. २१.४.१, साम.मं.ब्रा. १०.१.१५, नि. ११.७.

चक्षुष्मती – सब पर अपनी आंख रखने वाली
'चक्षुष्मती मे उशनी वपूंषि'
अ. १९.४९.८

चकृत – (१) बार बार किया हुआ –सा. (२) दुष्कृत कर्म –(दया.) ।
'अधस्मा नो मघवन् चर्कृतादित'
ऋ. १.१०४.५,
हे इन्द्र, बार बार की हुई मेरी स्तुति से (चकृतात्) हमें परामुख न कर ।
हे राजन्! दुष्कृत कर्म से (चकृतात्) हमें रक्षा करें । –(दया.)

चङ्क्रमा – इधर उधर जाने वाला
'खड्रूरेऽधिचङ्क्रमाम्'
अ. ११.९.१६

चचरा – (ब.व.) स्वतन्त्र एवं सुख से विचरण करने वाले ।
'पतरेव चचरा चन्द्र निर्णिक्'
ऋ. १०.१०६.८

चण्ड – (१) अति प्रचण्ड क्रोधी, (२) लोभी ।
'सर्वाश्चण्डस्य नप्त्यः'
अ. २.१४.१

चतन् – जानता हुआ ।
'पश्वा न तायुं गुहा चतन्तम्'
ऋ. १.६५.१
(२) गुप्त रूप से रहता हुआ–आत्मा ।
'गुहा चतन्त मुशिजो नमोभिः'
ऋ. १०.४६.२

चतसृ – चार ।
'तेन जीवन्ति प्रदिशश्चतस्रः'
ऋ१.१६४.४२, अ. ९.१०.१९, ११.५.१२, तै.ब्रा. २.४.६.११, नि. ११.४१.
उस जल से चारों दिशाएं जीवन धारण करती हैं ।

चतस्रः (१) चार । चतसृ + शस् । (द्वि.व.)
(२) साम, दाम, दण्ड, भेद नामक चार वृत्तियां
(३) चारवर्ण ।
'यदिन्द्र ते चतस्रः'
ऋ. ५.३५.२, शां.श्रौ.सू. १६.२६.२०.

चतस्रः नद्यः – (१) चारों मेघ युक्त दिशाएं ।
'मध्वर्णसो नद्यश्चतस्रः'
ऋ. १.६२.६,
मधुर जल से पूर्ण चारों दिशाएं ।

चतस्रः नाभाः – आदित्य की चार दीप्तियाँ ।
'चतस्रो नाभो निहिता अवो दिवः'
ऋ. ९.७४.६

चतस्त्रः नाव – (१) चार नावें , (२) मुख्य चित्त में लगे चार अन्तकरण जो चिन्तन्, संकल्प विकल्प, मनन और धारण किया करते हैं ।
(३) चार वेद ।
'चतस्रो नावो जठलस्यजुष्ठा'
ऋ. १.१८२.६.

चत्तः – (१) अति आह्लादित ।
'शरभो न चत्तोऽति दुर्गाण्येषः'
अ. ९.५.९.
(२) याचित–दया. (३) चला गया
'दूरेचत्ताय छन्त्सत्'.
ऋ. १.१३२.६, वाज.सं. ८.५३, श. ब्रा.४.६.९, १४, वै.सू. ३४.१, आप.श्रौ.सू. २१.१२.९, मा. श्रौ.सू. ७.२.३.
दूर चले शत्रु को भी पकड़ने की इच्छा करे ।
(४) नष्ट, (५) ताड़ित ।
'चत्तो इतश्चत्तामुतः'
ऋ. १०.१५५.२

चत्वार – (१) पृथिवी, जल, वायु और अग्नि नामक चार तत्व (२) चारों वर्ण और चारों आश्रम ।
'चत्वार ईं बिभ्रति क्षेमयन्तः
ऋ. ५.४७.४
(३) चार वेद, (४) सेना के चार अंग ।
'चत्वारो मा मशर्शारस्य शिश्वः
त्रयो राज्ञ आयवसस्य जिष्णोः ।'
ऋ. १.१२२.१५.

दुष्टों को नाश करने (माशर्शारस्य) और विजय करने वाले (जिष्णोः) राजा को (राज्ञः) चारों वर्ण और चारों आश्रम (चत्वारः) या सेना के चार अंग और सर्वव्यापक अन्नादि सामग्री के स्वामी पुरुष के (आयवसस्य) अध्यक्ष जन, भृत्यजन, और प्रजाजन ये सब बालक के समान पालन करने योग्य हैं ।

चत्वारि - (१) चार, (२) चार प्राप्तव्य पुरुषार्थ-अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष ।
'चत्वार्युयुता ददत्'
ऋ. ८.२.४१

चत्वारि नाम - ब्रह्म के चार रूप चार दशाएं- जाग्रत , स्वप्न, सुषुप्ति और अमात्रा तुरीया और तदनुसार सृष्टि, स्थिति, लय और परमादशा ।
'चत्वारि ते असुर्याणिनाम
अदाभ्यानि महिषस्य सन्ति'
ऋ. १०.५४.४

चत्वारि पदानि - वाणी के चार रूप जैसे (१) भूः, भुवः स्वः और प्रणव, (२) मन्त्र, कल्प, ब्राह्मण और लौकिक व्यवहार तथा काव्यादि भाषा, (४) सर्प, पक्षी, क्षुद्रसरीसृप और मनुष्य की भाषा, (५) पशुओं, वाद्य यन्त्रों, मृगों और अपने आत्मा की भाषा, (६) परा, पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी-मूला धार में सूक्ष्म नाद रूप में रहने वाली परा, हृदयचक्र में पश्यन्ती , बुद्धि में मध्यमा और मुख में वैखरी (७) ब्राह्मण के अनुसार तीनों लोकों में तीन प्रकार की चौथी जंगम प्राणियों के तीनों लोको में अग्नि, विद्युत् दीप्ति रूप में और पशुओं में ध्वनि रूप में (८) नाम, आख्यात, उपसर्ग और निपात (९)चार पैर ।
ऋक्,यजुः, साम और व्यावहारिक पद (१०) ऊंकार तथा भूः,भुवः और स्वर् ये तीन व्याहृति मनुस्मृति २-७६ में कहा है ।
'आकारञ्चाप्यु कारञ्च
'मकारञ्च प्रजापतिः
'वेदत्रयान्निरदुहत्
'भूभुर्वः स्वरितीति च ।'
(११) वैयाकरण नाम, आख्यात, उपसर्ग और निपात को ही चत्वारि पदानि मानते हैं ।
(१२) नैरुक्त ऋक् , युजुः, साम तथा व्यावहारिकी वाणी को चार पद मानते हैं ।
(१३) कई विद्वान् सर्पों की वाणी, पक्षियों की वाणी क्षुद्र जाति के रेंगने वाले क्रिमियों की वाणी-इन्हें ही परमेश्वर से उत्पन्न बतलाते हैं ।
(१४) आत्म वादियों के अनुसार-ग्राम्य पशु, वाद्य, आरण्य पशु और मनुष्यों की वाणी चार पद हैं ।
(१५) यास्क ने पृथ्वी अन्तरिक्ष, द्यौ तथा मनुष्यों की वाणी को चार पद माना है ।
(१६) याज्ञिकों के मत से मन्त्र, कल्प, ब्राह्मण और लौकिक भाषा ।
(१७) निरुक्त वादियों के मत से ऋक्, यजुः साम और लौकिक भाषा ।
(१८) ऐतिहासिकों के अनुसार सूर्य, पक्षी, क्षुद्रजन्तु और मनुष्यों की वाणी ही चार पद हैं ।
(१९) अध्यात्म वादियों के मत से पशु, वाद्ययन्त्र, मृग और मानव देह में फैली वाणी,
(२०) तान्त्रिकों के मत से परा, पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी ।
(२१) ब्राह्मण ग्रन्थ के अनुसार पृथ्वी में अग्नि रूप, अन्तरिक्ष में वायुरूप, द्यौ में आदित्य रूप और ब्राह्मणों मे विकृता वाणी ।
'चत्वारि वाक् परिमिता पदानि'
ऋ. १.१६४.४५, अ. ९.१०.२७, श.ब्रा. ४.१.३.१७, तै.ब्रा. २.८.८.५, आश्व.श्रौ.सू. ३.८.१, जै.उप.ब्रा. १.७.३,४०.१ , नि. १३.९.

चत्वारि भुवनानि- (१) चार भुवन, (२) चार जल, (३) चार जलों के समान पवित्र ।
शान्तिदायक वेदमयसाधन
'चत्वारि अन्या भुवनानि निर्णिजे'
ऋ. ९.७०.१, साम. १.५६०, २.७७३.

चत्वारिंशत् - चालीस ।
'आचत्वारिंशता हरीभिः युजानः'
ऋ. २.१८.५

चत्वारिंशी शरद् - चालीसवां जाड़ा, चालीसवां वर्ष ।
'यः शम्बरं पर्वतेषु क्षियन्तं
चत्वारिंश्यां शरद्यन्वविन्दत्'
ऋ. २.१२.११, अ. २०.३४.११.
सूर्य जैसे पर्ववाले मासों में विद्यमान चन्द्रमा चालीसवें वर्ष फिर पूर्व स्थान पर पाता है ।

चत्वारि श्रृंगाः - (१) यज्ञ के ऋक्, यजुः, साम और अथर्व नामक चार श्रृंग, (२) कुमारिल के अनुसार दिन के चार भाग हैं, (३) सायण के मत से चार श्रृंग चारों दिशाएं हैं, (४) शाब्दिकों के मत से शब्द रूप ब्रह्म के चार प्रकार के शब्द-नाम, आरख्यात, उपसर्ग और निपात, (५) उद्योत के मत से चारश्रृंग हैं, वाणी के चार भेद -परा, पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी ।
'चत्वारि श्रृंगाः त्रयो अस्य पादाः'
ऋ. ४.५८.३, वाज.सं. १७.९१, मै.सं. १.६.२, ८७.१७, का.सं. ४०.७, गो.ब्रा. १.२.१६, तै.आ. १०.१०.२, महा.ना.उप. १०.१, आप. श्रौ.सू. ५.१७.४, नि. १३.७.

चत्वारि समुद्राः - -(१) चार समुद्र , (२) अग्नि, आदित्य, चन्द्रमा और विद्युत् ।
'त्रीण्यन्तरिक्षाणि चतुरःसमुद्रान्'
अ. १९.२७.३

चती - शत्रुनाशक ।
'तं व इन्द्रं चतिनमस्य शाकैः'
ऋ. ६.१९.४

चतुर - (१) चल् + उर् = चतुर् । चतुर का अर्थ चार की संख्या है । चत्वारः चलितः तमाः संख्या (तीन के बाद चल कर चार होता है) (२) द्यूत क्रीड़ा में फेंके जाने वाला पाश या अक्ष भी चलता है । अक्ष ।
'चतुरक्षित् दमदमानात्'
ऋ. १.४१.९, नि. ३.१६.
अक्षों को धारण करते हुए धूर्त जुआड़ी से
(३) विष, मादक पदार्थ, परपीड़ा दूसरे के घर में आए ये चार पदार्थ ।
'अग्नि दान् भक्त दांश्चैव
तथा शस्त्रोपकाशदान् ।
संनिधातंश्च मोषूस्य
हन्यात् चौर मिवश्वरः'
मनु. अ. ९.२७७
(४) धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष ।

चतुरक्षः - (१) चार आंखों वाला, (२) चौकन्ना (३) अत्यन्त सावधान (४) चारों दिशाओं में व्यापक-अग्नि या परमेश्वर का विशेषण ।
'अनिषङ्गाय चतुरक्ष इध्यसे'
ऋ. १.३१.१३
(२) मकड़ी के समान चारों तरफ देखने वाला ।
'विश्वरूपं चतुरक्षम'
अ, २.३२.२.

चतुरक्षी - (१) चार आँखों वाली, (२) प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान और शब्द इन चार प्रमाणों या चार वेदों से दर्शन करने वाली ।
'शुन्याश्च चतुक्ष्याः'
अ. ४.२०.७
(३) चार आंखों वाली ब्राह्मण रूप गौ (४) चार वर्ण रूप आखों वाला राष्ट्र ।
'अष्टापदी चतुरक्षी'
अ. ५.१९.७

चतुरक्षौ - चार इन्द्रियों अर्थात् आंख, नाक, कान, और रसना वाले, (२) चारो ओर आँख रखने वाली उषी से उत्पन्न रात दिन ।
'चतुरक्षौ सबंलौ साधुनापथा'
ऋ. १०.१४.१०, अ. १८.२.११, तै.आ. ६.३.१.
(३) चारों आश्रयों में व्याप्त प्राण अपान, (४) चार आंखों वाले सदा सावधान दो गुप्तचर (५) यम के दो दूत, (६) चार आंखों से कुत्ते ।
'चतुरक्षौ पथिरक्षी नृचक्षसौ'
ऋ. १०.१४.११, अ. १८.२.१२, तै.आ. ६.३.१,

चतुरंगः - चार अंगों वाला नियन्ता ।
'नराशंसश्चतुरंगोयमोऽदितिः'
ऋ.१०.९२.११

चतुरश्रि - चारों वेदों को प्राप्त कर अथवा चारों वर्गों का उत्तम साधक ।
'त्रिरश्रिं हन्ति चतुरश्रिरुग्रो
देवनिदो ह प्रथमा अजूर्यन्'
ऋ. १.१५२.२

चतुरुत्तणि - सात प्राणों के सिवा और चार जो अन्तः करण चतुष्टय के नाम से ख्यात हैं जो एक दूसरे में आश्रित हैं ।
'सप्त च्छन्दांसि चतुरुत्तराणि'
अ. ८.९.१९

चतुर्दशमहिमानः - (१) परमेश्वर के चौदह महान् सामर्थ्य चौदह भुवन ।
'चतुर्दशान्ये महिमानो अस्य'
ऋ. १०.११४.७

चतुर्दशाक्षर - (१) अन्तःकरण चतुष्ठय सहित दश इन्द्रियां (२) राष्ट्र के १४ अध्यक्ष ।

'रुद्राश्चतुर्दशाक्षरेण चतुर्दशं स्तोष मुदजयन्'
वाज.सं. ९.३४, तै.सं. १.७.११.२.

चतुर्दंष्ट्र – चार शत्रुओं को चबा जाने वाला सैनिक।
'चतुर्दंष्ट्रान् श्यावदतः'
ऋ. ११.९.१७

चतुर्धारितः – चार प्रकार से विभक्त वशा (परमात्म शक्ति) की उत्पादक शक्तियां-आप्त प्रजाएं, अमृत (मोक्षावस्था), यज्ञ और पशु।
'चतुर्धा रेतो अभवत् वशायाः'
अ. १०.१०.२९

चतुर्भुज द्रष्ट्राः – धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष चारों के साथ मनोयोग करने वाले या अन्तःकरण की चारों वृत्तियों का विरोध करने वाले तथा कर्मबीजों को ज्ञानाग्नि से विरोध करने वाले
'उष्ट्रांश्चतुर्युजो ददत्'
ऋ. ८.६.४८

चतुर्भृष्टिः – चारों ओर से भ्रंश वाली गोलभूमि।
'यत्ते भूमिं चतुर्भृष्टिं मनो जगाम दूरकम्
ऋ. १०.५८.३

चतुर्यज् – (१) धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष चारों के साथ मनोयोग करने वाला।
(२) चतुरः अन्तः करण वृत्तीन् युञ्जतेसमादधति युञ्जते समादधति निरुन्धन्ति इति चतुर्भुजः। अन्तःकरण की वृत्तियों का विरोध करने वाला

चतुर्वय – (१) चतुर्गुण, चौगुना (२) ईश्वरीय ज्ञानका चार वेदों में विभाग, (३) जीवन रूप यज्ञ का आश्रम भेद से चार विभाग, (४) जीवन के चार पुरुषार्थ-धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष।

चतुर्बिल – (१) चार छिद्रों वाला, (२) चार भागों से युक्त (३) चार वेदों वाली मधुर वाणी।
'कोशं दुहन्ति कलशं चतुर्बिलम्'
अ. १८.४.३०

चतुर्वीर – (१) धर्म, अर्थ, ब्रह्म और मोक्ष इन चार सामर्थ्यों से युक्त प्रभु, (२) चार प्रकार के वीर्यों से युंक्त पदाति, अश्व, रथ और गज से युक्त सेना।
'चतुर्वीरं पर्वतीयम् यदाञ्जनं'
अ. १९.४५.३

चतुर्वृष – चार प्राणों से युक्त आत्मा।
'यदि चतुर्वृषोऽसि सृजारसोऽसि'
अ. ५.१६.४

चतुर्होतारः – चतुर्होतृ नामक अश्वपाक।
'चतुर्होतार आप्रियः'
अ. ११.७.१९

चतुःश्रृंगगौरः – पदाति, रथ, अश्व और हाथी आदि चार हिंसा-साधनों से सम्पन्न गौर अर्थात् पृथ्वी में रमण करने वाला राजा।
'चतुः श्रृंगोऽवभीत गौर एतत्'
ऋ. ४.५८.२, वाज.सं. १७.९०.मै.सं. १.६.२.८७.१६, का.सं. ४०.७, तै.आ. १०.१०.२, आप.श्रौ.सू. ५.१७.४, महा.ना.उप. ९.१३.

चतुःश्रोत्रा – (१) चार कानों वाली ब्राह्मण रूप गौ, (२) चार आश्रयरूप जन वाला राष्ट्र।
'चतुःश्रोत्रा चर्तुर्हनुः'
अ. ५.१९.७

चतुष्कपर्दा – (२) चार शिखाओं वाली। वाणी की चार शिखाएं चार वेद हैं।
'चतुष्कपर्दा युवतिः सुपेशाः'
ऋ. १०.११४.३

चतुष्टोम – चारों दिशाओं पर विजय करने में समर्थ।
'धर्त्रं चतुष्टोमः'
वाज.सं. १४.२३, मै.सं. २.८.४, १०९.८, का.सं. १७.४, २१.१. श.ब्रा. ८.४.१.२६.

चतुष्पदी – (१) चारों पैरों वाली, (२) माध्यमिका वाक्, (३) गौरी का एक विशेषण।
'गौरीर्मिमाय सलिलानि तक्षती
एकपदी द्विपदी सा चतुष्पदी'
ऋ. १.१६४.४१, अ. ९.१०.२१, तै.ब्रा. २.४.६.११, ऐ.आ. १.५.३.८, तै.आ. १.९.४, नि. ११.४०.
माध्यमिका वाक् गौरी ने एक अधिष्ठान से या मेघ और अन्तरिक्ष नामक दो अधिष्ठानों से या चारों दिशाओं से एकात्म हो जल बनाती हुई यह सब कुछ निर्मित किया।
(४) चतुर्वेदमय वेदवाणी
'चतुष्पदीमन्वैतत् व्रतेन'
ऋ. १०.१३.३, अ. १८.३.४०

चतुष्पाद् – (१) पादचतुष्टयोपन (चार पैरों वाला), गौ आदि जन्तु, चौपाया जानवर।
'शं नो भवतु द्विपदे शं चतुष्पदे'
ऋ. ७.५४.१, १०.८५.४३, ४४, अ. १४.२.४०, मै.सं. १.५.१३, ८२.१४, ४.१२.४, १९०.१०,

आश्व.श्रौ.सू. २.९.१०, शां.गृ.सू. १.७.९, ३.४.२, ८.३, साम.मं.ब्रा. १.२.१७,१८, २.६.१, पा.गृ.सू. १.४.१६, ३.४.७, आप.मं.पा. १.१.४.

पुनः –

'प्रासावीद् भद्रं द्विपदे चतुष्पदे'

ऋ. ५.८१.२, वाज.सं. १२.३, तै.सं. ४.१.१०.४, मै.सं. २.७.८, ८४.१४, ३.२.१, १५.१, का.सं. १६.८, श.ब्रा. ६.७.२.४, नि. १२. १३.

(२) अन्तः करण चतुष्टय (३) चतुष्पाद ब्रह्म

'चतुष्पाच्चक्रे द्विपदामभिस्वरे'

वाले तथा कर्मबीजों का ज्ञानाग्नि से विरोध करने वाले।

ब्रह्म के चतुष्पाद का वर्णन छान्दोग्योपनिषद् में द्रष्टव्य है।

'धर्म नो ब्रूत यतमश्चतुष्पात्'

अ. ४.११.५

चतुष्पाद् भोग्य – धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के प्रकट करने के बाद चतुष्पाद् रूप ब्रह्म।

'चतुष्पाद् भूत्वा भोग्यः'

अ. १०.८.२१

चतुरक्ष – चार आंखों वाला।

'द्व्यास्यात् चतुरक्षात्'

अ. ८.६.२२

चतुरक्षर – (१) चार अक्षय बल-सुख, शान्ति, गति और स्फूर्ति रूप सोम के चार धर्म (२) अ, उ,म. और अमात्र नामक अक्षर, (३) चतुरंग सेना (४) साम दाम भेद और दण्ड

'सोमश्चतुरक्षरेण चतुष्पदः पशूनुदजयत्'

वाज.सं. ९.३१, तै.सं. १.७.११.१, मै.सं. १.११.१०.१७१.२०, का.सं. १४.४.

चतुरश्रि – (१) चार स्कन्धों वाला, चतुरंगिणी सेना।

'वृषा वृषन्धिं चतुरश्रिमस्यन्'

ऋ. ४.२२. २

(२) चार मुखों वाला बाण, (३) चारों प्रकार के सैन्यों से युक्त राजा।

'सजिह्वया चतुरनीक ऋञ्जते'

ऋ. ५.४८.५

चतुर्युग – (१) जिसमें घोड़े जोड़ने के चार स्थान हों, (२) जो चार स्थानों में जोड़ा जाता है। (३) धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष में संलग्न, (४) चारों वेदों से संदेह समाधान करने वाला, (५) चारों अन्तः करेणों से युक्त।

'चतुर्युगः त्रिकशः सप्तरश्मिः'

ऋ. २.१८.१

चतुः श्रृंगः – (१) अज्ञान का नाशकारी चार वेदमय ज्ञान को धारण करने वाला ब्रह्मा (२) चार सींगों वाला मृग (३) अन्धकार रूप अज्ञान का नाशक।

'चतुः श्रृंगोऽवमीद् गौर एतत्'

ऋ. ४.५८.२ वाज.सं. १७.९०, मै.सं. १.६.२: ८७.१६, का.सं. ४०.७, तै.आ. १०.१०२, आप.श्रौ.सू. ५.१७.४, महा ना. उप. ९.१३.

चतुर्हनुः – (१) चार दाढ़ों वाला ब्रह्म रूपी गौ, (२) चारों प्रकारी की सेना चार हनु हैं।

'चतुःश्रोत्रा चतुर्हनुः'

अ. ५.१९.७

चतुष्पक्षंछदिः – चारों पक्षों से शरीर को आच्छादित करने वाली मृगछाला जिसके प्रयोग से रक्त, पित्त वात आदि का नाश होता है। मृगछाला पर बैठने से अर्श, कण्डू, खाज आदि रोग दूर होते हैं।

''चतुष्पक्षमिवच्छदिः'

अ. ३.७.३

चतुष्पक्षा – चार कोठरियों या चौतरफी ओसारेवाली शाला।

'या द्विपक्षा चतुष्पक्षा'

अ. ९.३.२१

चतुष्पदी – (१) चार पदों या आश्रयों से युक्त जीवन पद्धति, (२) चार वेदों से युक्त वाणी।

'चतुष्पदीमन्वेमि व्रतेन'

ऋ. १०.१३.३, अ. १८.३.४०.

(३) चारों दिशाओं में व्यापक ब्रह्मशक्ति, (४) चार भूतों में परिणाम पैदा करने वाली (५) प्रकृति, पुरुष, क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ रूप ब्रह्मशक्ति।

(६) नाम, आख्यात, उपसर्ग और निपात के विचार से वाणी चतुष्पदी है।

'एकपदी द्विपदी सा चतुष्पदी'

ऋ. १.१६४.४१, अ. ९.१०.२१, १३.२.४२, तै.ब्रा. २.४.६.११, तै.आ. १.९.४, नि. ११.४०.

चतुस्त्रिंशत् – (१) चौतीस, (२) चौतीस प्रकार के

विकार-८ वसु, १२ आदित्य, ११ रुद्र, प्रजापति वषट्कार और विराट्।
'चतुस्त्रिंशता पुरुधा विचष्टे
सरूपेण ज्योतिषा विव्रतेन।'
ऋ. १०.५५.३

चतुस्त्रिंशत् तन्तवः - (१) राष्ट्र यज्ञ को विस्तृत करने वाले ३४ घटक, (२) यजुर्वेद के अध्याय आठ के मन्त्र ५४ से ५९ तक सोमराजा के ३४ पदाधिकारी वर्णित हैं जो सोम राजा के ३४ अंश हैं।
'चतुस्त्रिंशत् तन्तवो ये वितत्निरे'
वाज.सं. ८.६१

चतुःस्रक्ति - चारों दिशाओं में प्रबल अस्त्र शस्त्रों वाली।
'चतुःस्रक्तिनीभिः ऋतस्य'
वाज.सं. ३८.२०, मै.सं. ४.९.१०, १३१.५, श.ब्रा. १४.३.१.१७ तै.आ. ४.११.४, ५.९.६, आप.श्रौ.सू. १५.१४.५,

चतूरात्रः - चार दिनों में समाप्त होने वाला यज्ञ।
'चतूरात्रःपञ्चरात्रः'
अ. ११.७.११

चन - पच् + ल्युट् (कर्म वाच्य में) = पचन = चन (प का लोप) अर्थ है (१) जो पकाया जाय (यः पच्यते)। अथवा, भक्षणार्थक-चमु + असुन् = चसन् (मकान)। अथवा, चनस + क्विप् = चनस् (३) अव्यय, (४) अन्न अव्यय के अर्थ में प्रयोग के लिए।
'य इन्द्राग्नी सुतेषु वां
स्तवत् ते ष्वृता वृधा।
जोषवाकं वदतः पज्रहोषिणा
न देवा भसथश्चन'
ऋ. ६.५९.४, नि. ५.२२.
हे ऋत अर्थात् सत्य या यज्ञ के बढ़ाने वाले (ऋतावृधा) इन्द्र तथा अग्नि, जो यजमान सोम रस चुलाकर तुम्हारी सृष्टि करते हैं उनका सोम तुम ग्रहण करते हो (यः सुतेषु वां स्तवत्) और जो अविज्ञान मलिन बात बोलते हैं (जोषवाकं वदतः), हे प्रसिद्ध स्तोत्र वाले देवों, उन के सोम रस का ग्रहण तुम कदापि नहीं करते (पज्रहोषिणा देवा न भसथः चन)
अन्य अर्थ - हे सत्य प्रचारक (ऋतावृधा) तथा अपनी आज्ञाओं का पालन कराने वाले देव, प्रधानमन्त्री तथा राजन् (इन्द्राग्नी) जो मनुष्य उन अन्नादि सोम पदार्थों के उत्पन्न होने पर तुम्हारा सत्कार करता है (वां स्तवत्) उस का अन्न तुम खाते हो (भसथः) परन्तु गमन शील संन्यासी भी ब्राह्मण का अन्न नहीं खाते (च न जोषपाकं बदतः न)
अन्न अर्थ में चन का प्रयोग -
'अद्धीदिन्द्र प्रस्थितेमा हवींषि
चनो दधिष्व पचतोत सोमम्।
प्रयस्वन्तः प्रति हर्यामसि त्वा
सत्याः सन्तु यतमानस्य कामाः'
ऋ. १०.११६.८, नि. ६.१६.
हे इन्द्र! ये हवि प्रस्थित किये गए हैं (इन्द्र इमा हवींषि प्रस्थिताः) अतः इस हवि रुपी अन्न को जो पकाया गया है उसे पेट में धारण कर (पचता चनः दधिष्व) तथा इस सोम रस को भी धारण कर अर्थात् पी (उत सोमस्य)। हम अन्न वाले (प्रयस्वन्तः) तेरी कामना करते हैं (त्वां प्रति हर्यामसि)।
अन्य अर्थ - हे विद्वन् (इन्द्र) ये परिपक्व फल उपस्थित हैं (इमा पचता हवींषि प्रस्थिताः) भक्षण करें (अद्धिइत्), अन्न और दूध को ग्रहण कीजिए (चनः उत सोमं दधिष्व)। अन्नयुक्त हम (प्रयस्वन्तः) आप की कामना करते हैं (त्वां प्रति हर्यामि) जिससे मुझ गृहस्थ की अभिलाषाएं सच्ची हों (यजमानन्य कामाः सत्याः सन्तु)।
'भी' अर्थ में प्रयोग
'इन्द्रश्चन त्याजसा विह्रुणाति तत्'
ऋ. १.१६६.१२
विद्युत् भी जल के साथ विविध कुटिल गति से चमका करता है।
अन्नादि भोग्य पदार्थ के अर्थ में -
'सुते दधिष्व न श्चनः'
ऋ. १.३.६, अ. २०.८४.३, साम. २.४९८.वाज.सं. २०.८९
(५) उपदेश। पचतेर्वा वचे र्वा। पचनः वचनः वर्णलोपः छान्दसः। चन का अर्थ है - अन्न और (२) प्रवचन करने योग्य स्तुति योग्य भजण।

उपेदश अर्थ में -
'चनो दधीत नाट्यो गिरो मे'
ऋ. २.३५.१, मै.सं. ४.१२.४, १८७.१७, का.सं. १२.१५, आप.श्रौ.सू. १६.७.४.
प्रवचन या स्तुतित करने योग्य भजन के अर्थ में
'यस्याग्निर्वपुर्गृहे स्तोमं चनः'
ऋ. ८.१९.११

चनस्यतम् - अन्न के समान सेवन करे ।
'पुरुभुजा चनस्यतम्'
ऋ. १.३.१

चन्द्र - (१) चद् अथवा चंद (कान्ति अर्थ में) = रक् = चन्द्र (न का आगम) । काम्यते असौ (चन्द्रमा को सभी चाहते हैं या यह कान्त होता है) ।
(२) अथवा 'चारु द्रमति' सुन्दर रीति से चलाया है या चिरं द्रमति (चिरकाल तक चलता है) ।
(३) अथवा चम् + द्रम् = चन्द्र या चन्द्रमा (पृषोदरादिवत्) (४) अथवा-देवैः चम्यमानः द्रमति (देवताओं से भक्ष्यमाण वह चलता है) ।
(५) अथवा चिर + द्रुम् = चिरन्द्र = चन्द्र (६) अथवा, चम् + द्रम् + उ= चन्द्र (यह कृष्ण पक्ष में सूर्य के द्वारा निरन्तर पीयमान रहता है और इसकी चन्द्रिका भी घटती जाती है) ।
आधुनिक अर्थ- (१) चन्द्रमा, (२) कपूर, (३) मयूर के पंख की आंखें (४) जल, (५) सुवर्ण ।

चन्द्रनिर्णिक् - चन्द्रमा के समान शुद्ध ।
'पतरेव चचरा चन्द्र निर्णिक्
ऋ. १०.१०६.८

चन्द्रबुध्नः - (१) चन्द्रमा को अन्तरिक्ष में बांधने वाला रखने वाला सूज्ञय, (२) सूर्य आदि को अपने मूल आश्रय में रखने वाला राजा ।
'चन्द्रबुध्नो मदवृद्धो मनीषिभिः'
ऋ. १.५२.३
अन्तरिक्ष में चन्द्र को रखने वाला सूर्य या अपने मूल आश्रय में रजत स्वर्ण आदि ऐश्वर्य को रखने वाला राजा ।

चन्द्रमस् - चायन् + द्रुम् + असुन् = चन्द्रमस् (चायन का चन्) । सर्वभूतानि चायन्, द्रमति गच्छति (सभी जीवों को देखता हुआ जाता है या सभी ओषधियों पर कृपा दृष्टि रखता हुआ चलता है)
अथवा-चन्द्र + मा + असुन् चन्द्रमस् (डित् होने से टि का लोप) । चन्द्रश्चासौ निर्माता च (यह चन्द्र भी है और सब का या वर्ष का निर्माता भी) ।
अथवा-चान्द्रं मानम् अस्य (इसका मान चन्द्र का है) । चन्द्र सोम के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है । सोम पौधा चन्द्रमा की कला के अनुसार शुक्ल पक्ष में प्रतिदिन एक एक पत्ता कर बढ़ता है । चन्द्रमा के बढ़ने का मान भी सोम लता के ही सदृश है ।
अर्थ - (१) चन्द्रमा, (२) सोमलता ।
'अत्राह गोरमन्वत नाम त्वष्टुरपी च्यम्
इत्था चन्द्रमसो गृहे'
ऋ. १.८४.१५, अ. २०.४१.३, समा. १.१४७, २.२६५, मै.सं. २.१३.६, १५४.१२, का.सं. ३९.१२, तै.ब्रा. १.५.८.१, नि. ४.२५.

चन्द्रमसो गृहः - (१) चन्द्रलोक , (२) शरीर में आह्लाद जनक मार्ग (३) सोमचक्र
'इत्था चन्द्रमसोगृहे

चन्द्ररथ - (१) सुवर्ण का निर्मित रथ, (२) स्वर्ण रथ वाला, (३) चन्द्रवत् स्थानीय रूप वाला, (४) चन्द्रवत् सर्वाह्लादक एवं शान्तिकारक रथ सैन्यादि से युक्त, (५) अग्नि, (६) आनन्द मय रस रूप परमेश्वर ।
'चन्द्रमग्निं चन्द्ररथं हरिव्रतम्'
ऋ. ३.३.५, का.सं. ७.१२, आप.श्रौ.सू. ५.१०.४, मा.श्रौ.सू. १.५ .२.१४.
(७) जिसके रथ में रजत या सुवर्ण हो, (८) आह्लादक सुवर्ण या चन्द्र के समान प्रकाशक जीवात्मा ।
'होता मन्द्रः श्रृणवत् चन्द्ररथः'
ऋ. १.१४१.१२

चन्द्रवत् - सुवर्ण से युक्त ।
'चन्द्रवता राधसा पप्रथश्च'
ऋ. ३.३०.२०, तै.ब्रा. २.५.४.१.

चन्द्रं वहतु - आह्लादकारी रथ या दहेज ।
'ये वध्वश्चन्द्रं वहतु
यक्ष्मा यन्ति जनादनु'
ऋ. १०.८५.३१, अ. १४.२.१०, आप.मं.पा. १.६.९

चन्द्रा - आह्लादकारिणी ।
'व्युषाश्चन्द्रा मध्या वो अचिषा'

ऋ. १.१५७.१, साम. २.११०.८.

चन्द्राग्रः – चन्द्र का अर्थ चयनीय या अभिपूजित और अग्र का अर्थ आगमन है। जिसका आगमन अभिपूजित है वह चन्द्राग्र है, यथा चन्द्राग्रं धनम् (अभिपूजित आगमन वाला धन)। धन का आगमन मंगलमय समझा जाता है। अर्थ- (१) धर्म्य या अभिपूजित आगमन वाला।

'स नो रासत् शुरुधश्चन्द्राग्राः
धियं धियं सीषधाति प्रपूषा'

ऋ. ६.४९.८, वाज.सं. ३४.४२, तै.सं. १.१.१४.२, नि. १२.१८.

वह पूषा धर्म्य या अभिपूजित आगमन करने वाले धनों को देता हुआ हमारे प्रत्येक कर्म को प्रसाधित करें।

चनिश्चदद् – आह्लादवती रत्न सुवर्णादि।

'चनिश्चदद् दुदुहे शुक्रमंशुः'

ऋ. ५.४३.४

चनिष्ठः – (१) अत्युत्तम अन्न, (२) प्रचुर अन्न।

'चनिष्ठं पित्वोररते विभागे'

ऋ. ५.७७.४

चनिष्ठा – अन्न ऐश्वर्यादि से युक्त।

'अस्मे वो अस्तु सुमति श्चनिष्ठा'

ऋ. ७.५७.४

चन्द्री – (१)ऐश्वर्य वान् (२) आनन्द कारी।

'हिरण्यैश्चन्द्री यजति प्रचेताः'

वाज.सं. २०.३७, मै.सं. ३.११.१, १३९.१५, का.सं. ३८.६, तै.ब्रा . २.६.८.१.

चनोधाः – अन्न समृद्धि का धारक।

'सावित्रोऽसि चनोधाः'

वाज.सं. ८.७, मै.सं. १.३.२७, । ३९.१५, श.ब्रा. ४.४.१.६.

चनोहित – (१) अन्न से परिपुष्ट।

'हव्यवाऽग्निरजरश्चनोहितः'

ऋ. ३.२.२.

(२) पाचन करने वाले उपयुक्त अग्नि, (३) प्रवचन कार्य में नियुक्त (४) शासन और उपदेशक कार्य में नियुक्त।

'अत्योन वाजसातये चनोहितः'

ऋ. ३.२.७, वाज.सं. ३३.७५.

चनः वचन शब्दस्य नकार लोपेन अन्तसकारोपजनेन चनः। यद्वा वचे दसुनि बाहुलकात् नोन्तादेशः। चनः इति अन्ननाम पचनस्य पकारलोपे सकारो पजनेन च पंचेर्वासुनिनोन्ता देशः पीपतेर्वा।

(५) वचनों को धारण करने में समर्थ

(६) अन्न परिपाक करने में उपयोगी (७) संचित ज्ञान का उत्तम कर्म को धारण करने वाला।

'उशिग्दूतश्चनोहितः'

ऋ. ३.११.२, वाज.सं. २२.१६, तै.सं. ४.१.११.४, मै.सं. ४.१०.१, १४३.१५, का.सं. १९.१४.

चप् – सान्त्वना अर्थ में। चुप होना इसी से बना है।

चप्य – चप् सान्त्वन। सान्त्वना अर्थ में चप् धातु आया है। दुष्टों को दूर कर प्रजा को सान्त्वना और सुख की आशा दिलाने का श्रेष्ठ कार्य।

'चप्यं न पायुर्भिषगस्य वालः'

वाज.सं. १९.८८, मै.सं. ३.११.९, १५४.३, का.सं. ३८.३, तै.ब्रा . २.६.४.४.

चमस – (१) मेघ, (२) भोजन के करने का पात्र, (३) थाली, कटोरा चमच आदि (४) शस्त्रास्त्र बरसाने वाला वीर, (५) राष्ट्र का उपभोक्ता अध्यक्ष (६) भूमि और प्रजा को खा जाने वाला।

'याभिः शचीभिः चमसाँ अपिंशत'

ऋ. ३.६०.२

(७) चमनम् उदकम् सनोति, संभजते ददाति इति वा चमसः अथवा चमनम् ज्ञानावृतं सनोति इति चमसः (अर्थात् जो जल देता है वह चमस है या जो ज्ञानामृत देता है वह चमस है)। सूर्य का विशेषण (८) अध्यात्म अर्थ में सिर का विशेषण।

'तिर्यग्बिलश्चमस ऊर्ध्वबुध्नः'

ऋ. १०.८.९, नि. १२.३८.

सूर्य नीचे छिद्र वाला है, क्योकि वह नीचे ओर किरणों को विस्तृत करता है। वह चमस है, तथा ऊपर से समस्त जगत् को उद्बोधित या नियन्त्रित करता है।

आध्यात्म अर्थ में सिर के सम्बन्ध में भी यह बात घटती है। सिर समस्त शरीर को नियन्त्रित करता है।

(९)स्रुवा, (१०) मस्तिष्क

'ऋतेनये चमसमैरयन्त'

अ. ६.४७.३, तै.सं. ३.१.९.२, का.सं. ३०.६,

का.श्रौ.सू. १०.३ .२१, मा.श्रौ.सू. २.४.१७.
(११) आध्यात्म अर्थ में चमस पात्र का निर्णय
प्राणाधानाभ्यामेव उपांशवन्त र्यामौ निरमिमीत।
व्यानात् उपांशुसवनम् वाच ऐन्द्रवायवम्, पक्ष क्रतुभ्याम् मैत्रावरुणम्।
श्रोत्राद् आश्विनम्, चक्षुषः शुक्रामन्थिनौ आत्मन आग्रायणम् अङ्गेभ्य उक्थम् आयुषो ध्रुवम् प्रतिष्ठाया ऋतुपात्रे।
तै.ब्रा. १.५.१.२.
चमस समस्त आयु है। यज्ञ में चमस स्थित सोम को चार भागों में विभक्त किया जाता है। जिसका अभिप्राय जीवन को चार भागों में बांटना है। इस प्रकार यज्ञ पर अर्थ संगत होता है।
चम् (अदन् अर्थ में) + असच् = चमस्। अर्थ है (१) यज्ञ पात्र, (२) सोमरस पीने का पात्र। इन दिनों चमस और चमस् दोनों का प्रयोग इसी अर्थ में होता है।
(१३) परराष्ट्र को वश करने या हड़प जाने वाला सैनिक, (१४) पिण्ड भोजी वेतन बद्ध भृत्य।
'न्यग्रोधः चमसैः
वाज.सं. २३.१३, तै.सं. ७.४.१२.१, का.सं. (आश्व). ४.१, श ब्रा. १३.२.७.३.

चमसाध्वर्यु – चमस + अध्वर्यु चमस लेकर यज्ञ करने वाला।
'चमसाध्वर्यव एव ते'
अ. ९.६.५१

चम्बा – (द्वि.व.) सम्पूर्ण जगत् को अपने भीतर लेने वाली आकाश और भूमि।
'मही समौचम्बा समीची'
ऋ. ३.५५.२०

चम्रिस् – चम् + इति = चम्रिस् (सुट् का आगम)। चाम्यति अदति भोगान् यः (जो भोगों को भोगता है खाता है वह चम्रिस है।
'एष प्रपूर्वीरव तस्य चम्रिषः
'अत्यो न योषामुदयं स्त भुर्वणिः'
ऋ. १.५६.१, कौ.ब्रा. २५.७.
अश्व जिस प्रकार घोड़ी को प्राप्त होता है (अत्यः योषां न) या बल शौर्य में अति बढ़ने वाला पुरुष स्वयंवर में भरण पोषण करने वाला हो (भुर्वणिः) कन्या को ववाह लेता है उसी प्रकार राजा उस राष्ट्र की (तस्यचम्रिषः) सर्वश्रेष्ठ पात्र में रखी भरी पूरी (पूर्वीः) भोग्य सम्पदाओं को अधीन कर उन पर शासन कर नियम में चलाता है।

चमुरि– (१) दूसरे के ऐश्वर्य पर मुंह लगाने वाला –(दया.) (२) एक दस्यु– (३) मुख द्वारा खाने की लालसा (४) परद्रव्यभोक्ता।
'स्वप्नेनाभ्युप्या चमुरिं धुनिं च
जघन्य दस्युं प्रदभीतिमावः।'
ऋ. २.१५.९, आश्व.श्रौ.सू. ९.८.४.

चम्रीष– ये चमूभिः शत्रुसेनाः ईषन्ते हिंसन्ति ते चम्रीषः (जो सेनाओं से शत्रु सेनाओं को हिंसित करते हैं वे चम्रीष हैं) –(दया.)
'चम्रीषो न शवसा पाञ्चजन्यः'
ऋ. १.१००.१२
बल से ही सेना द्वारा शत्रुओं का नाश करने वाला पांचों जनों के बीच शासक रूप से विद्यमान हो।

चमू – चम् + ऊ = चमू। चमति इति चमू (जो भोजन करता है वह चमू है)। अर्थ– (१) भोक्ता, भक्षयिता। (२) चमू शब्द भोग साधन द्यौ और पृथ्वी का भी वाचक है।
आधुनिक अर्थ – सेना जिसमें ७२९ गज, ७२९ रथ, २१८७ अश्व और ३६४५ पदाति योद्धा रहे।

चमूषद् – (१) पात्र में स्थित सोमरस या जल, (२) सेना में सुसज्जित वीर, (३) सेनाओं में अच्छे पद पर विराजमान (४) अच्छे पद पर विराजमान (५) ब्रह्मास्वाद में निरत मुक्त जीव।
'सोमास इन्द्रं मन्दिनश्चमूषदः'
ऋ. १०.४३.४, अ. २०.१७.४
(५) सेनाओं पर अध्यक्षवत् विराजने वाला सेनापति, (६) विषयों का भोक्ताइन्द्रिय, मन तथा देह के ऊपर अध्यक्षवत् विराजने वाला आत्मा (७) चमू में विराजने वाला सोम रस।
'चमूषत् श्येनः शकुनो विभृत्वा'
ऋ. ९.९६.१९, साम. २.५२७.

चम्वौ – (द्वि.व.) (१) द्यौ और पृथिवी का पर्याप्त। द्यौ और पृथिवी प्राणिमात्र के लिए भोग साधन हैं अतः उन्हें चमू नाम दिया गया है।
'उत्तानयोश्चम्वोर्योनिरन्तः'
ऋ. १.१६४.३३, अ. ९.१०.१२, नि. ४.२१.

तने हुए हमारे भोग साधन द्यौ और पृथिवी के बीच में अन्तरिक्ष है। (योनिः)।

चयनम् – अवयवों का एकत्र होना संगृहीत होना।
'*इदं कसाम्बु चयनेन चितम्*'
अ. १८.४.३७

चयमान – संग्रह करता हुआ।
'*ऋतावानश्चयमाना ऋणानि*'
ऋ. २.२७.४, तै.सं. २.१.११.५, मै. सं. ४.१२.१: १७७.१०, का.सं. ११.१२

चयसे – चातयसि, नाशयसि (तू नष्ट करता है)। देवराज ने चम् धातु को गत्यर्थक भ्वादिगणीय एवं आत्मने पदी माना है और इसे नाशन अर्थ में प्रयुक्त समझा है या चातयसि का ही विकृत रूप माना है।
'*ये त्वा देवोस्रिकं मन्यमानाः*
पापा भद्रमुपजीवन्ति पज्राः
न दूढ्ये अनु ददासि वाम
बृहस्पते चयस इति पियारुम्'
ऋ. १.१९०.५.
हे बृहस्पति देव! जो यजमान धनी होते हुए भी भोग प्रधान पाप से जीर्ण (पज्राः) एवं पाप कर्म परायण हो (पापा) तुम तेजस्वी तथा कल्याणकारी का अपमान करते हुए जीवन यापन करते हैं और अपने धन को प्रत्युपकार में नहीं लगाते (उपजीवन्ति इत) उन कुत्सित बुद्धिवालों को (दूढ्ये) तू समजनीय धन उनके अनुकूल नहीं देता (वाप्नम् अनु न ददासि) तथा यज्ञविमुख देवहिंसक को (पियारुम्) तू नष्ट करता है (चयसे)।

चरकाचार्य – भोज्य पदार्थों के ऊपर आचार्य।
'*दुष्कृताय चरकाचार्यम्*'
वाज.सं. ३०-१८, तै.ब्रा. ३.४.१.१६.

चरण – (१) सत् आचरण।
'*उपारिम चरणे जातवेदः*'
अ. ७.१०६.१.
(२) गमन, कार्य,
(३) ब्रह्मचर्य व्रत।
'*पाति यह्वः चरणं सूर्यस्य*'
ऋ. ३.५.५
(४) चर् + ल्युट् = चरण।
अर्थ–स्थान।
'*सस्निमविन्दत चरणे नदीनाम्*'
ऋ. १०.१३९.६, मै.सं. ४.९.११,१३२.३, तै.आ. ४.११.८, नि. ५.१.
जलों का चरण स्थान अन्तरिक्ष में ही है।

चरणिः – (१) आचरण करने वाला।
(२) चरणशील, (३) सदाचारी साधक, (४) सेनाओं को बनाने वाला विद्वान्।
'*सुविद्वांसं चर्कृत्यं चरणीनाम्*'
ऋ. ८.२४.२३, अ. २०.६६.२,

चरण्युः – विचरण करने वाली।
'*ह्रदे चक्षुर्न ग्रन्थिनी चरण्युः*'
ऋ. १०.९५.६

चरति – चलता है, अनुसरण करता है।

चरथ् – जंगम, चरपदार्थ, जगत्।
'*गर्भश्चस्थातां गर्भश्चरथाम्*'
ऋ. १.७०.३
जो अग्नि या परमेश्वर स्थावर अचेतन तथा जंगम चेतन पदार्थों में भी व्याप्त हैं और उन्हें वश में रखने वाला है।

चरथः – चर (गमनार्थक) + अथच् (भाव में) = चरथ। अर्थ है – चलना, विचरना।
'*युवं च्यवानं सनयं यथारथं*
पुनर्युवानं चरथाय तक्षथुः।
निष्टौग्र्यमूहथुरद्भ्यस्परि
विश्वेषत् तावां सवनेषु प्रवाच्या'
ऋ. १०.३९,४,
हे अश्विनीद्वय! तुम दोनों वृद्ध एवं चलने फिरने में असमर्थ भृगु पुत्र च्यवन ऋषि को (सनयं च्यवानम्) जीर्णरथके सदृश (यथा रथम्) पुनः तरुण कर चलने योग्य बनाने के लिए (पुनः चरथाययुवानम्) प्रयत्न किया (तक्षथुः) तथा तुग्र के पुत्र भुज्यु को समुद्र से बाहर निकाला (अद्भ्यःपरि निः ऊहथुः) तुम्हारे वे सभी कर्म (वां विश्वा ता) यज्ञों में प्रवचनीय हैं (सवनेषु प्रवाच्याः)।
अन्य अर्थ– हे राज प्रजापुरुषों (अश्विनौ)! तुम पुराने वृद्ध उपदेशक को (युवं सनयं च्यवानम्) विचरने के लिए (चरथाय) रथ की तरह (यथा रथम्) फिर युवा करो (पुनः युवानं तक्षयुः) वैश्य वर्ग को (तौग्रम्) व्यापार के लिए समुद्र के पार पहुंचाओ (अद्भ्यःपरिनिरूहथः) तुम दोनों

राजा तथा प्रजा को ये सभी कार्य (वां तां विश्वा इत्) राष्ट्र के सभी स्थानों में (सवनेषु) कहने चाहिए। (प्रवाच्या)
(२) ज्ञान सुख की प्राप्ति (३) धर्माचरण।
'कृधीन ऊर्ध्वाञ्चरथायजीवसे'
ऋ. १.३६,४. मै.सं. ४.१३.१, १९९.१०, का.सं. १५.१२, ऐ.ब्रा. २.२.२१, तै.ब्रा. ३.६.१.२.
(४) फल भोग, कर्मफल।
'पुरुषा चरथे दधे'
ऋ. ८.३३.८, अ. २०.५३.२,५७.१२, साम. २.१०,४७.
(५) जंगम सम्पत्ति तथा भोग्य अन्नादि सामग्री।
'आदित् सखिभ्यश्चरथं समैरत्'
ऋ. ३.३१.१५, तै.ब्रा. २.७.१३.३.

चरथां गर्भः - (१) चर एवं चेतन पदार्थों का गर्भरूप अर्थात् उनमें व्याप्त परमेश्वर अथवा (२) अग्नि, (३) जीव।

चरध्यै- चर + अध्यै (तुम् प्रत्यय के अर्थ में) चरध्यै। अर्थ (१) बहाने के लिए। (२) चलाने के लिए। (३) प्राप्ति के लिए -(दया.) (४) चलने के लिए।
'इष्यन्नर्णास्यपां चरध्यै'
ऋ. १.६१.१२, अ. २०.३५.१२, मै.सं. ४.१२.३, १८३.११ का.सं. ८. १६, नि. ६.२०.
हे इन्द्र! तू जलों को बहाने की कामना करता हुआ।
हे राजन्! जैसे सूर्य अन्तरिक्ष के जलों की प्राप्ति के लिए (अपाम् अर्णांसि चरध्यै) -(दया.)

चरमः - (१) अन्तिम।
'नहि वश्चरमं चन वसिष्ठः परिमंसते'
ऋ. ७.५९.३, साम. १.२४१.
(२) अधम संत्राण।
(३) अन्तिम लक्ष्य।
'अराणां न चरमः तदेषाम्'
ऋ. ८.२०.१४

चरमतः - अन्त से।
'स रक्षिता चरमतः स मध्यतः'
अ. १९.१५.३.

चरमाजा - (१) अन्तिम अज।
(२) अमर आत्म शक्ति
'चरमाजापमेचिरन्'
अ. ५.१८.११,

चर्ष्वान् - (१) प्रतिघात -दया (२) प्रतिघात करने वाला, (३) बदला लेने वाला।
'नव चर्ष्वांसम् नवतिं च बाहून्'
ऋ. २.१४.४

चरस् - भोग करना।
'दशगर्भं चरसे धापयन्ते'
ऋ. ५.४७.४

चर्कृत्य - (१) पुनः पुनः कर्तव्यों में कुशल, (२) समस्त करने योग्य कार्यों में कुशल।
'चर्कृत्यं मरुतः पृत्सु दुष्टरम्'
ऋ. १.६४.१४.
हे मरुतो! समस्त करने योग्य कार्यों में कुशल, संग्रामों में पराजित न होने वाले..।
(३) नए कर्म करने में समर्थ देह या वीर पुरुष।
'चर्कृत्यं ददथुर्द्रावयत्सखम्'
ऋ. १०.३९.१०
(४) सदा उपासना करने योग्य।
'चर्कृत्यं चरणीनाम्'
ऋ. ८.२४.२३, अ. २०.६६.२
(५) कृती (दारणार्थक) + यङ् + अच। जो अपने विरोधियों को सदा काटता है।
'चर्कृत्य ईड्यो वन्द्यश्चोपसद्यः'
अ. ६.९८.१.

चर्कृषत् - खेती करने वाला।
'गाय गा इवचर्कृषत्'
ऋ. ८.२०.१९

चर्चक - ऋग्वेद के अध्येता शिष्य को चर्चक कहा जाता है।

चर्चर - कर्मफल प्राप्त करने योग्य।
'पज्रेव चर्चरं जारं मरायु'
ऋ. १०.१०६.७.

चर्चा - ऋग्वेद के चार पाद हैं चर्चा, श्रावक, चर्चक और श्रवणीय। इन्हीं में चर्चा एक है। चर्चा का अर्थ है, केवल अध्ययन करना अर्थात् मुख द्वारा उच्चारण मात्र करना।

चर्म - (१) चर्म, (२) बिछाया वस्त्र।
'आरोह चर्म महिशर्म यच्छ'
अ. १२.३.१४.

चर्चूर्यमाण - सदा विचारणशील।

'अनुष्टुभमुन चर्चूर्यमाणम्'
ऋ. १०.१२४.९, ऐ.आ. २.३.५.५.

चर्मन् – (१) चर् (गत्यर्थक)+ मनिन् = चर्मन् । सर्वस्मिन् शरीरे गतं संलग्नं भवति (चर्म समस्त शरीर में संलग्न है) । अथवा चर्यते शरीरात् (शरीर से यह निकाला जाता है) । उद्धृत्तं भवति (२) चलने के निमित्त, (३) शरीर ।
आधुनिक अर्थ – (१) चमड़ा, (२) स्पर्शेन्द्रिय, (३) ढाल ।
'ससस्यचर्मन्त धिचारु पृश्नेः अग्रेरूप आरुपितं जबारूः'
ऋ. ४.५.७.
जिस आदित्य का दीप्तिमान मण्डल चारु (जवारू) सृष्टि की आदि में या पूर्व दिशा में (अग्रे) पृथिवी के निकट से (रूपः) निश्चल द्युलोक के ऊपर (ससस्य पृश्नेः अधि) चलने के निमित्त (चर्मन्) आरोपित हुआ (आरुपितम्) –सा.
अन्य अर्थ–जिस सोते हुए के भी शरीर पर (ससस्यपृश्नोः अधि) सुन्दर ऊर्ध्वरेतस्कं आरोपित हो (चारुजवारू आरूपितम्) । जैसे द्युलोक में आरोपण कर्त्ता परमात्मा का (पृश्नेः अधि सपः) उसी प्रकार वीर्य पति के शरीर में आरोपित है ।

चर्मम्नः – (१) चर्म खण्ड आदि का अभ्यासी (२) चर्म वेष्टित शरीर में कर्म और ज्ञान का अभ्यासी जीव ।
(३) चमड़ा बनाने वाला, रगड़ रगड़ कर मुलायम करने वाला ।
'साध्येम्यश्चर्मम्नम्'
वाज.सं. ३०.१५.

चर्षाणि – (१) चायिता, द्रष्टा, देखने वाला । चायृ (पूजा और निशामन अर्थों में)+ अनि = चर्षणि (चायृ का चर्ष आदेश) ।
शाकटायन के मत से ।
'कृष् + अनि = चर्षणि'(क् का च्)
(२) सर्वद्रष्टा सूर्य ।
'पिता कुटस्य चर्षणिः'
ऋ. १.४६.४, नि. ५.२४.
अच्छे बुरे किए कर्मों का (कुटस्य) द्रष्टा (चर्षणिः) सम्पूर्ण जगत का पालक पितृस्थानीय (पिता) सूर्य ।
(३) मनुष्य ।
'एवैश्च चर्षणीनां'
ऋ. ८.६८.४, साम. १.३६४, नि. १२.२१.
मनुष्यों के मार्गों से ।
(४) द्रष्टा ।
'जेता शत्रून् विचर्षणिः'
ऋ. २.४१.१२, अ. २०.२०.७, ५७.१०, तै.ब्रा. २.५.३.२.
इन्द्र शत्रुओं का विजेता और सर्वद्रष्टा है ।

चर्षणिप्रः – (१) मनुष्यों को पूर्ण करने वाला परमेश्वर ।
'यः चर्षणिप्रः वृषभः स्वर्विद्'
अ. ४.२४.३,

चर्षणिप्राः– (१) प्रजा को ऐश्वर्य से पूर्ण करने वाला –परमेश्वर ।
'विशः पूर्वीः प्रचरा चर्षणिप्राः'
ऋ. ७.३१.१०, अ. २०.७३.३, साम. १.३२८, २.११४३,
(२) दर्शन कराने वाले चक्षुओं को प्रकाश से पूर्ण करने वाला सूर्य ।
'महां इन्द्रो नृवदा चर्षणिप्रा'
ऋ. ६.१९.१, वाज.सं. ७.३९,तै.सं. १.४.२१.१, मै.सं. १.३.२४. ३८.१६, का.सं.४.८, ऐ.ब्रा. ५.१८.१४, कौ.ब्रा. २१.४.२६.१२, श.ब्रा. ४.३.३.१८, तै.ब्रा. ३.५.७.४.
लोगों की कामना पूर्ण करने वाला इन्द्र या सूर्य ।
(३) मनुष्यों का पालन करने वाला । –(दया.)
(४) किसानों या विद्वानों के मनोरथ को पूर्ण करने वाला ।
'आवृत्रहेन्द्रः चर्षणिप्राः'
ऋ. १.१८६.६.

चर्षणीधृत् – मनुष्यों को धारण करने वाला इन्द्र ।
'इन्द्रस्य चर्षणीधृतः'
ऋ. ३.३७.४, अ. २०.१९.४, मै.सं. ४.१२.३, १८४.६,

चर्षणीधृत – (ब.व.) चर्षणीनां मनुष्यानां धारयिता (मनुष्यों को धारण करने वाला) । अर्थ– (२)

मनुष्यों को धारण या पालन करने वाले विश्वेदेवा ।

'ओमासश्चर्षणीधृतः

विश्वेदेवास आगत'

ऋ. १.३.७, वाज.सं. ७.३३, ३३.४७, तै.सं. १.४.१६.१, मै.सं. १.३.१८, ३७.१, का.सं. ४.७, कौ.ब्रा. २६.१०, शां.ब्रा. ४.३.१.२७, ऐ.आ. १.१.४.११ शा.श्रौ.सू. ७.१०.१४, १०.९.१६, आप.श्रौ.सू. १२.२८.४, मा.श्रौ.सू. २.४.२.३५, नि. १२.४०.

मनुष्यों के धारण या पोषण करने वाले तथा अपने उपकारों के द्वारा उनके रक्षिता विश्वदेव आवे ।

चर्षणीनां राजा– (१) मनुष्यों के बीच में राजा, (२) दर्शन शील इन्द्रियों का राजा ।

'यो राजा चर्षणीनाम्'

ऋ. ८.७०.१, अ. २०.९२.१६, १०५.४, साम. १.२७३, २.२८३, ऐ.आ. ५.२.४.२, आश्व.श्रौ.सू. ७.४.४., शां.श्रौ.सू. १८.१०.७, वै.सू. ३९.१२.

चर्षणीसह् – (१) सब मनुष्यों को जीतने वाला ।

' अस्मभ्यं चर्षणीसहम्

सस्निं वाजेषु दुष्टरम्'

ऋ. ५.३५.१

(२) सब मनुष्यों को वश करने में समर्थ ।

'हर्यश्वं सत्यपतिं चर्षणीसहम्'

ऋ. ८.२१.१०, अ. २०.१४.४, ६२.४.

'चर्कृत्यमिन्द्रमिव चर्षणीसहम्'

ऋ. १.११९.१०.

'गां न चर्षणीसहम्'

ऋ. ८.१.२. अ. २०.८५.२, साम. २.७.११,

चरथ – पशु ।

चरा– (१) विचरना, घूमना, (२) कर्मफलों का उपभोग ।

'विश्वंजीवं प्रसुवन्ती चरायै'

ऋ. ७.७७.१.

चराथ – पशु के हृदय आदि का अथवा पशुजन्य घृतादि का हवि ।

चरथा– चर + अथक् = चराथ + टाप् = चराथा (दीर्घ छान्दस है) । सायण ने चरथ का अर्थ पशु और चारथ का अर्थ पशु के हृदय आदि से बना हवि किया है । अतः सायण का अर्थ पश्वाहुत्या (पशु की आहुति अर्थात् पशु जन्य घृतदुग्धादि की आहुति) है ।

चराचर– (१) चर और अचररूप संसार

'दिवि पन्थाश्चराचरः'

ऋ. १०.८५.११, अ. १४.१.११.

(२) चराचर प्राणी ।

'चराचरेभ्यः स्वाहा'

वाज.सं. २२.२९, तै.सं. १.८.१३.३, मै.सं. ३.१२.१०,१६३.१२. का.सं. १५.३.

चरित – (१) किया हुआ व्यापार (२)चालान किया गया माल ।

'शुनं नो अस्तु चरितमुत्थितं च'

अ. ३.१५.४.

चरितवे – उठकर काम पर जाने के लिए ।

'जिह्मश्ये चरितवे मघोनी'

ऋ. १.११३.५

चरित्र – (१) चरित्र, चाल चलन, (२) शील, (३) आगे बढ़ने वाला कदम ।

'चरित्रं हि वे रिवा च्छेदि पर्णम्

आजा खेलस्य परितक्म्यायाम्'

ऋ. १.११६.१५

रात्रि में अन्धकारमयी अज्ञान दशा में (परितक्म्यायाम्) भोगविलास की क्रीड़ा करने वाले राजा का (खेलस्य) शील, चरित्र या आगे बढ़ने वाला कदम (चरित्रम्) पक्षी के पंख के समान (वेः पर्णम् इव) बढ़ जाता है । (अच्छेदि) ।

चरिष्णु – चर् + इष्णुच् । अर्थ–चरणशील ।

चरिष्णुधूमः – (१) फैलने वाले धूम वाला –अग्नि । (२) विश्व भर में व्यापक संचालक शक्ति वाला ।

'चरिष्णुधूममगृभीतशोचिषम्'

ऋ. ८.२३.१,साम.१.१०३.

चरिष्णूमिथुनौ – (१) साथ साथ चलने वाले सूर्य और वैश्वानर अग्नि का जोड़ा ।

'यदा चरिष्णू मिथुनावभूताम् ।

आदित् प्रापश्यन् भुवनानिविश्वा'

ऋ. १०.८८.११, मै.सं. ४.१४.१४, २३९.१८, नि. ७.२९.

जब ये दोनों साथ–साथ चलने वाले सूर्य तथा

वैश्वानर अग्नि एक जोड़े के समान प्रादुर्भूत हुए उसके बाद से ही उन दोनों को सभी जीवों ने प्रकर्ष पूर्वक देखा ।

चरु – चि (चुनना, चयन करना) + डरु = चरु (डित् होने से टि का लोप) ।
अथवा – चर् + उ = चरु
अर्थ – (१) मिट्टी का बर्तन जिसमें जल रखा जाता है–चरुई
'समुच्चरन्ति अस्मात्'
आपः (इसमें से जल निकलता है) ।
(२) हव्यपाक–हवनीय पदार्थ ।
(३) चर्यते भक्ष्यते (जो खाया जाता है) । हंड़िया, चरुई ।
'तपुर्यस्तु चरु रग्निवां इव'
ऋ. ७.१०४.२, अ. ८.४.२, का.सं. २३.११, नि. ६.११.
वह दण्डित या राक्षस आगे में पड़े हंड़िया की तरह उहके या शुद्ध होकर प्रयत्न शील हो ।
(४) अन्तरिक्ष में दीख पड़ने वाला मेघ –
(५) सत्यज्ञान का ढंकना –(दया.)
'सनो वृषन्नमुं चरुं सत्रादावन्नपा वृधि'
ऋ. १.७.६, अ. २०.७०.१२, साम. २.९७१.
हे वर्षा बरसाने वाले इन्द्र या सत्य वर्षक परमेश्वर ! आप के महान् उपकारों का प्रतिकार नहीं हो सकता । अतः आप अन्तरिक्ष के इस दृश्यमान मेघ को या सत्य ज्ञान के ढकने को उत्पादित करें ।
आधुनिक अर्थ– (१) चावल का पिण्ड, (२) हंड़िया, (३) चरुई ।
(६) आचरण ।
'असिं सूनां नवं चरुम्'
ऋ. १०.८६.१८, अ. २०.१२६.१८.
(७) ओदन् (८) परमेष्ठी प्रजापति, (९) रेतस् ।
ओदनो हि चरुः
श.ब्रा. ५.४.२.१
'परमेष्ठी वा एष यदोदनः'
तै.ब्रा. १.७.१०.६
'प्रजापतिर्वाओदनः'
श.ब्रा. १३.३.६.७
'ईतो वा ओदनः'
श.ब्रा. १३.१.१.४
'अपूपवान् क्षीरवान् चरुरेह सीदतु'
अ. १८.४.१६, २४.
(१०) भोग योग्य कर्मफल ।
'सनो वृषन्, अमुंचरुम्'
ऋ. १.७.६, अ. २०.७०.१२, साम. २.९७,१.

चलाचलासः– (ब.व.) चल + अचल = चलाचल । चलाचल + जस् = चलाचलासः । अर्थ – (१) चल और अचल, (२) दिनरात का विशेषण । दिनरात चल इसलिए है कि वे अस्थायी हैं और अचल इसलिए कि वें नियमपूर्वक एक दूसरे के बाद आते हैं ।
'तस्मिन् साकं त्रिशतान शंकवः
अर्पिताः षष्टिर्न चलाचलासः'
ऋ. १.१६४.४८, नि. ४.२७.
उस काल चक्र में वर्ष के ३६० दिन रूपी कील ठोके गए हैं । वे दिन रात चल और अचल दोनों है (चला चलासः) ।

चषाल– (१) एक वृक्ष विशेष, (२) स्तम्भ का मुख्य भाग, (३) राजा का प्रधान पद ।
'चषालं ये अश्वयूपाय तक्षति'
ऋ. १.१६२.६, वाज.सं. २५.२९, तै.सं. ४.६.८.२, मै.सं. ३.१६.१, १८२.८, का.सं. (अश्व.) ६.४.
(४) यूप का छल्ला या अग्रभाग, (५) राजा का अग्रासन ।

चषालवत् – (१) भोग करने योग्य नाना प्रकार के ऐश्वर्यों से सम्पन्न (२) सुन्दर छल्लों से युक्त यज्ञयूप, (३) यज्ञयूप के ऊपर लगाए जाने वाला सुवर्ण का छल्ला ।
'चषाल वन्तः स्वरवः पृथिव्याम्'
ऋ. ३.८.१०, तै.ब्रा. २.४.७.११, आप श्रौ.सू. ७.२८.२.

च्यवतानः – दानशीलपुरुष ।
'सहस्रा मे च्यवतानो ददानः'
ऋ. ५.३३.९.

च्यवन – च्यु + णि + ल्युट् च्यावन (णि अन्तर्हित है) । च्याव + युच् = च्यावन
(१) च्यावयिता स्तोमानाम् (स्तोमों का प्रवर्तयिता) (२) एक ऋषि का नाम जो भृगु के पुत्र थे ।
च्युधातु गत्यर्थक है

(३) मन्त्रद्रष्टा - दया. ।
(४) बल वीर्य का नाशक ज्वर ।
'नमो रूराय च्यवनाय नोदनाय धृष्णवे'
अ. ७.११६.१.

च्यवना - (ब.व.) (१) गतिशील पदार्थ, (२) सूर्यलोक आदि ।
'येनेमा विश्वा च्यवनाकृतानि'
ऋ. २.१२.४, अ. २०.३४.४.

च्यवान - व्युत्पत्ति के लिए ।
(१) भृगु पुत्र च्यवन ऋषि- (२) उपदेशक, द्रष्टा-(दया.)
'युवं च्यवानं सननं यथारथम्
पुनर्युवानं चरथाय तक्षथुः'
ऋ. १०.३९.४, नि. ४.१९.
हे अश्विनीद्वय, तुम दोनों ने वृद्ध एवं चलने फिरने से असमर्थ भृगुपुत्र च्यवन ऋषि को (सनयं च्यवानम्) जीर्ण रथ के सदृश (यथा रथम्) पुनः तरुण कर चलने के योग्य बनाने के लिए (पुनः चरथाय युवानम्) प्रयत्न किया (तक्षथुः) ।
हे राजा एवं राज पुरुषो ! (अश्विनौ) तुम पुराने वृद्ध उपदेशक को (युवं सनयं च्यवानम्) विचरने के लिए (चरथाय) रथ की तरह फिर युवा करो । -(दया.)
(३) इस लोक को छोड़कर जाने वाला, (४) वृद्ध पुरुष ।
'पुनश्च्यवानं चक्रथुर्युवानम्'
ऋ. १.११८.६

चाकन् - (१) चायन् ,पश्यन् (भय या उत्सुकता से देखता हुआ) (२) कामयमान (कामना करता हुआ) ।
चाय + शतृ = चायन् = चाकन् (च् का क)
चक (इच्छा करना) + शतृ = चकन = चाकन् ।
'वने न वा यो न्यधायि चाकन्
शुचिर्वां स्तोमो भुरणावजीगः ।
यस्येदिन्द्रः पुरुदिनेषु होता
नृणां नर्यो नृतमः क्षपावान् '
ऋ. १०.२९.१, अ. २०.७६.१,
हे पोषक या धारक अश्विनीद्वय (भुरण्यौ), जैसे वन में (वने न) पक्षी द्वारा वृक्ष पर, (रखा हुआ बच्चा (वायः न्यधायि) भय या उत्सुकता से दिशाओं को देखता हुआ (चाकन्) रहता है उसी प्रकार नीड़ रूपी हममें स्थित पवित्र (शुचिः) आप दोनों का (वाम्) स्तोत्र (स्तोम) है जिसका (यस्य) मनुष्यों में श्रेष्ठ राजा या शूरों में श्रेष्ठ शूर (नृणां नृतमः) तथा मनुष्यों का उपकारी (नर्यः) सोम भागी इन्द्र भी ललचता है (क्षपावान् इन्द्र इत्) बहुत दिन (पुरुदिनेषु) नित्य यह स्तोत्र मेरा हो-ऐसा कहने वाला या आह्वाजा होता है । ऐसा स्तोत्र जिसके लिए इन्द्र भी ललचता है - आप अश्विनी द्वय के लिए नित्य प्रयुक्त होता है आप दोनों के निकट जाता है (अजीगः) ।
अन्य अर्थ- हे सबके पालन करने वाले स्त्री पुरुषो (भुरण्यौ) ! जैसे इधर उधर देखने वाला या भोजनादि की इच्छा करता हुआ पशु पक्षी किसी वन में रखा हुआ होता है (चायन् वायः वनेन न्यधायि) एवं सुपर्ण परमेश्वर का पुत्र पवित्र वेद तुम्हें वन में स्थापित किया हुआ प्राप्त होता है । (शुचिः स्तोम वाम् अजीगः) जिसके लिए कल्याणकारी (यस्य नृणानृतमः नर्यः) और प्रलयरात्रि को करने वाला परमेश्वर ही (क्षपावान् इन्द्र इत्) बहुतदिनों के व्यतीत हो जाने पर प्रलय के पश्चात् प्रदाता है (पुरुदिनेषु होता) । कामनावान के अर्थ में प्रयोगः
'उक्थेष्विन्नु शूर के येषु चाकन्'
ऋ. २.११.३

चाक्ष्म - (१) व्यक्तवाक्-(दया.) (२) सबको स्पष्ट आज्ञा देने वाला, (३) उत्तम वाणी से उपदेश करने वाला ।
'चाक्ष्मो यद्वाजं भरते मती धना'
ऋ. २.२४.९

चाक्षुष - अपराधों को भली भांति परखने वाला ।
'सुयामन् चाक्षुष'
अ. १६.१७.७

चाक्षुषीवर्षा - परमेश्वर के चक्षु रूप सूर्य से उत्पन्न वर्षा ।
'वर्षाश्चाक्षुष्यः'
वाज.सं. १३.५६,श.ब्रा.८.१.२.२

चाण्डाल- चण्डता से युद्ध करने वाला । प्रचण्ड पुरुष ।

'वायवे चाण्डालम्'

वाज.सं. ३०.२१, तै.ब्रा. ३.४.१.१७.

चातयति - नाशयति (नाश करता है)।

चातयामसि - चातयामः (दूर करते हैं) नष्ट करते हैं।

'शिरिम्बिठस्य सत्वभिः
तेभिष्ट्वा चातयामसि'

ऋ. १०.१५५.१, नि. ६.३०.

हे दरिद्रते ! हम तुझे शिरिम्बिठ ऋषि के उन प्रसिद्धजल रूपी सत्वों से नष्ट कर देंगे। या मेघ से नष्ट कर देंगे।

चाति - नाश करना।

चातुर्मायानि - चातुर्मास में किये जाने योग्य वैश्वदेव, वरुण प्रघास साकमेध।

'चतुर्होतारे आप्रियः
चातुर्मास्यानि नीविदः'

अ. ११.७.१९

चाय - इच्छा करना, देखना, हिन्दी का चाहना धातु चाय का ही बिगड़ा रूप है।

चायमानः - (१) सत्कार करता हुआ।

'अभ्यावर्तिने चायमानाय शिक्षन्'

ऋ. ६.२७.५

(२) ऐश्वर्य की वृद्धि करता हुआ (३) वृद्धियुक्त।

'पशुष्कविरशयत् चायमानः'

ऋ.७.१८.८

चायु - (१) सत्कार करने वाला (२) सत्कार करने योग्य।

'यज्ञेषु ये उ चायवः'

ऋ. ३.२४.४

चारथ गण- विचरण करने वाला सैन्यगण।

'अधयच्चारथे गणे
शतमुष्ट्रां अचिक्रदत्

ऋ. ८.४६.३१

चारु- चर् (गत्यर्थक) + उण् = चारु (उपधा की वृद्धि)। अर्थ है - (१) चलने वाला, चरण शील, (२) त्वष्टा अग्नि का विशेषण, (३) अनवस्थित (४) पवित्र, (५) चरति चित्ते इति चारुः रूपों (जो चित्त में चरण करता है वह चारु अर्थात् सुन्दर है) (६) चर् + ञुण = चारु, (७) रुच (दीप्त्यर्थक से पृषोदरादिवत् वर्ण विपर्यय से चारु शब्द बना)।

'आविष्ट्यो वर्धते चारुरासु
जिह्मानां मूर्ध्वः स्वयशा उपस्थे।'

प्रकाशमान या प्रकाशविस्तारक त्वष्टा अग्नि इन क्रियाओं में चरण शील (आसुचारुः) तथा दूसरे का आश्रय न लेने वाला (स्वयशा) अपने स्थान में (उपस्थे) कुटिल मनुष्यों या कुटिल इन्धनों के ऊपर सीधे होकर जाता है।

अन्य अर्थ-प्रकाश विस्तारक (आविष्ट्यः) सुमनोहर अग्नि (चारुः) इन यज्ञ क्रियाओं में बढ़ती हैं (आसु वर्द्धते)। यह अग्नि कुटिल वस्तुओं के मध्य में भी उर्ध्वगामी है।

आधुनिक अर्थ- (१) मन के अनुकूल (२) प्रिय, (३) पवित्र, (४) मनोज्ञ।

(८) सर्वत्र विद्यमान्, प्रभु।

'यज्ञश्चभूत विदथे चारुरन्तमः'

ऋ. १०.१००.६

(९) उत्तम चलने वाला रथ।

(१०) रथादि चलाने वाला अग्नि।

(११) उत्तम संचालक।

'राजा विशामतिथिश्चारुरायभवे'

ऋ. २.२.८

चारुतमः - (१) सबसे अधिक प्रशंसनीय, (२) पवित्रतम।

'दस्मस्य चारुतममसि दंसः'

ऋ. १.६२.६

दुःखों के नाशक विद्युत् इन्द्र का यही सबसे प्रशंसनीय कार्य हैं।

चारुनाम - (१) उत्तम वेग से चलने वाला जल, (२) उत्तम स्वरूप (३) सुन्दर नाम, कीर्ति यश (४) उत्तम व्यापक शासन।

'ऋभुश्चक्र ईड्यं चारुनाम'।

ऋ. ३.५.६

चारुप्रतीक - (१) उत्तम उपक्रम वाला (२) उत्तम गुण कर्म स्वभावों से उत्तम रीति से कार्यारम्भ करने वाला, (३) उत्तम गुणों से प्रतीत। प्रसिद्ध (४) अग्नि।

'चारुप्रतीक आहुतः'

ऋ. २.८.२

चाष - चष् (भक्षणार्थक) + अण् = चाष। अर्थ (१) बुभुक्षा।

'चाषेण किकिदीविना '
ऋ. १०.९७.१३, वाज.सं. १२.८७. मै.सं. २.७.१३, ९४.७, का.सं. १६.१३.
(२) खाने योग्य पदार्थ, (३) भुक्त पदार्थ ।
'चाषान् पित्तेन'
वाज.सं. २५.७,मै.सं. ३.१५.९,१८०.५.
(४) लोवा नामक पक्षी ।
'अग्नीषोमाभ्यां चाषान् '
वाज.सं. २४.२३, मै.सं. ३.१४.४,१७३.५.

चिकित्र- (१) प्राप्ति, (२) कान्ति ।
'आते चिकित्र उषसाभिवेतयः'
ऋ. १०.९१.४

चिकित्वन्मनाः - विज्ञानयुक्त विद्वानों के समान ज्ञान एवं मननशक्ति वाला ।
'चिकित्वन्मनसं त्वा देवं मर्तास ऊतये'
ऋ. ५.२२.३

चिकित्वान् - (१) चेतनवान्, जानने वाला, ज्ञान ।
'मूरा अमूरा न वयं चिकित्वो
महित्वमग्ने त्वमङ्ग वित्से'
ऋ. १०.४.४, नि. ६.८.
हे अमूढ़ चेतनावान् अग्ने ! हम मूढ़ भला तेरा महत्त्व क्या जाने ? तू ही अपना महत्व जानता है ।
अन्य अर्थ- हम मूढ़ विद्यार्थी जगत्पिता का महत्त्व क्या समझें । हे अमूढ़ मित्र ! आप इसका महत्व जानते हैं ।
(२) अग्नि का वाचक ।
'आ च वह मित्र महश्चिकित्वान् '
ऋ. १०.११०.१, अ. ५.१२.१, वाज.सं. २९.२५, मै.सं, ४.१३.३,२०१.९, का.सं. १६.२०, तै.ब्रा. ३.६.१,नि. ८.५.
हे मित्रों के स्तुत्य (मित्रमहः) तथा चेतनावान् अर्थात् यजमानों की स्तुतियों को समझने वाला (चिकित्वान्) देवताओं को बुला या उन्हें हवि पहुंचा (च आवह) पुनः ।

चिकितुष् - (१) जानने वाला, ज्ञानवान् ।
'सुविज्ञानं चिकितुषे जनाय '
ऋ ७.१०४.१२, अ. ८.४.१२.
'अपपित्वं चिकितुर्न प्रपित्वम्'
ऋ. ३.५३.२४
(२) क्रान्तदर्शी विद्वान् ।
'अचिकित्वान् चिकितुषः चिदत्र'
ऋ. १.१६४.६
अज्ञानी मैं ज्ञानवान् के समीप ।
(३) प्रशस्तविद्य, विद्वान् ।

चिकितुषी - ज्ञानवती ।
'चिकितुषी प्रथमा यज्ञियानाम्'
ऋ. १०.१२५.३

चिकिते- (१) जाना जाता है -सा. (२) निवास करता है-दया. ।
'संचित्रेण चिकितेरंसु भासो'
ऋ. २.४.५, नि. ६.१७.
वह अग्नि अपनी विचित्र आभा से युक्त हो द्युलोकादि या अग्नि होत्र जैसे स्थानों में जाना जाता है (रसु चिकिते) ।
अन्यअर्थ-वह विद्वान् अद्भुत् तेज के साथ रमणीयस्थानों में निवास करता हैं । (रंसु चिकिते) -(दया.) ।

चिकेतत् - जानता है जाने ।
'इहब्रवीतु य उतच्चिकेतत् '
ऋ. १.३५.६
जो भी इस रहस्य को जाने वह इस विषय में सबको उपदेश करे ।

चिच्चिकः - ज्ञान की कामना करने वाला पुरुष ।
'वृषारवाय वदते यदुपावंते चिच्चिक '
ऋ. १०.१४६.२, तै.ब्रा. २.५.५.६,

चित्- अनेक अर्थों में प्रयुक्त ।
(१) पूज्य अर्थ में ।
'आचार्यश्चित् इदं ब्रूयात्'
आचार्य ही ऐसा कहे और कौन कह सकता है ।
(२) 'ही' अर्थ में ।
ओकश्चित्
(उसी घर में)
(३) भी अर्थ में ।
'आध्रश्चित् यं मन्यमानः तुरश्चित् द्र'
ऋ. ७.४१.२, अ. ३.१६.२, वाज.सं. ३४.३५, तै.ब्रा.२.८.९.७, आप. मं.पा. १.१४.२, नि. १२.१४.
जिस भग (आदित्य) को दरिद्र भी पूजता और यम भी (तुरश्चित्) (४) चित्त ।

'नू चित् तधिष्व मे गिरः'
ऋ. १.१०.९.
हे इन्द्र ! मेरी स्तुतियों को शीघ्र चित्त में धारण कर ।
पुनः-
'यो विश्वतः सुप्रतीकः सुदृङ्ङसि
दूरेचित् सन्तडिदिवातिरोचसे ।
रात्र्यश्चिदन्धो अतिदेवपश्यसि
अग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ।'
ऋ. १.९४.७
हे अग्ने ! तू सर्वतः शोभनदर्शन (सुप्रतीकः) तथा समान रूप से देखा जाता है । (संदृक्), दूर पड़ता हुआ भी (दूरे चित् सन्) तड़ित के समान निकट ही अतिदीप्त जान पड़ता है । (तड़ित् इव अति रोचसे) और राज का भी जो अन्धकार है, (रात्र्याः चित् अन्धः) उसे भी निकालकर तू देखता है (अतिपश्यसि) । हे देव, तेरी मैत्री में स्थित हम किसी से हिंसित न होंवे (तव सख्ये वयं मा रिषाम) ।
(५) इव, जैसा, तरह, सदृश् ।
(६) अभिपूजित अर्थ में ।
'प्रो ष्वस्मै पुरोरथमिन्द्राय शूषमर्चत ।
अभीके चिदु लोककृत्
सङ्गे समत्सु वृत्रहा
अस्माकं बोधि चोदिता
नभन्तामन्यकेषां
ज्याका अधिधन्वसु '
ऋ. १०.१३३. अ. २०.९५.२, साम. २.११५१, तै.सं. १.७.१३.५, मै.सं. ४.१२.४,१८९.८, तै.ब्रा. २.५.८.२.
हे स्तोताओं, प्रकृष्ट तथा प्रशस्त स्तुतियों से (प्र उ सु) इस इन्द्र के रथ के आगे खड़े होकर इसके बल की स्तुति करो (शूषम् अर्चत्) । किस लिए ? संग्राम काल में (संगे) संग्रामों में अभिपूजित लोककर्त्ता या स्थान कर्ता (लोककृत् चित्) वृत्र का वध करने वाला इन्द्र होगा (वृत्रहा उ)।
हे इन्द्र ! तू हमारा अनुज्ञाता है । (भगवन् इन्द्र ! अस्माकं चोदिता) अतः तू हमारा ध्येय समझ (बोधि) । अन्य शत्रुओं के धनुषों मे चढ़ायी मौर्वी टूट जाय (अन्यकेषाम् अधिधन्वसु ज्याका नभन्ताम्) ।
अपि (भी) के अर्थ में
'अश्विना वेह गच्छतं
ना सत्या मा विवेनतम्
तिरश्चिद् अर्यमा परि
वर्तियतिमदाभ्या माध्वी ममश्रुतं हवम् ।'
ऋ. ५.७५.७.
हे प्रत्यक्षभूत नासत्य देवो ! (नासत्यौ) अश्वनीद्वय (अश्विना), तुम दोनों इस यज्ञ में अप्रतिबद्धगति से सोम पीने के लिए आओ (अदाभ्या आगच्छतम्) और विगत काम न होओ (मा विवेनतम्) तथा प्राप्त या अप्राप्त स्थान में भी स्थिर होकर तुम दोनों (तिरश्चित्) समर्थ, शीघ्र रथगति या दैवगति से (अर्यया) परिवर्तन कर आओ (परिवर्तिः यातम्) ।
सायण ने इसका अर्थ दूर देश से भी हमारे घर पर आओ (तिरश्चित् परिवर्ति यातम्) किया है । हे मधुर और सोम मिश्रित पेय वाले । (माध्वी) तुम मेरी पुकार सुनो (मम हवं श्रुतम्) ।
पुनः, काशि, उलूखल ।
(७) पशु नाम में चित् का प्रयोग ।
'चिदसि मनासि धीरसि'
हे गौ अर्थात् वेदवाणी । तू चित् है क्योंकि तुझ में सभी भोग संचित हैं (चिताः त्वयि भोगः) या 'सर्व चेतयसे ज्ञायसे '
(८) संज्ञान अर्थ में चित् + क्विप् = चित् । अर्थ है ज्ञाता ।
(९) एव अर्थ में ।
त्यंचित् (उसी को)
(१०) मर्म ।
(११) चेतनावान् जीव ।
'चिते तद्वां सुराधसा रातिः सुमतिरश्विना'
ऋ. १०.१४३.४
(१२) जिस प्रकार, जैसे ।
'कुमारश्चित् पितरं वन्दमानम्'
ऋ. २.३३.१२
'परशुं चिदं वितपति
शिम्बलं चिद् विवृश्चति ।'
ऋ. ३.५३.२२

चित - चि + क्त (१) इन्धन युक्त अग्नि (२) चिता, (३) चेतनायुक्त जीव
'यथाकृतम् अभिमित्रं चितासः'
ऋ. ७.१८.१०

चिन्तनी - (१) ज्ञान उत्पन्न कराने वाली, (२) बुद्धिमती ।
'वनेमतद्धोत्रया चितन्त्या'
ऋ. १.१२९.७
हम लोग ज्ञान उत्पन्न कराने वाली वाणी द्वारा (चितन्त्या होत्रया) उस परमश्रेष्ठ ब्रह्मपद को प्राप्त करें (तत् वनेम) ।

चितयन् - भय खाता हुआ ।
'प्रवद्भिरिन्द्रात् चितयन्त आयन्'
ऋ. १.३३.६
परम ऐश्वर्यवान् शत्रुघाती इन्द्र या राजा से भय खाते हुए (इन्द्रात् चितयन्तः) नीचे उतरने वाले मार्गों से (प्रवद्भिः) जल धाराओं के समान भाग जाते हैं (आयन्) ।

चित्त - चित् (संज्ञान अर्थ में) + क्त = चित्त । अर्थ है (१) प्रज्ञान, (२) जानने वाला ।
आधुनिक अर्थ - (१) देखा गया, (२) विचारा गया, (३) इष्ट, (४) चिन्ता, (५) ध्यान, (६) इच्छा, (७) लक्ष्य (८) मन, (९) हृदय, (१०) बुद्धि । (११) तर्कशक्ति ... ।
'अमीषा चित्तं प्रतिलोभयन्ती'
ऋ. १०.१०३.१२, अ. ३.२.५, साम. २.१२११, वाज.सं. १७.४४, नि. ९.३३.
ग्रहण करने वाली-प्रजा ।
'वयाकिनं चित्त गर्भासु सुस्वरुः'
ऋ. ५.४४.५

चितयन्ती - ज्ञान देने वाली ।
'पावकया यश्चियन्त्या कृपा'
ऋ ६.१५.५, वाज.सं. १७.१०, मै.सं. २.१०.१, १३१.१५, का.सं. १७.१७. श.ब्रा. ९.१.२.३०.

चित्तस्यमाता - ज्ञान करने के समान रूप अन्तःकरण को बनाने वाली आकृति देवी, ।
'चित्तस्यमाता सुहवा नो अस्तु'

चित्पतिः - चेतनाओं का पति परमेश्वर ।
'चित्पतिर्मापुनातु'
वाज.सं. ४.४, श.ब्रा. ३.१.३.२२, आप श्रौ. सू. १०.७.१२.

चित्रक्षत्रः - आश्चर्यकारी वीर्यवाला और राज्य का स्वामी ।
'चित्रक्षत्र चित्रतमं वयोधाम्'
ऋ. ६.६.७
'चित्रं ग्राभं सं गृभाय'
ऋ. ८.८१.१, साम. १.१६७, २.७८, व.पू.ता. उप. १.४.

चित्रतम - सबसे अधिक संग्रह करने योग्य ।

चित्रहशीकं - आश्चर्य से देखने योग्य ।
'अयं विदत् चित्रदृशीकमर्णः'
ऋ. ६.४७.५

चित्रा - एक नक्षत्र का नाम ।
'चित्राशिवा स्वाति सुखो मे अस्तु'
अ. १९.७.३

चित्य - रचना ।
'चिखा चित्यं हन्वोः पूरुषस्य'
अ. १०.२.८.

चित्रध्रजति - ध्रजति का अर्थ वेग है । अतः चित्र ध्रजति का अर्थ हुआ-अद्भुत वेगवान् गति वाला ।
'चित्रध्रजतिररतिर्यो अक्तोः'
ऋ. ६.३.५, मै.सं. ४.१४.१५, २४०.१२.

चित्र - चाय + क्रप् = चित्रा =(चाय का चि और तुक् का आगम) अर्थ - (१) = पूजनीय, (२) विचित्र ।
'यदिन्द्र चित्र मेहना अस्तित्वादातमद्रिवः'
ऋ. ५.३९.१, साम. १.३४५, २.५२२, पंच.ब्रा. १४.६.४, नि. ४.४.
हे इन्द्र, जो तेरा पूजनीय या विचित्र धन है और जो तेरे द्वारा देने योग्य है तथा बढ़ने वाला है ।
(३) उषा - प्रकाश का विशेषण ।
'चित्रः प्रकेतो अजनिष्ट विभ्वा '
ऋ. १.११३.१, साम. २.१०९९, नि. २.१९.
यह प्रकाश चयनीय या पूजनीय है । अन्धकारावृत सभी पदार्थों का प्रकाशक तथा सर्वत्र व्याप्त होकर प्रकट हुआ (विभ्वा अजनिष्ट) (४) चित् रूप में रमण करने वाला उत्तम ज्ञानवान् पुरुष ।
(५) समस्त संसार का संचय करने वाला -सूर्य ।
' चित्रः चिकित्वान् महिषः सुपर्णः '

ऋ. १३.२.३२, वै.सू. ३३.८.

(६) सबको चेतना या ज्ञान देने वाला प्रभु (चित् + र्) (समस्त जगत् में पूज्य आश्चर्यजनक शक्ति वाला ।

' चित्र इद्राजा राजकाइदन्यके '

ऋ. ८.२१.१८.

(८) चित् स्वरूप में रमण करने वाला आत्मा ।

चित्रभानुः – (१) आश्चर्यजनक दीप्तिवाला इन्द्र (२) अग्नि ।

'श्रूया अग्निं श्चित्रभानुर्हवं मे '

ऋ. २.१०.२

इन्द्र के अर्थ में –

'इन्द्रायाहि चित्रभानो '

ऋ. १.३.४. अ. २०.८४.१, पंच. ब्रा. १४.२.५, ऐ.आ. १.१.४.९, शां .श्रौ.सू. ७.१०.१३, वै.सू. ३१.१६,३३.१४,४०.११.

(३) चित्र विचित्र नाना रंगों की किरणों वाला सूर्य ।

'विभक्तासि चित्रभानो
सिन्धोरूर्मा उपाक आ
सद्योदाशुषे क्षरसि '

ऋ. १.२७.६, सामं. २. ८४८

हे सूर्य ! तू समुद्र के तरंग के उठने पर समीप ही जलों को जलकणों के रूप में विभक्त कर देता है और उस सूक्ष्म जल को शीघ्र ही वर्षा रूप में बरसा देता है ।

चित्रयाम – अद्भुत वेग से जाने वाला ।

' तं चित्रयामं हरिके शमीकहे '

ऋ. ३.२.१३.

चित्ररथ – (१) पुण्यगन्धाविराट् । का वत्स, (२) यह शरीर ।

'तस्या श्चित्ररथः सौर्यवर्चसो वत्स आसीत् '

ऋ. ८.१० (५) ६

चित्र्य– आश्चर्यजनक ।

'आ चित्र चित्र्य भरा रयिं नः '

ऋ, ७.२०.७

चित्रराती– (द्वि.व.) (१) अद्भुत दान देने वाले अश्विद्वय (२) स्त्री पुरुष ।

'बभूवतुर्गृणते चित्रराती '

ऋ. ६.६२.५

चित्रवर्हिष् – (१) जिसके प्रकाश से अन्तरिक्ष विचित्र हो जाता है । सूर्य का विशेषण (२) अद्भुत वृद्धिशील कर्मों का ऐश्वर्यों ओर प्रजाजनों से या लोक-समूह सें युक्त तेजस्वी विद्वान् ।

'आपूषन् चित्र बर्हिषम्
आधृणे धरुणं दिवः
आजा नष्टं यथापशुम् '

ऋ. १.२३.१३

चित्रसेनः – नाना प्रकार की सेनाओं का स्वामी ।

'चित्रसेना इषुबला अमृधाः '

ऋ. ६.७५.९, वाज.सं. २९.४६, तै.सं. ४.६.६.३, मै.सं. ३.१६.३, १८६.१४, का.सं. (अश्व.) ६.१

चित्रा – (१) चैतन्य देह में रहने वाली आत्मा ।

'अश्वा न चित्रा वपुषीव दर्शता '

ऋ. १०.७५.७

(२) आश्चर्य शक्ति शालिनी उषा कया ईश्वरीय शक्ति ।

'अश्वे न चित्रे अरुषि '

ऋ. १०.३०.२१

हे व्यापक (अश्वे) आश्रचर्यशक्ति शालिनि (चित्रे) अतिदीप्तिमती (अरुषी) ईश्वरीय शक्ते ।

(३) संग्रहशील वैश्य प्रजा ।

'पशून् न चित्रा सुभगा प्रथाना '

ऋ.१.९२.१२

चित्राधीः– चेताने वाली बुद्धि या कार्यशैली ।

'इन्द्र प्रचित्रयाधिया '

ऋ. ८.६६.८, अ. २०.९७.२, साम. २.१०४२

चित्रामघा – उषा ।

चित्रायुः – आश्चर्यजनक या जीवन वाली ।

'पावीरवी कन्या चित्रायुः '

ऋ. ६.४९.७, तै.सं. ४.१.११.२, मै.सं. ४.१४.३, २१९.३, का.सं. १७.१८, आश्व.श्रौ.सू. २.८.३, ३.७.६, ५.२०.६.

चित्तिः– (१) ज्ञान, (२) चित्त का उत्तम संकल्प ।

'चित्तिरा उपबर्हणम् '

ऋ. १०.८५.७, अ. १४.१.६, शां.गृ.शू. १.१२.४.

(३) सुचित्तता, (४) चेतना (५) सावधानता ।

'चित्तिं दक्षस्य सुभगत्वमस्मे '

ऋ. २.२१.६, पा.गृ.सू. १.१८.६

(६) संगृहीत संचित धन ।

(७) पुण्य से प्राप्त धन ।

(८) चेतनायुक्त ।
'चित्तिमचित्तिं चिनवद् विविद्वान्'
ऋ. ४.२.११, तै.सं. ५.५.४.४. का.सं. ४०.५.
(९) चित् स्वरूप सबमें चेतना देने वाला परमेश्वर, (१०) स्वयं ज्ञानवान् (११) प्रजाओं को चेताने वाला ।
'चित्तिरपां दमे विश्वायुः सद्मेव धीराः संमायचक्रुः'
ऋ. १.६७.१०.
वह ज्ञानवान् चित्त स्वरूप सबमें चेतना को देने वाला, सब का जीवनाधार होकर प्राणों और जलों के बीच में समस्त प्रजाओं को उत्पन्न करता है । ध्यानी बुद्धिमान् पुरुष निर्माण कर के जैसे अपना घर खड़ा कर देते हैं उसी प्रकार विद्वान् पुरुष जिसे अच्छी प्रकार जानकर अपना परम आश्रय बना लेते हैं ।
(१२) चित् + क्तिन् । बरसाने की क्रिया जैसे विद्युत् सम्पन्न करती है, (१३) बरसने की चिह चिटा ध्वनि, (१४) विद्युत् की चमक ।
'सा चित्तिमि र्निहिचकार मर्त्यम्'
ऋ. १.१६४.२९, अ. ९.१०.७, जै.ब्रा. २.२६०, नि. २.९.
विद्युत् अपनी चिटचिटा ध्वनि से मनुष्यों को भय से विनम्र कर देती है ।
(१५) सायण ने इस शब्द का अर्थ द्योतन लक्षण कर्म किया है । (१६) कर्म, (१७) चेतनाशक्ति ।
'आकूतय उत चित्तये'
अ. ६.४१.१
(१८) चित्त सा संकल्प ।
'चित्तिरा उपबर्हणम्'
ऋ. १०.८५.७, अ. १४.१.६, शां.गृ.सू. १.१२.४.

चित्तिनः – (ब.व.) समान चित्त वाले ।
'ज्यायस्वन्तश्चिन्तिनो मा वि यौष्ट'
अ. ३.३०.५

चिदर्बुद – असंख्यत ऐश्वर्यों एवं उत्तम गुणों से युक्त ।
'महान्त चिदर्बुदं निक्रमीः पदम्'
ऋ. १.५१.६
महान एवं असंख्यात एश्वर्यों एवं उत्तम गुणों से युक्त पद को प्राप्त कर ।

चिद्ध – चित् + ह । इसी प्रकार ।
'कृतं चिद्धि ष्मा सनेमि द्वेष'
ऋ. ४.१०.७

चिश्चा– चिश्चा हंसना अर्थ में आया है । अर्थ है (१) हंसी की ध्वनि, (२) बाण छूटने की आवाज ।
'चिश्चाकृणोति समनावगत्य'
ऋ. ६.७५.५, वाज.सं. २९.४२, तै.सम. ४.६.६.२, मै.सं. ३.१६.३, १८६.१, का.सं.(अश्व.) ६.१, नि. ९.१४.
युद्ध में जाकर बाण चिश् चिश् शब्द करता है । या मानुषी दीप्ति से हंसता है (चिश्चा करोति) ।

चिश्चाकृणोति – प्रस्मयते (अत्यन्तस्मित या लज्जित होता है), चिश्चा का अर्थ चींचीं ऐसा शब्द करना भी है, जो हंसने की तरह है । बाण छूटने के समय ऐसा ही शब्द होता है । जिससे हंसी से उत्प्रेक्षा की गई है ।

चीक्लृपाति – क्लृप् धातु समर्थकरना अर्थ में प्रयुक्त है । अर्थ है– समर्थ बनाता है ।
'आदित्यैरिन्द्रः सह चीक्लृपाति'
ऋ. १०.१५७.२, अ. २०.६३.१, १२४.४, साम. २.४६१, वाज.सं. २५.४६ तै.आ. १.२७.१, मा.श्रौ.सू. ७.२.६, आप.श्रौ.सू. २१.२२.१

चीति– (१) शरीर–परमाणुओं के संग्रह और उपचय होने की विधि (२) देह में वृद्धि प्राप्त करने की विधि ।
'देवास्ते चीतिमविदन्'
अ. २.९.४

चीपुद्रु – चीपु नामक वृक्ष । यह अज्ञात है । सम्भवतः यह शिफा या जटामासी हो । कफ से उठी गिल्टी को दबाने में यह एक ओषधि है ।
'चीपुद्रुरभिचक्षणम्'
अ. ६.१२७.२

चीयमानः– बढ़ता हुआ ।
'सहस्राक्षोमेधाय चीयमानः'
वाज.सं. १३.४७, मै.सं. २.७.१७, १०२.१०, श.ब्रा. ७.५.२.३२.

चुमुरिः – (१) प्रजा के धन को हड़प जाने वाला ।
'त्वं निदस्युं चुमरिंधुनिं च'
ऋ. ७.१९.४, अ. २०.३७.४, तै.ब्रा. २.५.८.११

(२) खा जाने वाला ।
'इन्द्रो धुनिं च चुमुरिंच दम्भयन्'
ऋ. १०.११३.९
पुनः-
'सुमन्तुनामा चुमुरिंधुनिंच'
ऋ. ६.१८.८

चुमुरी- राष्ट्र को भोगने वाला सामर्थ्य ।
'सस्तो धुनी चुमुरी याह सिष्वप'
ऋ. ६.२०.१३

चृ - (१) चीरना, काटना ।
'क इमान् विद्वान् विचचर्त पाशान्'
अ. १४.१.५६
(२) खोलना, दूर करना ।
'अयस्मयान् विचृता बन्धपाशान्'
अ. ६.८४.३

चृत- (१) बांधना ।
'आत्वा चृतत्वर्यमा'
अ. ५.२८.१२
(२) जुदा करना, खोलना ।
'ब्रह्मणा विचृतामसि'
अ. ९.३.८

चृतन्ति - खोलते हैं, प्रकट करते हैं ।
'विथे चृतन्ति ऋता सपन्तः'
ऋ. १.६७.८
जो एकत्र हो विविधसत्यों को प्रकट करते हैं ।

चेकितान - ज्ञानवान्, अन्यों को ज्ञान देने वाला ।
'एवा बभ्रो वृषभ चेकितान'
ऋ. २.३३.५, तै.ब्रा. २.८.६.९.

चेतत् - ज्ञानी पुरुष ।
'प्रिया मित्रस्य चतेतोध्रुवाणि'
ऋ. ४.५.४

चेतनी- चेतना सम्पन्न ।
'रयिं दधातु चेतनीम्'
अ. ९.४.२१.

चेतयन्ती - (१) चेतयमाना, जतलाती हुई, (२) चेतानेवाली ।
'आनोयज्ञं भारती तूयमेतु
इडा मनुष्वदिह चेतयन्ती ।
तिस्रो देवीर्बर्हिरिदंस्योनं
सरस्वती स्वयसः सदन्तु ।'
ऋ. १०.११०.८, अ. ५.१२.८, वाज.सं. २९.३३, मै.सं. ४.१३.३, २०२.९, का.सं. १६.२० तै.ब्रा. ३.६.३.४, नि. ८.१३.
आदित्य से उत्पन्न दीप्ति हमारे यज्ञ में शीघ्र आवे (नः यज्ञे भारतीतूयम् आ एतु) तथा मनुष्य के सदृश जानती हुई पृथ्वी स्थानीय इडा देवी यहां आवे एवं मध्यमस्थानी सरस्वती वे तीनों देवियां जो सुन्दर कर्मों से युक्त हैं इस सुखकर कुशपर बैठें (चेतयन्ती इडा इह सरस्वती तिस्रः देवीः स्वपसः इदं स्योनं बर्हिः आसदन्तु) ।
अन्य अर्थ-हमारे घर में आदित्य ज्योति शीघ्र प्राप्त हो, मनुष्य की तरह चेताने वाली पृथिवी स्थ अग्नि (इडा) हमारे इस यज्ञ में शीघ्र प्राप्त हो, एवं उत्तम कर्मों को सिद्ध करने वाली ये तीन देवियां (स्वपसः तिस्रो देव्यः) हमारे इस सुखकारी शिल्प यज्ञ में आस्थित हों ।
अर्थात्-सूर्य की किरण, अग्नि और विद्युत् की सहायता से शिल्प यज्ञ करना चाहिए ।

चेतस् - चित् + असन् = चेतस्
अर्थ (१) चित्त ।
'यद्ग्रामे यदरण्ये यत्सभायां यदिन्द्रिये
यदेनश्चकृमा वयमिदं तदवयजामहे स्वाहा'
वाज.सं. ३.४५,२०.१७,मै.सं. १.१०.२, १४२.१, का.सं. ९.४, श.ब्रा. २.५.२.२५, १२.९.२.३,
(२) सम्यक् ज्ञान ।
'मनसे चेतसे धिय आकूतय चित्तये'
अ. ६.४१.१

चेत्यः - उत्तमदाता ।
'त्वं त्राता तरणे चेत्योभूः'
ऋ. ६.१.५, मै.सं. ४.१३.६, २०६.१४, का.सं. १८.२०, तै.ब्रा. ३.६.१०.२.

चेता - विवेक द्वारा छानवीन करने वाला ।
'इमे चेतारो अनृतस्यभूरेः'
ऋ. ७.६०.५

चेत्ता - (१) ज्ञान स्वरूप, (२) साक्षात् दर्शाने और ज्ञान कराने वाला सूर्य, (३) सब ज्ञानों को प्राप्त कराने वाला, (४) धर्माधर्म को चेताने वाला ।
'सचेत्ता देवतापदम्'
ऋ. १.२२.५, वाज.सं.२२.१०,तै.सं. १.४.२५.१, २.२.१२.२, मै.सं . ४.१२.२:१८०.१२.
(२) जानने वाला विद्वान् ।

'उग्रश्चेत्ता सपत्नहा'

अ. ४.८.२, का.सं. ३७.९, तै.ब्रा. २.७.८.१, १६.१.

चेतिष्ठः - (१) अत्यन्त चेतनावान् अग्नि का विशेषण-

(२) उत्तम चेताने वाला उपदेशक-(दया.)

'प्रियं चेतिष्ठमरतिं स्वध्वरम्'

ऋ. १.१२८.८, ७.१६.१, साम. १.४५., २.९९, वाज.सं. १५.३२, तै.सं.सं. ४.४.४.४, मै.सं. २.१३.८, १४७.४, का.सं. ३९.१५.

प्रिय अत्यन्त चेतनावान् (चेतिष्ठम्) पर्याप्त बुद्धि वाले (अरतिम्) एवं यश को सुशोभित करने वाले अग्नि को आमन्त्रित करता हूँ।

हितकर, चेताने वाले, आर्य,हिंसा रहित, शुभकर्म करने वाले (स्वधरम्) उपदेशक को स्वीकार करता हूँ। (दया.) (३) सबसे अधिक ज्ञानवान्।

'गावा चेतिष्ठो आसुरो मघोनः'

ऋ. ५.२७.१

चेदिः- विद्वान्।

'येनेमे यन्ति चेदयः'

ऋ. ८.५.३९

चेरु - सेवा, परिचर्या करने वाला।

'त्वं ह्येहि चेरवे'

ऋ. ८.६१.७, साम. १.२४०, २.९३१. ऐ.ब्रा. ४.३१.११, ५.१६.२०, २०.२०, ऐ.आ. ५.२.२.५, आश्व.श्रौ.सू. ५.१५.३, शां.श्रौ.सू. ७.२०.४.

चेष्टत् - क्रिया शील संसार।

'ईशे संर्वस्य चेष्टतः'

अ. ११.४.२४

चैद्यः - (१) विद्वानों में उत्तम (२) प्रभु, (३) सब जीवों में व्याप्त।

'यथा चित्यैद्यः कशुः'

ऋ. ८.५.३७.

चोदः - (१) कशा (चाबुक) की चोट (२) प्रेरक पुरुष।

'जघमे चोद एषां विसक्थानि नरो यमुः'

ऋ. ५.६१.३.

(३) गुरु द्वारा उपदेश करने योग्य प्रभु-प्रेरित वाक्य - वेद।

(४) आज्ञा, (५) कानून।

'एकस्य श्रुष्टौ यद्ध चोदमाविथ'

ऋ. २.१३.९

चोद प्रवृद्ध - (१) प्रेरणा से प्रवृद्ध, (२) चोदना या वेदाज्ञा के बल से सबसे उत्तम और बढ़ी हुई शक्ति से युक्त (३) सबसे बड़ा और आदरणीय।

'चोदप्रवृद्धो हरिवो अदाशून्'

ऋ. १.१७४.६

चोदयन् - प्रेरित करता हुआ।

'सो अस्य कामं विधतोनरोषति
मनो दानायचोदयन्।'

ऋ. ८.९९.४, अ. २०.५८.२.

मन को दान के लिए प्रेरित करता हुआ वह परमात्मा इस परिचर्या करने वाले भक्त की कामना भग्न नहीं करता।

चोदयसि - संयोजयसि, अनुगृह्णासि (प्रेरित करता है, संयोजित करता है, अनुग्रहीत करता है)

चोदना- (द्वि.व.) उत्तम कर्मों को करते हुए स्त्री पुरुष।

'अप्रिययं चोदनां वां मिमाना'

वाज.सं. २९.७,तै.सं. ५.१.११.३, मै.सं. ३.१६.२,१८४.११, का. सं. (अश्व.) ६.२.

चोदयन्मतिः - (१) सन्मार्ग में प्रवृत्त कराने वाली बुद्धि और वाणी वाला, (२) प्रेरक वाणी वाला।

'रयिमस्मभ्यं युज्यं चोदयन्मते'

ऋ. ८.४६.१९

चोदिता - प्रेरक ज्ञापक।

'शाकीभव यजमानस्यचोदिता'

ऋ. १.५१.८

तू यजमान या कर देने वाले,
या आदर मान करने वाले का आज्ञापक होकर शक्तिमान होकर रहा।

(२) अनुज्ञात के अर्थ में-

'अस्माकं बोधि चोदिता'

ऋ. १०.१३३.१, अ. २०.९५.२, साम. २.११५१, तै.सं. १.७.१३.५, मै.सं. ४.१२.४,१८९,९, तै.ब्रा. २.५.८.२.

हे इन्द्र। तू हमारा अनुज्ञाता है। (अस्माकं चोदिता) अतः तू हमारी ध्येय समझ (बोधि) (३) ऐश्वर्य देने वाला (४) आज्ञा चलाने वाला।

'यो रध्रस्य चोदिता यः कृशस्य'
ऋ. २.१२.६, अ. २०.३४.८

चोदौ - (१) चोदना अर्थात् वेदशास्त्र के अनुसार चलाने वाले इन्द्रासोमा अर्थात् इन्द्र और सोम, (२) राजा और वैश्यवर्ग -(दया.)
'रध्रास्यस्थो यजमानस्य चोदौ'
ऋ. २.३०.६

चोष्कूय- ष्कुञ् (छकाना) का नाम धातु । यह धातु कहीं दानार्थक और कहीं नाशार्थक भी है ।

चोष्कूयते- (१) व्युदस्यति (छकाता है) ष्कुञ् धातु व्युदसन् अर्थात् तंग करना और छकाना अर्थात् में है । यङ्गुलन्न में यह लट् में प्र.पु.ए.व. की रूप है । अर्थ है, दण्ड देता है । हिन्दी का छकाना धातु इसी चोष्कु का अपभ्रंश प्रतीत होता है ।
'चोष्कूयते विश इन्द्रो मनुष्यान्'
ऋ. ६.४७.१६, नि. ६.२२
इन्द्र या परमेश्वर यज्ञ-विमुख मनुष्यों को (विशः) दण्ड देता है । (चोष्कूयते) तथा यज्ञशील मनुष्यों को (मनुष्यान्) पुण्य लोक में स्थान देता है ।
(२) देता है ।
'निसर्वसेन इषुधींरसक्त
समर्योगा अजति यस्य वष्टि ।
चोष्कयमाण इन्द्र भूरिवामम्
मापणिर्भूरस्मदधिप्रवृद्ध'
ऋ. १.३३.३
बहुत सेनाओं से युक्त इन्द्र ने (सर्व सेनः) निषङ्गों को पीठ पर रख लिया (रषुधीन् न्यसक्त) ये. सम्पूर्ण जगत के स्वामी हैं (अर्यः) जिस राजा के देश में लोग जल चाहते हैं (वृष्टि) अतः जिसके बाण मेघों को क्षीण करते हैं (गाः संभजति) । हे प्रकृष्ट बुद्धि युक्त इन्द्र ! (प्रवृद्ध इन्द्र) हमें प्रचुर धन देते हुए (अस्मत् अधि भूरिवामं चोष्कूयमाणः) तू बनिया मत बन (मा आपणिःभूः) ।
चोष्कूय शानच् = चोष्कूयमाण (छकाता हुआ, दण्ड देता हुआ,
(३) शक्ति में अत्यन्त बढ़ा हुआ, (४) सब शत्रुओं को मारने वाला इन्द्र या परमेश्वर का विशेषण ।
'चोष्कूयमाण इन्द्र भूरिवामम्'
ऋ. १.३३.३
हे ऐश्वर्यवन् , हे अतिअधिक शक्ति में बढ़ा हुआ या शत्रुओं को मारने वाला तू बहुत अधिक सुन्दर, भोगने योग्य, उत्तम धन को प्रदान करने वाला होकर ।

च्यौत्न - (१) प्राप्त करना, प्राप्ति ।
'पुरां च्यौत्ना य शयथोयनूचित्'
ऋ. ६.१८.८
(२) शत्रु को पदच्युत करने वाला साधन-शस्त्रास्त्र (३) स्तोत्र -दया.
'प्रच्यौत्ना नि देवयन्तो भरन्ते'
ऋ. १.१७३.४, कौ.ब्रा. २४.५.
(४) शत्रुओं को पद दलित करने वाला बल ।
'तवच्यौत्नानि वज्रहस्तंतानि'
ऋ. ७.१९.५,अ. २०.३७.५

छ

छदयत् - आच्छादन करने वाला रक्षक ।
'सो अस्मै चारु श्छदयदुत स्यात्'
ऋ. १०.३१.४

छदिः- (१) छत, छजनी ।
'द्यौरासीदुतच्छदिः'.
ऋ. १०.८५.१०, अ. १४.१.१०.
(२) दुर्गम स्थान पर चढ़ने का साधन, (३) अन्तरिक्ष ।
'छदि श्छन्दः'
वाज.सं. १४.९, १५.५, तै.सं. ४.३.५.१,१२.३, मै.सं. २.८.२, १०८.५, २.८.७,११२.३, का.सं. १७.२,६, शा.ब्रा. ८.२.४.५, ५.२.६.

छन्दस् - छदि + असुन् = छन्दस् । वेद मन्त्रों का छन्द । छन्द सात हैं -गायत्री, पंक्ति, त्रिष्टुप, उष्णिक्, अनुष्टुप् , बृहती और जगती ।
छादन से अर्थात् पाप दुःखादिको से रक्षा के लिए आत्मा के आच्छादन से इसका नाम छन्दस है ।
छान्दोग्योपनिषद् में लिखा है- देवा वै मृत्योः विभ्यतः त्रयीं विद्यां प्राविशः ते छन्दोभिः अच्छादयन् पदेभिः आच्छादयः तत् छन्दसः छन्दस्त्वम् । (२) उणादि कोष में आह्लादन अर्थ

वाले चदि धातु से छन्दस् की सिद्धि की गई है। वेदाध्ययन से सत्य विद्या के ज्ञान के कारण मनुष्य आह्लादी होता है। अतः मन्त्र या वेद का नाम छन्दस् है।

छन्दःपक्षे – दिशा रूप पक्षों वाली दोनों उषाएं सांय और प्रातः।

'प्रजापतेवी एतानि अंगाति
यच्छन्दांसि'

ऐ. ब्रा.

'छन्दः पक्षे उषसा पेपिशाने'

अ. ८.९.१२

छन्दःस्तुभ– (१) वेदमन्त्रों का उपदेशक, (२) छन्दों से स्तवन करने वाला (३) युद्ध की नाना गति से शत्रुदल को मारने वाला।

'छन्दस्तुभः कुभन्यवः'

ऋ. ५.५२.१२

छन्दस्या – (१) छन्दोमयी वाणी (२) प्रजानुरंजनी वाणी।

'छन्दस्यां वाचं वदन्'

ऋ. ९.११३.६

छन्दांसि – छन्द, (२) अर्थववेद –(दया.)।

'छन्दांसि जज्ञिरे तस्मात्
यजुस्तस्मादजायत।'

ऋ. १०.९०.९, अ. १९.६.१३, वाज.सं. ३१.७, तै.आ. ३.१२.४.

(३) दिशाएं (४) रस, (५) इन्द्रियां, (६) प्राण, (७) पशु।

'छन्दांसि पक्षौ मुखमस्यसत्यम्'

अ. ४.३४.१

छन्दुः – (१) स्वच्छन्द, स्वतन्त्र।

'वृषाछन्दुः भवति हर्यतोवृषा'

ऋ. १.५५.४

वह मेघ के समान वर्षक (वृषा) प्रजाओं का मनोरञ्जन करता हुआ स्वतन्त्र या मुक्त हो जाना है।

छन्दोम – गायत्री आदि स्थानों से निर्मित त्रिपृत आदि स्तोत्र का नाम छन्दोस है।

छन्दोमयज्ञ – (१) छन्दोय से निष्पन्न न होने वाला यश (२) गायत्री आदि छन्दों से निर्मित त्रिवृत् आदिस्तोत्र छन्दोम कहलाया है।

छान्दोय यज्ञ का निर्णय सामवेद के ताण्डय ब्राह्मण में वर्जित है।

यह दश रात्रि का होने से दाशरात्र भी कहा गया है।

छर्दिः – (१) गृह, शरण।

'छर्दिर्यच्छ वीतह व्याय शप्रथः'

ऋ. ६.१५.३

(२) शुद्ध आच्छादन से प्रकाशमान पर

'प्र नो यच्छतात् अवृकं पृथुच्छर्दिः
प्र देवि गोमती रिषः'

ऋ. १.४८.१५

हे उषा या कान्तिमनी देवि, स्त्री। हिंसक प्राणी बिच्छू सर्पादि से रहित (अवृकम्) अति विशाल घर (पृथु छर्दिः) और गौ आदि पशुओं से सम्पन्न अन्नादि ऐश्वर्यों का खूब प्रदान किया कर (३) सबके शरण रूप परमेश्वर।

'अग्नि सुदीतये छर्दिः'

ऋ. ८.७१.१४, अ. २०–१०३.१

(४) छत, सुख युक्त।

'छर्दिर्यच्छमघवद्भयश्च मह्यं च'

ऋ. ६.४६.९, अ. २०.८३.१, साम. १.२६६. का.सं. ९.१९.

'छर्दिर्यन्तमदाभ्यम्'

ऋ. ८.५.१२, ८५.५.

छर्दिष्पाः – (द्वि.व.) (१) गृहों की रक्षा करने वाले।

'यातं छर्दिष्पा उत नः परस्पा'

ऋ. ८.९.११, अ. २०.१४१.१

छागः– (१) छाग्या इयम् (बकरी का दूध। (२) बकरा, (३) छयत्ति छिन्नति रोगान् यः स छागः।

'होता यक्षदश्विनौ छागस्य हविष आताम्'

वाज.सं. २१.४३, मै.सं. ४.१३.७, २०८.३, तै.ब्रा.३.६.११.१.

अग्नि (होता), अश्विनीद्वय या कर्म की पूजा करे (अश्विनौ यक्षत), ये दोनों छागके हवि खावें (छागस्य हविः आत्ताम्)।

(४) शत्रुओं का छेदन करने वाला, (५) शस्त्रविद्या और युद्ध में निपुण, (६) राष्ट्र को भिन्न-भिन्न भागों में बांटने वाला वीर पुरुष (७) शत्रुओं को काट गिराने वाला सैन्यबल सेनापति।

'सूपस्था अद्य देवो वनस्पतिरभवदिन्द्राय छागेन'
वाज.सं. २८.२३,४६, का.सं. १९.१३
(८) पर पक्ष का छदन करने वाला तर्क (९) शत्रु पक्ष का छेदक नीति बल।
'छागेन तेजो हविषा श्रृतेन'
वाज.सं. १९.८९, मै.सं. ३.११.९,१५४.४, का.सं. ३८.३, तै.ब्रा. २ .६.४.४.
(१०) छयते, छेदनार्थान् छातोः
औणादि को गन प्रत्ययः।
छयाते छिनस्ति इति छागः
छापूखडिभ्यः कित् (दया.)
छो छेदने दिवादिः।
छो गुग्घ्रस्वश्च इति कन् प्रत्यये
गुगागमो ह्रस्वश्च
छयति छिनत्ति इति छगलः
छागः वर्करो वा इति दयानन्दः।

छायक – मुंह से काटने वाला।
'छापकादुत नग्नकात्'
ऋअ. ८.६.२१

छाया – छाया।
'छायेव विश्वं भुवनं सिसक्षि'
ऋ. १.७३.८

छावा– गृह।

छिद्र – दोष त्रुटि।
'यन्मे छिद्रं मनसो यच्च वाचः'
अ. १९.४०.१

छिन्नपक्ष– कटे पंखों वाला, आश्रय-रहित।
'छिन्नपक्षाय वञ्चते'
अ. २०.१३५.१२, शां.श्रौ.सू. १२.१६.१.५.

छुबुक – ठोढ़ी।
'कर्णाभ्यां छुबुकादधि'
ऋ. १०.१६३.१, अ. २.३३.१, २०.९६.१७, आप. मं.पा. १.१७.१.

ज

जक्षत् – (१) खाता पीता हुआ, विनोद क्रीड़ा करता हुआ (२) भोगी, विलासी।
'त्वमेतान् रुदतो जक्षतश्च'
ऋ. १.३३.७

जक्षिवस् – घस् (खाया) + क्वसु = जक्षिवस्।
घस् का जक्षि आदेश। अर्थ है-खाए हुआ।

जक्षिवान् – अर्थ-उत्तम अन्न खाने वाला।
'जक्षिवांसः पपिवांसो मधूनि'
अ. ७.९७.३

जक्षिवांसः – 'जक्षिवस्' शब्द के प्रथमा ब.व.का रूप। घस् (खाना) + क्वसु = जक्षि-वस्।
(१) वसुओं के विशेषण के रूप में प्रयुक्त खाये हुए या खाकर।

जगत् – (१) सर्व व्यापक प्रभु।
'यद्वा जगज्जगत्याहितं पदं'
ऋ. १.१६४.२३, अ. ९.१०.१, ऐ.ब्रा. ३.१२.६, कौ.ब्रा. १४.३.
(२) चर, (३) प्राणी, (४) जंगम संसार, (५) गतिशील।
'यत्किञ्च जगत्यां जगत्'
वाज.सं. ४० + १, ईश.उप.१.
(६) गम् + अति = जगत्। निपातन से सिद्ध।
अर्थ है- जंगम पदार्थ, गतिशील जगत् सृष्टि
(६) गम् यङ् + शतृ = जगत्।
'सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च'
ऋ. १.११५.१, अ. १३.२.३५, २०.१०७.१४, आ.सं. ५.३, वाज.सं. ७.४२,१३.४६, तै.सं. १.४.४३.१, २.४.१४.४, मै.सं. १.३.३७,४३.९, सं. ४.९.२२.५, श.ब्रा. ४.३.४.१०, ७.५.२.२७, तै.ब्रा. २.८. ७.४, ऐ.आ. २.२.४.७, ३.२.३.१०, तै.आ. १.७.६,२.१३.१, नि. १२.१६.
सूर्य जंगम तथा स्थावर का आत्मा है। पुनः,
'पुरुत्रा ते मनुतां विष्ठितं जगत्'
ऋ. ६.४७.२९, अ. ६.१२६.१, वाज.सं. २९.५५, तै.सं. ४.६.६.६, मै.सं. ३.१६.३,१८७.८, का.सं. (अश्व.) ६.१., नि. ९.१३.
हे दुन्दुभि, तेरे शब्द को स्थावर या जंगम जगत् जान जाय। पुनः जंगम अर्थ में-
'यो होतासीत् प्रथमो देवजुष्टो
यं समाञ्जन् आज्येना वृणानाः।
स पतत्रीत्वरं स्था जगद् यत्
श्वात्रमग्निरकृणोत् जातवेदाः।'
ऋ. १०.८८.४, नि. ५.३.
जो वैश्वानर अग्नि (यः होता) देवों में प्रथम

होने के कारण देवों से आसेवित हुए (प्रथमः देवजुष्ट आसीत्) और जिस वैश्वानर देवजुष्ट आसीत्) और जिस वैश्वानर अग्नि की सेवा करते हुए यजमानों से (यम् आवृणानाः) घृत से सिक्त किया (आज्येन समा ञ्जन्) इस जातप्रज्ञ अग्नि ने (स जातवेदाः अग्नि) जो यह पक्षी आदि प्राणि जात (यत् पतत्रि) सदीसृप् आदि (इत्वरम्), वृक्षादि स्थावर (स्थाः) संसार है (स्थाः जगत्) उसे सृष्टि के आदि काल में शीघ्र ही (श्वात्रम्) उत्पन्न कर दिया (अकृणोत्)।

अन्य अर्थ - जो अनादि, विद्वत् सेवी (प्रथमः देवजुष्टः) सृष्टिकर्ता है (होता आसीत्) जिसे (यं) भक्तिरूपी हवि से (आज्येन) भजते हुए (अवृणानाः) अपने हृदयों में प्रदीप्त करते हैं। (समाञ्जन्) उस सर्वव्यापक सर्वज्ञ परमेश्वर ने (स जातवेदाः अग्निः) जो उड़ने वाले (यत् पतत्रि) चलने वाले (इत्वरम्) तथा स्थावर और जंगम पदार्थ है (स्थाजगत्) उन्हें शीघ्र पैदा किया।

(१) गतिशक्ति, (२) निरन्तर मति।

'जगता सिन्धुं दिव्यस्तभायत्'

ऋ. १.१६४.२५, अ. ९.१०.३,

जगच्छन्दाः- ४८ अक्षरों के जगती छन्द के समान ४८ वर्षों तक का ब्रह्मचर्य व्रत।

'ऋभुरसि जगच्छन्दाः'.

अ. ६.४८.२, श.ब्रा. १२.३.४.५, कौ.ब्रा. १३.१.११.

जगत्या - (द्वि.व.) जगत् के पालक।

'भूतं जगत्या उतनस्तनूपा'

ऋ. ८.९.११, अ. २०.१४१.१

जगती - (१) वेद के प्रसिद्ध ७ छन्दों से एक वैदिक छन्द जो ४८ अक्षरों का होता है, (२) सर्वप्रेरक गति देने वाली काल शक्ति।

'जगता सिन्धुं दिवि अस्त भायत्'

(३) गमन योग्य रात्रि, (४) प्रजा।

'युवं ह गर्भं जगतीषुधत्थः'

ऋ. १.१५७.५

हे स्त्री पुरषो, आप दोनों गमन योग्य रात्रियों में ही गर्भाधान करो।

(५) गततमं छन्दः (जिस छन्द में अत्यन्त प्रवाह हो) अथवा जल चरगतिः (जिस छन्द की गति जलों में लहर के समान हो)। (६) ब्रह्म ने जिसे क्षीणहर्ष होकर रचा जल्गल्यमानः असृजत्। गम् + अति = जगत्। जगत् + ङीष् = जगती।

यह छन्द अन्य छन्दों से आगे गया है- बहुत बड़ा है, अतः जगती है।

(७) निरन्तर गमन करने वाले दूरगामी रथ आदि साधन।

'सं रेववतीः जगतीभिः पृच्यन्ताम्'

वाज.सं. १.२१, श.ब्रा. १.२.२.२. शां.श्रौ. सू. ८.९.२.

(८) सृष्टि।

'यत्किञ्चजगत्यां जगत्'

वाज.सं. ४०.१, ईश. उप. १,

(९) वैदिक परिभाषा में जगती के अर्थ है - समस्त संसार, (१०) आत्मा, (११) पृथिवी, (१२) सिनीवाली, (१३) ब्रह्म, (१४) पशु, (१५) वैश्य, (१६) द्वादशाक्षर छन्द, (१७) प्रतीची दिशा, (१८) आदित्य की पत्नी, (१९) द्यौ, (२०) स्थान, (२१) अवाङ् प्राण, (२२) श्रोत्र, (२३) तृतीय सवन, (२४) ग्रावा, (२५) श्रेणी, (२६) यश।

'यद्वा जगत् जगत्याहितम् पदम्'

ऋ. १.१६४.२३, अ. ९.१०.१, ऐ.ब्रा. ३.१२.६, कौ.ब्रा. १४.३.

जगती में जगत् आश्रित् है, समस्त जगत् उसके चलाने वाले परमात्मा में आश्रित है, आदित्य द्यौ लोक में स्थित्त है। अवाङ् प्राण अर्थात् नीचे का प्राण श्रोणी या कूल्हों में आश्रित हैं। पशुगण वैश्यों का वैश्ववर्ण पशु समृद्धि में आश्रित हैं आदित्य ब्रह्मचारी तृतीय सवन में स्थित है, ४८ वर्षों का ब्रह्मचर्य शक्ति आदित्य ब्रह्मचारी में स्थिति है, श्रोत्र, श्रवण या श्रुति विद्या का श्रवण विद्वानों में स्थित है।

जागता वै ग्रावांणः-कौ.ब्रा. २९.१.

जगत्येन यशः

'सर्ववाडइदमात्मा जगत्'

श.ब्रा. ४.५.९.८.

'तदिदं सर्व जगदस्याम्।'

श.ब्रा. १.८.२.११

'या सिनीवाली सा जगती'

ऐ.ब्रा.
'जगती वै वैश्यः'
ऐ.ब्रा.
'जगती प्रतीची'
श.ब्रा. ८.३.१.१२
'जगती आदित्यानां पत्नी'
गो.ब्रा.
'साम्नाम् आदित्यं दैवतं तदेव ज्योति जागतं छन्दो द्यौः स्थानम् ।'
गो.ब्रा.
'श्रोणी जगत्यः'
श. ब्रा. ८.६.२.८
'अवाङ् -प्राणः एव जगती, जागतं'
श्रोत्रम् ता.
'जगतं वै तृतीय सवनम्'
ऐ.ब्रा.

जगन्तन- गतः (गया) । गम् धातु के लुङ् में च्लि का लोप । श्लुवद्भाव तथा गम् का द्वित्व ।

जगन्वान् - आगे बढ़ता हुआ ।
'अपश्यमत्र मनसा जगन्वन्'
ऋ. ३.३८.६

जग्धपाप्मा - जिसका पाप नष्ट हो गया हो ।
'सर्वो वा एषो जग्धपाप्मा यस्यान्नमश्नन्ति'
अ. ९.६.२५

जाग्मिः - (१) गमनशील, जाने वाला, चलने वाला, (२) बहने वाला ।
'अपां जग्मिः निचुम्पुणः'
ऋ. ८.९३.२२, नि. ५.१८.
सोमरस की सीढी (निचुम्पुणः) जलों के बीच बह रही है ।
'अनानुदो वृषभो जग्मिराहवं'
ऋ. २.२३.११.
(३) ज्ञानवान् , (४) सर्वत्रगत ।
'मीढुषे अरंगमाय जग्मये'
ऋ. ८.४६.१७

जग्मी - 'जग्मि का द्वि.व. । अर्थ-चलने वाले ।
'मनऋङ्गा मनन्या न जग्मी'
ऋ. १०.१०६.८

जग्मयः - जग्मि का ब.व. । जाने वाले ।
'शुभंयावनानो विदथेषु जग्ममः'
ऋ. १.८९.७ वाज.,सं. २५.२०, का.सं. ३५.१, आप. श्रौ.सू. १४ .१६.१,

जगती छन्दः - (१) जगती छन्द (२) ४८ वर्षों तक अखण्ड ब्रह्मचर्य पालक ।
'जगती छन्द इन्द्रियम्'
वाज.सं. २१.१८, मै.सं. ३.११.११, १५८.११, का.सं. ३८.१०, तै. ब्रा. २.६.१८.३.

जगन्वान् - जाने वाला ।
'प्रोढः समुद्रम् अव्यथिः जगन्वान्'
ऋ. १.११७.१५

जग्रसानः - (१) ग्रस्त होता हुआ, (२) वशी कृत ।
'सृजः सिन्धंरहिना जग्रसानान्'
ऋ. ४.१७.१, १०.१११.९,मै.सं. ४.११.४, १७१, ४, का.सं.६.१०.

जग्रसानाः - (ब.व.) वायु को भीतर लेते हुए प्राणगण ।
'यच्छ्वसन्तो जग्रसाना अराविषुः'
ऋ. १०.९४.६

जगाम - गच्छति । जाता है । लट् केअर्थ में लिट् का प्रयोग छान्दस है ।

जग्मिवस् - गतवान् (गया हुआ) । गम + क्वसु (लिट् में) जग्मिवस् ।
'न वा अमुं लोकं जग्मुषे किञ्चनाकम्'
द्युलोक में चले गए प्राणी को कोई दुःख नहीं है ।

जङ्गह - गृह् (गृहण करना) से यङ्लुङ् कर भृशं गृहीतम् के अर्थ में 'जङ्गह' बना है ।
अर्थ है - (१) सम्भोग, रति -सा. (२) पूर्णतया गृहीत राज कर्म-दया. (३) राष्ट्र को वश में करने का कार्य ।

जङ्गिड - (१) सन्तानोत्पत्तिः को निगल जाने वाला ब्रह्मचर्य भाव ।
(२) यंत्र, जड़ी का वाचक ।
'जङ्गिडं बिभृमो वयम्'
अ. २.४.१
(३) किसी वृक्ष की लकड़ी का टुकड़ा । यह वृक्ष बनारस की तरफ होता है । यह शब्द अर्थवेद में दो स्थानों पर आया है । कां. २.४ में तथा काण्ड १९-३४, ३५ में ।
सायण के अनुसार इस मणि को धारण करने के तीन प्रयोजन हैं - कृत्या दषण, आत्मरक्षा

ओर विघ्नशमन। हारिल के मत से यह अर्जुन वृक्ष है। वेद इसे विष्कन्धदूषण बतलाता है। शत्रु के सेना-शिविरों को विध्वस्त करने वाला - दक्षमाणाः रणाय अरिष्पन्तःसदैव विभृमः (युद्ध के लिए जाना चाहें तब हम उसे बांधे)। कृत्यादूषि और आरति दूषि भी इसे बताया गया है। कृत्या का अर्थ जोग टोना है। (३) उत्पन्न हुए प्राणियों को निगलने वाला, (४) शत्रुओं को निगलने वाला या उन पर आक्रमण करने वाला। (५) एक वनस्पति, (६) अर्जुन नामक औषधि जो तीन प्रकार के वात रोग में कामआता है। विष के उपचार में भी काम आता है। जंगिड़ सिर के भीतर उठने वाले नाद, भनभनाहट और सातों धातुओं के विपरीत रूप में बहने या नष्ट होने के रोगों को दूर करता है। यह सब ओषधियों से अधिक वीर्यवान है। यह देह की व्यापक पीड़ा, स्नायविक पीड़ा, कफजन्य रोग, पीठ पसलियों का दर्द ज्वर, तथा समस्त शरीर में शीत लगने के रोगों का नाशक है। इस औषध का आर्ष नाम इन्द्र है। इसे सहस्र चक्षु भी कहते हैं।

व्युत्पत्ति - जातानां निगरण कर्त्ता असि। अतो 'जङ्गिड़' इति उच्यते। यद् जंगम्यते शत्रून् वाधितुम् ति जंगिडः। अथवा जनेः जयतेः वा 'ड' प्रत्यये कृते ज' इति भवति। जं गिरति इति जंगिरः कपिलादित्वात् तत्वम्। पूर्वपद्स्य सुपोलुगाभावः छान्दसः। खच् प्रत्ययो वा द्रष्टव्यः।

कृत्याओं को हटाने वाला है। अतः जंगिड है। अथवा तुमसे शत्रुओं को बाधित करने के लिए प्रयोग किया जाता है, अतः जंगिड् है। अथवा जन् + ड = ज, जो ज को नष्ट कर देता है। वह जंगिड है। कपिलादिवत् रं का लत्व होने से जंगित-जंगिड बना है पूर्वपदस्य (जम् के अम् का) लोप न होना छान्दस है। यहां (खच् प्रत्यय नहीं होगा।

(६) विजयी लोगों को भी निगलने वाला वीरपुरुष, (७) आत्मा।

जंहः - वेग से जाता हुआ।

'त्रिषधस्थ स्ततरुषो न जंहः'

ऋ. ६.१२.२

जगुरिः - (१) गृ (निगरणअर्थ में) + किन् = जगुरी (लिट् के ऐसा द्वित्व होकर। अर्थ है (१) उद्गूर्ण। (२) दुस्साध्य (३) दुर्गम। (४) अथवा यङ् नुगन्त गम् + उरिक् = जगुरि। अर्थ है अञ्चित्, प्राप्त किया हुआ। (५) जाने योग्य।

'दूरे ह्यध्वा जगुरिः पराचैः'

ऋ. १०.१०८.१, नि. ११.२५.

जग्मुष् - जाने वाला।

'श्रोता दूतस्य जग्मषो नो अस्य'

ऋ. ७.३९.३, नि. १२.४३.

हे देवो। आप हमारे इस आप के निकट जाने वाले अग्निरूप दूत का आह्वान सुनें।

जग्मुषी - जग्मुष् + ङीष् = जग्मुषी। अर्थ -जाने वाली।

'आ वां पतित्वं सख्याय जग्मुषी'

ऋ. १.११९,५.

तेरे सुखभाव मे जाने वाली पुरुष के हृदय को जीतने वाली। ....

जगृभ्वान् - ग्रहण करने वाला।

'नमो जगृभ्वान् अभियत् जुजोषत्।'

ऋ. ४.२३.४

जघनम् - जंघनं जंघन्यते (बार-बार जघन हना जाता है। अथः वह जघन है)।

हन् (गत्यर्थक) + यङ् + अच् = जघन। बाहुलक नियम से सिद्ध। यहां नुम् का अभाव है क्योंकि आगम शास्त्र अनित्य है। अथवा कुटिलं हन्यते (जांघ टेढ़ा मेढा हो जाता है)। अर्थ-जंघा।

'जघनाँ उपजिघ्नते'

ऋ. ६.७५.१३, वाज.सं. २९.५०, तै.सं. ४.६. ६.५, मै.सं. ३.१६.३, १८७.६, का.सं. (अश्व.) ६.१. नि. ९.२०.

घोड़ो के जाघों को मारते हैं।

जघन्य - जहि। हन् धातु के लोट् म.पु.ए. व. का वैदिक रूप। अर्थ है - मार डाल।

'अपादमिन्द्र तवसाजघन्थ'

ऋ. ३.३०.८, वाज.सं. १८.६९.

हे इन्द्र ! वृत्र, मेघ या दुष्ट को पैररहित कर (अपादम्) सामर्थ्य से (तवसा) मार डाला (जघन्थ)।

जघन्य – छोटे कर्म में लगा हुआ ।
'नमो जघन्याय च बुध्न्यायच'
वाज.सं. १६.३२, तै.सं. ४.५.६.१, मै.सं. २.९.६, १२५.४,

जघन्वान् – (१) हतवान् । हत् + क्वसु (लिट् में) = जघन्वस् (ह का घ) । प्रथमा ए. व. में जघन्वान् । अर्थ है – मारा (२) संज्ञा होने पर अर्थ है – दण्ड देने वाला (३) शत्रुहन्ता ।
'जघन्वाँ इन्द्र मित्रेरून्'
ऋ. १.१७४.६.
पुनः–
'भूम्या उपस्थे ऽवपज्जघन्वान्'
ऋ. २.१४.७

जंघा – (१) जांघ , (२) शत्रु को मारने वाली सेना, (३) गाड़ी में लगा पहिया ।
'ऊर्वोरोजो जङ्घयोर्जवः'
अ. १९.६०.२ , वै.सू. ३.१४.

जघ्रिः – सूंघने वाली ।
'मोरवाभ्राजन्त्यभिविक्ति जघ्रिः'
ऋ. १.१६२.१५, वाज.सं. २५.३७, तै.सं. ४.६.९.२, मै.सं. ३.१६. १,१८३.१०, का. सं. (अश्व.) ६.५.

जजान – जनयति (उत्पन्न करता है)। लट् के अर्थ में लिट् का प्रयोग छान्दस है ।

जज्ञियासः – यज्ञियासः, यज्ञार्हाः यज्ञसम्पादिनः यजमानाः । अथवा देवा इव सूर्यरश्मयः (यज्ञ के योग्य यजमान या सूर्य की रश्मियां) ।

जज्ञिरे – समभवन् (उत्पन्न हुए) । प्रकट हुए (प्रादुर्भूताः) ।
'ते अंगिरसः सूनवः
ते अग्नेः परिजज्ञिरे'
ऋ. १०.६२.५, नि. ११.१७.
वे अंगिरा के पुत्र आग से उत्पन्न हुए ।

जज्ञे – उत्पन्न हुआ ।
'दिवस्परि प्रथमं जज्ञे अग्निः'
ऋ. १०.४५.१, वाज.सं. १२.१८., तै.सं. १.३.१४.५, ४.२.२.१ मै. सं. २.७.९,८६.५, का.सं. १६.९, श.ब्रा. ६.७.४.३.
यह जात प्रज्ञ अग्नि पहले द्युलोक के ऊपर आदित्य रूप में उत्पन्न हुआ ।

जञ्जणाभवत् – (१) खूब प्रज्वलित होता हुआ, (२) बार–बार उत्पन्न होता हुआ जीव ।
अर्चिषा जञ्जणाभवन्'
ऋ. ८.४३.८

जञ्जती – (१) सबको अधीन करने वाली, (२) युद्ध में प्रवृत्त सेना ।
'पृथुज्रयी असुर्येव जञ्जती'
ऋ. १.१६८.७.

जञ्झती – (ब. व.) (१) आप. (जल) । जञ्झतीः आपः भवन्ति शब्दकारिण्यः । (जल शब्द करने वाली है अतः आपः) । जञ्भ् (शब्दानुकरण) + क्विप् + शतृ + ङीष् = जञ्झती । जञ्झसा शब्द करती हुई ।
'आ रूक्मैरा युधा नर
ऋष्वा ऋष्टीरसृक्षत
अन्वेनाँ अह विद्युतो
मरुतो जञ्झतीरिव
भानुरर्तत्मना दिवः'
ऋ. ५.५२.६
यास्क ने मरुत् के स्थान में प्रदिव पाठ माना है ।
वृष्टि के नेता (नरः) महान् मरुतों ने (ऋष्वा मरुतः) सुवर्ण निर्मित आयुधों तथा शक्तियों को मेघों के प्रति छोड़ा (रुक्मैः आयुधा ऋष्टीः असृक्षत) तथा इन्हीं प्रहारों की तरह बिजली छोड़ा (एता न अनु विद्युतः) । सूर्य के समान स्वयं ही द्युलोक से निकले (भानुः इव त्मना दिवः अर्त) तथा झरझर शब्द करने वाले जल भी निकले (जञ्झतीः अह) ।
अन्य अर्थ – हे बड़े मनुष्यों (ऋष्वा नरः), अपने प्रतापों से शस्त्रों एवं अस्त्रों का निर्माण करो (रुक्मैः आयुधाऋष्टीः आ असृक्षत) और जल की तरह (जञ्झतीः इव) विद्युत् वायु और सूर्य का प्रकाश (विद्युतः मरुतः दिव भानुः) इन सब को अपने अनुकूल उपयोग में लाओ (एनान् अह अनुअर्ज) (३) शब्द या गर्जना करने वाली विद्युत् ।

जठर – जग्धम् अस्मिन् ध्रियते धीयतेवा (खाया हुआ अन्न इसमें रखा जाता है) ।
जग्धधरम् – जठरम् ।
अथवा –जग्ध धानम् जठरम् । खाया हुआ अन्न रखने का स्थान जठर है ।
जग्ध + धृ (धा) + अरन् = जग्धधर –जठर ।

पृषोदरादिवत् जग्ध का ज और ध का ठा ।

जठल – (१) समुद्र का मध्य भाग, (२) मध्यस्थ मुख्य चित्त (३) जग्ध या मुक्त को धारण करने वाला भुक्तभोगी आत्मा जो जलवत् है । (४) जल । जग्धं राति इति जठरम् ।

'चतस्रो नावः जठलस्यजुष्टा'

ऋ. १.१८२.६.

जत्रु – (१) शकट में बैल जोतने की रस्सी जोता,

'आन्त्राणि जत्रवः'

ऋ. ११.३.१०

(२) गर्दन की हंसली की हड्डी ।

'पुरा जत्रुभ्य आतृदः'

ऋ. ८.१.१२, अ. १४.२.४७, साम. १.२४४, पंच.ब्रा. ९.१०. का.श्रौ.सू. २५.५.३०.

(३) हंसली, शरीर की हड्डी (४) कन्धे, और कुक्षि के बीच की पसलियां ।

'दिशा जत्रवः'

वाज.सं. २५.८, तै.सं. ५.७.१६.१, मै.सं. ३.१५.७, १७९.११, का.सं. (अश्व.) १३.६,

जतू – चमगीदड़ ।

'अहोरात्रयोः सन्धिभ्यो जतूः'

वाज.सं. २४.२५,

'यावतीर्भृङ्गाः जत्वःकुरूरवः'

अ. ९.२.२२.

जनना – द्वि.व. (१) उत्पन्न करने वाले माता पिता (२) नर नारी, (३) सोमा पूषाणः ।

'सोमा पूषाणा जनना रयीणाम्'

ऋ. २.४०.१, तै.सं. १.८.२२.५, मै.सं.४.११.२, १६३.१४, का.सं.८ .१७. आश्व. श्रौ.सू. ३.८.१.

जनः – (१) जन् + ड = जन । अर्थ जन्म लेने वाला ।

'येना पावक चक्षसा
भुरण्यन्तं जनां अनु
त्वं वरुण पश्यसि'

ऋ. १.५०.६, अ. १३.२.२१, २०.४७.१८, वान.सं. ३३.३२, नि. १२.२२,२५.

(२) जनता ।

'मित्रो यो जनेष्वा
यशश्चक्रे असाम्या'

ऋ. १०.२२.२.

हे अनन्त इन्द्र ! (असामि) मित्र के सदृश (मित्रों न) जनों में (जनेषु) जो कीर्त्ति फैलाता है । (यशः आचक्रे) ।

(३) असुर ।

जनपान – (१) कूप , पनघट । (२) जीव जगत् का पालक प्रभु, (३) सोमरस पालक प्रभु, (३) सोमरस ।

'उत्सं न कञ्चित् जनपानमक्षितम्'

ऋ. ९.११०.५, साम. २.८५७.

जनभक्ष – (१) सब मनुष्यों के सेवन करने योग्य (२) सब प्रजागण भोक्ता इन्द्र परमेश्वर ।

जनभृत् जनो

'सत्रा साहो जनभक्षो जनं सहः'

ऋ. २.२१.३

जनभृत् – जनों का भरणपोषण करने वाला ।

'जनभृतस्थ राष्ट्रदाः'

वाज.सं. १०.४१,श.ब्रा. ५.३.४.१९.

जनमान – (१) जन्म लेने वाला

'वसूनि जाते जनमान ओजसा
प्रति भागं न दीधिम'

ऋ. ८.९९.३, अ. २०.५८.१. साम. १.२६७, २.६६९, वाज.सं. ३३.४१, नि. ६.८.

(२) उत्पन्न होने वाला मनुष्य, (३) जगत् । हे मनुष्यो, उत्पन्न या उत्पन्न होने वाले जगत में परमात्मा के लिए साधनों का हम पुरुषार्थ से अपना अपना भाग भोगें ।

जनमाने का अर्थ जनिष्यमाण है । विभक्ति की विकृति और व्यत्यय आर्ष है ।

जनयोपन – युप् धातु विमोहनार्थक है । युप् + ण्यु = योपन ।

अर्थ– (१) लोगों को मोहित करने वाला रूप । (२) सूर्य ।

'कमगन् जनयोपनः'

ऋ. १०.८६.२२, अ. २०.१२६.२२.

(३) मनुष्यों को विध्वंस करने वाला, (४) जन्म का नाशक जीव ।

जनराट् – जनों पर राजा के समान विद्यमान ।

'जनराडसि रक्षोहा'

वाज.सं. ५.२४, वाज.सं. (का.) ५.६.३, श.ब्रा. ३.५.४.१५.

जनराजा – (१) जनपदों का राजा ।

'त्वमेतान् जनराज्ञो द्विर्दश

अबन्धुना सुश्रवसोपजग्मुषः '
ऋ. १.५३.९, अ. २०.२१.९.
तू इन तेरे प्रति जाने वाले (उपजग्मुषः) बीस जनपद के राजाओं को (द्विर्दश जनराज्ञः) बन्धुरहित (अबन्धुना) उत्तम ऐश्वर्य से सम्पन्न (सुश्रवसा) राष्ट्रपति या प्रजावर्ग के साथ....
(२) जनों या सैनिकों का राजा ।

जनवादी - सर्वसाधारण को स्पष्ट रूप से सूचना देने वाला ।
'आर्त्यै जनवादिनम् '
वाज.सं. ३०.१७

जनश्रीः- (१) जातश्री उद्भूत श्री (२) प्राणियों का आश्रयभूत पूषण (सूर्य) देवता का विशेषण (३) सायण के अनुसार स्तोतृ संघ के निकट जाने वाला या उस का आश्रय लेने वाला (जनं स्तोतृ संघं श्रयति गच्छति इति जन श्रीः) ।
'आजासः पूषणं रथे
विशृम्भास्ते जनश्रियम् ।
देवं वहन्तु बिभ्रतः '
ऋ. ६.५५.६, नि. ६.४.
अविश्रान्त सूर्य की शीघ्र प्रक्षिप्त होने वाली किरणें या घोड़े (अजासः) प्राणियों के आश्रयभूत पूषणदेव को अर्थ में या द्युलोक रूपी रथ में धारण करती हुई लाती है ।

जनंसहः - (१) सब जन्तुओं को सहन करने वाला (२) सब जीवों को अपने अधीनरखने में समर्थ इन्द्र-परमेश्वर ।
'सत्रासाहो जनभक्षोजनं सहः '
ऋ. २.२१.३

जन्तु - जन + तु = जन्तु । अर्थ -(१) जन्म लेने वाला जीव, प्राणी ।
'स शर्धदर्यो विषुणस्य जन्तोः '
ऋ. ७.२१.५, नि. ४.१९
जो विघ्नकारी जीवों को रोकने वाला हो वह यज्ञ में आवे ।

जन्मन् - जन् + मनिन् । अर्थ (१) जन्म, (२) उदय, (३) जीव ।
'अतूर्त पन्थाः पुरुरथो अर्यमा
सप्तहोता विषुरूपेषु जन्मसु '
ऋ. १०.६४.५, नि. ११.२३.
नियमित मार्गवाला, बड़े रथवाला, अन्धकार नाशक सात किरणों वाला आदित्य उत्तरायण और दक्षिणायन गतियों में विषम रुपों में उदय लेते हैं ।
पश्यन् जन्मानि सूर्य । हे सूर्य, तू सभी जीवों को (जन्मानि) देखता हुआ (पश्यन्) जाता है ।
४) जल ।

जन्य - (१) व्यापक परमेश्वर ।
'जनजनं जन्यो नाति मन्यते '
ऋ. १०.९१.२
(२) युद्ध सम्बन्धी ।
'न्यस्मै द्युम्ना जन्या नमन्ताम् '
ऋ. १०.४२.६, अ. २०.८९.६
(३) आगे होने वाला , (४) जन-समूह में होने वाला
'पात् पतिर्जन्यादंहसो नो मित्रः '
ऋ. ४.५५.५
(५) बन्धु ।
'उत्तमां जनिमां जन्यामुत्तमान् '
अ.२०.१३५.२
(६) सब जनों का हितकारी अग्नि ।
'दूतो जन्येव मित्र्यः '
ऋ. २.६.७

जनानाम् उभयास - मनुष्यों में ज्ञानी और अज्ञानी दोनों
'त्वां राय उभयासो जनानाम् '
ऋ. ६.१.५, मै.सं. ४.१३.६, २०६.१३, का.सं. १८.२०.

जनानां संगमनः - (१) यम का ।
विशेषण - पापी जनों को कर्मानुसार योग्य स्थान पर भेजने वाला-यम । संगमनः ।
'वैवस्वतं संगमनं जनानां
यमं राजानां हविषा दुवस्य '
ऋ. १०.१४.१, अ. १८.१.४९, ३.१३, मै.सं. ४.१४.१६,२४३.७,तै.आ. ६.१.१, नि. १०.२०.

जनायन - जन + अयन । अर्थ-मनुष्यों के जाने का मार्ग
'ये ते पन्थानो बहवो जनायनाः '
अ. १२.१.४७

जनासः - जन शब्द के प्र.ब. व. का रूप । अर्थ है -मनुष्य, असुर ।
'मुह्यन्त्वन्ये अभितो जनास

इहास्माकं मघवा सूरिरस्तु'
ऋ. १०.८१.६, साम. २.९३९, तै.सं.
यह कर्म निष्ठा देखकर वे असुर जो कर्म की उपासना नहीं करते जलते रहें (अन्ये अभितः जन्तासः मुह्यन्तु) तथा हम कर्मनिष्ठों को सर्वधन का स्वामी तथा प्रज्ञाता इन्द्र अपनाएं (इह मघवा सूरिः अस्माकम् अस्तु ।)

जनाषाट् – समस्त जनों को अपने वश में करने में समर्थ परमेश्वर – इन्द्र ।
'महि क्षत्रं जनाषाडिन्द्र तव्यूम'
ऋ. १.५४.११, मै.सं. ४.१४.१८, २४९.१, का.सं. ३८.७, तै.ब्रा. २.६.९.१. हे समस्त जनों को अपने वश में करने में समर्थ इन्द्र ! तू बड़े भारी बलशाली (तव्यम्) क्षत्रिय बल सा... ।

जन्याः– (१) सृष्टि की उत्पत्ति के विशेष कारण ।
'क आसं जन्याः के वराः'
अ. ११.८.१

जन्या – द्वि.व. । जनों के हित कारक स्त्री पुरुष का अश्विद्वय (२) उत्तम सन्तान उत्पन्न करने वाले ।
'दूतेव हव्या जन्या पुरुत्रा'
ऋ. २.३९.१.

जनि – जन् (उत्पन्न करना) + इ = जनि । अर्थ सन्तान उत्पन्न करने वाली स्त्री (जन्मन्ते असु)।
'पतिभ्यो न जनयः शुम्भमानाः'
ऋ. १०.११०.५, अ. ५.१२.५, वाज.सं. २९.३०,मै.सं. ४.१३.३, २०.२.३, का.सं. १६.२०, तै.ब्रा. ३.६.३.३, नि. ८.१०.
जैसे शोभायमान या शोभन की इच्छा करती हुई स्त्रियां अपने पतियों के निमित्त मैथुन के लिए। पुनः–
'जारः कन्तीनां पतिर्जनीनाम्'
ऋ. १.६६.८. नि. १०.२१.
दे अग
(२) पुत्रोत्पादन समर्थ पति ।
पुरू सहस्रा जनयो न पत्नीः । जैसे पुत्रोत्पादक समर्थ पुरुष (जनयः) अपनी स्त्रियों की रक्षा करते हैं (पत्नीः न) ।

जनिकाम – पुत्रोत्पादन में समर्थ भार्या की अभिलाषा वाला ।
'जनिकामोऽहमागमन्'
अ. २.३०.५

जनित्री – सभी जीवों को उत्पन्न करने वाली द्यावा पृथिवी । य इमे द्यावापृथिवी जनित्री
'रुपैरपिंशब्द् भुवनानि विश्वा'
ऋ. १०.११०.९, अ. ५.१२.९.वाज.सं. २९.३४, मै.सं. ४.१३.३:२०२.११ ,का.सं. १६.२०, तै.ब्र. ३.६.३.४, नि. ८.१४.
व्युत्पत्ति – जन् + णि + तृन् + ङीष् = जनित्री णि अन्तर्भूत है । द्विवचन में पूर्व सवर्ण दीर्घ है ।

जनित्व – (१) उत्पत्ति का आधार ।
'अदितिर्जातम् अदितिजर्नित्वम्'
ऋ. १.८९.१०, अ. ७.६.१, वा.सं. २५.२३, मै.सं. ४.१४.४, २१२.२ ,ऐ. ब्रा. ३.३१. १२, तै.आ. १.१३.२, जै. उप. ब्रा. १.४१.४ नि . ४.२३.
(२) जनिष्यमाण, जन्म लेने वाला ।
व्युत्पत्ति – जन् + त्वन् = जनित्व (कृत्यार्ये तवै केन् केन्यत्वनः)
(३) भार्या का धर्म पुत्रोत्पादन ।
'पत्युर्जनित्वमभिसंबभूथ'
ऋ. १०.१८.८, अ. १८.३.२, तै. आ. ६.१.३.

जनित्वन – उत्पन्न करना ।
'जनि त्वनाय मामहे'
ऋ. ८.२.४२

जनिता – (१) जन् म्तृच् = जनिता । उत्पन्न करने वाला, (२) पिता –(दया.)
'उदुस्रिया जनिता यो जजान'
ऋ. ३.१.१२
जिस विद्वान् पिता ने तेजस्विता को उत्पन्न किया है –(दया)
जिस परमात्मा ने जल उत्पन्न किया –
(३) द्युलोक को भी जनिता कहा गया है क्योंक्रि द्युलोक से ही रस, रस से अन्न, अन्न से रेतस् और रेतस् से पुरुष होता है ।
औषधिभ्योऽन्नं अन्नात् रेतस् , रेतसः पुरुषः ।
'द्यौर्मेपिता जनिता नाभिरत्र'
ऋ. १.१६४.३३. नि. ४.२१.

जनितु – जन्म ।
'पुरा रात्र्य जनितोरेके अह्नि'
अ. १९.५६.२

जनितुः पितां – समस्त उत्पादक प्राणियों और

लोगों का पिता या पालक उच्छिष्ट ब्रह्म ।
'पिता जनितुरुच्छिष्टः'
अ. ११.७.१६

जनिदा – अपत्योत्पादक स्त्री को देने वाला ।
'जनीयन्तो जनिदायम् अक्षितो तिम्'
ऋ. ४.१७.१६

जनिधाः – पत्नी को धारण पोषण करने वाला पति ।
'ये अस्य कामं जनिधा इव ग्मन्'
ऋ. १०.२९.५, अ. २०.७६.५.

जनिः पत्नीः – सन्तानाभिलाषिणी स्त्री ।
'तमीं गिरो जनयो न पत्नीः'

जनिमा – (१) उत्तम जन्म-वाला स्थान
(२) रत्नों और अन्नों को उत्पन्न करने वाली भूमि का स्वामी ।
'तव त्विषो जनिमन् रेजत द्यौः'
ऋ. ४.१७.२
(३) जन्म ।
'उत्तमां जनिमाम्'
अ. २०.१३५.२
'अश्वस्यात्र जनिमास्यचस्वः'
ऋ. २.३५.६.

जनिवत् – जनि + वतप् = जनिवत् ।
अर्थ -(१) स्त्री वाला, स्त्री युक्त, (२) प्रजनन कर्म में समर्थ ।
'अमेनांश्चिज्जनिवतश्चकर्थ'
ऋ. ५.३१.२, नि. ३.२१.
हे इन्द्र ! तू स्त्री -रहित श्रोताओं को स्त्रीयुक्त या प्रजनन कर्म समर्थ बताता है ।

जनिष्ट – अजनिष्ठ (वेद में अट् का अभाव है ।) यहां लट् के अर्थ में लुङ् का प्रयोग है । अतः अर्थ है जायते (उत्पन्न होता है)
'विद्युन्न या पतन्ती दविद्योद्
भरन्ती मे अप्या काम्यानि ।
जनिष्टो अपो नर्यः सुजातः ।
प्रोर्वशी तिरत् दीर्घमायुः ॥'
ऋ. १०.९५.१०, नि. ११.३६.
जो माध्यमिक देवता उर्वशी विद्युत् के सदृश अन्तरिक्ष में जाती हुई (या उर्वशी विद्युत् पतन्ती) अन्तरिक्ष में उत्पन्न हमारे कमनीय जलों को मेरे. लिए लाती हुई (काम्यानि अप्या मे भरन्ती) जिनसे जल की ऊर्मियाँ सुजात पुत्र के समान शस्य रूपी सम्पत्ति को बढ़ाने वाली उत्पन्न होती है (अपः नर्यः सुजातः जनिष्ट उ) बार-बार चमकती है (दविद्योत्) उन जल की लहरों में अन्न उत्पन्न कर उर्वशी दीर्घ आयु बढ़ाती है (दीर्घम् आयुः प्रतिरते) है ।
अन्य अर्थ – जिस प्रकार अन्तरिक्षस्थ काम्य उत्पन्न जलों को प्रदान करती हुई बिजली द्योतमान होती है उसी प्रकार हमारी प्राप्तव्या प्रिया काम्य सुखों को देती हुई गर्भाधान काल में अपने उत्तम स्वरूप को दर्शाती है (ये अप्या काम्यानि भरन्ती या पतन्ती विद्युत न दविद्योत्) और जब निश्चय से अन्तरिक्षस्थ जलों से जल प्रपात की तरह उस रज वीर्य से यह अधिक कर्मा मनुष्यों के लिए हितकारी या मनुष्य की सन्तान तथा माता पिता से भी अधिक गुणी पुत्र उत्पन्न होता है (अपः नर्यः सुजातः जनिष्टः) तब स्त्री पालन पोषण कर इसकी आयु को बढाती है (दीर्घम् आयुः प्रतिखे) ।

जनी – (१) जाया, स्त्री ।
'प्रतिष्या सूनरी जनी'
ऋ. ४.५२.१, सामं. २.१०७५. .
(२) जगज्जननी ।
'आय वनेनती जनी'
अ. २०.१३१.८

जनीनां ऋतु – स्त्रियों का ऋतुकाल ।
'व्यन्तु देवीर्य ऋतुर्जनीनाम्'
ऋ. ५.४६.८, अ. ७.४९.२, मै.सं. ४.१३.१०, २१३.११. नि. १२.४६.

जनीयन् – उत्तम सन्तति जनक भार्या की कामना करने वाला ।
'जनीयन्तो न्वग्रवः'
ऋ. ७.९६.४, साम. २.८१०, आश्व श्रौ.सू ३.८.१.
'जनीयन्तो जनिदामक्षितोतिम्'
ऋ. ४.१७.१६
'तेना जनीयते जायाम्'
अ. ६.८२.३.

जनुष् – (१) जन्म, अभिजाति , (२) जनिष्यमाण, भावी, होनहार, । (३) जन्म लेने वाला प्राणी ।
'धीरा त्वस्य महिना जनूंषि'
ऋ. ७.८६.१, का.सं. ४.१६.

(४) सर्वोत्पादक ।

'द्यावा च भूमा जनुषस्तुजेते'

ऋ. १.६१.१४, अ. २०.३५.१४

जन्यु- सन्तानोत्पत्ति करने वाला पति ।

'जन्युः पतिस्थन्वमाविविश्याः'

ऋ. १०.१०.३, अ. १८.१.३.

जनू - (१) उत्पत्ति , (२) उत्पादिका माता ।

'जनूश्चिद्वो मरुतो त्वेष्येण'

ऋ. ७.५८.२

जभ्रिरे- धारण करते और पुष्ट करते हैं ।

' आ रोदसी बृहती वेविदानाः
प्र रुद्रिया जभ्रिरे यज्ञियासः'

ऋ. १.७२.४

मरण समय में प्राणियों को रुलाने वाले (रुद्रियासः) । प्राणों के साधक ज्ञान सम्पादन करने वाले (वेदिदानाः) सर्वोपास्य परमेश्वर के उपासक विद्वान् (यज्ञियासः) । बड़े भारी सूर्यऔर पृथ्वी के समान देह में स्थित प्राण और अपान् भूमि और राज्य या विद्या और कर्म दोनों को (रोदसी) उत्तम रीति से धारण और पोषण करते हैं (जभ्रिरे) ।

जमति - गच्छति (जाता है) । जम् धातु का जाना अर्थ में प्रयोग हुआ है ।

जिसमें जामि शब्द लड़की के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है । लड़की पिता के गृह से पति के घर चली जाती है । अतः जम धातु से जामि शब्द बना (निर्गमन प्राया) ।

जमदग्निदत्ता - (१) प्रज्वलित अग्नि वाली किरणों से प्रदान की हुई -उषा ।

(२) चक्षु द्वारा प्राप्त ज्ञान को अपने भीतर धारण करने वाली ।

(३) प्रज्वलित तेजस्वी अग्नि नामक या आग्नेयास्त्र को प्रज्वलित करने वाले वीरों से दी गई भूमि ।

'बृहन्मिमाय जमदग्निदत्ता'

ऋ. ३.५३.१५

जम्भ- (१) जभ्यन्ते गात्राणि विनाम्यन्ते येन सः (जिसके कारण मात्र हिलते डुलते हैं) । शरीर ।

(२) मुख ।

(३) दाँत, (४) हिंसाकारी अस्त्र शस्त्र ।

'तृषु यदन्ना समवृक्त जम्भैः'

ऋ. ७.३.४

(५) नाश ।

'जङ्गिडो-जम्भाद् विशरात्'

अ. २.४.२

(६) अंगों को जकड़ने वाला ।

(७) असुर, (८) अस्थूलदन्त -

'मात्वा जम्भः संहनुर्मा तमो विदत्'

अ. ८.१.१६

जभ्यः - हिंसायोग्य, विनाश करने योग्य पंतग है ।

'तर्द है पतंग है जभ्य हा उपक्वस'

अ. ६.५०.२

जम्भक - हिंसक जन्तुओं का नाशक ।

'सानुभ्यो जभ्भकम्'

वाज.सं. ३०.१६, तै.ब्रा. ३.४.१.१२.

जम्भय - नष्ट कर । जम्भधातु नष्ट करना अर्थ में है ।

या मे दूरे तड़ितो या अरातयोभिसन्ति जम्भया ता अवप्रसः । जो दूर या निकट मेरी शत्रु सेनाएं हैं उन्हें नष्ट कर तथा अरूप बना डाल ।

जम्भयन् - हिसंक, पीड़ा पहुंचाने वाला ।

'जम्भयन्तं मरीमृशम्'

अ. ८.६.१७.

जम्भसुत - जाया और पति जम्भौ है । (१) जाया और पति दोनों से उत्पन्न पुत्र (२) जम्भ से ही दीप्तियुक्त ।

'इमं जम्भसुतं पिब'

ऋ. ८.९१.२, जै.ब्रा. १.२.२०.

जम्भ्य - अन्न कुतरने वाले अगले दांत ।

'जम्भ्यैस्तस्कराँ उत'

वाज.सं. ११.७८, तै.सं. ४.१.१०.२, का.सं. १६.७.

जमदग्नि- प्रयमिताग्नि, प्रज्वलिताग्नि, प्रभूताग्नि . (जिसे बहुत आग हो) । यमदग्नि से जमदग्नि शब्द बना है और जमदग्नि का अपत्य जामदग्न्य (परशुराम) के लिए आया है । जम धातु गत्यर्थक है ।

जमदग्निऋषिः - (१) सबका द्रष्टा सूर्य

(२) जमदग्नि नामक ऋषि ।

'जमदग्निर्ऋषिः'

वाज.सं. १३.५६, मै.सं. २.७.१९, १०४.८, का.सं. १६.१९.श. ब्रा. ८.१.२.३.

जयत् – (१) जयति (जीतता है) । (२) जीता हुआ ।

'सवर्गं यन्मघवासूर्यं जयत्'

ऋ. १०.४३.५, अ. २०.१७.५.

जब इन्द्र वृष्टि देने वाले मेघ को (सवर्गं सूर्यम्) जीतता है-दुर्ग ।

जिस तेज से धनपति परमेश्वर (मघवा) सूर्य को जीता हुआ है (सूर्य जयत्) दुगुर्णों को हटाने वाले उस तेज को (संवर्गम्) ।

(३) विजयी ।

'जयतामिव दुन्दुभिः'

ऋ. १.२८.५, आप.श्रौ.सू. १६.२६.१, मा.श्रौ.सू. ६.१.७, नि. ९ .२१.

विजयी राजाओं की दुन्दुभि की तरह ।

जयन् – जीतता हुआ या जीतने वाला । इन्द्र या राजा के विशेषण के रूप में व्यवहृत ।

'आशुं जयन्त मनु यासु वर्धसे'

ऋ. ५.४४.१, वाज.सं. ७.२१, तै.सं. १.४.९.१, मै.सं. १.३.११, ३४.५, श.ब्रा. ४.२.१.९.

शीघ्रगामी, असुरों को जीतने वाले हे सोम ! जिन स्तुतियों से तू बढ़ता है तृप्त कर । हे राजन्! जिन प्रजाओं में रहकर शीघ्र शत्रुओं को जीतने वाले अपने आप को तू बढ़ाता है (यासुअनुवर्धसे) -दया.

जयाय – जयाय (जीता) – दीर्घ वेद में ही होता है ।

जयामसि– जयामः (इम जीतते हैं)

'इदन्तोमसि' (पा. ७.१.४६)

से मस् का आगम इ के साथ हुआ है ।

जयुष् – (१) रथ – (२) विजयी-(दया.)

जर – अर ।

'द्वादशारं नहि तज्जराय'

ऋ. १.१६४.११, अ. ९.९.१३, नि. ४.२७.

वह बारह अरों वाला कालचक्र कभी जीर्ण नहीं होता ।

जरण– (१) स्तुत्य कर्म, (२) ऐश्वर्य ।

'स्तुवेण सिञ्चन् जरणभिधाम'

ऋ. १.१२१.६

स्तुना से अभिषिक्त होता हुआ तेज और बल का भोग करें और स्तुत्य कर्मों और ऐश्वर्यों को प्राप्त करे (जरणा है अभिधाम) ।

जरणा– (१) उत्तम स्तुति, (२) वार्द्धक्य, (३) दीर्घायु ।

'स्वाभुवो जरणामश्नवन्त'

ऋ. ७.३०.४

पुनः

'भद्रं जीवन्तो जरणामशीमहि'

ऋ. १०.३७.६

(४) गर्भाशय का जेरझार ।

'ह्वारो न वक्वा जरणा अनाकृतः'

ऋ. १.१४१.७

जरण्या– (१) उपदेश करने योग्य वेद वाणी, (२) जरायु ।

'युवं वन्दनं निऋतं जरण्यया'

ऋ. १.११९.७

हे स्त्रीपुरुषो ! उपदेश करने योग्य वेदवाणी से युक्त (जरण्यया) नित्याभि वन्दन योग्य (वन्दनम्) ।

अथवा,

तुम दोनों स्तुतियोग्य, जरायु के साथ बाहर आए, विविध गुणों से पूर्ण रमणीय बालक को....।

जरणिप्रा– विद्वानों या स्तोताओं की इच्छा को पूर्ण करने वाली ।

'सन्ति स्पृधो जरणिप्रा अधृष्टाः'

ऋ. १०.१००.१२

जरण्युः – उपदेष्टा ।

'सरत् सरण्युः कारवे जरण्यु'

ऋ. १०.६१.२३

जरति – जरते (स्तौति), स्तुति करता है ।

जरती– परिपक्व जीर्ण

'जरतीभिरोषधीभिः
पर्णेभिः शकुनानाम्
कार्मारो अश्मभिः द्युभिः
हिरण्यवन्तमिच्छतीन्द्रायेन्दो परि स्रव'

ऋ. ९.११२.२.

परिपक्व औषधियों से दुकानदार (जरतीभिः ओषधीभिः), पक्षियों के पंख से कुशल कारीगर (शकुनानां पर्णेभिः), चमकदार हीरों से सुनार (द्युभिः अश्मभिः कार्मारः) धनाढ्य सेठ को चाहता है (हिरण्य वन्तम इच्छति) । अतः हे

ऐश्वर्यमय प्रभो ! (इन्दो) ऐश्वर्य प्राप्ति के लिए (इन्द्राय) ऐश्वर्य की सृष्टि कीजिए (परिस्रव) अथवा, हे सोम इन्द्र के लिए तू चू (इन्द्राय परिस्रव) ।

जरते - स्तौति-स्तुति करता है ।

'दिवस्परि प्रथमं जज्ञे अग्निः
अस्मत् द्वितीयं परिजातवेदाः
तृतीयमप्सु नृपणाअजस्रम्
इन्धानं एनं जरते स्वाधीः'

ऋ. १०.४५.१, वाज.सं. १२.१८, तै.सं. १.३.१४.५, ४.२.२.१, मै सं..२.७.९,८६.६,का.सं. १६.९, श.ब्रा. ६.७.४.३, आप.मं.पा. २ .११.२१, नि.४.२४

वह जात प्रज्ञ अग्नि पहले द्युलोक के ऊपर आदित्य रूप में उत्पन्न हुआ (जातवेदाःअग्नि प्रथमं दिवः परिजज्ञे) द्वितीय अग्नि मनुष्यों पर अनुग्रहशील (द्वितीय नृमणाः) हमलोगों के यहां अग्नि रूप में उत्पन्न हुआ (अस्मत्परि) तथा तृतीय अग्नि (तृतीयम्) अन्तरिक्ष लोक में (अप्सु) विद्युत् के रूप में प्रादुर्भूत हुआ । ऐसे अग्नि को सुप्रज्ञनेता या यजमानं दीप्त करता हुआ स्तुति करता है (एवं स्वाधीःइन्धानः जरते) ।

अन्य अर्थ - सब प्राणियों में अग्रणी श्रेष्ठ मनुष्य सर्वप्रथम ज्ञान देने वाले ब्रह्मचर्याश्रम में उत्पन्न होता है । पुनः वेदविद्या प्राप्त कर (जात वेदाः) गृहस्थाश्रम में द्वितीय जन्म धारण करता है, पुनः विद्यार्थियों में संलग्न मनवाला (नृमणाः) कर्म प्रधान वाणप्रस्थाश्रम में (अप्सु) तृतीय जन्म ग्रहण करता है और फिर इस परमात्मा को निरन्तर (अजस्रम्) अपने हृदय में प्रदीप्त करता हुआ ध्यानी संन्यासी हो (स्वाधीः) वैदिक धर्म का उपदेश करता है (जरते) ।

जरदष्टिः - (१) जरा अवस्था तक की जीवन यात्रा, (२) जीवन पयर्न्त उपभोग करने के निमित्त अन्न आदि सामग्री । अश + क्तिन् = अष्टि जरत् + अष्टिः ।

'अच्छिद्यमाना जरदष्टिरस्तु ते'

अ. ८.२.१

(३) वृद्धावस्था तकभोक्ता ।

'जरदष्टिः कृतवीर्योः विहायाः'

अ. १७.१.२७

(४) बुढ़ापे तक जीवन बिताना ।

'जरदष्टि कृणोमित्वा'

अ. ५.३०.५,८,

(५) जरावस्था तक जीवन यापन करने वाला ।

'विश्वे देवा जरदष्टिः यथासत्'

अ. २.२८.५, तै.सं. २.३.१०.३, ११.५, मै.सं. २.३.४.३१.१२, का. सं. ११.७.८, ३६.१५, तै.ब्रा. २.७.७.५, तै.आ. २.५.१, शां.गृ. सू. १.२७.७, आप. मं.पा. २.४.२.

'उप त्रिबन्धुर्जरदष्टिमेति'

ऋ. ७.३७.७

जरद्विषः - (१) जरद् + विषः । सर्पादि के विष का नाशक अग्नि,
(२) शत्रुरूप विष को शमन करने वाला,
(३) व्यापक विस्तृत ज्ञान में उपदेश करने वाला,
(४) विद्युत् तथा मेघ द्वारा जल गिराने वाला सूर्य ।

'सुशर्माणं स्ववसंजरद्विषम्'

ऋ. ५.८.२

जरन् - उपदेश करने वाला ।

'उत्तिष्ठ वि चरा जरन्'

अ. २०.१२७.११, शां.श्रौ.सू. १२.१५.१.२.

वृद्ध होता हुआ, बुझाता हुआ, अल्पप्रकाश ।

जरमाण- (१) स्तुति किया जाता हुआ
(२) गुणस्तुति करता हुआ ।

'सं जागृवद्भिः जरमाण् इध्यते'

ऋ. १०.९१.१

'अग्नयो न जरमाणा अनु द्यून्'

ऋ. २.२८.१

(३) उपदेष्टा ।

'ता नव्यसो जरमाणस्य मन्म'

ऋ. ६.६२.४

जरयन् - काल क्रम से सभी को जीर्ण करने वाला इन्द्र-परमेश्वर ।

'इन्द्रमजुर्यं जरयन्तमुक्षितं'

ऋ. २.१६.१.

जरयन्ती - (१) वृद्धावस्था तकआयु व्यतीत करती हुई,
(२) प्राणियों के जीवन क़ी हानि करती हुई,

(३) उषा या स्त्री का विशेषण ।
*'जरयन्ती वृजनं पद्वदीयत
उत्पातयति पक्षिणः'*
ऋ. १.४८.५
जिस प्रकार स्त्री पुरुष के साथ ही वृद्धावस्था तक आयु व्यतीत करती हुई गमन योग्य मार्ग पर जलती है उसी प्रकार उषा भी प्रतिदिन प्राणियों के जीवन की हानि करती हुई मानो पग पग धरती हुई प्राप्त होती है । जिस प्रकार स्त्री घर के अन्न की रक्षा के लिए पक्षियों को उड़ाती है या अपने पक्ष वाले सम्बन्धियों को उत्तम आदर प्राप्त कराती है, उसी प्रकार उषा भी अपने आगमन पर पक्षियों को उड़ाती है (उत्पातयति) ।

जरस् - जृ + अङ् = जर । जर + टाप् = जरा = जरस् । अर्थ -वार्द्धक्य ।

जरस्व - जृ (स्तुतिकरना) के लोट् म.पु.ए.व. का रूप ।
अर्थ (१) स्तुतिकर,
(२) ग्रहण कर,
(३) जिधर तिधर भगा दे.
(४) दूरकर ।
'पुरुणीथा जातवेदो जरस्व'
ऋ. ७.९.६
हे बहुस्तुत अग्नि, इस हवि को सर्वतो भाव से ग्रहण कर ।
अथवा, हे अग्नि ! बहुत स्तोत्रों से देवों की स्तुति कर या जिधर तिधर राक्षसों को भगा दे ।
अथवा,
हे मनुष्य मात्र की शिक्षा देने वाले विद्वान् (जातवेदाः) धर्मनीति के द्वारा (पुरुणीथा) दुःखों को दूर कीजए ।

जर्भरी- (द्वि.) । भृ (भरण करना) के यङ्लुडन्त जभृ + ई= + जर्भरी ।
अर्थ-(१) एकत्र स्थापित करने वाले,
(२) भरण करने वाले ।
'सृण्येव जर्भरी तुर्फरीत्'
ऋ. १०.१०६.६, नि. १३.५.
हे अश्विनी कुमारो ! तुम दोनों अंकुश के समान एकत्र स्थापित करने वाले एवं नाश करने वाले हो ।
(३) बलवान् के अर्थ में भी इस शब्द का प्रयोग होता है ।
आजकल भी जब्बर या 'जाबिर बलवान् या कुशल के अर्थ में प्रयुक्त होता है ।

जरूथ - (१) आयुनाशक वार्द्धक्य ।
(२) जीवन नाशक अकालमृत्यु ।
'अग्निरद्व्यो निरदहज्जरूथम्'
ऋ. १०.८०.३

जर्भुराण - (१) खूब परिपुष्ट होता हुआ
(२) राष्ट्र का निरन्तर धारण पालन करता हुआ ।
'अरण्येषु जर्भुराणा चरन्ति'
ऋ १६३.११, वाज.सं. २९.२२, तै.सं. ४.६.७.४, का.सं. (अश्व.) ६.३.
(३) पालन करता हुआ ।
(४) विस्तृत रूप से अत्यन्त पुष्ट अग्नि ।
'नाभिमृशे तन्वा जर्भुराणः'
ऋ. २.१०.५, वाज.सं. ११.२४, तै.सं. ४.१.२.५, मै.सं. २.७.२, ७६.६, का.सं. १६.२, श.ब्रा. ६.३.३.२०.
अग्नि किसी का स्पर्श सहन नहीं करता ।
पुनः
'अनिशितं निमिषि जर्भुराणः'
ऋ. २.३८.८

जर्हृषाणः - (१) प्रसन्न होता हुआ
(२) प्रसन्न करता हुआ ।
'उब्जन्नर्णांसि जर्हृषाणो अन्धसा'
ऋ. १.५२.२
(३) अन्न से प्रसन्न होता हुआ या जगत् भर को प्रसन्न करता हुआ
(४) हृष्ट, प्रसन्न ।
'इन्द्र पुरो जर्हृषाणो विदूधोत्'
पुनः-
'नेत्वा धृष्णुर्हरसा जर्हृषाणः ।'
ऋ. १०.१६.७, अ. १८.२.५८, तै.अ. ६.१.४.
(५) हरण करने की इच्छा करता हुआ ।

जरा- जृ (वयो हानि अर्थ में) + अङ् = जर । जर + टाप् = जरा ।
अर्थ-(१) वार्द्धक्य, बुढ़ापा,

'न ह्यस्या अपरं चन
जरसा मरते पतिः'
ऋ. १०.८६.११, अ. २०.१२६.११, तै.सं. १.७.१३.१, का.सं. ८.१७, नि. ११.३८
इस इन्द्राणी के समान और स्त्री मैंने नहीं देखी और इनके पति इन्द्र कभी बुढापा से नहीं मरते।
अथवा,
आत्मा के विरुद्ध कभी कार्य न करने वाली विदुषी स्त्री के पति कदापि वार्द्धक्य से नहीं मरते।
(२) स्तुति,
(३) प्रसवोपरान्त निकलने वाला पदार्थ-झार।
स्तुति के अर्थ में जरा का प्रयोग
'जराबोध तद्विविड्ढि
विशे विशे यज्ञियाय।
स्तोमं रुद्राय दृशीकम्'
ऋ. १.२७.१०, साम. १.१५, २.१०१३, नि. १०.८.
हे भगवन अग्नि, (रुद्र) जो यह स्तुति मुझ से की जा रही है उसे आप जाने (जरा बोध) अथवा, हे स्तुति से जगाए जाने वाले या हे देवों को होता रूप में होकर जगाने वाले अग्नि (जराबोध) यज्ञसम्बन्धी अनुष्ठान की सिद्धि के लिए देवयजन रूपी कर्त्तव्य को (तत्) यज्ञ कर्ता के लिए तथा प्रत्येक मनुष्य के लिए कर (यज्ञियाय निशे निशे निविड्ढि)। रुद्र के लिए दर्शनीय स्तोत्र (रुद्राय दृशीकम् स्तोमम्)। यहां अग्नि को ही रुद्र माना गया है और प्रत्येक व्यक्ति को यज्ञशील होने का आह्वान् है।

जरामृत्यु - (१) वृद्धावस्था में ही मृत्यु कराने वाली आयु।
'जरामृत्युं कृणुत दीर्घमायुः'
अ. २.१३.२, १९.२४.४.
(२) बुढापा भोगकर मरने वाला।
'जरामृत्यु र्भवति यो बिभर्ति'
ऋ. खि. १०.१२८.६, अ. १९.२६.१

जरायु - जरा + यु (मिश्रण अर्थ में) = जरायु।
अर्थ -(१) यह जरा के साथ रहता है।
(२) गर्भ का आवरण, उल्व, जरायु,
(३) (वेष्टन ढंकने वाला)। जैसे जैसे गर्भ बढता जाता है वैसे वैसे एक आवरण बनता जाता है। जिससे गर्भ वेष्टित रहता है। यह गर्भ की जरावस्था के साथ रहता है (गर्भस्य जरया)। प्रसूता स्त्री के प्रसव के बाद निकलने वाला पदार्थ भी 'जरा' (झार) कहलाता है। इस जरा से जो युक्त है वह जरायु है (जरया यूयते)
(४) झिल्ली जिसके भीतर गर्भ रहता है।
'एवा त्वं दशमास्य
सहा वेहि जरायुणा'
ऋ. ५.७८.८, अ. १.११.६.
इसी प्रकार हे गर्भ (दशमास्य) जरायु के साथ नीचे आ (जरायुणा सह अवेहि)
पुनः -
'अयं वेन श्चोदयत् पृश्निगर्भा
ज्योति र्जरायू रजसो विमाने।
इममपां संगमे सूर्यस्य
शिशुं न विप्रा मतिभी रिहन्ति'
ऋ. १०.१२३.१. वाज.सं. ७.१६, तै.सं. १.४.८.१, मै.सं. १.३.१०, ३४.२, का.सं. ४.३. श.ब्रा. ४.२.१.१०, नि. १०.३९.
वेन नामक करन्त मध्यस्थानीय देव (अयं वेनः) द्योतमान मेघ (ज्योतिः) जो बिजली से चमकता है तथा गर्भ के जरायु के सदृश वेष्टक (जरायुः) है अर्थात् मेघरूपी जरायु में प्रकाशमान गर्भ सा स्थित तथा जल के निर्माता अन्तरिक्ष में वर्तमान हो (रजसः विमाने) आदित्य की रश्मियों में रहने वाले जलों को (पृश्निगर्भाः) वर्षा ऋतु में पृथिवी की ओर प्रेरित करता है (चोदयत्)। इस अन्तरिक्ष में जल तथा सूर्य के संगमन स्थान में वर्तमान इस वेन को (अपां सूर्यस्य संगमे इमम्) मेधावी विप्र प्रज्ञा पूर्ण स्तुतियों से (विप्राः मतिभिः) शिशु के सदृश अर्चना करते हैं (शिशुं न रिहन्ति)।
(५) जीर्ण होने वाला।
गर्भावरण के अर्थ में प्रयोगः-
'यत्रवा प्रजापतिरजायत गर्भोभूत्वा
एतस्मात् यज्ञात् तस्य यत्
नेदिष्टम् उल्वमासीत् ते शणाः
'स्वं जरायु गौरिव'
अ. ६.४९.१, का.सं. ३५.१४, आप.श्रौ.सू. १४.२९.३

जराबोध - (१)स्तुति से प्रकाशित होने वाला,
(२) अपना वास्तविक ज्ञान प्राप्त करने वाला

परमेश्वर ।
'जराबोध तद् विविड्ढि'
ऋ. १.२७.१०, साम. १.१५, २.१०१३, आश्व.श्रौ.सू. ९.११.१४, नि . १०.८.
हे स्तुति से अथवा वास्तविक ज्ञान प्राप्त करने वाले (जराबोध) उसे प्राप्त कर ।
(३) स्तुतित से जगाए जाने वाला,
(४) देवों को होता रूप में होकर जगाने वाला - अग्नि ।
जरा का अर्थ यहां स्तुति है ।

जरिता - जृङ् (स्तुति करना) + तृच् = जरितृ । प्र.ए.व. में रूप . जरिता ।
अर्थ (१)स्तुति कर्त्ता ।
'ऋषयः पूर्वे जरितारो न भूना'
ऋ. १०.८२.४, वाज.सं. १७.२८, तै.सं. ४.६.२.२, मै.सं. २.१०.३ , १३४.६, का.सं. १८.१.
स्तुति करने वाले पूर्वकालीन ऋषियों ने जैसे वार्ष साहस्रिक यज्ञ से सृष्टि की ।
अथवा, प्राचीन भक्तों के समान ऋषिगण महान् तपश्चरण से जिस प्रकार परमात्मा को भक्ति भेंट करते हैं ।
(२) आस्तिक-दया. ।
स्तोता के अर्थ में ।
'नूनं साते प्रतिवरं जरित्रे ।
दुहीयदिन्द्र दक्षिणामघोनी
शिक्षा स्तोतृभ्या मातिधग्भगोनो
बृहद् वदेम विदथे सुवीराः'
ऋ. २.११.२१, १५.१०, १७, १६.९, १७.९, १८.९ २०.९, नि. १.७.
हे इन्द्र ! तेरी वह पुत्र रूपी दक्षिणा धनधान्य से संयुक्त होती हुई (इन्द्र साते दक्षिणा मघोनी) स्तुतिशील यजमान को अभिमत अर्थ प्रदान करे (जरित्रे वरं प्रतिदुहीयत्) तथा तू हम स्तोताओं में मनोरथ पूर्ण कर (स्तोतृभ्यः शिक्षा) तथा हमें छोड़ अन्य को न दे (या अति धक्) या हमें देने के बाद जो शेष बचे उसे अन्य को दे । हमें धन हो (भगोनः) जिससे यज्ञ में या अपने घर वीर पुत्रों से युक्त हो हम आप की कीर्त्ति गावें (विदथे सुवीराः बृहद् वदेम) ।
(३) आयु को जरावस्था तक पहुंचाने वाली स्त्री ।
'अनुस्वं धाम जरितुर्ववक्ष'
ऋ. ३.७.६

जरिता अक्तुः - (१) शब्द करने और जल सेचन करने वाला मेघ,
(२) अपने आयु को जीर्ण कर देने वाली और अपने गुणों को पुरुषों में अभिव्यक्त करने में समर्थ स्त्री ।
'उक्षा हयत्र परिधानमक्तोः
अनु स्वं धाम जरितुर्ववक्ष ।'
ऋ. ३.७.६

जरिमन् - (१) स्तुत्य
(२) बुढ़ापा ।
'नभो न रूपं जरिमा मिनाति'
ऋ. १.७१.१०
बुढ़ापा इस रूप को जल के समान या मेघ खण्ड को जल के समान या मेघ खण्ड के समान नाश कर देता है ।
जरिता, वयोहानिकर्त्ता
'मिनाति श्रियं जरिमा तनूनाम्'
ऋ. १.१७९.१
(३) सबको वृद्ध करने वाला वार्द्धक्य काल ।
(४) स्तुति योग्य-अग्नि ।
'तुभ्यमेव जरिमन् वर्धतामयम्'
अ. २.२८.१

जरूथ - 'जॄ' अथवा गृ (अर्चना या स्तुति अर्थ में) । + ऊथन् = जरूथ । अथवा गरूथ' अर्थ है -(१) स्तोत्र
(२) परुषभाषी
(३) आदर भाव-(दया.)
'त्वामग्ने समिधानो वशिष्ठो
जरुथं हन्यसि राये पुरन्धिम् ।
पुरुणीथा जातवेदा जरस्व ।
यूयं पात स्वस्तिर्भिः सदानः'
ऋ. ७.९.६
हे भगवान् अग्ने ! वसिष्ट ने बहुकर्म मय तुझे संदीप्त कर धन प्राप्ति के लिए स्तोत्र द्वारा पूजित किया (अग्ने वसिष्ठः पुरन्धिम् त्वां समिधानः राये जरूथं हन् यक्षि) ! हे बहुस्तुत । (पुरुणीथा) जात प्रज्ञ अग्नि (जातवेदः) हमारे दिए हुए इस हवि को सर्वतोभाव से ग्रहण कर (आजरस्व)

और हे देवो ! आप आशीर्वादों से सदा हमारी रक्षा करें । (यूयं स्वस्तिभिः नः पात) ।
अन्य अर्थ- हे अग्नि, तुझे वसिष्ठ प्रदीप्त करते हैं (वसिष्ठ समिधानः) और तू परुषभाषी राक्षस गण के मार (जरूथं हन्), धनवान् यजमान के लिए (राये) बुद्धि मान् देवगण की पूजा कर पुरन्धिम् यक्षि और हे अग्नि बहुस्तोत्रों से देवों की स्तुति कर (पुरुणीथा जातवेदो जरस्व) या जिधर तिधर राक्षसों को भगा दे ।
अन्य अर्थ-हे हमारे नायक विद्वान् , विद्या ज्योति को प्रदीप्त करता हुआ धनाढ्य मनुष्य (अग्ने समिधानः वसिष्ठः) बहुत बुद्धि वाले आप के प्रति (त्वां पुरन्धिम्) आदर भाव को पहुंचाता हुआ (जरूथं हन्) धर्मधन की प्राप्ति के लिए (राये) आप की संगति करता है (यक्षि) । हे मनुष्यमात्र को शिक्षा देने वाले विद्वान् (जातदेवः), धर्म नीति के द्वारा (पुरुणीथा) दुःखों को दूर कीजिए (जरस्व) और आप सभी विद्वान् स्वस्ति वचनों से सदा हमारी रक्षा करें ।
(४) जीर्ण या सूखा घास या काठ ।
(५) परुषभाषी शत्रु ।
'येभिस्तपोभिरदहो जरूथम्'
ऋ. ७.१.७

जल्प - व्यर्थ वाद विवाद कुशल ।
'नीहारेण प्रावृता जल्प्या च'
ऋ. १०. ८२.७, वाज.सं. १७.३१, तै.सं. ४.६.२.२, मै.सं. २.१०.३ , १३५,२ का.सं. १८.१, नि. १४.१०.

जल्हु - (१) ज्वलु (ज्वलनहीन) ।
ज्वल् + क्विप् = ज्वल् ।
ज्वल् + कु = ज्वलु = जल्हु ।
ज्वलं जहाति इति (जिसमें ज्वाला नहीं है । ज्वलनेन हीनः ।)
(२) अथवा ज्वलनम् अग्नि होत्रं जहाति इति जल्हुं (जोअग्नि छोड़ देता है) । यज्ञादि नित्य कर्म नहीं करता है ।
(३) अनाहिताग्नि, ।
'नारायासो न जल्हवः'
ऋ. ८.६१.११, नि. ६.२५
हम निर्धन हैं और न धन रहते अनाहिताग्नि ही ।

जलाष - (१) सुख
(२) सन्ताप का नाशक,
(३) जलवत् सुखों का देने वाला रुद्र का विशेषण ।
'शं नो रुद्रो रुद्रेभिर्जलाषः'
ऋ. ७.३५.६, अ. १९.१०.६.
'हस्तो यो अस्ति भेषजो जलाषः'
ऋ. २.३३.७

जलाषभेषज - (१) जिससे सुख के लिए ओषधि हो रुद्र का विशेषण, (२) सुखकारी ओषधि, (३) उपाय बतलाने वाला । (४) सुखस्वरूप सब का चिकित्सक, (५) भवरोग निवारक ।
'रुद्र जलाषभेषज'
अ. २.२७.६
(६) जलवत् शान्तिदायक, ।
दुःखनाशक (७) सब बाधाओं को दूर करने में समर्थ वैद्यवत् ।
'शुचि रुग्रो जलाषु भेषजः
ऋ. ८.२९.५

जल्पि - (१) जल्पना, (२) जल्प वाद, (३) परस्पर वार्तालाप ।
'येषा जल्पिः चरन्तन्तरेदम्'
अ. १९.५६.४

जल्गुलः - (१) गृहपति ।
'उलूखल सुतानाम् अवेद्विन्द्र जल्गुलः ।'
ऋ. १.२८.१-४.
जैसे गृहपति (जल्गुलः) ओखली से पीसकूट बनाए अन्न और ओषधि आदि पदार्थों को प्राप्त करता है उसका भोजन करता है वैसे ही हे इन्द्र या आचार्य ! तू बहुत बड़े कार्यों को करने वाले पुरुषों द्वारा उत्पन्न किये पुत्रों को प्राप्तकर उन्हें उपदेश दे ।

जवनी - (१) वेगयुक्त
(२) बलवती वाणी तथा आज्ञा प्रदान करने का अधिकार ।
'शतक्रतुं जवनी सूनृता रुहत्'
ऋ. १.५१.२
शतक्रतु को ही वेगवती सच्चे हृदय से निकली स्तुति प्राप्त होती है ।
'अजवसो जवनीभिः विवृश्चन्'
ऋ. २.१५.६.

जनस् – (१) गति, (२) वेग से बहने वाला प्रवाह
'पयोभिर्जिन्वे अपां जवांसि'
ऋ. ४.२१.८

जबारु – (१) मण्डल, (२) आदित्य।
जवमानरोहि (शीघ्रता से आकाश में आरोहण करने वाला) (३) अथवा जरमाण रोहि (समस्त लोकों को जीर्ण करता हुआ नभ में चढ़ने वाला) (४) अथवा गरमाणरोहि-रसों को निगलता हुआ आकाश में चढ़ने वाला।
व्युत्पत्ति – (१) जवमान + आङ् + रुह् + डु = जवारु (जवमान का जव और रुह का निपातन से रु (२) जृ + आङ् + रुह् = जबारु (निर्बलता या रोग आदि को नष्ट करता हुआ) आरूढ (५) गृ + आङ् रुह् = जबारु (रोग आदि को निगलता हुआ)।
(६) ऊर्ध्वरेताः
'तमिन्वे इव समनासमानम्
अभिक्रत्वा पुनती धीतिरश्याः .
ससस्य चर्मन् अधिचारु पृश्नेः
अग्रे रुप आरुपितं जबारु।'
ऋ ४.५.७.
आदित्यात्मारूप में वैश्वानरअग्नि की स्तुतिः- हे यजमान! तू उसी (तम् इत्) सभी के लिए एक रूप (समानम्) आदित्य को उनके अनुरूप स्तुति से (समाना धीतिः) तथा पवित्र करने वाले कर्म से या ज्ञान से (पुनती क्रत्वा) शीघ्र ही (न्वेव) प्राप्त कर (अभ्यश्याः) जिस आदित्य का दीप्तिमान् मण्डल (चारु जवारु) सृष्टि की आदि में या पूर्व दिशा में (अग्रे) पृथ्वी के निकट से (रुपः) निश्चल (ससस्य) द्युलोक के ऊपर (पृश्नेः अधि) चलने के निमित्त (चर्मन्) आरोपित हुआ (आरुपितम्)।
अन्य अर्थ-उसी समान गुण कर्मों वाले पति को (तंनुस्य समानम्) समान गुण कर्मों वाली कन्या तू (समाना) कर्म से अपने आप को पवित्र करती हुई (क्रत्वा पुनती) और बुद्धिमती होती हुई (धीती) प्राप्त कर (अभि अश्याः) जिस सोते हुए के भी पूरे शरीर पर (ससस्य इत् चर्मन् अधि) सुन्दर ऊर्ध्वरेतस्त्व आरोपित हो (चारु जबारु आरुपितम्)। जैसे द्युलोक में आरोपण कर्त्ता परमात्मा का आदित्य का मण्डल आरोपित है (प्रश्नेः अग्रे रूपः) उसी प्रकार वीर्य पति के शरीर में आरोपित है।

जविष्ठ – अत्यन्त गतिमान्।
'उतो पद्याभिर्जविष्ठः'
अ. २०.१३५.८, ऐ.ब्रा. ६.३५.१३, गो.ब्रा. २.६.१४, शां.श्रौ.सू. १२.१९.४.

जवेते – जु (वेग से जाना) के लट् प्र. प्र., द्वि. व. का रूप। जवेन गच्छतः (वेग से जाते हैं।)
गमनार्थक जु धातु पाणिनि के अनुसार परस्मैपदी है, परन्तु क्षीरस्वामी इसे उभयपदी मानते हैं।
'प्र पर्वतानामुशती उपस्थात्
अश्वे इव विषिते हासमाने
गावेव शुभ्रे मातरा रिहाणे
त्रिपाट् छुतु द्री पयसा जवेते'
ऋ. ३.३३.१
ये पर्वत की गोद से आती हुई विपाशा और शुतुद्रि नदियां जल से पूर्ण हो वेग से इस प्रकार कामना करती हुई जा रही हैं (पर्वतानाम् उपस्थात् उशती विपाट् शुतुद्रि पयसा प्रजवेते) जैसे वाजिशाला से छूटी घोड़ियां एक दूसरे से चलने में स्पर्द्धा करती या हंसती हुई दौड़ती हैं (विषिते हासमाने अश्वे इव) या जैसे दो सुन्दर प्रसूता गायें (शुभ्रे मातरा गावा इव) अपने बछड़े को चाटने के लिये दौड़ती हों (रिहाणे)।

जष – महा मत्स्य।
'जषामत्स्यारजसा येभ्यो अस्यसि'
अ. ११.२.२५

जसमानः – (१) हिंसा करता हुआ (२) शत्रुओं पर आघात करता हुआ।

जस्वनः – नाश करने वाला।
'जह्यसुष्वीन् प्रवृहापृणतः'
ऋ. ६.४४.११

जसु – (१) नाशकारी प्रभाव।
'यदा वलस्य पीयतो जसुं भेत्'
ऋ. १०.६८.६, अ. २०.१६.६.
(२) हिंसावृत्ति, (३) सर्वनाशक मृत्यु, (३) नाश।
'निबाधते अमतिर्नग्नता जसुः'
ऋ. १०.३३.२.

जसुरिः – (१) हिंसक शत्रुनाशक।

(२) अज्ञाननाशक विद्वान्
*'शयवे चिन्नासत्या शचीभिः
जसुरये स्तर्यं पिप्यथुर्गाम्'*
ऋ. १.११६.२२.
तुम दोनों जिस प्रकार सोने वाले को (शयवे) बिस्तर बिछाया जाता है उसी प्रकार शत्रुओं के नाश करने वाले के लिए (जसुरये) विस्तृत बढ़ाओ
अथवा,
अज्ञान-नाशक विद्वान् शुभ प्रेममयी वाणी और उत्तम गौ प्रदान कर ।
व्युत्पत्ति जस् (ताड़न, फेंकना-असन) + उरिन् = जसुरि (३) देवराज ने इसका अर्थ -तर्ज ताड़ित, (४) बद्धमुक्त, (५) हतवेग और (६) श्रान्त किया है । (७) मुक्त किया हुआ (वाज) ।
'नीचायमानं जसुरिं नश्येनम्'
नीचे उड़ते हुए पालतू बाज के छोड़े जाने पर जैसे अन्य पक्षी चिल्लाते हैं ।
(अथवा)
नीचता की ओर जाने वाले (नीचाय मानम्) तथा मुक्त किये बाज की तरह हिंसक (जसुरिं श्येनं न) जिस राजा को लोग कोसते हैं ।

जहका - ओहाङ् (गत्यर्थक) से सिद्ध । अर्थ -(१) सर्वत्र फैलाने वाली व्यापक शक्ति ।
'जहका वैष्णवी'
वाज.सं. २४.३६, मै.सं. ३.१४.१७, १७६.४.

जहा - यह शब्द सम्भवतः 'हन्' या 'हा' धातु से बना है । यास्क ने इसे 'हन' धातु से निष्पन्न माना है । 'हन्' धातु के लिट् उत्तम पुरुष ए.व का रूप 'जघान' है । उसीसे 'जहा' हो गया है । अर्थ है- मारा गया ।
'जहाको अस्मदीषते'
ऋ. ८.४५.३७, तै.आ. १.३.१, नि. ४.२.
कौन अपापी मारा जाता है ?

जह्नावी - (१) हा + नु + अण् । जहत्या त्यजन्त्यः । शत्रुसेनायाः ।
विरोधिनी (भागती हुई शत्रु सेना की विरोधिनी सेना) -दया. (२) शत्रुओं पर हथियार छोड़ने वाले सेनापति की, या वेतन, भृति आदि देने वाले, राजा की सेना ।
(३) जह्नोः त्यक्तुः नीतिः (त्यागी की नीतिः) दया. (४) त्यागी पुरुष की दान करने की शैली ।
(५) जह्नु की कन्या-गंगा ।
'युवोर्नरा द्रविणं जह्नाव्याम्'
ऋ. ३.५८.६

जहित - (१) हा + इतच् = जहित । त्यागी पुरुष ।
'प्रातिरतं जहितस्यायुर्दस्रां'
ऋ. १.११६.१०
त्यागी पुरुष केजीवन को उत्तम रीति से बढ़ाओ
(२) आया हुआ ।
'समुद्रे जहितो नरा'
ऋ. ८.५.२२

जह्नु - (१) त्याग करने वाला -दया (२) राजा जह्नु. ।

जहुष् - ओहाङ् + उसि = जहुष् । अर्थ - गन्तव्य ।

जह्नुष - मारने वाला ।
'हृदि यत् ते जघ्नुषो भीरगच्छत्'
ऋ. १.३२.१४
हे इन्द्र तुझ हन्ता के (जघ्नुषः) हृदय में भी यदि भय हो जाय तो...।

जहू - परमेश्वर की विशाल आदान करने वाली वशकारिणी शक्ति ।
'जुहूर्दाधार द्यामुपभृदन्तरिक्षं'
अ. १८.४.५

ज्रय - (१) वेग युक्त, (२) बलवान् (३) नाश कारक - अग्नि का विशेषण ।
(४) शत्रु पर आक्रमण करने में वेग वान् ।

यस् - ज्रि + असुन् = ज्रयस् । अर्थ है -(१) वेग, (२) गति । (३) तेज, (४) शत्रु संहारक बल (५) विजयी ।
'रुद्रेभिर्योषा तनुते पृथुज्रयः'
ऋ. १.१०१.७
स्त्री या भेदनीति की वाणी (योषा) जिस प्रकार वीर पुरुषों की सहायता से (रुद्रेभिः) बड़ा शत्रु संहारक बल प्रकट करती है ।
'इमे चिदस्य ज्रयसे नु देवीः
ऋ. ५.३२.९.
'वियस्य ते ज्रयसानस्या जर'
ऋ. १०.११५.४

ज्रयसानौ - (१) ज्ञानमार्ग से जाने वाले स्त्री पुरुष (२) मित्रा वरुण ।

'जयसानावरं पृथ्वति क्षरन्ति यामभिः'
ऋ. ५.६६.५
जन् + ड + टाप् = जा ।

जा – (१) जन् धातु से सम्पन्न, (२) पिता, (३) उत्पादक।
'अनिमिषद्भिः परिपाहि नो जाः'
ऋ. १.१४३.८
(४) जायते मातृपितृभ्यां सकाशात् इति जा । अर्थ-सन्तान्
(५) कन्या, बेटी ।
'सोमः परिक्रतुना पश्यते जाः
ऋ. ९.७१.९
(६) उत्पन्न हुआ सूर्य ।
'कृष्णा असेधत् अप सद्मनो जाः'
ऋ. ६.४७.२१
(७) प्रजा के अर्थ में –
(८) जाति ।
'समानौ बन्धुर्वरुण समा जा'
अ. ५.११.१०

जागतं छन्दः – (१) जगती नामक वैदिक छन्द, (२) वैश्यबल, (३) धनबल ।
'जागतेन छन्दसाङ्गिरस्वत्'
वाज.सं. ११.१०, मै.सं. २.७.१, ७४.१५, श.ब्रा. ६.३.१.३९.
(४) जगतों की रचना करने वाला बल
'दिवि विष्णुर्व्यक्रंस्त जागतेन छन्दसा'
वाज.सं. २.२५, श.ब्रा. १.९.३.१०, १२, शां.श्रौ.सू. ४.१२.२.

जागर– जागर्मि (जागता हूं) जागृ (जागन्त) के लिट् उ.पु.ए.व. का रूप । वर्त्तमान अर्थ में लिट् का प्रयोग वैदिक है ।

जागरण – जागृ + ल्युट् = जागरण । अर्थ –जागना, सावधान रहना ।
'भूत्यै जागरं'
वाज.सं. ३०.१७,तै.ब्रा. ३.४.१.१४.

जागरूके – (द्वि.व.) जागरूक । अर्थ (१) अपने अपने अधिकारों के प्रति सदा जागरुक द्यौ और पृथ्वी, (२) सदा जागरूक पृथ्वी और सूर्य –(दया.)
'ध्रुवे पदे तस्थतुर्जागरूके'
ऋ. ३.५४.७.

जाग्रद् दुःस्वप्न्य – जागते समय का दुःस्वप्न ।
'जाग्रद् दुःष्वप्न्यं स्वप्रेदुष्वप्न्यम्'

जागृवत् – जागरुक पुरुष ।
'सं जागृवद्भिः जरमाण इध्यते'
ऋ. १०.९१.१
पुनः –
'जागृवांसः समिन्धते'
१.२२.२१, ३.१०.९, साम. २.१०२३, वाज.सं. ३४.४४. नृसिंह पू. ता.उप. ५.१०, स्कन्द उप. १६. मुक्तिका उप. २.७८, आ. उप. ५.
परमात्मा के उस स्वरूप को जागरूक पुरुष ही प्रकाशित करते हैं ।

जागृविः– जागृ + क्विन् = जागृवि । जागृ में णि प्रत्यय छिपा हुआ है । अर्थ है–जो जगाता है (यः जागरयति) जगाने वाला ।
'विभीदको जागृविर्मह्यमच्छान्'
ऋ. १०.३४.१. नि. ९.८.
हर्रे या जुआ मुझे जगाने वाला तथा मन को आच्छादित करने वाला है ।
(२) जागरूक, सावधान ।
'द्युम्निनं पाहि जागृविम्'
ऋ. ३.३७.८, अ. २०.२०.१, ५७.४

जाट्य – जट (संघात अर्थ में) + ण्यत् = जाट्य । यहां ण्यत् का प्रयोग मतुप् अर्थ में हुआ है । अर्थ–जटवाला ।

जात– जन् + क्त = जात । अर्थ (१) उत्पन्न आप्राणि संघ, (२) अपत्य, (३) अन्न पानादि पदार्थ –दया. ।
'जातं विश्वाचो अहतं विषेण'
ऋ. १.११७.१६.
हे अश्विनी कुमारो, तुम दोनों ने चारों ओर गतिशील विश्वाच् नामक राक्षस के अपत्य को विष से मार डाला ।
अन्य अर्थ– तुम दोनों ने मेघ के जल से उत्पन्न समस्त प्राणि संघ को सुख प्राप्त कराया–यास्क ।
अथवा, विषम गति वाले दस्यु मण्डल के अन्नपानादि पदार्थों को विष से नष्ट करो । दया.
(४) सदा वर्तमान् ।
'यो जात एव प्रथमो मनस्वान्'
ऋ. २.१२.१, अ. २०.३४.१, तै.सं. १.७.१३.२,

मै.सं. ४.१२.३. १८६.४, का.सं. ८.१६, ऐ.ब्रा. ५.२.१, कौ.ब्रा. २१.४,२२, ४. ऐ.आ. १.५.२.२५, ५.३.१.२, वै.सू. ३३.१२, का.श्रौ.सू. २५.१४.१९, नि. १०.१०.

जो सदा वर्तमान ही रहता है (जात एव) जो सर्वाधार और चेतन है । (५) जायमान (उत्पन्न होने वाला ।

'सद्यो जातो व्यमिमीत यज्ञम्
अग्निर्देवानामभवत् पुरोगाः
अस्म होतुः प्रदिश्यृतस्य वाचि
स्वाहाकृतं हविरदन्तु देवाः'

ऋ. १०१.११०.११, अ. ५.१२.११, वाज.सं. २९.३६, मै.सं. ४.१३.५, २०५,६, का.सं. १६.२०, तै.ब्रा. ३.६.३.४, नि. ८.२१.

तत्क्षण जन्मते ही अग्नि यज्ञ सम्पादन करने लगता है । अतएव यह देवताओं में मुख्य या अग्रणी हुआ (देवानां पुरोगा अभवत्) । पूर्वदिशा में (प्रदिशिशि) आहवनीय अग्नि के रूप में वर्तमान इस होम -निष्पादक अग्नि के (ऋतस्य अस्य होतुः) स्वाहाकार पूर्वक मन्त्र द्वारा दिया आज्य रूपी हवि देवता पियें ।

जातविद्य - (१) जाते जाते विद्या-जातविद्या (प्रायश्चित आदि कर्मों में क्या करना चाहिए इस सबका ज्ञान) ।

(२) जाते जाते विद्यते (प्रत्येक जीव में विद्यमान) (३) जातमात्र एव विद्योतते प्रज्ञानस्वभावत्वात् (जो उत्पन्न होते ही विद्योतित हो उठे) - अग्नि

(४) जातं प्रज्ञानं यस्य (जिसमें वेद या ज्ञान या विचार हो) (५) जातानिसर्वाणि भूतानि वेद (जो सभी उत्पन्न जीवों को जानता है)। सर्वज्ञ परमेश्वर या पदार्थ ज्ञाता विद्वान् - (दया.)

(६) जाते जाते विद्या (तरह तरह के कर्त्तव्य कर्म के सम्बन्ध में ज्ञान देने वाली बात या आत्म विज्ञान ।

'ब्रह्मा त्वो वदति जातविद्याम्'

ऋ. १०.७१.११, नि. १.८.

एक सर्वज्ञ ब्रह्मा तरह तरह के कर्म के सम्बन्ध में ज्ञान देने वाली बात या आत्मविज्ञान (जातविधाम्) यज्ञ में कहता है (वदति) । (८) प्रायश्चित आदि कर्मों में यथा यथा करना चाहिए इस सब का ज्ञान ।

जातवेदाः - जात + विद् + असुन् = जातवेदस् । विद् धातु जानना, सत्ता और प्राप्ति अर्थ में आता है । (१) जातानि सर्वाणि भूतानि वेद (जो सभी उत्पन्न जीवों को जानता है ।, (२) सर्वज्ञ परमेश्वर या पदार्थ ज्ञाता विद्वान् -(दया.) (३) जातानि एनं विदुः (जन्मने वाले इसे जानते हैं) -परमेश्वर या अग्नि, (४) जात + विद् + असि = जातवेदस्, (५) जातम् अस्य वित्तम् इति जात वेदस-दुर्ग (जिसे धन हो) ऐश्वर्यवान्,) (६) जाते जाते विद्यते (जो प्रत्येक उत्पन्न पदार्थ में विद्यमान हो । जात + विद् (सत्ता) + असि = जात वेदस् ।

(७) जातं हविर्लक्षणम् धनं यस्य स जातवित्तः (जिसे हवि रूप धन हो) (८) जाता विद्या प्रज्ञानं यस्मात् यस्य वा स जातवेदाः (जिससे सब विद्याएं उत्पन्न हुई) परमेश्वर, अग्नि (९) यत् जात पशूनविन्दत् तत् जातवेदस् (जिसने जन्म लेते ही पशुओं को प्राप्त किया)

(१०) अग्नि, जातप्रज्ञ अग्नि -

(११) सभी पदार्थों में विद्यमान्-विद्युत् ।

'विश्वा अपश्यद् बहुधा ते अग्ने
जात वेदस्तन्वो देव एक'

ऋ. १०.५१.१.

हे जातप्रज्ञ अग्नि । तेरे समस्त अंग (विश्वा तन्व) अनेक प्रकार से दीख पड़ते हैं किन्तु एक प्रजापति ने ही तुझे देखा (एकःदेवः)

(अथवा)

हे सभी पदार्थों में विद्यमान विद्युत् (जातवेदः अग्ने) कोई बड़ा वैज्ञानिक (एकःदेवः)तेरे सभी अंगों को (विश्वाः तन्वः) अनेक प्रकार से देखता है (बहुधा अपश्यत्) ।

पुनः -

'जातवेदसे सुनवाम सोमम्
अरातीयतो निदहाति वेदः।
सनः पर्षदति दुर्गाणि विश्वा
नावेष सिन्धुं दुरितात्यग्निः'

ऋ. १.९९.१,

जीवों के ज्ञाता अग्नि के लिए (जातवेदसे) सोम रस का अभिषवण करता हूं । वह अग्नि शत्रुवत् आचरण करने वाले मनुष्य का धन भस्म करता

है । तथा हमें दुर्गमनीय दुःख से पार करता है । जैसे कर्णधार नाव से नदी को पार करता है, वह हमें पापों से मुक्त करे ।
अग्नि के अर्थ में -
'देवो देवान् यजसि जातवेदाः'
ऋ. १०.११०.१, अ. ५.१२.१, वाज.सं. २९.२५, मै.सं. ४.१३.३,२०१.८. का.सं. १६.२०, तै.ब्रा. ३.६.३.१, नि. ८.५,
हे दीप्त अग्नि, तू हवि से देवताओं को पूजता है ।
पुनः
'ईडिष्वा हि प्रतीत्यं
यजस्व जातवेदसम्'
ऋ. ८.२३.१, साम. १.१०३.

जाता - (१) जातौ । (द्वि.व.) उत्पन्न हुए । अश्विनी कुमारों के सम्बन्ध में प्रयुक्त ।
'इहेह जातो समवावशीताम्'
ऋ. १.१८१.४, नि. १२.३.
हे अश्विनी कुमारो तुम दोनों यहीं द्युस्थान में उत्पन्न हुए और रात्रि और उषा के पुत्रों के रूप से स्तुत्य हुए ।
(२) सर्वगुण-सम्पन्न कन्या ।
'जातायाः पतिवे दनौ'
ऋ. ८.६.१

जाति - जन् + क्तिन् = जाति अर्थ - जन्म

जात्री - जनने वाली माता ।
'जातं जात्रीर्यथा हृदा'
अ. २०.४८.२

जातू - जनी + तु = जातू । उत्पन्न होने वाला जीव ।

जातूभर्मा - यो जातान् जन्तून् विर्भति (उत्पन्न जीवों का भरण पोषण करने वाला परमेश्वर)
'स जातूभर्मा श्रद्दधान ओज'
ऋ. १.१०३.३

जातूष्ठिर - जातुस्थिर (२) प्रत्येक उत्पन्न एवं नश्वर पदार्थ में कारण रूप से स्थिर रहने वाला (२) कदाचित लब्ध स्थिति -(दया.) ।
'जातूष्ठिरस्य प्रवयः सहस्वतः'
ऋ. २.१३.११

जानम् - (१) उत्पत्ति, उत्पत्तिस्थान (३) उत्पत्ति का रहस्य ।
'स्थिरं हि जानमेषाम्'
ऋ. १.३७.९
'पुत्रो यज्ञानं पित्रोरधीरयति'
ऋ. १०.३२.३
'देवानां नु वयं जाना'
प्रवोचाम विपन्यया'
ऋ. १०.७२.१
'विघ्न वै ते जायन्य जानस्'
अ. ७.७६.५
उत्पत्ति का रहस्य ।
'को वेद जानमेषाम्'
ऋ. ५.५३.१

जानती - (१) समझती हुई, जानती हुई ।
'ओको नाच्छा सदनं जानती गात्'
ऋ. १.१०४.५.
अपना घर समझती हुई चली जाती हैं
(२) ज्ञानवाली विदुषी स्त्री, ज्ञानमयी ।
'ऊर्ध्वा ते अनु सूनृता
मनस्तिष्ठतु जानती'
ऋ. १.१३४.१
ज्ञानवती विदुषी स्त्री प्रिय सत्यवाणी बोलती हुई अपने प्रियतम के मन को जानती हुई तदनुसार ही आचरण करती है ।
अथवा,
उत्तम वेदवाणी मन को ज्ञान प्रदान करती हुई या ज्ञान को जानती या जनाती हुई तेरे कार्य के अनुकूल रहे ।
(३) प्रकट करती हुई, ।
'अच्छा रवं प्रथमा जानती गात्'
ऋ. ३.३१.६, वाज.सं. ३३.५९, मै.सं. ४.६.४, ८३.११, का.सं. २७. ९, तै.ब्रा. २.५.८.१०, आप.श्रौ.सू. १२.१५.६.

जानराज्य - जनता के ऊपर राजा बनना ।
'इमं देवा असपत्नं सुवध्वं महते क्षत्राय
महते ज्यैष्ठ्याय महते
जानराज्यायेन्द्रस्येन्द्रियाय'
वाज.सं. ९.४०,१०.१८, वाज.सं. (का.) ११.३.२, ६.२, शं.ब्रा. ५.३.३.१२, ४.२.३.

जनिवान् - उत्तम जन्म, पद या प्रतिष्ठा को प्राप्त ।
'वेत्यग्रुर्जनिवान् वा अतिस्पृधः'
ऋ. ५.४४.७

जम्भयन – मारता हुआ । 'जम्भ' धातु मारना अर्थ में प्रयुक्त है ।
'जम्भयन्तोऽहिं वृकं रक्षांसि'
ऋ. ७.३८.७, वाज.सं. ९.१६.२१.१०, तै.सं. १.७.८.२, मै.सं. १.११.२, १६२.११, का.सं. १३.१४, श.ब्रा. ५.१.५.२२, नि. १२.४४.
हनन करने वाले शत्रु भी सर्प को (अहिम्), चोर का (वृकम्) तथा राक्षसों को मारते हुए (जम्भयन्तः)

जामर्य – उत्पन्न होने वाले प्राणियों को प्राप्त होने वाला और जीवन देने वाला, (२) जाम अर्थात् भोजन को प्राप्त करने वाला पुष्टि कारक जल और अमा, (३) जाम अर्थात् आस्वादन करने योग्य रस ।
'जामर्येण पयसा पीपाय'
ऋ. ४.३.९

जामाता– नाती का उत्पादक जामाता, (जामातृ) जवाई (२) सर्वजगदुत्पादक प्रभु ।
'त्वष्टुर्जामातरं वयम्
ईशनं राय ईमहे'
ऋ. ८.२६.२२
(३) जायां मिमीते मिनातिवा । जाया + माङ् तृच् = जामातृ (जाय का जा) । जा शब्द का अर्थ भी कन्या है ।

जामि – (१) अव्यय । अर्थ है अति अधिक।
'जाम्यतीतपे धनुर्वयोधा अरुहद्वनम्'
ऋ. ८.७२.४
(२) दोष ।
'सा नो नाभिः परमं जामि तन्नौ,
ऋ. १०.१०.४
(३) (अव्यय)– निष्प्रयोजन ।
'जामि ब्रुवत आयुधम्'
ऋ. ८.६.३, अ. २०.१३८.३, साम. २.६५८.
(४) जां मिनोति प्रक्षिपति इति जामिः (जो पुत्री अपने अपत्य को पिता को ही दे देती है, वह जामि है) । (४) जमति गच्छति पितुः गृहात् पतिगृहम् (जो पिता के घर या कुल से पति के घर या कुल में जाती है) । जम + इण् = जामि । अथवा –जन् + इण् (कर्त्ता में) = जामि ।
(५) एकस्मिन् कुले जायत इति जा (जो एक कुल में जन्म लेता है वह जा है) । जन् + ड + टाप् = जा, जा + मि = जामि ।
(६) स्वसा, भगिनी, बहन जामिः स्वसृकुलस्त्रियौ –अमर ।
(७) मूर्ख ।
'आघाता गच्छान् उत्तरा युगानि
यत्र जामयः कृणवन् अजामि'
ऋ. १०.१०.१०, अ. १८.१.११, नि. ४.२०.
ऐसे युग आगे आयेंगे जब बहन अपने कुल में भी मैथुनादि कार्य करेंगी ।
पुनः –
'न जामये तान्वो रिक्थमारैक्
चकार गर्भं सनितुर्निधानम्'
यदी मातरो जनयन्त वह्निम्
अन्यः कर्ता सुकृतोरन्य ऋन्धन्'
ऋ. ३.३१.२, नि. ३.६.
बेटा (तान्वः) बहन के लिए (जामये) पैतृक धन (रिक्थम्) न दे (न आरैक्) किन्तु साथ ही पालते पोसते बहनोई के लिए (सनितुः) गर्भधारण करने योग्य बनावे (गर्भं निधानं चकार) । जो ये माताएं कुल को बढाने वाला पुत्र (वह्निम्) या पुत्री उत्पन्न करती हैं उनमें से एक (अन्यः) सन्तान कर्त्ता होता है (कर्त्ता) । पुत्र ही धन का भागी होता है । उन दो उत्पादित सन्तानों में (सुकृतोः) एक पुत्री पाली पोसी जाकर (ऋन्धन्) दूसरे को दी जाती है (परस्मै प्रदीयते) इस लिए वह धन का भाग नहीं पाती ।
पुनः ।
'अमूर्या यान्ति जामयः'
अ. १.१७.१, नि. ३.४.
(८) समान जातीय, सज्ञाति, बन्धु
(९) एक ही पाणि से जन्म लेने के कारण अंगुलि भी जामि है (१०) योग्य, अनुरूप, (११) आसन्न (जामिम् आसन्नम्) (१२) असमानजातीय –दुर्ग (१३) अतिरेक वालिका, समान जातीय–देवराज यद्वा (१४) ज्ञाति या बन्धु, (१५) यास्क ने पुनरुक्ति के लिए इस शब्द का प्रयोग किया है । जमति पुनः पुनः आगच्छति इति जामिः ।
अजामि का अर्थ दोष रहित है । अतः जामि का अर्थ मूर्ख वालिश हुआ, (१६) जा + मि =

जामि । अर्थ-ज्ञाता, बन्धु , परिचित ।
'कस्ते जामिर्जनानामग्ने को दाश्वध्वरः'
ऋ. १.७५.३, साम. २.८८५.
(१७) चतुर्विंशतिवर्षा ब्रह्मचारिणी -दया (१८) वर्षाकाल में उत्पन्न होने वाली ओषधि, (१९) वह स्त्री जिससे पुत्र हो सके, (२०) गति शील, विस्तृत या बहन के समान प्रीति युक्त प्रजाएं ।
'या जामयो वृष्ण इच्छन्ति शक्तिम्
ऋ. ३.५७.३.

जामिकृत् - मित्र बनाने वाला ।
'उतो असि नु जामिकृत्
अ. ४.१९.१

जामित्व - बन्धुता ।
'स जामित्वाय रेभति'
अ. १.१०५.९.

जामिशंस - (१) भगिनी, (२) स्त्री, (३) बन्धुओं का वाक् प्रहार ।
'क्षेत्रियात् त्वा निऋृत्या जामिशंसात्
अ. २.१०.१
(४) जामि + शंस । सम्पूर्ण जगत् को उत्पन्न करने वाली माता है - ऐसा कहने वाला जामिशंस है । जाम अयत्यं जायते अस्याम् इति जामिर्माता । जामि इति ।
'शसति स जामि शंसः
क्रोड आसीज्जामिशंसस्य'
अ. ९.४.१५

जामी - (द्वि.व.) । द्यावा पृथिवी का विशेषण । एक पेट से उत्पन्न सन्तानों के समान बन्धुवत् ।
'स्वसारा जामी पित्रोरुपस्थे'
ऋ. १.१८५.५

जाम्बील - (१) गाड़ी के नीचे का भाग (२) जम्बीर जाति का एक कांटेदार वृक्ष
'जाम्बीलेनारण्यम्'
वाज.सं. २५.३, मै.सं. ३.१५.३, १७८.१०.

जायमानः - जन्म लेता हुआ ।
'समस्मिन् जायमान आसतग्ना'
ऋ. १०.९५.७, नि. १०.४७
इस पुरुखा के जन्म लेने पर या वर्षाऋतु में बरसने पर इसे घेर कर जल ठहर गए या देवस्त्रियां उसे घेर कर बैठ गईं ।

जाया - (१) स्त्री ।
'जायेव पत्य उशती सुवासाः'
ऋ. १.१२४.७, ४.३.२, १०.७१.४, ९१.१३, नि. १.१९, ३.५,
जैसे पति की कामना करती हुई स्त्री (उशती जाया) ऋतु कालों में सुन्दर वस्त्र पहनती है (सुवासाः) ..
पुनः -
'जाया तप्यते कितवस्य हीना'
ऋ. १०.३४.१०
जुआड़ी की स्त्री हीनावस्था को प्राप्त कर दुःख सहती है ।
(२) पुत्रोत्पादन करने में समर्थ स्त्री, (३) जय दिलाने वाली ।
'हये जाये मनसा तिष्ठ घोरे'
ऋ. १०.९५.१, श.ब्रा. ११.५.१.६.
(४) प्रकृति ।
'अपश्यम् जायामहीयमानाम्'
ऋ. ४.१८.१३
'यन्मन्युर्जायामावहत्'
अ. ११.८.१
(५) जायारूप पृथिवी या राष्ट्र सभा ।
'तेन जायामन्वविन्दत् बृहस्पतिः'
ऋ. १०.१०९.५, अ. ५.१७.५.

जायान्य - (१) स्त्री संभोग से प्राप्त होने वाला यक्ष्मा रोग ।
'पक्षी जायान्यः पतति'
अ. ७.७६.४
'यो हरिमा जायान्यः'
अ. १९.४४.२

जायु - (१) जयशील, (२) सन्तान का इच्छुक ।
'अस्मे ते सन्तु जायवः'
ऋ. १.१३५.८
(३) विजय के लिए यत्नशील ।
'शुभे मखा अमिता जायवो रणे'
ऋ. १.११९.३
युद्ध में विजय करने के लिए यत्नशील (जायवः) आदरणीय अपरिमित या अपराजित पुरुष रण या किसी अन्य शुभ अवसर पर एकत्र होते हैं ।
पुनः-

'वनेषुजायुः मर्तेषुमित्रः'
ऋ. १.६७.१
जो अग्नि वन में विजय करने वाला अर्थात् भस्म करने वाला और मनुष्यों के बीच मित्रवत् स्नेही है ।

जार- (१) स हि रात्रे जारयिता (रात को जलाने वाला सूर्य (२) पति, (३) जॄ (पुराना होना) + घञ् = जार ।
'जारः कनीनां पतिः जनीनाम्'
ऋ. १.६६.८, नि. १०.२१.
अग्नि कन्याओं का जार तथा स्त्रियों का पालक है (४) अपने ताप से जल-शोषण कर्त्ता (अपां जारः) - सूर्य ।
'हविषा जारो अपां पिपर्ति पपुरिर्नरा'
ऋ. १.४६.४, नि. ५.२४.
हे अश्विनीद्वय (नरा), जलों का शोषयिता या प्राण भाव से स्थित या अपने ताप से जल शोषण कर्त्ता (जारः) समय आने पर पूरा करने वाला या प्रीण यिता (पपुरिः) सूर्य हमारे दिए हवि से या स्वा. दयानन्द के अनुसार जल से (हविषा) प्रसन्न करता है ।
(५) अग्नि भी जार है
'उदीरय पितरा जार आभगम्
इयक्षति हर्यतो हृत्त इष्यति ।
विवक्ति वह्निः स्वपस्यते मखः
तविष्यते असुरो वेपते मती'
ऋ. १०.११.६, अ. १८.१.२३.
पितृमेध में विनियोग-हे अग्नि ! जिस प्रकार सूर्य पृथिवी के रस के प्रति अपने को प्रेरित करता है । वैसे ही तू अरणियों के प्रति द्यौ और पृथिवी के प्रति प्रेरित कर (जार आ भगं पितरौ उदीरय) क्योंकि यह यजमान देवताओं की पूजा करना चाहता है (अयं हर्यतः इयक्षति) तथा हृदय से अपने मनोरथों की पूर्त्ति चाहता है (हृत्तः इष्यति) । यह अग्नि भी (वह्निः) सुन्दर कर्म की इच्छा करने वाले यजमान के लिए (स्वपस्यते) देवताओं की प्रार्थना करता है (विवक्ति) और अग्नि की कृपा से यज्ञ सफलता के साथ समाप्त होगा (मखः तविष्यते)। तथा असुर भी यज्ञकर्म में प्रकम्पित हृदय होकर रहेंगे । (असुरः मती वेपते)
अन्य अर्थ - जैसे अन्धकार विनाशक सूर्य द्यावा पृथिवी को ज्योति पहुंचाता है उसी प्रकार हे विवाहित पुरुष ! तू माता पिता को सुख पहुंचा (जरा आभगम् पितरौ उदीरय), चाहने वाले को दान दे (हर्यतः इ. यक्षति) और हृदय से सब कर्मकर (हृत्तः इष्यति) । विवाहित पुरुष सुन्दर वचन बोले (वह्निः विवक्ति) तथा शुभ कर्म में (स्वपस्यते) बुद्धिमान् गृहस्थ (असुरः) मनन द्वारा (मती) पापादिकों से कांपे (वेपते)
आधुनिक अर्थ - (१) परस्त्रीगामी प्रेमी, वीर । प्रेमी भी जारयिता ही होता है ।

जारयायि - (१) उत्पन्न किया जाता है, (२) कुछ भाष्य कारों के मत से यह शब्द उस्र (सांढ़) का विशेषण है, क्योंकि सांढ गौओं के यौवन का जारयिता अर्थात् जार और गौवों पर अभिगमन करने वाला है (यायि) ।
'द्रन्नो वन्वन् क्रत्वा नार्वा
उस्रः पितेव जारयायि यज्ञैः'
ऋ. ६.१२.४,
वृक्षों का भक्षयिता (द्रन्नः), वनों का संभजन करने वाला अग्नि (वन्वन्)अपने कार्य से (क्रत्वा अनाश्रित, स्वतन्त्र अर्थात् छूटे सांढ के सदृश (अनार्वा पिता उस्रः इव) यज्ञों से उत्पन्न किया जाता है (यज्ञैः जारयायि) ।

जारिणी - स्वैरिणीस्त्री ।
'यदादीध्ये न दविषाण्येभिः
परायद्भ्योऽवहीयेसखिभ्यः
न्युप्ताश्च बभ्रवो वाचमक्रतं
एमीदेषां निष्कृतं जारिणीव'
ऋ. १०.३४.५—
कितव देवता है । जब मैं यह संकल्प करता हूँ कि मैं इन जुए के पाशों के चलते संतप्त न होऊंगा (यत् आदीध्ये एभिः नदविषाणि) तब जुआ खेलने जाते हुए मित्रों को देख कर अपने को हीन सा समझने लगता हूं (परायद्भ्यः सखिभ्यःअवहीये), या सायण के अनुसार, यह सोचता हूँ कि मैं पहले पाश न फेकूंगा, परन्तु जब फेंके हुए पीले रंग के पाश शब्द करते हैं (न्युप्ताः च बभ्रवः वाचम् अक्रत) तो मैं इन जुआड़ियों के अड्डे पर (एषां निष्कृतम्) स्वैरिणी व्यभिचारिणी स्त्री के सदृश (जारिणीव) आ

जाता हूँ (एमीत्) ।

जार्य - स्तुति करने योग्य ।

'शेवं हि जार्यं वाम्'

ऋ. ५.६४.२

जाल - (१) जले भवम् (जो जल में हो), जल + अण = जाल, अर्थ-जलचर , (२) जले शयम् (जल में पड़ने या सोन वाला) (३) जाल । हिन्दी में भी इसका अर्थ है मछली फंसाने वाला जाल ।

'बृहज्जालेन संदिताः'

अ. ८.८.४

जालदण्ड - जाल तान कर लगाने का डंडा ।

'जालदण्डा दिशोमहीः'

अ. ८.८.५

जाल्म - (१) जालिम, अत्याचारी आततायी, दुष्टपुरुष ।

'आस्तां जाल्म उदरं श्रंशयित्वा'

अ. ४.१६.७, का.सं. ४.१६.

'इन्द्रस्य मन्यवे जाल्माः'

अ. १२.४.५१

जालाष - (१) जल, (२) गोमूत्र का फेन, इससे व्रण धोने का विधान है । (३) ज + लाष = जलाष । प्राणियों का एकमात्र अभिलाषा का विषय- परम ब्रह्म सुख ।

'जालाषेणाभिषिञ्चत'

अ. ६.५७.२,

जावत् - (१) जा + वतुप् । जाया के तुल्य प्रजा से युक्त (२) भूमि से युक्त राष्ट्र ।

'त्रिषधस्थस्य जावतः'

ऋ. ८.९४.५, साम. २.११३.६.

जाष्क मद - शक्तिशाली पक्षी ।

'अलिक्लवा जाष्कमदाः'

अ. ११.९.९

जास्पत्य - पति पत्नी भाव, दाम्पत्य ।

'संजास्पत्यं सुयममस्तुदेवाः'

ऋ. १०.८५.२३, आप. मं. पा. १.१.२.

(२) पति पत्नी का सम्बन्ध ।

'संजास्पत्यं सुयममाकृणुष्व'

ऋ. ५.२८.३, अ. ७.७३.१०, वाज.सं. ३३.१२, मै.सं. ४.११.१, १५९.६, का.सं. २.१५, तै.ब्रा. २.४.१.१, ५.२.४, आप. श्रौ.सू. ३.१५.५.

जास्पति - (१) जाया का पति, (२) पत्नी, पति, जामाता या वरवधू ।

'सखायं वासदमिज्ञास्पतिं वा'

ऋ. १.१८५.८

(३) प्रजा का पालक ।

'अनुतन्नो जास्पतिर्मंसीष्ट'

ऋ. ७.३८.६

जासु- (१) पीड़ा देने वाला रोग ।

'अनमीवोरुद्रजासुनोभव'

ऋ. ७.४६.२

जाहुष - जहुष् + अण् । अर्थ ।

(१) गन्तव्य का गमन, प्राप्त होने योग्य, (२) नगर आदि का राज्य-दया. (३) भोग्य सुख ।

'परिविष्टं जाहुषं विश्वतः सीम्
सुगेभिः नक्तम् ऊहथु रजोभिः'

ऋ. १.११६.२०

हे दो प्रमुख नायको, आप दोनों गन्तव्य, प्रयाण करने योग्य स्थान को (जाहुषम्) सब ओर से (विश्वतः सीम्) घेर लो (परिविष्टम्) और सुख से गमन करने योग्य, मार्गों से अपने सैन्य को रातों रात ले जाओ ।

अथवा

हे स्त्री पुरुषो, आप दोनों इस भोग्य सुख को प्राप्त करो और सुखदायक राजसुख से रात्रिकाल व्यतीत करो ।

(४) त्यागी, निःसग, निःस्वार्थी पुरुष ।

'निजाहुषं शिथिरे धातमन्तः'

ऋ. ७.७१.५

जाहृषाणः - (१) सन्तापक-(दया.) (२) निरन्तर सबको सन्तुष्ट और हर्षित करने वाला ।

'यो व्यंसं जाहृषाणेन मन्युना'

ऋ. १.१०१.२

जो निरन्तर सबको सन्तुष्ट और हर्षित करने वाले क्रोध से (जाहृषाणेन मन्युना) या शत्रुस्तम्भन करने आले बल से विविध स्कन्धा वार अर्थात् छावनी वाले शत्रु को विनाश करने में समर्थ हो ।

ज्ञात्र- (१) ज्ञान-साधन, (२) ज्ञान साधनों से उत्पन्न उत्कृष्ट विज्ञान सामर्थ्य ।

'संविच्च मे ज्ञात्रं च मे'

वाज. सं. १८.७

ज्ञाति - ज्ञा + क्तिन् = ज्ञातिः । ज्ञाति; संज्ञानात् (सम्यक् प्रकार से बन्धुओं की हालत जानने के कारण ज्ञाति कहलाता है) ।

ज्ञातुमुख- बन्धुओं का सा रूप धारण करने वाला ।
'ज्ञातिमुखा अहुतादश्चरन्ति'
अ. १८.२.२८

ज्ञास् - (१) विद्वान् या ज्ञातव्य पदार्थ -दया. (२) ज्ञानवान् या ज्ञातिगण ।
'इन्द्राग्नी ज्ञास उत वा सजातान्'
ऋ. १.१०९.१, तै.ब्रा. ३.६.८.१,
हे इन्द्र और अग्नि ! मैं ज्ञानवान् या ज्ञातिगण को तथा एकवंश पद, समाज और कुल में उत्पन्न हुए लोगों को विविध प्रकार का उपदेश दूं ।

ज्मा - (१) पृथिवी ।
'ज्मया अत्र वसवो रन्त देवाः'
ऋ. ७.३९.३, नि. १२.४३.

ज्या - (१) धनुष का गुण । गमयति इषून् (वाणों को यह चलाती है)। यह गौ की चर्बी से बनायी जाती है अतएव उसका नाम गौ हुआ । 'ज्या' तो अर्थ में 'गो' शब्द का प्रयोग 'सुपर्ण वस्ते.. भंसत्' ऋचा में हुआ है ।
(२) जि (जीतना) + अच् = जय । जय + टाप् = जया = ज्य । इससे जीता जाता है अतः यह ज्या है । (३) 'ज्या' धातु वयोहानि अर्थ में भी प्रयुक्त है । ज्या जीवन से हटने वाली है । (४) अथवा -जूङ् (गत्यर्थक) + णिच् + कि = जावि = ज्या । यह वाणों को चलाती है ।
आधुनिक अर्थ- धनुष का गुण पृथ्वी माता ।
'ज्या इयं समने पारयन्ती'
ऋ. ६.७५.३, वाज.सं. २९.४०,तै.सं. ४.६.६.२, मै.सं. ३.१६.३, १८५.१५, का.सं.(अश्व) ६.१, नि. ९.१८.
युद्ध में धनुर्धारी को जिताने वाली यह ज्या है ।

ज्याका - (१) धनुष की डोरी ।
'ज्याका अधिधन्वसु'
ऋ. १०.१३३.१-६, अ. २०.९५.२-४, साम. २.११५१-११५३. तै.सं. १.७ .१३.५, मै.सं. ४.१२.४,१८९.९, तै.ब्रा. २.४.८.२.
(२) मौर्वी जिसे धनुष पर चढ़ाया जाता है ।

ज्याकार - धनुष की डोरी बनाने वाला ।
'कर्मणे ज्याकारम्'
वाज.सं. ३०.७, तै.ब्रा. ३.४.१.३.

ज्यापाश - धनुष की डोरी की फांस ।
'ज्यापाशैः कवचपाशैः'
अ. ११.१०.२२

ज्यायस् - बड़ा । गुरु + ईयस् = ज्यायस् ।
'यस्मान्नाणीयो न ज्यायोऽस्ति कश्चित्'
तै.आ. १०.१०.३, महा. ना. उप. १०.४, नि. २.३.

ज्यायसः देवाः - (ब.व.) श्रेष्ठ देव (२) श्रेष्ठ विद्वान् -दया. ।
'यजाम देवान्यदि शक्नवाम
माज्यायसः शसमावृक्षि देवाः'
ऋ. १.२७.१३, आप श्रौ.सू. २४.१३.३.
हे श्रेष्ठ देवो, हम कम पढे लिखे भी देवताओं की प्रार्थना करते हैं । इस प्रकार हम स्तुति करने वालों को आप यज्ञ फल से वञ्चित न करें । देवताओं के अर्भकयुवा, आशन ज्यायाः आदि भेदशक्ति के अनुपात में वर्णित है । स्वा. दयानन्द ने यहां देव का अर्थ विद्वान् ही किया है ।

ज्यायास्वन्तः - एक दूसरे से बड़े होते हुए ।
'ज्यायस्वन्तश्चित्तिनो मा वि यौष्ट'
अ. ३.३०.५

ज्यायान् - प्रवृद्ध ।
'ज्यायां समस्य यतुनस्य केतुना'
ऋ. ५.४४.८.
प्रयत्नशील सूर्य के प्रज्ञापक कर्म से ।

ज्यावाज- धनुष की डोरी की आवाज ।
'ज्यावाजं परिणयन्त्याजौ'
ऋ. ३.५३.२४

ज्वार - सन्ताप, थकान, पीड़ा ।
'न नवज्वारो अध्वने'
ऋ. १.४२.८

जि - नुकसान करना ।
'यो जिनाति तमन्विच्छ'
अ. ६.१३४.३

जिगत्नु- (१) जीतने वाला, विजयी ।
'विश्वस्य यामन् आचिताजिगत्नु'
ऋ. ७.६५.१
(२) प्राप्त करने योग्य, (३) हमारे प्रति आने

वाली ।

'वृष्टिं नो अर्ष दिव्यां जिगत्नुम्'

ऋ. ९.९७.१७.

जिगर्ति – गृ (निगलना, बोलना तथा ग्रहण करना) के लट् प्र.पु. ए. का रूप । अर्थ है – निगलता है, बोलता है या ग्रहण करता है ।

जिगीषमाणः– जि (जीतना) का सनन्तरूप । अर्थ है – विजय का इच्छुक ।

'जिगीषमाणमिष आपदे गोः'

ऋ. १.१६३.७, वाज.सं. २९.१८, तै.सं. ४.६.७.३, का.सं. (अश्व.) ६.३.

जिगीषा – जि (जीतना) का सनन्त रूप । अर्थ है – (१) विजयी करने की इच्छा, (२) जीतने योग्य राज्य सुख ।

जिगीषु – जीतने का इच्छुक ।

'ऊर्ध्वानः सन्तु कोम्या वनानिः
अहानि विश्वा मरुतो जिगीषा ।'

ऋ.१.१७१.३.

जिगीवान् – विजयशील ।

'जिगीवाँ अपराजितः'

अ. ८.५.२२

जिग्यु– विजेता ।

'यो धावद्भिर्हूयते यश्च जिग्युभिः

ऋ. १.०१.६

जिग्युष् – (१) विजयशील ।

'अस्मान्त्सु जिग्युषस्कृतम्'

ऋ. १.१७.७

हे इन्द्र और वरुण, आप हमें विजय शील बनावें ।

'विश्वा धनानि जिग्युषः'

ऋ. ८.१४.६, ९.६५.९, अ. २०.२७.६.

जिघत्नु– हिंसा करने वाला आततायी ।

'यो नः सनुत्य उत वा जिघ्नत्नुः'

ऋ. २.३०.९

जिघत्स्व– (१) खाऊमल होना, बहुत अधिक खाते रहने की आदत ।

'एक वाद्यां जिघत्स्वम्'

ऋ. २.१४.१.

(२) भूक्खड, दूसरों को खा जाने वाला (२) हिंसक जन्तु ।

'अरायेभ्यो जिघत्सुभ्यः'

अ. ८.२.२०

जिघ्नमान् – (१) ताड़न करता हुआ, (२) परमाणुओं को सूर्यादि रुप में धनीभूत पिण्डित करता हुआ ।

'एको वृत्रा चरसि जिघ्नमानः'

ऋ. ३.३०.४

जिघर्ति – घृत सूंघना (सिञ्चन करना) के लट् प्र.पु.ए.व. का रूप । अर्थ है–सूंघता है, सिञ्चन करता है ।

जिघांसत् – हत्या का इच्छुक ।

'पाहि रीषत उतवा जिघासंतः'

ऋ. १.३६.१५

जिनत् – (१) हानि पहुंचाने वाला मनुष्य

'जिनतो वज्र त्वं सीमन्तम'

अ. ६.१३४.३

(२) अत्याचार करने वाला ।

' आदत्से जिनतां वर्चः'

अ. १२.५.५६

जिन्वति– जि (प्रीति करना) के लट् प्र.पु. ए. व. का रूप ।

'भूमिं पर्जन्या जिन्वन्ति
दिवं जिन्वन्त्यग्नयः'

ऋ. १.१६४.५१, तै. आ. १.९.६, नि. ६.२२, ७.२३.

भूमि को बादल तृप्त करते हैं और द्युलोक को तीन अग्नि ।

जिन्वः – सर्वैः सुखैः तर्पकः (सभी सुखों से तृप्त करने वाला, (२) सभी जीवों को तृप्त करने वाला ।

'तमीशानं जगतस्तस्थुषस्पतिम्
धियंजिन्वमवसे हूमहेवयम्'

ऋ. १.८९.५, वाज.सं. २५.१८

जिन्वित – सन्तुष्ट ।

''इन्द्रेण जिन्वितो मणिः

अ. १९.३१.७

जिर्विः – (१) जीर्ण । जॄ + वि. ।

'अथ जिर्विर्विदथमावदासि'

अ. ८.१.६, १४.१.२१.

(२) जीवन देने वाला, (३) विजयशील ।

'अवासृजन्त जिव्रयोन देवाः'

ऋ. ४.१९.२

जिव्री – (द्वि.व.) वृद्ध पति और पत्नी ।

'अधा जिव्री विदथमावदाथः'
ऋ. १०.८५.२७
हे वधू , तू पति के साथ हिल मिलकर वृद्धावस्था प्राप्त कर यज्ञ में मन्त्रों का उच्चारण करो (विदथम् आवदाथः)

जिव्रिः – जृ (जीर्ण होना) से पृषोदरादिवत् सिद्ध।
अर्थ – वृद्ध पुरुष।
'आ त्वा रम्भं न जिव्रयो
ररम्भा शवसस्पते'
ऋ. ८.४५.२०, नि. ३.२१.
हे इन्द्र ! हम तेरा आश्रय उसी तरह लेते हैं जैसे वृद्ध पुरुष लकुटी या डंडे का।

जिष् – विजय।
'अनश्वं याभी रथमावतं जिषे'
ऋ. १.११२.१२

जिष्णु – जि (विजय करना) + ष्णुच् = जिष्णु।
अर्थ (१) जेता, जयशील , जय प्राप्त करने वाला।
जिष्णुर्वामन्यः सुमखस्य सूरिः । तुम दोनों (अश्विनी कुमारों में) एक जय प्राप्त करने वाले तथा सुमहान् बल के प्रेरक हुए (सुखमस्य सूरिः)।

जिह्म – (१) कुटिल, टेढ़ा।
'जिह्मं नुनुद्रेऽवतं तया दिशा
सिञ्चन् उत्सं गोतमाय तृष्णजे।'
ऋ. १.८५.११
वासुगण प्यासे भूमि पालक किसान के लिए या प्यासे उत्तम प्रदेशों के लिए उसी दिशा से प्रजा की रक्षा करने वाले कूप के समान अगाध जल को धारण करने वाले जल प्रद मेघ को तिरछा आकाश मार्ग से उड़ा ले जाते हैं।
(२) आहाङ् (हा) गत्यर्थकधातु है। हा + मन् = जिह्म (सन्वत् भाव और आ का लोप)। अर्थ – कुटिल चेता, खोटा पुरुष।
'जिह्मानामूर्ध्वः स्वयशा उपस्थे'
ऋ. १.९५.५, मै.सं. ४.१४.८, २२७.४, तै.ब्रा. २.८.७.४, आप. श्रौ.सू. १६.७.४, नि. ८.१५.
यह अग्नि दूसरे का आश्रय न लेने वाला (स्वयशाः) अपने स्थान में (उपस्थे) कुटिल इंधनों से होकर सीधे निकलता है। (३) कपट, (४) गुप्त।

जिह्मबार – (१) गुप्त द्वार वाला, (२) दुष्प्राप्य।
'जिह्मबारमपोर्णुत'
ऋ. ८.४०.५
(३) तिरछा जल वाला मेघ (४) रथ जिसका बार टेढ़ा हो-दया.।

जिह्मशी – यः जिह्मः शेते (टेढ मेढ़ सोना या सोने वाला)

जिहानः – जाता हुआ।
'अत्योन वाजी सुधुरो जिहानः'
ऋ. ३.३८.१

जिह्मायन्त्यः– (१) प्रतिकूल चलती हुई, (२) कपटपूर्ण आचरण करती हुई स्त्रियाँ।
'नेजिह्मायन्त्यो नरके पताम'
ऋ. खि. १०.१०६.१, नि. १.११.
नहीं तो पति से कपट का आचरण करती हुई हम स्त्रियाँ नरक में गिर जायेंगी।

जिह्मायन्ती – जिह्म का अर्थ है कपट। जिह्मायन्ती का अर्थ है कपट का आचरण करती हुई।

जिह्वा – (१) हु (हवन करना) को यङन्त कर तथा अच् कर 'जोहुव' बनता है। तत्पश्चात् टाप्' प्रत्यय कर जोहुवा' बनता है। जोहुवा से ही जिह्वा शब्द बना है। अहरहः हूयतेऽस्मिन् अन्नम् (प्रतिदिन इस में अन्न की आहुति दी जाती है) (२) आहूयति अनेन (इससे पुकारते हैं)। इस अर्थ में भी जिह्वा भी व्युत्पत्ति की गई है। 'ह्वय' धातु पुकारना अर्थ में है। (३) यह रसों का ग्रहणकरता है। जुहोत्यादिगणी हु + वन् जोहुवा = जिह्वा। अर्थ –(१) जिह्वा, (२) अग्नि की ज्वाला।
'अध जिह्वा पापतीति प्रवृष्णः'
ऋ. ६.६.५.
और प्रवर्षिता अग्नि की ज्वाला (प्रवृष्णः जिह्वा)। लड़कियों पर बारबार गिरती है। (पापतीति)।

जहीहानः – अनादर करता हुआ।
'मानो वधाय हत्नवे
जिहीडानस्य रीरधः'
ऋ. १.२५.२.

जहीडिरे – निरादर करते हैं। 'हडे' (लज्जित होना के उत्तम पुरुष ब.व. का रूप)।
'यत्सस्वर्ता जिहीडिरे यदाविः'

ऋ. ७.५८.५.

जो छिपा (सस्वर्ता और जो प्रकट (यत् आपिः) पाप से हम लज्जित् होते हैं (जिहीडरे) ।

ज्रि – गमनार्थक धातु ।

जीत – दुःखित ।

'*यानि जीतस्य वावृतुः*'

अ. ५.१९.१३.

जीमूत – विजयशील पुरुष ।

'*जीमूतान् हृदयौपशेन*'

वाज.सं. २५.८.

जीरः – (१) वेगवान्, (२) जीव (३) जु (गत्यर्थक) या जृ' धातु से सम्पन्न । अर्थ – विद्वान् (४) नित्य सब को संहार करने वाला ।

'*जीरं दूतममर्त्यम्*'

ऋ. १.४४.११, तै.ब्रा. २.७.१२.६.

(५) प्राण (६) अन्न ।

'*यः सुत्रामाजीरदानुः सुदानुः*'

ऋ. १८.३.६१

जीरदानवः – (१) जीवन देनेवाले वायुगण (२) अन्यों को जीवन देने वाले सबके प्राणोपकारक विद्वान् पुरुष (३) स्वयं जीवन धारण करने वाले जीवगण ।

'*मिंत्राय वा सद मा जीरदानवः*'

ऋ. २.३४.४

जीरदानुः – जीवन ।

'*विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम्*'

ऋ. १.१६५.१५, १६६.१५, १६७.११, १६८.१०, १६९.८, १७१.६, १७३.१३, १७४.१०, १७५.६, १७६.६, १७७.५, १७८.५, १८०.१०, १८१.९, १८२.८ , १८३.६. १८४.६, १८५.११, १८६.११, १८९.८. १९०.८ वाज.सं. ३४.४८. मै.सं. ४.११.३.१७०.८, ४.१४.७, २२४.१४. ४.१४.१३:२७३.३ का.सं. ९.१८, तै.ब्रा. २.८.४.८.

(२) सबको प्राण और अन्न देने वाला, (३) प्राण धारी जीव (४) चेतन शील ।

'*स सुन्वते मघवाजीरदानवे*'

ऋ. १०.४३.८, अ. २०.१७.८

जीरदानू – (द्वि.व.) । मित्रावरुण (२) जलप्रद मेघ और वायु, (३) संसार को वेग जीवन और प्राण देने वाले ।

'*अव दिव इन्वतं नीरदानू*'

ऋ. ७.६४.२

जीरा – (१) वेगवती, (२) बहुत वेगवाली ।

'*उवासोषा उच्छाच्चनु*
देवी जीरा रथानाम्'

ऋ. १.४८.३

जब उषा व्यापती है तब वह प्रकाश वाली होकर सब पदार्थों को प्रकट करती है । वही सब रथों या देहों में वेग देने वाली है (रथानां जीरा देवी) ।

जीराध्वरः– जीवनधारी प्राणियों का नाश न करने वाला ।

'*जीराध्वरं कृणुतं सुम्नमिष्टये*'

ऋ. १०.३६.६

जीराश्व – (१) अति वेगवान् अश्व, (२) जीवरूप अश्व वाला शरीर ।

'*जीराश्वं यज्ञियं जीवसे हुवे*'

ऋ. १.११९.१

'*उतनः सुद्योत्मा जीराश्वः*'

ऋ. १.१४१.१२

जीरीः – (१) जीर्ण हो जाने वाला शरीर मनुष्य ।

'*रयिं रक्षन्ति जीरयो वनानि*'

ऋ. ३.५१.५

(२) वेगवान् सूर्य महान् , लोक और ब्रह्माण्ड ।

(३) वेगवाना, अश्व ।

'*प्रभीरयः सिस्रते सध्र्यक् पृथक्*'

ऋ. २.१७.३

जीरु – (१) उपदेश प्रद, (२) अज्ञान का नाशक ।

'*अव्ये जीरावधिष्वणि*'

ऋ. ९.६६.९

जीव – जीव (जीना) + अच् = जीव । अर्थ–(१) जीव, (२) प्राण ।

'*जीवान्नो अभिधेतन*
आदित्यासः पुराहथात्
कद्धस्थहवनश्रुतः'

ऋ. ८.६७.५, नि. ६.२७

(३) (क्रि) जीव् धातु के म.पु. ए.व. लोट का रूप ।

'*अङ्गादङ्गात् संभवसिहृदयात् अधिजायसे*
आत्मा वै पुत्र नामासि स जीवशरदः शतम्'

श.ब्रा. १४.९.४.८, बृ.आ. उप. ६.४.८, कौ.ब्रा. उप. २.११. आश्व गृ.सू.१.१५.९, साम. मं.ब्रा.

१.५.१६,१७, गो.गृ.सू. २.८.२१, पा.गृ.सू. १.१८.२, आप.मं.पा. २.११.३३, हि.गृ.सू. २.३. २, नि. ३.४, महाभारत. १.७४.६३,
पिता पुत्र का सिर संघता हुआ कहता है - हे पुत्र, तू मेरे अंग अंग से निकला है और हृदय से उत्पन्न होता है । अतः तू मेरा आत्मा है । यद्यपि तू पुत्र नाम से विख्यात है । वह आत्मारूप मेरा पुत्र तू शतायु हो ।

जीवगृभ् - जीवं + गृह + क्वि - जीवगृभ् । अर्थ है - (१) जीवग्राहः, हन्ता, जीवन लेने वाला, मारने वाला ।
'आत्मा यक्ष्मस्य नश्यति
पुराजीवगृभो यथा
ऋ. १०.९७.११, वाज.सं. १२.८५, तै.सं. ४.२.६.२, मै.सं. २.७. १३, ९३.१८, का.सं. १६.१३, नि. ३.१५.
यक्ष्मा का आत्मा दवा देने के पूर्व हो उसी प्रकार नष्ट होता है जैसे हत्यारे के मारने के पहले ही जीव मर गया । (२) जीवों को पकड़ने वाला प्राण घाती ।

जीवत् - जीवन युक्त जीव ।
'जीवतो जीवतोऽयनम्'
अ. ५.३०.७

जीवधन्य - जीव से या जीवन के श्रेष्ठ धन से सम्पन्न ।
'इमं जीवं जीवधन्याः समेत्य'
अ. १२.३.४

जीवधन्या - (१) या जीवेषु धन्याः धनाय हिताः अप जलानि (जीवों के लिए धनु उत्पन्न करने वाली जलधाराएं -दया. (२) जीवों को धन्य अर्थात् तृप्त करने वाली जलधाराएं ।
'सृजामरुत्वतीरव
जीवधन्या इमा अपः'
ऋ.१.८०.४
(३) जीवित पुत्र, पति, पशु, आदि जीवों को धन समझने वाली या उनका पालन पोषण करने वाली स्त्री ।
'एमा अग्मन् रेवतीर्जवधन्याः'
ऋ. १०.३०.१४, ऐ.ब्रा. २.२०.२६, कौ.ब्रा. १२.२., आश्व.श्रौ. सू. ५.१.१९.
(४) जीव को दूध से धन्य अर्थात् तृप्त करने वली गौ ।
'पीवस्तवीर्जीवधन्याः पिबन्तु
अवसाय पद्वते रुद्रमृड'
ऋ. १०.१६९.१, तै.सं. ७.४.१७.१, का.स. (अश्व.) ४.६.
जीव को तृप्ति दायक एवं प्राण तथा पुष्टि वर्धक दूध देने वाली गौएं शुद्ध जल पीवें । हे रुद्र ! इस चरण युक्त पथ में चलकर चरने वाली गौ की हिंसा न करें ।
(५) (ब.व.पु.) जीवों को धन्य करने वाले पुरुष
'ता जीवला जीवधन्याः प्रतिष्ठाः'
अ. १२.३.२५

जीवन - जीव + ल्युट् = जीवन । जीवयति इति जीवनम (जो जिलाता है वह जीवन है) । अर्थ (१) इक्षु रस (ईख का रस) (२) शाक जाति-साग का एक प्रकार, (३) जल, (४) जीना प्रचलित अर्थ - जीवनप्रद, जीता हुआ, वायु, पुत्र, प्राण (Vital energy), जल, जीविका, एक दिन के पुराने दूध का मक्खन, मन्त्र
'विश्वस्य हि प्राणनं जीवनं त्वे'
ऋ. १.४८.१०

जीवन्त - कुष्ठ नामक ओषधि की पालक शक्ति ।
'जीवन्तो नाम ते पिता'
अ. १९.३९.३

जीवन्ती - जीवन्ती नामक ओषधि ।
'जीवन्तीमोषधीमहम्'
अ. ८.२.६, ७.६.

जीवपीतसर्ग - (१) जीवैः सह पीतः सर्गो येन विद्याबल -दया. (२) जीवों को जल पिलाने वाला-सूर्य (३) जीवितपुरुषों और प्राणियों को शीतलजलों के समान नाना सृष्टि के सुखों को पिलाने वाला- राजा, (४) संसार के कर्मफलों को भोग करने वाला -परमेश्वर (५) सर्ग अर्थात् कर्मफल का भोक्ता जीव ।
'सयो वृषा नरां न रोदस्योः
श्रवोभि रस्ति जीवपीतसर्गः'
ऋ. १.१४९.२

जीवपुत्रावत् - जीवितपुत्रों वाला ।
'तं त्वा दम्पती जीवन्तौ जीवन्तौ जीवपुत्रौ
अ. १२.३.३५

जीवपुराः - जीव के निवासयोग्य देह के अंग
'अधिजीवपुरा इहि'
अ. ५.३०.६

जीवभोजनः - (१) अपनी आजीविका का भोग करने वाला।
'यः स्त्रीणां जीवभोजनः'
वाज.सं. २३.२१, का.सं. (अश्व.) ४.८, शां.श्रौ.सू. १६.३.३६.
(२) जीवों के लिए भोजन के तुल्य पुष्टि कारक प्राणाधार, (३) आत्मा का आभ्यन्तर मानस भोजन, (४) समस्त भोग प्रद ज्ञानाञ्जन या अञ्जन।
'अथो असि जीवभोजनम्'
अ. ४.९.३

जीवयाज- (१) जीवा याजयति, धर्मं च संगमयति (जीवों से यज्ञ करने वाला) धर्म में प्रेरित कराने वाला), (२) प्राण धारण करने के लिए आजन्म यज्ञ।
'जीवयाजं यजते सोपमादिवः'
ऋ. १.३१.१५
जो प्राण धारण करने के निमित्त आजीवन यज्ञ करता है वह सूर्य के समान सुखप्रद जाना जाता है।

जीवपुर - (१) प्राणधारी पुर -देह।
'अधिजीवपुरा अगन्'
अ. २.९.३

जीवल - जीवनतत्व को प्राप्त करा देने वाला
'जीवला स्थ जी जीव्यासंसर्वमायुर्जीव्यासम्'
अ. १९.६९.४

जीवला - (१) जीवनप्रद, प्राणप्रद ओषधि।
'जीवलां न धारिषाम् जीवन्तीम् ओषधीमहम्'
अ. ८.२.६, ७.६.
(२) सबको जीवन प्रदान करने वाली स्त्री।
'अच्छावदामि जीवलाम्'
अ. ६.५९.३
(३) प्राण धारण करने वाली शक्ति (४) कुष्ट औषधि की माता अर्थात् रचना करने वाली शक्ति।
'जीवला नाम ते माता'
अ. १९.३९.३
(५) जीवन को प्राप्त कराने वाला जल।
'ता जीवला जीवधन्याः प्रतिष्ठाः'
अ. १२.३.२५
(६) आयुष्प्रदा ओषधि

जीवलोक - जीवित प्राणिलोक।
ऋ. १०.१८.८, अ. १८.३.२, तै.आ. ६.१.३, आश्व.गृ.सू. ४.२.१८.

जीववर्हि- जीव की शक्तियों को बढ़ाने वाली ब्रह्मोपासनाम यज्ञ।
'जीवबर्हिर्मदिन्तमः'
अ. ११.७.७

जीवस् - जीवन।
'अवाधमानि जीवसे'
ऋ. १.२५.२१, का.सं. २१.१३, तै.ब्रा. २.४.२.६, मा.श्रौ.सू. ३.१.२९.
निकृष्ट कोटि के प्राणों को भी जीवन को सुख प्रद करने के लिए नीच योनियों में भोग भुगाकर।
'अस्मे शतं शरदोजीवसेधाः'
ऋ.३.३६.१०, पा.गृ.सू. १.१.८.५.
हमें जीने के लिए सौ वर्ष दे। पुनः-
'देवा न आयुः प्रतिरन्तु जीवसे'
ऋ. १.८९.२, वाज.सं. २५.१५, मै.सं. ४.१४.२, २१७.९, नि. १२.३९.
देवता हमारे चिरजीवन के लिए आयु बढ़ावें।

जीवसे - जीवितुम् (जीवों के लिए) तुम् प्रत्यय के अर्थ में 'असे' प्रत्यय का प्रयोग।

जीवा - प्राण के संसर्ग से चेतनायुक्त इन्द्रियवृत्ति
'जीवाभिर्भुनजामहे'
ऋ. १०.१९.६

जीवाति - जीवतु (जीवे)। लोट् के अर्थ में लट् का प्रयोग।
'पुनः पत्नी मग्निरदाद
आयुषा सहवर्चसा
दीर्घायुरस्या यः पतिः
जीवन्ति शरदः शतम्'
ऋ. १०.८५, अ. १४.२.२, आप.मं.पा. १.५.४.९,१४,
विवाह में विनियोग। जो इसका पति है वह दीर्घायु हो सौ वर्ष जिये इस प्रकार अग्नि दान में दी हुई कन्या को पुनः आयु और तेज से युक्त कर देती है।

जीवातुः - जीव + आतु = जीवातु । अर्थ - (१) जीवन, (२) जीविका जीवन का हेतु जीवनाधार

'धाता ददातु दाशुषे प्राचीं जीवातु मक्षिताम्'

अ. ७.१७.२, आश्व.श्रौ.सू. ६.१४.१६, शां.श्रौ.सू. ९.२८.३, शा.गृ.सू. १.२२.७, नि. ११.११.

संस्कृत में इस शब्द का पुल्लिग में प्रयोग है । अर्थ -भोजन, अस्तित्व, पुनरुज्जीवन, मुर्दे को जिलाने वाली दवा ।

'साते जीवातु रुत तस्य विद्धि'

ऋ. १०.२७.१४

हे अन्तरात्मन् , आदित्यात्मिका देवता तेरे जीवन का हेतु है । अतः उसके उपकारों को जान (उततस्य विद्धि) ।

जीवा युवति - जीवित युवती स्त्री ।

'अपश्यं युवतिं नीयमानां
जीवां मृतेभ्यः परिणीयमानाम्'

अ. १८.३.३

जीवितयोपन - (१) जीवन को संदेह में डालने वाला रोग ।

'कण्वान् जीवितयोपनान्'

अ. २.२५.४,५.

(२) जीवन का नाशकारी ।

(३) क्रव्याद् अग्नि, मुर्दा जलाने वाली आग ।

(४) जान लेने वाला दुष्ट पुरुष ।

'यो अग्निर्जीवितयोपनः'

अ. १२.२.१६.

जु - लाना ।

'गृत्सं राये कवितरो जुनाति'

ऋ. ७.८६.७

जुगुर्वणी - (द्वि.व.) एक वचन में में रूप हैं- जुगुर्वणि । अर्थ (१) निरन्तर उद्यमशील, (२) अध्ययनशील होता का विशेषण ।

'मन्द्रजिह्वर जुगुर्वणी
होतारा दैव्या कवी'

ऋ. १.१४२.८

जुजुरुष - वृद्धपुरुष ।

'जुजुरुषो नासत्योत वव्रि
प्रामुञ्चतं द्रापिमिव च्यवानात् ।'

ऋ. १.११६.१०

युद्ध में डर कर भाग जाने वाले भीरु से जैसे सेनापति कवच छुड़ा लेता है (च्यवानात् द्रपिम् इव), उसी प्रकार हे सत्य नियमों के व्यवस्थापक राष्ट्र और दो नायक विद्वान् स्त्री पुरुषो, आप दोनों आयु समाप्त करने वाले वृद्ध, संसार भोगते हुए मरणोन्मुख पुरुष से विभाग करने योग्य धन सम्पत्ति को मरने के पूर्व ही छुड़ा कर (जुजुरुषः) अगले आने वाले सन्तान को प्रदान करो ।

पुनः-

'प्र च्यवानाज्जुजुरुषो वव्रिमत्कं न मुञ्चथः'

ऋ. ५.७४.५

जुजुर्वान् - (१) रोगापन्न, (२) जीर्ण ।

'जुजुर्वान् दशमे युगे'

ऋ. १.१५८.६.

(३) जृ (जीर्ण होना) से यङन्त में वतुप् प्रत्यय । अर्थ है - बार बार जीर्ण होता हुआ । अग्नि का विशेषण ।

'जुजुर्वां यो मुहुरायुवाभूत्'

ऋ. २.४.५

जो अग्नि बार बार जीर्ण होता हुआ भी तरुण सा हो जाता है । अथवा जो विद्वान् जीर्णावस्था को प्राप्त होता हुआ भी युवा की तरह पुरुषार्थी होता है । -दया.

जुजुषाणा - (द्वि.व.) (१) स्वीकार करते हुए (२) स्वाद लेते हुए, अश्वि द्वय का विशेषण ।

जुजुषाणासः - (१) ए.व. में जुजुषाण । जोषयमाणाः देवैः से व्यमाना (आस्वाद लेते हुए, देवों द्वारा सेव्यमान या मद उत्पन्न करने वाले (२) प्रभावोत्पादक सोम-

(३) सेवित हुआ गुरुजन ।

'प्रवोऽच्छा जुजुषाणासो अस्थुः
अभूत विश्वे अग्रियोत वाजाः'

ऋ. ४.३४.३, नि. ६.१६.

जुजुष्वान् - प्रेम से सेवन करने वाला ।

'सो अङ्गिरसामुचथा जुजुष्वान्'

ऋ. २.२०.५

जुजोषत् - प्रेम पूर्वक सेवन किया जाता हुआ ।

'भृतिं न भरा मतिभिर्जुजोषते'

ऋ. ९.१०३.१, साम. १.५७.३.

जुनन्ति - (१) बरसते हैं (२) जानते है-दया. । जुन्

जुन् - (१) प्राप्त करना । Join शब्द से इसकी

समानता विचारणीय है (२) बरसाना-यास्क (३) जानना -दया.
'सनेम्यभ्वं मरुतो जुनन्ति'
ऋ. १.१६९.३

जुनाः - प्रेरित करता है ।
'अवा वाजेषु यं जुनाः'
ऋ. १.२७.७, साम. २.७६५, वाज.सं. ६.२९, तै.सं. १.३.१३.२, मै .सं. १.३.१, ३०.१, का.सं. ३.९,श.ब्रा. ३.९३.३.
जिस मनुष्य को तू संन्यासों के बीच में प्रेरित करता है ।

जुम्बक - (१) सब शत्रुओं को नाश करने में समर्थ, (२) सबसे अधिक वेगवान् बलवान् पुरुष, (३) रोगनाशन में समर्थ, (४) वेगवान् बलकारी अपान, (५) वरुण ।
'वरुणोवै जुम्बकः'
श.ब्रा. १३.३.६.५
'जुम्बकाय स्वाहा'
वाज.सं. २५.९, मै.सं. ३.१५.८, १८०.३, का.सं. (अश्व.) ५.७,श.ब्रा. १३.३.६.५, तै.ब्रा. ३.९.१५.३, का.श्रौ.सू. २०.८.१६, आप.श्रौ.सू. २०.२२.६, मा.श्रौ.सू. ९.२.५.

जुजुर्वान् - गृष्, + क्वसु = जुर्जुवस् । वृद्धावस्था को प्राप्त जीर्ण ।
'जुजुर्वां इव विश्पतिः'
ऋ. १.१.३७.८
'जुजुर्वां यो मुहुरा युवा भूत्'
ऋ. २.४.५

जुरत् - (१) वृद्ध, मान्य, (२) देह ।
'उतत्यद् वां जुरते अश्विना भूत्'
ऋ. ७.६८.६.
'त्रितं जराय जुरतामदाभ्याः'
ऋ. २.३४.१०.

जुषमाणः - प्रेम पूर्वक सेवन करता हुआ ।
'पिबन्तु शानो जुषमाणो अन्धः'
ऋ: ४.२३.१

जुष्टः- (१) प्रिय । जुष् + क्त, (२) आसेवित (३) प्रजाप्रिय (राजा) दया.
'जुष्टा दमूना अतिथिर्दुरोणे'
ऋ. ५.४.५, अ. ७.७३, ९. मै.सं. ४.११.१, १५९.३, का.सं. २.१५ , तै.ब्रा. २.४.१.१, नि. ४.५.

जुष्टतरा - प्रियतरा ।

जुष्ट्वी - प्रेमयुक्त, (२) ऐश्वर्यों का सेवन करती हुई ।
'जुष्ट्वी नरा दुहिता सूर्यस्य'
ऋ. १.११८.५

जुषाणः -प्रेम से सेवन करता हुआ ।
'जुषाणो हस्त्यमभि वानशे वः'
ऋ. २.१४.९

जुषाणाः- (ब.व.) वसुओं का विशेषण ।
'य आजग्मेदं सवनं जुषाणाः'
वाज. सं. ८.१८
जो देवता इस यज्ञ में प्रेम के साथ आवें ।

जुष्टिः - (१) सेवन करने योग्य वाणी, प्रीति उत्पादक वाणी ।
'जुष्टा भवन्तु जुष्टयः'
ऋ. १.१०.१२, वाज.सं. ५.२९,तै.सं. १.३.१.२, मै.सं. १.२.११, २१.५. का.सं. २.१२, श.ब्रा. ३.६.१.२४, आप. मं.पा. १.२.६.
सेवन करने योग्य वाणियां तुझे अत्यन्त प्रिय लगे (जुष्टाः भवन्तु) (२) प्रेम, कृपा ।
'यस्य जुष्टिं सोमिनः कामयन्ते'
अ. ४.२४.५

जुह्वा - हवन करने का पात्र ।
'अनूनमग्निं जुह्वा वचस्या'
ऋ. २.१०.६

जुह्वानः - (१) दान देने वाला, (२) हवन करने वाला ।
'जुह्वानाय प्रचेतसे'
ऋ. ८.२७.२१

जुह्वास्य - जुहू + आस्य = जुह्वास्य । अर्थ -(१) ज्वाला रुपी मुख वाला-अग्नि (२) उपदेशप्रदवाणी को मुख से धारण करने वाला ।
'हव्यवाड्जुह्वास्यः'
ऋ. १.१२.६, साम. २.१९४, तै.सं. १.४.४६.३, ३.५.११.५, मै.सं. ४.१०.२, १४५.६, का.सं. १५.१२, ३४.१९. ऐ.ब्रा. १.१६.२८,श.ब्रा. १२.४.३.५, तै.ब्रा. २.७.१२.३, कौ.सू. १०८.२.
ग्रहण करने योग्य ज्ञान को धारण करने वाला ज्ञानी पुरुष तथा उपदेश मयी वाणी को मुख में धारण करने वाला या हव्य वहन करने वाला

नया ज्वाला रुपी मुखवाला अग्नि ।

जुहुरः - (१) कुटिल बर्ताव करने वाला (२) विनाश करने वाला ।

'स मा नो अत्र जुहुरः सहस्वः'

ऋ. ७.४.४

जुहुरन्त - बलात्कार करें ।

'मो षू णो अत्र जुहुरन्त देवाः मा पूर्वे अग्ने पितरः पदज्ञाः'

ऋ. ३.५५.२

जुहुराणः - (१) आमन्त्रित ।

'मित्रश्चिद्धिष्मा जुहुराणो देवान्'

ऋ. १०.१२.५, अ. १८.१.३३

(२) वक्र गति से चलता हुआ

'आकृष्ण ईं जुहुराणो जिघर्ति'

ऋ. ४.१७.१४

जुहुरे- जुह्विरे (आह्वयन्ति) । पुकारते हैं, आह्वान करते हैं । ह्वय, धातु का वर्तमान अर्थ में लिट् के प्र.पु.ब.व. का रूप । झ प्रत्यय से होंने वाले इर् का रे हुआ है । दुर्ग ने इसे जुह्वति का व्यत्यय माना है । यास्क ने 'जुह्विरे' का विचेतयमाना (विशेष रूप से चिन्तन करते हुए) अर्थ किया है । आर्यसमाजी पण्डितों ने जुहरे का अर्थ त्याग करते हुए किया है ।

'जुहुरे विचितयन्तः अनिमिषं नृम्णं पान्ति आदृढांपुरं विविशुः'

ऋ. ५.१९.२, नि. ४.१९

हे अग्नि, जो तुझे प्रदीप्त करते हुए (विचितयन्तः) तेरे प्रभाव को जानते हुए सदा (अनिमिषम्) तुझे पुकारते हैं (जुहुरे) तथा तेरे बल की हवि और स्तोत्रों से रक्षा करते हैं वे दृढ़ पुर में प्रवेश पाते हैं (दृढपुरं आविविशुः) अर्थात् ब्रह्मलोक की प्राप्ति करते हैं या इनकी ऐहिक और पारलौकिक स्थिति दृढ़ होती है । अन्य अर्थ - जो मनुष्य अग्रणी परमेश्वर का विशेष रूप से चिन्तन करते हुए आत्म त्याग करते हैं और जो प्रतिक्षण योगबल की रक्षा करते हैं (अनिमिषं नृम्णं पान्ति) वे ब्रह्म पुरी में प्रवेश करते हैं ।

जुहू - (१) जुहू नामक पात्र ।

'सनाद् राजभ्यो जुह्वा जुहोमि'

ऋ. २.२७.१, वाज.सं. ३४.५४, का.सं. ११.१२, नि. १२.३६

(२) ज्वाला, (३) उपदेशप्रद वाणी ।

'अग्निनाग्निः समिध्यते कविर्गृहपतिर्युवा 'हव्यवाड् जुह्वास्यः'

ऋ. १.१२.६, साम. २.१९४, तै.सं. १.४.४६.३, ३.५.११.५, मै.सं. ४.१०.२, १४५.६, का.सं. १५.१२, ३४.१९, ऐ.ब्रा. १.१६.२८, श.ब्रा. १२.४.३.५. तै.ब्रा. २.७.१२.३.

(४) शुक्र (वीर्य) ग्रहण करने वाला मातृ गर्भस्थ शुक्रधारक नाड़ी ।

'निंसानं जुह्वो मुखे'

ऋ. ८.४३.१०, का.सं. ७.१२.

(५) यज्ञ में तीन स्रुवा होते हैं-जुहू, उपभृत तथा ध्रुवाः तीनों ब्रह्माण्ड में द्यौ, अन्तरिक्ष और पृथिवी है । और राज्य में राजा, भृत्य और प्रजा है ।

'घृताच्यसि जुहूर्नाम्ना'

वाज.सं. २.६, वाज.सं. (का.) २.१.८,श.ब्रा. १.३.४.१४.

ज्ञुबाध् - घुटने मोड़ कर बैठने वाला ।

'उपज्ञुबाधः नमसा सदेम'

ऋ. ६.१.६

जू - (१) वेगवान् ।

'आत्वा जुवो रारहाणा अभिप्रयः'

ऋ. १.१३४.१

वेगवान् शीघ्र गमनशील (जुवः रारहाणाः) अश्व सोम या ऐश्वर्य को सबसे पूर्व प्राप्त करने के लिए (सोमस्य पूर्वपीतये) वीर पुरुष को प्राप्तत्य युद्ध तथा विजेय देश में प्राप्त कराते हैं । (२) सबके सेवन योग्य वाणी । जूरिव्येतत् ह वा अस्याः वाचः एकं नाम । मनसा वा इयं वाग् धृता । मनो वा इदं पुरस्तात् वाचः इत्थं वद, मा एतद्वादीः, इत्य लग्ल मिव वै वाग वदेद् यन्मनो न स्यात् ।

श. ब्रा. ३.२.४.११

'जू' यह वाणी का नाम है । मन इस वाणी को वश में रखता है । वाणी बोलने के पूर्व मन विचार करता है । ऐसा बोल मत बोल । यदि मन न हो तो वाणी गड़वड़ बोल जाती है ।

'जूरसि धृता मनसा जुष्टा विष्णवे'
वाज.सं. ४.१७, तै.सं. १.२.४.१, ६.१.७.२, मै.सं. १.२.४, १३.१,३.७.५, ८१.८, का.सं. २.५,२४.३, श.ब्रा. ३.२.४.११.

जूः – जीर्णावस्थाप्राप्त ।
'इन्द्रं सौमै रोर्णुत जूनवस्त्रैः'
ऋ. २.१४.३, मै.सं. ४.१४.५,२२२.८

जूजुवान् – तेजी से जाने वाला रथ ।
'पूर्वं करदुं परं जूजुवांसम्'
ऋ. ५.३१.११

जूति – जू (गत्यर्थक) + क्तिन् = जूति । अर्थ – (१) ज्ञान, जू धातु गमनार्थक होने से ज्ञानार्थकभी है (२) गति, (३) ज्ञाति (४) सेवनीय गुण ।
'प्रशंसन्ति नमसा जूतिभिर्वृधे'
ऋ. ३.३.८.
(५) सर्वत्र प्रसृतं ज्ञानम् (प्रसृतज्ञान) (६) मति, मनीषा, (७) स्मृति, संकल्प क्रतु असु, काम और वश ।
'घृतस्य जूतिः समना सदेव'
(८) वेग
'तं समाप्नोति जूतिभिः'
अ. १३.२.१५.

जूतिमान् – जू + क्तिन् + मतुप् = जूतिमत । प्रथमा एक वचन में रूप जूतिमान् । अर्थ- वेगवान्, उत्साही (२) ज्ञानी, (३) सेवनीय गुणों वाला ।
'त्विषीमानस्मि जूतिमान्'
अ. १२१.५८

जूर्णः– (१) ज्ञान और वयस में वृद्ध उपदेष्टा ।
'जूर्णो वाम् अक्षुरंहसो यजत्रा'
ऋ. १.१८०.५.

जूर्णा युगाः – (१) अतीत वर्षों की गाथाएं (२) गुजरे हुए अतीत काल के जोड़े, स्त्री पुरुष ।
'युगा जूर्णेव वरुणस्य भूरेः'
ऋ. १.१८४.३

जूर्णा – गन्तुमशक्या, वृद्धा, ।

जूर्णि– (१) शक्ति, (२) आयुधविशेष, (३) सेना, जव (गति), द्रव. अथवा द्रु (हिंसार्थक) + क्तिन् = जूर्णि, पृषोदरादिवत् सिद्ध । लोक में जर + क्तिन् = जूति शब्द बनता है ।

*'प्रप्रा वो अस्मे स्वयशोभिरूती
परिवर्ग इन्द्रो दुर्मतीनाम् ।
दरीमन् दुर्मतीनाम् '
स्वयं सा रिषयध्यै यान उपेषे अत्रैः
हतेमसन्न वक्षति क्षिप्ता जूर्णिर्न वक्षति'*
ऋ. १.१२९.८

हे स्तोताओ । मैं आप से कहता हूँ कि आप मेरे निमित्त (अस्मे) अपने यशों से युक्त रक्षा परायण इन्द्र की स्तुतियां करें (स्वयशोभिः ऊति प्र) । स्तुत होकर इन्द्र दुर्मति शत्रुओं को संग्राम में (दुर्मतीनां परिवर्गे) मारने वाले होंगे । तब पापियों के हनन शील इन्द्र द्वारा मेरी रक्षा होने पर (दुर्मतीनां दुरीमन्) भक्षकों या राक्षसों के द्वारा (अत्रैः) जो शक्ति (या जूर्णिः) हमें हिंसित करने (नः रिषध्यै) या हमें पकड़ने के लिएं (उपेषे) चलायी जाय (क्षिप्ता) वह स्वयं नष्ट हो जाय (सा स्वयम् हता असत् ईम्) और हमारे निकट न आने पावे (न वक्षति) । इन की महिमा से वे बीच में ही नष्ट हो जाएं ।

स्वा. दयानन्द का अर्थ –हे प्रजाजनो, तुम्हारी और हमारी रक्षा के लिए (वः अस्मे ऊर्ति) राजा दुर्जनों के परिवर्जन में (दुर्मतीनां परिवर्गे) अपने सामर्थ्य और प्रताप से सामर्थ्यवान् हों (स्वयशोभिः प्रप्र) । दुर्मतियों के विदारक ऐसे राजा के होने पर (दुर्मतीनां दरीमन्) भक्षक जनों का आततायियों ने (या अत्रैः) हम पर आक्रमण करने के लिए सेना भेजी है (नः उपेषे जूर्णिः क्षिप्रा) हमारे नाश के लिए प्रवृत्त वह सेना राजा के प्रताप से स्वंय ही पराभूत हो (स्वयं हता ईम् असत्) वह सेना हम तक न पहुंचे । (४) ज्वर आदि कष्टों से पीड़ित (५) स्तुतिकर्ता ।
'जूर्णिर्होत ऋषूणाम्'
ऋ. १.१२७.१०
ज्वर आदि कष्टों से पीड़ित पुरुष विद्वान् वैद्यों के समक्ष अपनी बात कहता है ।
अथवा
स्तुतिकर्त्ता उपासक या विद्या प्रदाता आचार्य भी उत्तम उपदेशक होकर दर्शनीय, प्राप्त विद्य या जिज्ञासु विद्यार्थी जनों के आगे ज्ञानोपदेश करता है ।

जूर्णिनी घृताची – (१) वेग से बीतने वाली रात्रि, (२) वृद्ध पुरुष के स्नेह से युक्त ।
'प्रातिरेति जूर्णिनीघृताची'
ऋ. ६.६३.४

जूर्णि– (१) आयु का नाश करने वाली नागिनी की वृत्ति से अपने और दूसरे के बल नाश करने वाली दुष्ट स्त्री, (२) चिन्ता ।
'जुर्णी पुनर्वो यन्तु यातवः'
अ. २.२४.५

जूर्यः – (१) वृद्ध, (२) हितोपदेष्टा ।
'रण्वः पुरीव जूर्यः'
ऋ. ६.२.७

जूर्व– भून डालना ।
'यो रक्षांसि निजूर्वति'
ऋ. १०.१८७.३, अ. ६.३४.२

जूर्वन् – नाश करता हुआ ।
'पुरु विश्वानि जूर्वन्'
ऋ. १.१९१.९

जत्व– (१) जेतव्य (जीतने योग्य) जि + त्वन् (तव्य के अर्थ में) = जेत्व ।
'वनस्य ते जेत्वानि'

जेता – जीतने वाला । जि + तृच्= जेतृ ।
'जेता शत्रून् विचर्षणिः'
ऋ. २.४१.१२, अ. २०.२०.७, ५७.१०, तै.ब्रा. २.५.३.२.
इन्द्र शत्रुओं का विजेता तथा सर्वद्रष्टा है ।

जेन्यः – विजय हेतु ।
'गृहे गृहे श्येतो जेन्योभूत्'
ऋ. १.७१.४
अग्नि गृह में प्राप्त होता तथा विजय का हेतु बनता है ।

जेन्यावसू – विजय करने योग्य धनों को प्राप्त करने वाले ।
'देवेभिर्जेन्यावसू'
ऋ. ८.३८.७, ऐ.ब्रा. ६.१०.६, गौ.ब्रा. २.२.२०, ३.१५.

जेमना – जयशीलौ (जिनका स्वभाव जयशील हो) । जि + मनिन् + औ = जेमनौ ==जेमना । यह रूप छान्दस है । अश्विनीद्वय का विशेषण । अर्थ–जयशील ।
'उदन्यजेव जेमनामदेरू'
ऋ. १०.१०६.६, नि. १३.५.
हे अश्विनी कुमारो । तुम दोनों चन्द्रमा के समान जयशील और मदमत्त हो ।

जेमा – विजय, ऐश्वर्य ।
'जेमा च मे महिमा च मे'
वाज.सं. १८.४, तै.सं. ४.७.२.१, मै.सं. २.११.२, १४१.२. का.सं. १८.७.

जेषे – जि + से = जेषे । अर्थ विजय के लिए ।
'अपां तोकस्य तनयस्य जेषे'
ऋ .१.१००.११, ६.४४.१८.
हम आप्तजनों तथा हमारे पुत्रों और पौत्रों के विजय के लिए ।

जेह – (१) प्रयत्न करना । (२) जेहन करना, अभ्यास करना, रगर करना
'ये तातृषुः देवत्रा जेहमानाः'
ऋ. १०.१५.९, अ. १८.३.४७, मै.सं. ४.१०.६, १५७.१६, तै.ब्रा. २.६.१६.२, आश्व.श्रौ.सू. २.१९.२४.

जेहमान – (१) प्रयत्नमान, प्रयत्नशील । जेह (प्रयत्न करना) + शानच् = जेहमान् ।
'अरेणुभिः जेहमानं पतत्रि'
ऋ. १.१६३.६, वाज.सं. २९.१७, तै.सं. ४.६.७.३, का.सं. (अश्व.) ६.३.
(२) प्रयत्न साधक, प्रयत्नों से साधना करने वाला (३) धारणा देने वाला, (४) अन्दाज लगाने वाला, (५) जेहन देने वाला ।
'एकपात्रं ऋभवो जेहमानम्'
ऋ. १.११०.५
शिल्पीजन नमूने के समान दूसरा पात्र बनाने की इच्छा करते हुए एक प्रयत्नसाधक बर्तन को सीके के बने पैमाने से मान लेते हैं । (६) जाता हुआ, (७) प्राप्त करता हुआ ।
'ये तातृषुर्देवत्रा जेहमानाः'
ऋ. १०.१५.९, अ. १८.३.४७, मै.सं. ४.१०.६, १५७.१६, तै.ब्रा. २.६.१६.२, आश्व.श्रौ.सू. २.१९.२४.
देवों के प्रति जाते हुए (देवत्रां जेहमानाः) अर्थात् क्रमशः देवत्व प्राप्त करते हुए.जो पितर तृषित होते हैं ।
अथवा जो देवताओं को प्राप्त करते हुए वेदमन्त्रों के द्वारा तर गए हैं ।

ज्येष्ठतातिः - ज्येष्ठ + तातिल = 'ज्येष्ठताति' । अर्थ-(१) आयु में वृद्ध, (२) श्रेष्ठ ।
'ज्येष्ठ तातिं बर्हिषदं स्वर्विदम्'
ऋ. ५.४४.१, वाज.सं. ७.१२, तै.सं. १.४.९.१, का.सं. ४.३, श. ब्रा. ४.२.१.९.
ज्येष्ठ, कुशासन पर बैठने वाले तथा सूर्य के समान दीख पड़ने वाले इन्द्र को ।
अथवा-अत्यन्त वृद्ध, राजसिंहासन पर तथा सुख पहुंचाने वाले राजा का ।
आधुनिक अर्थ- बड़ा, अधिकतर वयस्क

ज्येष्ठघ्नी- (१) ज्येष्ठा नक्षत्र जिसमें उत्पन्न होने वाला बालक अपने भ्रात, का नाश करता है (२) प्रथम बालक को खो चुकने वाली मृतसी स्त्री ।
'ज्येष्ठघ्न्यांजातो विचृतोर्यमस्य'
अ. ६.११०.२

ज्येष्ठतम् - (१) सब से अधिक स्तुतियोग्य (२) विद्या ऐश्वर्य आयु में सब से बड़ा
'प्र वः सतां ज्येष्ठतमाय सुष्टुतिम्'
ऋ. २.१६.१.

ज्येष्ठम्- सर्वश्रेष्ठ वेद ज्ञान
'यस्मिन् ज्येष्ठमधिश्रितम्'
अ. १०.८.१९

ज्येष्ठवरः- सबसे अधिक श्रेष्ठ प्रवर्तक कारण,
'क उज्येष्ठवरोऽभवत्.'
अ. ११.८.१

ज्येष्ठराट् - (१) बड़ो -बड़ो का राजा (२) बड़े बड़े सूर्यादि में प्रकाशमान इन्द्र-परमेश्वर
'ज्येष्ठराजं भरे कृत्नुम्'
ऋ. ८.१६.३, अ. २०.४४.३.
(३)गणपति का विशेषण
'ज्येष्ठराजं ब्रह्मणां ब्रह्मणस्पते'
ऋ. २.२३.१, तै.सं. २.३.१४.३, का.सं. १०.१३.

ज्येष्ठा - (१) ज्येष्ठानामक नक्षत्र
'ज्येष्ठासु नक्षत्रमरिष्टमूलम्'
अ. १९.७.३
(२) (ब.व.) मुखिया, सरदार, नेता,
(३) मरुद्गण या व्यापारीवर्ग का विशेषण । दे. वातासः
'प्रज्ञातारो न ज्येष्ठाः सुनीतयः'
ऋ. १०.७८.२.
प्रकृष्ट ज्ञानवाले, सुन्दर नीति वाले मरुद्गण या व्यापारीवर्ग मुखिया या नेता के समान...

जैत्र - (१) जि + ष्ट्रन् = जैत्र । अर्थ-जिताने वाला, विजय दिलाने वाला ।
'तं स्मा रथं मघवन् प्राव सातये जैत्रं यं ते अनुमदाम संगमे'
ऋ. १.१०२.३
(२) शत्रुओं पर विजय की प्राप्ति, (३) गति
'जैत्रायाविशतादु माम्'
ऋ.खि. १०.१२८.२, वाज.सं. ३४.५०, आप. मं.पा. २.८.१, हि.गृ. सू. १.१०.६.
(४) विजयशील ।
'इन्द्र जैत्रा श्रवस्या च यन्तवे'
ऋ. ८.१५.३, अ. २०.६१.६, ६२.१०.
(५) विजय ।
'स्वस्त्यश्व जैत्राय'
अ. २०.१२८.१५, शां.श्रौ.सू. १२.१६.१.२.

जैत्री- (१) जीतने वाली ।
'सातिं नो जैत्रीं सं महेत विश्वहा जामिम् अजामिम् पृतनासु सक्षणिम्'
ऋ. १.१११.३
बन्धु और उससे भिन्न शत्रु को भी संग्रामों में जीतने वाले विजय देने वाले हमारे धन सामग्री का सभी दिन आदर करे ।
(२) विजय करने वाली सेना ।
'अभि जैत्री रस चन्त स्पृधानम्'
ऋ. ३.३१.४

जैष्ठ्य - सब से बड़ा ज्येष्ठ पद ।
'इन्द्रं ज्यैष्ठ्याय धायसे गृणाणाः'
ऋ. ३.५०.३

जोगुवानः - (१) अव्यक्त शब्द करता हुआ, (२) मन्त्रणा करता हुआ । (३) प्रार्थना करता हुआ ।
'उपोवेनस्य जोगुवान ओणिम्'
ऋ. १.६१.१४, अ. २०.३५.१४

जोगूः - (१) भृशम् उपदेशक-दया (२) प्राप्त होने वाला परमेश्वर ।
'विश्वासु क्षासु जोगुवे'
ऋ. १.१२७.१०, ५.६.४.२.

जोषमुक्षित - जोषम् उक्षित । प्रेम या सेवा को देख कर मेघ के समान बरसने वाला इन्द्र

परमेश्वर ।
'च्यवनो युध्मो
अनुजोषमुक्षितः '
ऋ. २.२१.३.

जोषवाक् - जपनशील संन्यासी या ब्राह्मण (२) अविज्ञात मलीन वाणी ।
'जोषवाकं वदतः पज्रहोषिणा
न देवाः भसथश्चन'
ऋ. ६.५९.४, नि. ५.२२.
हे प्रसिद्ध स्तोत्र वाले देवो (पज्रहोषिणा देवाः), जो अविज्ञात मलीन बात बोलते हैं (जोषवामं वदतः) उनके सोमरस का ग्रहण कदापि तुम नहीं करते (न भसथः चन) ।
अथवा, हे अपनी आज्ञाओं का पालन कराने वाला राजा और मन्त्री (पज्र होषिणा) आप जपनशील संन्यासी या ब्राह्मण का अज नहीं खाते ।
'विश्वा ते अनु जोष्या भूद्गौः '
ऋ. १.१७३.८
तुझे लक्ष्य कर सभी वाणी सेवन करने योग्य होती है ।

जोष्ट्री - जोषयित्र्यौ (द्वि.व.) । अर्थ-जोषयित्री
'देवी जोष्ट्री वसुधिती
ययोररन्याद्या द्वेषांसि यूयवत्.
अन्या वक्षत् वसु वार्याणि
यजमानाय शिक्षिते वसुवने
वसुधेयस्य वीतां यज । '
वाज.सं. २८.१५.
हे जोषयित्री तथा धनों की धारयित्री देवियो ! जिनमें एक आज के पापों या दौर्भाग्यों को (आद्या द्वेषांसि) दूर करती है (यूययत्) और दूसरी धन बांटती है (वसुवने) तथा यजमानों को वरणीय वस्तुओं को देती है, (आवक्षत्) इस सुन्दर वसु विशिष्ट आज्य को पीवे (वसुधेयस्य वीताम्) या उसकी कामना करे ।

जोष्ट्री देवी - (द्वि.व.) । जोष्ट्र्यौ देव्यौ । दो जोष-यित्री ।
'देवी जोष्ट्रीवसुर्धितो'
वाज.सं. २८.१५
जो दो धनधारण करने वाली जोषयित्री देवियां हैं ।

जोहवीमि - (१) आह्वयामि (पुकारता हूं) । (२) स्वीकार करता हूँ ।
'कुहूमहं सुवृतं विद्मनापसम्
अस्मिन् यज्ञे सुहवां जोहवीमि
सानो ददातु श्रवणं पितृणाम
'तस्यै ते देवि हविषा विधेम '
मै.सं. ४.१४.१, २१६.१.
मैं शोभन कार्य करने वाली (अहं सुवृतम्) कर्म को जानने वाली (विद्मनापसम्) सुन्दर आह्वान् वाली अमावास्या को (सुहवाम् कुहूम्) इस यज्ञ में (अस्मिन यज्ञे) बुलाता हूँ (जोहवीमि) । वह हमें पितरों का धन और यश दे (सो नो पितृणां श्रवणं ददातु) इस प्रकार उपकारिणी तुझ देवी को (तस्यै ते) हम हवि से परिचर्या करते हैं (हविषा विधेम) ।
अन्य अर्थ - मैं साधु कर्म कारिणी (अहं सुवृतम्) अपने कर्त्तव्यों को जानने वाली (विद्मनापसम्) आदर पूर्वक बुलाने के योग्य (सुहवाम्) गम्भीर पत्नी को (कूहूम्) इस गृहस्थ यज्ञ में स्वीकार करता हूँ (अस्मिन् यज्ञे जो हवीमि) वह श्रेष्ठ पत्नी हमारे कुल क्रमागत ऐश्वर्य एवं यश को प्रदान करे (सा नः पितृणां श्रवणं ददातु) । हे देवि, ऐसे गुणों से सम्पन्न तेरी हम उत्तमोत्तम पदार्थों से सेवा करते हैं (देवितस्यैते हविषा विधेम) ।

जोहुत्र - (१) अति स्पर्द्धित, (२) सेना में शत्रुओं को ललकारने वाला ।
'जोहुत्रमर्यो अभिभूतिमुग्रम्
सहस्रसां वृषणं वीड्वंगम् । '
ऋ. १.११८.९.

जोहूत्र - (१) निरन्तर उत्तम पदार्थ देने वाला, (२) भक्त प्रेमी (३) नित्य स्मरण किया जाने या प्रकार जाने वाला ।
'सत्रो युवेन्द्रो जोहत्रः
ऋ. २.२०.३
(४) नाना सुख देने वाला-अग्नि (५) नाना कार्यों में प्रयोग करने योग्य, (६) नाना ज्ञानों और ऐश्वर्यों को देने वाला (७) शत्रुओं को ललकारने वाला (८) विपत्ति में पुकारे जाने योग्य ।
'जोहूत्रो अग्निः प्रथमः पितेव '

ऋ. २०.१०.१.

जोहुवा – (१) आदर पूर्वक बुलाने वाला – आह्वान करने वाला।

'पुरुवसुरागमत् जोहुवानम्'

ऋ. ५.४२.७

ज्योक् – (अ.) (१) दीर्घ कालतक।

'ज्योगेव दीर्घतम आशयिष्ठाः'

ऋ. १०.१२४.१

(२) निरन्तर-दया. (३) चिरञ्जीवी।

'ज्योग्जीवन्तः प्रजया सचेमहि'

ऋ. १.१३६.६

'ज्योगभूवन्ननुधूपितासः'

ऋ. २.३०.१०.

(३) चिरकाल तक।

'ज्योक्क सूर्यं दृशे'

ऋ. १.२३.२१, १०.९.७,५७.४, अ. १.६.३ १२.२.१८, वाज.सं. ३.५४. तै.सं. १.८.५.३, मै.सं. १.१०.३, १४३.१८, ३.११.१०, १५५.१६, का.सं. ९.६, १२.१५, श.ब्रा. २.६.१.३९, तै.आ. ४.४२.५, ला.श्रौ.सू. ५.२.११, कौ.सू. ८९.१, आप.मं.पा. २.१.२, ५.२१, हि.गृ.सू. १.७.१०, २.६.१०.

सूर्य के प्रकाश को चिरकाल तक देखने के लिए रोग निवारण करने वाला सर्वश्रेष्ठ औषध सेवन कराओ।

(४) कदापि।

'मारे अस्मन् मघवन् ज्योक्कः'

ऋ. ७.२२.६, साम. २.११५०.

(५) बहुतदिन।

'ज्योक्ते संदृशि जीव्यासम्'

वाज.सं. ३९.१९

(६) खूब

'ज्योग् जीवन्तः शरदः पुरूचीः'

अ. १८.२.२९

ज्योति – प्रकाशित करना।

'ज्योतयैनं महते सौभगाय'

अ. ७.१९.१

ज्योतिः – द्युत् + इस् = ज्योति ष् (द् का ज् में विपर्यय) अर्थ – (१) प्रकाश।

'आदधिक्राः शवसा पञ्चकृष्टीः सूर्ये इव ज्योतिषापस्ततान'

ऋ. ४.३८.१०, तै.सं. १.५.११.४, नि. १०.३१.

जिस दधिक्रा देव या मेघ ने पञ्चजनों-मनुष्य देव, असुर, राक्षस, और पितर या ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य, शुद्र तथा निषादों के लिए उस उसी प्रकार जलों का विस्तार किया जैसे सूर्य ने प्रकाश का।

(२) उषा।

'इदं श्रेष्ठं ज्योतिषां ज्योतिरागात्'

ऋ. १.११३.१, साम. २.१०९.९, नि. २.१९

द्योतमान ग्रहों में यह उषारूपी श्रेष्ठ प्रकाश पूर्व दिशा में आता है (३) चमकने वाला देव (४) अमृत, (५)प्राण

'आरोह तमसोज्योतिरेहि'

अ. ८.१.८

ज्योतिरग्निः – परमात्यज्योति भौतिक अग्नि में प्रकट है,

'अग्निर्ज्योति र्ज्योतिरग्निः स्वाहा'

साम. २.११८१, वाज.सं. ३.९, मै.सं. १.६.१०, १०२.११, १.८.१, ११५.२, १.८.५, १२१.१, २.७.१६, ९९.४, का.सं. ४०.६, ऐ.ब्रा. २.३१.४, ३२.१, ३७.१७, ५.३१.४, कौ.ब्रा. २.८.१४.१, जै.ब्रा. १.४, ष.ब्रा. १.४.९, श.ब्रा. २.३.१.३०, ३२, ३६, तै.ब्रा. २.१.९.२, तै.आ. ४.१०.५, ५.८.१०, आश्व.श्रौ.सू. २.३.१६, ५.९.११, शां.श्रौ.सू. २.९.१, ७.२.९, ला.श्रौ.सू. १.८.१४, आप.श्रौ.सू. ६.१०.८, १५.१२.८, १६.२३.१०, मा.श्रौ.सू. १.६.१.३७.

ज्योतिरग्रा– (१) ताराओं से युक्त उषा।

'ज्योतिरग्रा उषसः प्रति जागरासि'

अ. १४.२.३१

(२) प्रकाश को मुख्यरूप से प्राप्त होने वाला।

(३) प्रकाश की ओर बढ़ने वाली।

'तिस्रः प्रजा आर्या ज्योतिरग्राः'

ऋ. ७.३३.७, सै.ब्रा. २.२३६.

(४) पहले विद्युत् का प्रकाश और तब गर्जन।

(५) उत्तम ज्ञान– ज्योतियों से युक्त वेदवाणी।

(६) अग्र भाग में प्राण या रूप ज्योति से युक्त।

'तिस्रोवाचः प्रवद्धज्योतिरग्राः'

ऋ. ७.१०१.१

ज्योतिर्जरायु– जरायु के सदृश मेघ में स्थित गर्भवत् विद्युत्। द्योतमान गर्भ के जरायु के सदृश।

वेष्टक-मेघ जिसममें विद्युत् प्रकाशमान गर्भ के सदृश रहती है। अर्थ है-विद्युत गर्भ मेघ।
'ज्योतिर्जरायू रजसो विमाने'
ऋ. १०.१२३.१, वाज.स. ७.१६, तै.सं. १.४.८.१, मै.सं. १.३.१०, ३४.१, का.सं. ४.३, श.ब्रा. ४.२.१.८, १०, नि. १०.३९.
जल के निर्माता अन्तरिक्ष में (रजसो विमाने) वर्तमान गर्भ के सदृश जरायु रूप मेघ में रहने वाली विद्युत्।

ज्योतिर्वर्चः- परमात्मज्योति दीप्तिमान है।
'अग्निर्वर्चो ज्योतिर्वर्चः स्वाहा'
वाज.सं. ३.९.
'सूर्योवर्चो ज्योतिर्वर्चः स्वाहा'
वाज.सं. ३.९, श.ब्रा. २.३.१.३१.

ज्योतिःसूर्यः - परमात्म ज्योति भौतिक रूप में प्रकट है।
'सूर्योज्योतिः ज्योतिः सूर्यः स्वाहा'
सामं. २.११८१ वाज.सं. ३.९

ज्योतिष्कृत् - समस्त सूर्यादि शक्तियों का उत्पादक।
'ज्योतिष्कृदसि सूर्य'
ऋ. १.५०.४, अ. १३.२.९, अ. २०.४७.१६, आ.सं. ५.९, वाज.सं. ३३.३६ ,तै.सं. १.४.३१, मै.सं. ४.१०.६, १५८.१२, का.सं. १०.१३, तै.आ. ३.१६.१, महा.ना.उप. २०.७.

ज्योतिष्मन्तः लोकाः - आत्मज्योतिसे सम्पन्न पुरुष।
'लोका यत्र ज्योतिष्मन्तः'
ऋ. ९.११३.९

ज्योतिषस्पती- (द्वि.व.) (१) ज्योति, प्रकाश और तेज के पालक सूर्य और वायु अथवा सूर्य और मेघ -मित्रावरुण (२) ब्राह्मण वर्ग और छात्र वर्ग।
'ऋतेन यावृतावृधौ
ऋतस्य ज्योतिषस्पती
ता मित्रावरुणा हुवे'
ऋ. १.२३.५, साम. २.१४४.

ज्योतिषावृत स्वर्ग - (१) ज्योति से ढका हुआ सुखस्वरूप जीवात्मा, (२) ज्योति से ढका स्वर्ग।
'स्वर्गो ज्योतिषावृतः'
अ. १०.२.३१

ज्योतिषां ज्योतिः - (१) सभी ज्योतियों में श्रेष्ठ सूर्य, (२) परमज्योति प्रकाश स्वरूप ब्रह्म।
'इदं श्रेष्ठं ज्योतिषां ज्योतिरागात्'
ऋ. १.११३.१, साम. २.१०९९, नि. २.१९.

ज्योतिषी - (१) विद्युत्, (२) सूर्य, (३) अग्नि।

ज्योतिषीमान् - सूर्य के समान अतिदीप्त परमेश्वर -सूर्य।
'तस्मै प्रभाति नभसो ज्योतिषीमान्'
अ. १८.४.१४

ज्योतिरथ - (१) जिसका ज्योति ही रथ है, अग्नि। (२) प्रकाश युक्त रमणीय रथ। (३) सुवर्णचान्दी आदि से बने रथ वाला।
'ज्योतीरथं शुक्रवर्णं तमोहनम्'
ऋ. १.१४०.१, कौ.ब्रा. २५.९.

ण

णक्ष् - गत्यर्थ धातु।

णिसि- चुम्बनार्थक धातु।
'ते सोमादो हरी इन्द्रस्य निंसते'
ऋ. १०.९४.९
वे सोमरस पीने वाले परस्पर इन्द्र के घोड़ो को चूमते हैं।
वे सोमपान करने वाले सैनिक राजा की तरह बलवीर्य प्राप्त करते हैं।

त

तक - (सं.) अर्थ (१) दुष्ट, (२) विष
'तकं भिनद्धि अश्मना'
ऋ. १९१.१५

तकत् - वही।
'तकत् सुते मनायति'
ऋ. १.१३३.४
वही (तकत्) तेरा उत्तम मन संकल्प हो (ते सुमनायति)

तकवानः - तक (गत्यर्थक धातु) + उ = तकु। तकु + शान च = तकवान। अर्थ है प्राप्तविद्य जिसने विद्या प्राप्त की है आजकल टेकना चलना अर्थ में प्रयुक्त होता है।

'श्रुतं गायत्रं तकवानस्या'
ऋ. १.१२०.६
ज्ञानवान् विद्यावान् पुरुष का (तकवानस्य) श्रवण करने योग्य गायन करने वाले की नित्य अज्ञान पूर्वक ।

तक्त - (१) शुद्ध, (२) तेजस्वी ।
'मृगो ने तक्तो अर्षसि'
ऋ. ९.३२.४
(३) पूर्ण, (४) सुप्रसन्न, (५) हृष्ट पुष्ट ।
'स सर्गेण शवसाः तक्तो अत्यैः'
ऋ. ६.३२.५

तक्ति - जाता है कि तक् धातु गमनार्थक है ।
'सर्गोन तक्ति एतशः'
ऋ. ९.१६.१

तक्मन् - (१) तक् + मनिन् = तक्मन् , तक् धातु गत्यर्थक है । अतः तक्क्मन् का अर्थ हुआ चलने वाला, (२) उष्ण । (३) शरीर को कष्ट देने वाला ज्वर ।
'सनः सं विद्वान् परिवृङ्ग्धि तक्मन्'
अ. १.२५.१-३.

तक्वन् - तक् (गत्यर्थक) + वतुप् अर्थ -चोर ।

तक्व : - (१) शत्रुहन्ता ।
'तक्वो नेता तदि द्रधुः'
ऋ. ८.६९.१३, अ. २०.९२.१०
(२) कृच्छ्र तपस्वी ।

तक्ववी - (१) चोरों से रक्षा करने वाला पहरेदार ।
(२) जो सेवा जन को व्याप्त हो ।
'आनिम्रुच उषसः तक्ववीरिव'
ऋ. १.१५१.५
(३) समस्त उत्पन्न बोने वाले प्राणियों में हिताकारी (४) स्वंय समान् जगत् को उत्पन्न करने वाला परमेश्वर ।
'वने वने शिश्रिये तक्ववीरिव'
ऋ. १०.९१.२

तक्ववीय - (१) तक्वन् का अर्थ है स्तेन, चोर और तक्ववीय का-चोरों का जिसमें सम्बन्ध न हो वह मार्ग दया. (२) प्रजा-पीड़क पुरुषों को दूर करने का उत्तम कार्य ।

तक्ष - बताना, उत्पन्न करना काट छांट कर छोटा करना । '
'उत् तक्षतं स्वर्थं पर्वतेभ्यः'
ऋ. ७.१०४, अ. ८.४.४.

तक्षकः वैशालेय :- विषवती विराट् का वत्स ।
'तस्यास्तक्षको वैशालेये वत्स'
अ. ८.१० (५)१४

तक्षण - बढ़ई, काष्टकार ।
'धैर्याय तक्षाणम्'
वाज.सं. ३०.६.

तक्षत - (१) तनुकुरुत (काट छांटकर छोटा करो, (२) कुरुत (करो) तक्ष धातु तनूकरण तथा कनरा अर्थ में आया है, (३) संस्कुरुत, अभिष्णुत (सुन्दर बनाओ, बढ़िया बनाओ) ।

तक्षति - करोति (करता है) ।

तक्षती - तक्ष + शतृ + ङीष् । (१) बनाती हुई, (२) गौरी अर्थात् माध्यिमका वाक् का विशेषण ।
'गौरी र्मिमाय सलिलानि तक्षती'
ऋ. १.१६४.४१, अ. ९.१०.२१, तै.ब्रा. २.४.६.११, ऐ.आ. १.५.३.८ , तै.आ. १.९.४, नि. ११.४०.
माध्यमिका वाक् गौरी ने सलिल बनाती हुई यह सब कुछ निर्मित किया ।

तक्षथुः - अकुरुतम् (किया) ।

तड़ित् - अक्ताड़यति अशनि रूपेण (वज्ररूप से वह अवताडित करती है) । दूराच्च दृश्यते करती है, दूराच्च दृश्यते (और वह दूर से दीख पड़ती है । अर्थ - (१) विद्युत् ।
'यानोदूरे तड़ितो या अरातयः'
ऋ. २.२३.९, नि. ३.११.
जो हम से दूर यह शत्रु सेनाएं हैं ।
(२) निकटस्थ, अन्तिकस्थ अन्तिक तथा वध दोनों का अभिधायक तड़ित् शब्द है । तड़ (ताड़न करना) + इति = तड़ित (ताड़े णिः लुक् च) । वृद्धि नहीं हुई है ।
विद्युत् दूर चमकती हुई भी निकटस्थ दीख पड़ती है अतः भी वह भी ताड़ित है । विद्युत् है (विद्युत् तड़ितवत् भवति) यह शाकपूणि का मत है । (३) आघात करने वाली ।

तकुः - तक् (गत्यर्थक) + उ । अर्थ -शरणागत्
'पुरुमेधश्चित् तकवे नरंदात्'
ऋ. ९.९७.५२, साम. १.५४१, २.४.५४.

तुङ्गल्व - फूली गाल वाला ।

'पवीनसात् तङ्ग्ल्वात्

अ. ८.६.२१

तण्डुल – तड + उलच् = तण्डुल (वृजलुटि)

'तनिताण्डभ्यश्च उलच् तण्डश्च ।
तण्डयति ताडयति इति तण्डुल'

(१) दुष्टों को ताड़ने करने वाला, (२) राजा को घेरने वाला, (३) पीड़कों को तारण करने वाला, (४) शत्रुओं को लूटने वाला, (५) चावल, (६) धनुष को तानने वाला ।

'यो वा शूर्पे तण्डुलः कणः

अ. १०.९.२६

'सोमस्यां शवः तण्डुला यज्ञिया इमे'

अ. ११.१.१८

तत् एकम् – वह एक सत् ब्रह्म ।

'आनीदवातं स्वधया तदेकम्'

ऋ. १०.१२९.२, तै.ब्रा. २.८.९.४.

उस प्रलय काल की अवस्था में वह एक सत् ब्रह्म स्वभावतः (स्वधयो) वायु के बिना (अवातम्) प्राण धारण कर रहा था (आनीत्)

तत् ते नाम – (१) तेरा वह नाम अर्थात् रश्मियों से आविष्ट शिपि विष्ट विष्णु – (२) तेरा वह नाम अर्थात् ओम् –दया. ।

'प्रतत् ते अद्य शिपिविष्ट नाम
अर्यः शंसामि वयुनानि विद्वान्'

ऋ. ७.१००.५, साम. २.९७६, तै.सं. २.२.१२.५, मै.सं. ४.१०.१, १४४.६, का.सं. ६.१०, नि. ५.९.

हे रश्मियों से आविष्ट विष्णु देव (शिपिविष्ट) तेरा वह शिपिविष्ट नाम श्रेष्ठ है (तत् ते नाम अर्यः) यह स्मरण कर तथा तेरे प्रज्ञानों या गुणों को जानता हुआ (वयुनानि विद्वान्) मैं आज स्तुति करता हूँ ।

अन्य अर्थ– हे तेजः स्वरूप विष्णु परमेश्वर (शिपिविष्ट) विज्ञानों को जानता हुआ वाचस्पति मैं आज तेरे उस प्रसिद्ध नाम ऊं को जानता हूँ । –दया.

तत – तनु (तनना) + क्त = तत ' अर्थ है–(१) तना हुआ विस्तृत । (२) पिता या पुत्र तन्यते यस्मात् सः (जिससे विस्तार बढ़ता है । वह अर्थात् पिता) ।

तन्यते यः स. (जो विस्तार रूप में बढे अर्थात् पुत्र) । तनु + क्त = तत । यहां क्त प्रत्य अपादान और कर्त्ताअर्थ में हुआ है।

'एतत् ते तत स्वधा'

ऋ. १८.४.७७

(३) मेघजल या ओषधिवर्ग ।

'कारुरहं ततो भिषक्'

ऋ. ९.११२.३, नि. ६.६.

यहां तत पिता के अर्थ में प्रयुक्त है ।

'तनोति सन्तान मितिततः'

(४) प्रिय ।

'शिरस्तवस्योर्वराय'

ऋ. ८.९१.५, जै.ब्रा. १.२२१.

(५) व्यापक परमेश्वर । (६) विस्तृत जगत् ।

'टाट' तत का ही बिगड़ा रूप है ।

ततक्ष – संश्वकार (सुसंस्कृत किया है) ।

ततक्षुः – कुर्युः (किया) .तक्षधातु करना, अर्थ में आया है ।

ततन्तु – (१) अविच्छिन्नतन्तु (२) प्रजा, सन्ताति, सन्तान ।

'ततं तन्तुमन्वेके तरन्ति'

अ. ६.१२२.२, तै.आ.२.६.२.

ततनः– विस्तार करता हुआ फैलता हुआ ।

'पर्जन्य इव ततनः'

ऋ. १.३८.१४

मेघ के समान फैलता हुआ ।

ततन्थ – विस्तृत करता है ।

'त्वमा ततन्थ उर्वन्तरिक्षम्'

ऋ. १.९१.२२, आ.सं. ३.३, वाज.सं. ३४.२२, मै.सं. ४..१४.१,२१४.१०, का.सं. १३.१५, तै.ब्रा. २.८.३.१.

ततनुष्टि – तितनिषु । अर्थ (१) वह पुरुष जो धर्म से दूर हैं, (२) आत्म मण्डन परायण, (३) विषयोपभोगपरायण–धर्म हित (४) अनेकों उपायों से जैसे तैसे धन बढ़ाने वाला ।

'अपाप शक्र स्ततनुष्टिमूहति'

ऋ. ५.३४.३, नि. ६.१९.

इन्द्र धर्म से दूर, आत्म मण्डन परायण विषयोपभोगपरायण धर्म से रहित पुरुष को जो जैस तैसे अनेक उपायों से अपना धन बढ़ाता है बार बार नष्ट करता हैं ।

'ततनुष्टि' का अर्थ है–धर्म सन्तानात् अपेतः,

अलङ्करिष्णुः, अपज्वानः

(२) ततनुन्न (धर्म या अग्नि होत्रादि से दूर-अयजन शील पुरुषः (३) ततं धर्मसंनतिं नुदति वष्टि कामयते च कामान् (जो सनातन धर्म मार्ग को नष्ट करता है और वासना में प्रवृत्त ही धन का विस्तार चाहता है।

(४) विषयी होकर जैसे तैसे धनाढ्य होने वाला (५) भृशं तननं वष्टि इति तत नुष्टिः (तनु धातु का यङ्लुङन्त रूप -ततन + नश् + क्तिन् = ततनुष्टि । (६) शक्ति, (७) विस्तृत शक्ति वाला।

'अपाप शक्रस्ततनुष्टिमूहति'

ऋ. ५.३४.३, नि. ६.१९

ततरुष - सबको संकटों से तारने वाला -सूर्य

'त्रिषधस्थः ततरुषोन जंहः'

ऋ. ६.१२.२

ततः - (१) तत् + तसिल् = ततः। अर्थ है। तत्पश्चात्, उसके बाद।

तताः - पूर्वपुरुषों की सन्तानें।

'तता अवरे ते मावन्तु'

अ. ५.२४.१६

ततामहः - (१) पितामह।

'एतत् ते ततामहस्वधा ये च त्वामनु'

अ. १८.४.७६

(२) सन्तानों का सन्तान।

'ततस्ततामहास्ते मावन्तु'

अ. ५.२४.१७

तति - उतना।

'तावद् वां चक्षुस्ततिवीर्याणि'

अ. १२.३.२

ततिधा - उतने प्रकार का।

'तावत्तेजः ततिधा वाजिनानि'

अ. १२.३.२.

ततुरि - (१) तरणशील- (२) दुःख सागर से पार करने वाला। (३) अतिशीघ्र कार्य-सम्पादन करने वाला।

'नक्षद्दाभं ततुरिं पर्वतेष्ठाम्'

ऋ. ६.२२.२, अ. २०.३६.२, नि. ६.३.

(४) दुःखों से तरने वाला (५) शत्रु-नाशक।

'प्र सद्यो द्युम्ना तिरते ततुरिः'

ऋ. ६.६८.७

ततृषाणः - (१) मारने वाला, (२) प्रजादि के धन का लोलुप।

'दक्षन्न विश्वं ततृषाणमेषति'

ऋ. १.१३०.८

सब प्रकार के मारने वाले शत्रु या प्रजा के धनादि की तृष्णा से लोलुप पुरुष को सूंखे काष्ट को अग्नि की तरह जला दे।

तदर्म - तृण का बना आसन।

'शंमेथिर्भवतु शंयुगस्य तद्र्म'

अ. १४.१.४०

तदिदर्थ - तत् + इत् + अर्थ। इस लोक तथा उस लोक के प्रयोजनों की इच्छा करने वाला।

'वयमु त्वा तदिदर्थाः'

ऋ. ८.२.१६, अ. २०.१८.१, साम. १.१५७.२,.६९, पंच.ब्रा. ९.२.५ आश्व.श्रौ.सू. ६.४.१०, शां.श्रौ.सू. ९.९.१,वै.सू. २६.५.

(२) वह और यह -पारमार्थिक और रोहिक नाना प्रयोजनों को चाहने वाला।

तदुरी - (१) मेढ़क की एक जाति, (२) ब्रह्म तक पहुंचने वाली सुषुम्ना नाम की नाड़ी (तत् ब्रह्म इयर्ति इति तदुरि सुषम्ना साच मध्ये। इडापिङ्गलयोः वर्तमाना भवति)

तदोजाः - अपने ही ओज से पूर्ण परमेश्वर -सूर्य।

'सहस्रश्रृंगो वृषभस्तदोजाः'

ऋ. ५.१.८

तन्त्र - (१) प्रपञ्च, (२) लोकव्यवहार, (३) कृषि, कुटुम्ब भरण आदि।

'सिरीस्तन्त्रं तन्वतेअप्रजज्ञयः'

ऋ. १०.७१.९, बौ.ध.शा. २.६.११.३.

तन्द्रयुः- (१) आलस्य युक्त।

'मो षु ब्रह्मेव तन्द्रयुः'

ऋ. ८.९२.३०, अ. २०.६०.३, साम. २.१७६

तन् - (१) तानना, ताना बाना करना, तन्तु नानना।

'या अकृन्तन्नवयन् याश्च तत्निरे'

अ. १४.१.४५

'अपसोऽतन्वत'

मै.सं. १.९.४,१३४.९, का.सं. ९.९, पंच.ब्रा. १.८.९,मा.श्रौ.सू. ५.२.१४.१०, ११.१.१, नि. ३.२१. हे वस्त्र, तुझे कुविन्द के छोटे छोटे लड़को ने ताना (२) विस्तृत यज्ञ।

'यज्ञिद्धि शश्वता तना देवं देवं यजामहे'

ऋ. १.२६.६, साम. २.९६.८

तन – तनय, पौत्र।

'उरु णस्तन्वे तन'

ऋ. ८.६८.१२

तनय – तनु (विस्तार अर्थ में) + कयन् = तनय। अर्थ है। (१) पुत्र। स हि कुलं तनोति (पुत्र कुल का विस्तार करता है।

'मा नस्तोकेषु तनयेषु रीरिषः'

ऋ. ७.४६.३, नि. १०.७.

हमारे पुत्र पुत्री रुपी सन्ताओं में तेरी सहस्त्रों औषधियां हिंसा न करें (मारीरिषः)।

तनयस्य मज्मन् – (१) पुत्र का बल, (२) वायु का तनय अग्नि है अतः अग्नि का बल। (३) राज्य प्रसारक सैन्य बल का बल।

तनस् – पौत्र।

'मा शेषसा मा तनसा'

ऋ. ५.७०.४

तना – नित्य।

'अण्वीभिस्तना पूतासः'

ऋ. १.३.४, अ.२०.८४.१, साम. २.४९६, वाज.सं. २०.८७.

तन्तिः – (१) रस्सी, (२) विस्तृत राजनियम।

'वत्सानां न तन्तयस्त इन्द्र'

ऋ. ६.२४.४

तन्तु – (१) आगे बढ़ने या बढ़ाने वाला तन्तु, (२) प्रजातन्तु, (३) शिष्य तन्तु।

'तन्तुं तनुष्व पूर्व्यं
सुतसोमाय दाशुषे।'

ऋ. १.१४२.१, ८.१३.१४.

(४) ताने का सूत।

'य ओतवो ये च तन्तवः'

अ. १४.२.५१

(५) सूत्र।

तन्द्रम् – (१) गणित विद्या, (२) पंक्ति।

'तन्द्रं छन्दः'

वाज.सं. १४.९.१५.५, तै.सं. ४.३.५.१, १२.३, मै.सं. २.८.२. १०८.४, २.८.७,११२.४, का.सं. १७.२.६, श.ब्रा. ८.२.४.३, ५.२.६.

तन्द्रयुः – आलस्य से युक्त।

'मो षु ब्रह्मेव तन्द्रयुः'

ऋ. ८.९२.३०, अ. २०.६०.३, साम. २.१७६.

तन्दते – नाश करता है, मिटाता है।

'महित्वमस्य तवसो न तन्दते'

ऋ. १.१३८.१

तना – (१) उस्रिया, (२) देह के सब कार्यों का विस्तार करने वाली उत्कर्षण शील चेतना शक्ति, (३) देह का विस्तार करने वाली गौ।

'मधोर्दुग्धस्याश्विना तनायाः
वीतं पातं पयस उस्रियायाः।'

अ. ७.७३.५, आश्व.श्रौ.सू. ४.७.४, शां.श्रौ.सू. ५.१०.१८

तन्द्री – (१) आलस्य भाव।

'स्वप्नो वै तन्द्री निर्ऋतिः,'

अ. ११.८.१९

(२) निद्रा।

'श्रमस्तन्द्रीश्च मोहश्च'

अ. ८.८.९

तन्यत् – गर्जन।

'न वेपसा न तन्यता
इन्द्रं वृत्रो विबीभयत्'

ऋ. १.८०.१२

न वेग से और न गर्जन से वृत्र या मेघ से इन्द्र या विद्युत् को डरा सकता है।

तन्यतुः – (१) विस्तार करने वाली।

'पावीरवी तन्यतुरे कपादजः'

ऋ. १०.६५.१३, नि. १२.३०

माध्यमिका ऐन्द्री वाणी (पावीरवी) अन्यों की वाणी का विस्तार करने वाली है (तन्यतुः)

(२) गरजतामेघ

'सृजावृष्टिं न तन्यतुः'

ऋ. ९.१००.३

(३) गर्जन।

'उतो ते तन्यतुर्यथा'

ऋ. ५.२५.८.

(४) तन् + युच् = तन्यतु। विस्तृत वेगस्वभाव विद्युत् (५) घोरध्वनि।

'जयतामिव तन्यतुः
मरुतामिति धृष्णुया।'

ऋ. १.२३.११

तना – (१) धन।

'वराय ते पात्रं धर्मणे तना'

ऋ. १०.५०.६

हे इन्द्र ! अपनी श्रेष्ठ कामना के लिए (वराय) तथा अपनी धारणा या धर्म रक्षा के लिए (धर्मणे) तुझे सोमरस पूर्णपात्र तथा धन देता हूँ। (तना)।

तनु - तन् + उ = तनु। अर्थ-(१) शरीर।
'एना पत्या तन्वं संसृजस्व'
ऋ. १०.८५.२७, अ. १४.१.२१, आप. मं.पा. १.९.४, नि.३.२१.
हे वधू, तू इस पति के साथ अपने शरीर को एक कर दो अर्थात् ऐकात्म्य स्थापित कर दो।
(२) शरीर व्यापी बल।
'तनूस्तन्वा मे सहे'
अ. १९.६१.१, तै.सं. ५.५.९.२, तै.आ. (आंध्र) १०.७२, वै.सू. ३.१४, पा.गृ.सू. १.३.२५.
(३) बाहु।
'एष स्य ते तन्वोः'
ऋ. २.३६.५, अ. २०.९७.६
शरीर के अर्थ में प्रयोगः-
'उरुणस्तन्वे तने'
ऋ. ८.६८.१२

तनुते - तन् धातु का लट् प्र.पु.ए.व. का रूप। अर्थ फैला देता है।
'आद्रात्री वासस्तनुते सिमस्मै'
ऋ. १.११५.४, अ. २०.१२३.१, वाज.सं. ३३.३७, मै.सं. ४.१०.२, १४७.२, तै.ब्रा. २.८.७.२, नि. ४.११.
तुरत ही (आत्) रात्रि सभी के लिए (सिमस्मै) अन्धकार फैला देती है (वासः तनुते)।

तनू - तन् (विस्तार करना) + ऊ = तनू। अर्थ-(१) पुत्र।
'घृतेनत्वं तन्वं वर्धयस्व'
ऋ. १०.५९.५, वाज.सं. १२.४४, तै.सं. ३.१.४.४, ४.२.३.४, मै.सं. १.७.१,१०८.११, श.ब्रा. ६.६.४.१२, आप.श्रौ.सू. ७.६.५, मा.श्रौ.सू १.७.३.४०, नि. १०.४०.
(२) शरीर, (३) आत्मा, (४) तत्व, (५) भाव
'उतो त्वस्मै तन्वं विसस्रे'
ऋ. १०.७१.४, नि. १.१९.
किसी को तो वेदवाणी वाणी के तत्व, आत्मा, या भाव को (तन्वम्) विशेष रूप से स्पष्ट कर देती है (विसस्रे) (६) जल। जल अन्तरिक्ष में विस्तृत है। (७) गौ, गौ में दूध घी आदि भोज्य पदार्थ विस्त है।

तनूकृथे - तनुकृते, शरीर के लिए।
'ता वां विश्व को हवते तनूकृथे'
ऋ. ८.८६.१.३.

तनूकृत् - (१) यः तनूषु पृथिव्यादि विस्तृतेषु लोकेषु विद्यां करोति (पृथिव्यादि बड़े लोकों में विद्या प्राप्त करने वाला)। (२) समस्त प्राणियों, लोकों और पृथिवी आदि तत्वों के रूपों -देहों को रचने वाला परमेश्वर अग्नि।
'तनूकृद् बोधि प्रमतिश्च कारवे'
ऋ. १.३१.९
तू सबसे उत्कृष्ट ज्ञान वाला और समस्त प्राणियों और लोको और पृथिवी आदि तत्वों के रूपों देहों की रचना वाला होकर कर्त्ताजीव को ज्ञान प्रदान करता है। (३) क्षीण करने वाला।
'त्वं सोम तनू कृद्भ्यः'
ऋ. ८.७९.३, वाज.सं. ५.३५, तै.सं. १.३.४.१, ६.३.२.२, मै.सं. १.२.१३, २२.३,३.९.१,११२.८, का.सं. ३.१, श.ब्रा. ३.६.३.७, मा.श्रौ.सू. २.२.४.२४, आप.श्रौ.सू. ११.१६.१६.

तनुमात्रा - अतिविस्तृत, जगत् को फैलानी वाली-समस्त जगत् को बनाने वाली प्रकृति।
'परो मात्रया तन्वा वृधामः'
ऋ. ७.९९.१,मै.स. ४.१४.५, २२१.५,तै.ब्रा. २.८.३.२, आश्व. श्रौ.सू. ३.८.१.

तनूज - त्वचा और अस्थि के बीच मांस से उत्पन्न होने वाला किलास नामक कुष्ठ।
'तनूजस्य च यत् त्वचि'
अ. १.१.२३.४, तै.ब्रा.२.४.४.२.

तनूत्यजा - (द्वि.) तनूत्यजौ (शरीर की परवा नहीं करने वाले। तनु+ त्यज् + क्विप् = तनूत्यज्। द्वि.व. में तनूत्यजा (वैदिक रूप)।
'तनूत्यजेव तस्करा वनर्गू
रशनाभिर्दशभिरभ्यधीताम्'
ऋ. १०.४.६, नि. ३.१४.
हे वनस्थ वाणप्रस्थी, शरीर की परवाह न करने वाले वनगामी चोरों की तरह दसों अंगुलियों से यज्ञकर्मों को धारण करो।
अन्य अर्थ - हे अग्नि, ये हमारे बाहु प्राणों का निछावर कर वनगामी चोरों की तरह दस

अंगुलियों से बांधते या पकड़ते हैं । अग्नि उत्पन्न करने के लिए अरणियों को पकड़ने का तात्पर्य है ।

तनूदूषिः – (१) शरीर में दोष उत्पन्न करने वाला ।
'म्रोकोमनोहा खनोनिदहि आत्मदूषिस्तनूदूषिः'
अ. १६.१.३
(२) शरीर को दूषित करने वाला रोग ।
'तनूदूषिमपोहामि'
अ. १४.१.३८

तनूनपात् – (१) अग्नि-शाकपूणि ।
'तनूनपात् पथ ऋतस्य यानान्
मध्वा समञ्जन् स्वदया सुजिह्व'
ऋ. १०.११०.२, अ. ५.१२.२, वाज.सं. २९.२६, मै.सं. ४.१३.३, २०१.१०, का.सं. १६.२०, तै.ब्रा. ३.६.३.१, नि. ८.६.
हे अग्नि, यज्ञ के इन फल प्राप्ति कारक हविरूपी मार्गों को मधुरस से मिलाते हुए स्वादिष्ट बना ।
(२) आज्य, घृत-काथक्य के मत से (३) यज्ञाग्नि-दया. । नपात् का अर्थ पोता (पौत्र) है और तनू का गौ । गौ का पुत्र दुग्ध और दुग्ध का पुत्र घृत तनूनपात हुआ । यही काथक्य का मत है । तनू + नपात् ।
पुनः 'तनू' का अर्थ जल है, जल से ओषधि वनस्पति और सूखी औषधधियों से अग्नि उत्पन्न होता है । अतः तनू (जल) का पौत्र अग्नि हुआ । यह शाकपूणि का मत है ।
स्वामी दयानन्द के अनुसार यज्ञाग्नि शरीर तथा ओषधि आदि अंशों की भी रक्षा करने वाला है । (शरीरौषध्या दीनां ऊनानि न्यूनानि उपाङ्गानि पाति रक्षति यः सः) ।
'मधुमन्तं तनून पात्
यज्ञत्रं देवेषुनः कवे ।'
ऋ. १.१३.२, साम. २.६९८.
(४) देह को न गिरने देने वाला आत्मा, (५) अन्न, (६) राष्ट्र विस्तार को काम न होने देने वाला प्रजापति ।
'तनूनपाद् ऋतंयते
मध्वा यज्ञः समज्यते ।'
ऋ. १.१८८.२

तनूनप्त्रा – शरीर का रक्षक ।
'तनूनप्त्रे शाक्वराय शक्वन ओजिष्ठाय'
वाज.सं. ५.५.

तनूपा – (द्वि.व.) (१) शरीर के पालक अश्विद्वय -प्राण और अपान ।
'भूतं जगत्पाउतनस्तनूपा'
ऋ. ८.९.११, अ. २०.१४१.१
(२) (स्त्री) शरीरों अर्थात् पुत्रों की रक्षा करने वाली ।
'तनूपाश्च सरस्वती'
वाज.सं. २१.१३, का.सं. ३८.१०.

तनूपान– (१) शरीर रक्षा के लिए कवच धारण करने वाला ।
'तनूपानं परिपाणं'
अ. ५.८.६, ११.१०.१७
(२) समस्त प्रजा के शरीरों का रक्षक ।
'तनूपानोऽसि'
अ. २.११.४

तनूरुच् – प्रत्येक देह में कान्तिरूप अग्नि ।
'त्वां भ्रात्राय शम्या तनूरुचम्'
ऋ. २.१.९

तनूरुचा– (द्वि.व.) (१) अपनी देह की कान्ति से चमकने वाले दो पुरुष, (२) विस्तृत सेनाओं । या राष्ट्रसम्पदा से शोभायमान
'तनूरुचा तुरुषि यत्कृण्वैचे'
ऋ. ६.२५.४

तनूवशी – (१) अपने शरीर पर वश करने में समर्थ ।
'यो अक्षेषु तनूवशी'
अ. ७.१०९.१
(२) जितेन्द्रिय, (३) अग्नि ।
'जातवेदस्तनूवशिन्'
अ. १.७.२, ५.८.२.
(४) शरीर को अपने वश में करने वाला सदाचारी ।
'अस्मिन् धेहि तनूवशिन्'
अ. ४.४.४

तनूशुभ्रः – अथवा शरीर सजाने वाला विषयी, (२) अपना शरीर पोसने वाला ।
'अपाज शक्रस्ततनुष्टिमूहति
तनूशुभ्रं मघवा यः कवासखः'
ऋ. ५.३४.३, नि. ६.१९.
धर्मविमुख, आत्म मण्डन परायण या

विषयोपभोगपरायण या जैसे तैसे अनेक प्रकार से अपनाधन बढ़ाने वाले पुरुष को या उसे जों सिर्फ अपना शरीर पोसता है । (ततनुष्टिम् तनूशुभ्रम्) ऐश्वर्य शाली इन्द्र बारबारष्टकरता है और जो असाधुजनसंषर्की है उसे भी (कवासखः) । (३) शरीर से शोभने के वाद, (४) राष्ट्र से शोभने वाला, (५) देह को सजाने वाला अभिमानी ।

तन्वेइच्छमानः – विस्तृत संसार को प्रकट करने के लिए संकल्प करने वाला प्रभु ।
'स्वयं गातुं तन्व इच्छमानम्'
ऋ. ४.१८.१०

तपन – (१) तपाने वाला, दुखः देने वाला ।
'ब्रह्माद्विषस्तपनो मन्युमीरसि'
ऋ. २.२३.४
(२) सूर्य, तपाने वाला ।
'निकृत्वानस्तपनास्तापयिष्णवः'
ऋ. १०.३४.७

तपनी – (१) सन्ताप और पीड़ा देने वाली व्यवस्था शक्ति या सेना ।
'तेजिष्ठया तपनी रक्षसस्तप'
ऋ. २.२३.१४

तपस् – तप् (आलोचनार्थक) + असुन् = तपस् । अर्थ है -(१) स्रष्टव्य पर्यालोचन रूप व्यापार, (२) तपस्या ।
(३) तपस्या करना, (४) पर्यालोचन करना । (तपपर्यालोचने इति रति धातु पाठः) (५) वेद का पर्यालोचन, साक्षात्कार और अनुशील तप है, (६) ऋत् ,सत्य, तप,शम, दम यज्ञ, मानव सेना, प्रजोत्पादन, प्रजारक्षण, प्रजावर्धन, स्वाध्याय, और प्रवचन तप है । (७) राथीतर आचार्य सत्यपालन को तप कहते हैं (८) पौरुशिष्ट तप को ही तप कहते हैं।
'ऋतं, तपः, सत्यं तपः, श्रुतं तपः,
शान्तं तपः, दमस्तपः, शमस्तपः,
दानं तपः यज्ञस्तपः, भूर्भुवः
सुवब्रह्मैदुपास्वैतत्तमः'
तै.आ. १०.८
'मनसश्चन्द्रियाणां च ऐकाग्र्यं तप उच्यते '
(९) श्रम कार्य ।
'तपसे शूद्रम्'
वाज.सं. ३०.५,तै.ब्रा. ३.४.१.१
(१०) माघ ।
'उपयामगृहीतोऽसि तपसे त्वा'
वाज.सं. ७.३०

तपस्पतिः – तपश्चर्या का पालक परमेश्वर ।
'अनु मे दीक्षा दीक्षापतिः
मन्यतामनतपस्तपपतिः'
वाज.सं. ५.६, तै.सं. १.२.१०.२, का.सं. २.२, गो.ब्रा. २.२. ३, श.ब्रा. ३.४.३.९. ६.३.२१, वै.सू. १३.१८.

तपस्य – फाल्गुनमास ।
'उपयामगृहीतोऽसि तपस्यायत्वा '
वाज.सं. ७.३०

तमस्वान् – तपस्या करने वाला ।
'ऋषीन् तपस्वतो यम'
ऋ. १०.१५४.५, अ. १८.२.१५, १८,

तप्त -तप् + क्त (१) ऐश्वर्ययुक्त (२) संतप्तपुरुष । (३) सिद्ध तेजस्वी पुरुष ।
'तप्ताय स्वाहा'
वाज.सं. ३९.१२

तप्तायनी – (१) तप्त, (२) भूख आदि से पीड़ित, (३) आधिदैविक उत्पादक, (४) हिम, आतप वर्षा आदि से पीड़ित पुरुष को शरण रूप में प्राप्त होने वाली पृथ्वी, (५) तप्त, प्रतप्त या ताप देने वाले अग्न्युत्पादक पदार्थों को देने वाली पृथिवी ।
'तप्तायनी मेऽसि'
वाज.सं. ५.९, मै.सं. १.२.८,१७.८.३.८.५, ९९.१५,श.ब्रा. ३.५.१ .२७, मा.श्रौ.सू. १.७.३.१५

तप्यतुः – (१) सन्तप्त करने वाला ।
'आदित् सूर्यस्तपति तव्यतुर्वृथा'
ऋ. २.२४.९

तप्यत् – तपस्या करने वाला ।
'तप्यते स्वाहा'
वाज.सं. ३९.१२

तपिष्ठः – (१) तप्ततम, अत्यन्तसन्तप्त, तेज- (२) संतप्तगोली, कार्य सिद्धि के कारण तप्तअस्त्र या वारूद -दया. ।
'अस्तासि. विध्य रक्षसस्तपिष्ठैः'
ऋ. ४.४.१, वाज.सं. १३.९, तै.सं. १.२.१४.१, मै.सं. २.७.१५, ९७.८, का.सं. १६.१५, नि. ६.१२.

राक्षसों को अपने तेजों से नष्ट कर-सा. उन राक्षसों को संतप्त गोलियों, अस्त्रों या वारूदों से बींध दे-(दया.)

तपिष्ठा- (१) अत्यन्त तापदायिनी, (२) अग्नि से खूब प्रज्वलित, (३) अशनि का विशेषण (४) ताप

'जहीन्येषु अशनिं तपिष्ठाम्'

ऋ. ३.३०.१६

तपु- (१) सन्ताप जनक, ताप जनक, (२)अग्नि, (३) ज्वाला ।

'तपोष्वग्ने अन्तरां अमित्रान्'

ऋ. ३.१८.२, का.सं. ३५.१४, कौ.ब्रा. ४.५.५,आप. श्रौ.सू. १४.२९.३, १५.७.९,

(४) तपाया या दण्डित हुआ (५) राक्षस (६) दण्डित-दया.

'तपुर्ययस्तुचरुरग्निवां इव'

ऋ. ७.१०४.२, अ. ८.४.२, का.सं. २३.११, नि. ६.११.

वह राक्षस अग्नि में पड़े हंडिया की तरह डहके -सा. । वह दण्डित आग में हंडिया की तरह शुद्ध होकर प्रयत्न शील हो -(दया.)

(७) ताप जनक ।

'तपूंषि अग्ने जुह्वापतङ्गान्'

ऋ. ४.४.२, वाज.सं. १३.१०,तै.सं. १.२.१४.१, का.सं.१६.१५.

तपुर्जम्भः - (१) तपूंषि तापाः जम्भो वक्त्रमिवयस्य (जिसकी ज्वालाएं मुख के समान हो वह अग्नि) (२) जीव ।

'तपुर्जम्भो वन आ वातचोदितः'

ऋ. १.५८.५

ज्वाला रूप मुख वाला अग्नि (तपुर्जम्भः) जिस प्रकार वायु से प्रेरित होकर (वात चोदितः) जंगल में फैल जाता है उसी प्रकार यह जीव वायु रूप प्राणों से प्रेरित होकर संताप देने वाले जाठर अग्नि को अपना मुख या साधन बनाकर भोग्य विषयों में या संसार में गति करता है । (३) शत्रुओं को सताने या नाश करने वाले अस्त्रों के धारक सेनानी या परमेश्वर । (४) जिसका तप अर्थात् ज्वाला ही जम्भ (मुख) है-अग्नि अग्नि की ज्वाला ही सब पदार्थों को खा जाने वाले मुख के समान है (५) शत्रु-तापन शस्त्रास्त्र बल ही जिसका जम्भ है ।

'तपुर्जम्भस्य सुद्युतेः गणश्रियः'

ऋ. ८.२३.४

तपुर्मूर्धा - (१) सूर्य, (२) अग्नि (३) विद्युत् (४) दुष्टों को सन्ताप देने के सामर्थ्य में सर्वोत्कृष्ट ।

'तपुर्मूर्धा घृतान्नः पावकः'

ऋ. ७.३.१, साम. २.५६९, का.सं. ३५.१, आप.श्रौ.सू. १४.१७.१.

तपुष्पा - (१) शत्रु के सन्तापकारी शस्त्रों को पालन करने वाला, (२) शस्त्राघातों से रक्षा करने वाला ।

'उपोनयस्व वृषणा तपुष्पा'

ऋ. ३.३५.३

तपुर्वध - (१) सन्तापकारी आग्नेयास्त्र ।

'तपुर्वधेभिरजरेभिरत्रिणाः'

ऋ.७.१०४.५, अ. ८.४.५.

(२) दुष्टों का नाशकारी अस्त्र-नालीक आदि गुलिका ।

तपुरग्रा - अग्नि में तप्त अगले फणों वाली ।

'तपुरग्राभिरर्चिभिः'

ऋ. १०.८७.२३, ८.३.२३.

तपुषि - सन्तापार्थक तप् + उसि = तपुषि । अर्थ है सन्ताप देने वाला ।

तपोज - तपोनिष्ट ।

'तपोजां अपिगच्छतात्'

ऋ. १०.१५४.५, अ. १८.२.१५,१८

तपोजाः - तप से उत्पन्न होने वाला तपस्वी ।

'मह्यं देवा उत विश्वे तपोजाः'

अ. ६.६१.१

तम आसन - (१) कृष्ण वर्ण का सिंहासन, (२) शत्रुओं को कष्ट दायी आसन ।

'तम आसन माचरन्'

अ. २०.१२७.८

तमत् - तमतु (आकर्षित करे) 'तम' धातु-आकर्षण करना अर्थ में है ।

'न मा तमत् न श्रमत् नोत तन्द्रत'

ऋ. २.३०.७

तमस् - तन + असुन् = तनस् = तमस् । अर्थ है-(१) अन्धकार ।

'आ त्वेषं वर्तते तमः'

ऋ.खि. १०.१२७.१, अ. १९.४७.१, वाज.सं. ३४.३२, नि. ९.२९.
यह महान् अन्धकार व्याप्त रहता है।
(२) सृष्टि की उत्पत्ति के पूर्व प्रलय रात्रि से आच्छादित प्रकृति (३) मृत्यु, (४) पाप।
'मृत्युर्वैतमः'
गो.ब्रा. ३०.२५.१
'पाप्मा वै तमः'
श.ब्रा. १२.९.२.८
(४) आंखों के आगे अंन्धेरा लाने वाला शिरोरोग-चक्कर।
'मात्वाजम्भः संहनुर्मा तमो विदत्'
अ. ८.१.१६

तमिषीचिः- अज्ञानरात्रि में सात्विक वृत्तियों की आच्छादिका।
'याः क्लन्दास्तमिषीचयः'
अ. २.२.५

तमिषीची - (१) अन्धकार ला देने वाली बाधा या सेना।
'निरत्रसन् तमिषीचीरभैषुः'
ऋ. ८.४८.११

तमिस्रा - (१) रात्रि, (२) अन्धकार मयी दशा।
'मा नो दीर्घा अभिनशन् तमिस्राः'
ऋ. २.२७.१४

तमोगा - (१) अन्धकार रूप नीलिमा को प्राप्त मेघ, (२) अज्ञानान्धकार को प्राप्त।
'मिहोनपातं सुवृधं तमोगाम्'
ऋ. ५.३२.४

तमोवृध् - (१) अन्धकार में शक्ति से बढ़ने वाला, (२) माया तथा छल कपट से अपनी शक्ति को बढ़ाने वाला, (३) नीच कर्मों से अपने को बढ़ाने वाला।
'न्यर्पयतं वृषणा तमोवृधः'
ऋ. ७.१०४.१, अ. ८.४.१, का.सं. २३.११.
(४) अन्धकार या अज्ञानादि को बढ़ाने वाला

तमोहन् - (१) अन्धकार का नाश करने वाला -अग्नि।
'ज्योतीरथं शुक्रवर्णं तमोहनम्'
ऋ. १.१४०.१, कौ.ब्रा. २५.९

तमोहना - (द्वि.व.) (१) अन्धकार नाशक सूर्यऔर चन्द्र, (२) दिनरात।
'तमोहना वपुषो बुध्नएता'
ऋ. ३.३९.३

तर्क ऋषिः - (१) अनेक विद्याप्रवीण, बहुश्रुत तपस्वी मनुष्य का ऊहापोह।

तर्कुः - कृती (छेदना, काटना, Cut) + उ = कर्तु = तर्कु' अर्थ है- काटने वाला, कैंची।

तर्तुराणा - वेगवती होती हुई।
'अपामिवेत् ऊर्मयस्तर्तुराणाः'
ऋ. ९.९५.३, साम. १.५४.४

तर्द - हिंसक जन्तुः।
'तर्द है पतङ्ग है'
अ. ६.५०.२
'हतं तर्दं समङ्कमाखुमश्विना'
अ. ९.५०.१

तर्दपति - हिंसकों का स्वामी।
'तर्दपते वधापते'
अ. ६.५०.३

तर्पण - (१) तृप्त करने के लिए मधुपर्क (२) तृप्तिकर भोग्य पदार्थ (३) पितरों को तृप्त करने के लिए दिया गया जल।
'यत् तर्पणमाहरन्ति'
अ। ९.६.६

तर्यः- (१) सबको कष्ट से पार उतारने वाला, (२) शत्रुनाशक।
'बाहुवृक्तः श्रुतवित्तर्यो वः सचा'
ऋ. ५.४४.१२

तर्ष्यावान् - (१) सदा प्यासा, (२) सदा मारने को तैयार।
'निरुद्धश्चित् महिषः वर्ष्याबान्'
ऋ. १०.२८.१०

तर्ह - विनाश करना।
'संपृथिव्या अघशंसाय् तर्हणम्'
ऋ. ७.१०४.४, अ. ८.४.४

तर्हणम् - तर्ह + ल्युट् = तर्हण, नाशकारी।

तर्हणी - विनाश कारिणी शक्ति।
'क्रिमेर्विश्वस्य तर्हणी'
अ. २.३१.१

तर्हि - (अ.) तब, उस समय।
'न मृत्युरासीत् अमृतं न तर्हि'
ऋ. १०.१२९.२, तै.ब्रा. २.८.९.४, नि. ७.३.

उस प्रलयावस्था के समय न किसी की मृत्यु थी और न किसी का मोक्ष ।

तर - (१) तरना, तर जाना, पार कर जाना ।
'अरमयः सरपसस्तराय कम्'
ऋ. २.१३.१२
(२) ज्ञान बढ़ाने और अज्ञान से पार उतारने वाला आचार्य बृहस्पति, (३) संग्राम से पार उतारने वाला, (४) तारने वाला, (४) नौका ।
'बृहस्पतिस्तर आपकश्च गृध्रः'
ऋ. १.१९०.७

तरक्षुः- चीता ।
'श्वाकृष्णः कर्णो गर्दभस्तरक्षुस्ते रक्षसाम्'
वाजसं. २४.४०

तरणि - (१) संसार से पार करने वाला परमेश्वर, (२) सूर्य, (३) रोहित ।
'विपश्चितं तरणिं भ्राजमानम्'
अ. १३.२.४
(४) सब संकटों से पार करने वाला (५) शीघ्रकारी, (६) पुरुषार्थी ।
'तरणिरिज्जयति क्षेति पुष्यति'
ऋ. ७.३२.९
(७) महान् आकाश को पार करने वाला सूर्य ।, (८) कष्टों से तारण करने वाला विद्वान्
'तरणि र्विश्वदर्शतः
ज्योतिष्कृदसि सूर्य'
ऋ. १.५०.४, अ. १३.२.१९, २०.४७.१६, आ.सं. ५.९, वाज.सं. ३३.३६ , तै.सं. १.४.३१.१, मै.सं. ४.१०.६, १५८.१२, का.सं. १०.१३, तै.आ. ३.१६.१, महा.ना.उप. २०.७.

तरणित्व - (१) क्षिप्रकारिता, किसी कार्य को शीघ्रता से करना ।
'विष्ट्वी शमी तरणित्वेन वाघतः'
ऋ. १.११०.४, नि. ११.१६.
यज्ञ कर्मया व्यापार कर्म को (शमी) क्षिप्रकारिता सेकर (तरणित्वेनविष्टवी) मेधावी, यज्ञानुष्ठाता या व्यापारी वैश्यजन ।

तरत् - तरति (पार करता है) ।
'तरत्स मन्दी धावति'
ऋ. ९.५८.१, २,३,४, साम. १.५००, २.४०७, ४०८,४०९, ४१० . नि. १३.६. बृ.प.सं. २.१३७.
जो स्तोत्र से देवताओं को प्रसन्न करने वाले हैं (मन्दी) वह तरता है (स तरत्) अर्थात् पापों से मुक्त होता है तथा सोम की धारा से ऊर्ध्वगति प्राप्त करता है (धावति)

तरद्वेषाः- समस्त शत्रुओं को पार कर जाने वाला ।
'तरद्द्वेषाः सासहिः पौंस्येभिः'
ऋ १.१००.३
वह समस्त शत्रुओं को पार कर जाने वाला (तरद्द्वेषाः) अति सहनशील (सासहिः) बलों से वीर सैनिकों का स्वामी (पौंस्येभिः) ।

तरन्ती - (१) एक दूसरे की सहायता से कष्टों को पार करते हुए द्यावा पृथिवी, (२) स्त्रीपुरुष ।
'तरन्ती प्रियती ऋतम्'
ऋ. ४.५६.७.साम. २.९४८

तरांसि - (ब.व) (१) अविद्यान्धकार को पार करने वाले ।
'तरांसि यज्ञा अभवन्'
अ. १०.१०.२४

तरस् - (१) अविद्यान्धकार को पार करने वाला, (२) शारीरिकबल ।
'यावत्तरो मघवन् यावदोजः'
ऋ. १.३३.१२
हे इन्द्र ! जहां तक तुझ में बल हो और जहां तक ओज हो । हे राजन् ! जहां तक तुझ में शारीरिक बल हो और जहां तक आत्मिक बल हो-(दया.)

तरावी- (१) अति वेगवान् (२) बलवान् ।
'उग्रमोजिष्ठं तवसं तरस्विनम्'
ऋ. ८.९७.१०. अ. २०.५४.१, साम. १.३७०, २.२८०.

तराः- 'तरस्' का प्रथमैकवचन में रूप । अर्थ - (१) तारने वाला ज्ञान ।
'तरोभिर्वोविदद्वसुम्'
ऋ. ८.६६.१, साम. १.२३७,२.३७,गो.ब्रा. २.४.३, पंच.ब्रा. ११.४.५,१५.१०.४, ऐ.आ. ५.२.४.२, आश्व.श्रौ.सू. ५.१६.२, ७.४.४.

तरित्रत् - लांघता हुआ ।
'दधिक्राव्णः सहोर्जातरित्रतः'
ऋ. ४.४०.३, वाज.सं. ९.१५,तै.सं. १.७.८.३, मै.सं. १.११.२, १६,३.५, का.सं. १३.१४, श.ब्रा. ५.१.५.२०

तरी- (१) समस्तु दुःखों से तारने वाला परमेंश्वर ।

'जरी मन्द्रासु प्रयक्षु '
अ. ५.२७.६

तरीयान् - सबसे अधिक बलवान् ।
'नभस्तरीयां इषिरः परिज्मा '
ऋ. ५.४१.१२

तरीषण् - पार करना ।
'विश्वा आशास्तरीषणि '
ऋ. ४.३७.७, ५.१०.६

तरुक्षः - (१) वृक्ष के नीचे की भूमि के समान सभी को आश्रय देने वाला, (२) दुखों से तारने वाला ।
'विप्रस्तरुक्ष आददे '
अ. ८.४६.३२

तरुत्र - (१) तारने वाला परमेश्वर या आचार्य, (२) दूर तक पहुंचा देने वाला ।
'त्वं सत्पतिर्मघवा नस्तरुत्रः '
ऋ. १.१७४.१

तरुता - (१) पार करने वाला ।
'अर्वद्भिरस्तु तरुता '
ऋ. १.२७.९, सामं. २.७६७
घोड़ो की सहायता से संग्राम को पार करने वाले हो । (२) संप्लवनकर्त्ता (३) पराजित कर आगे बढ़ने वाला ।
'नास्यवर्ता न तरुता महाधने '
ऋ. १.४०.८
(४) तॄ +तृच् । तारने वाला, (५) दुरुस्त करने वाला, बनाने वाला, सुधारने वाला ।
'त्यमूषु वाजिनं देवजूतम्
सहावानं तरुतारं रथानाम् '
ऋ. १०.१७८.१, ऐ.ब्रा. ४.२०.२३, नि. १०.२८ हम उस प्रसिद्ध भयदाता, बलवान् देवों के साथ आते हुए, बलवान् रथों के तारयिता ।
(६) पार उतारने वाला ।
'विश्वेषां तरुतारं मदच्युतम् '
ऋ. ८.१.८१
'अर्वद्भिरस्तु तरुता '
ऋ. १.२७.९, साम. २.७६७..
(७) नाशक ।
'विश्वासां तरुता पृतनानाम '
ऋ. ८.७०.१, अ. २०.९२.१६, १०५.४, साम. १.२३७,२.२८३.

तरुतारः - (१) पार पहुंचा देने वाला सैनिक, (२) शब्दान् सन्तारकः प्लावकः तारारव्य व्यवहारः -(दया.)
शब्दों को पहुंचाने वाला तार नामक व्यवहार टेलीग्राम ।

तरुष् - (१) आकाश मार्ग से सूर्य के समान जाने वाला समस्त नक्षत्रादि लोक, (२) गतिशील नायक, (२) प्राण (३) सबको तारने वाला ।
'ईशानासस्तरुष ऋञ्जतेनॄन् '
ऋ. १.१२२.१३
वही परमेश्वर आकाश मार्ग के नक्षत्रादि लोकों को और समस्त नायकों या पुरुषों को चलाया जाता है । और वश करता है (ऋञ्जते) ।
'क्रत्वा दक्षस्य तरुषो विधर्मणि '
ऋ. २.२.३
(४) संग्राम काल (५) प्रहार, मारना ।
'तनूरुचा तरुष यत्कृण्वैते '
ऋ. ६.२५ ४

तरूषस् - (१) तरन्ति शत्रुबल येन-दया. (जिसके बल से शत्रु बल को पार करते हैं) (२) संकटों से पार करने वाला, (३) शत्रुओं का नाश करने वाला ।
'त्वं न इन्द्र राया तरूषसा '
ऋ. १.१२९.१०
हे इन्द्र, तू शत्रुओं को नाश करने वाले तथा संकटों से पार करने वाले ऐश्वर्य से (तरुषसाराया) हमें ।

तरुषः - (१) तारने वाला अग्नि ।
'अर्यः परस्या न्तरस्य तरुषः '
ऋ. ६.१५,३, १०.११५.५

तरुष्यत् - (१) हिंसाकारी ।
'त्वं तूर्य तरुष्यतः '
अ. २०.१०५.१

तरुष्यती - हिंसार्थक 'तॄ' धातु से 'यक्' प्रत्यय कर नामधातु तरुष्य के लट् प्रथम पुरुष ए.व. का रूप ।

तरूणक - (१) तरुणक, तरुण, (२) कर्तृक नामक औषधि ।
'दर्भ शोचिस्तरूणकम् '

तल्प - (१) शय्या, (२) पंलग, (३) पलंग के समान सबको आराम देने वाला-परमेश्वर ।

'अनातुरान् सुमनसस्तल्प बिभ्रत्'
अ. १२.२.४९

तल्पशीवरी - उत्तम शय्यापर सोने वाली ।
'नारीर्यास्तल्पशीवरीः'
ऋ. ७.५५.८

तल्पानिरक्षांसि- सेज के ऊपर होने वाले राक्षसी भाव ।
'स इद् रक्षांसि तल्पानि हन्ति'
अ. १४.२.४१

तल्प्य - शय्या -निर्माण में प्रवीण ।
'नमस्तल्प्याय च गेह्याय च'
वाज.सं. १६.४४., तै.सं. ४.५.९१, का.सं. १७.१५.

तलव - करताल बजाने वाला ।
'आनन्दाय तलवम्'
वाज.सं. ३०.२०, तै.ब्रा. ३.४.१.१५.

तलीद्य - पसली का निकटवर्ती फेफड़ा ।
'तलीद्यमवतिष्ठति'
अ. ७.७६.३

तल्पेशया - (१) सेज पर सोने वाला, (२) नाड़ी जो सोते समय बिस्तर से सट जाती है जैसे- त्वचा, पीठ आदि ।
'प्रोष्ठेशया स्तल्पे शयाः'
अ. ४.५.३

तलाशा - एक प्रकार का वृक्ष ।
'तलाशा वृक्षाणामिव'
अ. ६.१५.३

तवस् - (१) महान्, (२) परमेश्वर विष्णु का विशेषण ।
'तं त्वागृणामि तवसमतव्यान्'
ऋ. ७.१००.५, साम. २.९७६, तै.सं. २.२.१२.५, मै.सं. ४.१०.१, १४४.७, का.सं. ६.१०, नि. ५.९.
उस तुझ महान् को मैं क्षुद्र या अल्प शक्ति वाला मैं प्रणाम करता या भजता हूँ। (३) तु + असच् = तवस् । अर्थ -सामर्थ्य । (४) बलवान् इन्द्र का विशेषण ।
'अस्मा इदु प्रतवसे तुराय'
ऋ. १.६१.१, अ. २०.३५.१, ऐ.ब्रा. ६.१८.३.५, कौ.ब्रा. २६.१६, गो.ब्रा. २.५.१५, वै.सू. ३१.१९.
इस बलवान् एवं फुर्तीले इन्द्र के लिए ।

तवंस्तमः - सबसे अधिक बलशाली -रुद्र ।
'तवस्तमस्तवसां वज्रबाहो'
ऋ. २.३३.३

तवस्तरः- (१) अतिबल शाली इन्द्र परमेश्वर, (२) वेदों से ज्ञेय परमेश्वर, तूयते विज्ञायते इति तवाः सोऽतिशयितः -(दया.)
'योगेयोगे तवस्तरम्
वाजे वाजे हवामहे ।
सखाय इन्द्रमूतये ।'
ऋ. १.३०.७, अ. १९.२४.७, २०.२६,१. साम. १.१६३,२.९३., वाज.सं. ११.१४, तै.सं. ४.१.२.१, ५.१.२.२. मै.सं. २.७.२, ७५.६, का.सं. १६,१.१९.२, श.ब्रा. ६.३.२.४, आप.मं.पा. १.६.३, २.४.१.
हम मित्र बनकर ऐश्वर्य प्राप्ति के प्रत्येक अवसर पर और प्रत्येक संग्राम के अवसर पर भी रक्षा के लिए अति बल शाली और ज्ञानशाली परमेश्वर या राजा को बुलावें ।

तवस्तमा - (द्वि.व.) बहुत अधिक बल वाले -विद्युत और अग्नि, (२) इन्द्राग्नी
'युवामिन्द्राग्नी वसुनोविभागे
तवस्तमा शुश्रव वृत्रहत्ये'
ऋ. १.१०९.५
विद्युत् और अग्नि दोनों पदार्थों को फाड़ने के कार्यों में (वृत्रहत्ये) बहुत अधिक बलवाला सुनता हूं ।

तवसः तवीपान् - बलवान् से भी बलवान् -विष्णु ।
'प्रविष्णुरस्तु तवसस्तवीयान्'
ऋ. ७.१००.३, मै.सं. ४.१४.५, २२१.१०.तै.ब्रा. २.४.३.५.

तवस्य - बल को बढ़ाने वाला चरु ।
'तस्मै तवस्यम् अनुदायि सत्रा'
ऋ. २.२०.८

तव्य- तवे बले भवः तव्यः (बलशाली) ।

तव्यस् - बहुत बड़ा बलशाली ।

तव्यसी - (१) अतिबलवती, (२) बलसम्पादन करने वाली धीति । अध्ययन क्रिया का विशेषण ।
'प्रतव्यसीं नव्यसीं धीतिमग्नये'
ऋ. १.१४३.१, ऐ.ब्रा. ४.३०.१४, कौ.ब्रा. २२.१.

तव्यान् - महान् शक्तिशाली ।

तवाशा - सर्वशक्तिमानं इन्द्रपरमेश्वर ।
'गृष्टिः ससूव स्थविरं तवागाम्'
ऋ. ४.१८.१०

तविष - (१) बलवान् शक्तिशब्द ।
'स्वेन भामेन तविषो बभूवान्'
ऋ. १.१६५.८
'मखस्य ते तविषस्य प्रजूतिम्'
ऋ. ३.३४.२, २०.११.२
(२) महान् ।
'इयं शुष्मेभिर्बिसखा इवारुजत्
सानु गिरीणां तविषेभिरूर्मिभिः'
ऋ. ६.६१.२, मै.सं. ४.१४.७, २२६.९, का.सं. ४.१६, तै.ब्रा. २ .८.२.८, नि. २.२४.
यह सरस्वती नदी अपनी महती बलवती ऊर्मियों से पर्वतों की चोटी की कमल खनने वाले की तरह काटती है।

तविष्य - बल का कर्म करना । नामधातु ।
'तविष्यते असुरो वेपतेमती'
ऋ. १०.११, ६. , अ.१८.१.२३.

तविष्यते - सफलता के साथ समाप्त होता है या होवे ।
अग्नि की कृपा से यज्ञ (मख.) सफलता के साथ समाप्त होता है (तविष्यते) ।

तविषी - सेना, बल ।
'पितुं नु स्तोषं महोधर्माणं तविषीम्'
ऋ. ऋ. १.१८७.१, वाज.सं. ३४.७,का.सं. ४०.८, नि. ९.२५.
मैं अगस्त्य अत्यन्त बल धारण करने वाले अन्न रो भजता हूं । यह तविषीम् धर्माणम् स्तोषम् ।

तवीयस् - अप्रत्यधिक बल ।
'उग्रमुग्रस्य तुवस्तवीयः'
ऋ. ६.१८.४

तवीषी - बलशालिनी सेना ।
'आ ये रजांसि तविषीभिरव्यत'
ऋ. १.१६६.४

तविषीयमान - सेना से आक्रमण करने वाला ।
'त्यंचिच्छर्धन्तं तविषीयमाणम्'
ऋ. २.३०.८

तविषीयुः - (२) बलवान् ।
'अश्वाइव वृषणस्तविषीयवः'
ऋ. ८.२३.११
(२) बलवती सेना बनाने का इच्छुक, (३) बलयुक्त वेगवान् वायु ।
'यदङ्ग तविषीयवो यायं शुभ्रा अचिध्वम्'
ऋ. ८.७.२

तविषीवान् - बलवतीसेना का स्वामी -इन्द्र ।
'उद्वावृषाणास्ततिषीव उग्रः'
ऋ. ४.२०.७

तष्टा - (१) चित्रा नक्षत्र । यह नक्षत्र बहुत चमकीला है और इसका देवता है तष्टा है । अतः इसका नाम तष्टा पड़ा । तष्टा और त्वष्टा समानार्थ है। चित्रा नक्षत्र का पृष्ठ अनेक धब्बों से चित्रित है । अतः इसे वेद में 'पृष्टामयी' भी कहा गया है ।
(२) त्वष्टा देवता, (३) बढ़ई तक्ष (करणार्थक) + तृच् = तष्टा ।

तंस् - अलङ्कृतकरना ।

तसर - (१) तन्तुजाल ।
'सामानि चक्रुस्तसराणि ओतवे'
ऋ. १०.१३०.२, अ. १०.७.४४.
(२) तिरछा तन्तु, (३) तसर जिससे रेशमी वस्त्र बुना जाता है, (४) दुःख क्षयकारक पुत्र, (५) दुःख नाशक ।
'नग्नहुर्धीरस्तसरं न वेगः'
वाज.सं. १९.८३, मै.सं. ३.११.९,१५३.८, का.सं. ३८.३, तै. ब्रा. २.६.४.२.

तस्कर - (१) चोर ।
'प्रदोषं तस्कराइव'
ऋ. १.१९१.५
(२) उस उस नियम कार्य का कर्त्ता ।
'तस्काराणां पतये नमः'
वाज.सं. १६.२१,तै.सं. ४.५.३.१, मै.सं. २.९.३, १२३.५, का.सं . १७.१२.
(३) तत् + कर = तस्कर । उसे करने में समर्थ ।
'पथ एकः पीपाय तस्करों यथा'
ऋ. ८.२९.६
'तमसे तस्करम्'
वाज.सं. ३०.५,तै.ब्रा. ३.४.१.१.

तस्करा - (द्वि.व.) (१) दो चोर ।
'तनूत्यजेव तस्करा वनर्गू
रशनाभिर्दशभिरभ्यधीताम्'
ऋ. १०.४.६, नि. ३.१४.

(१) नाना और निरन्तर कार्य करने वाली भुजाएं ।

तस्ताभान - शत्रुनाशक ।
'त्वं सिन्धूरसृजस्तस्तभानान्'
ऋ. ८.९६.१८

तस्तभ्वान् - (१) घेरने वाला, (२) स्तम्भित करने वाला,(३) असमर्थ बनाने वाला ।
'उतो अपो द्यां तस्तभ्वांसम्'
ऋ. २.११.५

तस्तुव - (१) एक सर्प की जाति (२) एक हिंसक ओषधि जो तस्तुव जाति के सर्प के काटने पर दी जाती है ।
'तस्तुतं न तस्तुवम्'
अ. ५.१३.११

तस्थिवांसः - भूमि पर स्थिर रूप से रहने वाले प्रजाजन ।
'ज्योक्किदत्रतस्थिवांसो अक्रन्'
ऋ. १.३३.१५
भूमि पर स्थिर रूप से रहने वाले प्रजाजन (तास्थिवासः) चिरकाल तक (ज्योक्कित्) कृषि व्यापार आदि कार्य करें ।

तस्थुष्- 'स्था' धातु से सम्पन्न । स्थावर पदार्थ, जड़ ।
'सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च'
ऋ. १.११५.१, अ. १३.२.३५, २०.१०७,१४. आ.सं. ५.३.वाज.सं. ७.४२,१३.४६, तै.सं. १.४.४३.१, २.४.१४.४, मै.सं. १.३.३७,४३.९, का.सं. ४.९, २२.५, श.ब्रा. ४.३.४,१०, ७.५.२.२७, तै.ब्रा. २.८.७.४, ऐ.आ. २.२.४.७,३.२.३.१०, तै.आ. १.७.६, २.१३.१, नि. १२.१६.
सूर्य ही जंगम तथा स्थावर पदार्थों का आत्मा है ।

तस्थुषी - (१) स्थान, (२) शरीर, (३) स्थिर प्रजा ।
'ईर्मा तस्थुषी रहभिर्दुदुह्रे'
ऋ. ५.६२.२, मै.सं. ४.१४.१०, २३१.१२, तै.ब्रा. २.८.६.६

त्मनया-त्मन्या - आत्मन् + टा = त्मन्या आ का लोप और टा का या) । अर्थ आत्मा से (२) जीवसे, (३) स्वयं ।
'उपावसृज त्मनया समञ्जन्
देवानां पाथ ऋतुथा हवींषि ।'
ऋ. १०.११०.१०, अ. ५.१२.१०, वाज.सं. २९.३५, मै.सं. ४.१३.३, २०२.१३, का.सं. १६.२०, तै.ब्रा. ३.६.३.४, नि. ८.१७.
हे यूप या अग्नि का गार्हपत्य अग्नि (वनस्पते)! आत्मा से या जीव से या स्वंय (त्मनया) अन्न तथा आज्य आदि हवि (पाथ हवींषि) ऋतु के अनुसार (ऋतुथा) सम्मुख कर (सम्मुखकर) देवताओं के लिए (देवानाम्) निकट आकर दो (उपावसृज)
अन्य अर्थ - हे वनस्पति अग्नि, तू अपने आप से (मनया) अपने को अभिव्यक्त कर (समञ्जन्) देवजनों के अन्न और मिष्ठान्न आदि हवियों को (पाथ हवीषिं) बना (उपावसृज) (४) किसी किसी आचार्य ने त्मना का अर्थ पशुमांस कर इसका अन्वय त्मनया समञ्जन् कर अर्थ यह किया है कि हे अग्नि पशुमांस से मिश्रित कर अन्न और हवि बना । यह अर्थ अमान्य और अनर्थ है ।

त्मन्य- अपना सामर्थ्य, बल ।
'उतत्मन्या वनस्पते
'पाथो देवेभ्यः सृज'
ऋ. १.१८८.१०

त्मन्या- अपना, स्वयम् ।
'अश्वो घृतेन त्मन्या समक्तः'
वाज.सं. २९.१०, तै.सं. ५.१.११.४, मै.सं. ३.१६.२, १८४.१६, का.सं. (अश्व.) ६.२.

त्यजस् - (१) त्याग ।
'पितुः स्वस्य त्यजसा निबाधित्यम्'
ऋ. १.११९.८
अपने पिता के त्याग से दुखित पुत्र या शिष्य को । (२) पुत्र, अपने से उत्पन्न पुत्र ।
'एकस्यचित् व्यजसं मर्त्यस्य'
ऋ. १०.१०.३, अ. १८.१.३.
(३) ऐश्वर्य दान,
'महश्चिदसि व्यजसो वरूता'
ऋ. १.१६९.१, कौ.ब्रा. २६.१२. (४) जल ।

त्यत् - प्रसिद्धवह ।
'त्यमूषुवाजिनं देवजूतम्'
ऋ. १०.१७८.१, अ. ७.८५.१, साम. १.३३२, ऐ.ब्रा. ४२०.२२, २९. १६, ३१.१४, ५.१.२२,४.२३, ७.९,१२.१८,१६.२९,१८.२५,२०.२१,कौ. ब्रा.

२५.८. ऐ.आ. ५.३.१२, आश्व. श्रौ.सू. ७.१.१३, नि. १०.२८.

हम उस प्रसिद्ध भयदाता, बलवान् तथा देवों के साथ आए हुए।

त्यः – तनु (विस्तार करना) + य = त्य। अर्थ –विस्तारक

त्मन् – आत्मा।

'विश्वं त्मना बिभृतोयद्धनाम'

ऋ. १.१८५.१, नि. ३.२२.

जो कुछ भी सब आत्मा से विभृत है अर्थात् आत्मेमय है।

त्मना– आत्मनां (आ का लोप)।

'मन्त्रेषु आङ्यादेरात्मनः'

पा. ६.४.१४१

अर्थ –स्वयम्।

'विश्वेषां त्मना शोभिष्ठम्
उपेव दिवि धावमानम्'

ऋ. ८.३.२१.

वह दान सभी धर्मों में स्वयं (विश्वेषां त्मना) शोभायमान आकाश में नित्य धाने वाले सूर्य के समान है।

त्रदः – (१) शत्रु का नाशक।

'तरणिं वो जनानाम्
त्रदं वाजस्य गोमतः'

ऋ. ८.४५.२८, साम. १.२०४

त्ववता – तुझसे सुप्रबद्ध।

'सन इन्द्र त्वमताया इषेधाः'

ऋ. ७.२०.१०, २१.१०.

त्रपु – टीन, सीसा, रांगा आदि धातु।

'त्रपु भस्म हरितं वर्णः'

अ. ११.३.९

'सीसञ्च मे त्रपुचमे'

वाज.सं. १८.१३, वाज.सं. (का.) १९.५.१,तै.सं. ४.७.५.१, मै. सं. २.११.५, १४२.६, का.सं. १८.१०.

त्रयः अक्षराः– (१) तीन अक्षर अ, उ और म (२) अवि नाशी वेद।

'चतस्र आपो यज्ञस्य त्रयोऽक्षराः'

अ. २३.३.६

त्रयः आहावाः– तीन जलाधार मार्ग।

'त्रय आहावस्त्रेधाहविस्कृतम्'

ऋ. १.३४.८

त्रयः काण्डा – (१) तीन प्रकार की व्यवस्थाएं, बालक युवक और वृद्ध के लिए अलग अलग तीन व्यवस्थाएं हैं, (३) तीन वेद (४) उत्तम, मध्यम और अधम भेद से तीनों वर्णों की तीन व्यवस्थाएं, (५) धर्म, अर्थ और काम की साधना की तीन व्यवस्थाएं।

'त्रिभिः काण्डैस्त्रीन्स्वर्गान् अरुक्षत'

अ. १२.३.४२

त्रयः केशिनः– (१) वायु, विद्युत् और सूर्य, (२) अपनी किरणों और व्यापक चिन्हों के साथ विद्यमान पदार्थ, (३) विश्वपति परमेश्वर के तीन रूप –उत्पन्न करना, पालन करना और सहार करना।

'त्रयः केशिन ऋतुथा वि चक्षते'

ऋ. १.१६४.४४, अ. ९.१०.२६, नि. १२.२७

(४) तीन केशी अर्थात् तेजस्वी पदार्थ–अग्नि, आदित्य और वायु या मेघ, आदित्य और वायु (५) सृष्टि, स्थिति और संहार नामक तीन ईश्वरी शक्तियाँ। तीन केश वाले देवता–अग्नि, वायु और आदित्य ऋतु के अनुसार लोक पर अनुग्रह करते हैं।

त्रयः कोशास – (१) तीन कोश–विज्ञानमय, मनोमय और आन्दमय, (२) सूर्य के तीन कोशक्रोमो–स्फीयर, फोटो स्फीयर और उद्रजनं।

'त्रयः कोशास उपसेचनासः'

ऋ. ७.१०१.४

त्रयः घर्माः– (१) तीन तेज–आत्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक।

'त्रयो घर्मा अनुरेत आगुः

अ. ८.९.१३

(२) तीन ज्योतियां।

'त्रीन घर्मान् अभिवावशाना'

अ. ९.१.८

त्रयः तपन्ति – तीन –मेघ, वायु और आदित्य पृथ्वी की ओषधियों को परिपक्व करते हैं।

'त्रयस्तपन्ति पृथिवीमनूपाः

ऋ. १०.२७.२३, नि. २.२२

त्रयस्त्रिंशः – (१) त्रयस्त्रिशत् स्तोमानाम् अधिपतिः (स्तोमों के तैंतीस अधिपति) (२) तैंतीस, (३) परमेश्वर।

'त्रयस्त्रिंशेन जगती'
अ. ८.९.२०
(४) ज्योतिः त्रयस्त्रिंशः स्तोमानाम्
'सत् त्रयस्त्रिशंस्तोमानाम्'
(५) तैंतीस विमानों से युक्त
'सवित्र औष्णिहाय त्रयस्त्रिंशाय रैवताय द्वादशकपालः'
वाज.सं. २९.६०, तै.सं. ७.५.१४.१, मै.सं. ३.१५.१०,१८०.१२, का. सं. (अश्व.) ५.१०
(६) आग्रयण ग्रह से उत्पन्न त्रयस्त्रिंशनामक स्तोम
'आग्रयणात् त्रिणवत्रयस्त्रिंशः'
वाज.सं. १३.५८
'त्रयस्त्रिंशत् त्रिशताः षट् सहस्राः'
६३३३ या ३३, ३०३. और ६००० नक्षत्र आदि
'गन्धर्वा एनम् अन्वायन् त्रयस्त्रिंशत् त्रिशताः षट् सहस्राः'
अ. ११.५.२

त्रयस्त्रिंशत् देवाः– तैंतीस दिव्य शक्तियां।
'त्रयस्त्रिँशत् देवतास्त्रीणि चवीर्याणि'
अ. १९.२७.१०

त्रयः नाकाः– (१) तीन सुखमय लोक (२) तीन स्वर्ग (३) माता, पिता और आचार्य।
'त्रीन् नाकान् त्रीन् समुद्रान्'
अ. १९.२७.४

त्रयः पनयः – (१) वज्र के समान कठोर और विद्युत् के देने वाले तीन पवि चक्र या मन्त्र (२) शरीर रूपी रमणयोग्य रथ के मन, वाणी और कार्यरूपी बलवान् वज्र।
'त्रयः पवयो मधुवाहने रथे'
ऋ. १.३४.२
मधुर अन्न आदि और मधुर वेग आदि धारण करने वाले रथ में या स्त्री पुरुष दोनों के आनन्द प्रद रमण साधन देह में वज्रवत कठोर विद्युत् देने वाले तीन पवि यन्त्र या चक्र हो अथवा मन, वाणी और कामरूपी तीन बलवान् वज्र है।

त्रयः पवित्राः – (१) तीन पवित्र करने के साधन प्रकाश, वायु और सूर्य, (२) पवित्र आचरण, पवित्र वचन और पवित्र विचार और मनन।
'त्रिभिः पवित्रैपुयोद्धयर्कम्'
ऋ. ३.२६.८

त्रयःपादाः – (१) यज्ञ के तीन सवन ही तीन पाद हैं, (२) कुमारिल कृत तन्त्र वार्तिक के अनुसार सूर्य के तीन पाद- शीत, ग्रीष्म और वर्षा ऋतु है, (३) सायण ने तीन वेदों को ही तीन पाद माना है (४) शाब्दिकों के मत से तीन काल ही तीन पाद हैं-भूत, भविष्य और वर्तमान।
'चत्वारि श्रृंगाः त्रयो अस्यपादाः'
ऋ. ४.५८.३, वाज.सं. १७.९१, मै.सं. १.६.२, ८७.१७, का.सं. ४०.७, गो.ब्रा. १.२.१६, तै.आ. १०.१०.२, महा.ना.उप. १०.१,आप.श्रौ.सू. ५.१७.४, नि. १३.७.

त्रयःपितरः – (१) जगत् के तीन पिता के समान पालक तीन लोक या (२) अग्नि, वायु, और सूर्य (३) तीन पितर पिता, पितामह और प्रपिता मह।
'तिस्रो मातृस्त्रीन् पितृन् बिभ्रत्'
ऋ. १.१६४.१०, अ. ९.९.१०.

त्रयःपोषाः– तीन पुष्टियां अन्न भूमि और पशु।
'त्रयः पोषस्त्रिवृत्तिं श्रयन्ताम्'
अ. ५.२८.३

त्रयः ब्रध्ना – (१) तीन लोक–मन, वाक् और काय, (२) तीन वाधनशील।
'त्रीन् ब्रध्नान् त्रनि वैष्टपान्'
अ. १९.२७.४

त्रयः वृषभासः – (१) तीन वृषभवर्णन शील सूर्य विद्युत् और अग्नि अथवा (२) अग्नि, वायु और जल, (३) तीन बलवान् उत्तम प्रबन्ध कर्त्ता धर्मानुकूल शासन से चमकने वाले राजपुरुष।
'त्रयस्तस्थुज्ञवृषभासस्तिसृणाम्'
ऋ. ५.६९.२

त्रयःमातरिश्वानः – तीन वायु-प्राण, अपान और उदान।
'त्रीन मातरिश्वनस्त्रीन्त्सूर्यान्'
अ. १९.२७.४

त्रययाय्यः– (१) तीनों लोकों में व्यापक –अग्नि, (२) बाल्य, यौवन और वार्द्धक्य-तीनों अवस्थाओं को प्राप्त वृद्ध पुरुष (३) मित्र, शत्रु और उदासीन (४) आगे पीछे और मध्य से आचरण करने वाले या प्रणय करने वाला, (५) विद्या, तप और कर्म या तीनों वेदों में निष्ठ।

'सूनुर्न त्रय याय्यः '
ऋ. ६.२.७

त्रयः रथाः- (१) तीन प्रकार के रथ जल, स्थल और अन्तरिक्ष में चलने वाले, (२) जीवन के तीन काल जिनसे होकर जीवन बीतता है-शैशव, यौवन और वार्द्धक्य ।
'समुद्रस्य धन्वन् आर्द्रस्य पारे,
त्रिभी रथैः शतपद्भिः षडश्वैः '
ऋ. १.११६.४, तै.आ. १:१०.३.
सैकड़ो चरणों वाले (शतपद्भिः) और छः अश्वों अर्थात् वेगवान् यन्त्र कलाओं से युक्त समुद्र, रेत और कीचड़ तीन प्रकार की भूमियों में (समुद्रस्य धन्वन् आर्द्रस्य) अथवा जल, स्थल और अन्तरिक्ष तीनों स्थानों में चलने वाले तीन प्रकार के रथों से पार करने हैं ।
अध्यात्म में शतपद् का अर्थ सौ वर्ष, षडश्व का अर्थ मन सहित पांच इन्द्रियां, समुद्र धन्व और आर्द्र क्रमशः ज्ञान कर्म और उपसना हैं।

त्रयः समुद्राः - (१) सुखदायी तथा समस्त पदार्थों के उत्पादक तीन लोक और तीन काल ।
'त्रीन् समुद्रान् समसृपत् स्वर्गान् '
वाज.सं. १३.३१, मै.सं. २.७.१६,१००.६, श.ब्रा. ७.५.१.९
(२) आत्मा ,परमात्मा और प्रकृति ।
'त्रीन् नाकान् त्रीन् समुद्रान्
अ. १९.२७.४

त्रयः स्कम्भासः - (१) तीन खम्भे या दण्ड, (२) शरीर के तीन स्कन्ध-शरीर, इन्द्रिय और मन ।
'त्रयः स्कम्भासः स्कभितास आरभे '
ऋ. १.३४.२
रत में तीन आलम्बन या आधार के लिए तीन खम्भे या दण्ड लगाए गए हों । शरीर में आलम्बन के लिए तीन खम्भे शरीर इन्द्रिय और मन हैं ।

त्रयःस्वर्गाः- (१) तीन सुखमय लोक (२) आध्यात्मिक, गृहस्थ और राष्ट्र, (३) तीन वेदों, के तीन क्षेत्र ।
'त्रिभिः काण्डैः त्रीन् स्वर्गान् अरुक्षत् '
अ. १२.३.४२

त्रयः सानवः - तीन सेवन योग्य पदार्थ-धर्म, अर्थ और काम ।
'नाभा पृथिव्या अधिसानुषुत्रिषु '
ऋ. २.३.७

त्रयःसुपर्णाः- (१) उत्तम पालन शक्ति से युक्त जीन सुपर्ण-अग्नि, सूर्य और सोम ।
'त्रयः सुपर्णा उपरस्य मायू '
अ. १८.४.४
(२) तीन शुभ ज्ञानवान् आत्मा (३) तीन प्रकार के योगी-ध्यान योगी, (४) वसु, रुद्र और आदित्य, (५) इन्द्रिय, मन और आत्मा ।
'त्रयः सुपर्णा स्त्रिवृतायदायन् '
अ. ५.२८.८

त्रयः सूर्याः - (१) अग्नि, विद्युत् और सूर्य ।
'त्रीन्मातरिश्वन स्त्रीन् सूर्यान् '
अ. १९.२७.४

त्रयः सोम्याः सरांसि - (१) तीन सोम रस के सर, (२) तीन राष्ट्रैश्वर्य के हितैषी उत्तम ज्ञान बल । सम्पन्न परिषद् ।
'त्री सरांसि मघवा सोम्याणाः'
ऋ. ५.२९.८

त्रयस्त्रिंशतमा - (१) तैंतीस देवता (२) भूमि आदि तैंतीस गुणों वाला, (३) तैंतीस प्रकार के विद्वान् ।
'त्रयस्त्रिंशतमा वह '
ऋ. १.४५.२

त्रयस्त्रिंशत् वीर्याणि - तैंतीसबल या अधिकार ।
'त्रयस्त्रिशद्यानि च वीर्याणि '
अ. १९.३७.१

त्रयस्त्रिशांसः - (१) शरीर के तैंतीस तत्व या संचालक केन्द्र
'त्रयस्त्रिंशासः स्वरानशानाः '
अ. १९.५६.३

त्रयोघर्मासः- (१) तीन प्रकार के तेज-सूर्य, अग्नि और विद्युत्, (२) सूर्य, मेघ और बलवान् पुरुष ।
'त्रयोघर्मास उषसं सचन्ते '
ऋ. ७.३३.७

त्रयोदश भौवनाः - (१) तेरह भौवन अर्थात् संवत्सर के अवयव तेरह मोस (२) विश्वकर्मा आदि तेरह भौवन सृष्टि कर्त्ता ।
'त्रयोदशं भौवन पञ्चमानवाः '
अ. ३.२१.५

त्रयोदश मास - तेरहवां महीना ।
'त्रयोदशं मासं यो निर्मिमीते'
अ. १३.३.८

त्रयोदशाक्षर - (१) नव बाह्य द्वार और चार अन्तः करणों में स्थित १३ अक्षय वीर्य (२) राजा के १३ प्रधान पुरुष ।
'वसवस्त्रयोदशाक्षरेण त्रयोदशं स्तोममुदजयन्'
वाज.सं. ९.३४, तै.सं. १.७.११.२.

त्रयोवन्धुरः- तीन बाधन ।
'क्व त्रयो वन्धुरो ये सनीडाः'
ऋ. १.३४.९.
और जो तीन एक ही आश्रय में जुड़े हुए विशेष वाधन हैं वे कहां है ?

त्रयो वराः- राष्ट्र के या यज्ञ के तीन प्रकार के श्रेष्ठ पुरुष ।
'त्रयोवरा यतमांस्त्वंवृणीषे'.
अ. ११.१.१०

त्रसदस्यु- (१) यो दस्युभ्यः त्रस्पति -दया.(दस्युओं से भय खाने वाला) (२) दुष्टों को हराने वाला वीर पुरुष ।
'याभिः पूर्भिद्ये त्रसदस्युमावतम्'
ऋ. १.११२.१४
जिन उपायों से शत्रुओं के नगरों को तोड़ने आदि कार्यों में (पूर्भिद्ये) दुष्टों को हराने वाले वीर पुरुषों को प्राप्त होते हो । (३) दस्युओं को भयभीत करने वाला, (४) एक दानशील राजा का नाम । (५) दस्युओं को भय देने वाला इन्द्र ।
'यथा कण्वे मघवन् त्रसदस्यवि'
ऋ. ८.४९.१०
वैदिकराजा के अर्थ में-
'प्र पौरुकुत्सिं त्रसदस्युमावः'
ऋ. ७.१९.३, अ. २०.३७.३,

त्र्यक्षर - (१) तीन प्रकार का अक्षय बल -आदित्य, विद्युत् और अग्नि, (२) आकर्षण, ताप और प्रकाश ।
'विष्णुस्त्र्यक्षरेण त्रीन् लोकान् उदजयत्'
वाज.सं. ९.३१, वाज.सं. (का.) १०.६.१, तै.सं. १.७.११.१

त्र्यनीकः- त्रि + अनीक (१) तीनों प्रकार की जीवनशक्ति, (२) ग्रीष्म, वर्षा, शरद, इन तीन ऋतुओं का स्वामी महान् सामर्थ्य युक्त सूर्य, (३) प्रकृति के तीन गुणों को धारण करने वाला परमेश्वर ।
'त्र्यनीकः पत्यते माहिनावान्'
ऋ. ३.५६.३

त्र्यम्बक - (१) त्रि + अम्बकः त्र्यम्बक । रुद्र का एकनाम, (२) तीनों कालों में ज्ञानमयी वेदवाणी से तीन रूप अथवा उत्साह प्रज्ञा आदि तीनों गुणों से युक्त राजा (३) तीन शक्तियों से सम्पन्न ।
'अवरुद्र मदीमह्यंवदेवं त्र्यम्बकम्'
वाज. सं. ३.५८, श.ब्रा. २.६.२.११, का.श्रौ.सू. ५.१०.१४.
(४) रुद्र, शिव ।
'त्र्यम्बकं यजामहे'
ऋ. ७.५९.१२, वाज.सं. ३.६०,तै.सं. १.८.६.२, मै.सं. १.१०.४, १४४.१२, १.१०.१२,१६०.११, का.सं. ९.७,३६.१४,श.ब्रा. २.६.२.१२ ,१४, तै.ब्रा. १.६.१०.५, तै.आ.(आंध्र) १०.५६, वै.सू. ९.१९, ला.श्रौ.सू. ५.३.७, आप.श्रौ.सू. ८.१८.२, ३.४, बृ.प.सं. ९.११४, का.उप. १, नि. १४.३५.
(५) अवि (शब्दार्थक धातु) से अम्ब बना है। अम्बति शब्दायत इति अम्ब-अम्ब + कप्= अम्बक । त्रयाणाम् अम्बकःत्र्यम्बकः ।
(६) अथवा-त्रिषु अम्बकं रक्षणं यस्य रुद्रस्य परमेश्वरस्य यद्वा त्रयाणां जीव कारण कार्याणां रक्षकः परमेश्वरः-(दया.) तीनों लोकों में जिसका रक्षण हो वह रुद्र या परमेश्वर, अथवा तीनों जीव, कारण एवं कार्य का रक्षक परमेश्वर (७) तीनों शब्दमय वेदों का उपदेशक (८) तीनों लोकों, तीनों वेदों और तीनों वर्णों का उपदेष्टा रक्षक, (९) द्विपात्, चतुष्पाद् और सरीसृप तीनों का माता के समान पालक (१०) अम्बा, अम्बिका और अम्बालिनका नामक तीन औषधियों का समूह जिनके सेवन से आयु वृद्धि होती है ।
'त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिँ पुष्टिवर्धनम् उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात्'
ऋ. ७.५९.१२.

त्र्यर- त्रि + अर (१) तीन अरों वाला जीवात्मा, (२) हिरण्यमय कोश
'त्र्यरे त्रिप्रतिष्ठिते'
अ. १०.२.३२

त्र्यवि- त्रि + अवि = त्र्यवि (१) तीनों लोकों का रक्षक और प्रकाशक सूर्य।
'ऊर्ध्वा तस्थौ त्र्यविं रेरिहणा'
ऋ. ३.५५.१४
(२) शरीर, इन्द्रिय और आत्मा तीनों की रक्षा करने वाला।
'त्र्यविर्गौर्वयो दधुः'
वाज.सं. २१.१२, मै.सं. ३.११.११,१५७.१६, का.सं. ३८.१०, तै. ब्रा. २.६.१८.१.
(३) माता, पिता और गुरु इन तीनों की रक्षा में रहने वाली कुमारी कन्याः।
'रोहिण्यस्त्र्यवयो वाचे'
वाज.सं. २४.५
(४) मन, वाणी और देह तीनों की रक्षा करने वाली साधना।
'त्र्यविं गां वयो दधत्'
वाज.सं. २८.२४, तै.ब्रा. २.६.१७.१,
(५) तीन भेड़ो वाला स्त्री पुरुष।
'त्र्यविश्चमे त्र्यवी च मे'
वाज.सं. १८.२६, तै.सं. ४.७.१०.१, का.सं. १८.१२,२१.११.
(६) तीनों वेदों की रक्षा करने वाला।
'त्र्यविर्वयः त्रिष्टुप् छन्दः'
वाज.सं. १४.१०.१८, तै.सं. ४.३.३.१, ५.१, मै.सं. २.७.२०,१०४.१७, २.८.२, १०.७.१९, का.सं. १७.२,३९,७.श.ब्रा. ८.२.४.११, आप.श्रौ.सू. १७.१.८.

त्वक् - (१) त्वचा, (२) छाल, छिलका।

त्वक्षति- 'त्वक्ष्' (करना) के लट् प्र.पु.ए.व. का रूप। अर्थ- करता है।

त्वक्षस् - (१) बल, कार्य शक्ति विवेचक और प्रकाशक ज्ञान (३) सर्वसंहारकारी बल।
'स प्ररिक्वा त्वक्षसा क्ष्मो दिवश्च'
ऋ. १.१००.१५
वह अस्त्र शस्त्र बल से (त्वक्षसा) पृथिवी और आकाश तथा सामान्य प्रजा और राजा वर्ग दोनों से बढ़ा हुआ (प्ररिक्वा)।
अथवा
वह परमेश्वर अपने विवेचक और प्रकाशक ज्ञान और प्रलयकारी सर्वसंहारक बल से (त्वक्षसा) आकाश, और पृथ्वी के विस्तार से कहीं बड़ा है (प्ररिक्वा)।

त्वक्षीयस् - (१) अत्यन्त उज्जवल, (२) शत्रुओं को टुकड़े कर डालने वाला।
'त्वक्षीयसा वयसा नाधमानम्'
ऋ. २.३३.६

त्वत् - समुच्चय अर्थ में प्रयुक्त अव्यय (२) च या अथवा का पर्याय आश्विन भी और पर्याय भी (३) एक , (४) अन्य।
'स्तरीरुत्वत् भवति सूत उ त्वत्'
ऋ. ७.१०१.३

त्वद्रिग् - तेरे प्रति लगा हुआ।
'न घा त्वद्रिगप वेति मे मनः'
ऋ. १०.४३.२, अ. २०.१७.२.

त्वं त्वम् - तू ही तू।
'त्वं त्वमहर्यथा उपस्तुतः'
ऋ. १०.९६.५, अ. २०.३०.५

त्वष्टा - त्वर् + अशन् = तवश्। तवश् + तृन् = त्वष्ट्ट। अर्थ- (१) शीघ्र फैलाने वाला (२) अथवा -त्विष् (दीप्त्यर्थक) + तृन् = त्वष्ट्टा। अर्थ -दीप्ति मान्, (३) त्वक्ष् (करना) + तृन् = त्वष्टा। अर्थ कर्त्ता (४) तूर्णम् अश्नुते (शीघ्र-व्याप्त होता है) तूर्ण + अश् + तृन् = त्वष्ट्ट (निपातन द्वारा)। शीघ्र व्याप्त होने वाला वायु (५) शिल्पी देवता, विश्वकर्मा (६) शुद्धि आदि का कर्त्ता दिव्यगुणसम्पन्न अग्नि। यज्ञाग्नि से ही अन्तरिक्ष मेघमालाओं के कारण अनेक रूप धारण करता है। पृथ्वी भी ओषधियों से रूप वती हो जाती और उत्तम भोजन पाकर प्राणी रसवान् बनते हैं।
'तमद्य होत रिषि तोयजीयान्
देवं त्वष्टारमिहमक्षिविद्वान्'
ऋ. १०.११०.९, अ. ५.१२.९, वाज.सं. २९.३४,मै.सं. ४.१३.३,२०२. १२.का.सं. १६.२०,तै.ब्रा. ३.६.३.४, नि. ८.१४.
(७) दीप्त आदित्य।
'अत्राह गोरमन्वत
नामत्वष्टुरपीच्यम्

इत्था चन्द्रमसो गृहे'
ऋ. १.८४.१५, अ. २०.४१.३, साम. १.१४७,२.२६५, मै.सं. २.१३.६, १५४.११,का.सं. ३९.१२,तै.ब्रा. १.५.८.१, अश्व.श्रौ.सू. ९.८.३, बौ.ध.शा. ३.८.८,नि. २.६,४.२५.
यहीं पर चलने वाले चन्द्रमा के मण्डल में दीप्त आदित्य के अन्तर्हित तेज का अवस्थान इस प्रकार हुआ।
(८) सभी जावों के त्वष्टा नामक सविता देव।
'देवस्त्वष्टा सविता विश्वरूपः'
ऋ. ३.३५.१९, १०.१०.५, अ.१८.१.५, आश्व.श्रौ.सू. ३.८.१, शां.श्रौ.सू. १३.४.२, नि. १०.३४.
(९) रात्रिकालीन आदित्य (१०) वैद्युताग्नि।
'त्वष्टा पोषाय विष्यतु'
ऋ. १.१४२.१०, नि. ६.२१.
वैद्युताग्नि हमारे पालन पोषण के लिए जल बरसावे, (११) विश्वकर्मा, (१२) अन्धकारमयी उषा का मध्यमभाग।
'त्वष्टा दुहित्रे वहतुं कृणोति'
ऋ. १०.१७.१, अ. ३.३१.५,१८.१.५३,नि.१२.११.
विश्वकर्मा अपनी दुहिता सरण्यू का विवाह करता है।
अथवा,
अन्धकारमयी उषा मध्यम भाग (त्वष्टा) ने ज्योतिरुपिणी दुहिता का विवाह आदित्य से किया।
(१२) आचार्य शाकपूणि ने इसे अग्नि अर्थ में ही लिया है। यथा,अग्निरिति शाकपूणिः। यहां अग्नि से तात्पर्य पार्थिव अग्नि से है। (१३) वाक् ऐ.ब्रा.। वाग्वै त्वष्टा वाचमेव तत् प्रीणाति (१४) सरण्यू (सन्ध्या के बाद और उषा के पूर्व का काल) के समकालीन अस्तंगत आदित्य का नाम त्वष्टा है। भागवत स्कन्ध ६ अ.९. में लिखा है।

'येना वृत्ता इमे लोका
तमसा त्वाष्ट्रमूर्तना।
सवै वृत्रमिति प्रोक्तः
पापः परम दारुणः।'

मत्स्य पुराण ११-५ में भी लिखा है-"त्वष्ट्री स्वरूपेण नाम्ना द्यायेति भामिनी"
महाभारत में - त्वाष्ट्री तु सवितुर्भार्या लिखा है। त्वष्टा से ही छाया या रात्रि की उत्पत्ति होती है। अतः सरण्यू त्वष्टा की पुत्री है। जिस प्रकार सूर्य की सहचारिणी सूर्या सूर्य की पत्नी है उसी प्रकार यह सरण्यू त्वष्टा की पत्नी है।
(१५) विवस्वत्। त्वष्टा का पर्याय वाची विवस्वत् माना गया है। (१६) त्वष्टा का अर्थ इन्द्र परमेश्वर या पति भी है।
(१७) पशुओं का या दम्पति युगलों का बनाने वाला रूपपति अर्थात् सभी जीव जातियों का स्वामी (त्वष्टा पशूनां मिथुनानां रूप कृत् रूप पतिः) तै.सं. ३.८.११-२
(१८) माता के गर्भों में समान रूप से सिक्त वीर्य को तीन प्रकार से परिपक्व कर भिन्न-भिन्न रूप में बनाने वाला त्वष्टा है 'त्वष्टा वै रेतः सिक्तं विकरोति' कौ.सू. ३.९

त्वाष्ट्र (१) रेत - वीर्य का सेक्ता पति या प्रजापति
'त्वाष्ट्रेणाहं वचसा'
अ. ७.७४.३

त्वष्टुःउत्तरः पिता- शिल्पियों का उत्कृष्ट पिता-परमेश्वर।
'पिता त्वष्टुर्य उत्तरः'
अ. ११.८.१८

त्वः - तनु + व = त्व। विनिग्रहार्थक सर्वनाम। यह अनुदात्त है। परन्तु कुछ लोग इसे उदात्त मानते हैं। अर्थ-कोई एक। सर्वनाम 'त्वत' का प्र.पु.ए.व. में रूप त्वः है।
'उतत्वः पश्यन् न ददर्शवाचम्'
ऋ. १०.७१.४,नि. १.१९.
कोई एक पुरुष (त्वः) पढ़कर या मन से पर्यालोचन कर (पश्यन् उत) वेद की वाणी नहीं समझता (वाचं न ददर्श)।
हिन्दी के 'कोई तो का 'तो' वैदिक 'त्वः' का बिगड़ा रूप प्रतीत होता है।
'ऋचां त्वः पोषमास्ते पुपुष्वान्'
ऋ. १०.७२.११, नि. १.८.
एक होता (त्वः) देवताओं की ऋचाओं का यथा विधि कर्मों में उपयोग करता हुआ (पोषं पुपुष्वान्) रहता है (अस्ति)।
(२) अर्ध, आधा। निरुक्त में त्वोनेम इति अर्धस्य' ऐसा कहा है। एक से दो भाग होकर

जो विस्तार हो जाता है वही त्वं है, अतः 'त्व' का अर्थ 'अर्ध' हुआ । (३) कौन एक ।
'युध्यै त्वेनसंत्वेन पृच्छै'
ऋ. ४.१८.२

त्सर् – (१) कुटिल चाल चलना ।
'त्सरँन् विषक्तं बिल आससाद'
अ. १२.३.१३
(२) भेष बदलकर सतीत्व नष्ट करना
'यस्त्वा स्वपन्तीं त्सरति'
अ. ८.६.८

त्सरु – (१) कुटिल चारी सर्प, (२) छद्म गति से छूने से देह में फैलने वाला रोग, (३) ब्रह्मचारी, (४) कुटिल काम क्रोधादि
'मा मां पद्येन रपसा विदत् त्सरुः'
ऋ. ७.५०.३

ता – (अ.) अतः ।
'तामे जराय्व जरं मरायु'
ऋ. १०.१०६.६, नि. १३.५.
हे अश्वनी कुमारो । इसीलिए तुम मुझ जरायु अर्थात् मरणशील को अमर करो ।

ताजद्भंग – ताजत् + भंग । अर्थएरण्डद्रुम-हारिल ने कौशिक सूत्र भाष्य में लिखा है । रेड़ का पेड (२) सूखा सरकण्डा ।

ताड – प्रहार ।
'नोरसि ताडमाघ्नते'
अ. १९.३२.२

तात् – जितना, उतना ।
'यादेव विद्म तात्त्वा महान्तम्'
ऋ. ६.२१.६

तात्या– उस समय ।
'क्वस्वित् तात्या पितरा व आसतुः'
ऋ. १.१६१.१२

ताती – तते व्यापके परमेश्वरे साधुः ताती (व्यापक परमेश्वर में निष्ठ बुद्धि) ।
'अस्तं तात्या धिया रयिं सुवीरम्
पृक्षो नो अर्वान्युहीत वाजी'
ऋ. ७.३७.६

तातृपि – (१) सबको तृप्त करने वाला सामर्थ्य ।, (२) तृप्तिकारी अन्न ।
'पिबा वृषस्व तातृपिम्'
ऋ. ३.४०.२, अ. २०.६.२, ७.४

तातृषाणः – तृषा का अनुभव करता हुआ, प्यासा ।
'यस्तातृषाण उभयाय जन्मने
मयः कृणोषि प्रय आच सूरये'
ऋ. १.३१.७
जो दोनों जन्मों में सुख प्राप्त करने और उनको उत्तम बनाने के लिए तरसता रहता है उस विद्वान् के लिए तू परम सुख और अन्न, ऐहिक सुख-श्रेय और प्रेम दोनों प्रदान करता है ।
'तीर्थेनाच्छा तातृषाणमोकः'
ऋ. १.१७३.११
'तातृषाणो न वंसगः'
ऋ. १.१३०.२
प्यासे वृषभ के समान ।
'आयोवना तातृषाणोन भाति'
ऋ. २.४.६

तातृषि – तृप्ति करने वाला ।
'पिबा वृषस्व तातृपिम्'
ऋ. ३.४०.२, अ. २०.६.२,७.

तादीत्ना – उस समय (तदानीम्), वर्णविपर्यय से 'आ' के स्थान में 'ई' और 'ई' के स्थान में 'आ' तथा 'तुट्' का आगम हुआ है ।
'तादीत्ना शत्रुं न किला विवित्से'
ऋ. १.३२.४, तै.ब्रा.२.५.४.३.
तभी तू अपने राष्ट्र में निश्चय से शत्रु को भी नहीं प्राप्त कर सकेगा ।

तादुरी – (१) 'तदुर' अर्थात् मेढ़क की बच्ची, (२) तद् + उर = तदुर । उरु अर्थात् पर ब्रह्म की ओर जाने वाले या पर ब्रह्म में लीन आत्मा के पुत्री स्वरूप ।
'वर्षमावद तादुरि'
ऋ.खि. ७.१०३.१, अ. ४.१५.१४, नि. ९.७.
(३) तैरने वाली (४) समस्त शरीर में विस्तृत उदर वाली मेढ़क की जाति (तरणशीला) । तावत् + उदरि= तादुरि ।
इसी से दादुर शब्द निकला है ।

तान्वः– (१) तनु सम्बन्धी ज्ञान का वेत्ता ।
'सद्यो दिदिष्ट तान्वः'
ऋ. १०.९३.१५
(२) देहवादी ।
'जहच्छर्याणि तान्वा'
ऋ. ९.१४.४

(३) जनु से उत्पन्न पुत्र ।
'न जामये तान्वो रिक्थमारैक'
ऋ. ३.३१.२, नि. ३.६.
बेटा बहन के लिए पैतृक धन न दे ।

तानु - विस्तृत सामर्थ्य ।
'गृभ्णाति रिप्रमविरस्य तान्वा'
ऋ. ९.७८.१

तापयिष्णु - तपाने वाला ।
'निकृत्वानस्तपनास्तापयिष्णवः'
ऋ. १०.३४.७

ताम्र - ताम्बा आदिधातुओं का प्रयोग करने वाला ।
'नमस्ताम्राय चारुणाय च'
वाज.सं. १६.३९,तै.सं. ४.५.८.१, मै.सं. २.९.७.२,१२६.२ का.सं. १७. १५.

तायत् - छिपकर चोर के समान आचरण करता हुआ ।
'यो नस्तायद् दिप्सति यो न आविः'
अ. ७.१०८.१.

तायमान - (१) विस्तृत होता हुआ ।
'सरस्वतीमध्वरे तायमाने'
ऋ. १०.१७.७, अ. १८.१.४१,४.४५, का.सं. १७.१८.
(२) किया जाता हुआ ।

तायादर - सन्तान उत्पादक अंग-योनि ।
'यथा पसस्तायादरम्'
अ. ६.७२.२

तायु - (१) चौर ।
'उत स्मैनं वस्त्रमथिं न तायुम्
अनु क्रोशन्ति क्षितयो भरेषु'
ऋ. ४.३८.५, नि. ४.२४
और इस दधिक्रावा इन्द्र को देख कर युद्धों में बैरी चिल्लाने लगते हैं जैसे वस्त्र लेकर भागने वाले चोर देखकर लोग चिल्लाते हैं, और युद्ध में वस्त्र तक चुरा लेने वाले चोर की तरह (भरेषु वस्त्रमथिं तायुं न) जिस राजा को बैरी या प्रजा जन कोसते हैं । -(दया.)
(२) पालक, (३) सन्तानार्थिनी स्त्री । तायृ सन्तानपालनयोः। तायृ धातु सन्तान और पालन अर्थों में आया है ।
'अप त्ये तायवोयथा
नक्षत्रा यन्त्यक्तुभिः'
ऋ. १.५०.२, अ. १३.२.१७, २०.४७, १४, आ.सं. ५.७.
जिस प्रकार रात्रि के कालों में नक्षत्र गण चन्द्रमा के साथ संगत होते हैं और दिन में दूर हो जाते हैं उसी प्रकार सन्तति उत्पन्न करने वाली स्त्रियां भी (तायवः) आह्लादकारी पति के साथ ऋतु रात्रियों में संगत हों ।

तार् - तारा, Star
'दिवि तारो न रोचन्ते'
ऋ. ८.५५.२

तार- जल समुद्रादि से तारने वाला ।
'नमस्ताराय'
वाज.सं. १६.४०,तै.सं. ४.५.८.१, मै.सं. २.९.७,१२६.४, का.सं. १७.१५.

तार्क्ष्य - (१) रथ या अश्व, (२) अश्ववत् बलवान् राजा, (३) व्यापक परमेश्वर ।
'स्वस्तिनः तार्क्ष्योऽरिष्टनेमिः'
ऋ. १.८९.६, वाज.सं. २५.१९,साम २.१२.२५, मै.सं. ४.९.२७,१४०,२ का.सं. ३५.१, तै.आ. १.१.१, २१.३, १०.१.९, आप.श्रौ.सू. १४.१६.१, नृसिंह पू.ता.उप. १., नृसिहं.उ.ता.उप. १.
(४) त्वरित् शक्ति वाला सेनानी ।
(५) अन्तरिक्ष में तीक्ष्ण बाणों को फेंकने वाला
'तस्य तार्क्ष्यश्चारिष्टनेमिश्च सेनानीग्रामण्यौ'
वाज.सं. १५.१८, तै.सं. ४.४.३.२, मै.सं. २.८.१०,११५.६, का. सं. १७.९, श.ब्रा. ८.६.१.१९.
(६) तृ + क्षि + ञ्य = तार्क्ष्य, अर्थ है-वायु । यह विस्तृत अन्तरिक्ष में निवास करता है, यह शीघ्र प्रयोजन की रक्षा करता है ।
त्वर् + रक्ष् + ञ्य = तार्क्ष्य
(८) यह शीघ्र फैलता है त्वं + अश् + ञ्य = तार्क्षय (९) तष्टा, रथ आदि का निर्माता
'स्वस्तये तार्क्ष्यमिहा हुवेम'
ऋ. १०.१७८.१, अ. ७.८५.१, साम. १.३३.२, ऐ.ब्रा. ४.२०.२५, नि . १०.२८.
(१०) तृक्ष् (गत्यर्थक) + ण्यत् = तार्क्ष्य (११) तृक्षितुं वेदितुं योग्यः = तृक्ष्यः । स एव तार्क्ष्यः ज्ञातव्य परमेश्वर -दया. (१२) विद्वान्, ज्ञानी, (१३) वेग से अत्यन्त जाने वाला शिल्पी

(१४) वेग से शत्रुपर आक्रमण करने वाला, (१५) व्यापक सर्वप्रेरक परमेश्वर ।

'स्वस्ति नः तार्क्ष्योऽरिष्टनेमिः'

विद्वान् ज्ञानी या वेग से अत्यंत जाने वाला शिल्पी (तार्क्ष्यः) रथ चक्र की न टूटने वाली धारा वाला होकर हमें मार्ग लांघने सुख प्रदान करें और वेग से शत्रु पर आक्रमण करने वाला वीर पुरुष अटूट दृढ़ हथियारों से युक्त हो हमें विजय सुख दे ।

अथवा व्यापक प्रेरक परमेश्वर जो दुष्टों का नाशक है हमें सुख दें ।

तार्प्य- (१) तर्पणार्ह, प्रीतिकर, (२) आत्मा को तृप्त करने वाला प्रेम या भोग्य पदार्थ, (३) तृपा नामक तृण का बना वस्त्र ।

'तत् त्वं यमस्य राज्ये वसानस्तार्प्यं चर'

अ. १८.४.३१

तार्ष्टाघी - तार्ष्ट + अघी । तृषा रोग को दूर करने वाली ।

'तार्ष्टाघीरग्वे समिधः'

अ. ५.२९.१५

तारकः - (१) तारने वाला, (२) दूर देशों तक ले जाने वाला ।

'सिध्मास्तारकाः'

वाज.सं. २४,१०, मै.सं. ३.१३.११, १७०.११, आप.श्रौ.सू.२०.१४.६.

तारके- (१) तारने वाले प्राण और अशन, (२) विद्या और अविद्या, (३) उत्तरायण और दक्षिणायन ।

'विचृतौनाम तारके'

अ. २.८.१,३.७.४,६.१२१.३, तै.आ. २.६.१.

(४) तारे ।

तारका- (स्त्री) दुःख सागर से तारने वाली ।

'यामाहुस्तारकैषा विकेशीति'

अ. ५.१७.४, कौ.सू. १२६.९.

तालु- तृ + ञुण् = तारु = तालु । अथवा लत (लम्बा अर्थ में प्रयुक्त धातु) का विपर्यय से तल कर ञुण् प्रत्यय जोड़कर तालु शब्द बना ।

ताबुव- (१) सर्प की एक जाति (२) ताबुव नामक सर्प की ओषधि - शायद कड़वा तूम्बा । कौशिक सूत्र में इस मंत्र से उसका जलपान करना लिखा है ।

'ताबुवं न ताबुवं नघेत् त्वमसि ताबुवम् । तस्तुवेनारसं विषम्'

अ. ५.१३.१०

त्या- (सर्वनाम) । अर्थ - वह ।

'ऐता उत्या उषसः केतुमक्रत'

ऋ. १.९२.१, साम. २.११०५, नि. १२.७.

त्रा - रक्षक ।

'तं क्षेमस्य क्षितयः कृण्वतत्राम्'

ऋ. १.१००.७

त्रामन् - (१) त्राण करने वाला साधन ।

(२) त्रै + मनिन् = त्रामन् । जिसका त्राण किया जाय + शूर , धार्मिक विद्वान्, (३) देह का रक्षक कवच आदि ।

'त्वमाविथ सुश्रवसं तवोतिभिः तव त्रामभिरिन्द्र तूर्वयाणम्'

ऋ. १.५३.१०

अपने रक्षा-साधनों से (तव ऊतिभिः) तू उत्तम यशस्वी ज्ञानी और अन्नादि ऐश्वर्य से युक्त राष्ट्र और राष्ट्रपति की रक्षाकर (सुश्रवसम् आविथ) । हिंसक शत्रु पर आक्रमण करने वाले वीर सैनिक गण को भी (तूर्वयाणाम्) देहों के रक्षक कवच आदि साधनों से (त्रामभिः) सुरक्षित रख ।

त्रामण- रक्षा, पालन ।

'सुदीतयो नद्य स्त्रामणेभुवन्'

ऋ. ५.४६.६

त्रायमाण - (१) रक्षा करने वाली शक्ति (२) रक्षा करने वाला देवता ।

'त्राणमाणे द्विपाच्च सर्वम् नः'

अ. ६.१०७.१

त्रायमाणा - एक औषधि ।

'त्रायमाणां सहमानाम् सहस्वतीम्

अ. ८.२.६

त्र्यायुषं - (१) तिगुनी आयु ।

'त्र्यायुषं जमदग्नेः'

अ. ५.२८.७, वाज.सं. ३.६२,वाज.सं. (का.) ३.९.४, शां.गृ.सू. १.२८.९, साम.मं.ब्रा. १.६.८, गो.गृ.सू. २.९.२१, हि.गृ.सू. १.९. ६, आप. मं.पा. २.७.२, जै.उ.ब्रा. ४.३.१.

(२) बाल्य, यौवन और वार्द्धक्य आदि तीनों अवस्थाओं अथवा तिगुनी आयु से युक्त ।

त्र्यशिरः – (१) बालक युवा वृद्ध तीनो द्वारा उपभोग करने योग्य, (२) वसुरुद्र और आदित्य द्वारा उपभोग करने योग्य ।
'सोमा इव त्र्याशिरः'
ऋ. ५.२७.५

त्रासते – रक्षा करता है
'सनस्त्रासते वरुणास्यधूते'
ऋ. १.१२८.७
वह अग्नि हमें रात के अधिकार से रक्षा करता है । अथवा, वह राजा शत्रुओं के हिंसाकारी सैन्य बल से रक्षा करता है ।

त्वादात – त्वया दातव्यम्–तुझ से दिया जाने वाला पदार्थ । त्वया का त्वा और और दातव्यम् का दातम् हो गया है । तुझ से सुशोभित तेरे द्वारा स्वीकृत सुरक्षित (२) तुझ से दिया पदार्थ
'इन्द्र त्वादातमिद् यशः'
ऋ. १.४०.७, ऋ.३.४०.६, अ. २०.६.६, साम. १.१९५.

त्वानिद् – तेरी निन्दा करने वाला ।
'त्वानिदो नितृम्पसि'
ऋ. ८.७०.१०

त्वायत् – तुझ प्राप्त करने की इच्छा करता हुआ ।
'इन्द्र त्वायन्तः सखायः'
ऋ. ७.२४.५, अ. २०.१८.१,साम. १.१५७, २.६९.
(२) तुझे चाहने वाला ।
'त्वायद्भ्यो मघवञ्छर्म यच्छनः'
ऋ. १.१०२.३
तुझे चाहने वाले हम सबको हे ऐश्वर्यवान् इन्द्र ! कल्याण दो । पुनः
'त्वं न इद्र त्वाभिरूती त्वायतः'
ऋ. २.२०.२

त्वाया– (१) त्वदीयया नीत्या (तेरी नीते से) ज.दे.श. (२) तुझ से –सा. ।
'प्र ये गृहादममदुस्त्वाया'
ऋ. ७.१८.२१
जो तेरी नीति से (त्वात्वाया) गृहस्थाश्रम को पाकर (गृहात्) अत्यन्त प्रसन्न हुए (प्रअममदुः) अथवा, जो ऋषि तुझ से या तेरे साथ (त्वाया) घर पर या घर जाकर (गृहात्) सोम पीकर या यज्ञों में अत्यन्त प्रसन्न हुए (प्राममदुः)
(३) तेरी कामना ।
'त्वाया हविश्चकृमासत्यराधः'
ऋ। १.१०१.८

त्वायु – (१) तेरी कामना करने वाला ।
'वयमिन्द्र त्वायवः'
ऋ. ३.४१.७.
(२) तेरे उत्पन्न किये व्यवहारों से युक्त ।
(३) तुझे प्राप्त करने का इच्छुक ।
'सुता इमे त्वायवः'
ऋ. १.३.४,. अ. २०.८४.१, साम २.४९६, वाज.सं. २०.८७.

त्वावत् – तेरे जैसा , तुझे अपनाने वाला ।

त्वावसु – (१) तुझ से ऐश्वर्य पाने वाला, (२) तुझ में ही बसने और रमने वाला, (३) तेरे अधीन रहने वाला ।
'कस्तमिन्द्र त्वावसुम् आमर्त्यो दधर्षति'
ऋ. ७.३२.१४, साम. १.२८०, २.१०३२.

त्वावान् – (१) अपने जैसा अद्वितीय (२) आत्म–सामर्थ्य से स्थिर ।
'आ घ त्वावान् त्मनाप्तः'
ऋ. १.३०.१४, अ. २०.१२२.२, सामं. २.४३५.
(३) तुझ सहायक को पाने वाला ।
'विघत्वावां ऋतजातयंसत्'
ऋ. १.१८९.६

त्वावृध् – तेरे बल से बल से बढने वाला ।
'त्वावृधोमघवन् दाश्वध्वरः'
ऋ. १०.१४७.४

त्वावृधा – तुझको बढ़ाने वाली देवी ।
'देवी यदि तविषी त्वावृधातये'
ऋ. १.५६.४

त्वाष्ट्र – (१) त्वष्टा या शिल्पी द्वारा बनाया यन्त्र प्रबन्ध, (२) सूर्य का तेज ।
'महि त्वाष्ट्रम् उर्जयन्तीरर्जुयम्'
ऋ. ३.७.४
(३) शिल्पियों से प्राप्त होने योग्य पदार्थ ।,
(४) परमेश्वरीय ।
'अस्मभ्यं तत् त्वाष्ट्रं विश्वरूपम्'
ऋ. २.११.१९
(४) वृत्र का एक नाम । ऐतिहासिक पक्ष वाले व्याख्याता, त्वाष्ट्र नामक एक असुर को ही वृत्र कहते हैं । भागवत स्कन्द ६.९ में त्वाष्ट्र का उल्लेख निम्नालिखित हैं–

'येनावृता इमे लोकाः
तमसा त्वाष्ट्र मूर्तिना
स वै वृत्र इति प्रोक्तः
पापः परम दारुणः ।'
पुनः-
'त्वाष्ट्री स्वरूपेण
नाम्ना छायेति कामिनी'
मत्स्य पु. ११.५.
पुनः -
त्वाष्ट्री तुसवितुः भार्या-महा.
वस्तुतः त्वष्टा शब्द बहुत रहस्यमय है। सूर्यास्त के बाद और उषा के पूर्व का तमसाच्छन्न काल सरण्यू है और उसी के समकालीन अस्तंगत आदित्य का नाम त्वष्टा है। इस काल के तमस् को या सृष्टि के आदि में तमस् को ही वृत्र या त्वाष्ट्र कहा गया है। सृष्टि के प्रारम्भ के बाद वृत्ररूप अन्धकार से मुक्ति पाना समस्या थी। विद्वानों को आर्यों के आदि निवास स्थान का पत लगाने में त्वष्टा, त्वाष्ट्र, वृत्र सरण्यू आदि शब्द अत्यन्त सहायक हैं।

त्वाष्ट्र वचः - इन्द्र, परमेश्वर, या पति का वचन।
'त्वाष्ट्रेणाहं वचसा'
अ. ७.७४.३

त्वाष्ट्रौ - शत्रु सेनाओं को शस्त्रों से विनष्ट करने वाले।
'त्वाष्ट्रौ लोकमशसक्थौ सक्थ्योः'
वाज.सं. २४.१, तै.सं. ५.५.२३.१, मै.सं. ३.१३.२, १६८.१२, का.सं. (अश्व) ८.२

त्सारी- (१) कुटिल गामी, छदमगति से चलने वाला कुटिलाचारी।
'त्वां त्सारी दसमानो
भगमीट्टे तक्वनीये'
ऋ. १.१३४.५
कुटिलाचारी (त्सारी) शत्रुओं का नाश करता हुआ (दसमानः) तुझ ऐश्वर्य वान् पुरुष की और प्रजापीड़क पुरुषों के दूर करने के उत्तम कार्य के निमित्त का (तृक्ववीये) स्तुति करता है। (इट्टे)।

तिग्म - तीक्ष्ण,।

तिग्मजम्भः- (१) तीव्र मुख वाला, (२) तेजोमय मुख या ज्वाला वाला अग्नि, (३) तीक्षा नाखश साधनों वाला।
'स तिग्मजम्भ रक्षसो दहप्रति'
ऋ. १.७९.६, २.९१३,
'प्र तां अग्नि र्बभसत् तिग्मजम्भः'
ऋ. ४.५.४
अग्नि के अर्थ में -
'तिग्मजम्भस्य मीढुषः'
ऋ. ४.१५.५

तिग्मतेजसः रुद्राः - तीक्ष्ण प्रकाश वाले रुद्र नामक केतुग्रह अथवा प्राण अपान आदि ११ रुद्र।
'शं रुद्रास्तिग्मतेजसः'
अ. १९.९.१०

तिग्मभृष्टिः - (१) तीक्ष्ण प्रकाश से युक्त सूर्य, (२) पापों को भस्म करने में समर्थ।
'साम द्विबर्हा महितिग्मभृष्टिः'
ऋ. ४.५.३

तिग्महेतः - तीक्ष्ण शस्क्षों को धारण करने वाला।
'न्यमित्रा ओषतात् तिग्महेतेः'
ऋ. ४.४.४, वाज.सं. १३.१२, तै.सं. १.२.१४.२, मै.सं. २.७.१५, ९७.१२, का.सं. १६.१५.

तिग्ममूर्धा - तीक्ष्ण सिर से युक्त प्राण।
'दिद्यवस्तिग्म मूर्धानः'
ऋ. ६.४६.११

तिग्मश्रृंगः - (१) अंधकारों का नाश करने वाले तीक्ष्ण प्रकार से युक्त परमेश्वर, (२) तीक्ष्ण श्रृंग वाला वृषभ।
'वृषभो न तिग्मश्रृंगः'
ऋ. १०.८६.१५, अ. २०.१२६.१५.

तिग्मशोचिष् - तीक्ष्ण ज्वाला या दीप्ति वाला -अग्नि।
'प्रपूतास्तिग्मशोचिषे'
ऋ. १.७९.१०
तीक्ष्ण ज्वाला वाले अग्नि या परमेश्वर के लिये आचार आदि के पवित्र प्रभावजनक वाणियों को।

तिग्मानीक - (१) तीक्ष्ण तेज से उज्वल मुख वाला सूर्य, (२) तीक्ष्ण सैन्य वाला पुरुष।
'तिग्मानीकं स्वयशसं जनेषु
विरोचमानं परिषीं नयन्ति'
ऋ. १.९५.२, तै.ब्रा. २.८.७.४.

तिग्मायुधः- तीक्ष्ण आयुधवाला रुद्र का विशेषण।

'तिग्मायुधाय भरता श्रृणोतु नः'
ऋ. ७.४६.१, तै.ब्रा. २.८.६.८, नि. १०.६,
तीक्ष्ण आयुध वाले रुद्र के लिये स्तुतियां अर्पित कर और वे हमारी स्तुति सुनें ।

तिगित - तीक्ष्ण । तिग् + क्त = तिगित ।
'अग्निर्जम्भैस्तिगितैरत्ति भर्वति'
ऋ. १.१४३.५
योद्धा जिस प्रकार शत्रुओं को तीक्ष्ण शस्त्रों से नाश कर देता है ।

तिग्मेषु, तिग्मेषनः- (पु.) तीक्ष्ण बाण धारण करने वाला
'तिग्मेषव आयुध संशिशानाः'
ऋ. १०.८४.१, अ. ४.३१.१, तै.ब्रा. २.४.१.१०, नि. १०.३०.
तीक्ष्ण बाणधारी योद्धा गण आयुधों का प्रयोग कर मारते काटते हुए ।

तितउ - (पु.) चलनी । चालनी तितउः प्रमान् -अमर तितउ परिपवनं भवति-ततवत् वा तुन्नवत् वा तिलमात्रं तुन्नम् इतिवा (तितउ चलनी का नाम है, क्योंकि यह तत (चमड़े) से नद्ध रहता है, तुन्न या छिद्र वाला या तिल सदृश छिद्रों से युक्त रहता है । तन + उउ = तितउ . पृषोदरादिवत् ।
'सक्तु मिव तितउना पुनन्तः
यत्र धीरा मनसावाचमक्रत'
ऋ. १०.७१.२, नि. ४.१०.
जिस प्रकार चलनी से चालकर सत्तू शुद्ध करते हैं उसी प्रकार ध्याजवान् या धीमान पुरुष प्रज्ञा या मन से शुद्ध वचन बोलते हैं ।

तितिर्वसु - तृ + क्वसु । सम्यक् प्रकार से तरता हुआ ।
'तितिर्वांसो अतिस्त्रिधः'
ऋ. १.३६.७

तित्तिरि -(१) तृ +ई (कित् भाव) = तित्तिरि (उछलने वाला पक्षी)·। तीतर (२) तिलयात्र चित्रितः = तिलचित्रः तिद्चर= तित्तिर = तित्तिरि । तीतर वर्षाऋतु का एक पक्षी है ।
'वर्षाभ्यस्तित्तिरीन्'
वाज.सं. २४.२०, मै.सं. ३.१४.१, १७२.१८, का.सं. (अश्व.) १०. ४, श.ब्रा. १३.५.१.१३, आप.श्रौ.सू. २०.१४.५.

तित्रत् - पार करता हुआ ।
'यदाशवः पद्याभिस्तित्रतोरजः'
ऋ. २.३१.२

तित्विषाण- निरन्तर कर चमकने वाला
'त्विषिः सा तेतित्विषाणस्य नाधृषे'
ऋ. ५.८.५

तिरश्चा - (१) तिरछीगति से (तिर्यञ्च)' शब्द के तृतीय एक वचन का रूप ।
'गोर्नपर्व विरदा तिरश्चा
इष्यन् अर्णास्यपां चरध्यै'
ऋ. १.६१.११२, २०.३५.१२, मै.सं. ४.१२.३, १८३.११, का.सं. ८.१६, नि. ६.२०.
तिरछी चाल से जाते हुए सूर्य जैसे (तिरश्चा इष्मन्)मेघों के जोड़ो को (गोःपर्व न) अन्तरिक्ष के जलों की प्राप्ति के लिये विदीर्ण करता है (अपाम्) अर्णांसि चरध्यै) उसी प्रकार हे राजन् तू शत्रु सेंध को विदीर्ण कर (विरद) । -दया. जलों की कामना करता हुआ (अर्णांसि इष्यन) जलों को बहाने के लिये (अपो चरध्यै) हे इन्द्र, मेघों को या वृत्र को विदीर्ण कर (विरद) जैसे पशुओं के जोड़ो का मांसाहारी विदीर्ण करते हैं (गो.पर्व न) ।
(२) आसन्दी (चौकी) के सिरहाने और पैर की ओर की पाटी

तिरश्चित् - (१) दूर देश से भी (२) अप्राप्त स्थान में भी ।
'तिरश्चिदर्यया परिवर्तिर्यातम्'
ऋ. ५.७५.७, नि. ३.२०
हे अश्विनीद्वय, तुम दोनों प्राप्त या अप्राप्त स्थान में भी (तिरश्चित्) समर्थ रथ गति या दैव गति से (अर्यया) परिवर्तन कर आओ (परिवर्तिः यातम्) या दूर देश से भी हमारे घर में आओ ।

तिरश्चिराजि - (१) तिरछी धारियों वाला ।
'नमस्तिश्चिराजिभ्यः'
अ. ६.५६.२
(२) तिरछी धारी वाला सर्प ।
'तिरश्चिराजेरसितात'
अ. ७.५६.१

तिरश्चिराजी - (१) टेढ़ो पर राज्य करने वाला, (२) तिर्यक् ऋजन्तुओं के भी विविध रूप से चमत्कारी ।

'तिरश्चिराजी रक्षिता'
अ. ३.२७.२

तिरश्चीः- तिरछी वेदना ।
'यास्तिरश्चीरुपर्षन्ति'
अ. ९.८.१६

तिरश्चीन पृश्निः- तिरछेया आड़े शरीर पर चिटकने वाले चित्र विचित्र वर्ण वाला ।
'पृश्निस्तिश्चीन पृश्निरूर्ध्वपृश्निस्ते मारुताः'
वाज.सं. २४.४, तै.सं. ५.६.१२.१, मै.सं. ३.१३.५, १६९.८, का.सं.(अश्व.) ९.२.

तिर्यक रम्भ - धान या चावल का मिश्रण ।
'करम्भं कृत्वा तिर्यम्'
अ. ४.७.३
पैप्पलाद शाखा के पाठ के अनुसार 'करम्भ कृत्वा तिर्यम्' है। निरय नामक धान का चावल मेद बढ़ाने वाला पुष्टिकर होता है ।
'निरयो मधुरः स्निग्धः
शीतलो दाहपित्तजित् ।
त्रिदोष शमन्तो रुच्यः
पथ्यः सर्वामियामपुद्'

तिर्यग्बिलः चमसः - तिरछेमुख वाला कटोरा - यह सिरः (२) आकाश मण्डल ।
'तिर्यग्बिलश्चमस ऊर्ध्वबुध्नः'
अ. १०.८.९, नि. १२.३८.

तिर्यग्बिलः- (१) जिसके नीचे छिद्र हो । यह शब्द आदित्य का विशेषण है । क्योंकि आदित्य नीचे की ओर किरणों को फैलाने वाला है । (२) आध्यात्म अर्थ में यह शिर का विशेषण है, क्योंकि शिर समस्त शरीर को ऊपर से भी बांधकर नियन्त्रित करता है ।
'तिर्यग्बिलश्चमसः ऊर्ध्वबुध्नः'
सूर्य नीचे से किरणों को विस्तृत करने वाला है-चमस के सदृश है तथा जगत् को उब्दोधित या प्रकाशित करने वाला है या नियन्त्रण रूपी बन्धन में जगत् को जकड़े रखता है। आध्यात्म अर्थ में सिर शरीर को नियन्त्रित रखता है अतः वह तिर्यग्बिल और ऊर्ध्वबुध्न है ।

तिर्यञ्चः तन्तवः - खाट के तिरछे लपेट-नीवार का रस्सी ।
'ऋचाः प्राञ्चस्तन्तवो यजूंषि तिर्यञ्चः'
अ. १५.३.६

तिरिन्दिर - (१) तिरः तीर्णतमः इन्दिरः इन्द्रः (२) जीर्णतम, (३) सर्वोपरि ऐश्वर्यवान् (४) शत्रुहन्ता राजा ।
'शतमहं तिरिन्दिरे'
ऋ. ८.६.४६, शां.श्रौ.सू. १८.११.२१

तिरीटिन् - (१) उन्मार्गगामी, (२) टेढ़े रास्ते पर जाने वाला कुपथगामी ।
'क्लीबरूपान् तिरीटिनः'
अ. ८.६.७

तिरः- ओझल होकर ।
'पतिर्वा जाये त्वत् तिरः'
अ. १२.३.३९

तिरोअह्नय - (१) विगत या वर्तमान् में प्राप्त दिन का कमाया, (२) तिरश्चीन दिनों में साधु-(दया.)
'नासत्या तिरो अह्न्यं जुषाणा'
ऋ. ३.५८.७
(३) सायंकाल या सूर्यास्त काल का आहुत पुरोडाश (४) दिन व्यतीत हो जाने पर प्राप्त अन्न ।
'अग्ने वीहि पुरोडाशम् आहुतो तिरो अह्नयम्'
ऋ. ३.२८.३

तिरोजन - जनों से परे, जंगल में ।
'यदिवासि तिरोजनम्'
ऋ. ७.३८.५

तिरोदधे-तिरोहित कर देते हैं-छिपा देते हैं आरम्भ ।
'महः समुद्रं वरुणः तिरोदधे'
ऋ. ९.७३.३, तै.आ. १.११.१, नि. १२.३२.
विद्युत् नामी महान् वरुण आदित्य को मेघ जाल से तिरोहित कर देते हैं ।

तिरोधा - (१) विराट् का एक रूप (२) छिपाने की कला ।
'तामितरजना उपाह्वयन्त. तिरोधएहीति'
अ. ८.१० (५) ९

तिरःवर्तिः- प्राप्त आजीविका का कार्य, मार्ग या गृह ।
'तिरश्चिदर्ययापरि
वर्तिर्यातम् अदाभ्या'
ऋ.५.७५.७, नि. ३.२०.

तिरस् - तृ + असुन् = तिरस् । अर्थ होता है- (१) तिरा हुआ नीचे की ओर । (२) तीर्णतम,

महान्,
'तिरः धन्वाति रोचते'
आदित्य रूप में अवस्थित अग्नि की तीर्णतम् इस महान् अन्तरिक्ष को पारकर (अति) हम लोगों को प्रकाशित करते हैं (सोचते)।

तिल- तिल, नारियल आदि। तृ + अ = तिर = तिल।
'माषाश्च मे तिलाश्च मे'
वाज.सं. १८.१२, तै.सं. ४.७.४.२, मै.सं. २.११.४,१४२.२, का.सं. १८.९.

तिलपिञ्जा - तिल की फली।
'तिलस्य तिलपिञ्ज्या'
अ. २.८.३

तिलमिश्राः- (१) तिल से मिले चावल (२) तिल के समान काली अन्धकारमय रात्रियों सहित (३) प्रकाश हीन नक्षत्रों से मिले।
'तिलमिश्राः स्वधावतीः'
अ. १८.३.६९,४.२६,४३.

तिलवत्साः - तिलों के समान स्नेह युक्त छोटे छोटे बछड़ो वाली गौएं।
'तिलवत्सा उपतिष्ठन्तु त्वात्र'
अ. १८.४.३३

तिल्पिञ्ज - तिल का डंठल।
'तिल्पिञ्जं दण्डनं नडम्'
अ. १२.२.५४

तिल्विल- स्नेहयुक्त चिकनी मिट्टी वाली भूमि।
'भद्रेक्षेत्रे निमिता तिल्विलेवा'
ऋ. ५.६२.७

तिल्विला - (१)तिलों से सुशोभित भूमि, (२) स्नेहोत्पादक भूमि के समान स्त्री।
'तिल्विला यध्वमु यसोविभातीः'
ऋ. ७.७८.५

तिष्ठत् - अपने स्वरूप में स्थित।
'तद् धावतोऽन्यानत्यति तिष्ठत्'
वाज.सं. ४०.४, ईश.उप.४.
(२) समान भाव से स्थिरता से खड़ा होने वाला वृक्षआदि।
'ज्यायान् निमिषतोऽसि तिष्ठतः'
अ. ९.२.२३

तिष्ठन्ति- विराम लेते हैं, ठहरते हैं। 'स्था' धातु के लट् प्र.पु. ब.व.का रूप।
'न तिष्ठन्ति न निमिषन्त्येते'
ऋ. १०.१०.८, अ. १८.१.९.

तिष्ठन्ती- स्थावरजल।
'तिष्ठन्तीभ्यः स्वाहा'
वाज.सं. २२.२५

तिस्तिराणा- (द्वि.व.) बिछाते हुए।
'यतस्रुचा बर्हिरुतिस्तिराणा'
ऋ. १.१०८.४

तिष्य- (१) आदित्य, (२) पुष्य नक्षत्र।
'न योमुच्छति तिष्यो यथादिवः'
ऋ. ५.५४.१३
गुरु और पुष्य नक्षत्र का योग अत्यन्त निकट है। पुष्य नक्षत्र का स्वामी भी गुरु माना गया है।
'बृहस्पतिः प्रथमं जायमानः
तिष्यं नक्षत्रमभि संबभूव'
तै.ब्रा. ३.१.१.

तिस्रः- (१) तीन सभाएं (२) तीनशक्तियां दण्ड, धन और मन्त्र, (३) आन्विक्षि की, त्रयी वार्ता, (४) तीन तीन महासभाएं।
'यच्छूर सन्ति तिस्रः'
ऋ. ५.३५.२
(४) तीन शक्तियां-परस्पर प्रेम, अन्न और राजशक्ति (६) आत्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक शक्ति।
'ऋतस्य पन्थामनुतिस्र आगुः'
अ. ८.९.१३, तै.सं. ४.३.११.१, मै.सं. २.१३.१०, १६०.५,का.सं. ३९.१०, आप.मं.पा. २.२०.३२.

तिस्रःआजानीः- (१) तीन उत्तम या नवीन शक्तियों को उत्पन्न करने वाली- माता के समान उत्पादक दशाएं, (२) उत्तम ज्ञान प्रद ज्योतियां -मन बुद्धि और चित्त।
'तिस्र आजानीरुष सस्ते अग्ने'
ऋ. ३.१७.३, तै.सं. ३.२.११.२, मै.सं. ४.११.१, १६१.१२, का.सं. २ .१५.

तिस्रःरह - (१) तीन दिन, (२) बाल्य, यौवन और जरा।

तिस्रआपः - (१) जल की तीन गतियां पृथ्वी से वाष्प बनकर ऊपर उठना, मेघ से जल बरस कर नीचे आना और समुद्र से वायु के बल पर नीचे आना, (२) प्रकृति के सूक्ष्म परमाणुओं

की तीन गतियां –संयोग, विभाग और चक्रगति
'तिस्रो द्यावस्त्रेधा सस्रुतुरायः'
ऋ. १०.१.४

तिस्रउस्राः– (१) ऋक्, यजुः और साममयी ज्ञानरश्मियां (२) ऊर्ध्व ब्रह्माण्ड और मस्तक में प्रकट रश्मियां, (३) गुहा, हृदय और ब्रह्मरन्ध्ररूपी द्वार, (४) अधिष्ठान, मणिपूर और ब्रह्मरन्ध्र ।
'उदुस्रा आकर्विहि तिस्रआवः'
ऋ. १०.६७.४, अ. २०.९१.४

तिस्रःक्षयः – (१) तीन रात, (२) बाल्य, यौवन और जरा ।
'तिस्रः क्षपस्त्रिरहाति व्रजद्भिः'
ऋ. १.११६.४, तै.आ. १.१०.३

तिस्रःचम्वः– (१) तीन चमू, (२) राष्ट्र की भोक्ता प्रजाएं या सेनाएं (३) कर्मेन्द्रिय, ज्ञानेन्द्रिय और मन ।
'तिस्रश्चम्वः सुपूर्णाः'
ऋ. ८.२.८

तिस्रःजिह्वाः – (१) तीन जिह्वाएं, (२) वेदत्रयी ।
'तिस्रोजिह्वा वरुणास्यान्तर्दीद्यत्यासन्ति'
अ. १०.१०.२८

तिस्रःतन्वः – तीन शरीर –देह, यश और राष्ट्र ।
'तिस्र उते तन्वो देववाताः'
ऋ. ३.२०.२, तै.सं. ३.२.११, १, मै.सं. २.४.४:४२.११, का.सं. ९.१९.

तिस्रोद्यावः– (१) प्रकाशमान सूर्य, अग्नि और विद्युत् नामक तीन पदार्थ , (२) आकाश, अन्तरिक्ष और पृथिवी ।
'तिस्रो द्यावः सवितुर्द्वा उपस्थां
एका यमस्य भुवने विराषाट्'
ऋ. १.३५.६
प्रकाशमान सूर्य, अग्नि और विद्युत् तीन पदार्थ हैं। उनमें दो अग्नि और विद्युत् सब के उत्पादक सूर्य के आश्रय हैं और एक यम अर्थात् वायु के आश्रय में जो भुवन या अन्तरिक्ष में रहती है जो वीर पुरुषों को भी पराजित करने में समर्थ हैं ।
अथवा, आकाश, अन्तरिक्ष और पृथिवी तीन द्यौ हैं । दो-आकाश और अन्तरिक्ष सूर्य के आश्रय हैं और भूमि नियन्ता राजा के शासन में हैं ।
तीन लोक – पृथ्वी, अन्तरिक्ष और सूर्य ।
'तिस्रो द्याव स्त्रेधा सस्रुरापः'
ऋ. ७.१०१.४

तिस्रः दिवः – (१)तीन प्राकार के तेज-रक्त, नील और पीत, (२) प्रभुसत्ता, जनसत्ता और मन्त्रसत्ता, (३) तीन आकाश-अग्नि, विद्युत और सूर्य ।
'तिस्रो दिवः पृथिवीः तिस्र इन्वति'
ऋ. ४.५३.५
(३) तेज के तीन प्रकार –शरीर में तेज के तीन रूप-अस्थि, मज्जा और वाणी ।
'तिस्रोदिवः तिस्रःपृथिवीः'
अ. ४.२०.२, अ. १९.२७.२
'तिस्रःदिवः अग्निविद्युत् सूर्याः'
तै. ३.८.१६.४
'त्रीणिरजांसि दिवो अङ्ग तिस्रः'
अ. १३.३.२१

तिस्रःदेवताः– (१) तीन देवता, (२) गुरु, शिष्य, और परीक्षक ।
'तिस्रोदधुः देवताः संरराणाः'
वाज.सं. १९.८१, मै.सं. ३.११.९, १५३.१५३.३, का.सं. ३८.३, तै.ब्रा .२.६.४.१,

तिस्रःदेवपुराः – (१) तीन ज्ञान- प्रकाशः (२) तीन इन्द्रियों की नगरियां ।
'इमास्तिस्रो देवपुराः'
अ. ५.२८.१०

तिस्रः देवीः – तीन देवियां इला, सरस्वती और मही जो सुख देने वाली हैं ।
इडा का अर्थ है वाणी । दीप्ति करने से प्रकाश होने से इडा वाणी और विद्युत् हैं । गौ और अन्न दोनों का वाचक इडा शब्द है । उनकी स्वामिनी इडा है । पशु, अन्न, श्रद्धा, सत्य, धारणावती बुद्धि, मनुष्य की पत्नी, और समस्तविश्वचक्र कारणों की स्वामिनी प्रकृति भी इडा है और इरा नाम से कहाती है। सरस्वती वाक् है । सरस्वती स्त्री है। पूषा पुरुष हैं । सरस्वती वज्र विद्युत् है । सर और सरस्वती दोनों वाणी के नाम हैं । सरः जल वाचक है अतः मध्यमा वाक् विद्युत् सरस्वती है । सरः उत्तम ज्ञान है । अतः उत्तम ज्ञान से युक्त

वेदवाणी सरस्वती है मही पृथिवी वाणी और गौ तीनों का वाचक है । फलतः इडा ऋक् सरस्वती यजुः और मही साम है । तीनों नाम पृथिवी वाचक है । इडा-अन्नदायी, सरस्वती-जलदात्री और मही-उत्तम रत्नआदि दात्री है । गृहस्थ पक्ष में -इडा = कुमारी, सरस्वती गृहपत्नी, मही= वृद्धा, । राज्य पक्ष में -इडा = भूमि प्रबन्धकारिणी सभा, सरस्वती विद्वंन्सभा और मही = पूज्य शिक्षक समिति है । इलादिशब्दाभिधेया वह्निमूर्त्तयः तिस्रो देव्य इति सायणः ।

तिस्रो देवीः- तीन देवियां जो सृष्टि के सभी यज्ञों या स्वा. दयानन्द के अनुसार शिल्प यज्ञों को सम्पन्न करती हैं । वे हैं (१) सूर्य की किरण, (भारती), (२) पृथ्वी स्थानीय अग्नि, (इडा) तथा विद्युत, (मध्य यस्थानीय सरस्वती) ।

'तिस्रो देवीर्बर्हिरिदं स्योनम्
सरस्वती स्वपमसः सदन्तु'

ऋ. १०.११०.८, अ. ५.१२.८, वाज.सं. २९.३३, मै.सं. ४.१३.३, २०२.१० का.सं. १६.२०, तै.ब्रा. ३.६.४, नि. ८.१३.

उत्तम कर्मों को सिद्ध करने वाली ये तीन देवियां (स्वपसः तिस्रो देवीः) हमारे इस सुखकारी यज्ञ में अवस्थित हों । ये तीन देवी-सूर्य की किरण (भारती), पृथ्वी स्थानीय इडा देवी (अग्नि) तथा मध्यमस्थानीय विद्युत् (सरस्वती) हैं ।

(२) प्राण, अपान और उदान वायु = ऐ.ब्रा. प्राणों वा अपानो व व्यानः तिस्रो देव्यः एवं प्रीणाति तायजमानो दधाति ऐ.ब्रा.

(३) सरस्वती, इडा और भारती (४) उत्तम ज्ञान वाली विदुषी-सरस्वती, अन्न दात्री इडा और सब सुखों को उत्पन्न करने वाली भारती है

'तिस्रो देवीः स्वधया बर्हिरिदम्'

ऋ. २.३.८

(४) विदुषी, अन्न साधिका और गृहस्थ सुख देने वाली अर्द्धांगिनी (६) राष्ट्र पक्ष में विद्वत्सभा, भूमि या अन्न की उपज आदि की प्रबन्ध कर्त्री सभा और समाज की सुव्यवस्था करने वाली सभा । सरस्वती (Legislative) इडा (Revenue) भारती (Municipality)

तिस्रः धिषणाः - (१) तीनों लोक -सूर्य आकाश और पृथिवी, (२) तीन राजसभाएं ।

'त्रयस्तस्थु र्वृषभासस्तिसृणां
धिषणानां रेतोधाविद्युमन्तः'

ऋ. ५.६९.२

तिस्रो निम्रुचः- तीन अस्तकाल ।

'निम्रुचस्तिस्रो व्युषोहतिस्रः'

अ. १३.३.२१

तिस्र- तीन प्रकार की भूमि-पर्वतमयी, सम और जलमयी या उत्तम, मध्यम और निकृष्ट

'करत् तिस्रो मघवा दानुचित्रा'

ऋ. १.१७४.७

तिस्रः निर्ऋतयः- निःशेष सत्यज्ञान से पूर्ण तीन वेद ।

'तिस्रो देष्ट्राय निर्ऋतीरुपासते

ऋ. १०.११४.२

तिस्रःपञ्चाशत् - तीन पचास पचास सैनिकों की टुकड़ियां ।

'यासां तिस्रः पञ्चाशतो
अभिव्लङ्गैः अपावपः'

ऋ. १.१३३.४

जिन सेनाओं के (यासाम्) तीन पचासों को भी (तिस्रः पञ्चाशतः) सब तरफ के पैतरों से या सब तरफ चलने वाले चौमुख मारने वाले शस्त्रों और अस्त्रों से (अभिव्लङ्गैः) तू काट गिराये (अप अवपः)

तिस्रः प्रजाः - (१) तीन प्रकार की प्रजा, (२) तीन प्रकार के पक्षी, (३) तीन प्रकार की प्रजाएं जेरज, अण्डज और उद्भिः ।

'प्रजाह तिस्रो अत्यायमीयुः'

ऋ. ८.१०१.१४, श.ब्रा. २.५.१.४, ऐ.आ. २.१.१.४.५,

'तिस्रः प्रजा आर्याज्योतिरग्राः'

ऋ. ७.३३.७, जे.ब्रा. २.२३६.

तिस्रःप्रवतः- तीन ऊपर नीचे की भूमियां ।

'अयं पीयूषं तिसृषु प्रवत्सु'

ऋ. ६.४७.४

तिस्रः पितरः - (१) पालन करने वाले तीन-अग्नि, वायु और सूर्य, (२) अग्नि, वायु और जल ।

तिस्रः पूर्वीजिह्वाः- तीन पूर्वआचार्यों द्वारा उपदिष्ट सनातन वाणियां-स्तुतिरूप ऋक् , गान रूप साम और कर्म निदर्शक गद्यमय यजु, (२) राजा

की तीन जिह्वाएं उनकी तीन वाणियां हैं-शासकों के प्रति प्रजा के प्रति और पर पक्ष के प्रति ।
'तिस्रस्ते जिह्वाः ऋतुजात पूर्वीः
ऋ. ३.२०.२, तै.सं. ३.२.११.१, मै.सं. २.४.४,४२.१०, का.सं. ९.१९.

तिस्रःपृथिवीः- (१) भूमि, अन्तरिक्ष और आकाश, (२) स्थूल, त्रसरेणु और परमाणु ।
'तिस्रः पृथिवी रुपरिप्रवा दिवः'
ऋ. १.३४.८,
पृथ्वी, अन्तरिक्ष और आकाश तीनों स्थानों पर अच्छी प्रकार पहुंचने वाले आप दोनों (युवाम्)
(३) सूर्य, वायु और भूमि
(४) सूर्य, अन्तरिक्ष और भूमि ।
'तिस्रो दिवः पृथिवीः तिस्र इन्वति'
ऋ. ४.५३.५
(५) पृथ्वी के तीन प्रकार
(६) शरीर में स्थूल रूप पुरीष, मध्यम रूप मांस और सूक्ष्म रूप मन ।
'तिस्रो दिवः तिस्रः पृथिवीः'
अ. ४.२०.२, १९.२७.३,
(७) तीन विशाल लोक ।
'इमा यास्तिस्रः पृथिवीः'
अ. ६.२१.१

तिस्रःभूमयः- (१) पृथ्वी, आकाश और अन्तरिक्ष, (२) उत्तम, मध्यम और अधम (३) स्व, पर और उदासीन ।
'तिस्रो भूमीर्नृपते त्रीणि रोचना'
ऋ. १.१०२.८

तिस्रःमहीः- (१) तीनों लोक, (२) चित्त की तीन भूमियाँ ।
'तिस्रोमहीरुपरास्तस्थुरत्याः'
ऋ. ३.५६.२.

तिस्रः मातरः - (१) तीन माताएं, (२) अन्न, जल और तेज को उत्पन्न करने वाली पृथिवी, अन्तरिक्ष और वायु नामक तीन भूमि, (३) सत्व, रजस् , तमस् तीनो गुणों से युक्त तीनों प्रकार की प्रकृति (४) उत्तम, मध्यम और निष्कृष्ट भूमि, अन्तरिक्ष और द्यौ ।
'तिस्रो मातृस्त्रीन् पितृन् बिभ्रदेकः'
ऋ. १.१६४.१०, अ.९.९.१०.

(५) जगत् की तीन निर्माणकारणी शक्तियां-सूर्य, मेघ और पृथिवी ।

तिस्रः मात्रा- तीन माताएं
'तिस्रो मात्रा गन्धर्वाणाम्'
अ. ३.२४.६

तिस्रःयोनयः- (१) तीनों लोक, (२) गार्हपत्य आदि तीन अग्नि (३) सिंहासन, शासक वर्ग और प्रजावर्ग, (४) स्वराष्ट्र, परराष्ट्र और उदासीन ।
'उशन् होतर्निषदा योनिषु त्रिषु'
ऋ. २.३६.४, अ. २०.६७.५

तिस्रःवाचः- (१) परा, पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी इन चार प्रकार की वाणियों में प्रथम तीन वाणियां जो देह के भीतर ही रह जाती हैं। और दूसरे नहीं समझ सकते। वैखरी वाणी तालु, ओष्ठ आदि स्थानों से होकर वर्ण, पद और वाक्य रूप से प्रकट होती है। परा वाणी आत्मा में बीज रूप से होती है। पश्यन्ती वाणी प्रयोग के पूर्व वक्ता के मन में संकल्प रूप से रहती है। और मध्यमा मानस् संकल्प में रहकर ही शरीर के हर्ष विषाद आदि मुख विकार को प्रकट करती है ।
(२) छन्दोमय ऋक् गीतिमय साम और गद्यमय यजुःतीन वाणियां हैं ।
'तिस्रो वाचः प्र वद ज्योतिरग्राः'
ऋ. ७.१०१.१

तिस्रोव्यूषः - वि + उषः । तीन उषाकल ।
'अहर्व्युष्टिः'
तै.सं. ३.८.१६.४
'रात्रिर्वैव्युष्टिः'
श.ब्रा. १३.२.१.६
अध्यात्म, आधिदैविक आधिभौतिक भेदेन तिस्रो व्युषाः ।
'निम्रुचस्तिस्रो व्युषो हि तिस्रः'
अ. १३.३.२१

तिस्रः समिधः- अच्छी प्रकार देदीप्यमान अग्नि, विद्युत् और सूर्य ।
'गायत्रस्य समिधस्तिस्र आहुः'
ऋ. १.१६४.२५, अ. ९.१०.३.
(२) बाल्य, तारुण्य और वार्द्धक्य रूप पुरुष यज्ञ की तीन समिधाएं हैं (३) तीन मुख्य ऋतु-शीत, वर्षा, ग्रीष्म, (४) प्रज्ञा, उत्साह और सेना ।

'अशीतिर्होमाः समिधोह तिस्रः'
वाज.सं. २३.५८
(४) अग्नि की तीन ज्वालाएं (६) जाठराग्नि, सूर्य और गार्हपत्य अग्नि ।
'तिस्रो यह्वस्य समिधः परिज्मनः'
ऋ. ३.२.९, आप.श्रौ.सू. १२.७.१०.

तिस्रःसरस्वतीः - तीनों वेदवाणियां ।
'तिस्रः सरस्वतीरदुः
सचित्ता विषदूषणम्'
अ. ६.१००.१

तिस्रः हरितः- (१) तीनों नाड़ियां इडा, पिंगला, और सुषुम्ना, (२) तीन वेदवाणियां ।
'यस्यमा हरितो रथे तिस्रो वहन्ति साधुया'
ऋ. १०.३३.५

तिसृभ्यः वरम् - (१) तीनों प्रकार की भूमियों -जल, पर्वत और पृथ्वी से श्रेष्ठ (२) कर्म, ज्ञान और उपासना तीनों से श्रेष्ठ आत्म तत्व, (३) वेदत्रयी से श्रेष्ठ आत्मज्ञान ।
'कुवित् तिसृभ्य आवरम्'
ऋ. २.५.५

त्रिः - तिगना
'द्वियत् त्रिर्मरुतो वावृधन्त'
ऋय ६.६६.२, मै.सं. ४.१४.११,२३३.५.

त्रि - तीर्णतमा, अतिशयेन वृद्धिंगता (जो संख्या दो के बाद अत्यन्त बढ़ी रहती है) । अर्थ- तीन नामक संख्या । इमौ द्वौ अयम् एकः इति इमे त्रयः) वृद्धि के भाव का द्योतक 'तृ'धातु का 'त्रि' शब्द बन गया है । तृ + डि = त्रि ।लैटिन भाषा में tri और अंग्रेजी में three 'त्रि' का ही बिगड़ा रूप है ।

त्रिककुद- तीन कुदान वाला ।
'त्रिशीर्षाणं त्रिककुदम्'
अ. ५.२३.९

त्रिककुप् - (१) त्रिविधसुखों का सम्पादन, (२) उदान ।
'त्रिककुप् छन्दः'
वाज.सं. १५४, मै.सं. २.८.७,१११.१४, का.सं. १७.६, श.ब्रा. ८.५ .२.४.
(३) सेना, अध्यापक और उपदेशक युक्त जिसकी दिशाएं हैं-दयां. (४) तीनों लोक.(५) माता, पिता और आचार्य (६) शत्रु, मित्र और उदासीन (७) प्रज्ञा, उत्साह और प्रभुत्व ।
'यद्ध प्रसर्गे त्रिककुम्नि वर्तत्
अप द्रुहो मानुषस्य दुरावेः'
ऋ. १.१२१.४
जिस प्रकार तीनों लोकों में श्रेष्ठ, सर्वोच्च सूर्य अपने उत्तम प्रकाश को प्रकट कर अन्धकार को दूर करता है, जिस प्रकार माता, पिता और आचार्य इन तीनों में सर्वश्रेष्ठ अर्थात् वेदत्रयी का विद्वान् अपने उत्कृष्ट सर्ग-विद्योपदेश काल में संशय युक्त अज्ञान को दूर करता है उसी प्रकार शत्रु, मित्र और उदासीन में सर्वश्रेष्ठ होकर अथवा प्रज्ञा, उत्साह और प्रभुत्व तीनों में श्रेष्ठ होकर दाहकारी दुष्ट पुरुषों को दूर करती हैं वह समृद्धि के नाना द्वारों को गृह के द्वार के समान खोल देता है ।

त्रिकद्रुक- त्रि + कदि + कुन् + क = त्रिकद्रुक । कद्रुः विविधकलाः । अर्थ (१) वह पदार्थ जिसकी उत्पत्ति, स्थिति और विनाश से तीन कलाएं व्यवहार में बतलाने वाले हैं, (३) तीनों लोक ।
'त्रिकद्रुकेश्वपि बत् सुतस्य'
ऋ. १.३२.३,२.१५.१, अ. २.५.७, तै.ब्रा. २.५.४.२.
भूमि को सेचन करने में समर्थ, मेघ के समान आचरण करने वाला सूर्य तीनों लोकों में अथवा तेज किरण वायु द्वारा उत्पन्न जगत् के जलीय अंश को प्राप्त करता और पान कर लेता है ।
पुनः -
'त्रिकद्रुकेषुचेतन
देवासो यज्ञमलत ।
ऋ. ८.१३.१८, ९२.२१, अ. २०.११०.३, साम. २.७४.
(३) ज्योति, गौ और आप, (४) मन, इन्द्रियगण और जीवन (५) तीन प्रकार का कष्ट, (६) शरीर आत्मा और मन, (७) तेजस्विता वेदवाणी और दीर्घ आयु ।
'त्रिकद्रुकेषु पाहि सोममिन्द्र'
ऋ. २.११.१७
(८) सूर्य, पृथिवी और प्राणी तीनों रूपों में स्थित
'त्रिकन्दुकेपु महिषो यवाशिरम् तुविशुष्मः'
ऋ. २.२२.१, अ. २०.९५.१, साम. १.४५७

२.८३६, कौ.ब्रा. २७.२, शाँ.श्रौ.सू. १५.२.१, तै.ब्रा. २.५.८.९.

त्रिकश- (१) तेज, मध्यम और मन्द तीन प्रकारों की गति से चलने वाला रथ (२) तीनों गतियों पर शासन या वश करने के यन्त्र से युक्त -रथ, (३) तीनों वेद वाणियों को धारण करने वाला, (४) मन, वाणी और काय तीनों पर शासन करने वाला, (५) तीनों लोकों का शासक परमेश्वर, (६)वैखरी या वेदत्रयी तीनों वाणियों को धारण करने वाला ।

'चतुर्युगस्त्रिकशः सप्तरश्मिः '

ऋ. २.१८.१

त्रिचक्र - (१) तीन कलायुक्त चक्रों से युक्त रथ, (२) आत्मा, मन और इन्द्रिय का आत्मा, मन और प्राण इन तीन कारक पदार्थों से यह शरीर त्रिचक्र है (३) मन, वाणी और काय तीन कारकों से युक्त त्रिचक्र शरीर ।

'त्रिवन्धुरो वृषणा यस्त्रिचक्रः '

ऋ. १.१८३.१

(४) स्त्री पुरुष के मनोमय रथ के तीन चक्के - दो श्रोत और तीसरी बुद्धि हैं ।

'यदश्विना पृच्छमानावयातम्
त्रिचक्रेण वहतुं सूर्यायः '

ऋ. १०.८५.१४, अ. १४.१.१४

त्रिचक्रः मधुवाहनः रथः- (१) अ, उ और म रूप तीन चक्रों से युक्त आत्मा, मन और इन्द्रिय या वात, पित्त और कफ से युक्त शरीर रूप रथ ।

'अर्वाङ्त्रिचक्रो मधुवाहनोरथः '

ऋ. १.१५७.३, साम. २.१११०.

त्रिणव - (१) आग्रयण ग्रह से उत्पन्न त्रिनव स्तोम, (२) सत्ताइस का संघ

'आग्रयणात् त्रिणवत्रयस्त्रिंशौ '

वाज.सं. १३.५८. तै.सं. ४.३.२.३, मै.सं. २.७.१९, १०४.१३, का.सं. १६.१९.

त्रित - (१) तीन वेदों में पारंगत होना (२) पारकिया हुआ (१) मित्र शत्रु और उदासीन इन तानों से अधिक शक्तिमान् ।

'त्रितायत्वा द्विताय त्वा '

वाज.सं. १.२३, श.ब्रा., १.२.३.५.

(२) तीर्णतम, महान् (३) तीन अंक, (४) तीनों लोकों में अप्रतिहत -इन्द्र या परमेश्वर ।

'यस्य त्रितो व्योजसा
वृत्रं विपर्वमर्दयत् '

ऋ. १.१८७.१, वाज.सं. ३४.७, का.सं. ४०.८, नि. ९.२५.

जिसके प्रभाव से (यस्य ओजसा) तीनों लोकों में अप्रजिहत इन्द्र ने (त्रितः) वृत्र नामक असुर या मेघ को (वत्रम्) गांठ गांठ तोड़कर (वियर्वम्) विदीर्ण किया (व्यर्दयत्) (५) त्रित नामक ऋषि (६) मेधा से तीर्णतम या मेधावी दया. (७) त्रीन् तनोति इति त्रितः एकं तनोति इति एकतः (जो अकेले ज्ञान का सम्पादन करना है) ।

'द्वौ तनोति इति द्वितः '

(जो ज्ञान, भक्ति तथा कर्म तीनों का सम्पादन करता है वह त्रित है) ।

'त्रितः कूपेऽवहितो देवान् हवत ऊतये तच्छुश्राव
बृहस्पतिः कृण्वन्नंहूरणादुरु
वित्तं मे अस्य रोदसी '

ऋ. १.१०५.१७.

कुएं में पतित त्रित नामक ऋषि अपनी रक्षा के लिये देवों को पुराकते थे, त्रित के इस आह्वान् को बृहस्पति ने सुना । बृहस्पति ने जब उद्धार नहीं किया तब ऋषि ने कहा हे द्यौ और पृथिवी । मेरे इस दुःख को तुम समझो और पाप कूप से (अंहूरणात्) सदा के लिये त्राण करते हुए उद्धार करो ।

'त्रितस्तद् वेद आप्त्यः '

ऋ. १.१०५.९

त्रितेदेवाः- (१) छोटे भाई, पिता और माता, -दया (२) एकत, द्वित और त्रित नामक देवता -सा. प्राचीन काल में देवताओं ने पुरोडाश और हवि को भली प्रकार धारण किया, फिर उसके दोष से उत्पन्न पाप का मार्जन करने के लिये अग्नि और जल के सम्पर्क से एकत, द्वित और त्रित नामक आप्यों को उत्पन्न किया और उनमें उन पापों को थाती के समान रख दिया । इन्होंने इसे सूर्याभ्युदित ने सूर्याभिनियुक्त में स्थापित किया, सूर्याभिनियुक्त ने कुनखी में स्थापित किया । कुनखी ने श्यावदत (दूषित दांतवाला) स्थापित किया । श्यावदत ने अग्रदिधिषु में स्थापित किया, अग्रदिधिषु ने परिवित्त में ,

परिवित्त ने वीरहा में, वीरहा ने ब्रह्महा में। वह पाप ब्रह्महत्यारे से दूर नहीं हो सकता
'त्रितेदेवा अमृजतैतदेनः'
तै.ब्रा. ३.७.१२.५.

त्रिदिव - (१) तीन ज्योतियों से पूर्ण।
'अजस्त्रिना के त्रिदिवे त्रिपृष्ठे'
अ. ९.५.१०
(२) तीनों प्रकार के प्रकाशों से युक्त।
'त्रिनाके त्रिदिवेदिवः'
ऋ. ९.११३.९

त्रिधातवः - (१) तीनों लोकों का धारण पोषण करने वाले किरण, (२) गर्भ, जीवन और मरणोत्तर तीनों कालों में जीव को पालने वाली इन्द्रियां।
'त्रिधातवः परमाअस्य गावः'
ऋ. ५.४७.४
(३) तीन धातु, (४) तीन धारण-सामर्थ्यों से युक्त- गृह (५) कफ, पित्त और वायु का बना शरीर
'इन्द्र त्रिधातु शरणं'
ऋ. ६.४६.९, अ.२०.८३.१, साम. १.२६६, का.सं. ९.१९, ऐ.ब्रा. ५.१.२१, २०.२१, आश्व.श्रौ.सू. ७.३.१९, शा.श्रौ.सू. ६.१३.३, वै.सू. २७.२२, ३३.११ साम.वि.ब्रा. २.२.२.
(६) सत्त्व, रजस् और तमस् का बना महान् ब्रह्माण्ड रूप देह।
'यस्य त्रिधात्ववृतम्'
ऋ. ८.१०२.१४, वाज.सं. ३४.७ का.सं. ४०.८, नि. ९.२५.
शरीर के अर्थ में-
'परि त्रिधातुरध्वरम्'
ऋ. ८.७२.९
(७) तीनों गुणों को धारण करने वाली, परम सूक्ष्म तत्व प्रकृति।
'तव त्रिधातु पृथिवी उतद्यौः'
ऋं. ७.५.४
(८) सुवर्म, रजत और लोहे का बना।
'त्रिधातु राय आ सुवा वसूनि'
ऋ. ३.५६.६
(९) तीनों लोकों को धारण करने वाला सूर्य, (१०) अन्न, रुधिर और मांस धारण करने वाला-अर्क या अन्न, (११) मंत्र, वाणी, मन और काय तीनों के कर्मों को धारण करने वाला, (१२) उत्तम, मध्यम और अधम तीनों प्रकारों के जनों का धारक।
'अर्क स्त्रिधातू रजसो विमानः'
ऋ. ३.२६.७, वाज.सं. १८.६६, मै.सं. ४.१२.५, १९२.१०, नि. १४.२.

त्रिधातु शरणः- सुवर्ण आदि तीन धातुओं से निर्मित भवन, (२) कफ, पित्त और वायु से बना शरीर।
'स त्रिधातु शरणं शर्म यंसत्'
ऋ. ७.१०१.२

त्रिधातु शर्म - (१) तीन धातु वात, पित्त और कफ का बना सुख-साधन देह, (२) तीन धातुओं का बना रोग-निवारक आभूषण।
'त्रिधात् शर्म वहतं शुभस्पती'
ऋ. १.३४.६
हे शुभ गुणों और आभरणों के पालक तथा धारक स्त्री पुरुष (शुभस्पती) वात, पित्त और कफ के बने सुख-साधक शरीर को या तीन धातुओं के बने रोग नाशक आभूषण धारण करो।

त्रिधातुश्रृंग- (१) तीन धातुओं के बड़े सींगों से सुशोभित, (२) तीन धातुओं के बाणों की किरणों से सुशोभित, (३) ताम्र, लोह, सुवर्ण आदि का बना हिंसाकारक शस्त्रास्त्रों से युक्त, (४) सूर्य।
'त्रिधातुश्रृंगो वृषभो वयोधाः'
ऋ. ५.४३.१३

त्रिधावद्धः वृषभः- (१) मंत्र, ब्राह्मण और कल्प रूपी तीन बन्धनों से बंधा हुआ यज्ञ ही वृषभ है जो फलों का वर्ष पिता है। (२) कुमारिल के अनुसार प्रातः, मध्याह्न और सायं सवनों में सोमरसका खींचा जाना ही यज्ञ के तीन बन्धन हैं। यह यज्ञ वृष्टि का मूल प्रवर्त्तक है, (३) ग्रीष्म, वर्षा और शीत तीन कालों में वद्ध सूर्य नामक वर्षपिता वृषभ, (४) शब्द ब्रह्म के तीन स्थानहृदय, कण्ठ और मूर्धा तीन स्थानों में बद्ध हो वर्षण करने वाला है।

त्रिधाविकस्त- मन, वाणी और काम तीनों प्रकार से विशेष विकास को प्राप्त।
'त्रिधा ह श्यावमश्विना विकस्तम्'

ऋ. १.११७.२४

त्रिनव- सत्ताईस विभागों से युक्त।
'बृहस्पतये पांक्ताय त्रिणवाय शाक्वराय चरुः'
वाज.सं. २९.६०, तै.सं. ७.५.१४.१, मै.सं. ३.१५.१०, १८०.११, का. सं. (अश्व.) ५.१०.

त्रिनाक- (१) आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक तीनों दुःखों से रहित।
'अजस्त्रिनाके त्रिदिवे त्रिपृष्ठे'
(२) तीनों प्रकार से सुखों से युक्त लोक।
'त्रिनाके त्रिदिवेदिवः'
ऋ. ९.११३.९

त्रिनाभि- संवत्सर का विशेषण। एक वर्ष में चार चार मासों के तीन ऋतु-ग्रीष्म-फाल्गुन से ज्येष्ठ तक, वर्षा-आषाढ़ से आश्विन् तक, और शरत्- कार्तिक से माघ तक -संवत्सर की नाभि है। इसी को वेद में 'त्रिनाभिचक्रम्' कहा गया है।

त्रिनाभिचक्रम् - (१) तीन नाभियों से युक्त संवत्सर काल। ग्रीष्म, वर्षा और हेमन्त ही काल की तीन नाभियां हैं। अतः काल का यह नाम पड़ा।
'त्रिनाभिचक्रमजरमनर्वम्'
ऋ. १.१६४.२, अ. ९.९.२, १३.३.१८, तै.आ. ३.११.९, नि. ४.२७.
एकचक्रवाला सूर्यरूपी रथ सात किरणें रूपी अश्वों से जुतकर अजर एवं किसी के आश्रित न रहने वाले तीन नाभि वाले काल चक्र का निर्माण करता है।

त्रिणामा- तीनों शक्तियों से प्रजाओं को वश करने वाला -राजा तीन शक्तियां प्रजा उत्साह और शौर्य हैं। या अमात्य, कोश और दण्ड हैं।
'एवा त्रिणामन्नहृणीयमानः'
अ. ६.७४.३, तै.सं. २.१.११.३.

त्रिपञ्चाशः व्रातः- तिरपन का संघ।
'त्रिपञ्चाशः क्रीड़ति व्रात एषाम्'
ऋ. १०.३४.८

त्रिपञ्चाशीः- (१) तिरपन- (२) एक सौ पचास-Whitney
'या गृत्स्यस्त्रिपञ्चाशीः'
अ. १९.३४.२

त्रिपञ्चाशीःगृत्स्यः- तिरपन या एक सौ पचास प्रकार की या सैकड़ो लोभकारिणी या विषय विलास में फंसी स्त्रियां या जन श्रेणियां-जुआ खोरी का पेशा करने वाली।
'या गृत्स्यस्त्रिपञ्चाशीः'
अ. १९.३४.२

त्रिपस्त्य- त्रि + पस्त्य। (१) भूमि, अन्तरिक्ष और द्यौ या उदर, हृदय और सूर्य में विद्यमान अग्नितत्व, (२) तीन मञ्जिले गृह में रहने वाला, (३) उत्तम, मध्यम और निकृष्ट तीनों प्रकार की प्रजाओं को गृहवत् बसाने वाला।
'तमागन्म त्रिपस्त्यम्'
ऋ. ८.३९.८

त्रिप्रतिष्ठित- तीन चरणों या आश्रमों पर स्थित होने वाला - हिरण्यय कोश अर्थात् जीवात्मा।
'तस्मिन् हिरण्यये कोशे त्र्यरे त्रिप्रतिष्ठिते'
अ. १०.२.३२

त्रिपाजस्यः- (१) शरीर, आत्मा और सम्बन्धियों के बलों में निपुण-दया. (२) तेज, विद्युत, और अग्नि अथवा अप तेज और वायु और तीन बलों का धारकपरमेश्वर।
'त्रिपाजस्यो वृषभोविश्वरूपः'
ऋ. ३.५६.३

त्रिपाद्- (१) तीन चरणों वाला पुरुष जिसका एकचरण व्यक्त जगत् है।
'त्रिपादूर्ध्व उदैत् पुरुषः'
ऋ. १०.९०.४, आ.सं. ४.४, वाज.सं. ३१.४, तै.आ. ३.१२.२.
(२) तीन चरणों वाला आदित्य।
'आदित्यस्त्रिपाद्तस्येमे लोकाः पादाः'
'द्विपात् त्रिपादमभ्येतिपश्चात्'
ऋ. १०.११७.८, अ. १३.२.२७, ३.२५.

त्रिपात् पुरुषः- तीन अंशों वाला पुरुष जो संसार से पृथक् शुद्ध बुद्ध मुक्त होकर रहता है।
'त्रिपादूर्ध्व उदैत्पुरुषः'
ऋ. १०.९०.४, वाज.सं. ३१.४, आ.सं. ४.४.,तै.आ. ३.१२.२.

त्रिपाद् ब्रह्म- (१) तीन चरणों वाला, तीन रूपों वाला ब्रह्म, (२) ब्रह्मा, विष्णु, महेश रूप ब्रह्म।
'त्रिपाद् ब्रह्म पुरुरूपं वितष्ठे'
अ. ९.१०.१९

त्रिपृष्ठ- (१) तीनों प्रकार के रस आनन्द से सम्पन्न।
'आजस्त्रिना के त्रिदिवेत्रिपृष्ठे'
अ. ९.५.१०
(२) तीनों लोकों को पोषण करने वाला।
'वृषा त्रिपृष्ठो अनविष्ट गाअभि
ऋ. ९.७१.७
(३) तीन प्रकार के वस्त्र धारण करने वाला, (४) तीन वेदों या तीनों ज्ञान, कर्म या वाणी को वस्त्रवत् धारण करता हुआ।
'अधि त्रिपृष्ठ उषसो विराजति'
ऋ. ९.७५.३, साम. २.५२.

त्रिपृष्ठःसोमः- (१) सोम जिसके तीन रूप हों-(दया.) (२) तीन रूपों वाला ऐश्वर्य या ज्ञान।
'अभित्रिपृष्ठैः सवनेषु सोमैः'
ऋ. ७ ३७.१

त्रिबन्धुः- (१) तीनों आश्रमों का बन्धु -परिप्राजक।
'उपत्रिबन्धुर्जरदष्टिमेति'
ऋ. ७.३७.७

त्रिबर्हिः- त्रिलोक के समान तीन मुख्य प्रधान वेदवेत्ताओं की बनायी धर्म-सभा।
'त्रिबर्हिषि सदसि पिन्वते नृन्'
ऋ. १.१८१.८.

त्रिभुज् योनि - तीन प्रकार से भोग करने योग्य -सत्य, रज और तमः रूप मिश्रण, अभिश्रण या संयोग विभाग।
'योनिं कृत्वा त्रिभुजं शयानः'
अ. ८.९.२

त्रिमन्तुः- (१) कर्म, उपासना और विज्ञान की विद्या को मानने वाला (२)त्रैविद्य-तीनों वेदों का ज्ञाता, (३) अरि, मित्र और उदासीन तीनों को वश में करने वाला, (४) माता, पिता, और गुरु का मान करने वाला।
"याभिस्त्रिमन्तुरभवद् विचक्षणः'
ऋ. १.११२.४

त्रिमाता - जन्म, स्थान और नाम तीनों का रचने वाला।
'उत त्रिमाता विदथेषु सम्राट्'
ऋ. ३.५६.५

त्रिमूर्धा- (१) जिसका निकृष्ट मध्यम और उत्तम पदार्थों में मूर्धा हो-अग्नि, (२) माता, पिता और निज का मिलाकर तीन मूर्धावाला पुत्र, (३) माता-पिता और गुरु तीनों की शिक्षा प्राप्त करने वाला, (४) माता, पिता और गुरु इन तीनों को अति आदर से सिर पर रखने वाला, (५) तीनों लोकों के ऊपर सिर के समान विराजमान सूर्य (६) माता पिता और गुरुओं सिर से आदर करने वाला (७) माता, पिता और गुरु तीनों के ऊपर परमेश्वर।
'त्रिमूर्धानं सप्तरश्मि गृणीषे'
ऋ. १.१४६.१

त्रियुगः- सत्ययुग, द्वापर और त्रेता।
'या ओषधीः पूर्वा जाता देवेभ्य स्त्रियुगं पुरा'
ऋ. १०.९७.१, वाज.सं. १२.७५, का.सं. १३.१६, श.ब्रा. ७.२.४. २६, नि. ९.२८.
जो ओषधियां तीनों युगों से पहले देवताओं से उत्पन्न हुई।

त्रिरश्रिः - (१) वाणी, मन और शरीर से भोग करने योग्य (२) तीनों गुणों को प्राप्त (३) वाक्, शरीर और मन से पुष्ट।
'त्रिरश्रिं हन्ति चतुरश्रिरुग्रः'
ऋ. १.१५२.२

त्रिवत्सः - (१) कर्म, उपासना और ज्ञान में या वेदत्रयी में निवास करने वाला, (२) तृतीयाश्रमी पुरुष।
'त्रिवत्सो वयः'
वाज.सं. १४.१०, तै.सं. ४.३.३.२,५.१, मै.सं. २.७.२०, १०५.९, २.८.२, १०८.१, का.सं. १७.२, ३९.७, श.ब्रा. ८.२.४.१४.
(३) तीन वर्ष का बैल।
'त्रिवत्सश्च से त्रिवत्साच मे'
वाज.सं. १८.२६

त्रिवत्सःगौः- तीन वर्षों का हृष्ट पुष्ट बैल।
'त्रिवत्सो गौर्वयोदधुः'
वाज.सं. २१.१५, मै.सं. ३.११.११,१५८.५, का. सं. ३८.१०, तै. ब्रा. २.६.१८.२.

त्रिवत्सा - तीन वर्ष की गाय।
'त्रिवत्सश्च मे त्रिवत्सा च मे'
वाज.सं. १८.२६, तै.सं. ४.७.१०.१, का.सं. १८.१२.

त्रिवन्धुरः- (१) तीन बन्धनों से युक्त (२) तीनों प्रकार के शिल्पों से बना (३) आकाश, पृथ्वी और

जल तीन स्थानों पर चलने वाला रथ ।
'त्रिवन्धुरेणत्रिवृतासुपेशसा रथेना यातमश्विना '
ऋ. १.४७.२
(४) प्राण, उदान और व्यान में या सिर, छाती और नाभि में बंधा होने से आत्मा त्रिवन्धुर है, (५) मस्तक, मेरुदण्ड, और मांस पेशियां इनके तीन बन्धनों के कारण शरीर त्रिवन्धुर है, (६) आत्मा युक्तदेह जो सत्य, रजस् और तमस् से बंधा हुआ है, (७) तीन बन्धनों वाला रथ ।
'त्रिवन्धुरो वृषण यस्त्रिचक्रः '
ऋ. १.१८३.१

त्रिवर्तुज्योतिः- (१) तीन ऋतुओं में सुखप्रद प्रकाश, (२) विविध ज्ञान देने वाला वेदमय प्रकाश, (३) तीनों कालों में वर्तने वाला स्वामी ।
'त्रिवर्तु ज्योतिः स्वभिष्ट्यस्मे '
ऋ. ७.१०१.२

त्रिवयाः- (१) मानस, कायिक और वाचिक तीनों प्रकार के बल, (२) बल, यौवन और वार्द्धक्य-तीनों अवस्था, (३) ऋक्, यजु और साम तीनवेद, (४) मन्त्र, कर्म और उपासना नामक तीन ज्ञान, (५) औषधि अन्न और पशु से प्राप्त औषध, भोजन और दुग्धादि में सम्पन्न ।
'स्थातुश्च वयस्त्रिवया उपस्तिरे '
ऋ. २.३१.५

त्रिवरूथ - (१) तीन महलों का घर, (२) तीनों प्रकार के कष्टों का वारण करने वाला, (३) शीत, आतप, वर्षा; मानस, वाचिक और कायिक कष्टों का वारक, (४) आध्यात्मिक, आधि भौतिक और आधिदैविक दुःखों वा वारक शरीर ।
'त्रिवरूथं स्वस्त्विमत् '
ऋ. ६.४६.९, अ. २०.८३.१, साम. १.२६६, का.सं. ९.१९.

त्रिवरूथं शर्म - (१) तीनों तापों गर्मी, सर्दी और वर्षा तीनों के निवारक गृह, (२) शत्रु-नाशक तीनों प्रकार का सैन्य ।
'शर्मणा नः त्रिंवरूथेन पाहि '
ऋ. ५.४.८

त्रिविष्टिः- (१) आकाश, (२) उत्तम, मध्यम और प्रधान तीन प्रकार की प्रजाएं ।
'त्रिविष्ट्येति प्रदिव उदाणः '
ऋ. ४.६.४.

त्रिविष्टिधातु- (१) त्रिगुणमय व्यापन का आश्रय परमेश्वर, (२) बल, पराक्रम और तेज का कारण, (३) पृथ्वी, जल, तेल, वायु, आकाश ब्रह्माण्ड के धारण करने वाले तत्त्वों के उत्तम मध्यम निकृष्ट, स्वल्पं, अधिक और सममात्रा में विचित्र या त्रिगुणमय व्यापन का आश्रय-परमेश्वर (४) तीन गुणा शक्तिशाली राजा ।
'त्रिविष्टिधातु प्रतिमानमोजसः'
ऋ. १.१०२.८

त्रिवृत् - सत्व, रजस् तमस् गुणों से युक्त, (२) त्रिवृत् पद ।
'त्रिवृदसिं त्रिवृते त्वा '
वाज.सं. १५.९, का.सं. १७.७,३७.१७, पंच.ब्रा. १.१०.९ वै.सू.२६.८,ला .शौ.सू.५.११.३.
(३) शीत, उष्ण और सम स्वभाव वाला राजा ।
'आशुस्त्रिवृत् '
वाज.सं. १४.२३, तै.सं. ४.३.८.१, ५.३.३.१, मै.सं. २.८.४,१०९ .३, का.सं. १७.४, २०.१२, १३, श.ब्रा. ८.४.१.९, का.श्रौ.सू. १७.१०.६, आप.श्रौ.सू. १७.२.९,
(४) उपांशु प्राण से उत्पन्न त्रिवृत् नामक प्राण ।
'उपांशोस्त्रिवृत '
वाज.सं. १३.५४, तै.सं. ४.३.२.१, मै.सं. २.७.१९, १०४.१, १६. १९, श.ब्रा. ८.१.१.५

त्रिवृत- (१) त्रिगुण प्रकृति तत्व, (२) तीन प्रकार से वर्तमान वेद ।
'घर्मा समन्ता त्रिवृतं व्यायतुः '
ऋ. १०.११४.१

त्रिवृततन्तु- तिहरा, तीन सूत्रों का यज्ञोपवीत ।
'तन्तुं तन्वानस्त्रिवृतं यथाविदे '
ऋ. ९.८६.३२

त्रिवृतहस - (१) शरीर में गमनागमन के करने वाला, त्रिगुण प्रकृति के बंधन में बंधा हुआ अहंकार वान् जीव ।
'अग्नि द्वितीयं त्रिवृतं च हंसम् '.
अ. १०.८.१७, तै.आ. २.१५.१.

त्रिवृत्तः स्तोमः- (१) स्तोम तीन प्रकार के हैं- ल्तोक, प्राण और वीर्य, (२) पञ्चदश, सप्तदश और एकविंश ये तीन प्रकार के स्तोम हैं । (३) प्राण,

अपान और उदान तीन प्रकार के प्राण हैं। शरीर में वीर्य १५ हैं, त्रिंशत् आत्मा और प्राण १५ यों हैः- पीठ के मोहरे १४ और पन्द्रहवां प्राण। (४) समाज में प्रजा के १२ प्रतिनिधि मुख्य सहायक, दो मंत्री और क्षत्र (राजा)।

सप्तदश-१६ कला, सत्रहवां प्रजापति या प्रजनन शक्ति। १२ मास, ५ ऋतु का आश्रय प्रजापति सप्तदश है। शरीर में दश प्राण, चार अंग और प्रन्द्रहवां आत्मा, सोलहवां गर्दन और सत्रहवां सिर। शूद्रवर्ण एकविंश है।

त्रिवृता आपः- (१) मूल प्रकृति के सूक्ष्म परमाणु के तीन रूप, शरीर में मूत्र, लोहित और सूक्ष्म प्राण।

'त्रिवृतं स्तोमं त्रिवृत आपआहुः'

अ. १९.२७.३

त्रिवृदन्त- विवृत् + अन्न, तीनों रूपों से वर्तमान् खाने योग्य अन्न अग्नि रूप से पक्वान्न को विद्युत् रूप से जल को और सूर्य से फलादि को अग्नि प्रदान करता है।

'अभि द्विजन्मा त्रिवृदन्नमृज्यते
संवत्सरे वावृधे जग्धमी पुनः'

ऋ. १.१४०.२

त्रिवृत् रथः- (१) त्रिकोण, भूमि, आकाश और जल में चलने योग्य साधनों से सम्पन्न रथ, (२) अग्नि, वायु और तेज तत्वों से त्रिवृत्तीकरण द्वारा बना देह रूप रथ।

'क्व त्रीचक्रा त्रिवृतो रथस्य'

ऋ. १.३४.९

त्रिवृत् रथ के तीन चक्र कहां लगे हैं? अग्नि, वायु और तेज के बने शरीर के तीन चक्र कहां है?

त्रिशता यष्टिः - तीन सौ साठ। काल चक्र के ३६० दिन रूपी आर (Spokes)।

'तस्मिन् साकं त्रिशता न शंकवो
अर्पिताः षष्टिर्न चलाचलामः'

ऋऋ.सं. १.१६४.४८, नि. ४.२७.

उस काल चक्र में साथ ही साथ (साकम्) शंकु के समान (शंकवः न) तीन सौ साठ दिन रूपी आर है जो चल और अचल दोनों हैं। दिन रात अस्थायी अर्थात् चल हैं किन्तु दिन के बाद रात, रात के बाद दिन का आना अचल नियम हैं।

त्रिश्चित् - (१) तीन बार, तीनों प्रकार से, (२) मन, वचन और काय तीनों प्रकार से।

'त्रिश्चिन्तो अद्या भवतं नवेदसा'

ऋ. १.३४.१

त्रिशीर्षा- (१) तीन कालरूपी सिरों वाला संवत्सर, (२) तीन धातु-कफ, पित्त, वायु, रूप सिरों वाला देह।

'षडक्षं त्रिशीर्षाणं दमन्यत्'

ऋ. १०.९९.६

(३) तीन सिरों वाला (४) तीन गुणों से युक्त शरीर।

'त्रिशीर्षाणं सप्तरश्मिं जघन्वान्'

ऋ. १०.८.८

(५) तीन सिरों वाला कीट।

'त्रिशीर्षाणं त्रिककुदम्'

अ. ५.२३.९

त्रिशोक - (१) तीनों भुवनों मे तेजस्वी, (२) गुण, कर्म, स्वभाव तीनों में उज्ज्वल पुरुष, (३) अग्नि, विद्युत्, और सूर्य तीनों तेजों को जानने वाला वैज्ञानिक।

'याभिस्त्रिशोक उस्त्रिया उदाजत'

ऋ. १.१२.१२

जिन उपायों से तीनों भुवनों में तेजस्वी, गुण कर्म और स्वभाव में उज्ज्वल पुरुष, अग्नि, विद्युत् और सूर्य रूपी तेजों का ज्ञाताविद्वान् ऊपर जाने वाली जलधाराओं, किरणों और विद्युत् धाराओं को हटाने में समर्थ होते हैं। (४) तीन ज्योतियों से युक्त (५) तीनों लोकों में व्याप्त प्रकाश वाला -सूर्य, (६) मन्त्र, बल और धन तीनों से चमकने वाला।

'अनुत्रिशोकः शतमावहन् नृन्'

ऋ. १०.२९.२, अ.२०.७६.२.

(७) वाणी, मन और प्राण इन त्रिविधि तेजों से युक्त आत्मा।

'त्रिशोकाय गिरिं पृथुम्'

ऋ. ८.४५.३०.

(८) तीन शोकों अर्थात् कान्तियों से युक्त (९) ज्ञान, वचन और कर्मवान् (१०) कायिक, मानस और वाचिक पापों को ज्ञानाग्नि से भस्म

करने वाला (११) शुद्ध, पवित्र योगी (१२) तापत्रय का नाशकारी विदेह युक्त आत्मा ।
'यौ मेधातिथिमवथो यौ त्रिशोकम्'
अ. ४.२९.६
(१३) एक वैदिक ऋषि (१४) तीनों प्रकार का तेज (१५) जाग्रत स्वप्न, सुषुप्त, तीनों स्थानों में प्रकट होंने वाला जीव ।

त्रिंशत् - तीस ।
'आ विंशत्या त्रिंशतायाहि अर्वाङ्'
ऋ. २.१८.५

त्रिशत् अराः- तीस दिन रूप अरों वाला मास ।
'यास्मान्मासा निर्मितास्त्रिंशदराः'
अ. ४.३५.४

त्रिंशतं योजनानि - ३० योजन अर्थात् १२० कोश, उषाओं से सूर्य की दूरी ।
'अनवद्याः त्रिंशतं योजनानि
एकैका क्रतुं परियन्ति सद्यः'
ऋ. १.१२३.८
उषाएं सूर्योदय के स्थान से तीस तीस योजन दूर तक दीखती है और अकेले अकेले भी प्रत्येक यज्ञ या अपने कर्त्ता सूर्य के आश्रय में रहती हैं । उसी प्रकार स्त्रियां भी कम से कम तीस तीस योजन अपने क्रतु अर्थात् कर्त्ता पति को प्राप्त हो । अर्थात् वे दूरी पर ही विवाहित हों । उत्तरी ध्रुव के प्रदेशों में उषाओं का यह वर्णन है ।

त्रिंशति त्रयः - तीस ऊपर तीन अर्थात् तैंतीस ।
'ये त्रिंशतित्रयस्परो देवासो बर्हिरासदन्'
ऋ. ८.२८.१, ऐ.ब्रा. ५.२१.१४.

त्रिंशदङ्ग- तीस दिन रात मय अंगों वाला मास ।
'अहोरात्रैर्विमितं त्रिंशदङ्गम्'
अ. १३.३.८.

त्रिंशद्धाम- (१) तीस स्थान, दिन के तीस स्थान-तीस घड़ियां ।
'त्रिंशद्धाम विराजति'
ऋ. १०.१८९.३, अ. ६.३१.३, २०.४८.६, साम. २.७२८, आ.सं. ५.६. वाज.सं. ३.८, तै.सं. १.५.३.१, मै.सं. १.६.१,८५.११, का.सं. ७.१३, श.ब्रा. २.१.४.२९.
(२) सूर्य के प्रति दिन प्रकाशित होने के तीस स्थान । ज्योतिश्चक्र पर दिन रात्रि में तय होने वाले क्रान्ति वृत्त पर ६० अंश चिह्नित हैं जो दिन की तीस घड़ी या मास की तीस तिथियों का निर्देश करते हैं । (३) आत्मा भी प्रतिदिन देह के तीस धामों को चमकाता है (४) दिन और रात के ३० मुहूर्त ।

त्रिंशत् सरांसि- (१) सोम रस के तीस बर्तन -सा., (२) कृष्ण और शुक्ल पक्ष की तीस रातें, (३) पक्ष के तीस दिन रातों की रश्मियां ।
'एकया प्रतिधा पिबत् साकम्
सरांसि त्रिशतम्'
ऋ. ८.७७.४, नि. ५.११

त्रिंशतं सहस्राणितना - तीस सहस्र ऐश्वर्य ।
'आ ययोस्त्रिंशतं तना सहस्राणि च दद्महे'
ऋ. ९.५८.४, साम. २.४१०.

त्रिशुक् - अग्नि, विदयुत् और सूर्य तीनों के समान तेजस्वी ।
'घर्मस्त्रिशुक् विराजति'
वाज.सं. ३८.२७, श.ब्रा. १४.३.१.३१, शां.श्रौ.सू. ७.१६.८

त्रिषध- (१) त्रीणि भूजलपवनाख्यानि स्थित्यर्थानि स्थानानि (भूमि,जल और पवन की स्थिति के स्थान अर्थात् अन्तरिक्ष, (२) समान कोटि के स्थान, (३) जिसमें भू, जल और सवन की स्थिति हो ।
'त्रिषधस्थे बर्हिषि विश्ववेदसा
मध्वा यज्ञं मिमिक्षतम्'
ऋ. १.४७.४.
हे समस्त प्रकार के ऐश्वर्यों के स्वामियो, अश्विद्वय या स्त्री पुरुषो या राजा और सेनाध्यक्ष या ज्ञानी पुरुषों आप दोनों तीनों समान कोटि के स्थानों पर स्थित प्रजाजन पर अन्तरिक्षस्थ मेघ और विद्युत् के समान ऐश्वर्य का वर्षण करो ।

त्रिषधस्था - (१) नाभि, उर और कण्ठ तीनों में एक साथ विराजने वाली वाणी ।
'त्रिषधस्था सप्तधातुः पञ्चजाता वर्धयन्ती'
ऋ. ६.६१.१२

त्रिषन्धि- (१) तीन सन्धियों वाला त्रिषन्धि नामक बाण या महास्त्र धारी सेनापति, (२) इन्द्र का सेनापति ।

'अर्बुदिश्च त्रिषन्धिश्च '
अ. ११.९.२३

त्रिषप्ताः- (१) तीन और सात । पृथिवी, अन्तरिक्ष और द्यौ ये तीनों लोक और उनके तीन अधिष्ठाता, अग्नि, वायु और आदित्य, (२) प्रकृति के तीन गुण, सत्व, रजस् और तमस् । इन गुणों से होने वाले तीन कार्य-सृष्टि, स्थिति और प्रलय (३) सात ग्रह, सात मरुद्गण, सात लोक, सात छन्द, सात ऋषि (४) एकईश प्रसिद्ध सूर्य से अधिष्ठित, (५) प्राचीदिशा को छोड़कर शेष सात दिशाएं जिनसे आरात, भ्राज, पटर, पतङ्ग, स्वर्णर, ज्योतिष्मान और विभाग-ये सात सूर्य की शक्तियां हैं, (६) बारहमास, ५ ऋतु और तीन लोक और आदित्य, (७) शरीर के घटक पंच महाभूत, पंच प्राण, पंच ज्ञानेन्द्रिय, पंच कर्मेन्द्रिय और अन्तः करण ।
'ये त्रिषप्ताः परियन्ति विश्वा रूपाणि बिभ्रतः '
अ. १.१.१, मै.सं. ४.१२.१, १७९.१४.

त्रिष्टुप् छन्दः- (१) त्रिष्टुप् छन्द, (२) २४ वर्षों तक ब्रह्मचर्यपालक ।
'त्रिष्टुप् छन्द इहेन्द्रियम् '
वाज.सं. २१.१७, का.सं. ३८.१०

त्रिष्टुपच्छन्दाः- ४४ अक्षरों वाले त्रिष्टुप् छन्द के समान ब्रह्मचर्य व्रत या माध्यन्दिन सवन ।
'वृषासि त्रिष्टुपच्छन्दाः '
अ. ६.४८.३
'ऐन्द्रं त्रैष्टुभं माध्यन्दिनं सव वीर्यं वै त्रिष्टुप् ' ।
ऐ.आ.१.२१
'आत्मा त्रिष्टुप् '
ऐ.आ. ६.२.१.२४
'त्रिष्टुप् रुद्राणां पत्नी '
गो.ब्रा. ३.२.९
'रुद्राः त्रिष्टुभं समभरन् '
जै.ब्रा. ३.१.१८.५
'चतुश्चत्वारिं शदक्षरा त्रिष्टुप् '
कौ.सू. १६.७

त्रिषुद्रुपदेषु वद्धः - (१) तीन खूंटों में बंधा हुआ शुनः शेय, (२) प्रकृति के तीन गुणों में जकड़ा हुआ सुखार्थी मुमुक्षु ।
'शुनः शेयो हयह्वद् गृभीतः त्रिष्वादित्यं द्रुपदेषु बद्धः '
ऋ. १.२४.१३

त्रिषुयोनिषु - तीनों योनियों में । ये तीन योनियां कौन कौन हैं । पं. जयदेव शर्मा इनका अर्थ उत्तम, मध्यम और निकृष्ट स्थान बतलाते हैं ।
'सादया योनियु त्रिषु '
ऋ. १.१५.४
हे अग्नि या ज्ञानवान ! तू देवों विद्वानों को तीनों-उत्तम, मध्यम और निकृष्ट स्थानों पर स्थापित कर ।

त्रिष्टुभ् - त्रि + स्तुभ् + क्विप् = त्रिष्टुभ् । तीर्णतमम् स्तुततमम् छन्दः (गायत्री आदि छन्दों से स्तुतितम छन्दः) 'स्तोभति च' (जो छन्द श्रेष्ठ है तथा स्तुति करने के लिए प्रयुक्त होता है) । अर्थ - (१) एक वैदिक छन्द का नाम । यह छन्द गायत्री आदि से अधिक अक्षरों वाला होता है, अतः तीर्णतम या त्रि है । यह पंक्ति छन्द से भी चार अक्षर अधिक होता है अतः यह ४४ अक्षरों वाला है । बहुत बड़ा होता हुआ यह छन्द पदार्थों का स्तवन करता है अतः त्रिष्टुम् कहलाया
'यत् त्रिरस्तोभत '
(२) वज्र आयुध भी त्रिवृत होता है । वज्र में भी प्रायः तीन सन्धियां होती हैं- शर, वेणु और श्रृंग (शरोवेणुः श्रृगं शल्यमिति विज्ञायते । इस त्रिवृत वज्र की इस छन्द से स्तुति की जाती है । अतः इस का नाम त्रिष्टुभ् हुआ । त्रिवृत् वज्रस्य स्तोभति । वज्र के भी तीन पार्श्वतीखे होते हैं अतः उसे त्रिवृत् कहते हैं । (३) तीन बार स्तुति की अतः यह त्रिष्टुप् है
'यत् त्रिरस्तोभत् तत् त्रिष्टुभः त्रिष्टुप्त्वम् '

त्रिष्ठः- (१) शरीर, आत्मा और मन से सुख में रहने वाला, (२) दिन और रात्रि के बने प्रभात मध्यान्ह और सायं नाम तीन आधारों पर स्थित रथ, (३) मन्त्र, धन और सैन्य बल आश्रित ऐश्वर्य, (४) तीन चक्रों वाला रथ ।
'त्रिष्ठं वां सुरे दुहिता रुहद् रथम् '
ऋ. १.३४.५.

त्रिष्ठी- तीनों प्रकार के ऊंचे नीचे और सम तथा तीनों कालों में स्थिति करने में कुशल पुरुष ।
'उत्कूल निकूलेभ्यस्त्रिष्ठिनम् '

वाज.सं. ३०.१४

त्रिष्पूत्वी - (१) तीन प्रकार से शुद्ध कन्या अर्थात् जिसके जननेन्द्रिय, नाक़, मुख या जोड़े इन्द्रियों जैसे, कान, आंख , नाक आदि अवयवों में कोई कोई दोष न हो, (२) विवाह के बाद तीन प्रकार के रथों से रथ, अनस् और युग से लाई जाने वाली विवाहिता वधू ।
'अपालामिन्द्र त्रिष्पूत्वी'
ऋ.८.९१.७

त्रिःअन्तरिक्ष- महान् आकाश, मध्याकाश और हृदयाकाश ।
'त्रिरन्तरिक्षं सविता महित्वना'
ऋ. ४.५३.५, कौ.ब्रा. २२.२

त्रिःएकादशा देवाः- (१) ३३ देवता, (२) देह में स्थित ३३ देव देह ही ३३ देवों की अयोध्या पुरी है, (३) राष्ट्र के तैंतीस शासक ।
'आं नासत्या त्रिभिरेकादशैरिह'
ऋ. १.३४.११, वाज.सं. ३४.४७.
ऐ सत्यवादी स्त्रीपुरुषो, आप तैंतीस दिव्य गुणों से युक्त हो आओ ।

त्रिःदिवः - दिन के तीनों काल ।
'त्रिर्यत् दिवः परिमुहूर्तमागात्'
ऋ. ३.५३.८, जै.उप.ब्रा. १.४४.६,९.

त्रिःवर्तिः- (१) तीन प्रकार के मार्ग, (२) तीन आश्रम ।
'त्रिर्वर्तिर्यातमश्विना'
ऋ. ८.३५.७-९.

त्रिःषष्ठिः मरुतः - ६३ प्रकार के मरुत् या मनुष्य गण (२) देह में ६३ प्रकार के प्राण गण ।
'त्रिः षष्ठिस्त्वा मरुतो वावृधानाः'
ऋ. ८.९६.८

त्रिःपरमा सत्या- (१) तीन प्रकार के उत्तम कोटि के अग्नि के सर्वहितकारी बलवान् स्वरूप अग्नि, विद्युत् और सूर्य, (२) तेजस्वी राजा के तीन स्वभाव सिद्ध रूप ।
'त्रिरस्य ता परमा सन्ति सत्या'
ऋ. ४.१.७

त्रिः सख्युः सप्तपद् - (१) मनसा, वाचा, कर्मणा मित्रा वा सखा का सातवां पद (२) मित्र सखा का २१ वां पद
'मध्वः पीत्वा सचेवहि त्रिःसप्त सख्युः पदे'
ऋ. ८.६९.७, अ. २०.९२.४.
यह २१ पद क्या है ? ऐतरेय ब्राह्मण १-१० में आया है त्रिःसप्तेत्यनेन देवलोकानाम् उत्तम् एकविशंस्थानमुच्यते । आदित्यस्यैक विंशत्वात् । तथा च ब्राह्मणम् -द्वादशमासाः पञ्चर्तवः त्रय इमे लोकाः असौ आदित्य एकविंश इति । अर्थात् १२ मास, ५ ऋतु और तीन लोकों में स्त्री पुरुषों की एक साथ रहने की यह कामना है ।

त्रिसप्त- (१) इक्कीस, (२) शरीर के इक्कीस तत्व ।
'त्रि सप्तैः शूर सत्वभिः'
ऋ. १.१३३.६

त्रिःसप्तगुह्यानि - (१) इक्कीर ज्ञान करने योग्य गुह्या अर्थात् बुद्धि से साक्षात् करने योग्य गुप्त, तत्व, (२) राष्ट्र के २१ अधिकार पद, (३) शरीर के घटक २१ सौ तत्व (४) चित्र में धारण करने योग्य चार वेद, तीन क्रिया, विज्ञान और उद्योग- इन सातों का श्रवण, मनन और निदिध्यासन द्वारा धारण करना, (४) सात पाक यज्ञ. सात हविर्यज्ञ और सात सोम यज्ञ ।
'त्रिः सप्त यद् गुह्यानि त्वे इत्
पदा विदन् निहिता यज्ञियासः'.
ऋ. १.७२.६
सर्वोपास्य परमेश्वर की उपासना में कुशल पुरुष जिनकी ज्ञान करने योग्य गुहा अर्थात् बुद्धि से साक्षात् करने योग्य गुप्त तत्वों का साक्षात् ज्ञान करते हैं वे सब तुझ में ही स्थित हैं ।

त्रिः सप्तनाम - (१) ईश्वरीय शक्ति या प्रकृति के इक्कीसस्वरूप पञ्चतन्मात्रा पञ्च स्थूलभूत, पञ्च ज्ञानेन्द्रिय, पञ्च कर्मेन्द्रिय और मन
(२) त्रिः + सप्त = 10; अघ्न्या प्रकृति के दश नाम ।
'इडे रन्ते हव्ये काम्ये चन्द्रे
ज्योतेऽदिते सरस्वति महि विश्रुति
एताति अघ्न्ये नामानि
'देवेभ्यो मा सुकृतं ब्रूतात्'
वाज.सं. ८.४३, श.ब्रा. ४.५.८.१०.

त्रिःसप्तमयूर्यः - २१ प्रकार के मयूर की जाति जो विष हरती है ।
'त्रिः सप्त मयूर्यः'
ऋ. १.१९१.१४

त्रिः सप्त सखा- इक्कीस त्तवों का स्वामी मित्र परमेश्वर ।

'त्रिः सप्त सख्युः पदे '

ऋ. ८.६९.७, अ. २०.९२.४

त्रिः सप्त समिधः- २१ समिधाएं प्रकाशकसामर्थ्य, (२) २१ प्राकृतिक विकार अहंकार आदि, (३) प्रकृति, महत्, अहंकार ५ तन्मात्राएं, ५ स्थूलभूत, ५ इन्द्रिय और तीन गुण, (४) ५ तन्मात्रा, ५ भूत, ५ ज्ञानेन्द्रिय ५ कर्मेन्द्रिय और मन (अन्तःकरण चतुष्टय) (५) संवत्सर यज्ञ में १२ मास, ५ ऋतु ३, लोक और एक आदित्य ।

'त्रिः सप्त समिधः कृताः '

ऋ. १०.९०.१५, वाज.सं. ३१.१५, अ. १९.६.१५, तै.आ. ३.१२.३.

(६) ब्रह्माण्ड के घटक २१ पदार्थ २१ समिधाएं हैं- प्रकृति, महान् बुद्धि आदि अन्तःकरण और जीव, दस इन्द्रियगण, श्रोत्र, त्वचा, चक्षु, जिह्वा, नासिका, वाणी, दो चरण, दो हस्त गुदा , उपस्थ, पांच तन्मात्राएं शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध और पांचभूत,पृथिवी, आपः तेज, वायु और प्रकाश, (७) यज्ञ की २१ समिधाएं

त्रिः सप्त परमाणि- (१) वाणी के इक्कीस रूप - गायत्री आदि सात जगती आदि सात और कृति आदि सात, (२) भूमि के सात परमरक्षक स्वामी अमात्य, सुहृद्, राष्ट्र, दुर्ग, कोश और बल और उसका तीन प्रकार से ज्ञान- भूमि, सुवर्ण सेना या तीन प्रकार के विचार उत्साहशक्ति, मन्त्रशक्ति और प्रभुशक्ति ।

'त्रिःसप्त मातुः परमाणि विन्दन् '

ऋ. ४.१.१६

त्रिःसाप्तानि - (१) २१ प्रकार के सुखों से रमण करने योग्य पदार्थ (२) यज्ञ पक्ष में अगन्याधेय दर्श, पूर्णमास, अग्निहोत्र, आग्रायण, चातुर्मास्य निरुढ़ पशुवन्ध, सौत्रामणि में सातहवियर्ज्ञ संस्था हैं। पञ्च महायज्ञ, अष्टका श्राद्ध , श्रवणाकर्म प्रत्यवरोहण, शूलगव और आश्वयुजी कर्म ये सात पाकयज्ञ संस्था हैं । सा. (३) ब्रह्मचर्य आदि चार आश्रमों के साथ पञ्चयज्ञ, अतिथि सत्कार और दान इन सातों को मन, वाणी और देह से बार बार करना त्रिः सप्त है । -दया. (४) प्राण गत उत्तम व्यवस्थाओं से त्रिगुण भेद से सात सुखप्रद शरीर के धातु ।

'ते नो रत्नानि धत्तन
त्रिरा साप्तानि सुन्वते
एकमेकं सुशस्तिभिः '

ऋ. १.२०.७, कौ.ब्रा. २६.१७.

वे विद्वान् पुरुष सवन ऐश्वर्य, राज्याभिषेक और सब उपासना करने वालों के लिए (सुन्वते) २१ प्रकार से सुखों से रमण करने योग्य पदार्थों को उत्तम उपदेश युक्त क्रियाओं द्वारा एक एक करके धारण करावें ।

त्विष् - त्विष् (दीप्त्यर्थक) + क्विप् = त्विष् । अर्थ है- ज्वाला । आधुनिक अर्थ-प्रकाश, किरण ।

'अग्निरिव मन्यो त्विषितः सहस्व
सेनानीर्नः सहुरे हुत एधि ।
हत्वाय शत्रून् विभजस्व वेद
ओजो मिनानो विमृधो नुदस्व '

ऋ. १०.८४.२, अ.४.३१.२, नि. १.१७.

हे मन्यु ! अग्नि के समान ज्वलित होकर हमारे शत्रुओं को पराजित कर (त्विषितः सहस्व) । हे सहनशीलत्व (सहुरे) बुलाए जाने पर (हूतः) हमारे संग्राम में सेनाधिपति हो (नः सेनानीः एधि) तथा शत्रुओं को मारकर (शत्रून् हत्वाय) हमें शत्रुओं का धन दे (वेद विभजस्व) और हमें बल देकर शत्रुओं को संग्राम से भगा (ओजःमिमानः मृधः विनुदस्व) ।

त्विषि- (१) तेजः प्रकाश, (२) वीर्य, (३) कान्ति ।

'स्वायां देवो दुहितरित्विषिंधात् '

ऋ. १.७१.५

सूर्य जिस प्रकार अपनी कन्या के समान उषा में कान्ति को धारण करता है । अथवा, कामनावान् पति अपने समस्त मनोरथों को पूर्ण करने वाली अपनी भार्या में तेज अर्थात् वीर्य को धारण करता है ।

अथवा, प्रकाश का द्रष्टा आत्मा या ज्ञानों का प्रकाशक परमेश्वर (देवः) अपनी कन्या के समान अपने ही से उत्पन्न होने वाली सब संकल्पों को पूर्ण करने वाली प्रकृति अथवा परमानन्द रस को दोहन अर्थात् प्राप्त करने वाली चिति शक्ति में कान्ति, तेज, प्रकाश और दीप्ति को धारण करता है ।

'सोमस्य त्विषिरसि'
वाज.सं. १०.५.१५, तै.सं. १.८.१४.१, का.सं. १५.७, मै.सं. २.६.१०, ७०.३, ४.४.४, ५४.३, श.ब्रा. ५.३.५.३, ४.१.११, तै.ब्रा. १.७.८.१, आप.श्रौ.सू. १८.१५.५, मा.श्रौ.सू. ९.१.३.

त्विषित- त्विष् (दीप्त्यर्थक) + क्विप् = त्विष् । त्विष् + इतच् = त्विषित । अर्थ - जिसमें ज्वाला हो गई हो -ज्वालित, दीप्त ।

त्विषीमत् - प्रकाश वाला, कान्तिमय ।
'अधा चन श्रत् दधाति त्विषीमत
इन्द्राय वज्रम् निघनिघ्नते वधम्'
ऋ. १.५५.५
तभी (अधाचन) कान्तिमय सूर्य के समान (त्विषीयते) तेजस्वी उस परमेश्वर या राजा के ऊपर लोग श्रद्धा करते हैं (श्रत् दधाति) ।

त्विषीमान् - (१) तेजस्वी ।
'त्विषीमानस्मि जूतिमान्'
अ. १२.१.५८
(२) बहु दीप्ति युक्त कान्तिमान् विद्युत् (३) सब कान्तियों और दीप्तियों का स्वामी परमेश्वर ।
'अध त्विषीमां अभ्योजसा क्रिविम् युधाभवत्'
ऋ. २.२२.२, साम. २.८३८

तीक्ष्णश्रृंगी - (१) तीखे सींग या कांटों वाला ।
'व्यृषन्तु दुरिते तीक्ष्णश्रृंग्यः'
अ. ८.७.९
(२) तीक्ष्ण स्वभाव की अजश्रृंगी नामक ओषधि ।
'तीक्ष्णश्रृंगी व्यृषतु'
अ. ४.३७.६

तीक्ष्णयान् - अधिक तीक्ष्ण ।
'तीक्ष्णीयांस परशोः'
अ. ३.१९.४

तीर्थ- (१) तैरने का साधन नौकाआदि, (२) तीर्थ, (३) अध्यात्म यज्ञ ।
'तीर्थैस्तरन्ति प्रवतो महीरिति'
अ. १८.४.७

तीर्थ्य- परमात्मा तथा गुह आदि तीर्थों का सेवक।
'नमस्तीर्थ्याय च कल्याय च'
वाज.सं. १६.४२, तै.सं. ४.५.८.२, का.सं. १७.१५.

तीव्रःरेणुः - (१) जीवों का अति वेगयुक्त अंश, (२) आत्मा जो रेणुवत् अणु परिमाण या गतिशील है ।
'अत्रा वो नृत्य तामिव तीव्रो रेणु रपायत'
ऋ. १०.७२.६

तीव्र सोम - (१) तीव्र सोमरस, (२) वेगवान्, वीर्यवान् पुरुष, (३) अतिहर्षप्रद ब्रह्मरस ।
'तीव्रां सोमान् आसुनोति प्रयस्वान्'
ऋ. १०.४२.५, अ. २०.८९.५

त्री चक्रा- (१) तीन चक्र, । (२) शरीर के वात, पित्त, कफ रूप तीन चक्र

त्रीणि अग्रा - (१) तीन अग्रगामी लोक या तीन पदार्थ -शक्ति, धन और जन ।
'तस्य त्रीणि प्रतिश्रृणीह्यग्रा'
ऋ. १०.८७.१०, अ. ८.३.१०
(२) जनबल, धन बल और मनोबल

त्रीणिआयूषि- (१) तीन आयु बाल्यकाल, यौवन और वार्द्धक्य, (२) तीन आय के साधन-व्यापार, भूमि और संग्राम, (३) परमेश्वर की प्राप्ति के साधन-ज्ञान, कर्म और उपासना ।
'त्रीण्यायूंषि तव जातवेदः'
ऋ. ३.१७.३, तै.सं. ३.२.११.२, मै.सं. ४.११.१, १६१.१२, ४.१२.५, १९.२.८, का.सं. २.१५, १२.४.

त्रीणि उषसः- (१) आयु के तीन काल-बाल्य, यौवन और वार्द्धक्य, (२) तीन आय- व्यापार, भूमि और संग्राम के उत्पादक उषाएं हैं जैसे शत्रुज्ञानकारी सेना, ऐश्वर्य से कान्तियुक्त प्रजा और अन्नादि के लिये कामना करने योग्य कृषक ।
'तिस्र आजानीरुषसस्ते अग्ने'
ऋ. ३.१७.३, तै.सं. ३.२.११.२, मै.सं. ४.११.१, १६१.१२, का.सं. २.१५.

त्रीणि जाना - (१) अग्नि के तीन रूप-बाड़वाग्नि, सूर्य, जाठर अग्नि, (२) अग्रणी के तीन रूप-समुद्रवत् गम्भीर, सूर्यवत् तेजस्वी और सर्वजीवनाधार (३) परमेश्वर के तीन रूप-एक महान् आकाश में एक सूर्य में और एक प्राणों में, (४) आत्मा के तीन जान-जल में जीवनोत्पादक, अंश, आकाश में तेजोरूप और प्राणों में वायुरूप ।
'त्रीणि जाना परिभूषन्ति अस्य
समुद्रं एकं दिवि एकमप्सु'

ऋ. १.९५.३

त्रीणि ज्योतींषि – (१) तीन तेज, (२) आत्मा, इन्द्रिय और मन, (३) समाज में तीन बल-ब्राह्म बल, क्षात्रबल और अर्थबल ।

'त्रीणि ज्योतींषि सचते स षोड़शी'

वाज.सं. ८.३६,३२.५, वांज.सं. (का.) ८.११.१, ३२.५, पंच.ब्रा. १२.१३.३२, जै.ब्रा. १.२०५, तै.ब्रा. ३.७.९.५, तै.आ. १०.१०.२, महा.ना. उप. ९.४, शां.श्रौ.सू. ९.५.१, वै.सू. २५.१२, आप .श्रौ.सू. १४.२.१३. नृसिंह. पू.ता.उप. २.४.

(४) तीन ज्योतियां अग्नि, विद्युत् और सूर्य, (५) उपनिषद् की परिभाषा में प्राण, अपान और व्यान ।

ऊर्ध्वं प्राणमुन्नयति अपानं प्रत्यगस्यति । मध्येवा मनसासीनं विश्वे देवा उपासते ।

'आक्रंस्यमानस्त्रीणि ज्योतींषि'

अ. ९.५.८

त्रीणि नभ्यानि – (१) कालचक्र के ग्रीष्म वर्षा और हेमन्त रूपी तीन नाभियां ।

'द्वादश प्रधयश्चक्रमेकं
त्रीणिनभ्यानि क उ तच्चिकेत'

ऋ. १.१६४.८, अ. १०.८.४, नि. ४.२७.

कालचक्र के मास रूपी बारह घेरे हैं और तीन नाभियां हैं कोई विद्वान् पुरुष ही जान सकता है ।

त्रीणि पदानि– (१) तीन स्थान, (२) तीन प्राप्तव्य विषय, (३) धर्मयज्ञ और वेद ज्ञान के तीन पद-ऋक् , साम और यजुः (४) मंत्र, गीति और क्रिया (५) ज्ञान, उपासना और यज्ञ ।

'त्रीणि पदान्यश्विनोः
अविः सन्ति गुहापरः'

ऋ. ८.८.२३

त्रीणेपदानि रुपो अन्वरोहत्

अ. १८.३.४०

त्रिपाद स्यामृतं दिवि । त्रीणि पदा विचक्रये (६) जानने योग्य तीन स्वरूप तीनपद (७) तीन पद

'त्रीणि पदानि निहिता गुहास्य'

अ. २.१.२, वाज.सं. ३२.९, तै.आ. १०.१.४, महा.ना.उप.२.४.

त्र्यनीक – ऋ. ३.५६.३

त्रिप्रतिष्ठितः अ. १०.२.३२

त्रिषधस्थ – ऋ. ५.४.८

इस प्रकार त्रिदिवा, त्रिनाक, त्र्यरुण, त्रिधातु, त्रिवृत आदि नाना त्रिक हैं ।

त्रीणि पुरूणि – (१) राष्ट्र के ऐश्वर्यों को पालने और पूर्ण करने वाले सभास्थल, (२) तीन लोक, (४)स्वप्न, जागृति और सुषुप्ति , (४) सृष्टि प्रलय और मध्य ।

'त्रीणि राजाना विदथे पुरूणि'

ऋ. ३.३८.६

त्रीणि योजनानि– (१) तीन लोक, (२) वर्षा होने के समय तीन योग-सूर्य का पृथ्वी से, मेघ का वायु से और वृष्टि जल का पृथ्वी से योग

'विश्वरूप्यं त्रिषुयोजनेषु'

अ. १.१६४.९, अ. ९.९.९.

त्रीणि रजांसि – तीन रजस् हैं, तीन लोक हैं ।

'इमे वै लोका रजांसि'

श.ब्रा. ६.३.१.१८.

'त्रीणि रजांसि दिवो अङ्गतिस्रः'

अ. १३.३.२१.

त्रीणि रोचना– (१) सूर्य, चन्द्र और अग्नि, (२) सूर्य, अग्नि और विद्युत् (३) धन, ज्ञान और प्रजाजन

'त्री रजांसि परिभूस्त्रीणि रोचना'

ऋ. ४.५३.५

(४) न्याय, बल और राज्य-शासन ।

त्रीणि बन्धनानि– (१) सूर्य को बांधने वाले तीन बन्धन-आकर्षण, प्रकाश और प्राण, (२) समाज के तीन बन्धन शरीर-रक्षा, वाणी की प्रतिज्ञा और मानस् प्रेम (३) द्यौ लौक में सूर्य के तीन बन्धन हैं – आकर्षण, तेज और गति या चैतन्य-सामर्थ्य (४) उत्पन्न जीव के तीन बन्धन-देवऋण, पितृ ऋण और ऋषि ऋण जिनके प्रतिनिधि यज्ञोपवीत के तीन सूत्र हैं,

'आहुस्ते त्रीणि दिवि बन्धनानि'

वाज.सं. २९.१४, तै.सं. ४.६.७.२, का.सं. ४०.६.

त्रीणि व्रतानि – (१) तीन व्रत- सृष्टिस्थिति और संहार, (२) आत्मसंयम, जनसंयम और अरिसंयम ।

'त्रिभिर्व्रतैरभि नो रक्षति त्मना'

ऋ. ४.५३.५

त्रीणि विदयानि (१) तीन जानने योग्य ज्ञान, कर्म

और उपासना ।
'वेदयस्त्रीणि विदथान्येषाम्'
ऋ. ६.५१.२

त्राणि विष्टया - (१) सन्ताप से रहित तीन पदार्थ जो कन्या के विवाह के विचारणीय हैं । वे ये हैं -पिता का सिर ऊंचा हो अर्थात् विवाह से वे प्रसन्न हो और ऋणग्रस्त न हो, (२) वर और कन्या दोनों योग्य पुरुषार्थी एवं उर्वरा हो और (३) विवाहोपरान्त कन्या गर्भाधान के योग्य हो ।
'इमानि त्रीणि विष्टया
तानीन्द्र विरोहय ।
शिरस्ततस्योर्वरामादिदं म उपोदरे'
ऋ. ८.९१.५, तै.ब्रा. १.२२१.

त्रीणि वीर्याणि- विशेष रूप से प्रेरक बल-कायिक, वाचिक और मानसिक तीन प्रकार के वीर्य ।
'त्रयस्त्रिंशद् देवतास्त्रीणि च वीर्याणि'
अ. १९.२७.१०
त्रीणि शतात्री सहस्राणि त्रिंशत् नवच ३३३९ देव अर्थात् वीर पुरुष ।
'त्रीणि शतात्री सहस्राणि अग्निम्
त्रिंशच्च देवा नव चासपर्यन्'
ऋ. ३.९.९,१०.५२.६, वाज.सं. ३३.७, तै.ब्रा. २.७.१२.२.

त्रीणि शीर्षाणि- सिरस्थ तीन प्राण, सिर में प्राण, मुख और कान नामक तीन छिद्र ।
'आ च क्राणस्त्रीणि शीर्षा परावर्क्'
ऋ. १०.८.९

त्रीणि सरांसि - तीन तालाबों के समान भूमि, अन्तरिक्ष और बृहदाकाश ।
'त्रीणि सरांसि पृश्नयः'
ऋ. ८.७.१०

त्रीधन्व - अपने भीतर सब पदार्थों को धारण करने वाले तीन लोक ।
'त्रीधन्व योजना सप्तसिन्धून्'
ऋ. १.३५.८, वाज.सं. ३४.२४.
सविता सभी पदार्थों को अपने भीतर धारण करने वाले तीनों लोकों को प्रकाशित करता है ।

त्रीरजांसि- (१) तीन प्रकार के लोक-ऊर्ध्व लोक, मध्यलोक और भूलोक (२) सात्विक, राजस और तामस जन ।
'त्रीणि रजांसि परिभूस्त्रीणि रोचना'
ऋ. ४.५३.५

त्री रोचनानि - (१) आकाश, वायु और पृथ्वी के तेज, (२) चमकने वाले तत्व-अग्नि, विद्युत, और सूर्य ।
'अभि द्विजन्मा त्री रोचनानि'

त्री वाजिना - ज्ञान, बल और अन्न, (२) शास्त्र कृत, परानुभव वेद्य और स्वानु भव वेद्य, (३) आत्मिक, वाचिक और शारीरिक बल, (४) खाद्य, लेह्य और चोष्य अन्न, (५) ओषधियां से उत्पन्न धान्य बीजादि, (६) लतावृक्षादि से प्रसूद कन्द, मूल, फल, पुष्पादि, (७) जीवों से उत्पन्न दूध और दूध-से वने पदार्थ ।
'अग्ने त्री ते वाजिना त्री षधस्था'
ऋ. ३.२०.२, तै.सं. २.४.११.२, ३.२.११.१, मै.सं. २.४.४, ४२.१०.४.१२., ५,१९१.११, का.सं. ९.१९, आप.श्रौ.सू. १९.२७.१८, मा .श्रौ.सू. ५.२.५.१२.

त्रीषधस्थाः - तीन एकत्र होकर रहने के स्थान-ब्रह्मचर्य, गृहस्थ और वाणप्रस्थ ।
(२) राज के तीन सधस्थराजसभा, धर्मसभा और विद्वत्सभा ।
(३) तीनों लोकों को रचने वाला ।
'त्रीषधस्था सिन्धवः त्रिः कवीनाम्'
ऋ. ३.५६.५

तु - शीघ्र
'स तू नो अग्निर्नयतु प्रजानन्'
ऋ. ४.१.१०

तुक् - तोजयति हिनस्ति हि पितुर्दुःखम् इति तुक् पुत्रः-सा. (जो पिता के दुःख को दूर करता है वह पुत्र है) तुज् + क्विप् = तुक् ।
'ते नो अद्य ते अपरं तु चे तु नः'
ऋ. ८.२७.१४, वाज.सं. ३३.९४.
'विदा गाधं तुचे तु नः'
ऋ. ६.४८.९, साम. १.४१,२. ९७३.

तुग्र - (१) लेन देन करने वाला, (२) शत्रु का नाश करने वाला (३) बलवान् सैन्य ।
'तुग्रस्य सुनुमूहथुः रजोभिः'
ऋ. ६.६२.६
(४) तुज् (चालनार्थक) + रक् = तुग्र । एक

वेद कालीन राजा या ऋषि । (५) वैश्य

तुग्र्यु- तुज् (चालनार्थक) + रक् = तुग्रं । तुग्रे चालनार्थे साधुः तुग्र्यु ।

तुग्र्या - (१) अप् जल, हिंसनक्रिया (३) प्राणियों का नाश करने वाली दशा, (४) दुष्ट पुरुषों द्वारा प्राप्त होने वाला वध बाधा आदि पीड़ा कारी अत्याचार

'आवः शमं वृषभ तुग्र्यासु'

ऋ. १.३३.१५

जिस प्रकार सूर्य ग्रीष्म की दुःखदायी प्राणियों का नाश करने वाली दशाओं में या जलों के निमित्त (तुग्र्यासु) शान्ति दायक जल के बरसाने वाले मेघ को प्राप्त कराता है ।

तुग्र्यावृध् - तुग्र्या + वृध्, । (१) शत्रु की हिंसा करने वाली, बल बढ़ाने वाली, राजा प्रजा को आश्रय देने वाली शक्ति को बढ़ाने वाल -इन्द्र ।

'उक्थेषु तुग्र्यावृधम्'

ऋ. ८.४५.२९

शत्रुओं के नाशक सैन्य बलों के हितों को बढ़ाने वाला ।

'मन्दन्तु तुग्र्यावृधः'

ऋ. ८.१.१५

'अतूर्तं तुग्र्या वृधम्'

ऋ. ८.९९.७, अ. २०.१०५.३, सामं. १.२८३.

तुग्वन् - तूर्ण + गम् + वनिप् =तुग्वन् । नदी के द्वारा लोग शीघ्र तीर्थ पर आ जाते हैं । (तुग्वतीर्थं भवति तूर्णमेत-दायन्ति) । अर्थ - तीर्थ, नदीतट ।

तुच् - पुत्र ।

'तुचे तनाय तत्सुनः'

ऋ. ८.१८.१८, साम.वि.ब्रा. २.१.१०.

तुच्छ- परिणाम आदि गुणों से शून्य परमेश्वर ।

तुच्छय - (१) सूक्ष्म रूप ।

'तुच्छ्ये नाभ्वपिहितं यदासीत्'

ऋ. १०.१२९.३, तै.ब्रा. २.८.९.४.

(२) तुच्छ, (३) परिणाम आदि गुणों से सूक्ष्म परमेश्वर ।

तुज् - (धा.) (१) चलना (२) कांपना

'द्यावा च भूमा जनुषस्तुजेते'

ऋ. १.६१.१४, २०.३५.१४

(३) पालन करना, (४) हिंसा करना, (५) रक्षा करना । तुजि हिंसा तुजि हिंसा बलादाननिके तनेषु-चुरादि । तुज् हिंसायां पालने च-भ्वादिः । पालन, रक्षा या बल सम्पादन करना

'तुजे जना वनं स्वः'

अ. ६.३३.१, आ.सं. १.३.

तुजयत् - (१) शत्रुओं का नाश करने वाला ।

'प्रतिस्मरेथां तुजयद्भिरेवैः'

ऋ. ७.१०४.७, अ. ८.४.७.

तुजस् - प्रजापालन और शत्रुनाश ।

'तेतिक्ते तिग्मा तुज से अनीका'

ऋ. ४.२३.७

तुज्य - नाश होने के योग्य ।

'युवावते न तुज्या अभूवन्'

ऋ. ३.६२.१

तुज्यमान- कम्पमान, पीड़ित, ।

'त्वां देवा अबिभ्युषः
तुज्य मानासु आविषुः'

ऋ. १.११.५,

भयरहित तुझ से अपना अपना आश्रय पाकर विद्वान् पुरुष एवं युद्धविजयी सैनिक गण भी तुझे प्राप्त होते हैं ।

अथवा - विषयों के प्रकाशक देव- इन्द्रियगण पीड़ित होकर ज्ञानरूप आत्मा से शान्त होकर उसे ही पाते हैं ।

तुजः रयिः - पालक ऐश्वर्य ।

'आनस्तुजंरयिं भर'

ऋ. ३.४५.४

तुजा- तुज् (हिंसा करना) से सिद्ध । (१) शत्रु हिंसक ।

(२) सब की पालना करने वाला -(दया.)

'गिरेर्भृष्टिर्न भ्राजते तुजा शवः'

ऋ. १.५६.३

उस इन्द्र का अनवद्य पौरुष पर्वत श्रृंग के समान चमकता है । उसका बल शत्रु -हिंसक (तुजा शवः) ।

सबकी पालना करने वाले बल को धारण करता है । -दया. (३) दुःख नाशक

तुजिः - (१) सन्मान

'प्रावन्तु न स्तुजये वाजसातये'

ऋ. ५.४६.७, अ. ७.४९.१, मै.सं. ४.४३.१०,

२१३.७, तै.ब्रा. ३.५.१२.१, नि. १२.४५.
(२) अपत्य

तुञ्ज- तुञ्ज् (दान करना) + घञ् । अर्थ- दान ।
'तुञ्जे तुञ्जे य उत्तरे
स्तोमा इन्द्रस्य वज्रिणः
न विन्धे अस्य सुष्टुतिम्'
ऋ. १.७.७, अ. २०.७०.१३, नि. ६.१८
दान दान के बाद जो स्तोत्र उत्कृष्ट होते जाते हैं उन स्तोत्रों से इस वज्री इन्द्र की स्तुति की कब समाप्ति होती है मैं नहीं जान पाता । जैसे जैसे स्तुति करता जाता हूँ वैसे वैसे स्तुति की उत्कृष्टता बढ़ती जाती है । (२) दान प्राप्त करने का अवसर

तुञ्ज् - (१) स्तुति करना । यह धातु पालन करना अर्थ में आया है । स्तुति करना आत्मनेपदी है ।
'विश्वेषु हित्वा सवनेषु तुञ्जते'
ऋ. १.१३१.२, अ. २०.७२.१, वै.सू. ३१.२७.
चुरादि में "हिंसा वला दाम - निकेतनेषु भाषार्थञ्च"
(२) प्रति पालन करना, (३) आज्ञा की प्रतीक्षा करना ।

तुञ्जमानः - बलवान् और दानशील ।
'सुरेतसा श्रवसा तुञ्जमानाः'
ऋ. ३.१.१६

तुण्डिकः- तुण्ड (थुथुना) वाला जिसका नाक थोथना हो ।
'स्तम्भज उत तुण्डिकः'
अ. ८.६.५

तुण्डेल - (१) जिसका तुण्ड (मुख) वानर के समान आगे बढ़ा हुआ हो, (२) बहुत बड़ी तोंद वाला ।
'तुण्डेमुत शालुडम्'
अ. ८.६.१७

तुतुर्वणिः - शीघ्रगति ।
'यज्ञा यज्ञा वः समना तुतुर्वणिः
ऋ. १.१६८.१

तुन्दाना- भय से व्यथित ।
'एरुं तुन्दाना पत्येव जाया'
अ. ६.२२.३

तुन- (१) प्रेरित, अभिपीड़ित ।
'ग्राण्णा तुन्नो अभिष्टुतः'
ऋ. ९.६७.१९

तुन्ना- पीड़ित, दुःखित ।
'एजाति ग्लहा कन्येव तुन्ना'
अ. ६.२२.३

तुम्र- (१) सर्वव्यापक ।
'गातुमिषेनक्षते तुम्रमच्छ'
ऋ. ६.२२.५, अ. २०.३६.५.
(२) स्व सेना को अपने अधीन और पर सेना को परे चलाने वाला - इन्द्र ।
'सत्राहणं दाधृषिं तुम्रमिन्द्रम्'
ऋ. ४.१७.८
(३) शत्रुओं को ग्लानियुक्त करने वाला, (४) संकट नाशक (५) सब प्रकार से विपक्षी को मारने में समर्थ ।
'आगत्या तुम्रो वृषभो मरुत्वान्'
ऋ. ३.५०.१

तुरगातु- (१) अतितीव्र गति से सर्वत्र व्यापक।
'अनच्छये तुरगातु जीवम्'
ऋ. १.१६४.३०, अ. ९.१०.८
(२) अति वेग से इन्द्रियों में गति उत्पन्न करने वाला आत्मा ।

तुरण- (१) अति क्षिप्रकारी, (२) शत्रुओं का नाश करने में समर्थ, (३) अधीर, जल्दी मचाने वाला ।
'तुभ्यं पयो यत्पितरावनीताम्
राधः सुरतस्तुरणे भुरण्यू'
ऋ. १.१२१.५
भरण पोषण करने वाले मातापिता (भुरण्यू) जल्दी मचाने वाले अधीर बालक के लिए (तुरणे) उत्तम वीर्योत्पादक दूध और धन प्राप्त कराते हैं (सुरतः पयः राधः अवनीताम्) ।

तुरण्यति- तूर्णम् अश्नुते अध्वानम् (तुरत राह पकड़ता है) । त्वरयति गन्तुम् । (चलने में शीघ्रता करता है) । अर्थ- शीघ्र चलता है ।

तुरण्यु - (१) क्षिप्तकारी, कर्मकुशल ।
'तुरण्यवो मधुमन्तं घृतश्चुतम्'
ऋ. ८.५१.१०, अ. २०.११९, २. साम. २.९६०.
(२) अति शीघ्रता से कर्म समाप्त करने वाला, (३) अप्रमादी

तुरत् - (१) हिंसक, (२) दुष्ट पुरुष (३) शीघ्रता से चलने वाला अश्वादि बल ।

'सहः सहिष्ठ तुरतस्तुरस्य'
ऋ. ६.१८.४

तुरया - अतिशीघ्र ।
'ऋतस्य शुष्मस्तुरया उगव्युः'
ऋ. ४.२३.१०

तुर - (१) मारने वाला (२) शीघ्रता से चलाने वाला, । (३) शीघ्रकारी, (४) शत्रुनाशक ।
'आध्रश्चित् यं मन्यमानस्तुरश्चित्'
ऋ. ७.४१.२, अ. ३.१६.२, वाज.सं. ३४.३५, तै.ब्रा. २.८.९.७, आप .मं.पा. १.१४.२, नि. १२.१४.
(४) यम, प्रेताधिपति, काल । तृ (तरना) अथवा त्वर । + घ = तुर । तृ के ऋ का उ और त्वर के 'व' का सम्प्रसारण 'उ । त्वरते हि असौ सर्वान् प्राणिनः आभिमुख्येन उपसंहाराय (यम प्राणियों के संहार के लिये तूर्णगति हो जाते हैं) जिस भग अर्थात् आदित्य को दरिद्र भी पूजता है और यम भी (तुरश्चित्) क्योंकि सूर्य के उदय से काल बीतता जाता है । (६) इन्द्र का विशेषण । अर्थ है-फुर्तीला ।
'अस्मा इदु प्रतवसे तुराय'
ऋ. १.१६.१, अ. २०.३५.१, ऐ.ब्रा. ६.१८.३.५, कौ.ब्रा. २६.१६, गौ.ब्रा. २.५.१५, वै.सू. ३१.१९.
इस बलवान् तथा फुर्तीले इन्द्र के लिए (७) नियन्ता, (८) न्यायाधीश जो न्याय के लिये शीघ्रता करता है, (९) शत्रुनाशक ।
'इमे तुरं मरुतो रामयन्ति'
ऋ. ७. ५६.१९

तुरस्पेय- (१) अति शीघ्र पालन करने का कार्य ।
'तुरस्पेये यो हरिया अवर्धत'
ऋ. १०.९६.८, अ. २०.३१.३
(२) वेगवान साधनों द्वारा पालन कार्य में शक्तिशाली ।

तुर्फरि- तृफ् (मारना, हनन करना) + अरि = तुर्फरि । अर्थ हैं- हन्ता ।

तुर्फरी- (द्वि.व.) दुष्टों का वध करने वाले अश्वि द्वय ।
'नैतोशेव तुर्फरी पर्फरीका'
ऋ. १०.१०६.६, नि. १३.५.
हे अश्विनी कुमारो ! तुम दोनों नैतोश नामक वधक के समान नाश करने वाले तथा शत्रुको विदीर्ण करने वाले हो ।

तुर्फरीतू - (द्वि.व.) तुर्फरीतारौ शत्रूणां हन्तारौ (शत्रुओं का नाश करने वाले) । तृफ अथवा तृप् । (हिंसार्थक) से सिद्ध । अर्थ -हिंसा करने वाले । तृफ् अथवा + तृप् + अरीतु = तुर्फरीतु । द्वि.व. में 'तुर्फरीतू'
'सृण्येव जर्भरी तुर्फरीतू'
ऋ. १०.१०६.६, नि. १३.५.
हे अश्विनी कुमारो ! तुम दोनों अंकुश के समान एकत्र स्थापित करने वाले तथा नाश करने वाले हो । तृम्फ् + तृच् = तुर्फरीतु । (पृषो दरादिवत्)

तुर्यवाट् - (१) तुर्य, तुरीय, अर्थात् चतुर्थ आश्रम वासी पुरुष, विद्वान् ।
'तुर्यवाट् वयः'
वाज.सं. १४.१०, तै.सं. ४.३.३.२, ५.१, मै.सं. २.७.२०, १०५. १४,२.८.२, १०८.१, का.सं. १७.२, ३९.७, श.ब्रा. ८.२.४.१५.
(२) परिव्राजक, (३) चारवर्षों का बैल ।
'तुर्यवाट् गौर्वयोदधुः'
वाज.सं. २१.१६,मै.सं. ३.११.११, १५८.७, का.सं. ३८.१०, तै. ब्रा. २.६.१८.२
'तुर्यवाट् च मे'
वाज.सं. १८.२६

तुर्यौही- चार वर्षों की गाय ।
'तुर्यौही च मे'
वाज.सं. १८.२६, तै.सं. ४.७.१०.१, का.सं. १८.१२.

तुर्वणिः- (१) वेगवान् वीर पुरुषों को धनादि देने वाला ।
'आभूमिरिन्द्र तुर्वणिः'
ऋ. ५.३५.३
(२) अति वेग में सर्वत्र व्यापनशील ।
'तुर्वीतये गाधं तुर्वणिः कः'
ऋ. १.६१.११, अ. २०.३५.११
(३) तूर्य वणिः । तूर्णं यः संभजते (जो शीघ्र संभक्त होता है) । (४) सायण के इसका अर्थ शत्रूणां हिंसिता या क्षिप्रकारी किया है, (५) इन्द्र, (६) शक्ति प्रदाता, (७) तेजस्वीपुरुष । -(दया.)
तूर्ण + वन् + इन् = तूर्णवनि = तूर्वणि (तूर्ण का तुर् आदेश आर्ष है)
अथवा - तुर्वी (हिंसा करना) + नि = तुर्वणि ।

(८) शीघ्रदाता या शीघ्र भेजने वाला ।
'स तुर्वणि र्महां अरेणु पौंस्ये
गिरेर्भृष्टिर्न भ्राजते तुजाशव ।
येन शुष्णं मायिनमायसोमदे
दुध्र आभूषु रामयन्निदामनि'
ऋ. १.५६.३, नि. ६.१४.
वह क्षिप्रकारी या शत्रुवध के लिए शीघ्र संभजन करने वाला इन्द्र (स तुर्वणिः) अपने बल या प्रभाव से महान् है । वह लौह कवच पहने (आयसः) सोमपान से हर्षित होने पर (मदे) दुष्ट शत्रुओं को पकड़ने वाला होता है (दुध्रः) जिस बल से मायावी शत्रु को कारागृहों में (आभूषु) बन्धक निगड़ में रमाया (दामनि रामयत्)। वह बल (शवः) संग्राम में (पौंस्ये) अनवद्य (अरेणु) तथा शत्रुहिंसक ही शोभता है (तुजा भ्राजते) जैसे पर्वत की चोटी शोभती है (गिरेःपृष्टिः न) ।
अन्य अर्थ- वह शीघ्र प्रदाता, महात्मा, तेजस्वी पुरुष (सतुर्वणिः महान्) अक्षय यौवन में (अरेण पौंस्ये) पर्वत श्रृंग की तरह चमकता है। (गिरेः भृष्टिः न याजते) । वह लौह समान दृढ शरीर वाला (आयसः) तथा विद्या से पूर्ण कर प्रसन्नता में रमण कराने वाले (दुध्रः मदे रामयन्) शोभायमान (आभूषु) तथा सब की पालना करने वाले बल को (तुजा शवः) धारण करता है जिससे उस बलवान् का प्रज्ञावान् वर को (येन शुष्णंमायिनम्) स्त्री अपने प्रेम पाश में (दामनि) बांधती है ।

तुर्वशः- (१) एक वैदिक राजा, (२) शत्रु-हिंसक, (३) धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष, सबकी कामना करने वाला ।
'त्वमयो यदवे तुर्वशाय'
ऋ. ५.३१.८, आश्व .श्रौ.सू. ९.५.२.
(४) निकट रहने वाला ।
'नितुर्वशं नियाद्वम् शिशीहि'
ऋ. ७.१९.८, अ. २०.३७.८
'असि प्रशर्ध तुर्वशे'
ऋ. ८.४.१, अ. २०.१२०.१, सामं. १.२७९, २.५८१
(५) हिंसकों को वश में करने में समर्थ (६) शीघ्रता से दूरस्थ पदार्थों की कामना या उन पर अधिकार करने में समर्थ । (तुरा शीघ्रतया पर पदार्थान् वष्टि कोक्षति सः)
'अग्निना तुर्वशं यदुम् परावतः
उग्रा देवं हवामहे'
ऋ. १.३६.१८
अग्नि के बल पर तुर्वश दूरस्थ पदार्थों की कामना या उन पर अधिकार करने में समर्थ, यत्न शील पुरुष को और भयकारक पुरुषों को जीतने वाले पुरुष को (उग्रादेवं) दूर देश से भी हम स्पर्द्धा पूर्वक युद्ध के लिये पुकारते हैं ।
(६) मनुष्य ।
'राज्ञस्त्वेषस्य सुभगस्य रातिषु तुर्वशेष्वमन्महि'
ऋ. ८.४.१९
दीप्त महान् एवं शोभन धन वाले कुरंग राजा को स्वर्ग प्राप्त कराने वाली क्रियाओं में मनुष्यों को (तुर्वशेषु) दक्षिणा रूप में (रातिषु) हम समझते हैं । (अमन्महि) ।
(८) वेद, शिल्पादि कला का ज्ञाता
'यन्नासत्या परावति
यद्वा स्थो अधितुर्वशे
ऋ. १.४७.७,
हे कभी असत्या चरण न करने वाले, चाहे तुम दूर देश में हो चाहे धर्म, अर्थ काम और मोक्ष के अभिलाषी प्रजाजनों के ऊपर शासन करते हो ।
(९) ऋग्वेद का एक जन । यदु के साथ तुर्वश का नाम प्रायः आया है । दोनों के पुरोहित कण्व, तुत्यत्र वत्स और उनके वंशज थे अत्रि और उनके वंशज सतलज के पूर्व रहने वाले पुरुषों के पुरोहित थे । अवस्यु आत्रेय यदु तुर्वश के भी प्रशंसक थे । भरतों के पुरोहित भरद्वाज ने सृजयों के हाथ तुर्वशों की पराजय का वर्णन किया है (ऋ ६.२७.७) । भरद्वाज बृहस्पति के पुत्र थे । बृहस्पति के दूसरे वंशज शंयु तुर्वश का गुण गठन करते हैं (ऋ ६.४५.१) । तुर्वश और यदु भरतों के प्रतिद्वन्दी के ।

तुरा- (१) तुर् (त्वरण अर्थ में) + क + टाप् = तुरा । अर्थ-द्यूतकर्मणि त्वरमाणः -
(जुए के खेल में त्वरमाण)
(२) चंचल, (३) अविवेकी, (५) अति शीघ्रता करने वाला ।
'तुराणामतुराणां'

अ. ७.५०.२
(५) हिंसक -दया. (६) शीघ्रगामी ।
तुराषाट् - (१) वेगवान् शत्रुवीरों का पराजय करने वाला इन्द्र ।
'उग्रस्तुराषाडभिभूत्योजाः'
ऋ. ३.४८.४
(२) हिंसकों का घातक, इन्द्र का एक नाम ।
'ऋजीषी वज्री वृषभस्तुराषाट्'
ऋ. ५.४०.४, अ. २०.१२.७, गो.ब्रा. २.४.२.
तुर्मिश - अनिष्ट का नाशक।
'तुर्मिशं सुमतिमिच्छमानः'
अ. १९.७.१
तुरीय- (१) चतुर्थांश, (२) परमपद
'अपस्तुरीयममृतं तुरीयम्'
अ. १०.१०.२९
(३) दुःख संकट से पार करने वाला ।
'तुरीयमिद् रोहितस्य पाकस्थामोनम्'
ऋ. ८.३.२४
(४) शीघ्रता से स्थानान्तर में जाने में समर्थ ।
'त्वष्टा तुरीयो अद्भुतः'
वाज.सं. २१.२०, तै.ब्रा. २.६.१८.४.
(५) स्थूल, सूक्ष्म, कारण और पाप करण में चौथी अवस्था, (६) मोक्ष स्वरूप, (७) चारों वर्णों का पूरक (८) शत्रु, मित्र और उदासीन सबसे ऊपर विद्यमान चतुर्थ । मण्डूकोपनिषद् में तुरीयस्वरूप का वर्णन इस प्रकार है ।
'अमात्रश्चतुर्थोऽव्यवहार्यः प्रपञ्चोपशमः शिवोऽद्वैत एवमोङ्कार आत्मैव ।'
पुनः ऋग्वेद १.१५.१०, में
'यत्त्वा तुरीयमृतुभिः द्रविणोदो यजामहे'
तुरीय- (१) नौकाओं का पालक (२) बुनने के यन्त्रों का पालक (३) वेगवान् रथों का पालक (४) शीघ्र रक्षा करने वाला ।
'तन्नस्तुरीप मद्भुतम् पुरुषारं पुरुत्मना ।'
ऋ. १.१४२.१०
तुरीय धाम, - चतुर्थ धाम परमपद, प्रभु, ।
ऋ. ९.९६.१९, साम. २.५२७
तुरीयंपात्रम् - (१) चौथा सोमपात्र, (२) चतुर्थपान में रखा सोम-सा. (२) चार प्रकार के हवि हैं होत्र, पोत्र, नेष्ट्र और तुरीय । हवि का वृष्टिप्रद भाग होत्र, सुगन्धिप्रद भाग पोत्र, पुष्टि प्रदभाग नेष्ट्र और अकाल मृत्यु से बचाने वाला तुरीय है । (३) हवि का चतुर्थ भाग ।
'तुरीयं पात्रममृक्तममर्त्यम्'
ऋ. २.३७.४
अपरिभुक्त एवं अमरण साधन चतुर्थपात्र में रखे सोम को पीवे-सा. । अकालमृत्यु से बचाने वाला रोगनाशक औषधिरूप हवि का पान कर । - दया.
तुरीयम् - (१) तूर्णापि - शीघ्र प्राप्त होने वाला -उदक, जल, । तत् हि तूर्णम् आप्नोति निम्न भुवम् (जल नीची भूमि पर शीघ्र पहुंच जाता है)। तूर्णम् आप्तुंशीलं यस्य स तूर्णापिः (जो शीघ्र प्राप्त होने वाला है) । तूर्ण + आप् +णिनि = तूर्णपि = तुरीय (पृषोदरादिवत्) ।
'तन्नस्तुरीपमद्भुतम्
पुरुवारं पुरुत्मना
त्वाष्टा पोषाय विष्यतु
राये नाभानो अस्मयुः'
ऋ. १.१४२.१०
वैद्युताग्नि हमारे पालन पोषण के लिए अद्भुत जल बरसावे । स्वा. दयानन्द का अर्थ-हमें चाहने वाला (अस्मयुः) अति तेजस्वी (नाभानः) विद्या से प्रदीप्त गुरु (त्वष्टा) हमें (नः) शीघ्र प्राप्त होने वाला (तुरीयः) महान् (अद्भुत्) तथा सभी मनुष्यों से वरणीय (पुरुवारम्) उस सत्य ज्ञान को (तत्) अनेक रूप से (पुरुत्मना) धर्म, धन और सांसारिक धन की पुष्टि के लिए (राये पोषाय) प्रदान करे (विष्यतु) ।
तुरीय ब्रह्म- (१) तीनों लोकों से परे विद्यमान ब्रह्म, (२) सर्वातिशायी बल या ऐश्वर्य (३) चतुर्थ वेद या ब्रह्म का अतिसूक्ष्म आनन्दमय स्वरूप
'तुरीयेण ब्रह्मणा विन्ददत्रिः'
ऋ. ५.४०.६
'तुरीयेणामन्वत नाम धेनोः'
अ. ७.१.१, शां.श्रौ.सू. १५.३.७.
तुरीया - जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति इन तीनों अवस्थाओं से परे शिवरूपा अमात्रा परमशक्ति
'अग्नीषोमावदधुर्या तुरीयासीत्'
अ. ८.९.१४
तुरीयावाक् - (१) वाणी के चार विभाग-परा, पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी हैं । चौथा विभाग

अर्थात् वैखरी तुरीया वाक् है। (२) कुछ विद्वान् भूः, भुवः, स्वः और ओम् को ही चार विभाग मानते हैं।
'तुरीयं वाचो मनुष्या वदन्ति'
ऋ. १.१६४.४५, अ. ९.१०.२७, श.ब्रा. ४.१.३.१७, तै.ब्रा. २.८.८.६, जै.उप.ब्रा. १.७.३, ४०.१, नि. १३.९.

तुला – तराजू।
'तुलायै वणिजम्'
वाज.सं. ३०.१७, तै.ब्रा. ३.४.१.१४.

तुर्वीति – (१) बाधक कारण, (२) कर्म बन्धन को नाश करना, (३) शीघ्र ही परम पद प्राप्त कराना।
'तुर्वीतये च वय्याय च स्रुतिम्'
ऋ. २.१३.१२
(४) तुर्वी + इति = तुर्वीति। हिसंक
'तुर्वीतिं दस्यवे सहः'
ऋ. १.३६.१८
(५) शत्रु नाशक। (६) दुष्ट प्राणियों या दोषों का हिंसक, (७) शत्रुओं को मारने में कुशल.।
'त्वं तुर्वीतिं वय्यं शतक्रतो'
ऋ. १.५४.६.

तुर्वीयत् – अति वेग से जाने वाला पुरुष।
'तुर्वीतये गाधं तुर्वणिः कः'
ऋ. १.६१.११, अ. २०.३५.११

तुवि- बहुत।

तुविक्षत्रा – (१) बहुत से क्षत्र बल से युक्त
'तुविक्षत्रामजरन्तीम् उरूचीम्'
वाज.सं. २१.५, अ. ७.६.२, तै.सं. १.५.११.५, मै.सं. ४.१०.१, १४४.११, का.सं. ३०.४.५, आश्व. श्रौ.सू. २.१.२९, शां.श्रौ.सू. २.२.१४.
(२) बहुत प्रकार से क्षति से बचाने वाली, (३) बहुत धन और बल से युक्त ब्रह्म शक्ति।

तुविक्षम् – (१) धनुष का विशेषण। बहतु बाणों को चलाने वाला धनुष।
'तुविक्षम् ते सुकृतं समूमयं धनुः'
ऋ. ८.७७.११, नि. ६.३३.
तेरा धनुष बहुवाणवर्षी (तुविक्षम्) सुन्दर कर्मों का करने वाला (सुकृतम्) और सुखकर-है (सूमयम्)।

तुविकूर्मि – (१) बहुत से कर्मों को करने वाला
'तुविग्राभं तुविकूर्मिं रभोदाम्'
ऋ. ६.२२.५, अ. २०.३५.५
(२) बहुकर्मा इन्द्र या परमात्मा का विशेषण।
'तुविकुर्मिमृतीषहम्
इन्द्र शविष्ठ सत्पते'
ऋ. ८.६८.१, साम. १.३५४,
हे इन्द्र! अनेक कर्म करने वाले, दुःखों के नष्ट करने वाले तेरी शरण मे हम आते हैं।

तुविग्र- (१) बहुशब्दवान् -दया. (२) घोर शब्द करने वाला प्राणी (३) बहुत उपदेश करने वाला।
'तुविग्रेभिः सत्वभिर्याति विज्रयः'
ऋ. १.१४०.९
घोर शब्द करने वाले प्राणियों के साथ ही अति बलवान्, वेगवान् और नाशकारी अग्नि विविध दिशाओं में फैल जाता है।

तुविग्राभः – (१) बहुतों को वश में करने वाला।
'तुविग्राभं तुविकूर्मिं रभोदाम्'
ऋ. ६.२२.५, अ. २०.३६.५.
(२) बहुत से लोकों को ग्रहण करने वाला

तुविग्रि- (१) बहुत ज्ञानोपदेश करने वाला। (२) इन्द्र का विशेषण।
'तुविग्रये वह्नये दुष्टरीतवे'
ऋ. २.२१.२

तुविग्रीवः – (१) बहुत गर्दन वाला (२) समर्थ पुरुषों से सहाय वान् राजा।
'तुविग्रीवो वृषभो वावृधानः'
ऋ. ५.२.१२
'तुविग्रीवो वपोदरः'
ऋ. ८.१७.८, अ. २०.५.२.
(२) प्रबल गर्दन वाला, उत्सुकता से गर्दन को ऊपर उठाए हुआ।
'तुविग्रीवा इवेरते'
ऋ. १.१८७.५

तुविजातः – (१) बहुत से देहों में प्रादुर्भूत आत्मा।
'गिरश्चये ते तुविजात पूर्वीः'
ऋ. १०.२९.५, अ. २०.७६.५.
(२) बड़े या विद्या वृद्ध से उत्पन्न।
'एवामहस्तुविजातस्तुविष्मान्'
ऋ. १.१९०.८.
(३) बहुत से गुणों में प्रसिद्ध।

'तुविजातो वरुणो दक्षो अंशः'
ऋ. २.२७.१ वाज.सं. ३४.५४, का.सं. ११.१२ नि. १२.३६.
(४) तुवि + जन + क्त = तुविजात। बहुजन्मा (५) ब्रह्मा, बहुत होने से ब्रह्मा का नाम तुविजात। है। (६) आदित्य का एक नाम।

तुविद्युम्न - (१) बहुत अधिक ऐश्वर्यवान्।
'तुविद्युम्न यशस्वतः'
ऋ. १.९.६, ३.१६.६, अ. २०.७१.१२.
(२) बहुत प्रकाश वाला (३) प्रचुर धन वाला
'तुविद्युम्नासोधनयन्ते अद्रिम्'
ऋ. १.८८.३
अति धनाढ्य जन भी तुम लोगों के भरण पोषण और रक्षा के लिये अक्षय शस्त्रास्त्र बल को (अद्रिम्) अपना धन बना लेते हैं (धनयन्ते) या पर्वत के समान विशाल धन को प्राप्त करते हैं।

तुविदेष्ण- बहुत धन देने वाला।
'तुविदेष्णम् तुवीमघम्'
ऋ. ८.८१.२, साम. २.७९.

तुविनृम्ण- (१) बहुत धनादि ऐश्वर्यों का स्वामी इन्द्र।
'ता तू ते सत्या तुविनृम्ण विश्वा'
ऋ. ४.२२.६
(२) बहुत प्रकार के धन।
'महिश्रवस्तुविनृम्णम्'
ऋ. १.४३.७

तुविप्रतिः- (१) बहुत से शत्रुओं का मुकाबला करने में समर्थ।
'हुवे तुविप्रतिं नरम्'
ऋ. १.३०.९, अ. २०.२६.३, साम. २.९४.
(२) नाना लोकों को बनाने वाला परमेश्वर।

तुविमन्युः- अतिक्रोध या ज्ञान से युक्त।
'भीमासरस्तुविमन्युवोऽयासः'
ऋ. ७.५८.२

तुविम्रक्षः- (१) बहुतों से स्नेह करने वाला।
'तुविम्रक्षो नदनुमां ऋजीषी'
ऋ. ६.१८.२, का.सं. १८.१७.

तुविमात्र- बहुत धनराशि का स्वामी।
'तुविमात्रमवोभिः'
ऋ. ८.८१.२, साम. २.७९.

तुविराधाः - बहुत ऐश्वर्यों से सम्पन्न।
'शुष्मिणं तुविराधसं जरित्रे'
ऋ. ७.२३.५, अ. २०.१२.५.

तुविवाज - बहुत से वेगवान् अश्वादि साधन।
'तुविद्युम्न तुविवाजेभिरर्वाक्'
ऋ. ६.१८.११

तुविवाजा- प्रचुर अन्न या विद्या बोध से युक्त स्त्री या प्रजा।
'रेवतीर्नः सधमादः
इन्द्रे सन्तु तुविवाजाः'
ऋ. १.३०.१३, अ. २०.१२२.१, साम. १.१५३, २.४३४, तै.सं. १.७. १३.५, २.२.१२.८, ४.१४.४, मै.सं. ४.१२.४,१८९,५,का.सं. ८.१७.

तुविवाधः- (१)एक साथ होने वाली कड़ी मार, एक साथ होने वाला प्रहार (२) बहुत शत्रुओं को बांधने वाला।
'महावीरं तुविबाधमृजीषम्'
ऋ. १.३२.६, तै.ब्रा. २.५.४.३.

तुविवाध- अनेक शत्रुओं को बाधित करने वाला, अनेकों से मुकाबला करने वाला।

तुविशग्मः- बहुत से सुखों से पूर्ण इन्द्र।
'यः शग्मस्तुविशग्म ते'
ऋ. ६.४४.२

तुविश्रवस्तमः - (१) अतिशयेन बहुश्रुतः दया। (बहुत ज्ञान वाला) (२) बहुत ऐश्वर्यों से सम्पन्न (३) अग्नि।
'अग्निस्तुविश्रवस्तमः'
ऋ. ३.११.६, साम. २.९०.८.

तुविशुष्म - बहुत बलवाला।
'त्रिकद्रुकेषु महिषो यवाशिरं तुविशुष्मः'
ऋ. २.२२.१, अ. २०.९५.१, साम. १.४५७, २.८३६, कौ.ब्रा. २७.२, शं.श्र.सू. १५.२.१, तै.ब्रा. २.५.८.९

तुविष्टम - (१) तुविस्तम्, बहुविधा शक्तियों और ऐश्वर्यों में सबसे महान् बलवान्
'तुविष्टमो नरां न रह गम्याः'
ऋ. १.१८६.६.
(२) अति अधिक प्रजाओं का स्वामी, (३) नाना प्रकार के ऐश्वर्य के सुख, (४) प्रजावृद्धि।
'तुविष्टमाय धायसे'
ऋ. १.१३०.२
अति अधिक प्रजाओं के स्वामी राष्ट्र के धारक

के लिये ।

तुविष्वणासः – (ब.व.) – (१) बहुत प्रकार से शब्द करने वाले (२) नाना स्वरों से वेदपाठी ।
'तुविष्वण सो मारुतं न शर्धः'
ऋ. ४.६.१०

तुविर्ष्वाणः– (१) बहुत शब्द करने वाला मेघ ।
'सुम्नं तुविष्वणीनां प्राध्वरे'
ऋ. ८.४६, १८
(२) बहुत ऐश्वर्य देने वाला ।
'वज्रेण हत्व्यवृणक् तुविष्वणिः'
ऋ. २.१७.६
(३) यः बहून् पदार्थान् वनति संभजति (बहुत पदार्थों का सेवक (४) बहुत से स्वर अर्थात् वर्णध्वनियों को उत्पन्न करने वाला जीवात्मा ।
'वृथा जुहूभिः सृण्या तुविष्वणिः'
ऋ. १.५८.४
ज्वालाओं द्वारा (जुहूभिः) और अपने वेग से गमन करने के शक्ति से चटापटा आदि अनेक शब्द करता है, उसी प्रकार जीवात्मा प्राणों और स्वंय सरण करने वाली वाणी द्वारा (सृण्या) अनायास ही (वृथा) बहुत से स्वर और स्वरध्वनियां उत्पन्न करती हैं ।

तुवीमघः – (१) बड़े ऐश्वर्यों का स्वामी ।
'एवारातिस्तुवीमघ'
ऋ. ८.९२.२९, अ. २०.६०.२, साम. २.१७५.
'सहस्रेषु तुवीमघ'
ऋ. १.२९.१–७, अ. २०.७४.१–७, का.सं. १०.१२, तै.ब्रा. २.४.४.८.
(२) प्रचुर ऐश्वर्य वाला –परमेश्वर इन्द्र ।
'गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु
सहस्रेषु तुवीमघ'

तुवीरवः– बहुत शब्द करने वाला–मन ।
'स इद्दासं तुवीरवम् पतिर्दन्
ऋ. १०.९९.६

तुव्योजाः– तुवि + ओजस् । बहुत बल युक्त ।
'अस्मद्र्यक् शुशुचानस्य यम्याः'
ऋ. ४.२२.८

तुष – सूप से फटकने के बाद अन्न से निकलने वाली भूसी आदि ।
'शूर्पं पवित्रं तुषा ऋजीषाभिषवणीरापः'
अ. ९.६.१६

तुषयन्ती – अति प्रसन्न होती हुई ।
'अवेनन्तं तुषयन्ती बिभर्ति'
ऋ. १०.२७.१६

तुष्टुवान् – (१) ईश्वर की स्तुति करता हुआ (२) सत्य तत्वों का उपदेश करता हुआ ।
'स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवांसस्तनूभिः'
ऋ. १.८९.८, साम. २.१२२४ वाज.सं. २५.२१

तुष्टुवांसः– (१) पदार्थगुणान् स्तुवन्तः (पदार्थों तथा गुणों की स्तुति करते हुए) (२) परमेश्वर की स्तुति उपासना करते हुए (३) ज्ञानयोग्य पदार्थों का याथार्थरूप से वर्णन करते हुए ।

त्र्युधाः– त्रि + ऊधाः (१) तीनों प्रकारों के मेघों को उत्पन्न करने वाला सूर्य ।
(२) तीनों लोकों को रस देने वाल परमेश्वर ।
'उत त्र्युधा पुरुध प्रजावान्'
ऋ. ३.५६.३

तूणवध्म – तूणव + ध्म । तूणव नामक ढोल या ढक्कन बजाने वाला ।
'क्रोशाय तूणवध्मम्'
वाज.सं. ३०.१९, तै.ब्रा. ३.४.१.१३.

तूताव – तनाव – ववधे (वर्धते-बढ़ता है) । तु (वृद्धि होना) लिट् प्र.पु. ए.व. में । 'तुजादीनां दीर्घोऽभ्यासस्य' से अभ्यास 'उ' का दीर्घ ।
'स तूताव नैनमश्नोत्यं हतिः'
ऋ. १.९४.२, नि. ४.२५.

तूतुम् – तूर्णम् (शीघ्र) । तूर्णम्' से ही 'तू तु' हो गया है ।
'एता विश्वा सवना तू तुमाकृषे'
ऋ. १०.५०.६, नि. ५.२५.
हे इन्द्र ! इन सभी स्थानों को शीघ्र ही तुझे निवर्तित करता हूँ ।

तूतुजानः– (१) सर्वत्र व्यापक ।
'यो धर्मणा तूतुजानस्तुविष्मान्'
ऋ. १०.४४.१, अ. २०.९४.१
(२) सबको तीव्रगति देने वाला ।
'अस्या इदु प्र भरा तूतुजानः'
ऋ. १.६१.१२, अ. २०.३५.१२, मै.सं. ४.१२.३, १८३.१०, का.सं. ८.१६, नि. ६.२०.
(३) तूर्ण, त्वारमाण । तुज् + शानच् = तूतुजान । तुज् धातु हिंसार्थ कर है । अर्थ-आशुकारी, शीघ्रता करता हुआ या शीघ्र करता हुआ । तुज

धातु आशु करना अर्थ में आया है।

तुतुजिः- (१) शत्रुओं का नाशक (२) प्रजापालक।
'अतूतुजिं चित् तूतुजिरशिश्नत्'
ऋ. ७.२८.३

तूपरः- (१) सींगों वाला मेढा-भेड़ (२) भेड़ के समान प्रतिस्पर्धी से जान देकर लड़ने वाला।
'अश्वस्तूपरो गोमृगस्ते प्राजापत्याः'
वाज.सं. २४.१, तै.सं. ५.५.२३.१, मै.सं. ३.१३.२, १६८.१०.का. सं. (अश्व.) ८.२.
(३) बिना सींग का पशु।
'वैश्वदेवौ पिशङ्गौ तूपरौ'
वाज.सं. २९.५९.तै.सं. ५.५.२४.१

तूयम् - क्षिप्रम्-शीघ्र।
'आपित्वेनः प्रपित्वे तूयमागहि'
ऋ. ८.४.३, साम. १.२५२, २.१०७१, नि. ३.२०.
सोमपान का समय हो जाने पर हे इन्द्र शीघ्र आ।

तूर्ण्यर्थः- (१) शीघ्र ही अपने अभिप्राय को प्रकट करने वाला।
'प्रयत् स्तोता जरिता तूर्ण्यर्थः'
ऋ. ३.५२.५

तूर्ण्यर्था- (१) अतिशीघ्र गमन करने वाले जल अन्नादि से युक्त नदी, (२) शीघ्र ही समझ में आने वाले अर्थों से युक्त वाणी।
'आ धेनवः पयसा तूर्ण्यर्थाः'
ऋ. ५.४३.१, ऐ.ब्रा. २.२०.५, कै.ब्रा. १२.१.

तूर्णाश- (१) जल।
'तूर्णाशं न गिरेरधि'
ऋ. ८.३२.४, नि. ५.१६.
तूर्णम् अश्नुते (तुरन्त फैल जाता है) तूर्ण + अश + अण् (कर्म में) = तूर्णाश। जल तुरत फैल जाता है।

तूर्णिः - (१) शत्रुहिंसक सेना को आगे ले चलने वाला-इन्द्र।
'समना तूर्णिरुप यासि यज्ञम्'
ऋ. १०.७३.४
(२) शीघ्र।
'अपो यत् तूर्णिश्चरति प्रजानन्'
ऋ. १०.८८.६, नि. ७.२७.
जो अग्नि या सूर्य विविध कर्मों को जानता हुआ या जल उत्पन करता हुआ शीघ्र चलता है। (३) त्वर् + णिनि = तूर्णि। अर्थ- त्वरमाण वेगवान्। वैश्वानर अग्नि का विशेषण।

तूर्णितमः - अति शीघ्र कारी, आलस्य रहित
'प्रतिस्पशो विसृज तूर्णितमः'
ऋ. ४.४.३, वाज.सं. १३.११, तै.सं. १.२.१४.१, मै.सं. २.७.१५ ,९७.११, का.सं. १६.१५

तूर्यः- शत्रु हिंसक।
'त्वं तूर्यतरुष्पतः'
ऋ. ८.९९.५, अ. २०.१०५, १. साम. १.३११, २.९८७. वाज.सं. ३३.६६.

तूर्व- शत्रु बल-हिंसक योद्धा।

तूर्वन् - अतिवेग से गमन करता हुआ।
'प्रतूर्वन्नेह्यवक्रामन्नशस्तीः'
वाज.सं. ११.१५,तै.सं. ४.१.२.१, मै.सं. २.७.२, ७५.७, ३.१.३, ४.४, का.सं. १६.१,१९,२ श.ब्रा. ६.३.२.७.

तूर्वयाणः- (१) शीघ्रकारी रथों का स्वामी (२) शीघ्र शत्रु पर चढ़ाई करने वाला जन।
'तव त्रामभिरिन्द्र तूर्वयाणम्'
ऋ. १.५३.१०, अ. २०.२१.१०

तूर्वयाण - (१) शीघ्रगामी रथों का स्वामी, (२) हिंसाकारी प्रयाण करने में कुशल।
'रक्षो अग्निमशुषं तूर्वयाणम्'
ऋ. १.१७४.३.
(३) हिंसक शत्रु पर आक्रमण करने वाला वीर सैनिक (४) जिसके शासन में वीर सैनिक हों, दे. त्रामन् (५) शीघ्र यान वाला-इन्द्र।
'उत् तूर्वयाणं धृषता निनेथ'
ऋ. ६.१८.१३

तूर्षुतरणिः- (१) अतिवेगवान् पदार्थों में अतिशीघ्र गामी वायु, (२) हिंसाकारी शत्रुओं पर वेग से आक्रमण करने वाला (३) सूर्य।
'याभिः परिज्मा तनयस्य मज्मना
द्विमाता तूर्षु तरणिर्विभूषति'
ऋ. १.११२.४
सर्वत्र सब पदार्थों में अपने वेग से उथल पुथल मचादेने वाली और प्रेरित करने में समर्थ वायु (परिज्मा) अपने से उत्पन्न अग्नि के बल से (तनयस्यमज्मना) पृथिवी और आकाश दोनों को धारण करने वाला (द्विमाता) और अति वेगवान् पदार्थों में सर्वाधिक शीघ्रगामी होता

रहता है ।

अथवा, सब तरफ आक्रमण करने वाला दिग्विजयी पुरुष (परिज्मा) अपने राज्य प्रसारक सैन्य बल से (तनयस्य.यज्मना) राजवर्ग और प्रजा आदिकों पर शासनकारी (द्विमाता) या माता पिता दोनों का आदर करने वाला और हिंसाकारी शत्रुओं का वेग से आक्रमण करने वाला (तूर्षुतरणिः) या सूर्यवत् वेगवान् तेजस्वी नाना रक्षादि व्यवहारों से विशेष शोभा को धारण करता है (विभूषति) ।

तूल- अग्रभाग, मुख्य बल

'दिवि ते तूलमोषधे'

अ. १९.३२.३

तूः (तुर्) - (१) शत्रुवध का उपाय, शत्रुवध ।

'पृत्सु तूर्षु श्रवःसुच'

ऋ. ३.३७.७, अ. २०.१९.७

तृ - हिंसार्थक धातु । हिंसा करना ।

तृक्ष्य- तृक्षितुं वेदितुं योग्यः तृक्ष्यः, ज्ञातव्य ।

तृक्षि- विजिगीषु नायक ।

'येभिस्तृक्षिं वृषणा त्रासदस्यवम्'

ऋ. ८.२२.७

तृक्षु- (१) तृक्षुओं का कल, (२) बलवान् ।

'यद्वा तृक्षौ मघवन् द्रुह्यावा जने'

ऋ. ६.४६.८

तृच- तिसृणां ऋचां समाहारः (तीन ऋचाओं का समाहार या एकत्र होना तृच है) । त्रि + ऋच तृच् । ऋचि त्रे रुत्तरपदादिलोपश्च छन्दसि) । त्रि के इ' का लोप र का सम्प्रारण और ऋच् के ऋ का लोप । 'सम्प्रसारणाच्च' से पूर्वरूप ।

तृढ़ - मारा गया ।

'वैलस्थानं परितृढा अशेरन्'

ऋ. १.१३३.१

तृण- (१) घास, (२) विनाश योग्य शरीर, (३) शत्रु ।

'अद्धि तृणमघ्न्ये विश्व दानीम्'

ऋ. १.१६४.४०, अ. ७.७३.११,९.१०.२०, का.श्रौ.सू. २५.१.१९, आप. श्रौ.सू. ९.५.४, १५.१२.३, नि. ११.४४.

(४) वधकरना, हनन करना ।

'मधुधारमभि यमोजसातृणत्'

ऋ. २.२४.४, नि. १०.१३.

जिस जल धारा बरसाने वाले मेघ को ब्रह्मणस्पति से अभिहत किया ।

(५) तृद्यते यत् तद् तर्दनम्-जिसका तर्दन हो वही तृण है । व्रीहि, यव आदि ।

तृणास्कन्द- (१) तृण के समान निर्बलों पर आक्रमण करने वाला .(२) तृण डोलने वाला वायु, (३) तृणवत् चलने वाला देह ।

'तृणस्कन्दस्य नु विशः'

ऋ. १.१७२.३.

तृत - विस्तीर्ण आकाश ।

'त्वं तृतं त्वं पर्येषि उत्सम्'

अ. १७.१.१५

तृत्सु- (१) वैदिक काल का एक राजवंश (२) हिंसक पुरुष ।

'गव्या तु सुभ्यो अजगन युधानृन्'

ऋ. ७.१८.७

(३) तृद् + सु = तृत्सु । दीर्ण या युद्ध के लिये संगत - (४) दुष्टों का हिंसक क्षत्रिय ।

'इन्द्रेणैते तृत्सवो वेविषाणाः
आपो न सृष्टाः अधवन्त नीचीः'

ऋ. ७.१८.१५. नि. ७.२.

ये मेघ या असुर जो पहले ऊंची गति से या उत्तान होकर चलते थे, इन्द्र से दीर्णहोकर या युद्ध के लिये संगत होकर भी (एते इन्द्रेण तृत्सवः) जल के सदृश विलीनप्राय हो नीचे होकर चलने लगे (वेविषाणा आपो न सृष्टा नीचीः अधवन्त)

ये सारे राष्ट्र में फैले हुए दुष्टों के हिंसक क्षत्रिय (एते वेविषाणाः तृत्सवः) राजा के साथ मिलकर (इन्द्रेण) जो राजद्रोही हैं उन्हें (दुर्मित्रासः) फेके हुए जल की तरह (सृष्टाः आपः न) नीचे पहुचा दे । (नीची अधवन्त)

तृतीयक- तीसरे दिन आने वाला ज्वर, निजरा ।

'तृतीयकं वितृतीयम्'

अ. ५.२२.१३

'शीर्षलोकं तृतीयकम्'

अ. १९.३९.१०

तृतीयचक्र - (१) अतिअधिक तीर्णतम्, (२) सबसे ऊपर का लोक।

'तृतीयेचक्रे रजसिप्रियाणि'

ऋ. १०.१२३.८, अ. १३.१.११, साम. २.११९८.

तृतीयज्योतिः- (१) प्राणों से बढ़कर आत्मा रूप ज्योति ।
'तृतीयेण ज्योतिषा संविशस्व'
ऋ. १०.५६.१, अ. १८.३.७, साम. १.६५, का.सं. ३५.१७, तै.ब्रा. ३.७.१.१४, तै.आ. ६.३.१. ४.२, आप.श्रौ.सू. ९.१.१७, मा.श्रौ .सू. ३.४.१.

तृतीय धाम - (१) सर्वोच्च लोक (२) परम, सबसे परे विद्यमान जीव और प्रकृति से भी विलक्षण परम तेज (३) तृतीय रजस, तृतीय वाक, तृतीयपृष्ठ, तृतीय लोक । तृतीय का अर्थ है तीर्णतम, सबसे उच्च ।
'तृतीये धामन् अध्यैरमन्त'
वाज.सं. ३२.१०, तै.आ. १०.१.४, महा.ना.उप. २.५.

तृतीयनांक - (१) तृतीय, परम ज्योतितिर्मय लोक
'तृतीयेनाके सधमादं मदेम'
अ. ६.१२२.४
(२) पुरम दुःखों से पार सुखमय मुक्तिधाम ।
'तस्माच्चरोदधि नाकं तृतीयम्'
अ. ९.५.६
(३) सबके उत्कृष्ट सर्वोच्च निःश्रेयस पद ।
'तृतीये नाके अधिविश्रयस्व'
अ. ९.५.४,८, १८.४.३

तृतीयब्रह्म - (१) परम तीर्णतम वेदज्ञान, सामगान या ईश्वर का तीर्णतम रूप (२) आत्मा की सुषुप्ति अवस्था ।
'तृतीयेन ब्रह्मणा वावृधानाः'
अ. ७.१.१, शां.श्रौ.सू. १५.३.७.

तृतीयभ्राता- (१) सबसे उत्कृष्ट तीर्णतम् सर्वधारक स्वरूप, (२) तीसरा भाई जलमय आपोमय प्रकृति (३) जल को पृष्टपर लिये भूलोक घृतपृष्ट, (४) मेघ, (५) जल को पीठ पर लिये विद्युत् रूप अग्नि ।
'तृतीयोभ्राता घृतपृष्ठो अस्य'
ऋ. १.१६४.१, अ. ९.९.१, नि. ४.२६.

तृतीयःभ्राता घृतपृष्टः- (१) तीसरा भाई अग्नि, विद्युत् जल को अपने पीठ पर धारण करने वाला है, (२) तृतीय सर्वोत्कृष्ट भ्राता पोषक आत्मा है जो जलों के वर्षक विद्युत् के समान और सब अंगों में तेज और बल का सेचन करने वाला है, (३) तीसरा भाई अग्नि है जो घृत द्वारा सिक्त हो और बढ़ता है । सूर्य का तेज धारण करने से वह भ्राता है ।

तृतीयराष्ट्र - (१) तृतीय या सबसे श्रेष्ठ राष्ट्र , (२) राष्ट्रोपयोगी प्रजा धन और ऐश्वर्य ।
'तृतीयं राष्ट्र धुक्षे'
अ. १०.१०.८

तृतीयशंख- तृतीय शंख सूक्त ।
'तृतीयेभ्यः शंखेभ्यः स्वाहा'
अ. १९.२२.१०

तृतीय सवन - (१) तीसरा सवन, (२) आदित्य ब्रह्मचर्य का समय ।
'अग्ने तृतीये सवने हिकानिषः'
ऋ. ३.२८.५, आश्व.श्रौ.सू. ५.४.६.

तृतीयं कर्म- तीसरा श्रेष्ठ कर्म वीर्यः सेचन ।
'आस्थापयन्त तृतीयेन कर्मणा'
ऋ. १०.५६.६

तृतीयं रजः- तीसरा लोक द्यौलोक ।
'तृतीये सन्तु रजसि प्रजावतीः'
ऋ. ९.७४.६

तृतीयाद्यौः- (१) तृतीय द्युलोक ।
'तृतीयस्यामितो दिवि'
अ. ५.४.३, ६.९५.१, १९.३९.६, हि.गृ.सू. २.७.२.
(२) शरीर का तृतीय लोक मूर्धास्थान ।

तृतीया पृथिवी - द्यौ ।
'य स्तृतीयस्यां पृथिव्यामसि यत्तेऽनाधृष्ट नाम । यज्ञियं तेन त्वादधे'
वाज.सं. ५.९

तृदिल- दुःखों, कष्टों तथा संशयों को काटने वाला ।
'तृदिला अतृदितासो अद्रयः'
ऋ. १०.९४.११

तृध् - (धा) तृण के समान तोड़ना ।
'तृन्धि दर्भ सपत्नान् मे'
अ. १९.२९.२

तृपत्- (१) तृप्त होता हुआ ।
'तृपत् सोमंपाहि द्रह्यदिन्द्र'
ऋ. २.११.१५
(२) तृप्त, करता हुआ ।

तृपल - (१) क्षिप्र कार्यकारी (२) सबको अन्न सुखादि से तृप्त करने वाला,
'प्रहंस्तसस्तृपलं मन्युमच्छ'

ऋ. ९.९७.८, साम. २.४६७.

(३) तृप्र -सृप्र- क्षिप्र। शीघ्र। (४) दीक्षित ने इसे 'दुःख' या दुःख का कारण, अर्थ में लिया है। 'क्या अंग्रेजी का Trouble शब्द तृपल का बिगड़ा रूप है। 'तृप्रं दुःखं तत्करणञ्च।

(५) सृप्र का अर्थ गमनशील है (सृप् + रक्) अतः तृपल का स्पष्ट अर्थ गमनशील प्रहार वाला हुआ

तृपलप्रमर्मा - (१) बड़े वेग से शत्रुओं पर प्रहार करने वाला।

'आपान्तमन्युस्तृपलप्रभर्मा'

ऋ. १०.८९.४, तै.सं. २.२.१२.३, तै.आ. १०.१.९, नि. ५.१२.

(१) ग्रावादिभिः क्षिप्र प्रहरी (ग्रावा आदि से शीघ्र प्रहार करने वाला) क्षिप्र प्रहारी- तृपल प्रहारी। क्षिप्र का ही तृपल हो गया है।

प्रभामी की व्युत्पत्ति -प्र + हृ (धारणार्थक) + मनिन् = प्रभर्मन् (हृग्रहोर्भश्छन्दसि)। तृप्रन् उपल को अर्थ में आया है। अन्य प्रहार -साधन भी इसका अर्थ हो सकता है। दीक्षित ने इसे दुःख या दुःख का कारण अर्थ में लिया है। (तृप्र दुःखं तत् कारणञ्च) सृप्र का अर्थ गमनशील है। सृप् + रक्। अतः गमनशील या शीघ्रता से प्रहार करने वाला अर्थ हुआ।

(३) इन्द्र या राजा का विशेषण

तृप्रांशुः- एक एक रेशे में तृप्त, रस से पूर्ण सोमरस

'सोमासो नये सुता स्तृप्तांशवः'

ऋ. १.१६८.३

तृप्ति- जल-पान के समान, तृष्णा को शान्त करने वाली तृप्ति।

'स्वधा च यत्र तृप्तिश्च'

ऋ. ९.११३.१०

तृप्र - (१) तृप्त, (२) अति अतिधनी।

'न तृप्रा उरुव्यचसम्'

ऋ. ८.२.५

तृप्रदंशी- (१) भरपेट या अतिशीघ्र काट देने वाला -सर्प (२) मुख, पुच्छ पाद सभी अंगों से काटने वाला मच्छड़ आदि।

'अर्भस्य तृप्रदंशिनः'

अ. ७.५६.३

तृंहती- नाशकारिणी सेना।

'नम उगणाभ्यस्तृंहतीभ्यश्च वो नमः'

वाज.सं. १६.२४, तै.सं. ४.५.४.१, मै.सं. ८.९.४, १२३.१५, का.सं. १७.१३.

तृष्ट- (१) दाह जनक।

'तृष्टमेतत् कटुकमेतत्'

ऋ. १०.८५.३४, अ. १४.१.२९

'यद् वाचस्तृष्ट जनयन्त रेभाः'

ऋ. १०.८७.१३, अ. ८.३.१२, १०.५.४८.

'मा तृष्टानामसि'

अ. १९.५७.३

(२) प्यासा, (३) अभिलाषी (४) तीखा कठोर वचन।

'अति तृष्टं ववक्षिथ अथैव सुमना असि'

ऋ. ३.९.३

(५) कटुरुप।

तृष्टजम्भय - तीक्ष्ण दांत वाला जन्तु।

'तृष्टजम्भा आश्रृणोतमे'

अ. ६.५०.३

तृष्टदंश्मा- तीक्ष्ण काटने वाला सर्प आदि।

'यस्ते सर्पो वृश्चिकस्तृष्टदंश्मा'

अ. १२.१.४६, कौ.सू. १३९.८

तृष्टधूम - (१) प्यास लगाने वाला धूम।

'अध रात्रि तृष्टधूमम्'

अ. १९.५०.१

(२) निः श्वास लेने वाला सर्प।

तृष्टवन्दना - (१) कामातुर, तृष्णातुर पुरुषों को चाहने वाली स्त्री।

'तृष्टिके तृष्टवन्दने'

अ. ७.११३.१

तृष्टिका- काम तृष्णा से आतुरस्त्री।

तृष्णजः- (१) वर्षाऋतु ग्रीष्म से ही वर्षा ऋतु का उदय होता है। अतः यह तृष्णज है। तृष्णा + जन् + ड= तृष्णज।

'तृष्णजेन दिव उत्सा उदन्यवे'

ऋ. ५.५७.१, नि. ११.१५, कौ.ब्रा. २०.४.

जिस प्रकार वर्षा ऋतु में द्युलोक से जल (दिवः उत्मः) जलार्थी जनता के लिए आते हैं (उदन्यवे) (२) अभिलाषुक - अभिलाषा वाला -यास्क (३) दुर्ग ने इसे 'तृष्णाज' का इसे बिगड़ा रूप माना है। ऋचा में तृष्णज् आया है। जिसका अर्थ है- 'तृष्णा उपजायते विशेषत

यस्मिन् काले (जिस काल में तृष्णा बहुत होती है। वह समय प्रावृट् या वर्षाऋतु है)।

(४) तृष् + णज् = तृष्णज्। प्यासा।

तृषाणः- पियासा कुल पुरुष।

'कदा सुतं तृषाणा ओक आगमः'

ऋ. ८.३३.२, अ. २०.५२.२, ५७.१५, साम. २.२१५.

तृष्टामा - (स्त्री) शरीर की एक नाड़ी जो आमाशय गत भोजन को पचाती है। जिससे आत्मा पहले गति करता है।

'तृष्टामयाप्रथमं यातवे सजूः'

ऋ. १०.७५.६

तृष्णा- प्यास।

'पदीष्ट तृष्णया सह'

ऋ. १.३८.६

तृष्णामार- तृष्णा के कारण मारनें वाला रोग, पित्त, दाह।

'क्षुधामारम् तृष्णामारम्'

अ. ४.१७.६

तृष्वी- (१) अति वेग वाली, (२) अति प्यासी, (३) जल-रहित भूमि (४) ऐश्वर्य चाहने वाली, तृ + युक् = तृषु (त्वर् का तृ भाग) (अनेन फल आगन्तुम् रति) त्वर + त्वरते। तृषु त्र ङीष् = तृष्णी (५) क्षिप्रगायि नी। (६) तृष्णालु (७) तेज आक्रमण के साथ। -दया.

'तृष्वीमनु प्रसितिं द्रूणननः'

ऋ. ४.४.१, वाज.सं. १३.९, तै.सं. १.२.१४.१, मै.सं. २.७.१५. ७.८.का.सं. १६.१५, नि. ६.१२.

तृष्यत् - प्यासा।

'मय इवापो न तृष्यते बभूथ'

ऋ. १.१७५.६.

तृषु - (१) तीव्रवेग, शीघ्र अतिशीघ्र।

'तृषु यदन्ता तृषुणाववक्ष'

ऋ. ४.७.११, का.सं. ७.१६.

'अश्रेत् तृषु यदन्ना समवृक्त जम्भैः'

ऋ. ७.३.४

'तृषु अविष्यन् अतसेषु तिष्ठति'

ऋ. १.५८.२

शीघ्र व्यापक आकाश पृथ्वी आदि तत्वों के आश्रय पर ही उन्हीं पदार्थों का भोग करता हुआ उन्हीं में रहता है।

तृषुच्यवाः - तीक्ष्ण वेग युक्त गति वाला।

'तृषुच्यवसो जुह्वो नाग्नेः'

ऋ. ६.६७.१०

तृषुच्युत् - (१) शीघ्र ही फिसल जाने वाला, (२) अतिशीघ्रता से गति करने वाला (३) शीघ्र ही शत्रु को सिंहासन पर से उखाड़ फेंकने वाला

'प्राचाजिह्वं ध्वसयन्तं तृषुच्युतम्'

ऋ. १.१४०.३

तृष्णु- तृप्त होने में समर्थ।

'कुविन्वस्य तृष्णवः'

अ. २०.२४.२

तृह् - (धाः) नाश करना, हत्या करना।

'अथो कुरूरुमतृहम्'

अ. २.३१.२

'वीरा ये तृह्यन्ते मिथः'

अ. ५.१७.७.

(२) हिंसा करना।

'तृणोढ्वेनान् मत्यं भवस्य'

अ. ८.८.११

तृह्यमाण- विनाश किया जाता हुआ।

'तेषामु तृह्यमाणानाम्'

अ. १०.४.१८

त्यृतु - (१) तीन ऋतुओं वाला संवत्सर। फाल्गुन से ज्येष्ठ तक ग्रीष्म, आषाढ़ से अश्विन तक वर्षा, और कार्तिक से माघ तक शरद।

'त्र्यृतुः संवत्सरः ग्रीष्मो वर्षा हेमन्त इति।' ऋतुणों का तीन ही विभाग वैदिक काल में हुआ है। छः विभाग पीछे का है।

तेगा - तीक्ष्णता।

'तेगान्दंष्ट्राभ्याम्'

वाज.सं. २५.१ मै.सं. ३.१५.१ः १७७.७, का.सं. (अश्व) १३.१

तेजति - उत्साहयति (उत्साहित करता है)। तिज् धातु के लट् प्र.पु. ए.व.का रूप।

तेजन - तेजस्वी सूर्य, (२) तीक्ष्ण स्वभाव का (३) कटु या तिक्त गुण वाला।

'यथा द्यांच पृथिवीं अन्तस्तिष्ठति तेजनम्'

अ. १.२.४

(४) सरकण्डा।

'वासन्तिक मिव तेजनम्'

अ. २०.१३६.३
(५) पाप, अग्नि, ताप, (६) ब्रह्माण्ड ।
'कपिर्बभस्ति तेजनम्'
अ. ६.४९.१, का.सं. ३५.१४, जै.ब्रा. २.२२३, तै.आ. ६.१०.१, प.श्रौ.सू. १४.२९.३.
(७) तीक्ष्ण अस्त्र, (८) हल जोतने का फाल (फार) ।
'क्षेत्रमिव विममुस्तेजनेन'
ऋ. १.११०.५
जैसे किसान खेत को फाल से जोतते हैं या सरकण्डे से मापते हैं ।

तेजनी - अग्नि भड़कने वाली पूणी ।
'आयवनेन तेजनी'
अ. २०.१३१.८

तेजमानः - तीक्ष्ण करता हुआ ।
'यं त्वामयं स्वधितिस्तेजमानः'
ऋ. ३.८.११, तै.सं. १.३.५.१, मै.सं. १.२.१४, २३.७, का.सं. ३.२,२६.३.

तेजिष्ठजा- तेजस्विनीशक्ति
'तेजिष्ठयातिथिग्वस्य वर्तनी'
ऋ. १.५३.८, अ. २०.२१.८

तेजिष्ठा- (१) अत्यन्त तीक्ष्ण सेना या नीति युक्त बल, (२) तेजस्विनी अग्नि से दीप्त होने वाले शत्रु पर गोला या शस्त्रों को फेंकने वाली शक्ति जैसे -बन्दूक, तोप आदि ।

तेदनी- (१) तेजनी, तीक्ष्ण शक्ति (२) भोजनग्रसन् कीक्रिया ।
'तेदनीमधरकण्ठेन'
वाज.सं. २५.२, मै.सं. ३.१५.२, १७८.५.

तेपानः- संतप्त पीड़ित करता हुआ ।
'तेपानो देव रक्षसः'
ऋ. ८.६०.१९, १०२.१६

त्रेता - (१) भूत, भविष्यत् और वर्तमान् तीनों कालों में होने वाले कार्यों को देखना, (२) त्रेता युग ।
'त्रेतायै कल्पिनम्'
वाज.सं. ३०.१८

त्रेतिनी- ईश्वर की तीनों लोकों में व्यापिनी शक्ति ।
'ऊर्ध्वा यत्ते त्रेतिनीभूत्'
ऋ. १०.१०५.९

त्रेधा - त्रि + एधाच् । तीन भाग ।
'तमू अकृण्वन् त्रेधा भुवे कम्'
ऋ. १०.८८.१०, नि. ७.२८.
उस सुख कारक अग्नि को देवताओं ने तीन भागों में बांटा, । पुनः-
'इदं विष्णु विंचक्रमे
त्रेधा निदधे पदम्
समूहुमस्य पांसुरे'
ऋ. १.२२.१७, अ. ७.२६.४, साम. १.२२२, २.१०१९, वाज.सं. ५.१५, वाज.सं. (का.) ५.५.२, तै.सं. १.२.१३.१, मै.सं. १.२९.१८.१८ . ४.१.१२.१६.५, का.सं. २.१०. श.ब्रा. ३.५.३.१३, नि. १२.१९.
आदित्य (विष्णुः) इस सृष्टि में जो विभागों में बंटा है विविध प्रकार से क्रमण करते हैं (इदं वि चक्रमे) । वे तीन प्रकार से अपना पद रखते हैं ।
शाकपूणि के अनुसार आदित्य रूप से द्युलोक में, विद्युत् रूप से अन्तरिक्ष में तथा अग्नि रूप से पृथ्वी में (त्रेधा पदं निदधे) । जो पद मलीन अन्तरिक्ष में है वह अन्तर्हित है जिससे सदा दृश्य मान नहीं है (अस्य पांसुरे समूढम्)।

त्रेधा क्षरन्ती गीः - वाणी का तीन प्रकार से क्षरण होता है - मुख से, चक्षु से और हाथ से अथवा अभिधा, लक्षणा और व्यञ्जना रूप से, अथवा आकांक्षा, योग्यता और आसत्ति रूप से, या वेदवाणी मन्त्र, ब्राह्मण और कल्प भेद से, अथवा शब्द से, अर्थ से और शब्दार्थ सम्बन्ध से ।
'बाढ़े अश्विना त्रेधा क्षरन्ती'
ऋ. १.१८१.७

त्रेधापद - तीन प्रकार का संसार, (१) प्रत्यक्ष पृथिवी मय जो प्रकाश से रहित है । (२) कारण रूप अदृश्य, (३) प्रकाशमय सूर्यादि (४) तीन डेग-
'त्रेधा निदधे पदम्'
ऋ. १.२२.१७
(३) सृष्टि के तीन स्थिर पद- प्रत्यक्ष प्रकाशमयी पृथ्वी, अदृश्य कारण त्रेसरेणु और प्रकाश मय सूर्यादि ।

त्रेधा भूः - त्रि + एधाच् =त्रेधा, त्रेधा + भू + क्विप् = त्रेधाभू, अर्थ-तीन भावों में होना ।

त्रेधाविचक्रमाण - सृष्टि, स्थिति और प्रलय या

सूक्ष्म कारण रूप सूक्ष्म कार्यरूप और पदार्थों को तीनों प्रकारों से सब पदार्थों को विशेष रूप से संचालित करने वाला विष्णु ।
'विचक्रमाणस्त्रेधोरुगायः'
ऋ. १.१५४.१, अ. ७.२६.१, वाज.सं. ५.१८, तै.सं. १.२.१३.३, मै.सं. १.२९.१९.९, का.सं. २.१०, श.ब्रा. ३.५.३.२१.

त्रेधापिहितं एकः:- एक ही अग्नि या परमेश्वर तीन प्रकार से विशेष रूप से बतलाया जाता है ।
'एकस्त्रेधा विहितो जातवेदः'
अ. १८.४.११

त्रेधा हिरण्य - तीन प्रकार का हिरण्य एक अग्नि का प्रिय पदार्थ दूसरा पीड़ित सोम का और तीसरा सृष्टि उत्पन्न करने वालो जलों या जीवों का वीर्य अर्थात् अग्नि से तप्त सुवर्ण औषधियों का रस और शरीर का वीर्य ।
'त्रेधा जातं जन्मनेदं हिरण्यम्'
अ. ५.२८.६

त्वेषः- (१) तीक्ष्णकान्तियुक्त
'महित्वेषा अभवन्तो वृषप्सवः'
ऋ. ८.२०.७
(२) त्विष् (दीप्त्यर्थक)+ अच् = त्वेष अर्थ है- दीप्तिमान् (३) बल, (४) भय, (५) दीप्त, (६) प्रतीक दर्शन, (७) अंग,(८). मुख (९) महान् ।
'आत्वेषं वर्तते तमः'
ऋ.स्वि. १०.१२७.१, अ. १९.४७.१, वाज.सं. ३४.३२, नि. ९.२९.
महान् अन्धकार व्याप्त रहता है । प्रदीप्त के अर्थ में -
'त्वेषमित्था समरणं शिमीवतोः
इन्द्राविष्णू सुतपा वामुरुष्यति
या मर्त्याय प्रतिधीयमानमित्
कृशानोरस्तु रसनामुरुष्यथः'
ऋ. १.१५५.२, आश्व.श्रौ.सू. ६.७.९, नि. ११.८.
दैर्घतमस सूक्त में इन्द्रके लिये प्रयुक्त । दुर्ग ने इसे प्रक्षिप्त माना है ।
हे इन्द्र तथा विष्णु (इन्द्राविष्णू), इष्ट प्रदान कर्म वाले या प्रहरणादि कर्म वाले आप दोनों के (शिमीवतोःवाम्) इस प्रकार प्रदीप्त समागम को (इत्था त्वेषं समरणम्) हुत शिष्ट सोमपीती यजमान (सुतपाः) पूजित या वर्णन करता है (उरुष्यति) । जो इन्द्र और विष्णु (या) हविर्दाता यज्ञशील यजमान को (मर्त्याय) यज्ञ के फल रूप (प्रतिधीयमानम् इत्) भोजन या अन्न को (असनाम्) हवि पहुंचाने वाले (अस्तुः) अग्नि के द्वारा (कृशानोः) अविच्छेद्यमान से प्रस्तुत करते या देते हैं (उरुष्यथः) ।
(१०) विद्या, न्याय और तेज या देदीप्यमान, (११) रुद्र को विशेषण
'त्वेषं वयं रुद्रं यज्ञसाधम्
वंकुं कविमवसे नि ह्वयामहे'
ऋ. १.११४.४, का.सं. ४०.११, आप.श्रौ.सू. १७.२२.१.

त्वेषंथ - प्रदीप्त, दीप्ति, तेज, ज्ञान प्रकाश ।
'शूरस्येव त्वेषथादीषते वयः'
ऋ. १.१४१.८
सूर्य के जलाकर्षक किरण जिस प्रकार तेज से व्याप्त होता है उसी प्रकार जीव के भी उत्तम ज्ञान उत्पन्न करने वाले हंसवत् ज्ञानी पुरुष अपने ज्ञान प्रकाश से (त्वेषपात्) तुझे प्राप्त होवें ।

त्वेषद्युम्न - उज्ज्वल यश ।

त्वेषनृम्ण - प्रचण्ड दीप्ति का धनी सूर्य
'यतो जज्ञ उग्रस्त्वेषनृम्णः'
ऋ. १०.१२०.१, अ. ५.२.१, २०.१०७.४, साम. २.८३३, वाज.सं. ३३.८०, ऐ.आ. १.३.४.२, ५.१.६.५, आप.श्रौ.सू. २१.२२.३, मा.श्रौ.सू. ७.२.६, नि. १४.२४.

त्वेषप्रतीका - (१) भयप्रजीका, (२) बल प्रतीका, दीप्तिप्रतीका, भयदायिनी , बल दायिनीदीप्ति दायिनी, (३) दीप्त ज्वाला ही जिसका प्रतीक हो अग्नि ।
'सेनेव सृष्टामं दधाति
अस्तुर्न दिद्युत् त्वेषप्रतीका'
ऋ. १.६६.७, नि. १०.२१.
सेनापति के द्वारा प्रेषित सेना की तरह दीप्त दर्शना शिखा होकर चलाने वाले के वज्र की तरह अग्नि भय और बल देता है ।
(४) तेज प्रकाश देने वाली, (५) दीप्तियुक्त मुखवाली कान्तिमती स्त्री ।
'त्वेष प्रतीका नभसो नेत्या'

ऋ. १.१६७.५

त्वेषयामाः- तीव्र वेग से जरने वाले वायुगण
'यत् त्वेषयामा नदयन्त पर्वतान्'
ऋ. १.१६६.५

त्वेषरथः - (१) दीप्तिमान् सूर्य के द्वारा चलने वाला मारुत, (२) चमकीले रथ पर आरूढ़ पुरुष, (३) तेजो मय आत्मा में गति डालने वाला-प्राणगण ।
'युवा स मारुतो गणः त्वेषरथो अनेद्यः'
ऋ. ५.६१.१३

त्वेषस् - दीप्तियुक्त तेज ।
'अस्येदु त्वेषसा रन्त सिन्धवः'
ऋ. १.६१.११, अ. २०.३५.११.

त्वेषसंदृशः- (१) समान कान्ति या तेज (त्वेषसंदृक्) से दीख पड़ने वाले- मरुत (२) विद्युत् दीप्ति से ज्ञात होने वाले (३) उज्ज्वल दृष्टि वाला ।
'पार्थिवस्य जगत त्वेषसंदृक्'
ऋ. ६.२२.९, अ. २०.३६.
'त्वेष संदृशो अनवभ्रराधसः'
ऋ. ५.५७.५

त्वेष्य - प्रखर तेज, अति तीक्ष्ण तेज ।
'जनूश्चिद् वो मरुतस्त्वेष्येण'
ऋ. ७.५८.२

त्वेषित - त्विष् + अच = त्वेष, त्वेष + इतच् = त्वेषित । अर्थ - (१) जिसमें तेज या दीप्ति आ गई हो । (२) तेजस्वी, -दया.
संदीपित, (३) स्तुति परक मंत्रों से आवेशित ।
'विश्वेत् ता विष्णुराभरत् उरुक्रमस्त्वेषितः'
ऋ. ८.७७.१०, मै.सं. ३.८.३, ९५.१३.
व्यापनशील, बड़े बड़े डेगों वाला (उरुक्रमः) या अत्यन्त पराक्रमी एवं स्तुति परक मंत्रों से संदीपित इन्द्र ने उन सभी धनों को दिया (विश्वा इत् ता आभरत्) तेजस्वी उत्तम गुणों को प्राप्त (त्वेषितः विष्णुः) एवं अत्यन्त पराक्रमी उरू क्रमः) सेनापति ने उन सभी धनों को दिया ।

त्वेषी - तीक्ष्ण, तेजस्विनी ।
'सस्वश्चिद्धि समृतिस्त्वेष्येषाम्'
ऋ. ७.६०.१०

तैमान् - सर्प की एक जाति ।
'असितस्य तैमातस्य'
अ. ५.१३.६

तैलकुण्ड - कड़ाह ।
'तैलकुण्डमिवाङ्गुष्ठम्'
अ. २०.१३६.१६

त्रैककुद - (१) त्रिकुटी, (२) वेदत्रयी से उत्पन्न ज्ञान ।
'यदाञ्जनं त्रैककुदम्'
अ. ४.९.९, तै.आ. ६.१०.२, आप.मं.पा. २.८.११, हि.गृ.सू. १. ११.५.
(३) तीनों लोकों में सर्व श्रेष्ठ ।
'देवाञ्जन त्रैककुदम्'
अ. १९.४४.६

त्रैतन - (१) धनजन और कोष तीन प्रकार की शक्तियों को बढ़ाने वाला, (२) शरीर, आत्मा और मन के बल और त्रिविध वेद विद्या से युक्त आचार्य ।
'शिरोयदस्य त्रैतनो वितक्षत्'
ऋ. १.१५८.५

त्रैयम्बक - (१) त्र्यम्बक सम्बन्धी (२) तीन तीन अधिकारों में लगा पुरुष ।
'कृष्णाः पृषन्तस्त्रैयम्बकाः'
वाज.सं. २४.१८

त्रैवृष्णः - (१) यः त्रिषु वर्षर्ति-सूर्य -दया. (२) शास्य, शासक और राजसभा इन तीनों में सूर्यवत् प्रबन्धकर्ता ।
'त्रैवृष्णो अग्ने दशभिः सहस्रैः'
ऋ. ५.२७.१

त्रैष्टुभ- (१) तीनों वेदों से स्तुति करने योग्य परमेश्वर (२) तीनों वेद
'त्रैष्टुभाद् वा त्रैष्टुभं निरतक्षत'
ऋ. १.१६४.२३, ऐ.ब्रा. ३.१२.६, कौ.ब्रा. १४.३.
(३) वैदिक परिभाषा में त्रैष्टुभ के अर्थ -तीनों लोक-पृथिवी, अन्तरिक्ष और द्यौ (४) वज्र, (५) इन्द्र, (६) माध्यन्दिन सवन, (७) ओज, (८) इन्द्रिय (९) क्षात्रबल, (१०) क्षत्रिय, (११) राका, (१२) वायु, (१३) अपान, (१४) प्रजनन, (१५) प्राण , (१६) चक्षु, (१७) उरः स्थल, (१८) आत्मा, (१९) पञ्चदशस्तोम, (२०) रुद्रों की पत्नी, (२१) ११ अक्षरों या ४४ अक्षरों का छन्द त्रिवृत

वज्रः तस्य स्तोमम् इवेत्यौपमिकम्
'वज्रः त्रिष्टुभ् त्रैष्टुभ इन्द्रः' - कौ.सू. ३.३
त्रैष्टुभोवज्रः- गो.ब्रा. ३.१.१८
ऐन्द्रं हित्रैष्टुभं माध्यन्दिनम् सवनम् -ऐ.ब्रा. ६.११
'एतवै छन्दसां वीर्यवत्तमं यत् गायत्री च त्रिष्टुप् च-
बलं वैवीर्यं त्रिष्टुप् -कौ.सू ७.२
ओजो वा इन्द्रियं वीर्यं त्रिष्टुप् -ऐ.आ. १.४.२८
उरस्त्रिष्टुप् -श.ब्रा. ८.६.२.७
त्रिष्टुप् छन्दो वै राजन्य-तै.ब्रा. १.२.८
क्षत्रं वै त्रिष्टुप् -कौ.सू. ७.१०
या राका सा त्रिष्टुप् - ऐ.ब्रा. ३.४७
त्रैष्टुभौ हि वायुः श.ब्रा. ८.७.३.१२.
त्रैष्टुभेऽन्तरिक्ष लोके त्रैष्टुभो वायुः अध्यूढ़ - कौ.सू. १७.३
यजुषां वायुर्देवितं तदेव ज्योतिः त्रैष्टुभम् छन्दोऽन्तरिक्षम् स्थानम् - गो.ब्रा. ४.१.२९
त्रिष्टुप् इयं पृथिवी त्रिष्टुप् असौ द्यौः - श.ब्रा.१.७.२.१५
'त्रैष्टुभं वा त्रैष्टुभान्निरतक्षत'
अ. ९.१०.१
अपानः त्रिष्टुभम् -
त्रैष्टुभं चक्षुः -
आत्मा वै त्रिष्टुप् -श.ब्रा. ६.४.२.६
'त्रैष्टुभं पञ्चदशः सोमः .
ता. ५.२.१४
त्रिष्टुप् रुद्राणांपत्नी गो.ब्रा. ३.२.९
एकादशाक्षरावै त्रिष्टुप् -कौ.सू. ३.२.
चतुश्चत्वारिंशदक्षरा त्रिष्टुप् श.ब्रा. ८.५.१.११.
'त्रैष्टुभम्' से 'त्रैष्टुभम्' की रचना की, अन्तरिक्ष से वायु प्रकट हुआ , उर से बल उत्पन्न हुआ क्षत्रिय में बाहु बल है। इन्द्र में वज्र आश्रित है। आत्मा में इन्द्रिय है। प्रजनन या अपान मध्य भाग में स्थित है। रुद्रों की पत्नी अर्थात् शक्ति -रुद्रों में आश्रित है और जीवात्मा परमलोक में आश्रित है।

त्रैष्टुभं छन्दः- (१) तीनों लोकों का पालक व्यापार, (२) तीनों वर्णों की रक्षा रूप क्षात्रबल
'अन्तरिक्षे विष्णुर्व्यक्रंस्त त्रैष्टुभेन छन्दसा'
वाज.सं. २.२५, का.सं. ५.५, श.ब्रा. १.९.३.१०,१२, शां.श्रौ.सू. ४.१२.३,

तोक - (१) स्वल्प, (२) सूक्ष्म।
'नित्ये तोके दीदिवांसं स्वेदमे'
ऋ. २.२.११.
(३) अपत्य, सन्तान, तुद् (व्यथा करना) + घ (संज्ञा में) तोक। द् का क पृषोदरादिवत्। स हि नित्यं पित्रा तुद्यते (पुत्रपिता द्वारा नित्य व्यथित किया जाता है)
सम्भवतः बंगला का 'खोखा' 'तोक' शब्द का ही बिगड़ी रूप है।
'सहस्रं ते स्वपिवात भेषना
मा नस्तोकेषु तनयेषु रीरिषः'
ऋ. ७.४६.३, नि. १०.७
हे स्वाप्तवचन या वातावरण में आविष्ट या वातावरण को धारण करने वाले रुद्र! (स्वपिवात्) तेरी सहस्रो औषधियां हमारे पुत्रपुत्रीरूपी सन्तानों में (नः तोकेषु तनयेषु) हिंसा ने करें (मा रीरिषुः)।
पुनः-
'नाभ्रात्रीमुपयच्छेत
तोकं ह्यस्य तद्भवति'
जो कन्या भ्रातृहीना है उससे विवाह न करे, क्योंकि उसका अपत्य उस के पिता का है पति का नहीं। पुनः-
'येन तोकं तनयं च धामहे'
ऋ. १.९२.१३, ९.७४.५, साम. २.१०८१, वाज.सं. ३४.३३, नि. १२.६ .
जिससे पुत्रों और पौत्रों का भी पालन पोषण करें।

तोक साता - (१) धनादि का न्यापूर्वक विभाजक।
'स तोकसाता तनये स वज्री'
ऋ. ६.१८.६

तोक सातिः- (१) धनैश्वर्य प्राप्त कराने वाला-संग्राम, (२) सन्तान की प्राप्ति।
'युद्धमानास्तोकसातौ विवक्षसे'
ऋ. १०.२५.९

तोक्म - (१) व्यथा दायी उपाय, (२) रक्षाकारी उपाय।
'बदरै रूप वाकाभि र्भेषजम् तोक्मभिः'
वाज.सं. २१.३०.३१, मै.सं. ३.११.२,१४१.५, ३.११.२,१४१.८, तै.ब्रा . २.६.११.२.
(३) तोकं तुद्यतेः तुजि, स्तुचि, तवति, ।

तुद्यति+ मनिन् = तोक्मनन्। अर्थ है- नया यव
(४) शत्रु को हनन करने या प्रजा को प्रसन्न करने का कार्य।
'प्रायणीयस्य तोक्मानि'
वाज.सं. १९.१३
(५) जल से भींगा बीज।
'मनुस्तोक्मेव रोहतु'
ऋ. १०.६२.८

तोत् - वृद्धयर्थक 'तु' + क्विप् = तोत् (गुण)। अर्थ है - वृद्धिप्रद।

तोद - (पु.)। तुद् + अच् = तोद। अर्थ-
(१) विदीर्ण भूखण्ड।
'तोदस्येव शरण आमहस्य'
ऋ. १.१५०.१, साम. १.९७, नि. ५.७.
जैसे विशाल भूखण्ड के बिल में चारों ओर जल आकर भी बिल को नहीं भर पाता उसी प्रकार हे अग्ने। यजमानों के प्रचुर हवियों से भी तू नहीं ऊबता।
(२) शत्रुओं का हिंसक -इन्द्र का विशेषण
(३) दूरदर्शी शासक-दया.।
'यासि कुत्सेन सरथमवस्युः
तोदो वातस्य हर्योरीशानः'
ऋ. ४.१६.११.
हे इन्द्र! कुत्स की रक्षा करने का इच्छुक तथा कुत्स के शत्रुओं का हिंसक (तोदः) बलशाली अश्वों का स्वामी (हर्योः ईशानः) तू राजर्षि कुत्स के साथ एक रथ पर आरूढ़ हो
अन्य अर्थ-हे राजन्, दूरदर्शी शासक (तोदः) और वायु समान अश्वों का मालिक तू आत्म -संरक्षण चाहता हुआ (अवस्युः) वेदज्ञ ब्राह्मण के साथ (कुत्सेव) एक रथ पर आरूढ़ हो।
(४) कूप, बिल, (५) गृहस्थ, (६) शिक्षक, (७) देवराज यड्वा ने निघण्टु की टीका में इसका अर्थ गृहस्थ किया है। यास्क के अनुसार इसका अर्थ कूप है।

तोशतमः- (१) इसका सुख देने वाला (२) अज्ञान का अच्छी प्रकार नाश करने और हृदय को सुखी करने वाला।
'त्वे राय इन्द्र तोशतमाः'
ऋ. १.१६९.५.

तोश् - (धाः) निर्बलता दूर करना, नाश करना

तोशते - (धाः) (१) निर्बलता दूर करता है, (२) नाश करता है,
'मन्दी मदाय तोशते'
ऋ. ९.१०७.९, साम. २.३४८.
सोमरस या दुग्ध पीकर प्रसन्न चित्त मनुष्य तेज धारण करने के निमित्त (मदाय) निर्बलतादूर करता है। या प्रसन्न कर शत्रुओं का नाश करता है।

तोशस् - दुःखनाशक।
'त्वमिन्द्राय तोशसे'
ऋ. ९.४५.२.

तोशा- (द्वि.व.) (१) भीतरी रोगादि शत्रुओं के नाशक प्राण-अपान वायु (२) आत्मा और अन्तःकरण (३) परमात्मा और जीवात्मा, (४) राजा और सेनापति, (५) गुरु और शिष्य।
'तोशा वृत्रहणा हुवे'
ऋ. ३.१२.४
(६) बढ़ाने और ज्ञानोपदेश करने वाले इन्द्राग्नी
(७) वायु और सूर्य या वायु और सूर्यवत् विद्वान्।

तोशासा - शत्रुओं, अज्ञानों और दुष्टाचरणों को नाश करने वाले - इन्द्र और अग्नि।
'तोशासा रथयावाना'
ऋ. ८.३८.२, साम. २.४२४

तौग्र्य - (१) उत्तम बलवान् पुरुष, (२) तगड़ा (३) व्यापारी जन (४) जीव।
'अवविद्धं तौग्र्यमप्सु अन्तः'
ऋ. १.१८२.६
(५) क्षात्र बल का नाशक (६) बलशाली पुरुषों में श्रेष्ठ (७) आदान प्रतिग्रह करने योग्य पात्रों में उत्तम।
'गोरोहेण तौग्र्यो न जिव्रिः'
ऋ. १.१८०.५.
(८) तुग्रबल से निवृत्त सेनावृन्द। -दया.
(९) तुग्र बल से युक्त पुरुष।
'अजोहवीदश्विना तौग्र्यो वाम्'
ऋ. १.११७.१५
(१०) शत्रुओं की हिंसा, प्रजाओं का पालन और सैन्य संचालन कार्य में कुशल पुरुष तुग्र हैं। उसका कार्य तौग्र्य है।
(११) प्राण और उदान दोनों का आश्रय तौग्र्य

अर्थात् आत्म रक्षा और द्युस्थानों के साधना और कर्मलोक ।
'युक्तो ह यद्वां तौग्र्याय पेरू'
ऋ. १.१५८.३
जिस प्रकार शत्रुओं की हिंसा, प्रजाओं का पालन और सैन्य-संचालन के कार्य में कुशल पुरुष के कार्य के लिये (तौग्र्याय) आप दोनों से युक्त सर्वपालक (पेरुः) राष्ट्रपति -जल, और अग्नि से युक्त महा नौका के समान पार करने वाला (पेरु) ...
(१२) तुग्र का पुत्र भुज्यु -सा. (१३) वैश्यवर्ग
'निष्टौग्र्यमूहथुरद्भ्यस्परि'
ऋ. १०.३९.४
हे अश्विनीद्वय, तुम दोनों ने तुग्रा के पुत्र भुज्युं को (तौग्र्यम्) समुद्र से बाहर निकाला (अद्भ्यः परि निरूहथुः)-सा. । हे राजा तथा राजपुरुषों, वैश्यवर्ग को (तौग्र्यम्) व्यापार के लिये समुद्र के पार पहुंचाओ ।

तौदीकन्या - (१) सांप को व्यथा देने वाली औषधि । इसे कन्या या घृताची कहते हैं । यह या तो कीड़ी का वाचक है या घृतकुमारी का । इसे धिकुआर और पद्मा भी कहते हैं । वन्ध्य कर्कोटकी या नागदमन भी कहलाती है ।
'तौदीनामासि कन्या
घृताची नाम वा असि'
अ. १०.४ २४

तौ - द्वि.व. । (१) जीव और ब्रह्म (२) सूर्य और विद्युत,-ग्रीफिथ
'कुतस्तौ जातौ कतमः सो अर्धः'
अ. ८.९.१

तौरयाण - तूर्णयानः - त्वरित यानः । देवराज का कथन है कि तूर्ण का ही वेद में तौर हो गया है । अर्थ है -(१) जो अपने यान को शीघ्र प्रस्तुत करे या जिसका रथ शीघ्र ग्रामी हो , (२) फुर्तीला आशुकारी ।
(३) शासक ।
'जातं यत त्वा परि देवा अभूषन्
महेभराम पुरुहूत विश्वे
स तौरयाणः उपयाहि यज्ञं
मरुदिभरिन्द्र सखिभिः सजोषाः'
ऋ. ३.५१.८, नि. ५.१५.
हे बहुतों के द्वारा आहूत इन्द्र, सभी देवताओं तथा प्राणी मात्र ने तुझे अच्छी तरह से पालन पोषण या रक्षा के लिए (महते भराय) परिगृहीत किया (पर्यभूषन्) अतः तू शीघ्र रथ पर सवार होकर (तौरयाणः) अपने सहाय भूत मरुतों के साथ (सखिभिः मरुद्भिः) प्रेम पूर्वक इस यज्ञ में आ ।
अन्य अर्थ - हे निर्वाचित राजन, राजा बनाये गए जिस तुझको सब देवजनों ने राज्य पोषण के महान् कार्य के लिये राजपद से अलंकृत किया है वह फुर्तीला तू (सःतौरयाणः) मित्रतापूर्वक बर्तने वाला राज कर्मचारियों के साथ सबसे प्रीतियुक्त व्यवहार करता हुआ हमारे यज्ञ में रक्षार्थ आ ।

तौविलिका - (१) तौविलिका नाम की पिशाची (२) 'तुविल'अर्थात् सर्वव्यापक परमेश्वर की शक्ति से अव्यक्त से व्यक्त रूप में प्रकट होने वाली प्रकृति ।
'तौवालिकेऽवेलय'
अ. ६.१६.३

तौल - तुला (तराजू) से परिमित घृतादि आज्य पदार्थ ।
'अग्ने तौलस्य प्राशान'
अ. १.७.२

थ

थर्व - चलना । दे. थर्वति

थर्वति - चरति (चलता है) । 'थर्व' धातु चलना अर्थ में प्रयुक्त हुआ है । इसी के प्रतिषेध में 'अथर्वन्' शब्द है । 'न थर्वति' इति 'अथर्वन्' (जो नहीं चलता है वह अथर्वन् है)। स्थिर प्रकृति वाला अथर्वन् कहा जाता है ।

था - उपमा का वाचक । पाणिनि ने इसे प्रकार वचन कहा है । प्रकार भी भेद अर्थ में उपमा ही है । थाल प्रत्यय से यह बना है ।

थु - नाम करण अर्थ में 'थु' प्रत्यय आता है । जैसे मिथुन शब्द मि + नी + थु = मि + न + थु = मि + थु + न (रुढ़ि के बलवान् होने से मध्य और अन्त्य अक्षरों का विपर्यय एक दूसरे के प्रति अपने को ले जाना मिथुन है ।)

अथवा, मि + थ + वन् = मिथुन । व का सम्प्रसारण उ तथा थ के अ का लोप । (अन्योन्यं प्रति आत्मानं नयत समाश्रितौ) ।

द

द्र - द्रावक या गति देने वाला काल ।
'व्रश्च द्रश्चापि श्रीर्मयि'
अ. ११.७.३

दक्ष- (१) दग्ध करने वाला अग्नि, (२) बलोत्पादक वायु, (३) सूर्यरूप अग्निमय पिण्ड (४) दक्ष प्रजापति ।
'अदितेर्दक्षो अजायत
दक्षाद्वदितिः परि'
ऋ. १०.७२.४
(५) आदित्य ।
'दक्षस्य वादिते जन्मनि व्रते
राजाना मित्रावरुणा विवासति'
ऋ. १०.६५.५, नि.११.२३.
हे अदिति या सन्धिबेला, तू आदित्य के जन्मरूपी व्रत में उदय या अस्त कर्म में मित्र तथा वरुण (दिन रात) में व्याप्त रहती हो या दिन या रात रूपी राजाओं को सेवती है ।
पुनः-
'अदितेर्दक्षो अजायत
दक्षाद्वदितिः परि'
ऋ. १०.७२.४
अदिति से दक्ष उत्पन्न हुआ और दक्ष से अदिति
(६) वृद्धिप्रद अन्न,- दया. (७) सिद्धि
'क्रत्वे दक्षाय नो हिनु'
ऋ. ९.३६.३, वाज.सं. ३४.४८, तै.सं. ३.३.११.४, मै.सं. ३.१६.४ ,१८९.११, आश्व.श्रौ.सू. ४.१२.२, शां.श्रौ.सू. ९.२७.२, नि. १३.३०.
संकल्प की सिद्धि के लिये हमें आगे बढ़ा । हमारी सन्तान के लिये वृद्धि प्रद अन्न प्रदान कर-दया. ।
(७) आदित्य का एक नाम । निरुक्त के अनुसार अग्नि, वायु और आदित्य ये ही तीन देवता है ।

दक्षक्रतवः - बल के कार्य करने में समर्थ इन्द्रियगण ।
'येदावामनोजाता मनोयुजो दक्षक्रतवस्ते नोऽवन्तु'
वाज.सं. ४.११

दक्षति - दक्ष धातु वृद्धि और शीघ्र अर्थों में प्रयुक्त होता है । (सम्यक् अर्धयति, सम्यक् वर्धयति) । 'दक्षति' का अर्थ है 'वर्धयति' (बढ़ाता है) ।

दक्षपितरः - (१) बल, अन्न और प्रज्ञा के पालक, (२) दक्ष के पितर ।
'युष्माभिर्दक्षपितरः'
ऋ. ८.६३.१०

दक्षपिता - (१) कार्य कुशलपुरुषों का पालक पिता, (२) भृत्यों और बल का पालक ।
'स्वैर्दक्षैर्दक्ष पितेह सीद'
वाज.सं. य, १४.३.

दक्षमाणः - प्रयत्न और बल का कार्य करता हुआ ।
'अरिष्यन्तो दक्षमाणाः सदैव'
अ. २.४.१

द्व्यक्षर- (१) द्वि. + अक्षर । दो प्रकार का अक्षय बल, (२) दो पाया मनुष्य (३) सूर्य और चन्द्रमा के आग्नेय तथा सौम्य धर्म ।
'अश्विनौ द्व्यक्षरेण द्विपदो मनुष्यान् उदयजताम् तानुज्जेषम्'
वाज.सं. ९.३१

दक्षस् - (१) आत्मबल, ।
'प्रवाच्यं वृषणा दक्षसे महे'
ऋ. १.१५१.३
(२) बल और क्रिया शक्ति को बढ़ाने वाला ।
'त्वमिश शतहियासि दक्षसे'
ऋ. २.१.११.

दक्ष साधनः- (१) बल से शत्रुओं को वश में करने वाला, (२) बल बढ़ाने वाला -सोम ।
'पवित्रे दक्षसाधनः'
ऋ. ९.२७.२, साम. २.३६६

दक्षाय्यः- (१) सर्व कर्म करने वाला, (२) अग्नि, (३) चतुर विद्वान् ।
'दक्षाय्यो यो दम आस नित्यः'
ऋ. ७.१.२, साम. २.७२४, का.सं. ३९.१५.
(४) समर्थ, (५) प्रवीण ।
'दक्षाय्य इन्द्र भरहूतये नृभिः'
ऋ. १.१२९.२
हे इन्द्र ! विद्वन् ! उत्तम नेता पुरुषों के सहित

(नृभिः) पालक पुरुषों के बीच सर्वश्रेष्ठ पालक कहलाने और शत्रुओं के संग्राम के लिए ललकारने के लिये (भरहूतये) समर्थ और प्रवीण होता है। (६) विरोधियों का नाश कारी, बल वान् विरोधियों को भस्म करने वाला, (७) सब समृद्धियों को बढ़ाने वाला।
'आ दक्षाय्यो दो दास्वते दम आ'
ऋ. २.४.३
(८) विज्ञान कारक, बल और यथार्थ न्याय शासन करने वाला परमेश्वर या राजा।
'दक्षाय्यो अर्यमेवासि सोम'
ऋ. १.९१.३
(९) महान् सामर्थ्य का स्वामी बृहस्पति।
'दक्षाय्याय दक्षता सखायः'
ऋ. ७.९७.८

दक्षिण- दक्ष + इनन् = दक्षिण। दिक् हस्त प्रकृतिः (दाहिना हाथ ही जिसके नामकरण का कारण हुआ)। अर्थ- (१) दक्षिण दिशा। प्राङ्मुखस्य प्रजापतेः दक्षिणः हस्तः बभूव सा दक्षिण दिक् अभवत् (प्रजापति के पूर्वमुख होने पर हाथ दक्षिण अर्थात् उत्साहवान हुआ अतः दक्षिणा हस्त की ओर दक्षिण दिशा हो गई)।
दक्ष धातु उत्साह और शीघ्र अर्थ में आता है। दक्षिण हस्त के सदृश वाम हस्त उत्साह पूर्ण नहीं रहता (स यथा कर्मसु उत्साहवान् भवति न तथा सव्यः)।
अथवा-दाश् (दानार्थक) धातु से पृषोदरादिवत् दक्षिण शब्द सिद्ध हुआ। 'दाश्यते' अनेन इति दक्षिणाः (इस हाथ से दान दिया जाता है)।

दक्षिणतःसखा- दाहिना ओर रहने वाला प्रबल सहायक
'असश्च त्वं दक्षिणतः सखा मे'
ऋ. ८.१००.२

दक्षिणत्र - दाहिना।
'धिष्व वज्रं हस्त आ दक्षिणत्रा'
ऋ. ६.१८.९

दक्षिणतस्कपर्दः- दाएं भाग में जटाजूट रखने वाला।
'श्वित्यञ्चो दक्षिणतस्कपर्दः'
ऋ. ७.३३.१

दक्षिणा- (१) दक्षिण जो यज्ञ में दी जाती है। (२) दक्षता के लिए दिया गया पुरस्कार, (३) पृथिवी, (४) अन्न।
'दक्षिणा वै यज्ञानां पुरोगवी'
ऐ.ब्रा. ६.३५
अन्नदक्षिणा - ऐ.ब्रा. ६.३.
'ते दुह्रते दक्षिणां सप्तमातरम्'
अ. १८.४.२९
(५) बल और उत्साह उत्पन्न करने वाली।
'नूनं सा ते दक्षिणा मघोनी'
ऋ. २.११.२१
(६) दक्ष (वृद्ध्यर्थक) + इनन् = दक्षिण। दक्षिण + टाप् = दक्षिणा। अर्थ है - यजमान या दाता को बढ़ाने वाली (व्यृधं समर्धयति, यज्ञे यत्किञ्चित् विगतर्द्धिकं भवति तदियं दक्षिणा समर्धयति विवर्ध्य पूरयति) दक्षिणा जो पुरोहित को यज्ञान्त में दी जाती है।
'देवि दक्षिणे बृहस्पतये वासः'
(७) दक्षिण + आच् = दक्षिणा। जो दक्षिण दिशा में उत्सृष्ट की जाती है, (८) ऋत्विज् के दक्षिण लेने के वाद यजमान अग्नि की प्रदक्षिणा करता है अतः यह दक्षिणा है। (प्रदक्षिण गमनात्)
(९) प्रयोजन - (१०) न्याय्य, (१०) पूर्वाभिमुख दाहिने हाथ की दिशा दक्षिणा है।
'दक्षिणायै दिशेस्वाहा'
वाज.सं. २२.२४, तै.सं. ७.१.१५.१, मै.सं. ३.१२.८, १६३.४, का. सं. (अश्व.) १.६.

दक्षिणाग्निः- (१) बलवान् पुरुषों का आश्रय क्रिया शक्ति प्रदान करने वाला परमेश्वर।
'आदित्यानामयनं गार्हपत्यो दक्षिणानामयनं दक्षिणाग्निः'
अ. १८.४.८
(२) दक्षिणाग्नि।
'सोदक्रामत् सा दक्षिणाग्नौ न्यक्रामत्'
अ. ८.१०.६

दक्षिणा ज्योतिः- (१) ज्योति स्वरूप पञ्चप्राणयुक्त आत्मा।
'योऽजं पञ्चौदनं दक्षिणाज्योतिषं ददाति'
अ. ९.५.२२, २४, २५, २६, २८.

दक्षिणातिष्ठन् - दक्षिण में खड़ा हुआ यम।
'दक्षिणा तिष्ठन् यमः'

अ. ९.७.२०

दक्षिण दिक् – (१) पूर्व पितरों की दिशा, (२) गृहस्थधर्मों का आचरण करना ही दक्षिण दिशा जाना है।

'दक्षिणं दिशमभि नक्षमाणौ'

अ. १२.३.८

(३) मृत पितरों की दिशा दक्षिण समझी जाती हैं।

दक्षिणायाः धूः– (१) क्रिया या बल से सम्पन्न बलवती शक्ति का मूल केन्द्र परमेश्वर (२) द्यौ या आदित्य शक्ति का केन्द्र आकर्षण शक्ति।

'युक्ता मातासीद् धुरि दक्षिणा याः'

ऋ. १.१६४.९, अ. ९.९.९.

दक्षिणावत् – (१) धर्म से उपार्जित धन ऐश्वर्य विद्या आदि के निमित्त श्रद्धा से दान देने और बल और ज्ञान की साधना करने वाला, (२) धन, ज्ञान और आत्माशक्ति सम्पादन करने वाला, (३) ज्ञान बल का स्वामी।

'दक्षिणावताम् इदिमानि चित्रा
दक्षिणा वताम् दिवि सूर्यासः।
दक्षिणावन्तो अमृतं भजन्ते
दक्षिणावन्तः प्रतिरन्त आयुः।'

ऋ. १.१२५.६

(४) दक्ष + इन् + टाप् + वतुप् = दक्षिणावत्। अर्थ हैं – सप्रयोजन– दया. (५) अन्यदपि (और भी) यास्क।

'अपाः सोममस्तमिन्द्र प्र याहि
कल्याणीर्जाया सुरणं गृहे ते
यत्रा रथस्य बृहतो निधानम्
विमोचनं वाजिनो दक्षिणावत्।'

ऋ. ३.५३.६, आश्व.श्रौ.सू. ६.११.९.

हे भगवन् इन्द्र, आप सोम पीवें (सोमम् अपाः) और पीकर घर जायें (अस्तं प्रयाहि), क्योंकि आपके गृह में कल्याणी स्त्री शची है (कल्याणीः जाया)। रथशाला है (यत्रा बृहतः रथस्य निधानम्) तथा घोड़ों का आरामगृह है (वाजिनः च विमोचनम्) तथा संग्राम जीतकर आए हुए के लिए अन्य सुन्दर पदार्थ हैं (दक्षिणावत् सुरणम्)–यास्क।

अन्य अर्थ–हे शत्रुमर्दन राजन् ,जहां विशाल यान के (बृहतः रथस्य) वेगवान् मन्त्राश्व का (वाजिनः) सप्रयोजन (दक्षिणावत्) नियोजन और विमोचन होता है (निधानम् विमोचनम्)। उस यान में बैठकर गृह में (गृहे) जो आपकी कल्याणकारिणी जाया है (कल्याणी जाया) उसके साथ दूर देश को जाइए (अस्तं प्रयाहि) उसके साथ (सोमम् अपाः) और उसी के साथ संग्राम में जाइए (सुरणम्)।

दक्षिणावाट् – (१) दक्षिणा या पारिश्रमिक पैदा करने वाली, (२) दक्षिण दिशा से लाई हुई (३) क्रियाशक्ति को धारण करने वाली।

'दक्षिणावाड् वाजिनी प्राच्येति'

ऋ. ३.६.१, मै.सं. ४.१४.३, २१८.१२, तै.ब्रा. २.८.२.५.

दक्षिणावान् – कुशल बुद्धिमान् पुरुषों का स्वामी।

'हस्तेदधे दक्षिणे दक्षिणावान्'

ऋ. ३.३९.६

(२) दान शील।

'उच्चादिवि दक्षिणावन्तोअस्थुः'

ऋ. १०.१०७.२

(३) उत्तम सेना वाला, (४) दानशक्ति –सम्पन्न।

'धृष्णुर्वजीशवसा दक्षिणावान्'

ऋ. ६.२९.३

दक्षिणावृत – (१) या दक्षिणां वृणोति (जो दाहिनी ओर रहती है या जो दक्षिणा ग्रहण करती है)– दया. (२) दक्षिणावर्त होकर प्राप्त (३) दक्षिण द्वारा कारण किया गया होता, (४) यज्ञ की दक्षिणा दिशा में स्थित कन्या (५) दाहिने हाथ की ओर बैठी कन्या, (६) आचार्य के दायें भाग में स्थित शिष्य।

'अभिम्रुचः क्रमते दक्षिणावृतः'

ऋ. १.१४४.१

दक्षिणासद् – (१) दक्षिणा दिशा में नियुक्त बलशक्ति में विराजमान।

'यमनेत्रेभ्यो देवेभ्यो दक्षिणा सद्भ्यः स्वाहा'

वाज.सं. ९ ३५. श.ब्रा. ५.२.४.५.

दक्षिणीय – (१) दक्षिणा प्राप्त करने योग्य, (२) कुशल।

'यज्ञर्तो दक्षिणीयः'

अ. ८.१०.७

दक्षु– (१) जलता हुआ–अग्नि (२) विरोधी को

भस्म करने वाला तेजस्वी ।
'संदृष्टिरस्य हियानस्य दक्षोः'
ऋ. २.४.४
(३) जलाने वाला -दया. (४) पीड़ा और संताप देने वाला ।

दङ्क्ष्णु - दाढ़ी से काटने वाला पशु ।
'दङ्क्ष्णवः पशवो हेतिः'
वाज.सं. १५.१५.

दग्धाः- (१) जो मानसिक, वाचिक एवं कायिक मलों को भस्म कर चुने हैं, (२) जो जल कर मरे हैं ।
'ये दग्धा ये चोद्धिताः'
अ. १८.२.३४

दग्धान्न - (१) जला अन्न ।
'अपश्चा दग्धानस्य भूयासम्'
अ. १९.५५.५, मै.सं. ३.९.४,१२०.१७, आप.श्रौ.सू. ७.२८.२, मा. श्रौ.सू. १.८.६.२२.

दघ्न- (१) दघ्नच् प्रत्यय प्रमाण अर्थ में प्रयुक्त किया जाता है यथा-
आस्यदघ्ना (मुख भर पानी वाली नदी), उपकक्ष दघ्ना (कांखभर पानी वाली नदी)
(२) दघ् (स्रवणार्थक) + नन् = दघ्न । अर्थ है- स्रुततर अर्थात् किसी परिमाण से कम (३) दस् (उपक्षय अर्थ में) + नन् = दघ्न (स् का घ) । अर्थ है- विदस्ततरम्, उपक्षीणतरम् तत् भवति उत्तरस्मात् परिमाणात् (जो उत्तर परिमाण से क्षीण हो कम-हो वह दघ्न है)
अतः क्षीणार्थक हो प्रमाण वाचक यह दघ्नच् प्रत्यय हो गया है ।

दघ्यति - दघ् (स्रवणार्थक) धातु से लट् प्र.पु.ए.व. का रूप । अर्थ है - चूता है ।

दण्ड - (१) दमन करने का अधिकार (२) डंडा ।
'दण्डं हस्तादाददानो गतासोः'
अ. १८.२.५९
(३) धारणार्थक दद् + अन्= दण्ड (दद् के बाद णम् का आगम और द् का ड्)
अथवा दम + ड = दण्ड ।
'एषः अमराधेषु राजभिः धार्यते'
(अपराधियों को दण्ड देने के लिये यह राजाओं के द्वारा धारा जाता है) ।
दद् धातु का धारण अर्थ में प्रयोगः-
'अक्रूरो ददते मणिम्'
अक्रूर जो वृष्णि और अन्धकों के राजा थे, सूर्य द्वारा दिये स्यमन्तक मणि को धारण करते हैं ।
(२) जो धारण किया जाय वह भी दण्ड है, (३) डण्डा (४) जुर्माना, (५) शारीरिक दण्ड, (६) जेल देना, (७) आक्रमण, (८) संयम, (९) नियन्त्रण, (१०) चार हाथों का प्रमाण, (११) पुरुषेन्द्रिय, (१२) अभिमान् (१३) शरीर, (१४) यम का विशेषण, (१५) विष्णु का नाम (१६) शिव का नाम ।

दण्डन- बांस,
'तिल्पिञ्जं दण्डनं नडम्'
अ. १२.२.५४

दण्डय - दण्ड + यत् = दण्डय । यास्क ने यत् प्रत्यय का प्रयोग सम्पन्न अर्थ में माना है । अर्थ है (१) पुरुष का विशेषण । (दण्डयः पुरुषः) । जो दण्ड के योग्य हो या जो दण्ड से सम्पन्न हो (दण्डम् अर्हति अथवा दण्डेन सम्पन्नः) ।

दत्रम् - (१) दान, (२) शत्रु-छेदन और प्रजा-रक्षण-सामर्थ्य ।
'इन्द्र यत्ते माहिनं दत्रमस्ति'
ऋ. ३.३६.९, तै.सं. १.७.१३.३, का.सं. ६.१०.
(३) दान-प्रदत्त पदार्थ
'दत्राणि पुरुभोजसः'
ऋ. ८.४९.२, अ. २०.५१.२, साम. २.१६२
(४) दा + ष्ट्रन् = दत्र । दान

दत्रवान् - (१) दानयोग्य धन का स्वामी -सूर्य ।
'यो दत्रवान् उषसो न प्रतीकम्'
ऋ. ६.५०.८

दत्वत् - (१) दांतों वाला, व्याघ्र आदि जीव ।
'व्याघ्रं दत्वतां वयं प्रथमं जम्भयामसि'
अ. ४.३.४
'मा दत्वते दशते मादते नः'
ऋ. १.१८९.५

दत्वतीरज्जुः- (१) दांतों वाली रस्सी के समान सर्प ।
'परेण दत्वती रज्जुः'
अ. ४.३.२, १९.४७.७

दत्वती - दांतों वाली, ।
'प्रतीच्ये त्वरणी दत्वतीतान्'

अ. ७.१०८.१

दत्वाय- दद् + क्त्वा + यक् = दत्वाय । अर्थ है । देकर । 'क्त्वो यक्' (पा. ७.१.४७) से क्त्वा के बाद यक् प्रत्यय होता है ।

ददति- धारयति (धारण करता है) । दद् धातु का धारण अर्थ में प्रयोग हुआ है ।

ददते - धारण करता है ।
'ऊर्ध्वं स्तूपं ददते पूतदक्ष'
ऋ. १.२४.७
पवित्र और पावन कारी तेजोबल से युक्त तेजः समूह को ऊपर बन्धन रहित आकाश में धारण करता है (ददते)

ददमानः- दधमानः, धारयन् (धारण करता हुआ । दद् (धारण करना) + शानच् = ददमानः । चतुरश्चित् ददमानात्' अक्षों पाशों को धारण करते हुए धूर्त जुआड़ी से ।

दंदशानः - दांतों से काटता हुआ ।
'अश्वासोन क्रीड़यो दंदशानाः'
ऋ. १०.९५.९

ददानः - देने वाला ।
'सहस्रा मे च्यवतानोददानः'
ऋ. ५.३३.९
'ददान मिन्न ददभन्त मन्म'
ऋ. १.१४८.२
ज्ञान देने वाले को कभी पीड़ित न करे ।

ददाशः- प्रयच्छसि (तू देता है) । दाश् (दानार्थक) के लेट् म.पु. ए.व. का रूप । बहुलं छन्दसि , से शप् के स्थान में श्लु प्रत्यय हुआ है ।

ददाशुः - दानशील, ।
'ददाशुवार्जोभिराशुषाणाः'
ऋ. १.१४७.१

ददाशुष् - नित्य ज्ञान और द्रव्य को देने वाला ।
'याभिः शन्ताती भवथो ददाशुषे'
ऋ. १.११२.२०
जिन उपायों से तुम दोनों नित्य ज्ञान और द्रव्य देने वाले विद्वान् या प्रजा जन के लिये (ददाशुषे) शान्ति और सुखकारक (शन्ताती) होते हो (भवथः) ।

दद्राणः - (१) गति करता हुआ, (२) बहुतों को बल से भगाने में समर्थ ।
'विधुं दद्राणं सलिलस्य पृष्ठे
विधुं दद्राणं समने बहूनाम्'
ऋ. १०.५५.५, अ. ९.१०.९, वै.सू. ४०.७.४१.१२

ददिः - दानशील, दाता ।
'सेदु हव्यो ददिर्यो नाम पत्यते'
ऋ. २.३७.२, अ. २०.६७.७
'अधस्मा नो ददिर्भव'
ऋ. १.१५.१०
तू हमारा दाता और रक्षकहो ।
'ऋभुर्वाजभिर्वसुभिर्वसुर्ददिः'
ऋ. १.११०.७
वह विद्वान् ही (ऋभुः) ज्ञानों, ऐश्वर्यों और संग्रामों से (वाजेभिः) और चक्रवर्ती राज्य आदि ऐश्वर्यों से युक्त होकर स्वयं सबको बसाने वाला (वसुः) और समस्त सुखों का देने वाला हो ।

ददुष् - देने वाला, वेतन आजीविका देने वाला, ।
'रक्षा चनो ददुषां शर्धो अग्ने'
ऋ. ६.८.७
'ये त इन्द्र ददुषो वर्धयन्ति'
ऋ. १.५४.८

दद्रुषिः- वह सर्प जिसके काटने से त्वचा पर दाद के समान चिह्न उठ जाते हैं ।
'प्रतङ्कं दद्रुषीणाम्'
अ. ५.१३.८

ददृवान् - विदारण या छिन्न भिन्न करता हुआ ।
'ते मर्मृजत ददृवांसो अद्रिम्'
ऋ. ४.१.१४

ददृशानः - दिखाई पड़ जाने वाला ।
'सद्यो जातस्य ददृशानमोजः'
ऋ. ४.७.१०

ददृशानपविः - प्रकट बल शस्त्रादि वाला ।
'अस्य शुष्मा सो ददृशानपवेः'
ऋ. १०.३.६

ददृशे - देखा जाता है ।
'ध्राजिरेकस्य ददृशे नरूपम्'
ऋ. १.१६४.४४, अ. ९.१०.२६, नि. १२.२७.
अग्नि, वायु और आदित्य में एक वायु की गति (ध्राजिः) देखी जाती है, रूप नहीं है । लट् के अर्थ में लिट् का प्रयोग हुआ है ।

ददृश्रे- ददृशिरे -दृश्यन्ते । लट् (वर्तमान) में लिट् का छान्दस प्रयोग ।

दधन् - धारण करे, धारण करता हुआ ।
'दधन्नृतं धनयन्नस्य धीतिम्'
ऋ. १.७१.३
सत्य वेद ज्ञान को धारण करे (ऋतं दधन्) और धन का लाभ करे या उसे धन के समान संचय करे (धनयन्) और बाद में उसका अध्ययन और चिन्तन करे (अस्य धीतिम्) ।

दधन्वान् - (१) अतिधनवान् , (२) अति धनुर्धर, (३) भूमि का स्वामी ।
'अच्छिद्रस्य दधन्वतः
सुपूर्णस्य दधन्वतः'
ऋ. ६.४८.१८

दधन्वे - संधत्ते (रखता है) । 'धा' (रखना) के लिट् प्र.पु.ए.व. में रूप ।

दध्यङ् - ध्यान + अञ्च + क्विप् = दध्यञ्च् । पृषोदरादिवत् ध्यान का दधि आदेश । ध्यानं प्रति अक्तः (ध्यान में मग्न, ज्ञान में मग्न)। क्विप् प्रत्यय कर्ता या अधिकरण अर्थ में हुआ है । ध्यानं प्रति अक्तम् अस्मिन् (इसमें ध्यान का कार्य सफल होता है । (२) यह ध्यान में लगा हुआ है या इसमें ध्यान लगा है । (३) आदित्य, (४) अथर्वन ऋषि का पुत्र दध्यङ् ऋषि ।
'यामथर्वा मनुष्पिता
दध्यङ् धियमत्नत'
ऋ. १.८०.१६, नि. १२.३४.
जिस कार्य को अथर्वा, मानव पिता मनु तथा अथर्वा के पुत्र दध्यङ् ने किया ।
(५) दधति यैः ते दधयः सद्गुणाः तान् अञ्चति प्रापयति वा सः (प्रजाओं के धारण पोषण करने वाले समस्त गुणों एवं उपायों को स्वयं प्राप्त कराने वाला-राजा, परमेश्वर या इन्द्र (६) राष्ट्र को धारण करने में समर्थ (७) अथर्वा का ज्ञानी शिष्य (८) ध्यानी पुरुष (९) वायु का पुत्रमेघ ।
'तमु त्वा दध्यङ् ऋषिः पुत्रईधे अथर्वणः'
ऋ. ६.१६.१४, वाज.सं. ११.३३, मै.सं. २.७.३, ७७.६, तै.सं. ३.५.११.४, ४.१.३.२, का.सं. १६.३, श.ब्रा. ६.४.२.३, वै.सू. १५.१४.

दधातन - (१) अनुग्रह करें ।
'ता न ऊर्जे दधातन'
ऋ. १०.९.१, अ. १.५.१, साम. २.११८७, वाज.सं. ११.५०, ३६.१४, तै.सं. ४.१.५.१, ५.६.१.४, ७.४.१९.४, मै.सं. २.७.५, ७९.१६, ४.९. २७,१३९.३, का.सं. १६.४,३५,३, तै.आ. ४.४२.४, १०.११, आप.मं.पा. २.७.१३, नि. ९.२७.
वे जल हमारे भोजनार्थ अन्न के लिये (ऊर्जे) अनुग्रह करें (दधातन) (२) धारयत, धत्त, अनुगृहीध्वम् (धारण करो, अनुगृहीत को) । धा (धारण करना) के लोट् म.पु.ब.व. का रूप, 'तप्तनप्तनथनाश्च' (पा.७.१.५५) से तप् का तनप् हो गया है ।

दधानः - करने वाला ।
'यः शश्वतो मह्ये नोदधानान्'
ऋ. २.१२.१०, अ. २०.३४.१०

दध्याशिर - (१) दधि में मिलाया सोमरस (२) पद को धारण करने के विशेष सामर्थ्य (दधि) से युक्त ।
'सोमासो दध्याशिरः'
ऋ. १.५.५, १३७.२, ५.५१.७, ७.३२.४, ९.२२.३, ६३.१५, १०१.१२, अ. २०.६९.३, साम. १.२९३, २.४५२.

दध्याशिरः - (१) शरीर आदि पोषण करने और स्वयं नाश करने वाले, (२) धारण पोषण करने वाले पदार्थों को अपने में विलीन किये हुए, (३) ध्यान योग से अपने जीवन और देह को शीर्ण करने में समर्थ ज्ञानी पुरुष, । (४) धा + किन् = दधि , शृ + क्विप् = शिर् । दधि + आ + शिर्= दध्याशिर् ।

दधि- धा + किन् = दधि । अर्थ (१) दही, (२) इन्द्रिय ऐन्द्रं वै दधि- श.ब्रा. ७.४.१.४२
इन्द्रियं वैदधि -तै.सं. २.१.५.६
दधि हैवास्य लोकस्य रूपम् श.ब्रा. ७.५.१.३
'अपूपवान् दधिवांश्चरुरेह'
अ. १८.४.१७

दधिक्रा- (१) शिष्यों को धारण उपदेश देने वाला, (२) राज्य के कार्यभार को अपने सिर पर लेने वाले को सन्मार्ग पर चलाने वाला सारथिवत् राजा ।
'दधिक्रामु नमसा बोधयन्त'
ऋ. ७.४४.२
(३) दधि + क्रा । धारण पोषण करने वाले को प्राप्त होने वाली कन्या (४) पोषक पिता से भी बढ़ जाने वाला पुत्र, (५) पीठ पर सवार को

धारण कर वेग से जाने वाला अश्व ।
'अग्निम् उषसम् अश्विना दधिक्राम्'
ऋ. ३.२०.१, बृ.दे.४.१०.२
(६) दधत् क्रामति (अपने आरोही को धारण करता हुआ चलता है या आरोही के सवार होते ही चल पड़ता है) अर्थ है-'अश्व' । दधत आकारी (धारण करते ही आकार प्रकार दिखलाता है-अश्व । अथवा ' दधत् + क्रम्, क्रन्द + आकृ = दधिक्रा (दधत् के त् का लोप और ध में इ का आगम) । क्रम धातु से विट् और आ)। क्रन्द मानने पर विच्, 'अनुनासिक का आ और द् का लोप' । कृ धातु को मानने पर कृ से क्विप् और पणादेश ।
'क्रंतु दधिक्रा अनुसन्तवीत्वत्'
ऋ. ४.४०.४, वाज.सं. ९.१४, वाज.सं. (का.) १०.३.७, तै.सं. १. ७.८.३, मै.सं. १.११.२, १६३.३, का.सं. १३.१४, श.ब्रा. ५.१.५. ५, १९, नि. २.२८. अश्व अश्वरोही की आज्ञा का अनुसरण करता हुआ ...
(७) दधिक्रा देव । दधत् उदकम् अन्तरिक्षे क्रामति (अन्तरिक्ष में उदक धारण करता हुआ चलता है) । मध्यमस्थानीय देव, वर्षा कर्म वाला (८) दधिक्रा वायु जो शिल्प कर्म में प्रयुक्त किया जाता है । यान आदि में धारण की हुई उन्हें चलाती है । वाद्यों से स्वर निकालती है और विशेष आकारों में भिन्न भिन्न यन्त्रों में धारण की जाती है । (९) मौनसून वायु भी दधिक्रा है ।

दधिक्रावा- (१) अपनी पीठ पर सवार लेकर चलने वाला अश्व, (२) राष्ट्र कार्य को अपने सिर पर धारण करने वाला राजा, (३) ध्यान बल से भ्रमण करने वाला योगी ।
'दधिक्रावेव शुचये पदाय'
ऋ ७.४१.६, अ. ३.१६.६, वाज.सं. ३४.३९, तै.ब्रा. २.८.९.९,आप. मं.पा. १.१४.६.
(४) अग्रगन्ता·
'दधिक्रावाणं बुबुधानो अग्निम्'
ऋ. ७.४४.३, मै.सं. ४.११.१, १६२.२.
(५) दृढ़ कमर कस कर आगे पैर बढ़ाने वाला (६) अन्यों को अपनी पीठ पर उठाकर ले जाने में समर्थ (७) अपनी जीवन यात्रा के साथ साथ दूसरे के भरण पोषण का भार उठाने वाला ।
'दधिक्राव्णो अकारिषम्'
ऋ. ४.३९.६, अ. २०.१३७.३, साम. १.३५८, वाज.सं. २३.३२, वाज.सं.(का.) ३५.५७, तै.सं. १.५.११.४, ७.४.१९.४, मै.सं. १.५.१, ६६.६, १.५.६, ७४.८, ३.१३.१, १६८.९, ४.११.१, १६२.१, का.सं. ६.९, ७.४, का.सं.(अश्व.) ४.८., ऐ.ब्रा. ६.३६.८, ७.३३.१, गो.ब्रा. २.६.१६, पंच.ब्रा. १.६.१७, श.ब्रा १३.२.९.९, ५.२.९, तै.ब्रा. ३.९.७.५, आश्व.श्रौ.सू. २.१२.५, ६.१२.१२,८.३.३२,शां.श्रौ.सू. ४.१३.२, १२.२५.१, वै.सू. ३२.३३, आप.श्रौ.सू. ४.१४. १, ६.१६.६, २२.१,१३.१८.१, २०.१८.७, शां.गृ.सू. १.१७.१, ४.५. १०, गो.गृ.सू. ३.३.७, साम. वि.ब्रा. १.५.५.

दधिरे - 'धा' धातु के लिट् प्र.पु.ब.व. का रूप । अर्थ है- रखा, धारण किया ।

दधिषुः- (१) भरणपोषणकारी ।
'हस्तग्राभस्य दधिषो स्तवेदम्'
अ. १८.३.२

दधिषे - धारयसि (तू धारण करता है), धत्स्व (तू धारण करता है), धत्स (धारण कर) । 'धा' के म. पु.ए.व. का रूप ।

दधृक् - (१) अतिकठोर ।
'दधृग्विधक्ष्यन् पर्यं खयाते'
ऋ. १०.१६.७, अ. १८.२.५८
(२) शत्रु का पराजय करके ।
'पिबादधृग्यथोचिषे'
ऋ. ८.८२.२.
(३) अति निर्भय ।

दधृष- शत्रुओं को परास्त करने वाला
'वाजेषु दधृषं कवे'
ऋ. ३.४२.६, अ. २०.२४.६

दधृष्वणि- शत्रुओं को पराजित करने वाला ।
'अधृष्टं चिद्दधृष्वणिम्'
ऋ. ८.६१.३

दधृष्वान् - (१) शत्रुओं का धर्षण करने वाला ।
'या चिन्नु वज्रिन् कृणवे दधृष्वान्'
ऋ. ५.२९.१४
(२) पराजित करता हुआ
'यच्छूर धृष्णो धृषता दधृष्वान्'
ऋ. ४.२२.५

दन् - (१) देता हुआ, (२) दानी ।
'महः स राय एषते पतिर्दन्'
ऋ. १.१४९.१, १०.९३.६
(३) दानशील चित्तवाला ।
'दनो विश इन्द्र मृध्रवाचः'
ऋ. १.१७४.२, नि. ६.३१
'अग्निर्ह नाम धायिदन्नपस्तमः'
ऋ. १०.११५.२
(४) दाता - (५) देवे-दया.
'उतो नो अस्य पूर्व्यः पतिर्दन्'
ऋ. १.१५३.४
और हमारे इस यजमान के पूर्वकालीन पालक अग्नि, (पूर्व्यः पतिः) दाता बनें (दन्)- और इस जगत् का मुख्य मालिक इन पदार्थों को दे. (नः दन्)। दानशील पुरुष के अर्थ में-
'दनो विश इन्द्र मृध्रुवाचः
सप्त यत् पुरः शर्म शारदीर्दर्त्
ऋणोरपो अन्नवद्यार्णा
यूने वृत्रं पुरु कृत्साय रन्धीः'
ऋ. १.१७४.२
हे इन्द्र ! इन दानशाली मनुष्यों को मधुर भाषी बना (इन्द्र दनः विशः मृध्रवाचः) यतः तू सात वर्षों तक (सप्त शारदीः) मेघ के पुर को (पुरः) मनुष्यों की कल्याण कामना से (शर्म) दीर्ण करता है (दर्त) अतः तू पुरन्दर कहलाता है । और हे अनवद्य इन्द्र, स्थिर जलों को (अर्णाः अपः) बहाया (ऋणोः) या चलाया तथा स्तुतिशील (यूने) पुरुकुत्स नामक यजमान के लिए (पुरुकुत्साय) धन सम्पादित किया (वृत्ररन्धीः) ।
अन्य अर्थ- हे राजन् , कर प्रदाता राजाओं को (दनः विशः) शिक्षा द्वारा मधुरवाणी वाला बनाइए (मृध्रवाचः) शरद् आदि छः ऋतुओं के अनुकूल (शारदीः) विस्तृत प्रयत्न साध्य नगरियों को (सप्त यत्पुरः) सुखप्रद बनाइए (शर्मदर्त) । हे पाप-रहित राजन् , (अनवद्य) आप पुरुषार्थी कृषकों के लिये (यूने पुरु कुत्साय) नहरों के जल पहुंचाइए (अर्णाः अपः ऋणोः) तथा ज्ञान साधनों से क्लेश का नाश कीजिए (वृत्रं रन्धीः) ।

दन्तः- दांत ।
'सुपर्णं वस्ते मृगो अस्या दन्तः'
ऋ. ६.७५.११, वाज.सं. २९.४८, तै.सं. ४.६.६.४, मै.सं. ३.१६.३ , १८७.२, का.सं. (अश्व) ६.१, नि. ९.१९.
Latin में Dent दांत का नाम है ।

दन्तमूल - दांतों का मूल भाग
'अवकां दन्तमूलैः'
वाज.सं. २५.१, मै.सं. ३.१५.१, १७७.७, का.सं.(अश्व.) १३.१. श.ब्रा. १३.३.४.१.

द्रवन्नः- द्रु + अन्न = द्रव न्न जिसका द्रु अर्थात् वृक्ष भोजन है अग्नि । दे 'उस्र'
'द्रवन्नो वन्वन् क्रत्वा नार्वा
उस्रः पितेव जारयायि यज्ञैः'
ऋ. ६.१२.४
(१) वृक्षों का भक्षयिता (द्रवन्नः) वनों का संभजन करता हुआ (वन्वन्) अपने कर्म में (क्रत्वा) अनाश्रित स्वतन्त्र अर्थात् छूटा या अनेरिया सांढ़ के सदृश (अनार्वापिता उस्रःइव) यज्ञों से उत्पन्न किया जाता है (यज्ञैः जारयायि)
(२) वृक्ष वनस्पति के ही अन्न अर्थात् वानस्पतिक भोजन करने वाला

द्रप्स - (१) भूमि का अग्रभाग धूलि (२) द्रुत गति से जाने वाला (३) अच्छी प्रकार पालित, पोषित, (४) वेतन द्वारा रक्षित सेनाबल
'द्रप्सं दविध्वत् गविषो न सत्वा'
ऋ. ४.१३.२
(५) द्रुत गति से काष्ठों को खाने वाला अग्नि
'तव द्रप्सो नीलवाने वाश ऋत्वियः'
ऋ. ८.१९.३१, साम. २.११७३.
(६) सूर्य
'द्रप्सश्चस्कन्द पृथिवीमनुद्याम्'
ऋ. १०.१७.११, अ. १८.४.२८, वाज.सं. १३.५, तै.सं. ३.१.८.३, ४.२.८.२, ९.५, मै.सं. २.५.१०, ६१.१४, ३.२.६,२३.१५, ४.८.९, ११८.१०, का.सं. १३.९,१६.१५, ३५.८, श.ब्रा. ७.४.१.२०, तै.आ. ६.६.१.
(७) रस रूप से आस्वादन करने योग्य ।
'अधत्यं द्रप्सं विभ्वं विचक्षण '
ऋ. १०.११.४, अ. १८.१.२१.
(८) दर्पवान् , गर्वीला (९) कुत्सित कुटिल आचार वाला (१०) कुरीतियों और अनाचारों

से प्रजाओं को खा जाने वाला ।
'अव द्रप्सो अंशुमतीमतिष्ठत्'
ऋ. ८.९६.१३, अ. २०.१३७.७, साम. १.३२३. का.सं. २८.४, ऐ.ब्रा. ६.३६.१२, गो.ब्रा. २.६.१६, तै.आ. १.६.३, आश्व.श्रौ.सू. ८.३.३३, वै.सू. ३२.३३.
(११) आदित्य (१२) दृप् + स = द्रप्स (बाहुलक से) दृप्यन्ति अनेन (इस से दृप्त होते हैं या हर्षित होते हैं) । अर्थ है- शुक्र, वीर्य - (१३) जलविन्दु-दया. ।
'उतासि मैत्रावरुणो वसिष्ठ
उर्वश्या ब्रह्मन् मनसोऽधिजातः
द्रप्सं स्कन्नं ब्रह्मणा दैव्येन
विश्वेदेवाः पुष्करे त्वाददन्त ।'
ऋ. ७.३३.११, नि. ५.१४.
हे वसिष्ठ या वासकतम जल, तू मित्र और वरुण से या मित्र और वरुण नामक वायुओं से उत्पन्न हुआ । तू उर्वशी के मन से या विद्युत् के सामर्थ्य से उत्पन्न हुआ । मैत्रावरुण का वीर्य उर्वशी को देखकर स्खलित हो गया या जल रूप में परिणत तुझ को किरणों ने (विश्वे देवाः) अन्तरिक्ष में धारण किया । या स्खलित वीर्य को विश्वेदेवों ने जल के कलश में धारण किया ।
(१४) दधि । द्रप्सः सम्भृतः प्सानीयः भवति । (रेतस् के रूप में द्रप्स् पुरुष के अंग अंग से निकलकर स्त्री योनि में सञ्चित होता है । और दधि के रूप में वह प्सानीय या भक्षणीय होती है) । अमर कोष में
'द्रप्सं दधि घनेतरत्'
अर्थात् कठिन दही से अन्य दही को द्रप्स कहा है । लप्सी या लस्सी इसी का अपभ्रंश है । अंग्रेजी का Drops भी द्रप्स का ही अपभ्रंश है ।
(१५) सर्वानन्द ने 'द्रप्सं द्राक् प्सानीयम्' द्रप्स शीघ्र खाने योग्य होता है ऐसा कहा है । बैल को खाने के लिए जो दिया जाता है उसे सानी कहते हैं । 'प्सानीय' का ही अपभ्रंश सानी है ।'

द्रप्सवान् - रसयुक्त ।
'अपूववान् द्रप्सवांश्चरुरेह सीदतु'
अ. १८.४.१८

द्रप्सी- (१) मेघ, (२) मेघ के समान ज्ञानजल बरसाने वाला,
'सत्वानोन द्रप्सिनो घोरवर्पसः'
ऋ. १.६४.२

दभः - (१) दुष्टों को दण्ड देने वाला ।
'अदब्धः शश्वतो दभः'
ऋ. ५.१९.४
(२) पीड़ा, (३) छल ।
'ऋतस्यगोपा न दभाय सुक्रतुः'
ऋ. ९.७३.८

दभ्रचेताः - (१) अल्पचित्त वाला खोटे मिजाज वाला ।
'स्मदा परैदप दभ्रचेताः'
ऋ. १०.६१.८,
'आ मा वृक्त मर्त्यो दर्भचेताः'
ऋ. ८.१०१.१६

दभ्र- (१) थोड़ी, अल्प मात्र, अतिस्वल्प ।
'दभ्रं चिद्धित्वावतः
वृतं श्रृण्वे अधिक्षमि'
ऋ. ८.४५.३२
(२) हिंसा, (३) पीड़ा, (४) मृत्युदण्ड ।
'रिपु स्तेन स्तेयकृद् दभ्रमेतु'
ऋ. ७.१०४.१०, अ. ८.४.१०.
'आसि दभ्रस्य चिद् वृधः'
ऋ. १.८१.२, अ. २०.५६.२, साम. २.३५३
(३) दभ् (वेधार्थक) + रक् = दभ्र । वह सुच्छेद्य है । (सुदभ्रं भवति) तथा छोटा हलका होता है । अवहृतं भवति । छोटा - कम-दया. ।
'मा मे दभ्राणि मन्यथाः'
ऋ. १.१२६.७, नि. ३.२०.
हे पति देव, मेरे छोटे छोटे रोओं को (दभ्राणि) मत देखें (मा मन्यथाः) । हे पतिदेव, मेरे सामर्थ्यों को कम (दभ्राणि) मत समझें (मा मन्यथाः) -दया.

दभ्रंपश्यत् - (१) अति सूक्ष्म पदार्थ, (२) सूक्ष्म तत्व, (३) भीतरी हृदयाकाश को देखने वाला अध्यात्म साधक ।
'दभ्रं पश्यद्भ्य उर्विया विचक्ष
उषा अजीग भुवनानि विश्वा ।'
ऋ. १.११३.५
अति सूक्ष्म पदार्थों, तत्वों पर भीतरी हृदयाकाश को देखने वाले अध्यात्म साधकों को वह महान्

परमेश्वर विशेष रूप से साक्षात्कार कराने के लिए समस्त लोकों को प्रकट करता है ।

दभीतिः - (१) नाशक ।
'दभीतिरिध्मभृतिः पक्थ्यर्कै '
ऋ. ६.२०.१०
(२)सर्वथा देना, (३) शत्रुनाशक पुरुष
'अस्वापयो दभीतये सुहन्तु'
ऋ. ७.१९.४, अ. २०.३७.४,त तै.ब्रा. २.५.८.११.
(४) नाश ।
'श्रद्धामनस्या श्रृणुतेदभीतये'
ऋ. १०.११३.९
(५) विनाश से बचना ।
'अरज्ञौ दस्यून् समुनब्दभीतये'
ऋ. २.१३.९

दभ् - (१) दया करने योग्य ।
'अस्या जरासो दमामरित्राः'
ऋ. १०.४६.७, वाज.सं. ३३.१, तै.ब्रा. २.७.१२.१.
(२) दमनीय शत्रु
'स्वरादिन्द्रो दम आ विश्वगूर्तः'
ऋ. १.६१.९, अ. २०.३५.९, तै.सं. २.४.१४.२, मै.सं. ४.१२.२, १८१.१२, का.सं. ८.१७

दम - दाम्यन्ति उपशाम्यन्ति दुःखानि (जो दुःखों को दमन का शान्तकरते हैं) । दमु + घञ्= दम । अर्थ गृह ।
'अग्नि गीर्भिर्हिनुहि स्व आदमे'
ऋ. १.१४३.४
उस अग्नि को अपने घर में (स्व दमे) स्तुतियों द्वारा (गीर्भिः)प्राप्त करो (आहिनुहि) (२) यज्ञग्रह । अंग्रेजी का Dam शब्द, दम के साथ अर्थ और रूप में मिलता है ।
'सास्माकेभिरेतरी न शूषैः
अग्निः ष्टवे दम आ जातवेदाः'
ऋ. ६.१२.४.
जातधन या जातप्रज्ञ अग्नि हमारे सुखकर स्तोत्रों से हमारे यज्ञगृह में (दमे) अतिथि या याचक के सदृश स्तुत किए जाते हैं (आस्तवे)

दम्य- दमन करने योग्य ।
'रक्षा चनो दम्येभिरनीकै'
ऋ. ३.१.१५

दमायन् - णिच् में प्रयोग । अर्थ-दमन करने वाला - इन्द्र, परमात्मा ।
'श्रृण्वेवीर उग्रमुग्रं दमायन्'
ऋ. ६.४७.१६.
सुनता हूं, इन्द्रवीर है और शत्रुओं के प्रति उग्र और उनका दमन करने वाला है, या उग्र और दुष्टों का उग्रों के द्वारा दमन कराने वाला है ।

दमिता- दमन करने वाला ।
'अथाभवत् दमिता भिक्रतूनाम्
ऋ. ३.३४.१०, अ.२०.११.१०, मै.सं. ४.१४.५,२२२.१०,४.१४.१३, २३६.११, तै.ब्रा. २.८.३.७.
'उग्रस्य चिद् दमिता वीडुहर्षिणः'
ऋ. २.२३.११

दमूनाः- (१) चित्त को वश में करके रहने वाली, मनन या चेतना से रहित परमात्मा के संकल्प से चलने वाली प्रकृति, (२) दमन कारिणी राजशक्ति ।
'इषिरा योषा युवतिर्दमूनाः'
अ. १९.४९.१
(३) दममनाः (यष्टुः मनोनिग्र हे अग्नेः नित्यं मनः) अर्थात् मन पर दमन रखने वाले पुरुष के ऊपर अग्नि का मन रहता है (४) अक्रूरमनाः- सा. (५) जितेन्द्रिय ।
'जुष्टो दमूना अतिथिर्दुरोणे'
ऋ. ५.४.५, अ. ७.७३.९, मै.सं. ४.११.१, १५.९.३. का.सं. २.१५, तै.ब्रा.२.४.१.१, नि. ४.५.
(६) दानमनाः (दातव्यं मया इति एवं दाने मनः यस्य-मुझे इसे देना चाहे इस प्रकार जिसके मन में रहे वह) -अग्नि । दान्तमनाः (यम नियम वाले पुरुषों में जिसका मन हो या स्नेह हो वह अग्नि)। गृहमनाः ('गृहमनः यस्य' यह मेरा घर है, ऐसी भावना जिसकी हो वह अग्नि)। अक्रूरमनाः-दयालु । यह शब्द अग्नि के विशेषण के रूप में प्रयुक्त हुआ है ।
'दममनाः' से ही पृषोदर आदि शब्दों के सदृश दमूनाः हो गया है ।
दम् + ऊनस् = दमूनस् । दाम्याति उपशामयति मनः (मन को दमन करता है) (७) गृह का स्वामी, (८)दमनशील मित्रवाला ।
'देवो नो अत्र सविता दमूनाः'
ऋ. १.१२३.३

दय- धा. (१) नाशकरना ।

'ऊर्वान् दयन्त गोनाम्'
ऋ. ७.१६.७, साम. १.३८., वाज.सं. ३३.१४.
(३) धारण करना ।
'विश्वा अर्जुर्य दयसे विमायाः'
ऋ. ६.२२.९, अ. २०.३६.९

दयते - ददाति (देता है) । दय धातु दाह, हिंसा, उड़ना, उपदया, रक्षा, दान और विभाग अर्थों में प्रयुक्त हुआ है ।
(१) रक्षा के अर्थ में -
'नवेन पूर्व दयमानाः स्याम'
मै.सं. ४.१३.८, २१०.५, का.सं. १९.३, तै.ब्रा. ३.६, १३.१, नि. ४.१७, ९.४३.
नए धान्य से पुराने धान्य की रक्षा करते हुए हं रहें (स्यामः) ।
(२) दान अर्थ में-
'य एक इद् विद्यते वसुमर्ताय दाशुषे
ईशानो अप्रतिष्कुत इन्द्रो अंग ।'
ऋ. १.८४.७, अ.२०.६३.४, साम. १.३८९.२.६९१.
जो इन्द्र अकेला ही (य एक इत्) सम्पूर्णजगत का स्वामी (ईशानः) अतएव दूसरे से अप्रतिशब्दित (अप्रतिष्कुतः) हवि देने वाले मनुष्य को (दाशुषे मर्ताय) धन देता है (वसु विद्यते) या विविध प्रकार का धन देता है वही इन्द्र है ।
अन्य अर्थ- हे प्रजाननो (अङ्ग) जो एकरस लोक वाला (यः एकइत्) देने वाले प्रजा जन का (दाशुषे मर्ताय) धन देता या बांटता है (वसु विद्यते), जो शासन करने के योग्य है (ईशानः) और जो कभी धर्म मार्ग से स्खलित नहीं होता (अप्रतिष्कुतः) उसे ही राजा बनाना चाहिए ।
(३) जलाना अर्थ में - दहतिकर्मा ।
'दुर्वर्तुर्भीमो दयते वनानि '
ऋ. ६.६.५, नि. ४.१७.
(दुर्निवार्य प्रचण्ड अग्नि वनों को भस्म कर डालती है)
(४) हिंसा अर्थ में -
'विदद्वसुर्दयमानो वि शत्रून्'
ऋ. ३.३४.१, अ.२०.११.१, नि. ४.१७.
(शक्तिमान् तथा शत्रुओं का हनन करने वाला -इन्द्र ।
(४) उड़ना अर्थ में-
दोषा दयमानः वायसः मां अवूवुधत् (रात के अन्तिम भागें में उड़ते हुए पक्षी या सूर्य-किरण ने मुझे जगाया है ।

दयमानः - (१) दयालु ।
'प्रार्चत् दयमानो युवाकुः'
ऋ. १.१२०.३
(२) रक्षा करता हुआ ।
'नवेनपूर्व दयमानाः स्याम '
नए से पुराने धान की रक्षा करते हुए हम रहे ।(३) हिंसा करता हुआ, (४) उड़ता हुआ, (४) जलाता हुआ, (५) दान करता हुआ ।

द्वयाविन् - (१) दोनों पक्षों का भेददेने वाला (२) दोनों तरह धर्म अधर्म से मारने वाला ।
'नारातयस्तितिरुर्न द्वयाविनः'
ऋ. २.२३.५.
(३) प्रत्यक्षाप्रत्यक्षयोः पर पदार्थापहर्ता (आंख के सामने देखते देखते ओर पीठ पीछे दोनों प्रकार से पदार्थ चुराने वाला) ।
'त्वं तस्य द्वयाविनः
अघशंसस्य कस्यचित्
पदाभितिष्ठ तपुषिम् '
ऋ. १.४२.४
आंख के सामने या पीठ पीछे धन चुरा लेने वाले, पाप या हत्यादि करने की घात में लगे, क्या तेरा क्या तेरा करके चुराने वाले, प्रजा को नाना प्रकार से सन्ताप देने वाले को (तपुषिम्) ऊपर पैर रखकर बलपूर्वक शासन कर उनका मुकाबला कर (पदा अभितिष्ठ) ।

द्वयुः - (१) दो प्रकार का भाव रखने वाला बाहर कुछ और भीतर कुछ और । (२) दो भागों को हृदय में रखने वाला ।
'साह्यां इन्द्रो परिबाधो अपद्वयुम्'
ऋ. ९.१०५.६, साम. २.९६३

दरयन् - (१) डराता हुआ, (२) मारता काटता हुआ ।
'इन्द्रेण दस्युं दरयन्त इन्दुभिः'
ऋ . १.५३.४

दरशया- दरे, श्वभ्रे गर्ते शेते (जो बिल में रहता है । अर्थ है) - स्थूणा, खूंटा ।

द्वय - दो का जोड़ा ।
'यः पुष्टानि संसृजति द्वयानि'

अ. ४.२४.७

द्वर - (१) य आवृणोति (अन्धकार से आवृत) (२) संवृत, (३) गुप्त रखने योग्य व्यवहारों और राजकार्यों में अत्यन्त संवृत, गुप्त, गम्भीर, गुप चुप रहने वाला, कूप के समान गहरा और शीतल जल वाला या अन्धकार से अगम्य भाव होकर रहे ।
'सहिद्वरो द्वरिषु वव्र ऊधनि '
ऋ. १.५२.३.

दरिद्र- (१) शत्रुओं को दुर्गति में डालने वाला-रुद्र ।
'दरिद्र नीललोहित '
वाज.सं. १६.४७, तै.सं. ४.५.१०.१, मै.सं. २.९.९, १२७.६, का.सं. १७.१६, श.ब्रा. ९.१.१.२४.

द्वरि- (१) गुप्त रखने योग्य व्यवहार, राज्यकार्य ।

दरीमन् - (१) तोड़ने फोड़ने का कार्य ।
'दरीमन् दुर्मतीनाम् '
ऋ. १.१२९.८
(२) दृ (विनाश करना) + ईमन् = दरीमन् । अर्थ-हननशील, मारने वाला इन्द्र का विशेषण--सा. (३) विदारक -राजा का विशेषण- दया.। पापियों का हननशील इन्द्र-सा. । दुर्मतियों का विदारक राजा -दया.

दर्त् - (१) भयभीत करे, डरावे ।
'हन् पूर्वे अर्धे भियसा परोदर्त् '
ऋ. ६.२७.५
(२) दीर्ण किया या करता है ।
'सप्त यत्पुरः शर्म शारदीर्दर्त् '
ऋ. १.१७४.२, ६.२०.१०
यतः तूने सात वर्षों तक (सप्त शारदीः) मेघ के पुरों को दीर्ण किया-दर्त ।
तूने विस्तृत प्रपन्न साध्य नगरियों को (सप्तयत्पुरः) कल्याण प्रद (शर्मदर्त्) बनाया -दया.

दर्ता- तोड़ने वाला ।
'इन्द्र दर्ता पुरामसि '
ऋ. ८.९८.६, अ.२०.६४.३.
(२) नाशक । दृ + तृच् । तोड़ने वाला ।
'पुरां दर्तः पायुभिः पाहि शग्मैः '
ऋ. १.१३०.१०

दर्तु- (१) तोड़ने फोड़ने में समर्थ ।
'विश्वासां यत् पुरां दर्तुमावत् '
ऋ. ६.२०.३

दर्भ- (१) कुश. (२) शत्रु को हिंसित कराने में कुशल पुरुष ।
'निक्षदर्भ सपत्नान् मे '
अ. १९.२९.१
(३) शत्रुनाशक मननशील सेनापति ।
'भिधि दर्भ सपत्नानाम्
हृदयं द्विषतां मणे '
अ. १९.२८.४
कुश के अर्थ में -
'अयं दर्भो विमन्युकः '
अ. ६.४३.१
'दर्भः शोचिस्तरूणकम् '
अ. १०.४.२
(४) कुश पर का जाने वाला विषैला जीवः
'दर्भसिः सैर्याउत '
ऋ. १.१९१.३

दर्भमणि- (१) शत्रुनाशक सेनापति-ज.दे.श.(२) दर्भ की ताबीज ।
'इमं बध्नामि ते मणिम् '
अ. १९.२८.१

दर्मन् - दृ + मनिन् = दर्मन् । अर्थ-विदारक
'दर्मा दर्षीष्ट विश्वतः '
ऋ. १.१३२.६, वाज.सं. ८.५३, श.ब्रा. ४.६.९.१४, वै.सू. ३४.१, आप.श्रौ.सू. २१.१२.९, मा.श्रौ.सू. ७.२.३.
सब ओर से काटने छांटने वाला (२) तोड़ने वाला ।
'पुरां गूर्तश्रवसं दर्माणम् '
ऋ.१.६१.५, अ. २०.३५.५.

दर्वा - (१) घृत पूर्ण चिमस (२) सब दुःखों का दलन करने वाली गृहपत्नी ।
'पूर्णा दर्वे परा पत '
अ. ३.१०.७, वाज.सं. ३.४९, मै.सं. १.१०.२, १४२.६.

दर्वि- (१) बछड़े के आकार का फण वाला सर्प ।
'दर्विकरिक्रतम् श्वित्रम् '
अ. १०.४.१३
(२) कलछल ।
'स्रुग् दर्विः '

अ. ९.६.१७.
(३) विदारण करने वाली विद्युत् शक्ति ।
'श्रिये दर्विररेपाः'
ऋ. १०.१०५.१०
(४) दृ + विन् = दर्वि । जिससे हवन किया जाता है । (५) स्रुवा, (६) चमच ।

दर्विदा- (१) दारु-काष्ठों का विद्वान् (२) एक पक्षी ।
'आतिर्वाहसो दर्विदा ते वायवे'
वाज.सं. २४.३४, मै.सं. ३.१४.१५, १७५.९

दर्विहोमिन् - दर्वि + हु + मिनि = दर्विहोमिन् (जो दर्वि से हवन करता है) । दर्वि उस पदार्थ का नाम है जिससे हवन किया जाता है । यह चमच की तरह होता है ।

दर्वी- (१) देने योग्य पदार्थों को अपने भीतर लेने वाली पत्रिका , (२) यज्ञ में प्रयुक्त पात्रिका, यज्ञ में प्रयुक्त पात्र ।
'पूर्णादर्विपरापत'
वाज.सं. ३.४९, तै.सं. १.८.४.१, मै.सं. १.१०.२, १४२.६, का. सं. ९.५, श.ब्रा. २.५.३.१७, आश्व.श्रौ.सू. २.१८.१३, आप. श्रौ.सू. ८.११.१९.

दर्श- (१) सूर्येण सहैव दर्शनीयः चन्द्रः (अमावास्या को सूर्य के साथ चन्द्रमा देखे जाते हैं । (२) दर्शनीय । (३) सबका द्रष्टा, (४) बुधग्रह, (५) शुक्ल प्रतिपदा को द्रष्टव्य एक कला का चन्द्रमा ।
'दर्शोऽसि दर्शतोऽसि'
अ. ७.८१.४

दर्शतः- दर्शनीय । दे. दर्श । दृश् + अतच् = दर्शत ।
'वायवा याहि दर्शते मे सोमा अरंकृताः ·
तेषां पाहि श्रुधी हवम्'
ऋ. १.२.१.
हे दर्शनीय वायु , तेरे लिए सोम रस बनाए हुए हैं अतः तू हमारा आह्वान सुन, सुनकर आ और सोम का अंश पी (पाहि) ।
'अग्निं मित्रं न दर्शनम्'
ऋ. १.३८.१३
प्रिय मित्र के समान प्रेम से दर्शनीय.....

दर्शतश्रीः- दर्शनीय विभूतिवाला परमेश्वर ।
'स दर्शतश्रीरतिथिर्गृहेगृहे'
ऋ. १०.९१.२

दर्शता- (वि)व.व. । अर्थ (१) दशनीय (२) वायु के विशेषण के रुप में प्रयुक्त । दर्शत (३) उत्तम रूप वाली स्त्री ।
'ऊर्ध्वा भवन्ति दर्शता यजत्राः'
ऋ. ३.५७.४

दर्शन- (१) देखना, (२) धर्मधर्मको देखने वाला है ।

दर्श्य- दर्शनीय
'चित्रारूपाणि दर्श्या'
ऋ. ५.५२.११

दविद्योत् - पुनः पुनः द्योतते । द्युत् धातु का यङ्लुङन्त निपात है । अर्थ - (१) बार बार चमकती है ।
'विद्युन्नयापतन्ती दविद्योत्'
ऋ. १०.९५.१०, नि. ११.३६.
जो माध्यमिका देवता उर्वशी विद्युत् के सदृश अन्तरिक्ष में जाती हुई बार बार चमकती है ।

दविध्वत् - (१) शत्रु को कंपा देने वाला, (२) अंधकार का नाशक ।
'दविध्वतो रश्मयः सूर्यस्य'
ऋ. ४.१३.४, मै. सं. ४.१२.५, १९४. २, का.सं. ११.१३, तै.ब्रा. २.४.५.५. आप.श्रौ.सू. १६.११.१२.
(३) कम्पित करता हुआ ।
'हिरण्य शिप्रा मरुतो दविध्वतः'
ऋ. २.३४.३

दविषाणि- क्रि । दुःखी या सन्तप्त होऊंगा ।
'यदादीध्ये न दविषाण्येभिः'
ऋ. १०.३४.५
जब मैं संकल्प करता हूँ कि इन जुओं के पाशों के चलते मैं दुखी न होऊंगा (न एभिः दविषाणि)

द्यविद्यवि - प्रतिदिन ।
'प्रदेव वरुण व्रतम्
मिनीमसि द्यविद्यवि'
ऋ. १.२५.१, तै.सं. ३.४.११.६, मै.सं. ४.१२.६,१९७.१०.
जो भी हम किसी व्रत को दिन प्रति दिन जोड़ा करते हैं ।

द्यवी -द्वि. व (१) एक दूसरे को प्रकाशित करने वाले द्यावापृथिवी, (२) एक दूसरे की कामना करने वाले स्त्री पुरुष ।

'प्र वां महि द्यवी अभि
उपरस्तुतिं भरामहे '
ऋ. ४.५६.५, साम. २.९४६,

द्रवत् - शीघ्र

द्रवच्चक्र - अतिशीघ्रता से चलने वाली चक्रों से युक्त।
'द्रवच्चक्रेषु आशुषु'
ऋ. ८.३४.१८

द्रवत्पाणी - पदार्थ विद्या के व्यवहार सिद्ध करने में उत्तम हेतु।
'अश्विना यज्वरीरिषो द्रवत्पाणी शुभस्पती'
ऋ. १.३.१.

द्रविः- ताप से धातु गलाकर शोधने वाला स्वर्णकार।
'द्रविर्न द्रावयति दारु धक्षत्'
ऋ. ६.३.४

द्रविण- (१) चारों और दौड़ने वाला मन, (२) धन।
'परिचिन्मर्तो द्रविणं ममन्यात्'
ऋ. १०.३१.२
'धर्मस्वेदेभि र्द्रविणं व्यानट्'
ऋ. १०.६७.७, अ. २०.९१.७, मै.सं. ४.१४.१०, २३०.११, तै.ब्रा. २.८.५.२,
(३) द्रु (गत्यर्थक) + इनन् = द्रविण। अर्थ बल। इस अर्थ में इनन् प्रत्यय करण अर्थ में होता है। (४) जल, (५) भक्ति भेंट।
'त आयजन्त द्रविणं समस्मै'
ऋ. १०.८२.४, वाज.सं. १७.२८,तै.सं. ४.६.२.२, मै.सं. २.१०.३, १३४.६, का.सं. १८.१.
वे मेघ इस सृष्टि के लिए जल देते हैं। अथवा वे तपस्विजन इस विश्वकर्मा जगदीश को भक्ति की भेंट करते हैं। धन के प्रति धनार्थी द्रवीभूत होते हैं और बल से हम शत्रुओं को पराजित करते हैं।
(६) प्रशस्त धन या ज्ञान वाला।
'पृक्ष प्रयजो द्रविणः सुवाचः'
ऋ. ३.७.१०

द्रविणस् - द्रविण + सन् + क्विप् = द्रविणस् अथवा - द्रविण + सद् + क्विप् = द्रविणस् (बाहुलक से टिका लोप)। द्रविणाय सीदति (धन के लिए जाता है), अथवा द्रविणसानी धनस्य गवादेः देवतार्थस्य हविषो वा सानी संभक्ता अर्थ है- (१) धनार्थी, (२) बलार्थी (३) द्रव्य के लिय कर्म करने वाला शिल्पी -दया, (४) द्रव्य पाने वाला।
द्रविण शब्द का धन और बल का वाचक है।
'द्रविणोदा द्रविणसो ग्रावहस्तासो अध्वरे
यज्ञेषु देवमीडते '
ऋ. १.१५.७, नि. ८.२.
धनार्थी ऋत्विज (द्रविणसः) सोमरस तैयार करने के लिये हाथ में पाषाण धारण करते हुए (ग्रावहस्तासः) अग्निष्टोमादि यज्ञों में (अध्वरे यज्ञेषु) धन देने वाले देव को (द्रविणोदा देवम्) पूजते या जांचते हैं। (ईडते)।
स्वामी दयानन्द का अर्थ -जिस व्यवहारोपयोगी द्रविणोदा अग्नि को मान हस्त शिल्पी निर्विघ्न राष्ट्र तथा यज्ञों में अधिकाधिक प्रयुक्त करते हैं वह द्रविणोदा अग्नि (द्रविणोदाः) द्रव्य संपादक शिल्पी से (द्रविणसः) जलपान करे (पिवतु) अर्थात् शिल्पी अग्नि के साथ जल मिलाकर अपना शिल्प कर्म सिद्ध करते हैं।
(५) द्रव्य समूह।
'द्रविणोदा द्रविणसस्तुरस्य'
ऋ. १.९६.८
वह ऐश्वर्यों का दाता शीघ्र गति करने वाले वेगवान् रथ आदि का या जंगम धन पद आदि का हमें दान दें।

द्रविणस्युः- (१) ऐश्वर्य और ज्ञानकारी कामना करने वाला।
'देवस्यद्रविणस्यवः'
ऋ. ५.१३.२, साम. २.७५५, मै.सं. ४.१०.२, १४५.१३, का.सं. २०.१४, आप.श्रौ.सू. १७.७.४.
(२) द्रुत गमन करने वाला अग्नि।
'तं त्वा गीर्भिर्गिर्वणसम्
द्रविणस्युं द्रविणोदः'
ऋ. २.६.३

द्रविणोदस् - (१) द्रविण अर्थात् धन या ज्ञान देने वाला। (२) विद्याबल, राज्य तथा धन का दाता परमेश्वर (३) भौतिक अग्नि। अग्नि को द्रविणोदाः कहा गया है। क्योंकि अग्नि से ही शिल्पी धन पैदा करते हैं - दया. (४) द्रविणोदाः भूस्थानीय देवता है। आचार्य

कौष्टुकि ने इसे इन्द्र का वाचक माना है ।
(५) विद्युत् , बल और धन का दाता इन्द्र ही सबसे बढ़कर बल और धन का दाता है । (बलधनयोः दातृतमः तस्य च सर्वा बलकृतिः)
'द्रविणोदाः पिबतु द्रविणोदसः'
ऋ. २.३७.४, नि. ८.२.
(६) वहां द्रविणोदस् ऋत्विज् का वाचक है । 'एष पुनरेतस्मात् जायते' (यह इन्द्र से उत्पन्न होते हैं) इन्द्र ने पत्थर से अग्नि उत्पन्न किया ।
'यो अश्मनोरन्तरग्निं जजान
ऋ. २.१२.३, अ. २०.३४.३, मै.सं. ४.१४.५, २२२.१२, नि. ८.२.
'अपाद्धोत्रादुत पोत्रात् अमत्त
उत नेष्ट्रादजुषत प्रयोहितम् !
तुरीयं पात्र ममृक्त ममर्त्यम्
द्रविणोदाःपिबतु द्रविणोदसः ।'
ऋ. २.३७.४, नि. ८.२
जिस इन्द्र ने (द्रविणोदाः) होता के यज्ञ से लेकर सोम रस का पान किया (होत्रात् अपात्) तथा पोता के यज्ञ से (पोत्रात्) सोम रस पीकर हृष्ट हुआ (अमत्त)नेष्टा के यज्ञ से (नेष्ट्रात्) अपने दिए हुए अन्न रुप सोम को आत्मने हितं प्रयः)सेवन किया (अजुषत) वह इन्द्र अपरिभुक्त (अभृक्तम्) एवं अमरण साधन (अमर्त्यम्) चतुर्थपात्र में रखे सोम को (तुरीयम् पात्रम्) पीवे (पिवतु) जिसका अपत्य अग्नि है (द्रविणोदसः) ।
स्व. दयानन्द का अर्थ –यज्ञ के लिए चार प्रकार के हवियों का इस मन्त्र में विधान है । ऋत्विजों से प्रज्वलित वृष्टिआदि का प्रदाता यज्ञाग्नि (द्रविणोदसः द्रविणोदाः) हितकारी हवि के वृष्टिप्रद भाग से पान करे (हितं प्रयः होत्रात् अपात्) तथा सुगन्धि प्रद भाग से (उत पोत्रात्) और पुष्टिप्रद भाग से सेवन करे (नेष्ट्रात् अजुषत्) और चौथी मृत्यु से बचाने वाली (तुरीयम् अमर्त्यम्) रोग नाशक औषधि हवि (अमृतं पात्रम्) का पान करे (पिबतु) यह यज्ञाग्नि हमें सुख दे (अमत्त) ।
(६) शाकपूणि ने इसे अग्नि का वाचक माना है ।
अयमेवाग्निः द्रविणोदा इति शाकपूणिः । आग्नेयेष्वे व सूक्तेषु द्रविणदसः प्रवादाः भवन्ति ।
अग्नि का विशेषणः–
'स प्रत्नथा सहसा जायमानः
सद्यः काव्यानि बडधत्त विश्वा
आपश्च मित्रं धिषणा च साधन्
देवा अग्निं धारयन् द्रविणोदाम्'
ऋ. १.९६.१, मै.सं. ४.१०.६, १५७.१३,१५, नि. ८.२.
बल से अर्थात् मन्थन द्वारा उत्पन्न अग्नि ने (सहसा जायमानः साः) उत्पन्न होते ही (सद्यः) पुरातन के सदृश (प्रत्नथा) सभी पितरों एवं देवों को दिए जाने वाले कव्य तथा हव्य (विश्वा) सत्य ही (वट्) धारण किया (अधत्त) । जिस विद्युत् रूप में वर्तमान अग्नि को मेघ में स्थित-जल तथा माध्यमिका वाक् (अग्नि को मेघ में स्थितजल तथा माध्यामि का वाक् (आपश्च धिषणा च) मित्र रूप से साधते या मानते हैं (मित्रं साधन्) । उस धन दाता अग्नि को (द्रविणादाम् अग्निम्) दानादिगुण युक्य ऋत्विज् (देवाः) गार्हपत्य रूप से धारण करते हैं (धारयन्) या इन्द्र आदि देव ही हवि के दाता अग्नि को हवि पहुंचाने वाला बना कर रखते हैं ।
स्वामी दयानन्द का अर्थ–पदार्थ विद्या द्वारा जल और वायु को सिद्ध करते हुए विद्वान् लोग (धिषणा आपः च मित्रं च साधन देवाः) जिस धनदाता अग्नि को धारण करते हैं (द्रविणोदा अग्नि धारवन्), वह अग्नि पूर्ववत् (प्रत्नथा) संघर्षणशक्ति से (सहसा) उत्पन्न (जायमानः) शीघ्र अनेक विज्ञानों को (विश्वाः काव्यानि) यथार्थ रूप से (वट्) धारण करता है । (अधत्त) ।

द्रविता – वेग से जाने वाला ।
'अद्रोघो न द्रविता चेतति त्मन्'
ऋ। ६.१२.३, मै.सं. ४.१४.१५, २४०.६.

द्रवित्नू- स्त्री । वेग से जाने वाली विधि, क्रिया या नीति ।
'सं घोरया द्रवित्न्वा'
ऋ. ८.९२.१५

द्रवितु- (१) द्रवणशील, प्रवहणशील ।

'युक्ष्वा रथममृतस्य द्रवित्नुम्'
ऋ. १०.११.९, १२.९, अ. १८.१.२५

दवीयः- दूर +ईयसु = द्रवीयस् ।
दूरात् दवीयस्, दुन्दुभि । अर्थ है- दूरतर

दश- (१) दस संख्या। (२) दस प्राण (३) दस दिशाएं ।
'एकया च दशभिश्चा सुहूते'
अ. ७.४.१

दश अधिभोजना- दस प्रकार के उत्तमोत्तम भोजन ।
'दशवस्त्राधि भोजना'
ऋ. ६.४७.२३

दश अश्वाः- (१) दस अश्व, (२) दक्ष इन्द्रियां
'दशाश्वान् दशकोशान्'
ऋ. ६.४७.२३

दश उक्षणः- देह को उठानेवाले-चलानेवाले दस प्राण ।
'अधोक्षणोदश मह्यं रुशन्तः'
ऋ. ८.१.३३

दशकोशयी- कोशों या खजानों से भरी पूरी दस भूमियां ।
'दशकोशयीर्दशवाजिनोऽदात्'
ऋ. ६.४७.२२

दशकोशाः- (१) दस कोस खजाने (२) अन्नमयादिपांच और अन्तः करण चतुष्टय और आत्मा ।

दशक्षिपः- (१) दसों दिशाएं, (२) दसों दिशाओं में बसने वाली प्रजाएं।
'मृजन्ति त्वा दशक्षिपः'
ऋ. ९.८.४, साम. २.५३१, आश्व.श्रौ.सू. ५.१२.५, शां.श्रौ.सू. ७.१५.७
(३) दस प्रेरित प्राण (४) दसों दिशाओं में शत्रुओं पर शास्त्रास्त्र बरसाने वाली सेना।
'दश क्षिपः पूर्व्यसीम् अजीजनन्'
ऋ. ३.२३.३

दशग्व- (१) दसों इन्द्रिय सामर्थ्यों से युक्त, (२) दसों प्राणों से युक्त, दसों धर्मशास्त्रों का ज्ञान ।
'सत्यं तदिन्द्रो दशभिर्दशग्वैः
सूर्यं विवेद तमसि क्षियन्तम्'
ऋ. ३.३९.५
(४) दश + गम् + ड्व = दशग्वः। दसों दिशाओं में फैलने वाली रश्मि, (५) दसों दिशाओं में जाने वाला राज पुरुष ।
'वलं रवेण दरयो दशग्वैः'
ऋ. १.६२.४
सूर्य दसों दिशाओं में जाने वाली रश्मियों से मेघ को विदीर्ण करता है । (६) दशों इन्द्रियों को वश में करने वाला ।
'ते दशग्वाः प्रथमा यज्ञमूहिरे' ...
ऋ. २.३४.१२

दशत्- काटने वाला, सर्प, बिच्छू आदि ।
'मा दत्वो दशते मा दते नः'
ऋ. १.१८९.५

दशतयः- (१) दसों दिशाओं में व्यापक परमेश्वर, (२) दशधाविद्या से युक्त -दया. ।
'एवं शर्धं धाम यस्य सूरेः
इत्यवोचन् दशतयस्य नंशे'
ऋ. १.१२२.१२
सब के प्रेरक और सबके उत्पादक (सूरेः) दसों दिशाओं में व्यापक परमेश्वर के ही (दशतयस्य) समस्त संसार का प्रलय द्वारा नाश करने में (नंशे) इस बड़े भारी बल का और जगत् को व्यापने में (नंशे) जिसके बड़े भारी धारण सामर्थ्य का (धाम) विद्वज्जन वर्णन किया करते हैं । (अवोचन्)
(३) दसों प्रकार के सर्ग, (४) दसों दिशाओं से युक्त जगत्
'मन्दामहे दशतयस्य धासेः'
ऋ. १.१२२.१३
(५) दस प्राणगण
दसों दिशाओं से युक्त जगत् को या दसों सर्गों को धारण करने वाले परमेश्वर की हम स्तुति करते हैं ।)
(६) दशगुण ।
'मा मामेधो दशतयश्चितो धाक्'
ऋ. १.१५८.४
दसगुणा संचित किया गया काष्ठ के समान प्रज्वलित होने वाला तेजस्वी सैन्य समूह भी मुझे न जलावे ।

दशदेवाः- (१) अग्नि आदि देवों से पूर्व उत्पन्न पांच ज्ञानेन्द्रिय और पांच कर्मेन्द्रिय, (२) प्राण, अपान, चक्षु, श्रोत्र, अक्षिति, (अविनाशिनी

ज्ञानशक्ति), क्षिति (क्षयशील क्रियाशक्ति) व्यान, उदान, वाणी और मन ।

दशद्युः- (१) दसों दिशाओं में चमकने वाला, तेजस्वी ।
'प्रावो युध्यन्तं वृषभं दशद्युम् '
ऋ. १.३३.१४
(२) दसों दिशाओं में द्योतित होने वाली विद्युत् (३) मेघ, (४) दसों दिशाओं में चमकने में समर्थ ।

दशन् - दश + अन् = दशन् । दस संख्या । 'दस्ता उपक्षीणा' दस् (उपक्षयार्थक) + कनिन् = दशन् । एक से नौ तक संख्या बढ़ती जाती है पर दस की संख्या पुनः नहीं बढ़ती (सा पुनर्नवर्धते) । अथवा दष्टार्था (वह दस दस ही रह जाता है ।

दशपक्षा- दस कमरों वाली शाला ।
'अष्टापक्षां दशपक्षाम् '
अ. ९.३.२१

दशप्रमतिः - (१) जिसे दस प्रकार की प्रकृष्ट मति हो- दया. (२) दस धर्म-लक्षणों से सम्पन्न पुरुष । दशकं धर्मलक्षणम् ऐसा मनु ने कहा है । (३) दसों उत्तम ज्ञान कर्म साधनों से युक्त पूर्णाङ्ग बालक ।

दक्ष पितरः- (१) दाहक सामर्थ्य या ताप से युक्त किरणें (२) चतुर पाता पितर या गुरुजन ।
'सुज्योतिषः सूर्य दक्षपितॄन् '
ऋ. ६.५०.२

दशभुजिः- (१) या दशभिः इन्द्रियैः भुज्येत (जो दसों इन्द्रियों से भोगी जाय) अर्थ -पृथिवी (२) दसों इन्द्रियों से जीवों द्वारा भोग करने योग्य, (३) दसों दिशाओं से रक्षा करने योग्य ।
'यदिन्विद पृथिवी दशभुजिः '

दशमः - (१) नौ प्राणों के बीच दसवां जीव ।
(२) नवों दिशाओं से भी ऊपर दसवां, नवों प्राणों पर विराजमान आत्मा, (४) नवों पदों पर विराजमान दसवां सेनापति (५) पांच ज्ञानेन्द्रियों, मन, बुद्धि, महत्तत्व और प्रकृति इन नव शक्तियों से परे दसवीं शक्ति परमात्मा ।
'एवा नूनमुप स्तुहि वैयश्व दशमं नवम् '
ऋ. ८.२४.२३, अ. २०.६६.२

दशमायः- (१) दस गुणा वृद्धि देने वाला, (२) दशावरा परिषद् ।
'स वेतसुं दशमायं दशोणिम् '
ऋ. ६.२०.८

दशमास्य- (१) दशमासों में परिपक्व होने वाला गर्भ, (२) दसों दिशाओं में चन्द्रमावत् आह्लादक राजा ।
'एजतु दशमास्योगर्भोः जरायुणासह '
वाज.सं. ८.२८, श.ब्रा. ४.५.२.४.
(३) दस मास तक गर्भ में रहने वाला गर्भगत बालक ।
'एवा त्वं दशमास्य '
ऋ. ५.७८.८, अ. १.११.६
'निरैतु दशमास्यः '
ऋ. ५.७८.७
'एवा त्वं दशमास्य सहावेहि जरायुणा '
ऋ .५.७८.८.
इसी प्रकार तू हे गर्भ, जरायु के साथ नीचे जा ।

दशमी- (१) दशावरा परिषद् ।
त्रैविधो हैतुकस्तर्की तैरुक्तो धर्मपाठकः त्रयश्चा श्रमिणः पूर्वे परिषद् सा दशावरा-मनु- १२.१११
(२) सायण ने ९० वर्ष के ऊपर के दस वर्षों को 'दशमी' माना है ।
'दशमीमुग्रः सुमना वशहे '
अ. ३.४.७

दशमी देवता- दस संख्या पूर्ण करने वाले व्यापक राजशक्ति रूप दस दिव्य गुण और सामर्थ्य ।
'दशम्या देवतया प्रसूतः प्र सर्पामि '
वाज.सं. १०.३०, वाज.सं. (का.) ११.९.१,२.

दशमे अहन् - (१) रजोदर्शन का दसवां दिन जब वीर्यवपन करना चाहिए (२) दशमदिवस जब राज्याभिषेक होता है ।
'उदूपथुर्दशमे अश्विनाहन् '
ऋ. १.११७.१२
हे, युवास्त्रीरुषो, या राष्ट्र के पालक पुरुषों या अश्विद्वय, तुम दोनों रजोधर्म के दसवें दिन अर्थात् स्नानसे पांचवीं रात रमण योग्य एवं आत्मारूप वीर्य को उत्तम रीति से वपन करते हो । अथवा दसवें दिन राज्याभिषेक करते हो ।

दशयन्त्र उत्सः- (१) दस यन्त्रों से युक्त कूप, (२) दसों दिशाओं से नियन्त्रित जगत्, (३) दस विद्वानों द्वारा नियन्त्रित राष्ट्र (४) दस इन्द्रियों

से युक्त देह ।
'सोमो दाधार दशयन्त्र मुत्सम्'
ऋ. ६.४४.२४

दशयन्त्रासः- दस प्रकार के यन्त्र अर्थात् उपकरणों के स्वामी दस प्राण ।
'ते अद्रयो दशयन्त्रास आशवः'
ऋ. १०.९४.८

दशयुवतयः- (१) दसस्त्रियां, (२) त्वष्टा की दस युवतियां (३) दस दिशाएं ।
'दशेमं त्वष्टुर्जनयन्तगर्भम्
अतन्द्रासो युवतयो विभृत्रम्'
ऋ. १.९५.२, तै.ब्रा. २.८.७.४.

दशयोषणः- (१) दसों दिशाओं की प्रेमयुक्त प्रजाएं, (२)दस दस इन्द्रियां ।
'गृभ्णन्ति योषणो दश'
ऋ. ९.१.७

दश रपांसि - (१) सूर्य के दस हननकारी बल, (२) दस हननकारी सैन्य बल, (२) पापकारी दुष्ट पुरुष ।
'दश प्रपित्वे अध सूर्यस्य
मुषायश्चक्रमविवे रपांसि'
ऋ. ६.३१.३. कौ.ब्रा. २५.८.

दशराजानः- (१) सुदास राजा से लड़ने वाले दस राजा, (२) दस तेजस्वी पुरुष (३) देह की दस इन्द्रियां राजा तुल्य हैं ।
'दश राजानः समिता अयज्यवः'
ऋ. ७.८३.७

दशरात्रि- (१) दस रात और नवदिन जब प्रसूतक या शव के अशोच में बिताये जाते हैं ।
'दशरात्रीरशिवनानवद्यून्
अवनद्धं श्नथितम् अप्स्वन्तः'
ऋ. १.११६.२४

दशवस्त्रा- (१) दस प्रकार के वस्त्र (२) इन्द्रियों के दस अर्थ ।
'दश वस्त्राधिभोजना'
ऋ. ६.४७.२३.

दशवह्नयः- (१) दस अग्निवत् तेजस्वी शरीर को गाडी के समान उठाने वाले प्राण ।
'यस्मा अन्ये दश प्रति धुरं वहन्ति वह्नयः'
ऋ. ८.३.२३

दश वव्रः- (१) दसों दिशाओं में जाने वाला, (२) दसों मार्गों से युक्त ।
'याभिर्वशं दशव्रजम्'
ऋ. ८.८.२०

दशवाजिनः- (१) बल वेग, अन्न, धनादि से युक्त दस प्रकार के पदार्थ ।
'दश कोशयी र्दशवाजिनोऽदात्'
ऋ. ६.४७.२२

दशविश्वसृजः- (१) समस्त संसार के बसाने वाले दस प्राण और पञ्चभूत आदि तत्व स्थूल और सूक्ष्म तत्व ।
'ब्रह्म विश्वसृजो दश'
अ. ११.७.४

दशव्रिशः- दसों दिशाओं में बसने वाली प्रजाएं
'तमीं हिन्वन्ति धीतयोदशव्रिशः'
ऋ. १.१४४.५

दशवीराः- (१) दस प्राण, (२) दस पुत्र ।
'अधा स वीरैर्दशभिर्वि यूयाः'
ऋ. ७.१०४.१५, अ. ८.४.१५, नि. ७.३.

दशवृक्षः- (१) दस प्राणों के बन्धनों को काटने वाला परमात्मा ।
'दशवृक्ष मुञ्चेम'
अ. २.९.१

दशवृक्षमणि- ढाक, गूलर, जामुन, काम्पील, स्रक्, बंध, शिरीष,स्रक्ति, अरणि, अस्मयोक्त, तुन्यु पूतदास, वरण, विल्व, कुटक, गुह्य, वलावल, वेतस, शिम्बल, सिपुन और स्यन्दन इन २१ में किन्हीं दस वृक्षों की लकड़ी के छोटे छोंटे टुकड़ों का बनाया मणि । इसे शाकल मणि कहते हैं और लाख और सोने में जड़कर धारण करते हैं । अथर्ववेद २-७ और ८-७ मे इसका वर्णन है । ८-७ में नाना औषधियों का २-७ में दसवृक्ष से दस प्राणयुक्त जीव का वर्णन है ।

दशवृष- (१) दस प्राणों से युक्त आत्मा
'यदि दशवृषोऽसि सृजारसोऽसि'
अ. ५.१६.१०

दशशक्वरी - (१) दस शक्तियां; (२) दस उंगलियां ।
'तस्मै नमो दशभिः शक्वरीभिः'
अ. ११.२.२३

दश शतम् - एक सहस्र ।

'शतं वा यस्य दश साकमाद्य'
ऋ. २.१३.९

दशशताः - हरयः (१) सहस्रों मनुष्य, (२) सहस्र प्राणगण जो ज्ञान तन्तुओं और शक्तितन्तुओं के रूप में शरीर में वर्तमान हैं।
'युक्ता ह्यस्य हरयः शतादश'
ऋ. ६.४७.१८, श.ब्रा. १४.५.५.१९, बृ.आ.उप. २.५.१९, जै.उप. ब्रा. १.४४.१.५.

दशशल- काटने चुभने एवं तीक्ष्ण करने वाला दुःखदायी रोग, (२) दस इन्द्रियों का कष्ट।
'अथो दस शलादुत'
अ. ८.७.२८

दशशिप्र- दशों प्राणों को मुकुट वत् धारण करने वाला।
'यथा सोमं दशशिप्रे दशोण्ये'
ऋ. ८.५२.२

दशशीर्षः - दस प्रकार के रोगों का नाशक ब्राह्मण ओषधि।
'दशशीर्षो दशास्यः'
अ. ४.६.१

दशश्रृंग- दस प्राण।
'श्रृंगोभिर्दशभिर्दिशन्'
साम. २.१००६, जै.ब्रा. २.१४४.

दशस्यन् - (१) देता हुआ।
'अपत्याय जातवेदो दशस्यन्'
ऋ. ७.५.७
(२) देती हुई दुर्ग।
'यत्रा दशस्यन्नुषस्तेरिणन्नपः
कुत्साय मन्मन्नह्यश्च दंसयः'
ऋ. १०.१३८.१
मेघ के विदीर्ण होने पर (यत्रा) माध्यमिक देव उषा (उषसः) मेघ में स्थित जलों को देती है (अहयः अप दशस्यन्) और वे जल कृषक के लिये (कुत्साय) कृषि कर्म को सफल करने के लिये (कुत्सायु) आवश्यक समझ कर (दंसयः मन्मन्) पृथ्वी पर आते हैं (रिणन्) -दुर्ग
हे सूर्य, जिस समय तू मनुष्य के लिये उषा काल को प्रदान करता हुआ (उषसः दशस्यन्) और ओसजल को ले जाते हुए (अपःरिणन्) परमात्मा के स्तोता के लिए (कुत्साय) आत्ममननों (मन्मना) एवं पाप नाशक श्रेष्ठ कर्मों को बतलाते हुए उदय लेता है (अह्य= दंसयश्च.....)

दशस्वसारः- (१) स्वयं सरण करने वाली दस प्रेरणा करने वाली ध्यान वृत्तियां।
'दश धीरस्य धीतयो धनुत्रीः'
ऋ. ९.९३.१, साम. १.५३८,२.७६८.
(२) दस उंगलियां, (३) उत्तम मार्ग पर प्रेरित करने वाले दस मुख्य विद्वान्। दश + सु + असारः = दशस्वसार।
'समीरथं न भूरिजोरहेषत
दशस्वसारो अदितेरुपस्थ आ'
ऋ. ९.७१.५
(४) दसोंदिशाएं, (५) दसों दिशाओं की प्रजाएं या सेनाएँ जो 'स्व' अर्थात् धन का लक्ष्य कर आती हों।
'दशस्वसारो अग्रुवः समीचीः'
ऋ. ३.२९.१३, का.सं. ३८.१३, तै.ब्रा. १.२.१.१९, आप.श्रौ.सू. ५.११.६.

दशस्या- (१) नाना सुख भोग देने वाली द्यावपृथिवी।
'सूयवसिनी मनुषे दशस्या'
ऋ. ७.९९.३, तै.आ. १.८.२.

दशसुकर्माणि - (१) दसधर्म- धृति, क्षमा, दम, अस्तेय, शौच, इन्द्रियनिग्रह, धी, विद्या, सत्य और अक्रोध, ।
(२) पांच यम - अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य अपरिग्रह, और पांच नियमयथा- शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वर प्रणिधान।
'स मृज्यमानो दशभिः सुकर्मभिः'
ऋ. ९.७०.४

दशहिरण्यपिण्ड- (१) दस सोने के पिण्ड, (२) दशधा गात्र।
'दशोहिरण्य पिण्डान्'
ऋ. ६.४७.२३

दशाक्षर- (१) विराट् प्रकृति के पांच स्थूल और पांच सूक्ष्म भूत रूप दस विभाग, (२) राजा की दशावरा परिषद् (३) दसदिशाएं।
'वरुणो दशाक्षरेण विराजमुदजयत्'
वाज.सं. ९.३३.तै.सं. १.७.११.२.

दशाङ्गुल - (१) 'दश च तानि अंगुलानि

दशांगुलानिइन्द्रियाणि । केचित् अन्यथा रोचयन्ति दशाङ्गुलप्रमाणम् हृदय स्थानम् । अपरे तु नासिकाग्रं दशाङ्गुलम् उवट (२) दशाङ्गुलमिति उपलक्षणम् । ब्रह्माण्डात् वहिरपि सर्वतः व्याप्य स्थित इति सायणः । (३) पञ्च स्थूल सूक्ष्म भूतानि दशाङ्गुलानि यस्याङ्गानि तत् जगत् -दया. (१) दस उंगलियां, (२) दस अंगुल का हृदय स्थान, (३) दस अंगुल का नासिकाग्र (४) ब्रहाण्ड से बाहर जो कुछ व्याप्त है वह दशाङ्गुल है-सा. (५) जगत् जिसके पांच स्थूल और पांच सृक्ष्य अंग है -दया. । दस अंगविकार महत् आदि या पृथिवी आदि स्थूल और सूक्ष्म भूत (६) दस इन्द्रियाँ और आत्मा उससे परे हैं । (८) दस इन्द्रियों का योग और कर्म ।

'स भूमिं विश्वता वृत्वा अत्यतिष्ठत् दशाङ्गुलम्

ऋ. १०.९०.१, अ. १९.६.१,आ.सं. ४.३,वाज.सं. ३१.१,तै.आ. ३.१२. १.

दशारित्र-- (१) दस अरित्रों से युक्त रथ (२) जिसमें दस थामने और चलाने के यन्त्र हों, (३) ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्दिय रूपी दस अरित्रों से जीवन-यापन करने वाला पुरुष, (४) दसों दिशाओं को स्वामी के समान त्राण करने वाला परमेश्वर ।

'दशारित्रोमनुष्यः स्वर्षाः '

ऋ. २.१८.१

दशास्यः- (१) दस अंगों की पीड़ा को बाहर फेंक देने वाला ब्राह्मण नामक औषधि ।

'दशशीर्षो दशास्यः '

अ. ४.६.१

दशोण्य- (१) दस प्राणयुक्त आत्मा ।

'यथा सोमं दशशिप्रे दशोण्ये '

ऋ. ८.५२.२

दशोणि- (१) दसों को अपने से न्यून करने वाला सर्वश्रेष्ठ, (२) दशावरा परिषद् का स्वामी ।

'दशोण्ये कवये अर्कसातौ '

ऋ. ६.२०.४

(३) दसों दिशाओं को वश में करने में समर्थ ।

'स वेतसुं दशमायं दशोणिम् '

ऋ. ६.२०.८

(४) दस अंगों से युक्त यज्ञ (५) दस उंगलियां से किया गया देवपूजन ।

'हर्यन् यज्ञं सधमादे धशोणिम '

ऋ. १०.९६.१२, अ. २०.३२.२.

(२) दसों इन्द्रियों या प्राणों से युक्त आत्मा ।

दशोनसि- (१) सर्प की एक जाति ।

'कसर्णीलं दशोनसिम् '

अ. १०.४.१७

दंश - दंश् + अच् = दंश।. दंश् धातु दशन (डंसना)अर्थ में प्रयुक्त है । अर्थ है डंस, मच्छ ।

दस- नाश ।

'ये मनुं चक्रः उपरं दसाय '

ऋ. ६.२१.११

दंसना - (१) दुःख नाशन करने वाली क्रिया ।

'वैश्वानरस्य दंसनाभ्यो बृहत् '

(२) प्रयोग

'इन्द्रावथुः काव्यैर्दंसनाभिः '

ऋ. १०.१३१.५, अ. २०. १२५.५, वाज.सं. १०.३४, २०.७७, वाज.सं.(का.) ११.४७. मै.सं. ३.११,४, १४६.३, का.सं. ३८.९, श.ब्रा. ५.५.४.२६.

(३) कर्म ।

(४) भाषण ।

'स नो हिरण्यरथं दंसनावान्
स नः सनिता सनये स नोऽदात् '

ऋ. १.३०.१६

वह कर्मशक्ति-सम्पन्न, ऐश्वर्यों का दाता हमें दान देने के लिए ही दान दे ।

दंसनावान् - (१) उत्तम कर्म करने वाला ।

'उद्गोत्राणी ससृजे दंसनावान् '

ऋ. ३.३९.४

(२) कर्म शक्ति से सम्पन्न (३) कर्मफल देने वाला परमेश्वर ।

दंसयः- ब.व. (१) पाप-नाशक श्रेष्ठ कर्म-

'यत्रादशस्यन् उषासो रिणन्नपः
कुत्साय मन्मन् अह्यश्च दंसयः '

ऋ १०.१३८.१

दस्मः- वि.,सं. (१) दर्शनीय, (२) दानी, (३) शत्रु-नाशक - (४) अज्ञान-नाशक विद्वान्-दया. ।

'ओषुत्वा ववृती मही स्तोमेभिः दस्मसाधुभिः '

ऋ. १.१३८.४

हे दर्शनीय, दानी या शत्रु नाशक पूषन्, या

अज्ञान नाशक विद्वन् हमें तुम्हें सुन्दर स्तुतियों या वेदमन्त्रों के स्वाध्याय से आपके समीप वर्तमान रहें ।

दस्मत् - (सं.) (१) सब दुःखों का नाश करने वाला
'दस्मत् कृणोषि अध्वरम्'
ऋ. १.७४.४
सब दुःखों का नाश करने वाले हिंसा-रहित सुखदायी ज्ञानोपदेश और यज्ञोपासना कर ।

दस्मवर्चाः- (१) दस्मेषु शत्रुषु वर्चः तेजोयस्य-दया. शत्रुनाशकारी पराक्रम या तेज से युक्त, (२) प्रजा नाशक शत्रुओं पर पराक्रमी ।
'जुजोषदिन्द्रो दस्मवर्चाः'
ऋ. १.१७३.४

दस्मस्यमातरा- (१) दर्शनीय सूर्य के उत्पादक भूमि और आकाश (२) दर्शनीय उत्तमगुणयुक्त प्रजाओं के दुःख नाशक पुरुष माता और पिता ।
'मही दस्मस्य मातरा समीची'
ऋ. ३.१.७

दस्म्य - दर्शनीय ।
'द्युक्षाय दस्म्यं वचः'
ऋ. ८.२४.२०, अ. २०.६५.२, आश्व.गृ.सू.१.१.४.

दस्यति- उपक्षीयते (उपक्षीण होता है) । दस् धातु उपक्षीण होना अर्थ में आया है ।

दस्रा - द्वि.व. । दस्रौ दर्शनीयौ । वेद में 'औ' का 'आ' हो जाता है । अ (१) दर्शनीय -दया. (२) अश्विनीद्वय ।
'इषं दुहन्ता मनुषाय दस्रा'
ऋ. १.११७.२१, नि. ६.२६.
हे दर्शनीय कुमारो । तुम दोनों मनुष्य के भरपूर अन्त देते हुए हो ।
(३) अज्ञान-नाशक-दया. ।

दंसि- दस् (दंशन और दर्शन अर्थ में) + इ= दंसि । अर्थ है - (१) कर्म, क्योंकि कर्म करने वाला इन कर्मों को देखता है (कर्मकराःएनानि कर्माणि दंसयन्ते पश्यन्ति) ।

दंसिष्ठ- (१) दुष्टों का नाशक, (२) कर्म करने में खूब, समर्थ, ।
'ओत्यमह्व आरथम् अद्या दंसिष्ठमूतये'
ऋ. ८.२२.१

दंसिष्ठा- द्वि.व.। उत्तम कर्म, कुशल ।
'दस्रा दंसिष्ठा रथ्या रथीतमा'
ऋ. १.१८२.२.

दंसुजूत- (१) अपनी इन्द्रियों का दमन कर उनके द्वारा प्रेरित होने वाला-
(२) विनाश करने वाले वीरों से प्रेरित (३) दुष्ट या प्रजा के नाशकारी जीवों से सेवित ।
'स व्राधतो नहुषो दंसुजूतः'
ऋ. १.१२२.१०
वह बड़े-बड़े मनुष्यों में भी महान् अपनी इन्द्रियों का दमन कर उनके द्वारा प्रेरित होने वाला या विनाश करने वाले वीरों से प्रेरित होने वाला (दंसुजूतः)

दंसुपत्नी- (१) राष्ट्र को दमन करने वाली, इन्द्रियदमनशीला या कार्यकर्ता की पत्नी, (२) दान्त स्वामी को पालन करने वाली भूमि ।
'अधोगिन्द्रः स्तर्यो दंसुपत्नी'
अ. ४.१९.७

दस्यु- (१) दासयिता, उपक्षयिता रसानाम् (रसों का क्षय करने वाला), अथवा (२) उपदस्यन्ति अस्मिन् रसाः (रस में रस सूखतेहैं) अथवा (३) अनावृष्टिद्वारेण कर्मणामुपदासयिता (अनावृष्टि द्वारा कर्मो का नाशक)।
दस् + युच्= दस्यु अर्थ है- (१) राक्षस आदि, (२) अन्न नष्ट करने वाला, (३) रस सुखाने वाला, (४) रोग, (५) दुर्भिक्ष- दया. (६) चोर (७) दुष्ट ।
'अभिदस्युं बुकरेणाधमन्तां'
ऋ. १.११७.२१, नि. ६.२६.
सूर्य से रोग को या प्रताप से दुष्टों को या जल से दुभिक्षि को दूर करते हुए ।
'वैश्वानरो दस्युमग्निर्जघिन्वान'
ऋ. १.५९.६, नि. ७.२३.
(८) शत्रुनाशक इन्द्र ।
'प्राति यत् स्या नीथा दर्शि दस्योः
ओको नाच्छा सदनं जानती गात्'
ऋ. १.१०४.५.
हे इन्द्र, जिस प्रकार हमारी वह स्तुति (स्या नीथा) शत्रु को नष्ट करने वाले तेरे (दस्योः) निवास स्थान के सदृश (ओकःन) हृदय में सम्मुख हो (अच्छा) अपना घर समझती हुई (सदनं जानती) चली जाती है (गात्)
आधुनिक अर्थ- (१) देवताओं के शत्रु,

(२) राक्षस, (३) चोर, (४) जातिच्युत्, हिन्दू जो संस्कार हीन हो गया हो, (५) दुष्ट ।

दस्युहत्य- (१) दस्युओं को मारने का अवसर ।
'प्र ऋजिश्वानं दस्युहत्येषु आविथ'
ऋ. १.५१.५
तू दस्युओं को मारने के अवसरों में सरल धार्मिक मार्गों पर चलने वालों की रक्षा कर ।

दस्युहत्या- (१) मेघ का वध ।
'महे यत्वा पुरुरवो रणाया
अवर्धयन् दस्युहत्याय देवाः'
ऋ. १०.९५.७, नि. १०.४७.
हे पुरुखा । तुझे देवों ने महान् युद्ध तथा मेघ वध के लिये जो बढ़ाया इसीलिए नदियां या देवी स्त्रियां तुझे बढ़ाती हैं । दे 'दस्यु'

दस्युहा- (१) दस्यु का दुष्ट पुरुषों का नाशक ।
'आ दस्युध्ना मनसा याहि अस्तम्'
ऋ. ४.१६.१०
(२) उपक्षुय करने वाले क्षयशील विनाशी देह या अज्ञान का विनाशक आत्मा ।
'कुवित्सस्य प्रहि व्रजं
गोमन्तं दस्युहा गमत्'
ऋ. ६.४५.२४, अ. २०.७८.३, साम. २.१०१८.
(३) दुष्टों का नाशक इन्द्र ।
'इन्द्र यद् दस्युहाभवः'
ऋ. ८.७६.११, अ. २०.४२.२, साम. २.३३९
'स वज्रभृद् दस्युहा भीम उग्रः'
ऋ. १.१००.१२

दस्योः हन्ता- (१) दूसरे को नाश करने वाले का नाशक इन्द्र ।
'यो दस्योर्हन्ता स जनास इन्द्रः'
ऋ. २.१२.१०, अ. २०.३४.१०

दस्मे- द्वि.व. । दर्शनीय आकाश और पृथ्वी ।
'पदेइव निहिते दस्मे अन्तः'
ऋ. ३.५५.१५

द्रहयत् - दृढ़ होता हुआ ।
'तृपत्सोमं पाहि द्रह्यदिन्द्र'
ऋ. २.११.१४

दहीः - देहि । 'दहि' धातु दानार्थक है । 'दह्' के लुङ् के म . पु.ए.व. का रूप है । पर लोट् में प्रयुक्त हुआ है ।
'मा अस्मान् अति दहीः'
(हमें छोड़ अन्य को न दें) ।

द्रष्ट्र- (१) दाढ़ ।
'तेगान्दंष्ट्राभ्याम्'
वाज.सं. २५.१, मै.सं. ३.१५.१, १७७.७, का.सं. (अश्व.) १३.१ .
(२) दांत । दशनसाधना-ऋष्टयो दंष्ट्राः- सा. (काटने में निपुण जो पदार्थ है वे दंष्ट्र है)

दा - बन्धन में रखना ।
'अथो संद्यामि मध्यमान्'
अ. ६.१०३.२

दाक्षायण- (१) दक्ष, कार्य कुशल प्रज्ञावान् पुरुष से संचालन करने योग्य ।
'यो बिभर्ति दाक्षायणं हिरण्यम्'
ऋ.खि. १०.१२८.८, अ. १.३५.२, वाज.सं. ३४.५१
(२) दक्ष रूप आत्मा के आश्रय पर रहने वाला-योगी ।
'यथाबध्नन् दाक्षायणा हिरण्यम्'
अ. १.३५.१

दाक्षायणी- (१) अदिति ।
आदित्य दक्ष इत्याहु रादित्यमध्ये च स्तुतः (आदित्य ही दक्ष है, क्योंकि दक्ष की स्तुति आदित्य के मध्य में ही की गई है) अदिति को ही दाक्षायणी समझा गया है । (अदितिर्दाक्षायणी)
'भूर्जज्ञ उत्तानपदो
भव आशा अजायन्त ।
अदिते र्दक्षो अजायत
दक्षा द्वदितिः परि'
ऋ. १०.७२.४
उत्तानपाद राजा से जिसका पुराणों में भी वर्णन है, भू की उत्पत्ति हुई (उत्तानपदः भूःजज्ञे), भू से दिशाएं उत्पन्न हुई (भुवः आशा अजायन्त), अदिति से दक्ष उत्पन्न हुए (अदितेः दक्षः अजायत) और दक्ष से अदिति उत्पन्न हुई (दक्षात् उपरि) ।
दक्ष से अदिति और अदिति से दक्ष की उत्पत्ति परस्पर विरुद्ध है । यास्क कहते हैं कि दोनों का प्रादुर्भाव समनन्तर (साथ) हुआ । (समान जन्मानौ स्याताम्) या देव धर्म से एक दूसरे के प्रादुर्भाव के कारण हुए (देवधर्मेण इतरेतर जन्मानौ स्थाताम् इतरेतर प्रकृती) । कारण

प्रकृति और जन्म कार्य है।
(२) अग्नि।
अग्निरपि अदितिरुच्यते।

द्रा - भागना।
'अपद्राहि अवीरहा'
अ. ६.१४.३

द्राघिमा - (१) दीर्घता (२) अर्थ-संतति परम्परा।
'वर्षिमा च मे द्राघिमा च में'
वाज.सं. १८.४

द्राघिष्टाः - अत्यधिक सामर्थ्य से युक्त क्रिया।
'द्राघिष्टाभिः शुचिव्रता'
ऋ. ३.६२.१७, साम. २.१४.

द्वा - द्वि.व.। (१) वायु और आदित्य।
'द्वा बृबूकँ वहतं पुरीषम्'
ऋ. १०.२७.२३, नि. २.२२.
उनमें दो -वायु और आदित्य- औषधियोंके पोषक रस को (पुरीषम्) एवं जल को (बूबूकम्) इस पृथ्वी लोक से आदित्य मण्डल में ले जाते हैं। वायु और आदित्य पालक और वृष्टिदाता जल पहुंचाते हैं (पुरीषं बृबूकं वहतः)
(२) दो संख्या। वेद में औ का आ हो जाता है। द्वौ द्रुततरा संख्या (एक के बात तुरन्त दो आता है। अथवा अतिशयेन द्रुता एकस्याः सकाशात्'। यह-एक और यह एक दोनों मिलाकर दो और पुनः पुनः एक मिलाकर तीन इस प्रकार द्रुक्त गति से यह संख्या आगे बढ़ती है। द्रुधातु से द्वि. बना है ('पृषोदरा-दिवत्)

दात्र- (१) देने योग्य। (२) दानसामर्थ्य।
'दीर्घं वो दात्रम् अदितेरिव व्रतम्'
ऋ। १.१६६.१२.
(३) दा (लवनार्थक) + त्रन् = दात्र। उदीच्य देश में शरावती नदी के पश्चिम और उत्तर प्रदेश (४) हंसुआ, छुरी, काटने वाला पदार्थ

दांतम् - (वि.) (१) अर्थ - (१) देने योग्य।
'यदिन्द्र चित्र मेहना अस्ति त्वादातमद्रिवः'
ऋ. ५.३९.१, साम. १.३४५,२.५२२ पंच. ब्रा. १४.६.४,नि. ४.४.
हे इन्द्र, जो पूजनीय या विचित्र धन बढ़ने वाला या तेरे देने योग्य है।

दातवे - दातुम्। दा = तवेन्। दातवे। तवेन प्रत्यय तुमुन् अर्थ में होता है। अर्थ-देने के हेतु।
'तेभिरिन्द्रं चोदय दातवे मघम्'
ऋ. ९.७५.५, नि. ४.१५.
हे सोम। उन सोम रसों से इन्द्र को धन देने के लिए प्रेरितकर -
हे जगदुत्पादक प्रभो। उन महान् आनन्द प्रद वेदों के द्वारा हमारे आत्मा को (इन्द्रम्) धन दान के लिये प्रेरित करें (मघं दातवे चोदय)।

दाता- दा (काटना) + तृच्। (१) काटने वाला, (२) ईंट पत्थर काटने वाला शिल्पी।
'नमस्तेस्मै नमो दात्रे'
अ. ९.३.१२
(३) दाता। दातृ शब्द के प्र.ए. व. का रूप, (४) यजमान।
'प्र च दातारममृतेषु वोचः'
मै.सं. ४.१३ः७,२०९.२. का.सं. १८.२१, तै.ब्रा. ३.६.१२.१, नि. ८.२०.
और हे अग्नि, देवताओं से यजमान या दाता का निर्देश कर।

क्षति- दा (लवनार्थकुः छेदनार्थक) के प्र. पु.ए.व. का रूप। अर्थ है। (१) काटता है। इसी अर्थ में यह आख्यात् या संज्ञा हो गया है। संज्ञा होने पर इसका अर्थ है -
(२) हंसुआ, (३) प्राप्य देश (शरावती नदी के पूर्व और दक्षिण)। आजकल इसका अर्थ काटना या नष्ट करना है। काटता है के अर्थ में-
'अग्निर्ह दाति रोमा पृथिव्याः'
ऋ. १.६५.८.
अग्नि वन की औषधियों को पृथ्वी के सोम के समान जला जलता है।

दातिवारः- जो दान को प्रेम से वरण या स्वीकार करता है।
'धुनिव्रतम् मायिनं दातिवारम्'
ऋ. ५.५८.२
(२) वरने योग्य उत्तम ऐश्वर्य का दाता, (३)दानयोग्य कर आदि संग्राह्य पदार्थों को प्रजा से स्वीकार करने वाला।
'वावृध ईम् मरुतो दातिवारः'
ऋ. १.१६७.८
(४) दान योग्य वेतनादि को प्रसन्नता से वरण स्वीकार करने वाला, (५) शत्रु के खण्डन तथा

छेदनादि कार्य को स्वीकार करने वाला, (६) शत्रुओं की हिंसा का वारण करने वाला।
'अमन्दन्निन्द्रमनु दातिवाराः'
ऋ. ३.५१.९

दातु - दान।
'क्व तस्य दातु शवसो व्युष्टौ'
ऋ. १०.९९.१

दात्यौह - कालाकौआ।
'मासेभ्यो दात्यौहान्'
वाज.सं. २४.२५, मै.सं. ३.१४.६ः १७३.१०

द्वादशकपालः- द्वादश मस्तिष्कों से सुविचारित सिद्धान्त
'विश्वेभ्यो देवेभ्य जागतेभ्योः सप्तदशेभ्यो वैरुपेभ्यो द्वादश कपालः'
वाज.सं. २९.६०

द्वादशधा- (१) पाप के १२ स्थान ,अर्थात् ५ कर्मेन्द्रिय, ५ ज्ञानेन्द्रिय, मन और बुद्धि। (२) प्रथमं देवेषु पश्चात् त्रिषु आप्येषु ततः सूर्याभ्युदितादिषु अष्टसु-

द्वादश प्रधयः- - (१) १२ परिधियां , (२) कालचक्र के १२ मास, (३) पांच स्थूल, पांच सूक्ष्म, महत् और अहंकार, (४) बारह प्राण।
'द्वादश प्रधयश्चक्रमेकम्'
ऋ. १.१६४.४८.

द्वादशर्तवः- (१) बारह-वस्तुएं (२) मधु, माधव आदि बारह मास।
'मे देवा द्वादशर्तवः'
अ. ११.६.२२

द्वादशरात्रीः- प्रजापति के बारह व्रत करने योग्य रत्रियां। ये द्वादशाह कर्म हैं। जो बारह मास या बारह वर्ष का प्रतिनिधि है। उन बारह वर्षों में एक वेद का स्वाध्याय करे। बारह वर्ष ब्रह्म चर्य करे। एक वर्ष तक प्रजापति व्रत करे'।
'द्वादश वा एता रात्रीः व्रत्या आहुः प्रजापतेः'
अ. ४.११.११

दस्म वर्चाः- (१) क्षीण तेज, (२) अन्न को देह में क्षय करने वाला जठराग्नि, (३) शत्रुओं के नाशकारी तेज से युक्त।
'परिज्मेव क्षयसि दस्मवर्चाः'
ऋ. ६.१३.२, मै.सं. ४.१०.१, १४३.३, आप. श्रौ.सू.५.२३.९.

द्वादशाक्षर- (१) किरण गण के १२ मास (२) बारह अक्षर।
'विश्वेदेवा द्वादशाक्षरेण जगतीमुदजयतन्'
वाज.सं. ९.३३, तै.सं. १.७.११.२.

द्वादशाकृतिः- (१) बारहमास रूप बारह स्वरूपों वाला सूर्य या संवत्सर (२) बारह प्राणों का स्वामी आत्मा।
'पञ्चपादं पितरं द्वादशाकृतिम्'
ऋ. १.१६४.१२, अ. ९.९.१२, प्रश्न उप. १.११.
(३) पञ्चतन्मात्रा, पञ्चस्थूलभूत, अहंकार और महत् से बारह उसी ब्रह्म की शक्ति के द्वारा भौतिक विकार या आकार होने से ब्रह्म द्वादशा कृति है।

द्वादशार - (१) बारह मास रूप अरों वाला संवत्सर।
'संवत्सरो यस्मान्निर्मितो द्वादशारः'
अ. ४.३५.४
(२) बारह अर, वर्ष की बारह राशियां।
'द्वादशारं नहि तज्जराय'
ऋ. १.१९४.११. अ. ९.९.१३
(३) बारह अरों वाला चक्का (४) काल चक्र के बारह अर बारह महीने।
'द्वादशारं नहि तज्जराय
वर्वर्ति चक्रं परि द्यामृतस्य'
ऋ. १.१६४.११, अ. ९.९.१३
सत्यात्मक आदित्य, यज्ञ या संवत्सर काल का अंगभूतचक्र (ऋतस्य चक्रम्) या मण्डल का कालचक्र अन्तरिक्ष के ऊपर बार बार चलता है। वह चक्र बारह अरों से युक्त है और कभीर्जर्ण नहीं होता।

द्वादशाह - एक प्रकार का यज्ञ।
'यावद् द्वादशाहेनेष्ट्वा'
अ.९.६.४३.
'द्वादशाहोऽपि तन्मयि'
अ. ११.७.१२

द्वा-द्वा - दो दो के जोडे जैसे आंख, कान, नाक।
'उपमाषड् द्वा द्वा'
ऋ. ८.६८.१३

द्वादोवाषट् - (१) दो दो के जोड़े-आंख, कान और नाक मिलाकर छः।

दादृहाणः- (१) अपनी वृद्धि करता हुआ,

(२) शत्रुओं का नाश करता हुआ ।

'दाहृहग्णो वज्रमिन्द्रोभस्त्यौः'

ऋ. १.१३०.४

'दादृहाणं चित् बिभिदुः विपर्वतम्'

ऋ. १.८५.१०.

वायुगण बढ़ते हुए मेघ को विशेष प्रकार से छिन्न भिन्न कर देते हैं ।

दाधार – धारयति (धारण करता है)

द्राघीयस्–दीर्घ, अतिविस्तीर्ण ।

'द्राघीय आयुः प्रतरं दधानः'

ऋ. १.५३.११, १०.१८.२.३, ११५.८, अ. ८.२.२, १२.२.३०, २०.११.११, तै.आ. ६.१०.२, आश्व.गृ.सू. २.९.२.

दाधृषिः– (१) दुष्टों को गर्व रहित करने वाला –इन्द्र

'सत्राहणं दाधृषिं तुम्रमिन्द्रम्'

ऋ. ४.१७.८, साम. १.३३५, आश्व.श्रौ.सू. ३.८.१.

(२) प्रतिपक्षियों को दबाने और पराजय करने में समर्थ ।

'पुत्रो भवति दाधृषिः'

अ. २०.१२८.–३

(३) कामक्रोधादि को दबाने वाला

'ब्रह्मणायामि सबनेषु दाधृषिः'

ऋ. २.१६.७

दान – मदजल जिसे हाथी धारण करता है, (२) दान देने योग्य ऐश्वर्य ।

'दाना मृगो न वारणः=।'

ऋ. ८.३३.८, अ. २०.५३.२, ५७.१२.

(३) शुभाशुभ कर्म (४) दान । दा + ल्युट् ।

'सो अस्य कामं विधतो न रोषति
मनोदानाय चोदयन् ।

ऋ. ८.९९.४, अ. २०.५८.२

मन को दान के लिये प्रेरित करते हुए वह परमात्मा इस परिचर्या करने वाले भक्त की कामना को भंग नहीं करता है ।

दानव– दनु + अण् = दानव । अर्थ–(१) दनु से उत्पन्न, (२) राक्षस (३) वृत्रासुर का वाचक

'सृजोविधारा अवदानवं हन्'

ऋ. ५.२९.४, नि. १०.९.

मेघ या वृत्रासुर को उन्मुक्त कर तूने धाराएं बहायीं । (४) जलदाता मेघ, निरुक्त । (दानार्थक) धातु से दानकर्ता दानव शब्द बना है । आधुनिक अर्थ–राक्षस, ।

दाना – (१) दान देने योग्य पदार्थों से युक्त, (२) दान ।

'दाना मित्रं न योषणा'

ऋ. ५. ५२.१४

(३) दान जल वाची भी है ।

दानाप्नाः, दानाप्न्स् – (१) शत्रु खण्डन तथा प्रजा पर कृपा कारी दान रूप कर्म करने वाले ।

'मक्षू तात इन्द्र दानाप्नसः'

ऋ. १०.२२.११

दानु– (१) मर्म को काटने वाला काम विकार, (२) गुप्तसत्य के समान बल को काटने वाला ।

'दानुं शयानं स जनास इन्द्रः'

ऋ. २.१२.११, अ. २०.३४.११.

(३) दाता, देने वाला, (४) मेघ, (५) दानव,

दानुचित्र – (१) दानयोग्य पदार्थों से अद्भुत रूप से समृद्ध ।

'जयन् अपो मनवे दानुचित्राः'

ऋ. ५.३१.६

(२) उत्तम अन्नु ऐश्वर्य और सुखप्रद पदार्थों से अद्भुत रूप वाली ।

'करत् तिस्रो मघवा दानुचित्राः'

ऋ. १.१७४.७

दानुदः– (१) दान देने योग्य ज्ञान और ऐश्वर्य को देने वाला ।

'प्र दानुदो दिव्यो दानुपिन्वः'

ऋ. ९.९७.२३

दानुनस्पती – (१) दान, जलवर्सण के पालक–सूर्य और चन्द्र या सूर्य और विद्युत्, (२) दान करने योग्य धनैश्वर्य के पालक पतिपत्नी ।

'आदित्या दानुनस्पती'

ऋ. १.१३६.३,

(३) दानपती, दानु शब्द का अर्थ दान (नपुंसक) और दाता (पु.) दोनों हैं । सायण ने दानुनस्पती का अर्थ – ' दानुनः दानस्य देवस्य वाधनस्य पती स्वामिनी' (दान, देव, या धन का स्वामी) किया है । (द्वि.व.) अदिति के दो पुत्र । आदित्या का विसेषण जो जल बरसाने वाले हैं । अर्थ (४) दान देने वाले या यजमानों की स्तुतियों तथा हवियों में संवेवित् । वे दोनों अदिति के पुत्र तथा दान देनेवाले या स्तुतिशील

यजमानों से संसेवित......(४)मित्रावरुण भी आदित्य का ही पर्यायवाची शब्द है।

दानुपिन्वः- अपने दान से सबको मेघवत् सेचन कर पुष्ट करने वाला।

'प्र दानुदो दिव्यो दानुपिन्वः'

ऋ. ९.९७.२३

दानुमत् - (१) दान देने योग्य, (२) जीवन प्रदान करने वाला जल।

'अधारयः पर्वते दानुमद् वसु'

ऋ. १.५१.४

हे सूर्य, तू मेघों में और पर्वत पर दान देने योग्य और जीवन प्रदान करने वाले मेघ को धारण करता है।

दानौकस् - (१) दान देने योग्य ऐश्वर्यों का एकमात्र आश्रय परमेश्वर।

'वीरं दानौकसं वन्दध्यै'

ऋ. १.६१.५, अ. २०.३५.५.

(२) दान का ओकस् अर्थात् पात्र।

द्रापिः - (१) शत्रुओं को कुत्सित गति में पहुंचा देने वाला-रुद्र।

'द्रापे अन्धसस्पते'

वाज.सं. १६.४७.तै.सं. ४.५.१०.१, मै.सं. २.९.९, १२७.६, का.सं. १७.१६, श.ब्रा. ९.१.१.२४.

(२) कवच, (३) बाह्य स्वरूप।

'बिभ्रद् दापिं हिरण्ययम्
वरुणो वस्त निर्णिजम्'

ऋ. १.२५.१३

द्वापर - (१) द्वापर युग, (२) करने वाले और देखने वाले दोनों के करने और निरीक्षण के परे और भी उत्तम कार्य को करा लेना।

'द्वापराय अधिकल्पिनम्'

वाज.सं.३०.१८

द्वाभ्यां परः - (१)कर्मेन्द्रिय और ज्ञानेन्द्रियों से परे बृहस्पति (२) नीचे के दो द्वारों या वाणी और मन से परे।

दाम- (१) अश्व को दमन करने वाला बन्धन -पेटी

'यदाजिनो दाम संदानमर्वतः'

ऋ. १.१६२.८, वाज.सं. २५.३१, तै.सं. ४.६.८.३, मै.सं. ३.१६.१, १८२. १०. का.सं. (अश्व) ६.४.

(२) निगडबन्धन, (३) हथकड़ी-सा. (४) बन्धन -दया।

'द्रध्र आभूषु रामयन् निदामनि'

ऋ. १.५६.३.

दुष्ट शत्रुओं पकड़ने वाले इन्द्र ने (दुध्रः) दुष्टों को कारागृहों में (आभूषु) बन्धक निगड़ में (दामनि) रमाया (रामयन्) -सा.। विद्या से पूर्णकर प्रसन्नता में रमाने वाले (दुध्र मदे रामयन्) शोभायमान (आभूषु) ....वर को स्त्री अपने प्रेमपाश में (दामनि) बांधती है- दया.

(५) दान।

'इन्द्रः स दामने कृतः'

ऋ. ८.९.३.८, अ. २०.४७.२, २०.१३७.१३, साम. २.५७३, मै.सं. २ .१३.६, १५५.९, का.सं. ३९.१२, तै.ब्रा. १.५.८.३.

(६) सबको भृति वृत्ति देना (७) प्रजा को दमन करने का कार्य।

दामा- (१) दानशील, (२) जीवित चित्त वाला तपस्वी, (३) आत्मा समर्पण करने वाला भक्त।

'आदिद् दामानं सवितर्व्यूर्णुषे'

ऋ. ४.५४.२, वाज.सं. ३३.५४.

'दामानं विश्व चर्षणे'

ऋ. ८.२३.२

(४) दमन करने वाला।

'दामारथस्य ददृशे'

ऋ। ८.७२.६

(५) रसों का दाता, (६) आत्मसमर्पणशील।

'नाहदामानं मघवा नियंसत्'

ऋ. १०.४२.८, अ. २०.८९.८

द्वामिथुना- (१) दो जोड़े (२) मध्यम और मध्यमा वाणी जिसे सरण्यू ने उत्पन्न किया -सा. (३) पूर्व कालीन सरण्यू ने अन्धकार और निस्तब्धघंता नामक मिथुन उत्पन्न किए-

द्वायन्तारा - (१) काल के दो नियामक रूप दो अयन, (२) दो मास जो ऋतु को नियमित करते हैं।

'द्वायन्तारा भवतस्तथा ऋतुः'

ऋ. १.१६२.१९, वाज.सं. २५.४२, तै.सं. ४.६.९.३, (अश्व.) ६.५, मा.श्रौ.सू. ९.२.४.

दायादः - समस्त धनों का दाता स्वामी।

'सोमो दायाद उच्यते'

अ. ५.१८.१४

दारसृद् - (१) स्त्रियों का मान भंग करने वाला।

'अदारसृद् भवतु देव सोम'
अ. १.२०.१, तै.ब्रा. ३.७.५.१२, आप.श्रौ.सू. २.२०.६.

द्वार- (१) जु + आरक् = द्वार ('ज' का 'द') जु धातु गमनार्थक हैं। अंग्रेजी के go धातु से जु की समानता विचारणीय है, (२) द्रु (गमनार्थक) + आरक् = द्वार (द्रु के रेफ का लोप)। जवन्ति द्रवन्ति वा ताभिः (उन से होकर यज्ञ गृह में जाते हैं) (३) वार (निपारणार्थक) धातु से निपातन द्वारा भी द्वार की व्युत्पत्ति की गई है। निवार्यन्तेहि वारणीयाः द्वारादेव (वारणीय पदार्थों के द्वारा रोका जाता है।) अर्थ है - (१) द्वार Door। (२) इन्द्रिय -दया.।
'नवद्वापुरे देही
पुरमेकादशद्वारम्'

दार्भ्य - (१) दर्भ अर्थात् शत्रुओं को विदारण करने में समर्थ, (२) शत्रु हिंसकों में श्रेष्ठ नायक।
'दार्भ्याय परावह'
ऋ. ५.६१.१७

दार्वाघाटः- (१) काष्टों को चीरने फाड़ने वाला, (२)कठफोरवा नामक पक्षी।
'गोधा कालका दार्वाघाटस्ते वनस्पतीनाम्'
वाज.सं. २४.३५, तै.सं. ५.५.१५.१, मै.सं. ३.१४.१६, १७५.१२, का. सं. (अश्व.) ७.५.

दार्वाहारः- (१) लकड़हारा।
'भाये दार्वाहारम्
वाज.सं. ३०.१२, तै.ब्रा. ३.४.१.८

दारु- (१) शत्रु-सैन्यों, दुःखों और शत्रुनगरों का विदारण करने वाला, (२) दुष्टों का भयदाता।
'वन्देदारुं वन्दमानो विवक्मि'
ऋ. ७.६.१
(३) दॄ (विदारणार्थक) + त्रुण् = दारु (जो विदाराजाय, फाड़ा जाय)। (४) द्रू (हिंसार्थक) से ही वर्ण विपर्यय के द्वारा 'दारु' शब्द बना है। दारु हिंसा करता है। आधुनिक अर्थ - (१) काटना, (२) दानी, उदार, (३) कलाकार, (४) काष्ठ, काष्ठखण्ड, (५) देवदारु, (६) वज्र (७) ताम्बा।

दावत् - दा (देना) + वनिप् = दावत्। अर्थ है (१) देने वाला। आज भी गावों का नाम 'दावथ' रखा जाता है।

दावन् - (१) दान देना।
'प्र.वः पूष्णे दावन आँ
अच्छा वोचेय वसुतातिमग्नेः'
ऋ. १.१२२.५
आप लोगों में उत्तम उपदेश और ज्ञान की पुष्टि और वृद्धि करने वाले (पूष्णे) और आगे विद्या दान देने वाले विद्यार्थी को (दावने) अच्छी प्रकार ज्ञानमय परमेश्वर या अग्नि के (अग्नेः) धनस्वरूप वेदज्ञान का (वसुतातिम्) प्रवचन करूं (अच्छा प्रवोचेम)। (२) दान, (३) आत्म-समर्पण।
'आवर्तयन्ति दावने'
ऋ. ८.६९.१७, अ. २०.९२.१४
(४) दानशील, (४) आत्म-समर्पक पुरुष।
'त्वं विभासि अनुदक्षि दावने'
ऋ. २.१०.१
(६) दा (देना) + वनिप् (कर्म में) = दावन् अर्थ है जो दिया जाय। दे. 'अकूपार', 'सर्वामन्'

दावप- (१) जंगल में लगने वाली आग से रक्षा करने में कुशल पुरुष।
'अन्यतोरण्याय दावपम्'
वाज.सं. ३०.१९, तै.ब्रा. ३.४.१.११.

द्यावा क्षामा-(१) आकाश और पृथिवी। दे. अचक्रे' (२) सूर्य और पृथिवी के समान तेजस्वी और क्षमाशील माता पिता।
'द्यावाक्षामारे अस्मद् रणस्कृतम्'
ऋ. ८.१८.१६
'द्यावाक्षामा रुक्मो अन्तर्विभाति'
ऋ. १.९६.५, वाज.सं. १२.२, १७.७०, तै.सं. ४.१.१०.४, ४.६.५.२, ७.१२.३, मै.सं. २.७.८, ८४.१३, ३.२१, १४.१३, का.सं. १६.८, १८.४, श.ब्रा. ६.७.२.३.
सूर्य कान्तिमान होकर आकाश और पृथ्वी के बीच शोभा पाता है।

द्यावापृथिवीवान् - (१) आकाश और पृथिवी पर वश करने वाला सूर्य, (२) सूर्य नामक अधिकारी।
'सूर्य ते द्यावापृथिवीवन्तम् ऋच्छन्तु'
अ. १९.१८.५

द्यावापृथिवी- 'दिव्' . से द्यौ और 'प्रथविवन्' से पृथिवी। द्वन्द्व समास होने पर दिव् का

'द्यावा'हो जाता है । अर्थ है (१) द्यौ और पृथिवी ।
'य इमे द्यावा पृथिवी जनित्री
रूपैशपिंशद् भुवनानिविश्वा
ऋ. १०.११०.९, अ. ५.१२.९ वाज.सं. २९.३४, मै.सं. ४.१३.३, २०२.११, का.सं. १६.२०., तै.ब्रा. ३.६.३.४, नि. ८.१४.
पुनः-
'नयस्य द्यावापृथिवी न धन्व
नान्तरिक्षं नाद्रयः सोमो अक्षाः
यदस्य मन्युरधिनीयमानः
श्रृणाति वीडु रुजति स्थिराणि'
ऋ. १०.८९.६, नि. ५.३.
द्यौ और पृथिवी भी जिस इन्द्र की महिमा की थाह नहीं लगा सकते या जिसकी महिमा को व्याप्त नहीं कर सकते (यस्य न) न अन्तरिक्षं और न पर्वत (न अन्तरिक्षं न अद्रयः) । (सिर्फ सोम ही इस की महिमा को पार पाता है या व्याप्त होता (सोमा अक्षाः) है क्योंकि इस इन्द्र का क्रोध (यत् अस्य मन्युः) सोम रस पी लेने के साथ ही शत्रुओं के ऊपर आकर ही कम होता है (अधिनीयमानः श्रृणाति) यद्यपि शत्रु बल दृढ़ होता है (वीडु) और दृढ़ मेघ वृन्द को भी फाड़ डालता है । (स्थिराणि रुजति)। अन्य अर्थ-जिस परमात्मा की महिमा द्युलोक तथा पृथिवीलोक नहीं पाते, समुद्र नहीं पाता, अन्तरिक्ष नहीं पाता, पर्वत नहीं पाता उसकी महिमा को शान्त जीव पाता है (सोमः) । जिस महिमा से इस परमेश्वर का व्याप्त हुआ मन्यु अभिमानियों को शीर्ण करता तथा कठोर चेताओं की (स्थिराणि) भग्न करता है । (रुजन्ति) ।

द्राविणोदस्- द्रविणोदस+ अण् । द्रविणोदस् का अपत्य (१) अग्नि । द्रविणोदस् ऋत्विज के अर्थ में आया है क्योंकि वे हवि देने वाले हैं । वे ऋत्विज अग्नि को उत्पन्न करते हैं अतः अग्नि का नाम द्रविणोदस् पड़ा । यजुर्वेद में 'ऋषीणां पुत्रों अधिराज एषः' कहा है अर्थात् अग्नि ऋषियों का पुत्र है क्योंकि इसे ऋषि इसे उत्पन्न करते हैं ।

द्रावयत्सखः- अपने मित्र साथियों को द्रुत गति से चलाने वाला ।
'चर्कृत्यं ददथु र्द्रावयत्सखम्'
ऋ. १०.३९.१०

द्रावयित्नवः- (ब.व.) । सूर्य रश्मि तथा सोम-रस का विशेषण । अर्थ है-द्रावण शील या आकर्षक ।
'सूर्यस्येव दश्मयो द्रावयित्नवः'
ऋ. ९.६९.६, साम. २.७२०.
सूर्य की रश्मियों के समान द्रावण शील या आकर्षक सोम रस ।

द्वयावी- (१) सत्य और असत्य दोनों का सेवन करने वाला, (२) दुरंगा ।
'मा ते रसस्य मत्सत द्वयाविनः'
ऋ. ९.८५.१, साम. १.५६१

दाश- (१) वेतन बद्ध भृत्य
'उपस्थावराभ्यो दाशम्'
वाज.सं. ३०.१६.
(२) सेवन करना, (३) समर्पण करना ।
'समिधा यो निशिती दाशददितिम्'
ऋ. ८.१९.१४
(३) दान ।

दाशति- देता है । 'दाश्' दानार्थक धातु है । (दाशतिः दानकर्मा)
'यो वां यज्ञैः शशमानो ह दाशति
कविर्होता यजति मन्मसाधनः
उपहातं गच्छथो वीथो अध्वरम्
अच्छा गिरः सुमतिं गन्तमस्मयू'
ऋ. १.१५१.७, नि. ६.८.
जो यजमान (योह) आप दोनों मित्रा वरुण को यज्ञों के द्वारा स्तुति करता हुआ (शशमानः) हवि आदि देता है (दशाति) और जो क्रान्तदर्शन होता मननशील या विज्ञान साधक होता है (मन्मसाधनः), सोम यज्ञ आदि करता है (यजति) उसी शोभन प्रज्ञ यजमान को (तम्) उपलक्षित कर (उप) तुम प्राप्त करते हो (गच्छथः अह) तथा उसके यज्ञ को पसन्द करते हो (अध्वरं वीथः) तथा हमारी कामना करते हुए तुम दोनों (अस्मयू) हमारी स्तुतियों को अभिलक्षित कर (गिरःअच्छ) आओ (आगन्तम्) ।
अन्य अर्थ- हे अध्यापक तथा उपदेशक जो

बुद्धिमान् दाता (कविः होता) और विद्या साधक (मन्मसाधनः) पञ्च महायज्ञों को करता है (यज्ञैः यजति) और आप का सत्कार करता हुआ भोग्यादि पदार्थों को देता है (ह वां शशमानः दाशति) उसके पास आप जाते हैं। (अहतम् उपगच्छथः) उसके यज्ञ में शामिल होते हैं (अध्वरं वीथः) और हम से प्रीति करते हुए (अस्मयू) सुभाषित वचनों तथा सुमति को प्राप्त करते हो (अच्छा गिरः)

दाश्वध्वरः- (१) दान रूप अखण्डयज्ञ करने वाला
'त्वावृधो मघवन् दाश्वध्वरः'
ऋ. १०.१४७.४
(२) दानशील अहिंसामययज्ञ करने वाला।
'अग्ने को दाश्वध्वरः'
ऋ. १.७५.३, साम. २.८.८५.
(३) दाशु + अध्वर। दान रूप से दूसरे को कष्ट न देने वाला यज्ञ।
'यं युवं दाश्वध्वराय देवा
रयिं धत्थो वसुमन्तं पुरुक्षुम्'
ऋ. ६.६८.६
(४) वृष्टि अन्नादि देने वाले सूर्य का जीवनप्रद जल प्रदान रूप यज्ञ, (४) राजा का प्रजा पालक यज्ञ।
'सुन्वन्तो दाश्वध्वरम्'
ऋ. ८.४.१३
(६) अन्न वस्त्र देने वाला रक्षक।
'कस्ते जामिः जनानाम्
अग्ने को दाश्वध्वरः'
ऋ. १.७५.३, साम. २.८८५.
हे अग्ने, या ज्ञानवान् तेजस्वी शिष्य, तेरा कौन बन्धु है! तुझे अन्न वस्त्र देने वाला रक्षक कौन है!

दाशराज्ञ- (१) दसराजाओं के बीच हुआ युद्ध दाशराज्ञ कहा गया है। (२) दस इन्द्रियगण।
'दाशराज्ञे परियत्ताय विश्वतः
सुदास इन्द्रावरुणा वशिक्षतम्'
ऋ. ७.८३.८
(३) एक वैदिक राजा, (४) दान शीलों में तेजस्वी।
'अदीधयुर्दाशराज्ञे वृतासः'
ऋ. ७.३३.५
(५) दशों दिशाओं के राजा।
'यदिन्द्रादो दाशराज्ञे'
अ. २०.१२८.१२, गो.ब्रा. २.६.१२, शां.श्रौ.सू. १२.१५.१५.

दाश्वान् - दा + क्वसु (लिट् अर्थ में) = दाश्वस्। प्रथमा एक वचन में दाश्वान्। अर्थ है- (१) दत्तवान् (दिया) (२) देने वाला, (३) अतिशय दानशील।
'पुरुत्वादाश्वानं व वोचे'
ऋ. १.१५०.१, साम. १.९७., नि. ५.७.
हे अग्ने, मैं दाता तुझे बहुत पुकारता या तुझ में वरदान मांगता हूँ।

दाश्वांसः- दाश्वस का प्रथमा ब.व. में रूप (१) दान देने का संकल्प किए हुए विश्वेदेवाः' का विशेषण।
'विश्वेदेवास आगत दाश्वांसो दाशुषः सुतम्'
ऋ. १.३.७, वाज.सं. ७.३३., तै.सं. १.४.१६.१, मै.सं. १.३.१८, ३७.२, का.सं. ४.७, श.ब्रा. ४.३.१.२७, ऐ.आ. १.१.४.१३, नि. १२.४०.
हे विश्वेदेवो, दाता यजमान के तैयार किये सोमरस को पान करने के लिये दान देने के लिये संकल्प से आओ।

दाशुरिः- दाता
'स्वयं चित्स मन्यते दाशुरिर्जनः'
ऋ. ८.४.१२

दाशुष् - (१) दाता, (२) हवि देने वाला (दाशुषे)।
'धाता ददातु दाशुषे
प्राचीं जीवातुमक्षिताम्'
अ. ७.१७.२, आश्व.श्रौ.सू. ६.१४.१६, शां. श्रौ.सू. ९.२८.३, शां.गृ.सू. १.२२.७, नि. ११.११.
'दासू' नाम आज भी प्रचलित है।

दाः- दोहि। 'दा' धातु के लुङ् म.पु.ए.व.का रूप। लोट् में प्रयुक्त।
'मा अस्मान् अतिहायदाः'
(हमें छोड़ अन्य को न दे)

दास- (१) अज्ञान-नाशक शरीर में रहने वाला जीव (२) दस् (उपक्षय) + घञ् = दास। अर्थ है - कर्मकरः सहि उपदासयति उपक्षापयति कर्माणि (दासकर्मों को समाप्त करता है अर्थात् क्रिया द्वारा सम्पन्न करता है) (३) दुष्काल - दया. दुष्काल भी शुभकर्मों को समाप्त करता

है । (४) अन्धकार दया.
'इन्द्रः पूर्भिदातिरद्दासमर्कै
विद्वद्वसुर्दयमानो विशत्रून्
ब्रह्मजूतस्तन्वा वावृधानो
भूरिदात्र आपृणत् रोदसी उभे ।'
ऋ. ३.३४.१, अ. २०.११.१.
शत्रुगणों को भेदन करने वाला (पूर्भिदि) सम्पत्तिमान् (विदद्वसु), शत्रुओं का हनन करने वाला (शत्रून विद्यमानः) इन्द्र या राजा प्रकाश से या वेदों के प्रकाश से (अर्कै) अन्धकार या पापान्धकार को (दासम्) दूर कर (आ अतिरत्) ब्राह्मणों से संगति करने वाला (ब्रह्मजूतः) शरीर से पुष्टाङ्ग (तन्वा वावृधानः) प्रचुर दाता (भूरिदात्रः) जिस प्रकार सूर्य द्युलोक तथा पृथ्वी लोक को पालता है (उभे रोदसी आ अपृणत्) उसी प्रकार प्रजाओं का पालन कर । -दया.

दासति - दासयति, क्षापयति, समापयति (क्षीण करता है, समाप्त करता है) ।

दासपत्नी - (१) शत्रुनाशक सैनिकों को अपने भीतर पालने वाली सेना ।
'दासपत्नीर धूनुतम्'
ऋ. ३.१२.६, साम. २.९२६,१०५४, तै.सं. १.१.१४.१, .मै.सं. ४.१०.५, १५५.९, का.सं. ४.१५.

दासपत्नीः- ब.व. । (१) दासाधिपत्नी दासः कर्मकरः तं हि अधिष्ठाय सा पाति पक्षति (दास का आश्रय ले जो रक्षा करती है । (२) दुष्काल रक्षक, -दया. ।
'दासपत्नीरहिगोपाअतिष्ठन्'
ऋ. १.३२.११, नि. २.१७.
मेघ से रक्षित (अहिगोपाः) वृत्र के अधिकृत जल (दास पत्नी अन्तरिक्ष में थमे हुए थे। -सा. दुष्काल -रक्षक (दासपत्नी) वृष्टिजल (अहिगोपा) अन्तरिक्ष मे जमे हुए थे -दया.
(३) दास अर्थात् आश्रय या रक्षा देने वाले राजा या सेनापति को अपना पालक मानने वाला सेना ।

दासप्रवर्गः- (१) दास एवं भृत्यजनों को उत्तम आज्ञाकारी वर्ग वाला, (२) जिसमें दासों का समूह हो (३) रयि (धन) का विशेषण ।
'दासप्रवर्गम् रयिमश्वबुध्यम्'
ऋ १.९२.८

दासः वर्णः- (१) उपक्षयशील विनाशी स्वभाव वाला, (२) विनाशकारी हत्यारा ।
'यो दासं वर्णमधरं गुहाकः'
ऋ. २.१२.४, अ. २०.३४.४, कौ.ब्रा. २१.४, २२.४.
(३) देने योग्य रूप, (४) देनेयोग्य वर्ण-रूपवान् देह, (५) प्रजा का नाशक वर्ण, ।

दासवेश- (१) प्राणनाशक पदार्थों का नाश (२) दास सेवक भृत्यादि पर अनुग्रह करना, (३) भृत्य पोषक धन
'पृक्षाय च दासवेशाय चावहः'
ऋ. २.१३.८

द्वयास्य- (१) द्वि + आस्य । दो मुखों वाला, (२) दोमुहां बच्चा
'द्वयास्याच्चतुरक्षात्'
अ. ८.६.२२

द्वयास्या- (१) दो मुख वाली ब्राह्मण रूप गौ, (२) राष्ट्र का भीतरी और बाह्य शत्रु ।
'चतुश्रोत्रा चतुर्हनुः'
अ. ५.१९.७

दास्वती - (१) देने वाली । उषा का विशेषण
'सहद्युम्नेन बृहता विभावरि
राया देवि दास्वती'
ऋ. १.४८.१
हे विशेष दीप्तियों से युक्त उषा, दानशीले, (दास्वति) तू बड़े तेज कान्ति या अन्नादि योग्य सम्पति से और गौ आदि पशु ऐश्वर्य से उत्तम अन्न वस्त्रआदि नाना पदार्थों को देने वाली हो ।

दाक्षी - (१) प्रजानाश करने वाली सेना (२) भृत्या, सेवा करने वाली
'आर्याय विशोऽवतारीर्दासीः'
ऋ. ६.२५.२, मै.सं. ४.१४.१२, २३५.४ तै.ब्रा. २.८.३.३.
(३) असिक्नी नामक सर्प से उत्पन्न एक सर्प की जाति
'जाता दास्य सिक्न्या'
(४) नाश करने वाली शत्रुसेना ।
'अस्मे दासीर्विशःसूर्येण सह्याः'
ऋ. २.११.४

दासीविश् - (१) नश्वर प्रजा

द्वा सुपर्णा – (१) उत्तम ज्ञान, पालन और सामर्थ्य से युक्त ईश्वर और जीव या जीव और मन
'द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया'
ऋ. १.१६४.२०, अ. ९.९.२०, मुण्डक उप. ३.१.१, नि. १४.३०.

द्विः – दुगुना ।
'द्विर्यत् त्रिर्मरुतो वावृधन्त'
ऋ. ६.६६.२, मै.सं. ४.१४. ११, २३३.५.

द्वि. – दे. 'द्वा' । द्रु + ड्विव = द्वि । यह संख्या एक से आगे हुई है । अतः 'द्वि' है ।

दिक् – (१) दिशा, (२) नानाविद्याओं का उपदेष्टा आचार्य ।
'प्र पाकं शास्सि प्रदिशोविदुष्टरः'
ऋ. १.३१.१४
तू परिपक्व ज्ञान को (पाकम्) भलीप्रकार उपदेश करता है (प्रशास्सि) तथा विद्वानों में श्रेष्ठ होकर (विदुष्टरः) प्राची आदि दिशाओं तथा नाना विद्याओं के उपदेष्टा आचार्यों पर भी शासन करता है ।

दिक्शंसित – (१) दिशाओं की शक्तियों से सुशिक्षित ।
'विष्णोः क्रमोऽसि सपत्नहा
दिक् संशितो मनस्तेजाः'
अ. १०.५.२८

दिग्धेषु– दिग्धा + इषु । विष बुझा तीर ।
'इषुरिव दिग्धा नृपते'
अ. ५.१८.१५

द्वि,जन्मा– (१) कर्त्ता और भोक्ता दो रूपों में प्रकट होने वाला अग्नि, (२) देह और ओम इन दो अरणियों से निष्पादित होने वाला सबका दाता और आदान कर्त्ता, (३) द्विज, विप्र ।
'अयं स होता यो द्विजन्मा'
ऋ. १.१४९.५, साम. २.११२६.
(४) विद्या जन्मद्वितीयः–दया. । पिता से एक जन्म और गुरु से विद्या पढ़ने से दूसरा जन्म होता है । अतः मनुष्य द्विजन्मा है । उसे द्विज कहते हैं (५) दो अरणियों से उत्पन्न होने वाला अग्नि ।
'अभिद्विजन्मा त्रिवृदन्न मृज्यते'
ऋ. १.१४०.२
(६) वायु तथा कारण रूप अग्नि तत्व से उत्पन्न अग्नि भी द्विजन्मा है ।
'द्विजन्मानं रयिमिव प्रशस्तम्'
ऋ. १.६०.१

द्विजा– (१) प्रभु और प्रकृति से उत्पन्न (२) माता और पिता से उत्पन्न ।
'द्विजाअह प्रथमजा ऋतस्य'
ऋ. १०.६१.१९

द्विजानिः– द्विज । द्वि + जानि ।
'अन्तर्योनेन चरति द्विजानिः'
ऋ. १०.१०१.११

द्विजिह्वा – (१) दो जीभवाली ब्राह्मण रूप गौ,(२) उभयपक्ष के दूत दो जीभ हैं ।
'द्वयास्या द्विजिह्वा भूत्वा'
अ. ५.१९.७

दित्यवाद् – (१) द्विवर्षः पशुः (दो वर्ष का बैल) महीधर (२) दित्यं खण्डनीयं धान्यं वहति इति दित्यवाट् (३) दितये हिते वहति–दया ।
'दित्यंवाड् गौ र्वयोदधुः'
वाज.सं. २१.१३ मै.सं. ३.११.११, १५८.१, का.सं. ३८.१०, तै.ब्रा. २.६.१८.१
(४) रथवाही बैल ।
'दित्यवाहं गां वयो दधात्'
वाज.सं. २८.२५, तै.ब्रा. २.६.१७.२
'दित्यवाड् च मे दित्यौही च मे
वाज.सं. १८.२६, तै.सं. ४.७.१०.१, का.सं. १८.१२

द्वित– (१) दो जनों को प्राप्त (२) शुद्ध ज्ञान को धारक आचार्य और प्रभु की शरण प्राप्त जीव ।
'द्विताय मृक्तवाहसे'
ऋ. ५.१८.२
(२) दो वेदों का पारंगत होना
'द्विताय त्वा
वाज.सं. १.२.३.

द्विता सख्या – दो प्रकार की मित्रता जिससे बल और यश दोनों मिले ।
'गवामेषे सख्यां कृणुत द्विता'
ऋ. १०.४८.९
(३) द्वयोःभावः द्विता (दोनों के हित के लिये ।
(४) द्वि + धा = द्विधा= द्विता (ध का त छान्दस) अर्थ है । दोनों प्रकार से· (५) शस्त्र अस्त्र दोनों द्वारा, (६) बलयुक्त एवं अजेय ।
'यं नु नकिः पृतनासु स्वराजं

द्विता तरति नृतमं हरिष्ठाम्'
ऋ. ३.४९.२
युद्धों में चमकते हुए अश्वारूढ़ मनुष्यों के परम तेज सर्वथा बलयुक्त एवं अजेय शास्त्र और अस्त्र दोनों से जिसे कोई नहीं मार सकता है। उसे पुनः-
'यस्त्वद्धोता पूर्वोअग्नेयजीयान्
द्विता च सत्ता स्वधया च शम्भुः
तस्या तु धर्म प्रयजा चिकित्वः
अथा नो धा अध्वरं देववीतौ।'
ऋ. ३.१७.५
हे अग्निदेव, तुझे भी पूर्व मध्यम व स्थानीय वायु जो देवों का पहला होता हुआ (त्वत् यःपूर्वः) वह तुझसे बढझकर यष्टा है (यजीमान्)। उसका अस्तित्व भी दो प्रकार का है (च सत्ता द्विता)। क्योंकि अन्तरिक्ष में विद्युत् रूप में और द्युलोक में सूर्य रूप में वह विद्यमान है और वह सोम या अन्न से वर्षा द्वारा सभी जीवों का कल्याणकारी है (स्वधया चत शम्भुः)। हे चेतना वान् अग्नि (चिकित्वः), उस प्रथम होता वायु के वृत्ति लाभ तथा दीप्त करने वाली वृत्ति को लक्ष्य कर (तस्य धर्मम् अनु) प्रकर्ष के साथ देवताओं को पूज (प्रयज) और तदनन्तर (अथा) हमारे यज्ञ को (नः अध्वरम्) देवताओं के प्रसन्न कारक बना (देववीतौ धाः)।
अन्य अर्थ- हे विद्वन् (अग्ने), जो तेरा दाता (यः त्वत् होता) सनातन (पूर्वः) तथा सृष्टि यज्ञ रचने वालों में श्रेष्ठतर परमेश्वर है (यजीयान्) और जिसकी सत्ता सबके भीतर और बाहर दोनों प्रकार से है (सत्ता च द्विता) तथा जो पृथ्वी द्वारा सुख पहुंचाने वाला है, (स्वधया च शंभुः) उनके वेदोक्त धर्म के अनुकूल उत्तम यज्ञ कर (तस्य धर्मम् अनुप्रयज्) एवं (अथ) हे ज्ञानवान् (चिकित्वः) दिव्य गुणों की प्राप्ति के लिए (देववीतौ) हमारे हिंसा रहित यज्ञ को धारण कर (नः अध्वरं धाः)।

द्विताशवः- (१) द्वैधी भाव का युद्ध, (२) कर्त्ता और भोक्ता होने का भाव, (३) दूना बल, (४) शब्द और स्पर्श गुणों की दुगुनी शक्ति जो वायु में होती है।
'यत्सीमनुद्विता शवः'
अ. १.३७.९
उन वायुओं का बल भी दुगुना या महान् होता है।

दिति- (१) दान शीलता, (२) दान, देने योग्य पदार्थ, (३) खण्डित होने वाला नश्वर पदार्थ भौतिक ऐश्वर्य।
'दितिञ्चरास्व अदितिमुरुष्य'
ऋ. ४.२.११.तै.सं. ५.५.४.४, का.सं. ४०.५.
(४) उपक्षीण। अदिति का अर्थ इसके प्रतिकूल अनुपक्षीण है। उपक्षीण अर्थ में प्रयोग के लिये
'आरोहथो वरुण मित्र गर्तम्
अतश्चक्षाये अदितिं दितिञ्च'
ऋ. ५.६२.८,
हे वरुण और मित्र, तुम दोनों रथ पर सवार होओ और रथ पर चढ़ अपने पक्ष को अनुपक्षीण (अदितिम्) और शत्रुपक्ष की उपक्षीण करो (दितिं चक्षाथे)।
(५) कश्यप की दो स्त्रियां दिति और अदिति में एक दिति है। (६) सर्प द्रष्टा परमेश्वर की जड़ प्रकृति रूपी शक्ति।

द्वितीयापृथिवी - अन्तरिक्ष।
'यो द्वितीयस्यां पृथिव्यामसि यत्तेऽनाधृष्टं नाम यज्ञियं तेन त्वादधे'
वाज.सं. ५.९

द्वितीय शंख- द्वितीय शंख सूक्त।
'द्वितीययेभ्यः शंखेभ्यःस्वाहा'
अ. १९.२२.९

द्वितीयसवन- (१) दूसरा सवन (२) रुद्र ब्रह्मचर्य का समय

दितेः पुत्राः - (१) दिति के पुत्र, (२) जड़ प्रकृति के पुत्र रूप देह, (३) कश्यप की स्त्रियां दिति और अदिति कही गई है। वस्तुतः कश्यप सर्वद्रष्टा परमेश्वर है और दिति और अदिति उनकी दो शक्तियां जड़ प्रकृति और चिति शक्ति है, (४) जड़ प्रकृति के पुत्र रूप देह को परमात्मा ने अदिति अर्थात् चेतन शक्ति या जीव के अधीन किया
'दितेः पुत्राणामदितेः अकारिषम्'
अ. ७.७.१.मै.सं. १.३.९., ३३.७.

दित्यौही- दो वर्ष की गाय

'दित्यवाट् च मे दित्यौही च मे'
वाज.सं. १८.२६, तै.सं. ४.७.१०.१, का.सं. १८.१२.

दिविधावमानः- द्युलोक में छोड़ने वाला सूर्य ।
'विश्वेषां त्मना शोभिष्टम्
उपेव दिवि धावमानम्'
ऋ. ८.३.२१.
वह दान सभी धनों में स्वयं उत्पन्न शोभायमान (विश्वेषां त्मनाशोभिष्टम्) आकाश में नित्यधाने वाले सूर्य के समान है (दिवि उपधानमानम् इव) ।
उस प्रभु ने मुझे सबके मध्य में स्वयं प्रकाशमान (विश्वेषां त्मना शोभिष्टम्) तथा द्युलोक में दौड़ने वाले (दिवि धावमानम्) सूर्य को प्रदान किया । -(दया.)

दिदिड्ढि - दिश, अतिसृज देहि, उपचय कर, अतिसर्जन कर । आदेश कर, 'दिह्' धातु उपचय अर्थ में या अतिसर्जन अर्थ में आया है ।
'सिनीवालि पृथुष्टुके
या देवानामसि स्वसा
जुषस्व हव्यमाहुतं
प्रजां देवि दिदिड्ढि नः'
ऋ. २.३२.६, अ. ७.४६.१, वाज.सं. ३४.१०, तै.सं. ३.१.११.४, मै.सं. ४.१२.६, १९५.५, का.सं. १३.१६, नि. ११.३२.
हे दृष्ट चन्द्रा अमावास्या (सिनी वालि) हे विस्तीर्ण केशकलापे या विस्तीर्ण जघने (पृथुष्टुके) जो तू (या) देवों की स्वयं संचारिणी बहन है (देवानाम् स्वसा असि) सो तू हमारी दी हुई आहुति का आस्वादन कर (आहुतंहव्यं जुषस्व) और हमारे पुत्रादि को बढ़ा (नः प्रजाः दिदिड्ढि)।
विशाल जघन प्रदेश वाली लम्बे-लम्बे केश समूह वाली, या अत्यन्त पूजनीय (पृथुष्टुके) ऋतुगम्या पत्नी (सिनीवालि) जो तू विद्वान् भाइयों की बहन है (या देवानाम् स्वसा असि) गर्भाधान संस्कार में आहुत हव्य का सेवन कर (आहुतं हव्यं जुषस्व) और हे देवि, गर्भाधानपूर्वक हमें उत्तम सन्तान दे । (नः प्रजां दिदिड्ढि)
'दिह, धातु का इनदिनों क्या रूप आर्य भाषाओं में है विचारणीय है । भोजपुरी में दीहीं, देहली, 'देहब' आदि प्रयोग 'देना' अर्थ में प्रचलित ही है ।

दिद्यु- (१) कठोर दारुण दण्ड रूप दुःख ।
'पाहि मा दिद्योः'
वाज.सं. २.२०, तै.सं. १.१.१३,३ श.ब्रा. १.९.२.२०, तै.ब्रा. ३.३.९.९.
(२) चमचमाता अस्त्र ।
'अवस्वेदा इवाभितः
विष्वक् पतन्तु दिद्यवः'
ऋ. १०.१३४.५
(३) देदीप्यमान, (४) क्रोध ।
'छर्दिर्यच्छ मघवद्भ्यश्च मह्यं च यावया दिद्युमेभ्यः'
ऋ. ६.४६.९, अ. २०.८३.१, साम. १.२६६,का.सं. ९.१९.
(४) द्योतमान् विद्या -दया. (५)द्योतमान बाण आदि ।
'सृजद् अस्ता धृषता दिद्युमस्मै'
ऋ. १.७१.५
धनुर्धर जिस प्रकार प्रगल्भता से वाण फेंकता है ।

दिद्युत् - (१) चमकने वाला पदार्थ ।
'यश्चासमा अजनो दिद्युतो दिवः'
ऋ. २.१३.७
(क) दो (अवखण्डन अर्थ में) + क्विप् =दिद्युत् (पृषोदरादिवत्) । द्यति शत्रून (शत्रुओं को खण्डित करता है) । (ख) द्यु + श्तिप् = दिद्युत् (ग) द्यु (अभिगमन अर्थ में) + क्विप् = दिद्युत् (द्वित्व और अभ्यास का सम्प्रसारण) । द्यौति अभिगच्छति प्राणिनः-प्राणियों के निकट जाता है । (घ) द्युत् + क्विप् = दिद्युत् । द्योत् ते हितत् (वह चमकता है)
अर्थ - (२) वज्र ।
'अस्तुर्न दिद्युत् त्वेषप्रतीका'
ऋ. १.६६.७, नि. १०.२१.
अस्त्र चलाने वाले के चमकते अस्त्र की तरह
(३) हेति, आयुध, (४) विद्युत् ।
'यत्रा वो दिद्युद् रदति क्रिविर्दती'
ऋ. १.१६६.६, नि. ६.३०.

जब आपको काटने वाली हेति (यत्रा व क्रिविर्दती दिद्युत्) मेघ समूह को उस तरह से काटती है (रदति) ।
जिस विज्ञान में (यत्रा) तुम्हारे काटने वाले दांतों वाली विद्युत् खोदने का काम करती है (रदति) - दया. (४) रुद्र के ज्वरादि रुपी आयुध ।
'या ते दिद्युद् वसृष्टा दिवस्परि'
ऋ. ७.४६.३, नि. १०.७.
हे रुद्र, जो तेरे ज्वरादि व्याधिरूपी आयुध (या ते दिद्युत्) द्युलोक से छोड़े जाकर (दिवः. परिअवसृष्टा)

दिद्युतानः - (१) दीप्तिमान अग्नि, (२) विद्युत्, ।
'व्यङ्क्रेभिर्दिद्युतानः सधस्थे'
ऋ. ३.७.४

दिदृक्षेण्य - देखने योग्य सत्य ज्ञान का दर्शाने वाला ।
'दिदृक्षेण्यं सूर्यस्येव चक्षणम्'
ऋ. ५.५५.४
(२) सब लोगों की इच्छा के साथ देखने योग्य ।
'दिदृक्षेण्यः परिकाष्ठासु जेन्यः'
ऋ. १.१४६.५

दिदृक्षेय - (वि) । दिदृक्षा + यत् = दिदृक्षेय । (१) सभी के द्वारा अत्यन्त उत्कण्ठा से दर्शनीय ।
'दिदृक्षेयः सूनने भाऋजीकः'
ऋ. ३.१.१२
जो पुत्र के लिये दर्शनीय एवं सदा प्रकाशमान या विद्या दीप्ति की प्राप्त कराने वाला है । (२) दर्शन करने योग्य ।

द्विधाराः- ब.व. । (१) दोनों तटों को धारण करने वाली नदियां-आपः (२) दोनों कुलों या सन्तान और पति दोनों को धारण करने वाली स्त्रियां, (३) समष्टि और व्यष्टि दोनों को धारण करने वाली आपः अर्थात् प्रकृति के उत्पादक मूल परमाणु ।
'आवर्वृततीरधनुद्विधाराः'
ऋ. १०.३०.१०, ऐ.ब्रा. २.२०.३, कौ.ब्रा. १२.१, आश्व.श्रौ.सू.५. १.९.

द्विधा- द्वि + धा । दो प्रकार का ।

द्विधा सूनवः -(१) दो प्रकार के पुत्र-पुत्र और शिष्य ।
'द्विधा सूनवोऽसुरं स्वर्विदम्'
ऋ. १०.५६.६

दिधिषाय्यः- (१) आश्रय धारण करने वाला परमेश्वर या अग्नि ।
'मित्र इव यो दिधिषाय्यो भूत्'
ऋ. २.४.१, का.सं. ३९.१४.
(३) 'धा' दित्व, इत्व और षुक् । अर्थ है धारक, पोषक धारण पोषण करने में समर्थ
(४) हृदय में धारण करने योग्य परमेश्वर ।
'आत्मेव शेवो दिधिषाय्यो भूत्'
ऋ. १.७३.२
वह आत्मा के मसान सुख प्रद एवं सेवायोग्य और धारण पोषण करने में समर्थ हो । (दिधिषाय्यःभूत्) ।

दिधिषु- (१) विद्याभिलाषिणी कन्या, (२) गृहस्वामिनी, (३) ज्ञान, (२) ज्ञान, ऐश्वर्य और पति को धारण करने वाली ।
'आदिदर्यो दिधिष्वनो विभृत्राः'
ऋ. १.७१.३
विद्याभिलाषिणी कन्याएं और गृह की स्वामिनी ज्ञान, ऐश्वर्य और पति को धारण करने वाली विविध उपायों से प्रजाओं का भरण पोषण करने में कुशंल होकर (विभृत्राः)।
(४) धा + सन् + उ= दिधिषु । अर्थ है -दाता, यजमान, देने वाला (५) अग्नि का विशेषण ।
'वहादेवत्रा दिधिषोहर्वींषि'
मै.सं. ४.१३.७,२०९,२.का.स. १८.२१.
हे अग्नि, दिए हुए हवियों को देवताओं के पास लेना ।
आधुनिक अर्थ -(१) स्त्री का द्वितीय पति, (२) जिस का पुनर्विवाह हो, (३) अक्षत् योनिविधवा जिसका विवाह हो ।

दिन - (१) काटा हुआ अन्न ।
'दिनस्य वा मघवन् संभृतस्य वा'
(२) दिन

द्विपक्षा - (१) दो पक्ष या कोठरियों वाली शाला (२) दो तरफा ओसारे वाली
'या द्विपक्षा चतुष्पक्षा'
अ. ९.३.२१

दिप्स - धा.। (१) मारना, घात करना

'यो मा दिवा दिप्सति यश्चनक्तम्'
ऋ. ७.१०४.११, अ. ८.४.११
(२) 'रा' धातु का सूनन्त रूप । देने की इच्छा करना
दिप्सन् - (१) नाश करता हुआ, नाशकारी ।
'दिप्सन्त इद् रिपवो नाह देभुः'
ऋ. १.१४७.३, ४.४.१३, तै.सं. १.२.१४.५, मै.सं. ४.११.५,१७४.४ , का.सं. ६.११.
(२) देने की इच्छा वाला इन्द्र ।
दिप्सुः- दा + सन् + उ. । अर्थ हिंसाकारी,
'न यँ दिप्सन्ति दिप्सवँः'
ऋ. १.२५.१४
'इन्द्रं दिप्सन्ति दिप्सवोऽदाभ्यम्'
ऋ. ७.१०४.२०, अ. ८.४.२०
द्विपद्- (१) दो पैरों वाला, पुरुष, (२) दो पाद वाली ऋचा ।
'वाकेन वाकं द्विपदा चतुष्पदा'
ऋ. १.१६४.२४, अ. ९.१०.२
'शं नो भवतु द्विपदे शं चतुष्पदे'
ऋ. ७.५४.१, १०.८५.४३,४४, अ. १४.२.४०, मै.सं. १.५.१३, ८२.१४, ४.१२.४, १९०.१०, आश्व.श्रौ.सू. २.९.१०, शां.गृ.सू. १.७.९, ३.४.२,८. ३, साम.मं.ब्रा. १.२.१७, १८, २.६.१, पा.गृ.सू. ३.४.७, आप.मं.पा. १.१.४.
द्विपाद् - चन्द्रमा, (२) पुरुष ।
'द्विपाद्वा अयं पुरुषः'
श.ब्रा. २.३.४.३३.
'चन्द्रमा द्विपात् । तस्य पूर्वपक्षापरपक्षौ पादौ'
गो.ब्रा. ५.२.८
पूर्वपक्ष और उत्तर पक्ष चन्द्रमा के दो चरण हैं ।
'एक पाद द्विपदो भूयो विचक्रमे'
अ. १३.२.२७, ३.२५.
(३) दो पैरों वाला, (पादद्वयोपेतः)।
द्विपदी- (१) प्रकृति और पुरुष रूप से या चर और अचर रूप से वर्तमान न रहने वाली ब्रह्मशक्ति, (२) सुप् तिङ् भेद से द्विपदा वाणी ।
'एकपदी द्विपदी सा चतुष्पदी'
ऋ. १.१६४.४१, अ. ९.१०.२१, १३.२.४२, तै.ब्रा. २.४.६.११, तै.आ. १.९.४, नि. ११.४०.
(३) दो चरणों वाली, (४) दो अधिष्ठानों-इन्द्र और आदित्य, या मेघ और अन्तरिक्ष से एकात्म होकर गौरी-माध्यमिका वाक् का विशेषण ।
'गौरी मिमाय सलिलानि तक्षती एकपदी द्विपदी सा चतुष्पदी ।'
ऋ. १.१६४.४१
माध्यमिका पाद गौरी ने ही एक अधिष्ठान से मेघ और अन्तरिक्ष से एकात्म हो दो अधिष्ठानों से, चारों दिशाओं से एकात्म हो चार अधिष्ठानों से जल बनाती हुई यह सब निमिति किया ।
द्विःपञ्च - (१) दशों दिशाएं ।
'द्विर्यं पञ्च जीजनत् संवसानाः'
ऋ. ४.६.८
(२) दसों सर्ग ।
'द्विर्यत् पञ्च बिभ्रतो यन्ति अन्ना'
ऋ. १.१२२.१३
जिस परमेश्वर के आश्रय पर वे दसों प्रकार से सर्ग या दसों दिशा वासी प्रजानन (द्विःपञ्च) अन्नों को धारण करते हुए (अन्ना विभ्रतः) उद्देश्य को प्राप्त करते हैं (यन्ति)।
द्विमाता- (१) द्वयोः प्रकाशा प्रकाशयोःलोक समूहयोः माता निर्माता -दया. (प्रकाशित एवं अप्रकाशित लोकों का निर्माता परमेश्वर, (२) सूक्ष्म और स्थूल दोनों रूपों का निर्माता
'द्विमाता शयुः कतिधा चिदायवे'
ऋ. १.३१.२
सूक्ष्म और स्थूल दोनों रूपों का निर्माता, सबके भीतर प्रसुप्त सत्ता रूप से विद्यमान, एवं जगत् भर को प्रलय में शान्त प्रसुप्त रूप से सुला देने वाला मनुष्यों के लिए कितने ही प्रकारों से नाना शक्तियों के रूप में दिखाई देता है ।
(३) माता पिता और आचार्य दोनों को माता मानने वाला (४) माता पिता दोनों का आदर करने वाला, (५) पृथिवी और आकाश दोनों को धारण करने वाला वायु ।
'द्विमाता तूर्षुतरणिः विभूषति'
ऋ. १.११२.४
(६) राजसभा और प्रजासभा दोनों को मातृवत् उत्पादक बनाकर रखने वाला राजा, (७) दो माता पिता, (८) एक ज्ञान कराने वाली माता राजसभा और दूसरी शत्रुओं को उखाड़ फेंकने वाली सेना-इन दोनों का स्वामी, (९) स्वराष्ट्र, परराष्ट्र, मित्र शत्रु दोनों का मापने वाला राजा,

(१०) प्रकृति और जीव दोनों को जानने वाला परमेश्वर, (११) माता के समान अपने गर्भ में प्रकृति और जीव को प्रकट करने वाला परमेश्वर, (१२) भूमि और आकाश दोनों इह और पर दोनों लोकों का निर्माता। (१३) राजा जिसकी दो माताएं हैं। अपनी माता और पृथ्वी'

द्विमूर्धा- (१) आर्त्व्य - दो सिरों वाला आर्त्व्य ऋतु से उत्पन्न (२) बुद्धिमान् (३) जो मूलों का धारण करने वाला गतिक्रियाशास्त्र (आर्त्थ) का विद्वान् (४) कला कौशलवित्
'तां द्विमूर्धार्त्व्योऽधोक्'
अ. ८.१० (४).३

दिय- दान के योग्य। दियानां पतिः

दियानां पातिः-(१) राजाओं का स्वामी, (२) ज्ञानप्रद इन्द्रियों का पालक अधिष्ठाता
'वसुर्दियानां पतिः'
ऋ. ८.१९.३७

द्विर्दश -बीस
'त्वभेतां जनराज्ञो द्विर्दश'
ऋ. १.५३.९, अ. २०.२१.९

द्विराज - दो राजाओं का संग्राम
'कीर्तिं बहुभ्यो विहर द्विराजे'
अ. ५.२०.९

द्विरात्र- दो दिनों में समाप्त होने वाला सोम योग
'एकात्रो द्विरात्रः'
अ. ११.७.१०

द्विरूपः - दो रंग की पोशाक वाला
'द्विरूपा अग्निषोमीयाः'
वाज.सं. २४.८, मै.सं. ३.१३.९, १७०.६.

दिव् - द्युलोक।

दिवक्षस् - (१) दीप्ति प्राप्य व्याप्तः (दीप्ति पाकर व्याप्त) -दया.
(२) प्रकाश और आकाश में व्याप्त (३) व्यवहार तथा विद्योपार्जन में लगी प्रजा, (४) विजय कामना में लगी प्रजा
'दिवक्षसो धेनवो वृष्णो अश्वाः'
ऋ. ३.७.२
(५) सूर्य, (६) विज्ञान, प्रकाश आदि में व्यापक
'दिवक्षा असि वृषभ सत्य शुष्मः'
ऋ. ३.३०.२१, वाज.सं. (का.) २८.१४.

दिवः- ब.व.। पति को चाहने वाली व्यवहार कुशल स्त्रियां
'दिवोयह्वीरवसाना अनग्नाः'
ऋ. ३.१.६

दिवः ककुत् - (१) ज्ञान में श्रेष्ठ।
(२) आकाश में सूर्य।
'अग्निर्मूर्धा दिवः ककुत्'
ऋ. ८.४४.१६, साम. १.२७,२.२८२, वाज.सं. ३.१२,१३.१४, १५.२०, तै.सं. १.५.५.१, ७.१, ४.४.४.१, मै.सं. १.५.१, ६५.८, १.५.५., ७३.७,८, १.७.४, ११३.४, का.सं. ६.९,७.४,९.२, श.ब्रा. २.३. ४.११, ७.४.१.४१, १३.४.१.१३, तै.ब्रा. ३.५.७.१, १२.३.४, या ध. शा. १.२९९.

दिवः कोशः- (१) अन्तरिक्ष के जल से. पूर्ण वायुमण्डल, (२) ज्ञान प्रकाश का भण्डार-परमेश्वर सोम।
'स्वर्वित् कोशं दिवो अद्रिमातरम्'
ऋ. ९.८६.३

दिवःरुच् - (१) प्रकाश से कान्तिमान् सूर्यवत् तेजस्वी (२) विद्या प्रकाश में रुचि रखने वाला।
'दिवोरुचः सुरुचो रोचमानाः'
ऋ. ३.७.५

द्विवन्धुः- (१) माता पिता रूप दो बन्धुओं वाला-आत्मा।
'स द्विबन्धु वैतरणो यष्टा'
ऋ. १०.६१.१७

द्विवर्तनिः- (१) प्राण और अपान से चेष्टा करने वाला आत्मा।
'अवस्यति द्विवर्तनिर्वनेषाट्'
ऋ. १०.६१.२०

द्विबर्हज्मा- (१) शास्त्र बल और बुद्धिबल दोनों से भूमि या राष्ट्र की वृद्धि करने वाला, (२) बृहस्पति (३) दोनों लोक-पृथ्वी और आकाश में व्यापक सूर्य (४) शत्रु और मित्र दोनों में व्यापक (५) ज्ञान और कर्म दोनों में प्रविष्ट
'द्विबर्हज्मा प्राघर्मसत् पिता न'
ऋ. ६.७३.१, अ. २०.९०.१

द्विबर्हस् (१) द्विपरिबृढः दो स्थानों में परिबृढ़-मध्यम में भी और उत्तम में भी। मध्यम स्थान में विद्युत् के रूप में और उत्तम स्थान में सूर्य

के रूप में ।
द्वि + वृह् (वृद्धि अर्थ में) + असुन् = द्विवर्हस् । दो स्थानों में बढ़ा हुआ । अर्थ-(१) दोनों लोकों के प्रभु-सा. (२) द्युलोक तथा अन्तरिक्ष दोनों स्थानों में अपनी रश्मियों से फैलने वाला सूर्य-दया.
'महां इन्द्रो नृवदा चर्षणिप्राः
उत द्विबर्हा अमिनः सहोभिः'
ऋ. ६.१९.१, वाज.सं. ७.३९, तै.सं. १.४.२१.१, का.सं. ४.८, मै.सं. १.३.२५, ३८.१२, श.ब्रा. ४.३.३.१८, तै.ब्रा. ३.५.७.५,
(३) आकाश और भूमि दोनों को बढ़ाने वाला-मेघ या सूर्य (४) विद्या और विनय दोनों से बढ़ने वाला (४) ब्रह्मचर्य और गृहस्थाश्रम दोनों से बढ़ा हुआ वाणप्रस्थ, (६) दोनों लोकों में महान् ।
'साम द्विबर्हामहि तिग्मभृष्टिः'
ऋ. ४.५.३
(६) ज्ञान और कर्म दोनों से बढ़ने वाला पुरुष ।
'उदग्नये जनिषीष्ट द्विबर्हाः'
ऋ. ७.८.६
(८) दो महान् शक्तियों वाला ।
'यस्य द्विबर्हसो बृहत्
सहो दाधार रोदसी'
ऋ. ८.१५.२, अ. २०.६१.५, ६२.९

द्विबर्हाःरयिः- दोनों लोकों को बढ़ाने वाला ऐश्वर्य ।
'सोम द्विबर्हसं रयिम्'
ऋ. ९.४.७, ४०.६, १००.२, साम. २.४०३.

द्विबर्हाः सोमः- (१) मेघ और पृथ्वी दोनों से बढ़ने वाला सोम ओषधि ।
'गृभीतं ते मन इन्द्र द्विबर्हाः
सुतः सोमः परिषिक्ता मधूनि'
ऋ. ७.२४.२

द्विवृष- (१) दो प्राणों से युक्त आत्मा ।
'यदि द्विवृषोऽसि सृजारसोऽसि'
अ. ५.१६.२

दिवः अन्ताः- (१) प्रकाशमय मोक्ष या कामनायोग्य भोग क्षेत्र की सीमाएं ।
'दिवश्चरन्ति परिसद्यो अन्तान्'
ऋ. ५.४७.४

दिवश्चक्रिः - आकाश, सूर्य, तेजोमय जगत् का स्रष्टा परमेश्वर, सोम
'चक्रिर्दिवः पवते कृत्व्यो रसः'
ऋ. ९.७७.५

दिवः दुहित्रा- द्वि.व. । अर्थ-(१) सूर्य की कन्या उषा (२) कामनाओं को पूर्ण करने वाले और कान्तियुक्त रूप से सुप्रसन्नवदन स्त्री पुरुष ।
'दिवो दुहित्रोषसा सचेथे'
ऋ. १.१८३.२

दिवः धर्ता- (१) द्युलोक को धारण करने वाला-आदित्य या एकपात अज ।
'पावीरवी तन्यतुरेकपादजः
दिवो धर्ता सिन्धुरापः समुद्रियः'
ऋ. १०.६५.१३, नि. १२.३०.
एक चरण वाला अज द्युलोक का धारण करने वाला है ।

दिवःधरुणः- (१) द्युलोक का आश्रय -सूर्य, (२) ज्ञानवती राज सभा का आश्रय रूप विद्वान् ।
'आघृणे धरुणं दिवः'
ऋ. १.२३.१३

दिवः नरा- द्वि.व. । (१) ज्ञान प्रकाश या उत्तम कामना और व्यवहार के प्रवर्तक, (२) द्युलोक के दो अश्विनी कुमार ।
'स्तुषे नरा दिवो अस्य प्रसन्ता'
ऋ. ६.६२.१

दिवस्पतिः- (१) सूर्य तथा आकाश का पालक ।
'गिरिर्न विश्वतस्पृथुः पतिर्दिवः'
ऋ. ८.९८.४, अ. २०.६४.१, साम. १.३९३, २.५९७.

दिवस्पयः - (१) द्युलोक का सार (२) सूर्य का विशेषण ।
'वातः प्राणः सूर्यश्चक्षुर्दिवस्पयः'
अ. १९.४४.५

दिवस्परि- (१) द्युलोक के ऊपर, (२) ज्ञान-प्रकाश देने वाला ब्रह्मचर्याश्रम ।
'दिवस्परि प्रथमं जज्ञे अग्निः'
ऋ. १०.४५.१, वाज.सं. १२.१८, तै.सं. १.३.१४.५, ४.२.२.१, मै.सं. २.७.९,८६.५, का.सं. १६.९, श.ब्रा. १६.९, श.ब्रा. ६.७.४.३, आप.मं.पा. २.११.२१.

पहले अग्नि द्युलोक में आदित्य के रूप में उत्पन्न हुआ-सा. । पहले अग्रणी विद्वान् ज्ञान प्रकाश देने वाले ब्रह्मचर्याश्रम में उत्पन्न होता है ।

दिवः पुत्रः- (१) द्युलोक का पुत्र-आदित्य, (२) अश्विनी कुमारों में एक की संज्ञा ।
'दिवो अन्यः सुभगः पुत्र ऊहे'
ऋ. १.१८१.४, नि. १२.३.
(दूसरा द्युलोक का पुत्र आदित्य सुन्दर रश्मि रूपी धन वाला वायु से वहन किया जाता है) ।
(२) सूर्य से उत्पन्न पर्जन्य मेघ (३) ज्ञान प्रकाश से बहुतों का रक्षक प्रभु
'दिवस्पुत्रायमीळ्हुषे'
ऋ. ७.१०२.१, मै.सं. ४.१२.५, १९२.१५, का.सं. २०.१५, तै.ब्रा. २.४.४.५, तै.आ. १.२९.१, आप.श्रौ.सू. ८.१.४.

दिवस्पुत्रौ- (१) द्युलोक से बरसते हुए मेघ के जल और ओस और सूर्य की धूप से उत्पन्न होने वाले या द्युलोक के रस और सूर्य के प्रकाश के बल से मनुष्यों की जीवन-रक्षा करने में समर्थ-व्रीहि और यव ।
'व्रीहिर्यवश्च भेषजौ
दिवस्पुत्रावमर्त्यौ'
अ. ८.७.२०

दिवस्पृष्ठ- (१) प्रकाश स्वरूप, ज्ञान का परम उन्नत भाग (२) मोक्ष पद ।
'दिवस्पृष्ठं स्वर्ग त्वा'
अ. ४.१४.२, वाज.सं. १७.६५, श.ब्रा. ९.२.३.२४.

दिनःमध्यः- (१) आनन्दमय मोक्ष धाम ।
'मध्येदिवः स्वधया मादयन्ते'
ऋ. १.१०८.१२, १०.१५.४, अ. १८.२.३५, वाज.सं. १९.६०

दिवः वृषभः- (१) द्युलोक से वर्षण करने वाला-सूर्य ।
'वृषभोदिवो रजसः पृथिव्याः'
ऋ. ८.५७.३, अ. २०.१४३.९

दिवः सदांसि- स्वर्ग लोक के भवन ।
'दिवः सदांसि बृहती वितिष्ठसे'
ऋ. खि. १०.१२७.१, अ. १९.४७.१, वाज.सं. ३४.३२, नि. ९.२९.
(हे रात्रि, तू दूर रहती हुई भी स्वर्ग लोक के भवनों को भी अन्धकार से व्याप्त करती है) ।

दिवःसूनुः- (१) सूर्य का पुत्र-अग्नि, (२) सूर्य के समान ज्ञान प्रकाश का प्रवर्तक (३) ज्ञान प्रकाश युक्त आचार्य का पुत्र ।
'अग्ने दिवः सूनुरसि प्रचेताः'
ऋ. ३.२५.१

दिव्य- दिव् + यत् = दिव्य । अर्थ है- (१) द्युलोक -सम्बन्धी (२) सुन्दर । (३) द्युलोक में उत्पन्न । (४) सूर्य ।

दिव्यदानु- (१) आकाश का जल
'यवं न वृष्टि दिव्येन दानुना'
ऋ. १०.४३.७, अ. २०.१७.७

दिव्यं वसु- (१) द्युलोक का धन ।
'अध्वर्यवोयोदिव्यस्य वस्वः
यः पार्थिवस्य क्षम्यस्य राजा'
ऋ. २.१४.११
हे अध्वर्युवो, जो इन्द्र द्युलोक के पृथ्वी के तथा अन्तरिक्ष के धन का राजा है ।

दिव्यः श्वा - (१) इन्द्रियों के लिये हितकारी प्राणमय अन्तरात्मा (२) स्वर्ग का कुत्ता ।
'शुनो दिव्यस्य यन्महः'
अ. ६.८०.१,३

दिव्यःसुपर्णः- (१) द्युलोक का रहने वाला (दिव्यः) एवं सुन्दर रूप से गिरने वाला आदित्य ।
'इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुः
अथो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान्'
ऋ. १.१६४.४६, अ.९.१०.२८, नि. ७.१८,१४.१.

दिवागृणाना- विद्युत् सहित उदक समूह से शब्द करती हुई इडा या माध्यमिका वाक् ।

दिवातर- दिन से भी बढ़कर, सूर्य के प्रकाश से भी बढ़ कर ।
'नक्तं यः सुदर्शतरो दिवातरात्'
ऋ. १.१२७.५

दिवापति- (१) दिन का पालक सूर्य (२) दिन के समय दूर तक चलने वाला पथिक ।
'दिवापतये स्वाहा'
वाज.सं. २२.३०

दिवावसु- (१) ज्योतिररूप प्रकाश में वास करने वाला जीवात्मा ।
'दिवं यय दिवावसो'
ऋ. ८.३४.१-१५, साम. १.३४८, २.११५७-११५९.

(२) दिन में आकाश में बसने वाला-सूर्य, (३) ज्ञान प्रकाश से अपने अधीन शिष्यों को बसाकर उन्हें ज्ञानमय वस्त्र से अच्छादित करने वाला आचार्य ।

दिव्या- (१) शुभ्र, बादल के जल ।
'अपोदिव्या असृजत् वर्ष्या अभि'
ऋ. १०.९८.५, नि.२.११.
उसने दिव्य वर्षा के जल बरसाए ।

दिव्याःअग्नयः- द्यौलोक में प्रकाशमान सहस्रों सूर्य और विद्युत् ।
'अतिसृष्टा अग्नयो दिव्याः'
अ. १६.१.१.

दिव्याआपः- आकाश से बरसने वाले जल ।
'अपामह दिव्यानाम्'
अ. १९.२.४

दिव्यासः- (१) सूर्य के दिव्य अश्व-सा. (२) द्युलोक में उत्पन्न होने वाली सूर्य की किरणें -दया ।

दिवि एकादश देवाः- (१) द्यौलोक में ग्यारह दिव्य पदार्थ । (२) स्वामी दयानन्द के अनुसार ११ देव- प्राण, अपान, उदान, समान, व्यान , नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त, धनञ्जय और जीव हैं ।
'ये देवादि व्ये एकादशस्थ'
अ. १९.२७.११, तै.सं. १.४.१०.१, ६.४.११.१, का.सं. ४.५,२७.९, मै.सं. १.३.१३, ३५.७, ४.६.४, ८३.४, ८४.१०, मा.श्रौ.सू. २.३.५.९, ४.४.१०, ५.१.१६.

दिविक्षयः- (१) आकाश या अन्तरिक्ष में विद्यमान विद्युत् (२) ज्ञान, व्यवहार, विजय कामना में पृथ्वी पर निवास करने वाला ।
'आयं दधे मातरिश्वा दिवि क्षयम्'
ऋ. ३.२.१३

दिविचराः- आकाश में विचरने वाले ग्रह । धूम केतु उल्का आदि ।
'शं नो दिविचराः ग्रहाः'
अ. १९.९.७

दिविजाः- आकाश में प्रकटित सूर्य ।
'यदग्ने दिविजा असि'
ऋ. ८.४३.२८, आश्व.श्रौ.सू.३.१३.१२.
(२) सूर्य के आश्रय पर प्रकट होने वाली उषा, (३) सूर्यवत् गुरु के अधीन ज्ञान लाभ करने वाली, (४) उत्तम कामना में विद्यमान युवती ।
'व्युषा आवो दिविजा ऋतेन'
ऋ. ७.७५.१

दिविन्मत् - दिव् + इन्ध +क्विप् = दिवित्, दिवित् + मतुप् =दिवित्मत् । अर्थ-(१) जिससे अत्यन्त प्रकाश होता है, (२) प्रकाश या ज्ञान को अधिक बढ़ाने वाले उत्तम या तेज से युक्त ।
'अग्ने दिवित्मता वचः'
ऋ. १.२६.२
हे परमेश्वर, हमें ज्ञान के वर्द्धक वचन वाणीमय उपदेश से युक्त करें ।

दिवित्मती- प्रकाशयुक्ता ।
'उषो राये दिवित्मती'
ऋ. ५.७९.१, साम. १.४२१, २.१०९०.

दिविषद्- तेजोमय मोक्षमार्ग में विविषद् तेजोमय मोक्षमार्ग में विराजने वाला -पितर ।
'स्वधा पितृभ्यो दिविषद्भ्यः'
अ. १८.४.८०, आप.श्रौ.सू. १.९.६, गो.गृ.सू. ४.३.१०, मा.श्रौ.सू. १.१.२.२२, हि.गृ.सू. २.१२.४.

दिविष्टि- (१) कामना या काम की एषणा ।
'आदिद्धोतारं वृणते दिविष्टिषु'
ऋ. १.१४१.६
जव संसर्ग करने पर काम की एषणाओं में (दिविष्टिषु) लोग सव संस्कारों के ग्रहण करने वाले कर्म फलों के भोक्ता को ही (होतारम्) पुत्र रूप से चाहते हैं (वृणुते) । (२) दिवः एषणम् (स्वर्ग को ले जाने वाली) । (३) याभिः क्रियाभिः दिवमिच्छन्तिगन्तुम् (जिन क्रियाओं से स्वर्ग जाना चाहते हैं) ।
दिव् + इष् (इच्छा या गमन अर्थ में) + क्तिन् = दिविष्टि (४) तेजस्विता तथा प्रसन्नता प्राप्त करने वाला ।
'स्थूरं राधः शताश्वं
कुरङ्गस्य दिविष्टिषु
राज्ञस्त्वेषस्य सुभगस्य रातिषु
तुर्वशेष्वमन्महि'
ऋ. ८.४.१९, नि. ६.२२.
दीप्त, महान् एवं शोभन धन वाले राजा कुरंग की (त्वेषस्य सुभगस्य कुरंगस्य राज्ञः) स्वर्ग प्राप्त कराने वाली क्रियाओं में (दिविष्टिषु) मनुष्यों का दक्षिणा रूप में उपकल्पित की जाने पर

(तुर्वशेषु रातिषु) हम स्थूल सौ अश्वों से युक्त धन (स्थूरं शताश्वं राधः) समझते हैं (अमन्महि)।

दिविसद् - (१). द्युलोक में स्थित, (२) विद्या प्रकाश में स्थित ।
'दिविसदं देवसदम्'
वाज.स. ९.२

दिविस्पृश् (क्)- दिविस्प्रष्टा (द्युलोक का स्पर्श करने वाला) दिवि + स्पृश् + क्विप् = दिविस्पृश् (२) द्युलोक को हवि द्वारा छूने वाला अग्नि
'दिविस्पृश्याहुतं जुष्टमग्नौ'
ऋ. १०.८८.१, नि. ७.२५.
द्युलोक को हविद्वारा छूने वाले अग्नि में (दिविस्पृशि) प्रिय आहुति दी जाती है । (३) द्युलोक को पहुंचाने वाला यज्ञ ।
'सिध्रमद्य दिविस्पृशम्'
ऋ. १.१४२.८, २.४१.२०, तै.सं. ४.१.११.४, मै.सं. ४.१०.३, १५०.१४, आप.श्रौ.सू. १७.७.४, नि. ९.३८.
स्वर्गादि के साधक (सिध्रम्) तथा द्युलोक को पहुंचाने वाले (दिविस्पृशम्) यज्ञ को (यज्ञम्)...

दिविस्पृशा- द्वि.व.। अश्विद्वय का विशेषण । अर्थ है -(१) आकाश में रथों को चलाने वाले, (२) आकाश मार्ग को स्पर्श करने वाले विद्वान्
'उभादेवा दिविस्पृशा'
ऋ. १.२२.२, २३.२, आश्व.श्रौ.सू. ७.६.२, शा.श्रौ.सू. १०.३.५

दिविस्पृष्ट- मोक्ष में सदा प्राप्त परमेश्वर ।
'दिविस्पृष्टो यजतः सूर्यत्वक्'
अ. २.२.२

दिवेदिवे- अहनिअहनि (प्रतिदिन)

दिव्ये- उषासानक्ता (उषा और और नक्त) का विशेषण । द्युलोक में उत्पन्न या द्युतियुक्त उषा और रात्रि ।
'दिव्ये योषणे बृहती सुरुक्मे'
ऋ. १०.११०.६, अ. ५.१२.६, वाज.सं. २९.३१, मै.सं. ४.१३.३, २०.२.६, का.सं. १६.२०, तै.ब्रा. ३.६.३.३, नि. ८.११.
द्युलोक से उत्पन्न या द्युति मती (दिव्ये) परस्पर संमिश्र या शुभ कर्मों को संयुक्त करने वाली (योषणे), गुणों से महती या महान् सुख को देने वाली रोचिष्णु (बृहती सुरुक्मे) उषा और रात्रि ।

दिवोजाः- दिवः + जा । (१) प्रकाशमान सूर्य से उत्पन्न उषा ।
'एषास्या नो दुहिता दिवोजाः'
ऋ. ६.६५.१

दिवोदास- (१) न्याय विद्याप्रकाशस्यदाता -दया. न्याय और विद्या प्रकाश का दाता, (२) युद्ध की कामना और शत्रु का नाश करने वाला (३) ज्ञान प्रकाश का करने वाला विद्वान् (४) दिवोदास नामक वैदिक राजा, (५) वध्र्यश्व, दिवोदास और सुहास पितामह, पिता और पुत्र । दिवोदास सुदास को भी कहा जाता था ।
'यदयातं दिवोदासाय वर्तिः
भरद्वाजायाश्विना हयन्ता'
ऋ. १.११६.१८
हे अश्वसेना के स्वामी, दो मुख्य सेनापति और सैन्य आप दोनों जब युद्ध की कामना करने और शत्रु का नाश करने वाले के लिए (दिवो दासाय) और पुष्ट और वेगवान् योद्धाओं के स्वामी के लिए (भरद्वाजाय) वेग से जाते हुए ऐश्वर्य से युक्त व्यवहार पद को प्राप्त होते हो । अथवा,
हे वरवधू गृहस्थजनो, तुम दोनों समान रूप से जाते हुए ज्ञान प्रकाश के देने वाले विद्वान् (दिवो दासाय) और अन्नादि से भरण पोषण करने वाले मातापिता के लिये (भरद्वाजाय) धन धान्य सम्पन्न गृह को प्राप्त होते हो...(६) प्रकाश दाता-दया. (७) इच्छानुसार दानशील पुरुष । (८) एकवैदिक राजा-
'दिवोदासाय नवतिं च नव
इन्द्रः पुरो व्यैरत् शम्बरस्य'
ऋ. २.१९.६

दिवो दुहिता - (१) सूर्य की पुत्री, (२) उषा ।
'एषा दिवो दुहिता प्रत्यदर्शि'
ऋ. १.११३.७

दिवोधर्ता- (१) तेजस्वी, व्यवहारवान् और कामनावान् पुरुषों का धारण करने वाला, (२) द्युलोक का धारक-इन्द्र, परमेश्वर ।

'धर्ता दिवो रजसस्पृष्ट ऊर्ध्वः'
ऋ. ३.४९.४

दिवोनपाता- (१) सूर्य के समान प्रकाशमान, परम मेधावी परमेश्वर के रचे हुए वेदज्ञान को या तेजोमय वीर्य ब्रह्मचर्य को कभी नष्ट न करने वाले युवा स्त्री पुरुष (दिवः + न + पाता) (२) न्याय प्रकाश और राजसभा को स्थिर रखने वाले राष्ट्र पुरुष, (३) अश्विद्वय,

दिवोरथी- (१) द्युलोक रथ वाला विजयी, रमणकारी प्रकाश मान सूर्य, (२) मोक्षाख्य प्रकाश का रमण कारी आत्मा।
'समिद्धो अग्निर्वृषणा रथीदिवः'
अ. ७.७३.१, ऐ.ब्रा. १.२२.२, आश्व.श्रौ.सू. ४.७.४, शा.श्रौ. सू. ५.१०.८.

दिश् - (क)- दिश् (अतिसर्जन अर्थ में) + क्विप् (अधिकरण में)= दिश्। दिश्यन्ते अतिसृज्यन्ते हि आसु हविरादीनि देवतानाम् (देवताओं की हवि इन दिशाओं में दी जाती है) (ख) आङ् + सद् + क्विप् = दिश् (वर्ण व्यत्यय और उपसर्ग का लोप) यह व्युत्पत्ति आसदन अर्थ है (आसदनात्) अर्थ है- तं . तम् अर्थम् प्रति एता आसन्ना भवन्ति (उस उस अर्थ के प्रति ये दिशाएं आसन्न होती हैं)।
(३) अभ्यशन अर्थ में भी इस शब्द की व्युत्पत्ति की जा सकती है (अपिना अभ्यशनात्)। अभ्यश्नवते व्याप्नुवन्ति हि एताः तम् तम् अर्थम् (ये दिशाएं उस अर्थ को व्याप्त करती हैं)। अभि + अश् + क्विप् = दिश्

दिशन्ता- प्रदिशन्तौ, उपदिशन्तौ, आज्ञापयन्तौ (आज्ञा देते हुए)। दिश् + शतृ + औ = दिशन्तौ-दिशन्ता (औङ् का आ)।
द्विवचन में 'दिशन्ता' हो गया है। अर्थ - (१) आदित्य और अग्नि का विशेषण
(२) अग्नि और वायु का विशेषण
(३) प्रदिशन करने वाले।
'प्राचीनं ज्योतिः प्रदिशा दिशन्तां'
ऋ. १०.११०.७, अ. ५.१२.७, वाज.सं. २९.३२, मै.सं. ४.१३.३, .२०२.८, क्रा.सं. १६.२०,तै.ब्रा. ३.६.३.४, नि. ८.१२.
आहवनीय अग्नि को (ज्योतिः) प्रदिश्यमान मंत्र से (प्रदिशा) प्रदिशन करते हुए (दिशन्ता) अग्नि और आदित्य स्वभाव से ही यज्ञ में सहायता पहुंचाते हैं।
वेदोक्तविधि के अनुसार (प्रदिशा) प्राचीन ज्योति होकर अर्थात् पूर्व की ओर होकर (प्राचीनं ज्योतिः दिशन्ता) दिव्य गुण सम्पन्न सुखप्रदाता अग्नि और वायु।

द्विशवाः - द्विशवस्। अर्थ -(१) दोनों प्रकार का बल धारण करने वाला परमेश्वर, (२) नरनारी, मातापिता दोनों प्रकार का बल का धारण करने वाला परमेश्वर (३) सोम रस।
'देवाव्यं मदमभि द्विशवसम्'
ऋ. ९.१०४.२, साम. २.५०८.

दिशांपतिः- (१) समस्त दिशाओं का पालक - सोम।
'आ पवस्व दिशां पते'
ऋ. ९.११३.२
(२) रुद्र, (३) दिक्पाल।
'दिशां च पतये नमः'
वाज.सं. १६.१७, तै.सं. ४.५.२.१, मै.सं. २.९.३, १२२.९, का.सं. १७.१२, श.ब्रा. ९.१.१.१८.

द्विष- पु.। अर्थ-(१) अप्रीति कर, बुरा, (२) द्वेष भावना
'आराद् द्विषेभिरपयाहि दूरम्'
अ. १९.५६.६

दिष्ट- लम्बी रचना।
'दिष्टाय रज्जुसर्जस्'
वाज.सं. ३०.७, तै.ब्रा. ३.४.१.३.

दिष्टा- निर्दिष्ट, उपदिष्ट
'दिशं न दिष्टामृजूयेव यन्ता'
ऋ. १.१८३.५

दीक्षा- (१) व्रत धारण करना।
'विश्वकर्मा दीक्षायाम्'
य. ८.५४
(२) किसी विषय में दक्ष होने के लिए व्रताचरण।
'व्रतेन दीक्षामाप्नोति'
वाज.सं. १९.३०
(३) कार्य करने का दृढ़ संकल्प।
'सत्यं बृहदृतमुग्रं दीक्षा तपः'
अ. १२.१.१, मै.सं. ४.१४.११, २३३.८.
(४) विशेष व्रत, (५) नियम, नियन्त्रंण,

व्यवस्था ।
'यस्त्वा कृत्याभिर्यस्त्वा दीक्षाभिः '
अ. ८.५.१५

दीक्षापतिः- दीक्षा का पालक परमेश्वर
'अनु मेदीक्षान् दीक्षापतिर्मन्यतामनु तपस्तवस्तपतिः '
वाज.सं. ५.६, तै.सं. १.२.१०.२, का.सं. २.२, गो.ब्रा. २.२.३ , श.ब्रा. ३.४.३.९, ६.३.२१, वै.सू. १३.१८.

दीदयत्- दीप्यते (दीप्त होता है)

दीद्यग्नी - (१) देह में व्यापक जाठर अग्नि से स्वतः प्रदीप्त होने वाले (२) अग्नि के समान प्रकाशमान ।
'दीद्यग्नी शुचिव्रता '
ऋ. १.१५.११, तै.ब्रा. २.७.१२.१, आप.श्रौ.सू. २१.७.१६, मा.श्रौ.सू. २.४.२.११, ७.२.२.

दीदाय- दीप्त किया जाता है,

दीदिव्रः- (१) सभी को दीप्त करने वाला अग्नि, परमात्मा या जीवात्मा ।
'तं त्वा शोचिष्ठ दीदिवः '
वाज.सं. ३.२६.१५.४८, २५.४७, तै.सं. १.५.६.३, ४.४.४.८. मै.सं. १.५.३, ६९.१०, का.सं. ७.१. श.ब्रा. २.३.४३.१,मा.श्रौ.सू. ६.२.२, कौ.सू., ६८.३१.

दीदिवान् - (१) चमकने वाला ।
'नित्ये तोके दीदिवांसं स्वेदमे '
ऋ. २.२.११
(२) प्रकाशित होकर विराजने वाला, (३) प्रकाश करता हुआ (४) दीप्त होता हुआ- सूर्य ।
'अध्वस्मभि र्विश्वहादीदिवांसम् '
ऋ. २.३५.१४

दीदिवाः- (१) जो शुभगुणों से द्रव्यों को प्रकाशित करता है, (२) अग्नि, (३) सूर्य ।
'घृताहवन् दीदिवः
प्रतिष्म रिषतो दह '
ऋ. १.१२.५

दीदिहि- प्रदान कर ।
'दीदिह्यस्मभ्यं द्रविणेह भद्रम् '
अ. ७.७८.२

दीदी- दीप्ति का कारण ।

'अश्विना पिबतंमधु
दीद्यग्नी शुचिव्रता '
ऋ. १.१५.११, तै.ब्रा. २.७.१२,१, आप.श्रौ.सू. २१.७.१६, मा. श्रौ.सू. २.४.२.११, ७.२.२.

दीदेत्- देदीप्यते (चमकता है) । यो विड्भ्यो मानुषीभ्योंदीदेत् (जो अग्नि प्रजाओं को लिये दीप्त होता है ।)

दीध्यानः- (१) योग समाधि द्वारा ध्यान करता हुआ ।
'ये बध्यमानमनु दीध्यनाः '
अ. २.३४.३
(२) देदीप्यमान होता हुआ ।
'देवद्रीचा मनसा दीध्यानः '
ऋ. १.१६३.१२, वाज.सं. २९.२३, तै.सं. ४.६.७.५, का.सं. (अश्व.) ६.३.

दीधितिः- धीयन्ते कर्मसु (उंगलियां कर्म करने के समय पकड़ी जाती है)। धा (ग्रहण करता) + न्दिन् = दीधितिः (पृषोदरादिवत्) अर्थ - (१) उंगुली, (२) आग की चिनगारी ।
'अग्नि नरो दीधितिभिररण्योः
हस्तच्युती जनयन्त प्रशस्तम् '
ऋ. ७.१.१.१, साम. १.७.२, २.७२३, का.सं. ३४.१९, ३९.१५, कौ.ब्रा. २२.७, आप.श्रौ.सू. १४.१६.१, मा.श्रौ.सू. ६.२.२, नि. ५.१०.
नेता मनुष्य या ऋत्विज प्रशंसनीय अग्नि की अदणियों के टुकड़ो से पथों हाथों के द्वारा घिसकर उत्पन्न करते हैं ।
(२) धारण करने वाला ।
'विद्वान् ऋतस्य दीधितिं सपर्यन् '
ऋ. ३.३१.१, नि. ३.४.
प्रजोत्पादन- समर्थ रेतस् को धारण करने वाले जामाता की पूजा करता हुआ कन्या का पिता ।
(४) विधान ।
आधुनिक अर्थ-प्रकाश, किरण, सौन्दर्य, शारीरिक ओज ।

दीधिम - ध्यायाम (हम प्रार्थना करते हैं) । ध्यान करें या ध्यान करते हैं । समझें या समझते हैं । अनुचिन्तन करें ।
'वसूनि जाते जनमान ओजसा
प्रतिभागं न दीधिम '
ऋ. ८.९९.३, अ. २०.५८.१, साम. १.२६७,

२..६६९, वाज.सं. ३३.४१ , नि. ६.८.
हे मनुष्यों, हम इस उत्पन्न या उत्पन्न होने वाले संसार में ईश्वर के दिए धनों को पुरुषार्थ से अपने अपने भाग के अनुसार भोगने का अनुचिन्तन करें ।

दीन- (१) गरीब, दुःखी ।
'दीना दक्षा विदुहन्ति प्रवाणम्'
ऋ. ४.२४.९
(२) दि+ क्त = दीन । अर्थ -खण्डित, सूखा ।
'मत्स्यं न दीन उदनि क्षियन्तम्'
ऋ. १०.६८.८, अ. २०.१६.८, नि. १०.१२.
जैसे मछली मारने वाला सूखे जल में मछली देखता है ।

दीनता - दैन्य भाव ।
'क्रत्वः समह दीनता प्रतीपं जगमा शुचे'
ऋ. ७.८९.३

दीनदक्ष- हीनबल वाला ।
'यत्पाकत्रा मनसादीनदक्षाः'
ऋ. १०.२.५

दीयन् - बड़े वेग से चलता हुआ ।
'श्येनोनदीयन्'
बाज पक्षी की तरह चलता हुआ ।

द्वीपः- (१) द्वाभ्यां पाति इति द्वीपः (टापू, द्वीप),
'आपो न द्वीपं दधति प्रयांसि'
ऋ. १.१६९.३
जैसे चारों ओर से एकत्रित जल टापू में जाते हैं -यास्क जैसे जल द्वीप को धारण करते हैं वैसे ही उत्तम अन्न (प्रयांसि) आप को धारणा करते हैं-दया. (२) बाहर और भीतर दोनों ओर से धारण करने वाला शरीर ।

द्वीप्य- द्वीप्य के समान शत्रुओं से घिर जाने पर भी उन अवसरों पर भी कार्य करने में कुशल ।
'नमो नादेयाय च द्वीप्याय च'
वाज.सं. १६.३१, का.सं. १७.१४.

दीपि- धा. । प्रज्वलित करना ।
'दिव्यानि दीपयोऽन्तरिक्षा'
ऋ. ६.२२.८, अ. २०.३६.८, कौ.ब्रा., २५.५.

द्वीपिन्- चीता ।
'व्याघ्रस्य द्वीपिनोवर्च आददे'
अ. १९.४९.४
'याहस्तिनि द्विपिनि या हिरण्ये'
अ. ६.३८.२, का.सं. ३६.१५, तै.ब्रा. २.७.७.१.

दीर्घ- (१) विस्तृत साधनों वाला, (२) दूर तक शत्रुओं का नाश करने वाला, (३) दूर तक पहुंचने वाला ।
'दीर्घो रयिः पृथुबुध्नः सभावान्'
ऋ. ४.२.५
(४) द्राघ् (आयाम करना) + अण् = दीर्घ (पृषोदरादिवत्) ।

दीर्घचक्षस्- विस्तृत दर्शन या तत्व ज्ञान का लाभ ।
'अयं दीर्घाय चक्षसे प्राचि प्रयत्यध्वरे'
ऋ. ८.१३.३०

दीर्घ जिह्य- (१) लम्बी जीभ वाला (२) लम्बी-लम्बी बातें करने वाला ।
'सखायो दीर्घजिह्वयम्'
ऋ. ९.१०१.१, साम. १.५४५, २.४७.

दीर्घतन्तुः - बहुत लम्बी संन्तति परम्परा वाला ।
'दीर्घतन्तु र्बृहदुक्षायमग्निः'
ऋ. १०.६९.७

दीर्घतमस्- (१) अति विस्तृत अज्ञान और शोकादि में व्याकुल (२) अज्ञानी मातापिता ।
'दीर्घतमा मामतेयः'
ऋ. १.१५८.६.

दीर्घतमाःऋषिः- (१) एक वैदिक ऋषि (२) बड़ी-बड़ी लम्बी चौड़ी आकांक्षाओं वाला । उत्साही दूरदर्शी पुरुष ।
'ऋषिर्यद्वां दीर्घतमा जुहाव'
ऋ. ८.९.१०, अ. २०.१४०.५.
(३) खेद, शोक तथा प्रजापीड़ा का नाशक, (४) शोक मोह का नाशक आत्मा ।

दीर्घनीथ- (१) दीर्घ कालतक और दीर्घ मार्ग में ले जाने वाला ।
'दीर्घनीथे दमूनसि'
ऋ. ८.५०.१०

दीर्घ प्रयज्यु- दीर्घ + प्र + यज् + यु । अर्थ - (१) दीर्घ प्रतत यज्ञ, (२) नित्य यायजूक, (३) अग्निहोत्री ।
'इन्द्रावरुणा युवमध्यवरणय नः
विशे जनाय महिशर्म यच्छतम् ।
दीर्घप्रयज्युमति यो वनुष्पति
वयं जयेम पृतनासु दूढ्यः'
ऋ. ७.८२.१, तै.सं. २.५.१२.३, मै.सं. ४.१२.४,

१८७.२,
हे इन्द्र और वरुण, तुम दोनों हमारे लोगों के लिए या पुत्र पौत्र के लिये तथा यज्ञ के लिये महान् कल्याण गृह या सुख दो (महिशर्म यच्छतम्) और हमारे नित्य यज्ञशील अग्नि होत्री को दीर्घ प्रयज्युम् जो मारने की इच्छा करता है (अतिवनुष्यति) उस दुर्बुद्धि को या सायण के अनुसार उन शत्रुओं को (दूढ्यः) हम पराजित करें (जयेम)

दीर्घप्रसद्म – (१) महाभवन, (२) सत्व का शरण दाता, (३) विश्व का स्वामी ।
'वचोदीर्घ प्रसद्मनि ईशे वाजस्य गोमतः'
ऋ. ८.२५.२०

दीर्घप्रसिति – बड़ी बड़ी चिरकाल तक स्थिर रहने वाली राज्यप्रबन्ध व्यवस्था ।
'दीर्घामनुप्रसितिं स्यन्दयध्यै'
ऋ. ४.२२.७

दीर्घयाथ– (१) लम्बा प्रयाण ।
'यदस्योर्विया दीर्घयाथे'
ऋ. ५.४५.९
(२) दूर तक जाने वाला ।
'वृथासृजत् पथिभिः दीर्घयाथैः'
ऋ. २.१५.३, तै.सं. २.३.१४.५.

दीर्घश्रवस् – (१) दीर्घकालतक गुरुओं से उपदेश श्रवण करने वाला, (२) बहुत अधिक ज्ञानी, (३) बहुत अधिक धनी ।

दीर्घश्रुत् – दीर्घ कालतक वेदादि का श्रवण या अध्ययन करने वाला बहुश्रुत् ।
'विप्रोमन्मानि दीर्घश्रुत् इयर्ति'
ऋ. ७.६१.२

दीर्घश्रुत्तम – (१) दीर्घकालतक उत्तम ज्ञान का श्रवण करने वाला–बहुश्रुत ।
'पप्रथे दीर्घश्रुत्तमम्'
ऋ. ५.३८.२.
(२) दीर्घकाल तक अनेक शास्त्रों का श्रवण करने वाला
'यः सुम्नैर्दीर्घश्रुत्तमः'
ऋ. १०.९३.२
(३) विद्वानों में श्रेष्ठ ।

दीर्घश्रुत्तमा– द्वि.व. । दूर ही से गर्जनरूप में सुनाई देने वाले – मित्रा वरुण
'राजाना दीर्घश्रुत्तमा'
ऋ. ५.६५.२, ८.१०१.२

दीर्घाधीः – (१) दीर्घ बुद्धि या क्रिया शक्ति वाला, (२) दीर्घदर्शी
'दीर्घाधियो रक्षमाणा असुर्यम्'
ऋ. २.२७.४, तै.सं. २.१.११.४, मै.सं. ४.१२.१, १७७.१०, का.सं. ११.१२.

दीर्घाप्रसितिः – दूर तक फैला पारस्परिक बन्धन
'दीर्घामनुप्रसितिं दीधियुर्नरः'
ऋ. १०.४०.१०, अ. १४.१.४६, आप.मं.पा., १.१.६.

दीर्घायुः– (१) लम्बी आयु वाला ।
'दीर्घायुरस्या यः पतिः'
ऋ. १०.८५.३९, अ. १४.२.२, आप.मं.पा. १.५.४, नि. ४.२५.

दीर्घायुत्व – (१) दीर्घायु प्राप्त करना
'दीर्घायुत्वाय दध्मसि'
अ. १.२२.२
(२) दीर्घआयु, (३) ब्रह्मचर्य आदि
'जीवातुश्च मे दीर्घायुत्वं च मे'
वाज.सं. १८.६, तै.सं. ४.७.३.२, मै.सं. २.११.३, का.सं. १८.९ .

दीर्घाप्साः– (१) दीर्घाः अप्साः शुभगुण व्याप्तयः यस्य सः (विशाल रूप और कर्म वाला (२) विस्तृत उत्तम गुणों से युक्त (३) महान् रूपवान् और कर्मवान् आत्मा
'रथो वां मित्रावरुणा दीर्घाप्साः
स्यूमगभस्तिः सूरो नाद्यौत्'
ऋ. १.१२२.१५
हे मित्रावरुण, आप दोनों का धारण करने योग्य, रथ के समान यह राष्ट्र (रथः) विशाल रूप से और कार्य वाला और विस्तृत उत्तम गुणों से युक्त, सुखकारी किरणों वाले (स्यूम गभस्तिः) सूर्य के समान सुखकारी शासनप्रबन्ध से युक्त होकर प्रकाशित हो ।
अथवा, आत्मा महान् रूपवान् और कर्मवान् होकर, सुखकारी साधनों से युक्त होकर (स्यूम रश्मिः) सूर्य के समान चमकता है ।

दीव– रमण, क्रीड़ा आदि सुख ।
'न्युप्ता अक्षा अनुदीव आसन्'
ऋ. १०.२७.१७

द्यु – (१) क्रिया, ज्ञान, व्यवहार, (२) जुआ ।

'अक्षाः फलवतीं द्युवम्'

अ. ७.५०.९

(३) द्युत् (चमकना) + डो = द्यो (डि प्रत्यय के सम्बन्ध से उ का लोप)। द्यो + खु = द्यु। अर्थ- दिन अहन् (४) प्रकाशमान। द्युभिः अश्मभिः (चमकीले हीरों से)।

द्रु - (१) नौका।

'द्रुणा न पारमीरया नदीनाम्'

ऋ. ८.९६.११

(२) द्रवशील।

'समहिमा स द्रुः भूत्वान्तम्'

अ.१५.७.१

(३) द्रुतगामी रथ।

'इन्द्ररभि द्रुणा हितः'

ऋ. ९.९८.२

(४) द्रुममयस्य अधिषवन फलकद्वयम् (लकड़ी के बने सोम चुवाने के दो पात्र) (५) द्रुमविकार (६) 'दृ' (विदारणार्थक) या 'द्रु' (हिंसार्थक) + उ = द्रु, द्रु (गमनार्थक) + उ= द्रु। अर्थ-जो ऊपर की ओर बढ़ता है (ऊर्ध्वं गच्छति)। द्रुम, शाखा, (७) द्रुम की शाखा।

'आतू षिञ्ज हरिमीं द्रोरुपस्थे'

ऋ. १०.१०१.१०, नि. ४.१९.

हे अध्वर्यु, तू इस हरे रंग के सोम में लकड़ी के बने बर्तने से जल डाल या इस हरे सोम को द्रोण कलश के ऊपर ढाल।

द्युक्ष- न. (१) अन्नधन। 'द्यु + क्षि + ड = द्युक्ष।

'इन्द्र द्युक्षं तदाभर'

ऋ. ५.३९.२, साम. २.५२३

(२) पु.। कान्तिमान्, प्रकाश स्वरूप।

'मदाय द्युक्ष सोमपाः'

ऋ. ८.३३.१५, ८.६६.६

'द्युक्षाय दस्म्यं वचः'

ऋ. ८.२४.२०, अ. २०.६५.२, आश्व.गृ.सू. १.१.४.

(३) परम तेजस्वी, द्युतिमान

'द्युक्षं सुदानुं तविषीभिरावृतम्'

ऋ. ८.८८.२. अ. २०.९.२, ४९.५, साम. २.३६.

(४) अन्तरिक्ष के समान ऊंचा (५) सूर्य के समान तेजोयुक्त।

'द्युक्षं मित्रस्य सादनम्'

ऋ. १.१३६.२.

सबके स्नेही प्राणवत् जीवनप्रद मित्र अर्यमन् और वरुण का या सर्व श्रेष्ठ दुःखों के वारण करने वाले पुरुष का आसन पद (सादनम्) अन्तरिक्ष के समान ऊंचा और सूर्य के समान तेजो युक्त हो।

(६) द्युलोक में निवास करने वाला ब्रह्म। द्यु + क्ष।

'अध द्युक्षं सचेवहि'

ऋ. ८.६९.१६, अ. २०.९२.१३

(७) प्रकाशमान अग्नि।

'द्युक्षं होतारं वृजनेषु धूर्षदम्'

ऋ. २.२.१

(८) सुन्दर,।

'यन्यमन्यसे वरेण्यमिन्द्र द्युक्षंतदा भर'

ऋ. ५.३९.२, साम. २.५२३.

हे इन्द्र, जो कुछ आप सुन्दर अच्छा समझते हो (यत् द्युक्षं वरेण्यं मन्यसे) उसे हमें दो (तत् आभर)

द्युक्षवचाः- (१) कान्तिवत् उत्तम वाणी का कहने वाला (२) अग्नि।

'विप्रं न द्युक्षवचसं सुवृक्तिभिः'

ऋ. ६.१५.४

द्युक्षा- (स्त्री.) (१) द्यु + क्षि + ड = द्युक्ष। दिवि प्रकाशे निवासो यस्य (जिसका प्रकाश में निवास हो)-दया. (२) विजय कार्य में लगी हुई सेना।

'रोहिच्छ्यावा सुमदंशुः ललामीः
द्युक्षा राय ऋजाश्वस्य'

ऋ. १.१००.१६

खूब साधे हुए, युद्ध कुशल अश्वों और अश्वारोहियों के स्वामी सेनापति की लाल पोषाक वाली (ललामीः) और श्याम वर्ण के अस्त्र शस्त्रों से युक्त, उत्तम व्यापक साधनों से युक्त या स्वयं बड़ी पौरुष युक्त, वीर पुरुषों से बनी विजय कार्यों में लगी हुई (द्युक्षा) सेना अति वेग और उत्साह से जाने वाली होकर (सुमदंशुः)

अथवा, लाल और नीली अग्नि की ज्वाला, उत्तम किरणों वाली प्रदीप्त शिखा।

दुग्धा - दुग्ध पूर्णा, दुधार।

'दुग्धाम्यः गोभ्यः '
(दुधार गायों से या दूध भरे गांठों से) ।

द्युगत केशी-(१) भूमि पर जाने वाला अश्व, (२) तेजस्वी पुरुष ।
'अतस्त्वा गीर्भिर्द्युगदिन्द्र केशिभिः '
ऋ. ८.९७.४, साम. १.२६४

द्रुघ- (१) द्रोही शत्रु ।
'दूरस्या द्रुग्धो भियसा निगारीत् '
ऋ. ५.४०.७
(२) हिंसक कर्म व्यवस्था का द्रोही, (३) कर्म व्यवस्था का द्रोही (४) उन्मार्गगामी पुरुष ।
'विश्वं ह्युग्र निचिकेषि द्रुग्धम् '
अ. १.१०.२
(५) द्रोह आदि अपराध ।
'अवद्रुग्धानि पित्र्या सृजानः '
ऋ. ७.८६.५

द्रुघण- (१) वह पदार्थ जिस पर बढई लकड़ी रख कर काटता है (२) प्राण ।
'वेदः स्वस्तिर्द्रुघणः स्वस्तिः '
अ. ७.२८.१
(३) द्रु + घन = द्रुघण । द्रुममयः घनः (द्रुममयधन) । अर्थ है मुद्गर । लोक में इसका अर्थ है कुठार । द्रुः हन्यते इति द्रुघणः (इससे वृक्ष काटा जाता है) ।
(४) द्रु + मयट् = द्रुम, हन् + अप = घन (हन् का घन आदेश) । 'मूर्त्तौ घनः' (पा. ३.३.७७) से हन् का नियातन् ।
घन काठिन्य का वाचक है । मुद्गर कठिन है । अमर कोष में भी कहा है- 'द्रुघणो मुद्गरघनौ' द्रुममप श्चासौ घनश्च ।
आधुनिक अर्थ- मुद्गर हथौड़ा सा बना एक अस्त्र, कुल्हाड़ी, ब्रह्मा का एक विशेषण
'इमं तं पश्य वृषभस्य युञ्जं
काष्ठायामध्ये द्रुघणं शयानम्
येन जिगाय शतवत् सहस्रं
गवां मुद्गलः पृतनाज्येषु '
ऋ. २.१.१०, १०२.९, नि. ९.२४.
किसी से पूछे जाने पर मुद्गल ऋषि कहते हैं- इस सामने पड़े हुऐ मेरे उस सहायभूत वृषभ के सखारूप संग्राम के बीच सोए हुए मुद्गर को देख (इमं तं वृषभस्य काष्ठायाः मध्ये शयानम् द्रुघणम्) जिस मुद्गर से (येन) सहस्र संख्यक या बहुसंख्यक गौएं (शतवत् गवां सहस्रम्) मुद्गल ने जीतीं (अजैषम्) ।

दुघा- (१) दुही जाने वाली, दूध देने वाली गौ, (२) ब्रह्म रस का दोहन करने वाली प्रकाश धारा
'इन्द्रो वलं रक्षितारं दुघानाम् '
ऋ. १०.६७.६, अ. २०.९१.६

दुच्छुना- (१) दुःख दायी फलों को लाने वाली तृष्णा, (२) दुष्टं शुनं सुखम् अस्याम् इति वा श्वा इव दुष्टा इति वा ।
(इसमें दुष्ट सुख है अथवा कुत्ते के समान दुष्टा है) । (२) अनिष्ट कारिणी क्षम देवता ।
'द्यौष्पितर्यावय दुच्छुना या '
अ. ६.४.३
(४) जिससे सुख निकल गया हो (दुर्गतम् शुनम् सुखम् यस्याः सा) -दया. (५) दुःखदायी सुखनाशिनी शत्रुसेना, (६) सुख न देने वाली दुश्चेष्टा । (७) दुःखदायिनी प्रकृति ।
'स्वा तं ममर्तु दुच्छुना हरस्वती '
ऋ. २.२३.६

द्रुण- (१) शीघ्र गति से जाने वाला दूत ।
'अग्ने भ्रातर्द्रुण इद्भूति मूदिम '
ऋ. १.१६१.१

द्रुणानः- (१) गच्छन् (जाता हुआ) । 'द्रु' धातु हिंसा, गति और कौटिल्य अर्थ में प्रयुक्त है ।
'द्रूणानः' में 'आन' और दीर्घ आर्ष है (आनदीर्घावार्षौ) (२) हिंसन् (हिंसा करता हुआ ।

द्युतद्यामा- (१) द्युतत् + यामा । यामा याम अर्थात् प्रहारों को प्रकाश करती हुई उषा, (२) द्युत + द्यामा । अर्थ -कामनावान् व्यवहारविद् तेजस्वी पति को अथवा इस पृथिवी को अपने गुणों से चमका देने वाली स्त्री या उषा ।
'द्युतद्यामानं बृहतीमृतेन '
ऋ. ५.८०.१
(३) चमकने मार्ग वाला ।
'द्यूतद्यामानं वावृधन्त नृणाम् '
ऋ. १०.९३.१२

द्यूत्त- जला हुआ अंग ।
'यत्ते रिष्टं यत्ते द्यूत्तम '

अ. ४.१२.२

द्युतानः- (१) सदा चमकने वाला अग्नि (२) परमेश्वर ।

'द्युतारनं वो अतिथिं स्वर्णरम्'

ऋ. ६.१५.४

(३) प्रकाशमान सूर्य ।

'अध द्युतानः पित्रोः संचासा'

ऋ. ४.५.१०

(४) तेजस्वी होता हुआ ।

'द्युतानो वाजिभिर्यतः'

ऋ. ९.६४.१५

दुह्रे - बार बार दूध दिया ।

'इन्द्राय गाव आशिरं दुदुह्रे वज्रिणे मधु'

ऋ. ८.७.१०, ६९.६, अ. २०.२२.६, ९२.३, साम. २.८४१, तै.ब्रा. २.७.१३.४.

गायों ने इन्द्र के लिये बार बार दूध दिया ।

दुर्दशीक- कठिनता से दीखने वाला विषैला जीव ।

'अजकावं दुदृशीकं तिरोदधे'

ऋ. ७.५०.१

दुध्र- (१) शत्रु से अजेय ।

'दुध्रो गौरिव भीमयुः'

ऋ. ५.५६.३

(२) दुर्धर, बलशाली ।

'नयं दुध्रा वरन्ते न स्थिरां मुरः'

ऋ. ८.६६.२ साम. २.३८.

'यः सुन्वते पचते दुध्र आचित्'

ऋ. २.१२.१५, अ. २०.३४.१८.

(३) दुह् (प्रपूरणार्थक) + र = दुध्र । दुष्ट शत्रुओं को पकड़ने वाला - इन्द्र - (४) विद्या से पूर्ण -दया.

'दुध्र आभूषु रामयनि दामनि'

ऋ. १.५६.३

दुष्ट शत्रुओं को पकड़ने वाला इन्द्र (दुध्रः) दुष्टों को कारागृहों में रमाने वाला है (आभूषु रामयन) -सा. । विद्या से पूर्ण कर (दुध्रः) प्रसन्नता में रमण करने वाले (रामयन्) (४) बलपूर्ण -दया. ।

'दुध्र आभूषु रमयन् निदामनि'

ऋ. १.५६.३

बलपूर्ण पति को तू गृहस्थ बन्धन में बांध ले और वह पति तुझे सब प्रकार की विभूतियों ऐश्वर्यों और भूमियों में या देशों में (आ भूषु) सब प्रकार प्रसन्न रखे (रामयन्) ।

(६) धारण करनेयो, असह्य बल ।

दुध्रकृतः- ब.व. । वायुओं का विशेषण । अर्थ है-धारण करने योग्य या असहाय बल को करने वाले वायुगण या वीर पुरुष ।

'दुध्रकृतो मरुतो भ्राजदृष्टयः'

ऋ. १.६४.११

दुध्रवाक् - बड़ी कठिनता से धारण करने योग्य वाणी का स्वामी शासक ।

'सोममादोविदथे दुध्रवाचः'

ऋ. ७.२१.२

दुधानः - (१) प्रपूरक, (२) प्रदान करने वाला ।

'दिवो न यस्य रेतसो दुघानाः
पन्थासो यन्ति श्वसापरीताः'

ऋ. १.१००.३

सूर्य के रश्मिगण (दिवः रेतसः) जिस प्रकार जलों के प्रदान करने वाले होते हैं (दुघानाः) और बल या व्यापक सामर्थ्य से युक्त (शवसा) या सबसे बढ़कर दूर तक जाते हैं । ....

दुधि- हिंसक, शत्रुहिंसक ।

'स्यूमगृभे दुधयेऽर्वतेच'

ऋ. ६.३६.२.

(२) दुर्गम्य ।

'दुधेर्युक्तस्य द्रवतः सहानसा'

ऋ. १०.१०२.६

दुधितः - पूर्ण -दया. (२) आकाश में फैला हुआ ।

'नेशत्तमो दुधितं रोचत द्यौः'

ऋ. ४.१.१७

(३) दूर दूर तक स्थित ।

'सीव्यन् तमांसि दुधिता समव्ययत्'

ऋ. २.१७.४

दुन्दुभ्य- दुन्दुभि को उठाने वाला या बजाने वाला ।

'नमो दुन्दुभ्याय चाहनन्याय च'

वाज.सं. १६.३५. तै.सं. ४.५.७.१, मै.सं. २.९.७, १२५.११, का. सं. १७.१४.

दुन्दुभि - (१) एक बाजा, (२) भीतरी नाद, (३) द्वन्द्व युद्ध में शोभायमान होने वाला राजा ।

'क एषां दुन्दुभिं हनत्'

अ. २०.१३२.९

(क) - दुन्दुभि का युद्ध में प्रयोग होता है। इस के बजाने से -दुन्दुभ दुन्दुभ-जैसी ध्वनि होती है (दुन्दुभ्यति) । दुन्दुभ् + भा + कि = दुन्दुभि ।

यह शब्द शब्दानुकरण से निर्मित हुआ है ।

(ख) द्रुमः भिन्नः (दुन्दुभि द्रुम के एक अंश से निकालकर चमड़े से मढ़ा हुआ एक बाजा है । (द्रुमैक देशात् निष्कुमितः चर्मणा पिनद्धः)

(ग) द्रुम + भिद् = द्रुमद्भि= दुन्दुभि

(घ) शब्दार्थक दुन्दुभ धातु से निष्पन्त है । देवराज यड्वा तथा सायण ने इस धातु को वधार्थक माना है ।

'स दुन्दुभे सजूरिन्द्रेण देवैः
दूराद्दवीयो अपसेध शत्रून्'

ऋ. ६. ४७.२९,. अ. ६.१२६.१, वाज.सं. २९.५५, तै.सं. ४.६.६.६, का.सं. (आश्व.) ६.१., नि. ९.१३.

हे दुन्दुभि, इन्द्र के साथ प्रसन्नतापूर्वक (इन्द्रेण सजूः) तथा और देवों के साथ (देवैः) शत्रुओं को दूर से दूर (दूराद् दवीयः) भगा दे (अपसेध) ।

द्युभक्त - (१) बहुत दिनों तक सेवन करने योग्य ऐश्वर्य ।

'द्युभक्तमिन्द्रो अर्यमा ददातु'

ऋ. ७.४०.२

(२) दीप्तियुक्त, (३) इच्छापूर्वक प्राप्त ।

'आदिद् रत्नं धारयन्तं द्युभक्तम्'

ऋ. ४.१.१८

द्युभक्ता- (१) तेजोयुक्त स्वच्छ अन्न खाने वाली गौ, ।

'स्मदूध्नीः पीपयन्त द्युभक्ताः'

ऋ. १.६३.६

द्युभिः- (१) द्योतनात्मक यज्ञ के दिन पौर्णमास आदि से ।

(२) अग्नि को पौर्णमास आदि यज्ञों में ऋत्विज् अरणियों से मथ कर निकालते हैं । अतः 'द्यु' से अग्नि की उत्पत्ति बतलाई गई है, (३) सूर्य की किरणों से भी विद्युत् की उत्पत्ति होती है । द्योतन् शील किरण भी द्यौ है ।

'त्वमग्ने द्युभिस्त्वमाशुशुक्षणिः'

ऋ. २.१.१., वाज.सं. ११.२७, तै.सं. ४.१.२.५, मै.सं. २.७.२, ७६.१०, का.सं. १६.२, तै.आ. (आ.) १०.७६, कौ.ब्रा. २१.४, नि. ६.१, १३.१.

द्युमत् - द्युतिमान् ।

'आ नो भर भगमिन्द्र द्युमन्तम्'

ऋ. ३.३०.१९, तै.ब्रा. २.५.४.१.

हे इन्द्र । द्युतिमान् धनराशि हमें दे ।

द्युमत् - प्रकाशयुक्त ।

द्युमत्तमम् - (१) सुख जोर शोर से, दम दमा कर ।

'इह द्युमत्तमं वद
जयतामिव दुन्दुभिः'

ऋ. १.२८.५, आप.श्रौ.सू. १६.२६.१, नि. ९.२१.

हे ओखल, तू विजयी राजाओं की दुन्दुभि की तरह खूब ध्वनि कर (द्युमत्तमंवद)

(२) प्रकाशवान् और ज्ञानवान् पुरुषों में सर्वश्रेष्ठ

(३) इन्द्र या परमेश्वर का विशेषण ।

'शचीव इन्द्र पुरुकृत् द्युमत्तम'

ऋ. १.५३.३, अ. २०.२१.३.

द्युमती इष - (१) आकाश से आने वाली विद्युत्

(२) सूर्य के तेज से युक्त वृष्टि ।

'तामग्ने अस्मे इषमेरयस्व
वैश्वानर द्युमतीं जातवेदः'

ऋ. ७.५.८

द्युम्नम्- द्युत् (दीप्ति अर्थ में) + न = द्युम्न (म का आगम) । अर्थ है- (१) दीप्तिमान (२) यश, (३) बल, (४) अन्न ।

'अस्मे द्युम्नमधि रत्नं च धहि'

ऋ. ७.२५.३, नि. ५.५.

हे इन्द्र, हमारे लिए दीप्तिमान् यश, बल एवं रत्न दे ।

द्युम्नवत् ब्रह्म - (१) उत्तम कीर्तियुक्त ऐश्वर्य, (२) तेजोयुक्त वेदवचन ।

'द्युम्नवत् ब्रह्म कुशिकास एरिरे'

ऋ. ३.२९.१५

द्युम्नश्रवाः- (१) धन, यश और श्रवणीय ज्ञान से सम्पन्न ।

'द्युम्नश्रवसे महि नृम्णमर्चत'

ऋ. ५.५४.१

द्युम्नसाति- (१) प्रकाश, यश, बल या अन्न की प्राप्ति ।

'द्युम्नसाता वरीमभिः'

ऋ. १.१३१.१

द्युम्नासाह- (१) जल बरसाने वाला मेघ, (२) ऐश्वर्य को विजय करने वाला शत्रु।

द्युम्नहूति- (१) धन के निमित्त पुकार, (२) ऐश्वर्य के निमित्त पुकार।
'वयं ते अस्यामिन्द्र द्युम्नहूतौ'
ऋ. ६.२६.८
(३) यश सूचक स्तुति (४) तेजोमय स्वरूप का वर्णन करने वाली स्तुति।
'आ सत्याभिरिन्द्रं द्युम्नहूतिभिः
यजत्रं द्युम्नहूतिभिः'
ऋ. १.१२९.७
दानशील या सत्संग करने वाले उत्तम पुरुष को जिस प्रकार यश सूचक स्तुतियों द्वारा पहुंचते हैं उसी प्रकार हम ऐश्वर्यवान् इन्द्र को भी सत्य (सत्याभिः) उसके तेजोमय स्वरूप का वर्णन करने वाली स्तुतियों से (द्युम्नहूतिभिः) खूब भली प्रकार अपने साथ जोड़ लें (आपृर्चीमहि)।

द्युम्नितमः- (१) सबसे अधिक यश, अन्न और तेज से युक्त।
'द्युम्नितम उतक्रतुः'
ऋ. १.१२७.९, १७५.५.
(२) सबसे अधिक तेजस्वी प्रकाशवान्

द्युम्नी- (१) यशस्वी, (२) प्रशस्तधनी, (३) सोम का विशेषण, (४) कान्ति, तेज ओज आदि का जनक शुक्र (वीर्य)।
'द्युम्नेभिद्युम्न्यभवो नृचक्षाः'
ऋ. १.९१.२, मै.सं. ४.१४.१, २१४.७, तै.ब्रा. २.४.३.८.

द्रुपदे-द्रुपद (१) 'द्रुममयः पदः' से द्रुपद हुआ है। अर्थ है - पादुका, (२) पादुकाख्य स्नान में अधिष्ठित कन्याएं।
'कनीनकेव विद्रधे
नवे द्रुपदे अर्भके
बभ्रू यामेषु शोभते'
ऋ. ४.३२.२३, नि. ४.१५.

द्रुपदा - (१) द्रुपदा, पादुका, खड़ाऊं।
आधुनिक अर्थ- पाञ्चालों का राजा द्रुपद है।

द्रुम- द्रुम। दृ (विदारण अर्थ में) + नु = द्रु,दृ (हिंसार्थक) + उ = द्रु, द्रु (गत्यर्थक) + डु = द्रु, द्रु + म = द्रुम। अर्थ है-(१) वृक्ष, (२) वृक्ष की शाखा जो ऊपर की ओर जाती है। (ऊर्ध्वं गच्छति) (३) द्रु वाला अर्थात् शाखा वाला वृक्ष।

दुर् - (१) द्वार। अंग्रेजी का Door शब्द दुर् से ही बना है। (२) वृष्टि ऐ.ब्रा. वृष्टिर्वै दुरो वृष्टिमेव तत्प्रीणाति वृष्टि मन्नादय यजमानोदधाति (३) दुष्ट, बुरा,। 'सुम्न' का विपरीतार्थक उपसर्ग।

दुरः- दाता।
'दुरो अश्वस्य दुर इन्द्र गोरसि'
ऋ. १.५३.२, अ. २०.२१.२.
हे ऐश्वर्यवान् परमेश्वर, तू अश्वों और अग्नि आदि व्यापक तत्त्वों का दाता है। तू गौओं का दाता है।

दुरद्मनी- दुष्ट अन्न का भोजन।
'पाहि दुरद्मन्यै'
वाज.सं. २.२०, तै.सं. १.१.१३.३, का.सं. १.१२., श.ब्रा. १.९.२.२०., तै.ब्रा. ३.३.९.९.

दुरस्यती- दूसरों का बुरा चाहने वाली दुष्ट प्रवृत्ति
'सोमोहन्तु दुरस्यतीः'
अ. ७.११४.२

दुरदभ्ना- कठिनता से दबाई जाने वाली -वश में आने वाली गौ।
'दुरदभ्ना हि उच्यसे'
अ. १२.४.४

दुर्ग - दुर + गम् + उ = दुर्ग, अर्थ है- (१) दुर्गमनीय, जिसे कोई पार न कर सके।
'स नः पर्षदतिदुर्गाणि विश्वा'
ऋ. १.९९.१, अ. ७.६३.१, तै.आ. १०.२.१, महा.ना.उप. ६.२.नि. १४.३३.
वह अग्नि हमारे दुर्गमनीय दुःखों से हमें पार करें (अति पर्षत्)
आधुनिक अर्थ -जंगल, नदी या पर्वत का संकीर्ण पथ, किला राजभवन, ऊबड़ खाबड़ भूमि, आपत्ति, कठिनाई।

दुर्गन्धिः- दुर्गन्ध पदार्थों का सेवी।
'दुर्गन्धीन् लोहितास्यान्'
अ. ८.६.१२

दुर्गह- दुःख से प्राप्त करने योग्य संकट, (२) दुर्ग्राह्य, (३) अविज्ञेय।

'इन्द्रो विश्वानि अति दुर्गहाणि'
ऋ. ६.२२.७, अ. २०. ३६.७.
'न पातो दुर्गहस्यमे'
ऋ. ८.६५.१२
(४) कठिनता से पार करने योग्य

दुर्गहा- (१) बड़े-बड़े दुःख से प्राप्त होने वाले और बीतने योग्य जन्म।
'नाहमतो निरया दुर्गहैतत्'
ऋ. ४.१८.२

दुर्गा- दुःख प्रद।
'दुर्गा तस्या अधिष्ठाने पृथिवी सहदेवता'
अ. १२.४.२३

दुर्गृभिः- (१) दुःखेन ग्रहीतुं योग्यः (दुःख से ग्रहण करने योग्य, - दया.
(२) असह्य, (३) तीव्र ताप के कारण स्पर्श नहीं करने योग्य, (४) दुर्दान्त, (४) शत्रुओं के वश में न आने वाला।
'भीमो न ऋङ्गा ददिधावदुर्गृभिः'
ऋ. १.१४०.६
सूर्य भयंकर पशु के समान असह्य होकर किरण रूप श्रृंगों को खूब तीव्रता से फेंकता है। (६) अग्नि, (७) राजा।

दुर्गृभिश्वण् - गृह् + इक् = गृहि= गृभि, दुर् + गृभि+ श्वन् = दुर्गृभिश्वन्। अर्थ (१) दुःख से ग्रहण किए जाने वाला पकड़ने वाला कुत्ता, (२) कुत्तों के समान टुकड़ो पर जीने वाला वेतनधारी नौकर या भेदिया, (३) वृत्र का विशेषण, (४) बेकाबू इन्द्रिय।
'वृत्रस्य यत् प्रवणे दुर्गृभिश्वनः
निजघन्थ हन्वोरिन्द्रतन्यतुम्'
ऋ. १.५२.६
हे इन्द्र, जब तू नीचे फैले दुःख के ग्रहण करने योग्य कुत्ते के समान (दुर्गृभिश्वनः) वृत्र या शत्रु या मेघ के हनुओं में गर्जन करने वाले वज्र को चलाकर मारता है।

दुर्णश - अविनाशी।
'एना पर एकेन दुर्णशं चिदर्वाक्'
अ. ५.११.६

दुर्णामचातनः- (१) दुष्टख्यातिवाले पुरुषों का नाशक (२) बुरे नाम वाले त्वाचा रोग का नाशक शतवार ओषधि।
'मणिर्दुर्णाम चातनः'
अ. १९.३६.१
(३) 'दुर्णाम' कुष्ट नामक रोग को दूर करने वाला, (४) दुष्ट नाम वाले दुष्ट रोग से पीड़ित पुरुष को दूर करने वाला।
'बजं दुर्णाम चातनम्'
अ. ८.६.३

दुर्णामा- (१) बुरे नाम या स्वरूप वाला कुष्ठ आदि रोग।
'तमाहं दुर्णाम्नां शिरः
वृश्चामि शकुने रिव'
अ. २.२५.२
'दुर्णामा योनिमाशये'
ऋ. १०.१६२.१, २. अ.२०.९६.११,१२, नि. ६.१२
(२) कुष्ठी, (३) पाप रोगी (दुर्नामा कृमिर्भवति पापनामा) क्रिमिः क्रव्ये मेकति। क्रमतेर्वा स्यात् सरण कर्मणः क्रामतेर्वा
'दुर्णामा तत्र मागृधत्'
अ. ८.६.१
(३) दुर् + नामन् = दुर्णामा दुःखदं यस्य तत्। अर्श या क्रिमि नाम का एक रोग जो गर्भाशय में जाकर गर्भ नष्ट करता है।
(४) पाप नामक क्रिमि

दुर्णाम्नी- (१) बुरे रूप रंग वाली व्याधि।
'दुर्णाम्नीः सर्वा दुर्वाचः'
अ. ४.१७.५, ७.२३.१.
(२) कामिनीस्त्री।
'शतमहं दुर्णाम्नीनाम्'
अ. १९.३६.६

दुर्णिहितैषिणी - शत्रुओं का हित न चाहने वाली सेना।
'रिशां दुर्णिहितैषिणीम्'
अ. ११.९.१५

दुर्धर - (१) दुर्धर, अदम्य।
'अपामिव प्रवणे यस्य दुर्धरम्'
ऋ. १.५७.१, अ. २०.१५.१.
(२) जिसे पकड़ा नहीं जा सके, बेरोक।

दुर्धर्तु- दुःखदायी कष्टों को भी संभालता हुआ।
'स्यात दुर्धर्तवो निदः'
ऋ. ५.८७.९

दुर्धरीतुः- पराजित न होने वाला।

'शासा मित्रं दुर्धरीतुम्'
ऋ. १०.२०.२

दुर्धा- (१) दुःस्थिति ।
'दुर्धा दधाति परमे व्योमन्'
ऋ. १०.१०९.४, अ. ५.१७.६.
(२) दुर्धारणीय प्रकृति ।

दुर्धित- (१) दुःख से प्राप्त किया (२) कष्ट से सुरक्षित ।
'इदमग्ने सुधितं दुर्धितादधि'
ऋ. १.१४०.११
हे अग्रणी नायक, विद्वन्, पालक पति या अग्नि, . दुःख से प्राप्त किए कष्ट से सुरक्षित प्रिय धन आदि के भी ऊपर यह सुख से धारण करने योग्य (सुधितम्) ।

दुर्धुर्- कठिनता से वश में लाये जाना वाला ।
'वृथा गावो न दुर्धुरः'
ऋ. ५.५६.४

दुर्नियन्ता- (१) दुःख से शासन करने वाला, (२) अन्याय मार्ग से जाने वाला राजा ।
'दुर्नियन्तुः परिप्रीतोनमित्रः'
ऋ. १.१९०.६
(३) बड़ी कठिनता से वश में लाए जाने वाला, । (४) दुष्ट पुरुषों को भी नियन्त्रण करने में समर्थ ।
'सूर्यस्येव रश्मयो दुर्नियन्तवः'
ऋ. १.१३५.९

दुर्भृति- (१) दुःख या कष्ट से भरण पोषण करना, ।
'मा नो अग्ने दुर्भृतये सचैषु'
ऋ. ७.१.२२

दुर्मतिः - (१) दुष्टमति या बुद्धिवाला
'वधैरजेत दुर्भतिम्'
ऋ. १.१२९.६, नि.१०.४२
वह इन्द्र वधों के द्वारा दुष्ट बुद्धि वालों पर विजय प्राप्त करें । (२) दुष्ट मतिवाला, (३) दुर्मति शत्रु- (४) दुर्जन-दया. ।
'परिवर्ग इन्द्रो दुर्मतीनाम्'
ऋ. १.१२९.८
इन्द्र दुर्मति शत्रुओं के संग्राम में ।
राजा दुर्जनों के परिवर्तन में-(दया.)

दुर्मद - (१) दुर्दान्त, अदम्य पुरुष ।
'पुरुष व्याघ्राय दुर्मदम्'
वाज.सं. ३०.८, तै.ब्रा. ३.४.१.५.
(२) दुष्ट मद से युक्त ।
'दुर्मदासो न सुरायाम्'
ऋ. ८.२.१२, नि. १.४.
(३) अभिमानी, (४) दुर्मित्र, (५) यदमत्त, (६) बुरा पापमय मद (७) भोगविलास में तृप्त रहने वाला व्यसनी, (८) अपनी प्रजा पर अत्याचार और अन्याय के उपायों से भोग विलास पूर्ण करने वाला पुरुष ।
'अयोद्धेव दुर्मद आहि जुह्वे'
ऋ. १.३२.६, तै.ब्रा. २.५.४.३,

दुर्मन्- (१) यः दुष्टं मन्यते (जो दुष्ट मनन करता है) । (२) दुष्ट कल्पना वाला पुरुष

दुर्मन्तु - (१) दुर्विज्ञेय ।
'दुर्मन्त्वत्रामृतस्य नाम'
ऋ. १०.१२.६, अ.१८.१.३४.
(२) मनन करने या समझने में कठिन

दुर्मन्मन् - (१) विपरीत ज्ञान का नाशक, (२) दुःख या कठिनता से मनन करने योग्य, (३) दुर्विज्ञेय परमेश्वर या आत्मा का रूप ।
'दुर्मन्मानं सुमन्तुभिः
एमिषा पृचीमहि'
ऋ. १.१२९.७
उत्तम मनन करने योग्य ज्ञानी और मननशील पुरुषों द्वारा (सुमन्तुभिः) उपदेश प्राप्त कर हम विपरीत ज्ञान के नाशक, एवं दुःख और कठिनता से मनन करने योग्य, दुर्विज्ञेय परमेश्वर या आत्मा के रूप को (दुर्मन्मानम्) इच्छा या प्रेरणा द्वारा (इषा) प्राप्त करें ।
(४) दुष्ट चित्त वाला
'दुर्मन्मा कश्च वेनति'
ऋ. ८.६०.७

दुर्मायु- (१) दुःखदायी शब्द करने वाला ।
'दुर्मायवो दुरेवा मर्त्यासः'
ऋ. ३.३०.१५

दुर्मित्रासः-शत्रु, = दुष्ट, द्रोही ।
'दुर्मित्रासः प्रकलविन्मिनानाः
जहुर्विश्वानि भोजना सुदासे'
ऋ. ७.१८.१५, नि. ६.६.
दुष्ट कलावान् बनिए (दुर्मित्रासः प्रकलवित् मिनानाः) सभी भोज्य पदार्थ या धन सुदास

नामक राजा को या अच्छा दान देने वाले यजमान देने लगे।

धूर्त तौलने वाले व्यापारी लोग (मिनानाः प्रकलवित्) उत्तमदाता ब्राह्मणादिकों के लिये (सुदासे) सब प्रकार से भोज्य पदार्थ दें।

दुर्य – (१) गृहवासी, (२) गृहस्वामी, (३) अग्नि,।
'दृहन्तां दुर्याः पृथिव्याम्.'
वाज.सं. १.११, श.ब्रा. १.१.२.२२.
'प्रजावतीषु दर्यासु दुर्य'
ऋ. ७.१.११
(४) दूर + यत् = दुर्य। अर्थ–गृह का, गृह सम्बन्धी।
'प्रिया अर्यम्णो दुर्या अशीमहि'
ऋ. १०.४०.१२, अ. १४.२.५, आप.मं.पा. १.७.११.
(४) द्वारों में प्रवेश करने वाला, (६) सब द्वारों एवं मार्गों में व्यापक, (६) सर्वत्र हितकारी परमेश्वर।
'नानौकांसि दुर्यो विश्वमायुः'
ऋ. २.३८.५
(८) द्वारों वाला नगर।
'अवीरहा प्रचरा सोम दुर्यान्'
ऋ. १.९१.१९, वाज.सं. ४.३७, तै.सं. १.२.१०.१, का.सं. ११.१३, मै.सं. ४.१२.४, १८८.१२, ऐ.ब्रा. १.१३.२४, श.ब्रा. ३.३.४.३०

दुर्वःयूपः– (१) द्वारस्थ स्तम्भ।
'पज्रेषु स्तोमो दुर्यो न यूपः'
ऋ. १.५१.१४.
द्वारस्थ स्तम्भ की तरह (२) द्वारस्थित यूप।

द्युराजिः – (१) ज्ञान से चमकने वाला।
'देवाः द्युराजयोदेहिनः'
अ. १९.२०.३

दुराधिः– (१) दुःखदायी व्याधि।
'मा नो अज्ञाता वृजनादुराध्यः'
ऋ. ७.३२.२७, अ. २०.७९.२, साम. २.८०७, पंच ब्रा. ४.७.५.

दुराधी– (१) दुष्टचिन्तक मनुष्य।
'दुराध्ये मर्ताय'
ऋ. ८.७१.७
(२) दुष्टबुद्धि या आचार वाला।
'दुराध्यो अदितिं स्रेवयन्तः'
ऋ. ७.१८.८

दुरापना– मुश्किल से वश में नहीं आने योग्य।
'दुरापना वात इवाहमस्मि'
ऋ. १०.९५.२, श.ब्रा. ११.५.१.७.

दुराशीः– (१) दुर्भावना।
'न यं शुक्रोन दुराशीः'
ऋ. ८.२.५

दुराहा– (१) दुर् + आहा = दुराहा। स्वाहा का प्रतिकूलार्थक शब्द। 'स्वाहा' देवताओं का स्वागतार्थक शब्द है। दुराहा स्वाहा का विपरीतार्थक, (२) अपकीर्त्ति।
'स्वाहैभ्यो दुराहामीभ्यः'
अ. ८.८.२४

दुर्या– (१) गृहिणी, (२) गृह में बसी स्त्री।
'प्रजावतीषु दुर्यासु दुर्य'
ऋ. ७.१.११
(३) राज्य गृह (४) शत्रु-निवारक सेना या प्रजा।
'स क्षेत्यस्य दुर्यासु साधन्'
ऋ. ४.१.९

दुर्युज्– (१) कुमार्गगामी, (२) मुश्किल से रथ में। लगाए जाने वाला अश्व
'अश्वा येषां दुर्युज आयुयुज्रे'
ऋ. १०.४४.७, अ. २०.९४.७.

दुर्योण – दुःखदायी।
'निदुर्योणे कुयवाचं मृधिश्रेत्'
ऋ. १.१७४.७
दुःखदायी रणांगन में कुत्सित वाणी बोलने वाले को खूब मारो।

दुर्वतुः– (१) दुर्निवार्य, (२) अग्नि।
'दर्वतुर्भीमो दयते वनानि'
ऋ. ६.६.५, नि. ४.१७.
दुर्निवार्य, प्रचन्ड अग्नि वन को जलाता है (दयते)। (२) दूर् + वृ + तुन् = दुर्वर्तु, अर्थ है दुर्वार (जिसका वारण न किया जा सके)।
'अध जिह्वा पापतीति प्रवृष्णो
गोषुयुधो नाशनिः सृजाना
शूरस्येव प्रसितिः क्षातिरग्नेः
दुर्वर्तु र्भीमो दयते वनानि'
ऋ. ६.६.५.
अनन्तर (अध) प्रवर्षिता अग्नि की ज्वाला (प्रवष्णः जिह्वा) लकड़ियों पर बार बार जाती

है (पापतीति) जैसे गौ के लिए असुरों से युद्ध होने पर असुरों के प्रति वज्र जाता है (गोषु युधो सृजाना अवनिः न) और शूरवीर योद्धा के छिन्न भिन्न एवं रुग्ण शत्रुओं से प्रकीर्णमार्ग से समान (शूरस्य प्रसितिःइव) अग्नि का मार्ग (अग्नेः क्षातिः) दुर्वारणीय है (दुर्वतुः) अर्थात् दावाग्नि की लपट कोई रोक नहीं सकता।

चन्द्रमणि विद्यालङ्कार का अर्थः- और राज्य के लिए भली प्रकार युद्ध करने वाले बलवान् राजा के फेंके हुए वज्र की तरह (अधगोषु युधः वृष्णः सृजाना अशनिःन) प्रचण्ड अग्नि की ज्वाला का पात होता है (जिह्वा प्रपातततीति)। पदार्थों को नष्ट करने वाली यह ज्वाला (क्षातिः) शूर पुरुष के बन्धन की तरह है (शूरस्य प्रसितिः इव)। यह दुर्निवार्य अग्नि वनों को दग्ध कर देता है (दुर्वतुः भीमः वनानि दयते)।

दुर्वाच् - (१) बदनाम करने वाली पाप व्याधि (२) दुःख जनक चीत्कार या बड़बड़ाहट पैदा करने वाली बीमारी।

'दुर्णाम्नीः सर्वा दुर्वाचः'

अ. ४.१७.५, ७.२३.१.

दुर्विदत्र - (१) दुः + विदत्र। दुःख दायी धन वाला, (२) दुर्ज्ञेय प्रभु।

'आरे मन्युं दुर्विदस्य धीमहि'

ऋ. १०.३५.४

दुर्विद्वान् - (१) दुर्गुणि विद्वान्।

'दुर्विद्वांसम् रक्षस्विनम्'

ऋ. ७.९४.१२

दुर्हणः- शत्रुभिः दुर्लभं हृणं प्रसह्यकरणं यस्य सः (विरोधियों पर असह्य या विरोधियों से असह्य)

दुर्हणा- (१) कठिनता से नाश होने योग्य दुस्साध्य शत्रु सेना (२) दारिद्रय आदि विपत्ति (३) दुर्गति, (४) दुष्टाचार।

'त्वं नो अस्या इन्द्र दुर्हणायाः पाहि वज्रिवो दरितात् अभीके'

ऋ. १.१२१.१४

दुर्हृणायत् - दुःखदायीरूप से हिंसा करने वाला दुष्टपुरूष।

'अवस्म दुर्हृणायतः मर्त्तस्य तनुहिस्थिरम्'

ऋ. १०.१३४.२, साम. २.४४२.

दुर्हणावान् - (१) अति दुःसह पीड़ा देने वाला प्रभु, (२) दुःखदायी, (३) पीड़ा देने वाला।

'मोष्वद्य दुर्हणावान्'

ऋ. ८.२.२०

'यो अस्मत्रा दुर्हणावां उपद्वयुः'

ऋ. ८.१८.१४

दुर्हार्दः - (१) दुष्ट हृदय।

'चक्षुर्मन्त्रस्य दुर्हार्दः'

अ. २.७.५, १९.४५.१.

'छिन्धि मे सर्वान दुर्हार्दान्'

अ. १९.२८.६.

'ताभ्यां दुर्हार्दमभिदासन्तं किमीदिनम्'

अ. ८.३.२५

दुर्हृणायुः- (१) दुःखदायी, (२) क्रोध करने वाला, (३) दुष्ट हृदय वाला।

'योनो मरुतो अभिदुर्हृणायुः'

ऋ. ७.५९.८, मै.सं. ४.१०.५, १५४.९, आश्व.श्रौ.सू. २.१८.३.

(४) जिसकी आयु दुर्हृण हो, प्रतापी।

'शिमीवतो भामिनोदुर्हृणायून्'

ऋ. १.८४.१६, अ. १८.१.६.साम. १.३४१, तै.सं. ४.२.११.३, मै.सं. ३.१६.४, १९०.४, का.सं. (अश्व.) ५.२१, नि. १४.२५.

(५) दुष्ट, दुस्साध्य क्रोध का वशी।

'यो नो मर्तो मरुतो दुर्हृणायुः'

अ. ७.७७.२, तै.सं. ४.३.१३.३, का.सं. २१.१३.

(६) 'यः दुर्हृण इव आचरति' (शत्रुओं से असह्य पराक्रम और कोप करने वाला)।

दुरति- न. । (१) दुर् + इत) दुष्ट आचरण, (२) दुःखदायी बुरा व्यसन।

'दुरितानि परासुव'

ऋ. ५.८२.५, वाज.सं. ३०.३, तै.ब्रा. २.४.६.३, तै.आ. १०.१०.२ , ४९.१, आप.श्रौ.सू. ६.२३.१, महा.ना.उप. ९.७, १७.७.

(३) दुर् + इ + क्र= दुरित।

इणंशिवधृषिभ्यःक्रः। दुर्गतिः ईयते गम्यते येन तत् (जिस से दुर्गति प्राप्त होती है)। दुर्गति गमनम् , दुर्गति- प्रापकम् (दुर्गति देने वाला) (४) पाप।

'अति क्रामन्तो दुरितानिविश्वा'

अ. १२.२.२८, नि. ६.१२.

(सभी पापों का अतिक्रमण करते हुए)।

अमरकोश में भी आया है -
'कलुषं वृजिनैनोऽघम्
अहो दुरित दुष्कृतम्'
दुरिष्टि- (१) दुष्टों जनों की संगति (२) दुष्ट कामना ।
'पाहि दुरिष्ट्यै'
वाज.सं. २.३२०, तै.सं. १.१.१३.३, का.सं. १.१२, श.ब्रा. १.९.२.२०, तै.ब्रा. ३.३.९.९.
(३) दोषयुक्त, (४) शास्त्र विधान के प्रतिकूल तामस वृत्ति ।
'या तेषामवया दुरिष्टिः'
अ. २.३५.१, मै.सं. २.३.८, ३६.१२.
दुर्हित- (१) दुःखदायी, (२) दुष्टाशय ।
'न मे स्तोतामतीवा न दुर्हितः'
ऋ. ८.१९.२६
दुरुक्तम्- (१) दुर्वचन ।
'नदुरुक्ताय स्पृहयेत्'
ऋ. १.४१.९, नि. ३.१६.
दुर्वचन बोलने या सुनने की चेष्टा न करे, ।
दुरेव- दुः + एव । (१) दुष्ट आचरण वाला, (२) दुर्बुद्धि
'मा दुरेवा उत्तरं सुम्नमुन्नशन्'
ऋ. २.२३.८.
(३) दुःखेन तर्यः दुखेः (जिसे मुश्किल से तरा जाय) (४) दुष्टमर्ण में ले जाने वाला । दुर + इ (गमनार्थक) से सिद्ध ।
दुरेवा- (१) दुःखदायी गति ।
'पतिरिपो न जनयो दुरेवाः'
ऋ. ४.५.५.
दुरीकः- (१) शत्रुओं से दुःख से सेवनीय राष्ट्र या सैन्य बल (२) अग्नि, दूर दूर के घर में जाने वाला ।
'दुरोकमग्निरायवे शुशोच'
ऋ. ७.४.३
दुरोक शोचिः - दूर दूर के घरों में भी जिसका प्रकाश जाता है-अग्नि ।
'दुरोकशोचिः क्रतुर्न नित्यः'
ऋ. १.६६.५.
जिस प्रकार अग्नि दूर दूर के स्थानों तक अपना प्रकाश फैलाता है उसी प्रकार नेता भी अपना पाश दूर दूर तक फैलाने वाला है । वह कर्मो और प्रज्ञानों के कर्त्ता के समान नित्य ध्रुव स्थायी होकर अपने किए कर्मों के फलों का भोक्ता हो ।
दुरोण- दुर् + ओण । (१) दुःख से चलने योग्य अन्तरिक्ष, (२) गृह ।
'विशाम धायि विश्पतिर्दुरोणे'
ऋ. ७.७.४
(३) दुर् + अव (रक्षा करना) + खल् = दुख = दोण । दुखाः भवन्ति दुस्तर्पाः आयासेन रक्षितव्या (अर्थात् गृह दुःख से तृप्त किए जाते हैं-गृह जंजाल में पड़कर परिवार की रक्षा करना एक दुःखमय कार्य है- गृह की रक्षा एक कठिन कार्य है ।
(४) गृह ।
'जुष्टो दमूनाः अतिथिर्दुरोणे'
ऋ. ५.४.५, अ. ७.७३.९, मै.सं. ४.११.१, १५९.३, का.सं. २.१५, तै.ब्रा. २.४.१.१, नि. ४.५.
'समिद्धो अद्य मनुषोदुरोणे'
ऋ. १०.११०.१, अ. ५.१२.१, वाज.सं. २९.२५, मै.सं. ४.१३.३, २०१.८, का.सं. १६.२०, तै.ब्रा. ३.६.३.१, नि. ८.५.
(५) यज्ञ-गृह ।
दुरोणयुः - (१) गृह पाने का अभिलाषी, (२) दुःख से प्राप्त होने योग्य उत्तम पद की अभिलाषा करने वाला ।
'दिवस्यायु दुर्रोणयुः'
ऋ. ८.६०.१९, साम. १.३९.
दुरोणसद् - (१) बड़े-बड़े कष्ट सहन कर पालने योग्य राष्ट्र रूप गृह में विराजमान ।
'होता वेदिषदतिथिर्दुरोणसत्'
ऋ. ४.४०.५, वाज.सं. १०.२४, १२.१४.
दुर्योण- दुःखदायी स्थान ।
'नि दुर्योण आवृणक् मृध्रवाचम्'
ऋ. ५.३२.८
दुरोषाः(१) स्थानों से दग्ध न हो सकने योग्य, (२) उत्तम गृह में रहने वाला ।
'दुरोषासो अमन्महि'
ऋ. ८.१.१३, अ. २०.११६.१, पंच.ब्रा. ९.१०.१.
(३) दुःखकारी रोष वाला, (४) सोम, (५) जो अग्नि से न जले सके, ।
'तं दुरोषमभीनरः'

ऋ. ९.१०१.३, साम. २.४९.

(६) दुस्तर क्रोध या रोष से युक्त (७) क्रोध -रहित ।

'आ दुरोषाः पास्त्यस्य होता'

ऋ. ४.२१.६

शत्रुओं से सन्ताप न दिए जाने योग्य, सन्ताप रहित ।

'दुरोषासो अमन्महि'

दुवः - न. । (१) प्रार्थना आदि ।

'यज्ञैर्य इन्द्रे दधते दुवांसि'

ऋ. ७.२०.६

(२) प्रार्थना, (३) सेना ।

'आ यद् दुवः शतक्रतो'

ऋ. १.३०.१५, अ. २०.१२२.३, साम. २.४३६.

(४) दोआ ।

'दुवस्तेव कृणवते यतस्रुक्'

ऋ. ४.२.९

परिचर्या के अर्थ में- ।

'आयद् दुवः शतक्रतो
आ कामं जरितॄणाम्'

ऋ. १.३०.१५

हे सैकड़ो प्रज्ञाओं और कर्मों में कुशल ईश्वर । तेरी जो परिचर्या है वह भी स्तोता विद्वान् पुरुषों को अभिलषित फल प्राप्त कराता है ।

पुनः-

'विदा देवेषु नो दुवः'

ऋ. १.३६.१४, मै.सं. ४.१३.१, १९९.१०, का.सं. १५.१२, ऐ.ब्रा. २.२.२३, तै.ब्रा. ३.६.१.२.

विद्वानों के प्रति हमारे अन्दर उत्तम आचरण तथा सेवा भाव आदि उत्पन्न कर ।

(५) परिचारक ।

'हृत्सु पीतासो दुवसो नासते'

ऋ. १.१६८.३.

दुवस्य- (१) दुवस् + यत । अर्थ-सेवा शुश्रूषा करने योग्य ।

'आ यद् दुवस्यात् दुवसे न कारु'

ऋ. १.१६५.१४, मै.सं. ४.११.३, १७०.५, का.सं. ९.१८.

सेवा शश्रूषा करने योग्य पुरुष से (दुवस्यात्) जिस प्रकार परिचर्या करने वाले पुरुष को (दुवसे) शिल्प साधिका बुद्धि प्राप्त होकर उसे भी शिल्प करने में कुशल कर देती है ।

(२) क्रिया होने पर अर्थ है - परिचर पूज (परिचर्या कर, पूजा कर) । 'दुवस्' धातु निरुक्त में परिचरण अर्थ में प्रयुक्त हुआ है । (दुवस्यतिः नैरुक्तो धातुः) । कण्ड्वादि में 'द्रवस्' धातु परिताप तथा परिचरण अर्थों में आया है ।

'यमं राजानां हविषा दुवस्य'

ऋ. १०.१४.१, अ. १८.१.४९, मै.सं. ४.१४.१६, २४३.७, तै.आ. ६.१.१, नि. १०.२०.

यमराजा को हवि से पूज ।

दुवस्यति- दुवस् धातु से लट् प्र.पु.ए.व. का रूप । अर्थ है-परिचरति (परिचर्या करता है) । 'दुवस्' धातु निरुक्त में परिचरण अर्थ में प्रयुक्त हुआ है । (दुवस्यतिः नैरुक्तो धातुः = परिचरणार्थः) ।

द्रुवयः- काष्ठमय ।

'सिंह इवा स्तानीद् द्रुवयो विबद्धः'

अ. ५.२०.२

द्रुवि- धनैश्वर्य ।

'उपश्वसे द्रुवये सीदता यूयम्'

अ. ११.१.१२

दुवोयुः - परिचर्या की कामना करने वाला ।

'सतुश्रुधि श्रुत्या यो दुवोयुः'

ऋ. ६.३६.५

दुश्चरित - दुष्टआचार ।

'परिमाग्ने दुश्चरिताद् बाधस्व'

वाज.सं. ४.२८, श.ब्रा. ३.३.३.१३.

दुश्चित् - दुष्ट चित्त वाला ।

'अग्निर्दहुत दुश्चितम्'

अ. १२.५.६१

दुश्चित- दुःख में पड़ा ।

'दुश्चितं मृदितं शयानम्'

अ. ११.१०.२६

दुःशंस- (१) कुवाक्य बोलने वाला ।

'दुःशंस आदिदेशति'

अ. ६.६.२

(२) कुख्याति वाला, (३) बुरा बुरा उपदेश देने वाला पुरुष ।

'मा नो दुःशंसो अभिदिप्सुरीशत'

ऋ. २.२३.१०, का.सं. ३५.५

(४) दुष्ट, दुःखदायी, अधार्मिक वचन बोलने वाला, बुरी ख्याति वाला दुष्ट ।

'मां नो दुःशंस ईशत्'

ऋ. १.२३.९, ७.९४.७, अ. १९.४७.६.

हम पर दुष्ट दुःखदायी, बुरा शासन करने वाले या अधार्मिक वचन बोलने वाले कभी शासन न करें।

दुःशीमः- पराजित न होने वाला।

'प्रतद् दुःशीमे पृथवाने वेने'

ऋ. १०.९३.१४

दुःशेव- दुःखेन शमयितुमर्हः (जिसके दुःख से शमन अर्थात् शान्त किया जा सके-दुःखदायी पुरुष)।

'यो नः पूषन् अघो वृकः दुःशेव आदिदेशति'

ऋ. १.४२.२

द्रुषत् - द्रु + सत्। वृक्ष पर बैठने वाला- पक्षी।

'वेर्न द्रुषत् चम्वोरासदद् हरिः'

ऋ. ९.७२.५

द्रुषद्वा - (१) द्रु + सद् + वा। अर्थ-वृक्ष पर बैठने या विराजने वाला पक्षी, (२)रथ से जाने वाला रथवान् पुरुष।

'वेर्न द्रुषद्वा रघुपत्मजंहाः'

ऋ. ६.३.५, मै.सं. ४.१४.१५.२४०.१२.

दुष्कृत् - (१) दुराचारी।

'न सुगं दुष्कृते भुवम्'

ऋ. १०.८६.५, अ. २०.१२६.५

(२) पापकृत्, पाप कर्मा दुष्कर्म करने वाला

'यत्पर्जन्यः स्तनयन् हन्ति दुष्कृतः'

ऋ. ५.८३.२, नि. १०.११.

यह मेघ अशनि पात कर दुष्कर्म करने वालों का वध कर। (३) तस्कर -दुर्ग

दुष्टनु- दुस्तनुः, बुरी तरह से शरीर में फैलने वाला विष।

'क्षुधा किलत्वा दुष्टनो'

अ. ४.७.३

दुष्टर- (१) दुर् + तर = दुस्तर। दुस्तरम्। नहीं पार पाने योग्य।

'अकृण्वत श्रवस्यानि दुष्टरा'

ऋ. १०.४४.६, २०.९४.६, नि. ५.२५.

जिन्होंने श्रवणीय दुस्तर कर्म किए।

दुष्टरीतु- (१) दुस्तरीतु, अजेय, दुस्साध्य, दुस्तर।

'त्वं र्सी वृषन् अकृणोः दुष्टरीतु'

ऋ. ६.१.१. मै.सं. ४.१३.६, २०६.६, का.सं. १८.२०, तै.ब्रा. ३.६.१०.१.

(२) अपार सामर्थ्य वाला (३) दुःखेन तरितुम् अर्हः (दया.)

'तुविग्रये वह्नये दुष्टरीतवे'

ऋ. २.२१.२

दुष्टिः- बिगड़ा स्वभाव, दुष्टता।

'दुष्ट्यै हित्वा भत्स्यामि'

अ. ३.९.५.

दुष्टुतिः- (१) निन्दा वचन, दुर्वचन।

'न दुष्टुतिर्द्रविणोदेषु शस्यते'

ऋ. १.५३.१, अ. २०.२०.१, साम. २.२१८.

धन देने वाले के लिये दुर्वचन न कहे।

दुष्पद् - (१) दुर्गम, (२) असहाय।

'निचक्रेण रथ्या दुष्पदा वृणक्'

ऋ. १.५३.९, अ. २०.२१.९

दुष्प्राव्य - दुःख से प्राप्त करने योग्य।

'दुष्प्राव्यो ऽवहन्तेदवाचः'

ऋ. ४.२५.६

दुः - (१) सायण के अनुसार 'दा' धातु के लिट् प्र.पु.व.व.का रूप है। अर्थ है- दिया (२) स्वामी दयानन्द ने इसका अर्थ किया है - देने वाला।

'यं मे दुरिन्द्रो मरुतः'

ऋ. ८.३.२१.

(इन्द्र और मरुतों ने जो दान मुझे दिया है)- सब के जीवनाधार वायु के स्वामी परमेश्वर (मरुतः इन्द्रः) जिस अग्नि, सूर्य, वृष्टि आदि को देने वाला है (यं दुः)।-(दया.)

दुःस्वप्न - (१) स्वप्नों का बुरा प्रभाव।

'यच्च गोषु दुष्वप्न्यं'

ऋ. ८.४७.१४, आश्व.गृ.सू. ३.६.५

(२) बुरे विचारों से उत्पन्न बुरा प्रभाव

'असन्मंत्राद् दुष्वप्न्यात्'

अ. ४.९.६

द्रुह्- द्रुह् + क्विप्। द्रोही।

'दहा शसो रक्षसः पाह्यस्मान्
द्रुहो निदो मित्रमहो अवद्यात्'

ऋ. ४.४.१५, तै.सं. १.२.१४.६, मै.सं. ४.११.५, १७४.८, का.सं. ६.११.

दुहन्ता- दुहन्तौ, प्रपूरयन्तौ (दुहते हुए, प्रपूरित करते हुए)। दुह् + शतृ + औ = दुहन्तौ -दुहन्ता (वेद

में औङ् का आ) ।

द्रुहन्तर- (१) विनाश करने वाला ।
'परशुर्न द्रुहन्तरः'
ऋ. १.१२७.३, साम. २.११६५.
(२) वृक्षों को खूब काटने वाला (द्रु + हन्तरः) ।
(३) शत्रुओं को नष्ट करने वाला ।

द्रुह्यवः- (१) द्रोह करने वाले विरोधी (२) द्रुह्यु नामक एक वैदिक राजवंश ।
'निगव्यवोऽनवो द्रुह्यवश्च'
ऋ. ७.१८.१५

दुहा- (१) ब्रह्मानन्द, (२) योग-समाधि जन्य समता-रस, (३) वृष्टि का जल ।

दुहाना- दूध देनी वाली ।
'दुहाना धेनुः वृजनेषु कारवे'
ऋ. २.२.९

द्रुह्वा- (१) द्रोही ।
'आ जनाय द्रुह्वणे पार्थिवानि'
ऋ. ६.२२.८, अ. २०.३६.८
'स द्रुह्वणे मनुष्य ऊर्ध्वसानः'
ऋ. १०.९९.७
(२) काम क्रोधाति आभ्यन्तर शत्रु-।
'सचेतसौ द्रुह्वणो यौ नदेथे'
अ. ४.२९.१,२.
(३) द्रुह्वन्, द्रोहशील पुरुष ।

दुहितरा - (१) सूर्य के पुत्र पुत्री तुल्य दिन और रात्रि ।
'देवी दिवो दुहितरा सुशिल्पे'
ऋ. १०.७०.६

दुहिता- (१) आनन्द रस का दोहन करने । वालाज्योतिष्मती प्रज्ञा
'दिवो अदर्शि दुहिता'
ऋ. ४.५२.१, साम. २.१०७५
(२) उरुगूला नाम की सर्प जाति से उत्पन्न एकसर्प की जाति ।
'उरुगूला या दुहिता'
अ. ५.१३.८
(३) प्रकृति जिससे समस्त लोक दुहे जाते हैं ।
'त्वष्टा दुहित्रे वहतुं कृणोति'
ऋ. १०.१७.१, अ. ३.३१.५, अ. १८.१.५३, नि. १२.११.
(४) दुरेहिता (पृथिवी का एक नाम) । पृथ्वी द्युलोक से दूरी पर निहित है अतः अतः वह दुहिता कही गई है ।
'अत्रापिता दुहितुर्गर्भिमाधात्'
ऋ. १.१६४.३३, अ.९.१०.१२, नि. ४.२१.
इस अन्तरिक्ष (अत्र) द्युलोक नाम से प्रख्यात पर्जन्य अर्थात् मेघ (पिता) दूर निहित पृथ्वी पर (दुहितुः) सर्वोत्पादन समस्त वृष्टिजल (गर्भम्) बरसता है (आधात्) ।
(५) दूरे निहिता दुहितृ (पुत्री विवाह के बाद घर से दूर भेज दी जाती है) ।
(६) दुर्हिता- सा यस्मिन् कुले तत्र दुःखेन हिता भवति । वह जिस कुल में दी जाती है वहां दुःख से हिलती मिलती है ।
'जन्मतः स्वजन दुःख कारिका
सम्प्रदान समयेऽर्थहारिका
यौवनेऽपिबहुशोक कारिका
दारिका हृदय-दारिका पितुः'
(७) या दूरे हिता दूरे वर्तमान । सती पितुर्हिता भवति (जो दूर रहने पर पिता की हित कारिणी परन्तु निकट रहने पर दुःख दायिनी होती है)।
(८) पितुः सकाशात् नित्यं अर्थं दोग्धि (पिता से सदा धन दुहती है ।
(९) वस्तुतः 'दुह् + तृच् = दुहितृ' । अर्थ है - दूध दुहने वाला । पहले कन्या पिता की गाय दुहती थी अतः वह दुहिता कहलायी । आज भी सभी आर्य-भाषाओं में इसी अर्थ में 'दुहितृ-' शब्द का प्रयोग है 'यथा-दोख़तर-फारसी Daughter अंग्रेजी ।

दुहिताःनप्त्यः- दुहिता से उत्पन्न पुत्र जो दुहिता के पिता का नाती कहलाता है ।
'शासद्वह्निः दुहितुर्नप्त्यं गात्'
ऋ. ३.३१.१, ऐ.ब्रा. ६.१८.२, १९.४, गौ.ब्रा. २.५.१५, ६.१, नि. ३.४

दुहीयात् - पूरयतु, दरातु, दुग्धाम् (पूरा करे) । सायण ने इसका अर्थ 'सम्पादयति' (सम्पादन करता है) किया है, ।

द्रुहः- द्रोह करने वाली ।
'अप द्रुहस्तन्वं गूहमान'
ऋ. ७.१०४.१७, अ. ८.४.१७.

द्रुह्युः- (१) द्रुह्युओं का कुल , (२) द्रोही ।

'यद्वा तृक्षौ मघवन् द्रुह्यावा जने'
ऋ. ६.४६.८
(३) एक वैदिक राजवंश (४) परस्पर के द्रोही जन।
'यद् द्रुह्यव्यनवि तुर्वशे यदौ'
ऋ. ८.१०.५
(५) द्रोहकारी, (६) यदु, तुर्वश, अनु तथा पुरु के जैसा एक राजवंश, (७) पञ्चजनों में से एक। इनके पुरोहित भृगु थे। यदु, तुर्वश, द्रुह्यु, अनु और पुरु ये पञ्चजन थे और ये इन्द्र और अग्नि के भक्त थे। अनुओं, द्रुह्युओं और पुरोहित कुल वाले भृगुओं ने सुदास पर आक्रमण किया था जिस में हार कर भागते समय श्रुत और कवष जैसे द्रुह्युओं के नेता डूब गए। द्रुह्यु और अनु की भूमि परुष्णी (रावी) के पश्चिम वितस्ता (झेलम) तक फैली थी। सम्भवतः द्रुह्युओं के उत्तर में अनु और दक्षिण में तुर्वश रहते थे।

दुह्रे- दुहते हैं।
'नाशिरं दुह्रे न तपन्ति घर्मम्'
ऋ. ३.५३,१४, नि. ६.३२.
वे अनार्य न तो सोममिश्रण योग्य दूध दुहते हैं और न महावीर पात्र या अग्नि कुण्ड को (घर्मम्) तपाते ही हैं।

द्रुह्वन् - द्रोही।
'न द्रुह्वणो जनानाम्'
ऋ. १.२५.१४
जिस वरुण से मनुष्यों के द्रोही भी द्रोह नहीं कर पाते।

दूक्ष्ण - (१) कठोर, दुःखदायी।
'संस्पर्शेऽद्रूक्षणमस्तु ने'
अ. ८.२.१६

द्वर्यूघ्नी- दोहरी थन वाली गौ।
'विश्वा रूपाणि बिभ्रती द्वर्यूघ्नीः'
साम. १.६२६

दूडभ- (१) रोग शत्रु आदि से न मारे जाने योग्य, अजेय, (२) अग्निवत्, दूर तक चमकने वाला, (३) अग्नि, (४) प्रसिद्ध।
'दूडभो विशामतिथि र्विभावसुः'
ऋ. ३.२.२
अपराजित के अर्थ में-
'परि ते दूडभोरथः'
ऋ. ४.९.८, वाज.सं. ३.३६, वाज.सं.(का.) ३.३.२८, मै.सं. १.५.४, ७१.३, १.५.५, ७३.६, १.५.११, ७.९.१७ का.सं. ७.२,४.९, श.ब्रा. २.३.४.४०, आप.श्रौ.सू. ६.१७.१२.

दूडभासः- (१) दूर तक प्रकाश देने वाले, (२) दुर्दमन करने योग्य।
(३) अहिंसक (४) दूर दूर तक चमकने वाले। कीर्तिमान प्रतापी पुरुष
'ऋतावान् इषिरा दूडभासः'
ऋ. ३.५६.८
'इमे मित्रो वरुणो दूडभासः'
ऋ. ७.६०.६.

दूढ्य - (१) दुर्बुद्धि।
'दूढ्यः बहुवचन का रूप है। यास्क ने इसे एक वचन का रूप माना है।

दूढी- (१) दुर्धी, दुष्टद्धिवाला।
'एवैवापागपरे सन्तु दूढ्यः'
ऋ. १०.४४.७, अ. २०.९४.७
(२) शत्रु। निपातन से सिद्ध।
(३) पाप बुद्धि वाला।
'मा नः समस्य दूढ्यः परिद्वेषसो अंहतिः ऊर्मिर्न नावमा वधीत्'
ऋ. ८.७५.९
जिस प्रकार समुद्र या नदी की लहर नाव को पीड़ित करती है उसी तरह हमें सभी परिद्वेषी और पापबुद्धि वाले (दूढ्यः) का वध या उत्पात (अंहतिः) हमें चोट न पहुंचावे (मा अवधीत्)।
पुनः -
'न दूढ्ये अनुददासि वामम्'
ऋ. १.१९०.५
हे बृहस्पति, तू कुत्सित या पाप बुद्धि वाले को (दूढ्ये) संभजनीय धन (वामम्) उसके अनुकूल (अनु) नहीं देता (ददासि)।

दूणाशः- (१) कठिनता से नाश होने वाला, (२) सुदृढ़।
'आ दूणाशो भरा गयम्'
ऋ. ७.३२.७

दूणाशाः- ब.व.। कभी नष्ट न होने वाले-सूर्य, विद्युत् और अग्नि।
'त्रिरुत्तमा दूणशा रोचनानि'
ऋ. ३.५६.८

(२) स्त्री. (ए.व.) । कभी नष्ट न होने वाली ।
'दूणाशेयं दक्षिणा पार्थवानाम्'
ऋ. ६.२७.८

दूत – (१) जु (गत्यर्थक) + क्त = दूत (ज का द और 'दुतनिभ्यां दीर्घश्च' से दीर्घ) सहि गच्छति प्रेरितः (दूत प्रेरित होकर जाता है) । (२) द्रु (गत्यर्थक) + क्त = दूत (पृषोदरादिवत्) । (३) वार (वारण करना) + क्त = वारितः = दूतः । सहि वारयति अनर्थन् (यह अनर्थों से वारण करता है ।
अर्थ – (१) दूत ।
'श्रोता दूतस्य जग्मुषो नो अस्य'
ऋ. ७.३९.३, नि. १२.४३.
हे देवो, आप हमारे इस आपके निकट जाने वाले दूत रूप अग्नि का आह्वान् सुनें ।
(२) अग्नि का वाचक ।
'त्वं दूतः कविरसि प्रचेताः'
ऋ. १०.११०.१, अ. ५.१२.१, वाज.सं. २९.२५, मै.सं. ४.१३.३, २०१.९, का.सं. १६.२०, तै.ब्रा. ३.६.३.१, नि. ८.५.
(३) देवताओं को हवि पहुंचाने वाला अग्नि–सा. (४) अनर्ध– निवारक –दया. ।
'दूत ईयसे प्रदिव उराणः
विदुष्टरो दिव आरोधनानि'
ऋ. ४.७.८, नि. ६.१७.
हे अग्नि (दूत), पुराण एवं अल्प हवि को बहुत करने वाला (प्रदिवः उराणः) विद्वत्तर (विदुष्टरः) स्वर्ग के मार्गों से (दिव आरोधनानि) देवताओं को हवि देने जाता है (इयसे) ।
अनर्थ निवारक (दूतः) सनातन (प्रदिवः) विश्वकर्मा (उराणः) एवं विद्वानों को तारने वाले आप (विदुष्टरः) द्युलोक के नियम में रखने वाले कर्मों को (दिवः आराधनानि) प्राप्त किए ही (ईयसे) ।
(घ) 'ज्वल' और 'रि' धातु से क्त प्रत्यय कर भी 'दूत' शब्द की व्युत्पत्ति की गई है ।
'वाहिष्ठो वां हवानां स्तोमो दूतो हुवन्नरा
युवाभ्यां भूत्वश्विना'
ऋ. ८.२६.१६
हे सबके नेताओ, अश्विनी द्वय, स्तोताओं के स्तोत्रों में जो स्तोमविशेष है (हवानां स्तोमा) वही आह्वाताओं में उत्तम (वाहिष्ठः) दूत तुम दोनों को बुलाता हुआ (हुवत्) तुम्हें प्रियकर हो (युवाभ्यां भूत्) ।

दूत्यम्– (१) दूत का कर्म –सा. (२) अनर्थ निवारक कर्म–दया. ।
'वेरध्वरस्य दूत्यानि विद्वान्'
ऋ. ४.७.८.
हे अग्नि, तू अभीष्ट फलदायक यज्ञ के दूतकर्मों को जानता हुआ ।
हे ज्ञानस्वरूप परमेश्वर, आप अनर्थ निवारक कर्मों को जानते हैं ।

दून – जला भुना ।
'दूना अदूना अरसा अभूवन्'
अ. २.३१.३

दुर्भूत– दुष्ट या दुःखदायी पदार्थ ।
'रक्षो यत् सर्वं दुर्भूतम्'
अ. ८.२.१२

दूर – (क) द्रुतं भवति (मार्ग की महत्ता से भागता सा दीख पड़ता है) (ख) दुरवम्– दुःखेन तत् ईयते (वह दुःख से चला जाता है) (ग) (द्रु + क्त = द्रुत = दूर (घ) दूर् + र + एरच (कर्मवाच्य में)= दुरय = दूर , ।
अर्थ– (१) दूर ।
'यद्दूरे सन् इहाभवः'
ऋ. ३.९.२, साम. १.५३, नि. ४.१४,
जो तू (अग्नि) दूर होता हुआ भी प्राप्त होता है । पुनः,

दूरक – दूर ।
'यदन्ति यच्च दूरके'
ऋ. ९.६७.२१, ऐ.आ. ३.२.४.८, आप.ध.सू. १.१.२.२.

दूरश्रवाः– (१) दूरतक परम पाद तक श्रवण करने वाला, (२) बहुश्रुत, ।
'दूरश्रवसे वह'
अ. २०.१३५.११

दूर्श – (१) ऋक्षा या व्याघ्र छाला ।
'दूर्शेभिरजिनैरुत'
अ. ४.७.६
(२) दुःखदायी जन्तु ।
'कृत्ती दूर्शानि बिभ्रति'
अ. ८.६.११.

दूरात् दवीयः – दूर से दूर । दूर + ईयसु = दवीयस् । अर्थ है- दूरतर ।

दूर्वा- (२) दूब नामक घास ।
'अयं वाव माऽधूर्वीदिति
यदब्रवीदधूर्वीन्मेति तस्माद्धूर्वा
धूर्वाहवै तां दूर्वेत्याचक्षते परोऽक्षम्'
श.ब्रा. ७.४.२.१२
'एवा नो दूर्वे प्र तनु'
वाज.सं. १३.२०, तै.सं. ४.२.९.२, ५.२.८.३, मै.सं. २.७.१५, ९८.१४, का.सं. १६.१६, श.ब्रा. ७.४.२.१४, तै.आ. १०.१.८, महा.ना.उप. ४.३.

दूरे अन्ते – द्वि.व. . (१) द्यावापृथिवी (२) मतापिता का विशेषण (३) दूर और समीप सर्वत्र विद्यमान ।
'उर्वीपृथ्वी बहुले दूरे अन्ते'
ऋ. १.१८५.७, मै.सं. ४.१४.७, २२५.१, तै.ब्रा. २.८.४.८.
(४) जिसके अन्त दूर हैं- अविनाशिनी-द्यौ और पृथिवी ।
(५) दूर या समीप या विमिश्रीभूत-सूर्य और पृथ्वी-दया.
'समान्या वियुते दूरे अन्ते'
ऋ. ३.५४.७, नि. ४.२५.

दूरेअर्थः- (१) दूर दूर तक प्रकाश फैलाने वाला सूर्य (२) दूर देश से भी धन प्राप्त करने वाला, (३) दूर देश में जाने वाला ।
'दूरे अर्थस्तरणिः भ्राजमानः'
ऋ. ७.६३.४, का.सं. १०.१३, तै.ब्रा. २.८.७.३, आप.श्रौ.सू. १६.२.१.

दूर उपब्दः- दूरे उपब्दिः वाक् येषाम् (दूर दूर देश तक अपनी वाणी पहुंचाने वाला)
'दूर उपब्दो वृषणो नृषाचः'
ऋ. ७.२१.२

दूरेचित् – दूर पर भी । चित् शब्द 'भी' के अर्थ में प्रयुक्त है ।
'दूरे चित् सन् तड़िदिवातिरोचसे'
ऋ. १.९४.७, नि. ३.११.
हे अग्नि, तू दूर रहता हुआ भी विद्युत् की तरह निकट ही अतिदीप्त जान पड़ता है ।

दूरेदृश्- (१) दूर से देखने योग्य अग्नि, (२) दूरदर्शी ।
'दूरे दृशं गृहपति मथर्युम्'
ऋ.७.१.१, साम. १.७२, २.७२३, का.सं. ३४.१९, ३९.१५, आप.श्रौ. सू. १४.१६.१, नि. ५.१०.
'दूरेदृशो ये दिव्या इव स्तृभिः'
ऋ. १.१६६.११
(३) दूर ही से दीख पड़ने वाला, प्रकाशमान,

दूरेभाः- जिसकी दीप्ति दूर तक हो-सूर्य, अग्नि
'पशुर्नशिश्वा विभुदूरेभाः'
ऋ. १.६५.१०
बछड़े के साथ गौ के समान प्रेमवान् होकर रहे, दूर दूर तक दीप्ति फैलाने वाले सूर्य के समान तेजस्वी हो ।

दूरेवधः – (१) दूरस्थ शत्रुओं को मारने वाला ।
'नमोऽग्रेवधाय च दूरेवधाय च'
वाज.सं. १६.४०, तै.सं. ४.५.८.१, मै.सं. २.९.७, १२६.३, का. सं. १७.१५.

दूरोहण – (१) आदित्य, (२) मोहन विद्या
'दूरोहणं छन्दः'
वाज.सं. १५.५.

दूलभ, दूडभ – दुःख से दंभित करने योग्य । दुरोदाश नाश दभध्येषूत्वं व्यमुत्तररपदादेश्च (पा. ६.३.१०९) से दुर् के र् का उ और द का ड ।
'युवं दक्षं धृतव्रत
मित्रा वरुण दूडभम्'
ऋ. १.१५.६
हे व्रतों नियमों को धारण करने वाला और उन्हें स्थिर रखने वाले, सबके स्नेही एवं दुष्टों के वारक सूर्य और चन्द्र, या प्राण और अपान, या राजा और मंत्री, या गृहस्थ और गृहपत्नी, सत्य धारक बल से (ऋतुना) शत्रुओं ने नाश न होने वाले बल को (दूडभम्) और परस्पर संग से उत्पन्न प्रजाजनन पालन व्यवहार को व्याप्त होकर रहो

दूषि – (सं). विनाशक ।
'दूष्या दूषिरसि'
अ. २.११.१, कौ.सू. ३९.१,.७, १३.

दूषी- (१) शरीर के रक्त आदि में विकार उत्पन्न करने वाला विष ।
'दूष्या कृतस्य ब्रह्मणा'
अ. १.२३.४
(२) प्रजा में द्रोह करने वाली शत्रु-मन्त्रणा ।

दूषीका- (१) शरीर में विष दोष उत्पन्न करने वाली व्याधि ।
'कुम्भीका दूषीकाः पीयकान्'
अ. १६.६.८
(२) नेत्र में उत्पन्न मल कींची ।
'ह्रादुनी दूर्षिकाभिः'
वाज.सं. २५.९, मै.सं. ३.१५.८, १८०.२.

दृढ़ - (१) दृह् + क्त = दृढ़ ।
'त्वया दृढानि सुक्रतो रजांसि'
ऋ. ६.३०.३.
हे इन्द्र, तूने लोकों को दृढ़ किया ।
(२) सत्य ।
'एको दृढमवदो वृत्रहासन्'
ऋ. ३.३०.५
अकेले तूने वृत्र का वध कर देवों को अभयदान दिया यह सत्य ही है (दृढ़म्)

दृढ़पुर् - (१) ब्रह्मलोक, (२) इन्द्रलोक या परलोक में दृढ़स्थिति ।
'आ दृढां पुरं विविशुः'
ऋ. ५.१९.२.
वे ईश्वर-चिन्तक या यज्ञशील पुरुष ब्रह्मलोक की प्राप्ति करने या ऐहिक या पारलौकिक स्थिति दृढ़ करते हैं ।

दृतिः - या दृणाति । (१) जलपूर्ण भाग, (२) मशक, (३) शत्रु-बल विदारक सैन्य, (४) भयप्रद शत्रुबल ।
'दृतिं सुकर्षविषितं न्यञ्चम्'
ऋ. ५.८३.७, तै.सं. ३.१.११.१, का.सं. ११.१३.
(५) समस्त दुःखों और अज्ञानों का विदारक परमेश्वर (६) महावीर राजा ।
'दृते दृंह मा'
वाज.सं. ३६.१८,१९.
(७) कुप्पा, मशक, (८) एक चर्मवाद्य जिसे हवा से पुलाया जाता है ।
'दृतिर्न ध्मातो अद्रिवः'
ऋ. ७.८९.२
(९) मेघ ।
'ईशानो विष्या दृतिम्'
अ. ७.१८.१, तै.सं. २.४.८.२, ३.५.५.२, मै.सं. १.३.२६, ३९.१२, का.सं. ११.९.
(१०) पात्रं, (११) औषधि या सुरा बनाने का पात्र ।
'दृतिं सुरावतो गृहे'
ऋ. १.१९१.१०
(११) दांत ।

दृती - द्वि.व. । (१) दो दांत (२) बन्धन काटने वाले ज्ञान और कर्म ।
'द्वौ च हस्तिनोदृतीः'
अ. २०.१३१.२०

दृभीक - (१) प्रजा को त्रास देने वाला, (२) भयंकर -दया.
'अध्वर्यवो यो दृभीकं जघान'
ऋ. २.१४.३, मै.सं. ४.१४.५, २२२.७

दृश्- दृश् + क्विप् = दृश् । अर्थ-(१) दर्शन ।
'दृशे विश्वाय सूर्यम्'
ऋ. १.५०.१, अ. १३.२.१६, २०.४७.१३, साम. १.३१. वाज.सं. ७.४१.८.४१, ३३.३१, तै.सं. १.२.८.२, ४.४३.१, का.सं. ४.९, ३०.५, मै.सं. १.३.३७.४३.७, श.ब्रा. ४.३.३.९, नि. १२.१५.
रश्मियां जिस सूर्य के सभी प्राणियों के दर्शन के लिये उदित करती हैं ।

दृशतिः- (१) दर्शन, सत्यज्ञान, (२) दृष्टि
'सूरो न यस्य दृशतिररेपाः'
ऋ. ६.३.३.

दृषद्वती- (१) प्रस्तरों से युक्त शिला पर्वत वाली, (२) अज्ञान- नाशक निष्ठ पुरुषों में स्थित, (३) शस्त्रास्त्र से युक्त ।
'दृषद्वत्यां मानुष आपयायाम्'
ऋ. ३.२३.४

दृशप्राचीःकरोमि- (१) दसों अंगुलियों को जोड़कर नमस्करार्थ आगे करता हूँ । (२) दसों दिशाओं को प्राची दिशा के समान आगे बढ़ने या उदय होने के लिए करता हूँ ।
'दशाहं प्राचीस्तदृतं वदामि'
ऋ. १०.३४.१२

दृशान- (१) दीप्ति से दिखाई देने वाला -अग्नि, (२) द्रष्टा जीवात्मा ।
'व्यचिष्टमन्नैरभसं दृशानम्'
ऋ. २.१०.४, वाज.सं. ११.२३, तै.सं. ४.१.२.५, मै.सं. २.७.२, ७६.४, का.सं. १६.२, श.ब्रा. ६.३.३.१९.
(२) सब पदार्थों को दर्शाने वाला ।

'दशानो रुक्म उर्व्या व्यद्यौत्'
ऋ. १०.४५.८, वाज.सं. १२१

दृशाना - देखती हुई।
'सूर्यस चेति रश्मिभिर्दृशाना'
ऋ. १.९२.१२

दृशि - (१) दर्शन, देखना, साक्षात्कार।
'ध्रुवं ज्योति र्निहितं दृशये कम्'
ऋ. ६.९.५
'अभि मा वपु र्दृशये निनीयात्'
ऋ. ७.८८.२
'आयुचक्षु र्दृशये सूर्याय'
अ. १८.२.४६
(२) दिखलाना।
'नृचक्षसो दृशये कर्णयोनयः'
ऋ. २.२४.८

दृशीक - (क) दृश् + कीनन् = दृशीक -सा.
(ख) दृश् + ईकन् = दृशीक अर्थ-
(१) दर्शनीय।
'स्तोमं रुद्राय दृशीकम्'
ऋ. १.२७.१०, साम. १.१५,२.१०१३, नि. १०.८.
रुद्र के लिए दर्शनीय स्तोत्र कर

दृशीका - दर्शनशक्ति।
'कीदृङ् इन्द्रः सरमे का दृशीका'
ऋ. १०.१०८.३

दृशे - अभिविपश्यति (चारों ओर से स्पष्ट रूप से देखता है)।

दृषद् - (१) मेघ, (२) शिला
'दृषदं जिह्वावधीत्'
ऋ. ८.७२.४
(३) सिलवट या चक्की का पाट।
'दृषदेव प्रमृण रक्ष इन्द्र'
ऋ. ७.१०४.२२
(४) विदारण करने वाली।
'इन्द्रस्या या महीदृषत्'
अ. २.३१.१.
चक्की के अर्थ में -
'दृषदा खल्वां इव'
अ. २.३१.१. अ. ५.२३.८.

दृष्टवीर्य (१) अपने बल को ठीक प्रकार से युद्ध आदि में दिखला कर कीर्ति प्राप्त करने वाला, (२) सत्य पराक्रमी।
'ये त्वा निदे दधिरे दृष्टवीर्यम्'
ऋ. २.२३.१४

दृह् - धा.। दृढ़ करना, स्थापित करना।
'अस्कम्भेन सविता द्यामदृंहत्'
ऋ. १०.१४९.१, नि. १०३.
सविता ने बिना खम्भे के स्थित अन्तरिक्ष में द्युलोक को स्थापित किया।

दृंहिता- (१) दृढ़ करने वाला, (२) वृद्धि करने वाला, (३) शत्रुहन्ता-इन्द्र, परमेश्वर।
'इन्द्र एषां दृंहिता माहिनावान्'
ऋ. ३.३९.४

द्वे क्रमणे- (१) स्वर्दृश् अर्थात् सूर्य के दो स्थान-पृथिवी और अन्तरिक्ष, (२) प्रजा, सन्तान आदि के सुख मय मार्ग् को देखने वाले ब्रह्मचारी और राजा के दो क्रमण, गमन, आश्रय या आचरण,।
'द्वे इदस्य क्रमणे स्वर्दृशः
अभिख्याय मर्त्यो भुरण्यति।'
ऋ. १.१५५.५

देभुः- दभ्नुवन्ति, अभिभवितुं शक्नुवन्ति (जीतते हैं, दवाते हैं)। 'दभ्' धातु का लट् के अर्थ में लिट् का प्रयोग।

द्वे यम्या- मातृगर्भ में स्थित वीर्य कीट और डिम्बकोश जो एक दूसके को बांधने वाले हैं।
'द्वे यदीं बिभृते मातुरन्ये
इहेह जाते यम्या सबन्धू'
ऋ. ५.४७.५

द्वे रुपे- (१) योगी के दो रूप (२) सूर्य के दो रूप, (३) असम्प्रज्ञात औकर सम्प्रज्ञात निर्बीज और सबीज समाधि।
'द्वे रूपे कृणुते रोचमानः'
अ. १३.२.२८, ४२.

देवः - (१) प्रकाश देने वाला सूर्य, (२) जल देने वाला मेघ।
'यो विश्वस्य जगतो देव ईशे'
ऋ. ७.१०१.२
(३) दानात्, दीयनात् द्योतनात् (दान से प्रकाशमान होने से या ज्योतिर्मय होने से 'देव' बना)।
द्युस्थानो भवति (द्युलोक में रहने वाला देव है)
दिव + अच् = देव।

(४) सूर्य-रश्मि, (५) दाता, (६) प्रदीपक, (७) द्योतक, (८) द्युस्थानीय पदार्थ, (९) देवलोक में विरचने वाला मुक्तात्मा ।
'देवो देवान् क्रतुना पर्यभूषत्'
ऋ. २.१२.१, अ. २०.३४.१, तै.सं. १.७.१३.२, मै.सं. ४.१२.३. १८६.४, का.सं. ८.१६, नि. १०.१०.
प्रकाशमान परमात्मा ने सूर्य, चन्द्र आदि देवताओं को अपने अपने कर्म से अलंकृत किया । (दया.)
जिस देव ने वृत्रवध जैसे कर्म द्वारा यज्ञ से देवताओं को अपने अधीन किया ।
(९) आर्यजन । जिस अन्न को देवता लोक आर्यजन्य खांते या प्राप्त करते हैं ।
(१०) किरण ।
'चित्रं देवानामुदगादनीकम्'
ऋ. १.११५.१, अ. १३.२.३५,२०.१०७.१४, आ.सं. ५.३. वाज.सं. ७.४२.१३.४६.
किरणों का विचित्र समूह उदित हुआ ।
'देवानां भद्रा सुमतिः ऋजूयताम्'
ऋ. १.८९.२, वाज.सं. २५.१५, मै.सं. ४.१४.२, २१७.७, नि. १२.३९.
सूर्य-रश्मियों या सत्यमार्ग-गामी देवों की कल्याण कारिणी सुन्दर मति हमारे प्रति हो ।
(११) इन्द्रिय । इन्द्रिय भी द्योतनात्मक है ।
' अव देवैर्देवकृतमेनोऽयासिषम्'
वाज.सं. ३.४८,८.२७.श.ब्रा. २.५.२, ४७, ४.४.५, २२, ला.श्रौ.सू. २.१२.९.
मैं इन्द्रियों के द्वारा किए कायिक, वाचिक पाप दूर करूं ।
(१२) द्युलोक वासी देवता, (१३) इन्द्र का विशेषण, (१४) दैवीशक्तिवाला (१५) ब्राह्मण, (१६) राजा, (१७) राजा को सम्बोधित करने में एक उपाधि (१८) इष्ट देव का वाचक जैसे मातृ देव, पितृदेव, आचार्य देव । फारसी में देव का अर्थ राक्षस माना गया है । (१८) विद्वान् ।

देवः अग्निः- (१) तीन प्रकार से अग्नि-गार्हपत्य, दक्षिणाग्नि और आहवनीय मे तीसरा अग्नि देवः अग्नि है ।
'वनस्पतिः शमिता देवो अग्निः
स्वदन्तु हव्यं मधुना घृतेन'
ऋ. १०.११०.१०, अ. ५.१२.१०, वाज.सं. २९.३५, मै.सं. ४.१३.३, २०२.१४, का.सं. १६.२०, तै.ब्रा. ३.६.३.४, नि. ८.१७.
गार्हपत्य अग्नि (वनस्पतिः) दक्षिणाग्नि (शमिता) और आहवनीय अग्नि (देवःअग्निः) मिष्ट और घृत से (मधुना घृतेन) हव्य का आस्वादन करावें (हव्यं स्वदन्तु) ।

देवकः - (१) विद्वान् जन, (१) क्षुद्र व्यवहारी, (३) जुआखोर ।
'देवेकं चिन्मान्यमानं जघन्थ'
ऋ. ७.१८.२०

देवकामः - (१) देव, विद्वान्, महात्मा तथा देवतुल्य पुरुषों के निमित्त कार्य करने वाला, (२) देवों, विद्वानों या उत्तम गुणों की कामना वाला ।
'यो देव कामो न धन रुणद्धि'
ऋ. १०.४२,९. अ. ७.५०.६, २०.८९.९.
'श्रुष्टी वीरो जायते देवकामः'
ऋ. २.३.९, तै.सं. ३.१.११.२, मै.सं. ४.१४.८, २२७.१.

देवक्षत्र - (१) प्रकाश का धनी सूर्य, (२) योद्धागणों के बल से सम्पन्न सेनापति ।
'देवक्षत्रे रुशद्रवि'
ऋ. ५.६४.७

देवकिल्विष - (१) दैवीरोग, (२) इन्द्रिय-सम्बन्धी रोग ।
'सर्वस्माद् देवकिल्विषात्'
ऋ. १०.९६.१६, वाज.सं. १२.९०, मै.सं. ३.११.१०, १५७.९, ला.श्रौ.सू. २.२.२.११, आप.श्रौ.सू. ७.२१.६.
(२) देवता, राजा, विद्वान् या अधिकारी गण के प्रति किया गया अपराध ।
'विश्वस्माद् देवकिल्विषात्'
अ. ६.९६.२, ७.११२.२, ८.७.२८, मै.सं. ३.११.१०, १५७.९.
(३) देव, ईश्वर द्वारा प्राप्त पाप कर्मों के फल स्वरूप कष्ट ।

देवकृत - (१) इन्द्रियों के द्वारा किया गया देव हवि के प्रति पाप -सा. (२) इन्द्रियों के द्वारा किया गया कायिक, वाचिक एवं मानसिक पाप । (दया.)
'अव देवैर्देवकृतमेनोऽयासिषम'

वाज.सं. ३.४८
मैं इन्द्रियों के द्वारा किए गए देव हवि के प्रति या कायिक, वाचिक एवं मानसिक पाप दूर करूँ (अपासिषम्) ।

देवकृत योनि - (१) परमेश्वर का बनाया स्थान-समुद्र, (२) मेघ से बरसा या सूर्य से उत्पादित जल, (३) परमेश्वर और विद्वान् द्वारा या प्रिय कामनायोग्य पतिद्वारा बनाया गृह
'अनुयोनिं देवकृतं चरन्तीः'
ऋ. ३.३३.४

देवकृत ब्रह्म - परमेश्वर के दिव्य पदार्थ पृथिवी आदि या जीवों के लिए बनाया हुआ ब्रह्माण्ड ।
'यो ब्राह्मणो देवकृतस्य राजा'
ऋ. ७.९७.३

देवकोशः- इन्द्रियों का मूल आवरण सिर ।
'देवकोशः समुब्जितः'
अ. १०.२.२७,

देवगोपा- (१) विद्वानों, व्यवहारज्ञों, विजिगीषुओं शुभउत्तम गुणों और इन्द्रियों का पालक, (२) देव की गौओं का पालक ।
'अया धिया स्याम देवगोपाः'
ऋ. ५.४५.११
(३) देवता या विद्वानों की रक्षा में रहने वाला ।
'मदन्ति देव गोपाः'
ऋ. ८.४६.३२
(४) मेघ द्वारा रक्षित ।
'सुपिप्पलाओषधीर्देवगोपाः'
ऋ. ७.१०१.५, का.सं. २०.१५, तै.आ. १.२९.१.
(५) राजा द्वारा परिपालित ।
'य उदृचीन्द्र देवगोपाः सखायः'
ऋ. १.५३.११, अ. २०.२१.११
(६) देवी च असौ गोप्त्री । (देने वाली तथा रक्षा करने वाली) (७) देवताओं की रक्षा करने वाली (देवान् गोपायतुः)।
(८) देवाएनां गोपायतु (देवता इनकी रक्षा करे)
(९) सुख प्रदाता, परमरक्षक, यज्ञ कर्त्तादेव जनों से रक्षणीय मेघ का विशेषण ।
'स्वस्तिरिद्धि प्रपथश्रेष्ठा
रेक्ण स्वत्यभि या वाममेति ।
सा नो अमा अरणे निपातु
स्वावेशा भवतु देवगोपा'
ऋ. १०.६३.१६, नि. ११.४६.
स्वस्ति ही प्रकृष्ट पथ या अन्तरिक्ष में श्रेष्ठ देवता है (प्रपथे श्रेष्ठा) वह धन वाली या जल से धन वाली है (रेक्णस्वती) जो हमें स्पृहणीय पदार्थों या जलों को देती है- (वामम् अभ्येति) वह स्वति ही हमें गृह में (अमा) तथा अरण्य में (अरणे) रक्षा करे (निपातु) तथा वह रक्षिका देवी (देवगोपा) सुखपूर्वक उपचरण करने योग्य हो (स्वावेशा भवतु) या सुखपूर्वक उपचरणीय वह (स्वावेक्षा) देवों रक्षा करें (देवगोपा भवतु) ।
अन्य अर्थ - जो प्रशस्त जल को धारण करता है (या वामम् अभ्येति) वह अन्तरिक्षस्थ कल्याणकारी रूप ही (प्रपथे स्वस्ति इत् हि) श्रेष्ठ धनवान् हो (श्रेष्ठारेक्णस्वती) वह हमारे घर में (सनः अमा) और वह अरण्य में (सा उ अरणे) रक्षा करे (पातु), सुखप्रदाता, भूमिरक्षक या देवगायों का रक्षक या यज्ञ कर्त्ता देवगणों से रक्षणीय (देवगोपा) मेघ हमारा उत्तम निवासक हो ।
(स्वावेशा भवतु) ।
(१०) जिसके देवता रक्षक हों या जो देवों के रक्षक हो, (११) विद्वानों से सुरक्षित ।
'य उद्दृचीन्द्र देवगोपाः सखायः'

देवजन- (१) विषवैद्य (२) सर्पों का नियन्त्रण करने वाला ।
'नमो देव जनेभ्यः'
अ. ६.५६.१,२.

देवजाः षट् ऋषयः- (१) देव अर्थात् आत्मा से उत्पन्न छः प्राण-कान, आंख और नाक के दो दो जोड़े ।
'षडिद् यमा ऋषयो देवजा इति'
ऋ. १.१६४.१५, अ. ९.९.१६, तै.आ. १.३.१, नि. १४.१९.
(२) सूर्य से उत्पन्न ऋतु (३) शिरोगत सात प्राण (४) देवों, विद्वानों द्वारा उत्पन्न ऋषि ।
'महां ऋषि र्देवजा देवजूतः'
ऋ. ३.५३.९

देवजात - (१) विद्वान् या विजय शील पुरुषों में प्रसिद्ध, (२) इन्द्रियों और सूर्यादि में प्रकट शक्तिदाता आत्मा या परमात्मा ।

'यद्वाजिनो देवजातस्य सप्तेः
प्रवक्ष्यामो विदथे वीर्याणि'
ऋ. १.१६२.१, वाज.सं. २५.२४, तै.सं. ४.६.८.१, मै.सं. ३.१६.१ , १८१.८, का.सं.(अश्व.) ६.४, नि. ९.३.
(३) देव + जन + क्त = देवजात। देवैः वसुभिः जनितः ('वसु नामक देवों से उत्पादित,) (४) सायण ने 'बहुदेवतास्वरूपेण उत्पन्नः' ऐसा अर्थ किया है, (५) श्रुति में 'उशा वा अश्वस्य मेध्यस्य शिरः (उषा मेध्य अश्व का सिर है)- ऐसा कहा है (६) गान्धर्व कुल में उत्पन्न (७) विजिगीषु योद्धाओं के साथ रहने वाला अश्व।

देवजामिः- (१) मेघ से उत्पन्न, (२) व्यवहारवान् या विजयेषु पुरुष में रहने वाला।
'अयामि घोष इन्द्र देवजामिः'
ऋ. ७.२३.२
(३) ज्ञान को उत्पन्न करने वाली देव अर्थात् इन्द्रियगण की सूक्ष्म शक्ति, (४) मस्तिष्क में आश्रित ज्ञानतन्तु जिससे स्वप्न का उदय होता है।
'देवजामीनां पुत्रोऽसि यमस्य करणः'
अ. ६.४६.२, १६.५.८.
(४) विद्वान्, देव, दानशील समस्त दिव्य जैसे वायु जल, अग्नि आदि पदार्थों का।
'अयामि घोष इन्द्र देवजामिः'
ऋ. ७.२३.२, अ. २०.१२.२.

देवजामीनां पुत्रः- (१) इन्द्रिय गतप्राणों के भीतर विद्यमान् दोषों से उत्पन्न स्वप्न। (२) ज्ञान को उत्पन्न करने वाली इन्द्रियों की सूक्ष्म शक्तियों का ज्ञान तन्तुओं के आश्रय मस्तिष्क का पुत्र-स्वप्न।

देवजुष्टः- (१) देवों से आसेवित अग्नि या परमात्मा। (२) विद्वत्सेवित।
'यो होतासीत् प्रथमो देवजुष्टः'
ऋ. १०.८८.४.
जो वैश्वानर अग्नि होता देवों में प्रथम तथा देवों से आसेवित हुए।

देवजुष्टागीः- देवों या विद्वानों के हृदय को प्रिय लगने वाली वाणी।
'देवजुष्टोच्यते भामिनेगीः'
ऋ. १.७७.१
देवों या विद्वानों के हृदय में प्रिय लगने वाली कौन सी दुष्टों के प्रति क्रोध करने वाले प्रभु को कही जाय?

देवजूतः- देवताओं के साथ या युक्त।
(२) देवैः गतम् परत्वेन ज्ञातम् (देवों से श्रेष्ठ समझा गया) (३) देवैः समानप्रीतः (देवों के समान प्रिय) (४) देव + जु (गमनार्थक) + क्त = देवजूतः(दीर्घ आर्ष है)
'जु' गत्यर्थक होने से ज्ञानार्थक भी है।

देवतम- सबसे अधिक तेजस्वी।
'तद्देवानां देवतमाय कर्त्वम्'
ऋ. २.२४.३

देवत्त- देव या ईश्वर का दिया हुआ।
'देवत्तं ब्रह्म गायत'
ऋ. १.३७.४, ८.३२.२७.

देवत्वम्- देवता होने का भाव।
'तत सूर्यस्य देवत्वम्
ऋ. १.११५.४, अ. २०.१२३.१, वाज.सं. ३३.३७, मै.सं. ४.१०.२, १४७.१, तै.ब्रा. २.८.७.१, वै.सू. ३३.६. नि. ४.११.

देवत्तं ब्रह्म- विद्वानों के द्वारा गुरु परम्परा से प्राप्त या प्रभु से दिया वेदज्ञान।
'देवत्तं ब्रह्म गायत'
ऋ. १.३७.४ ८.३२.२७

देवता- (१) सबका प्रकाशक और प्रकाश स्वरूप परमेश्वर।
'बृहस्पति र्देवता तस्य सम्राट्'
अ. ४.१.५, तै.सं. २.३.१४.६, का.सं. १०.१३, आश्व.श्रौ.सू. ४.६.३.
(२) देव। यो देवः सा देवता' (जो देव है वही देवता है)। देव + ताल् (स्व अर्थ में) = देवता,।

देवताति- (१) दिव्यगुणों की प्राप्ति (२) देवों या विद्वानों का उपकार।
'इन्द्रमिद् देवतातये'
ऋ. ८.३.५, अ. २०.११८.३, साम. १.२४९, २.९३७, ऐ.ब्रा. ५.१२.१७, कौ.ब्रा. २२.८, आश्व.श्रौ.सू. ७.३.१९, शां.श्रौ.सू. १०.५.१८, वै.सू. ४१.३, ला.श्रौ.सू. ४.६.२३, साम वि ब्रा. ३.४.८.

(३) दिव्यन्ति स्तुवन्ति अत्र देवताः देवःयज्ञः (यज्ञ जहां देवताओं की स्तुति की जाती है) । 'देव एव देवतातिः' (देव ही देवताति है) । देव + तातिल = देवताति ।

देवताता- 'देवताति' के सप्तमी एक वचन में 'देवताता' होता है अर्थ है- यज्ञ में ।

'शं नो भवन्तु वाजिनो हवेषु
देवताता मितद्रवः स्वर्काः ।
जम्भयन्तोऽहिं वृकं रक्षांसि
स नेम्यस्मद् युयमन्नमीवाः '

ऋ. ७.३८.७, वाज.सं. ९.१६,२१.१०, तै.सं. १.७.८.२, मै.सं. १.११.२, १६२.१०, का.सं. १३.१४. श.ब्रा. ५.१.५.२२, नि. १२.४४.

इस यज्ञ में (देवताता) आह्वानों के किए जाने पर या स्तोत्रों के किए जाने पर (हवेषु) मितमार्ग वाले या शोभनगति वाले (मितद्रवः) शोभन अन्न वाले, सुन्दर अर्चावाले या शोभन अर्चि या दीप्तिवाले (स्वर्चाः) वाजि नामक देवता (वाजिनः) हमारे कल्याण करने वाले हों (नः शंभवन्तु) तथा आकर हनन करने वाले शत्रु या सर्प को (अहिम्), चोर को (वृकम्) तथा राक्षसों को (रक्षांसि) मारते हुए (जम्भयन्तः) पुरातन रोगों का (सनेमिअमीवाः) हमसे दूर कर (युयवन्) या रोगों को हम से शीघ्र (सनेमि) दूर करें ।

देवत्या- देव, प्रकाश स्वरूप सूर्य की ।

'या रोहिणी र्देवत्याः '

अ. १.२२.३

देवत्रा- देवान् प्रति (देवों के प्रति) देव + त्रा = देवत्रा । अर्थ-देवताओं की ओर ।

'देवत्रा च कृणुह्यध्वरं नः '

ऋ. १०.११०.२, अ. ५.१२.२, वाज.सं. २९.२६, मै.सं. ४.१३, ३.२०१.११, का.सं. १६.२०. तै.ब्रा. ३.६.३.१, नि. ८.६.

हमारे अहिंसित यज्ञों को देवताओं की ओर प्रवृत्त कर ।

देवत्रादेवः- (१) प्रकाशमान पदार्थों में भी सबसे प्रकाशमान (२) दानशीलों में सब से अधिक दानशील (३) विजिगीषुओं में सबसे अधिक विजिगीषु, (४) सूर्य ।

'देवं देवत्रा सूर्यम् '

ऋ. १.५०.१०, अ. ७.५३.७, वाज.सं. २०.२१, २७.१०,३५, १४,३८.२४.

देवद्रीच् - (१) देव, विद्वान् या विजयशील पुरुषों द्वारा प्राप्त होने वाला ।

'देवद्रीचा मनसा दीध्यानः '

ऋ. १.१६३.१२, वाज.सं. २९.२३, तै.सं. ४.६.७.५, का.सं. (अश्व.) ६.३.

(२) देवताओं या विद्वानों को प्राप्त होने योग्य (३) देव + अञ्च् + क्विप् = देवद्रीच् (टि का अद्रि आदेश) । देवान् विदुषः अञ्चति सत्करोति यः सः (देवताओं या विद्वानों का पूजक)

'यो अग्नीषोमा हविषा सपर्यात्
देवद्रीचा मनसा यो घृतेन '

ऋ. १.९३.८, तै.ब्रा. २.८.७.९.

जो हवि से अग्नि और वायु दोनों की परिचर्या करता है (सपर्यात्) और जो परमेश्वर और विद्वानों को सत्कार करने के चित्त से घृत से सत्कार करता है ।

देवद्रीची- (१) दानशील, स्वामि जनों को अच्छी लगने वाली शिल्पक्रिया, (२) ईश्वरोपासना युक्त वेदवाणी, (३) यज्ञक्रिया, (४) स्रुवा, (५) विद्वानों की सत्कार क्रिया ।

'देवद्रीचीं नयत देवयन्तः '

ऋ. ३.६.१, मै.सं. ४.१४.३, २१८.११, तै.ब्रा. २.८.२.५.

देवःदेवः- (१) प्रत्येक देव - (२) सर्व प्रकाशक, सर्वप्रद, अतिकमनीय प्रभु । इसमें पहला देव शब्द दूसरे देव- का विशेषण है ।-

'देवं देवं हुवेम वाजसातये '

ऋ. ८.२७.१३, वाज.सं. ३३.९१.

देवन- जुआ, विजय काल

'कृतं न श्वघ्नी विचिनोति देवने '

ऋ. १०. ४३.५, अ. २०.१७.५, नि. ५.२२.

जैसे पर धनहारी, धूर्त या जुआड़ी जूए में अपने पूर्व पुरुषों के अर्जित धन को (कृतम्) ढूंढ़ता है (विचिनोति)।

देवप्सरस्तमः- (१) सर्वोपरिश्रेष्ठ रूप वाला-सोम

'इन्दो देवप्सरस्तमः '

ऋ. ९.१०५.५ साम. २.९६२

(२) देवों या विद्वानों से अति ग्राह्य, (३) देवों

को अति प्रसन्न करने वाला ।

देवप्सराः- (१) देवरूप, (२) सोम का विशेषण ।
'इन्दो देवप्सरा असि'
ऋ. ९.१०४.५,

देवपत्नी- (१) विद्वान् की या देव की स्त्री ।
'उतग्ना व्यन्तु देवपत्नीः'
ऋ. ५.४६.८, अ. ७.४९.२, मै.सं. ४.१३.१०, २१३.१०, तै.ब्रा. ३.५.१२.१, नि. १२.४६.
(२) देवः पतिः यस्याः (जिसके पति देव हों)- अथवा देवस्य पत्नी (देव की स्त्री) ।
(३) अपने में सूर्य-रश्मिसी ज्योति रखने वाली उत्तम कोटि की साध्वी स्त्री ।

देवप्रसूत- (१) किरण, वायु आदि दिव्य पदार्थों द्वारा उत्पन्न (२) देवताओं से उत्पन्न जल ।
'तेन देवप्रसूतेनेदं दूषयता विषम्'
अ. ६.१००.२

देवयाः- देवों या विद्वानों का सत्कार करने वाला ।
'देवया विप्र उदियर्ति वाचम्'
ऋ. २.८.५, मै.सं. ४.१३.१, १९९.१२, ऐ.ब्रा. २.२.२८, तै.ब्रा. ३.६.१.३.

देवयान- (१) देव या विद्वानों का रक्षक, (२) देवताओं के पीने के लिए चमस ।
'अयं यः चमसो देवमानः'
अ. १८.३.५३
(३) उत्तम मनुष्यों पदार्थों और गुणों का पालक । (४) देवों का पेय- सोम ।
'महेसोम प्सरासे देवपानः'
ऋ. ९.९७.२७
(५) देव- इन्द्रियों की रक्षा करने वाला-आत्मा, । (६) देवों के पीने के लिये पात्र-चमस ।
'यो अश्विनो श्चमसो देवपानः'
अ. ७.७३.३, आश्व.श्रौ.सू. ४.७.४, शां.श्रौ.सू. ५.१०.२३.

देवपीयुः- (१) विद्वानों, उत्तम पुरुषों और उत्तम गुणों को नष्ट करने वाला ।
"अपेतो यन्तु पणयोऽसुम्ना देव पीयवः अस्यलोकः सुतावतः'
वाज.सं. ३५.१
(२) देवों या सत्पुरुषों का धातक।
'प्रमृणन् देवपीयून्'
अ. ११.२.२३.
'सा ब्रह्मज्यं देवपीयुम्'
अ. १२.५ (३) १५
(३) देवहिंसक, देव-विरोधी, (४) यज्ञ विरोधी । 'पी' धातु हिंसार्थक है । देवान् पीयति असौ (यह देवों की हिंसा करता है) । देव + पी + यु + सु = देवपयषुः। जिसमें ' पियारु' शब्द हिंसक अर्थ में आया है)

देवपुत्राः ऋषयः- विद्वान् जनों, देवों के पुत्र और ऋषि ।
'अयं नाभा वदति वत्गु वो गृहे
देवपुत्रा ऋषयस्तत् श्रृणोतन'
ऋ. १०.६२.४

देवपुत्रे -विद्वान्, बलवान्, उत्तम पुरुषों को पुत्रवत् उत्पन्न करने वाली -रोदसी-सूर्य और पृथिवी, (२) स्त्री पुरुष (३) राज और प्रजा (४) तेजस्वी सूर्य आदि के बी उत्पादक ।
'अधारयो रोदसी देवपुत्रे'
ऋ. ६.१७.७
(५) उत्तम पुरुषों या देवताओं को पालन करने वाले -द्यावा पृथिवी । (६) देव, तेजस्वी और दानशील , विजयी और व्यवहार कुशल पुत्रों और शियों से युक्त माता पिता या गुरु ।
'देवेभिः ये देवपुत्रे सुदंससा'
ऋ. १.१५९.१

देवप्रदाः- विद्वान् नगरवासी ।
'यदि प्रेयुः देवपुराः'
अ. ५.८.६, ११.१०.१७.

देवपुरा- देवताओं या श्रेष्ठ पुरुषों की नगरी ।
'अनाव्याधां देवपुराम् प्रपद्यं'
अ. १४.१.६४

देवभक्तम् - (न) । देव विद्वान् और अभिलाषुक जीव के सेवन करने योग्य ।
'अच्छारत्नं देवभक्तं यदस्य'
ऋ. ४.१.१०

देवमणि- देव, विद्वानों के बीच शिरोमणि के समान शोभायमान राजा ।
'आ मारुक्षत् देवमणिः'
अ. ८.५.२०

देवंमनः- क्रीड़ाशील या ज्ञान को संकल्प विकल्प द्वारा दर्शाने वाला मन ।

'देवं मनः कुतो अधिप्रजातम्'
ऋ. १.१६४.१८, अ. ९.९.१८

देवमान- (१) विमान-सा. (२) देवनिर्मित भवन
'भोजायाश्वं सं मृजन्त्याशुं
भोजायास्ते कन्या शुम्भमाना ।
भोजस्येदं पुष्करिणीव वेश्म
परिष्कृतं देवमानेव चित्रम्'
ऋ. १०.१०७.१०
राजा या दानी के लिए (भोजाय) परिचारक शीघ्र गामी अश्व अलङ्कृत करते हैं (आशु अश्वं संमृजन्ति), दानी के लिये (भोजाय) अभिनवयौवना कन्या मिलती है (शुम्भमाना कन्या) , दाता के लिये ही पुष्करिणी समान परिष्कृत राजाप्रसाद की तरह गृह मिलता है । (पुष्करिणी इव परिष्कृतम् देवमानम् चित्रं वेश्म) ।
(३) पांच भौतिक पदार्थों से बना शरीर ।
'इदं यमस्य सादनं देव मानं यदुच्यते'
ऋ. १०.१३५.७

देवय- (१) दिव्य गुणों वाला, विद्वानों का उपासक शिष्य आदि और अग्नि आदि दिव्य पदार्थों को प्राप्त करने वाला ।

देवयजन- (१) देवों या विद्वानों का यज्ञस्थान
'अपाररुं पृथिव्यै देव यजनात् वध्यासम्'
वाज.सं. १.२६, श.ब्रा. १.२.४.१७.

देवयजनी- (१) तेज, वायु आदि के परस्पर संगत होने की आश्रयभूत पृथ्वी (२) विद्वानों, देवों या राजाओं की यज्ञस्थली ।
'पृथिवि देवयजनि ओषध्याः
ते मूलं या हिंसिषम्'
वाज.सं. १.२५, तै.सं. १.१.९.१, का.सं. १.९,३१.८, श.ब्रा. १.२.४.१६.तै.ब्रा. ३.२.९.२,३.

देवयज्या - (१) देव योग्य पूजा सत्कार ।
'देवं वो देवयज्यया
अग्निमीडीत मर्त्यः'
ऋ. ५.२१.४
(२) देवता की पूजा ।
'अग्नि वो देवयज्यया'
ऋ. ८.७१.१२
(३) देवयजन मार्ग, (४) देवपूजा ।
'हिनोता नो अध्वरं देवयज्यां'
ऋ. १०.३०.११, ऐ.ब्रा. २.२०.२, कौ.ब्रा. १२.१, आश्व. श्रौ.सू. ५.१.८, नि. ६.२२.

देवयत्- (१) देवपूजक (२) देवत्व की कामना करने वाला -
'यद्देवयन्तमवथः शचीभिः'
ऋ. ७.६९.४
हे अश्विद्वय , आप दोनों देवपूजक मनुष्य को (देवयन्तम्) अपने कर्मो से (शचीभिः) रक्षा करते हो (अवथः)
हे अध्यापक तथा उपदेशक, आप दोनों देवत्व की कामना करने वालों की (देवयन्तम्) सुमतियों से (शचीभिः) रक्षा करते हो (अवथः) ।

देवयती- दिव्य भोग्य पदार्थों की इच्छा करती हुई प्रजा ।
'विशाम् देवयतीनाम'
ऋ. १.३६.१, साम. १.५९.

देवयन्तः- (१) सूर्यवत् रश्मियां, (२) देव या राजा के समान आचरण करते हुए राज पुरुष ।
'आपोयंवः प्रथमं देवयन्तः'
ऋ. ७.४७.१, वृ.हा.सं. ८.२७.
(३) अध्वर्युजन जो देवों के लिए यज्ञ करते हैं।
(४) अपने में देवभाव की कामना करते हुए-गृहस्थ । (दया.)
'अञ्जन्ति त्वामध्वरे देवयन्तो
वनस्पते मधुना दैव्येन ।
ऋ. ३.८.१, मै.सं. ४.१३.१, १९९.२, का.सं. १५.१२, ऐ.ब्रा. २.२.४, तै.ब्रा. ३.६.१.१, नि. ८.१८.
हे खदिर या पलाश के यूप (वनस्पते), तुझे अध्वर्युजन (देवयन्तः त्वाम्) अध्वर में देवसम्बन्धी कृत से (दैव्येन मधुना) सिक्त या मृष्ट करते हैं (अञ्जन्ति) ।
हे गार्हपत्य अग्नि, (वनस्पते) बलिवैश्वदेवयज्ञ में (अध्वरे) तुझे अपने में देवभाव की कामना करते हुए (देवयन्तः) मिष्टान्न और घृत के साथ (दैव्येन मधुना) प्रकाशित करते हैं (अञ्जन्ति) -दया.

देवयन्ती- (१) चाहती हुई, (२) देवत्व प्राप्त करने की कामना करती हुई ।
'तं मेधेषु प्रथमं देवयन्तीः'
ऋ. १.७७.३

उसे चाहती हुई प्रजाएं उसे यज्ञों और श्रेष्ठ कार्यों और संग्राम के अवसरों में भी सबसे प्रथम अग्रासन देती हैं।

देवयान- (१) विद्वान् पुरुषों से जाने योग्य मार्ग
'एह्यातं पथिभिया दैवनैः'
ऋ. १.१८३.६, १८४.६, ३.५८.५,
(२) अन्तरिक्ष में दो मार्ग हैं देवयान और पितृयान्।
'यस्ते स्व इतरो देव यानात्'
ऋ. १०.१८.१, तै.ब्रा. ३.७.१४.५,तै.आ. ३.१५.२, ६.७.३, तै.आ. (आंध्र). १०.४६, आप.श्रौ.सू. २१.४.१, हि.गृ.सू. १.२८.१, नि. ११.७.
हे मृत्यु, जो तेरा देवयान से इतर पितृयान मार्ग है (३) देवताओं का मार्ग
'अन्तर्विद्वां अध्वनो देवयानात्'
ऋ. १.७२.७

देवयानात् इतरः- (१) देवयान मार्ग से अन्य पितृयान मार्ग जिस से मृत्यु उपरान्त मृतात्माएं जाती हैं।

देवयावा- (१) ज्ञानी पुरुषों या देवों को प्राप्त होने वाला,(२) अन्यों को शुभगुण प्राप्त कराने वाला।
'द्रवद् दूतो देवयावा वनिष्ठः'
ऋ. ७.१०.२

देवयुः - (१) विद्वानों का प्यारा, (२) देवभक्त।
'प्राचैर्देवासः प्रणयन्ति देवयुम्'
ऋ. १.८३.२, अ. २०.२५.२

देवर- (१) वर का छोटा भाई।
'प्रतीक्षन्ते श्वशुरो देवरश्च'
अ. १४.१.३९, आप.मं.पा. १.१.८.
(२) द्विवरः = देवरः। द्विर से देवर बना है। ऐसा निरुक्तकार कहते हैं। क्योंकि पति के मरने पर पति का छोटा भाई भी दूसरा वर बन जाता है।
'को वां शयुत्रा विधवेव देवरम्
मर्यं न योषा कृणुतेसधस्थ आ'
ऋ. १०.४०.२, नि. ३.१५

देवलोक- विद्वज्जन, विजयेच्छु पुरुष।
'देवलोकाम पेशितारम्'
वाज.सं. ३०.१२, तै.ब्रा. ३.४.१.८.

देववत् सुदास् - (१) विद्वानों वीरों और व्यवहारवान् पुरुषों का उत्तम दानशील राजा (२) सुदास् नामक पिजवान् का पुत्र।
'द्वेनप्तु र्देववतः शतेगोः
द्वा रथा वधूमन्ता सुदासः'
ऋ. ७.१८.२२.

देववध- (१) देव, विद्वान्, ब्राह्मणों का ज्ञात शस्त्र, (२) वैज्ञानिक शक्ति, (३) देवताओं को मारने वाला आयुध।
'नमो देव वधेभ्यः'
अ. ६.१३.१, कौ.सू. १४.२५, १५.६, ७२.१३, १०४.३, १०५.१, ११३.३, १२३.१.

देववन्दः- (१) शिष्य जनों से वन्दनीय (२) ईश्वरोपासक।
'आग्ने याहि सहस्रं देववन्दैः'
ऋ. १०.१५.१०, अ. १८.३.४७

देवबन्धुः- (१) समस्त दिव्य लोकों को बांधने वाला।
'योऽथर्वाणं पितरं देवबन्धुम्'
अ. ४.१.७
(२) देव या विद्वानों का बन्धु = अश्व या (३) व्यापक राष्ट्र।
'चतुस्त्रिंशद् वाजिनो देवबन्धोः'
ऋ. १.१६२.१८, वाज.सं. २५.४१, तै.सं. ४.६.९.३, का.सं. (अश्व.) ६.५, श.ब्रा. १३.५.१.१८.
(४) देव अर्थात् परमेश्वर का बन्धु (५) इन्द्रियों का मूल कारण आत्मा।
'अथर्वाणं पितरं देवबन्धुम्'
अ. ५.११.११, ७.२.१,
(६) प्रकाशमय पृथिवी आदि का बन्धु (७) विद्वानों के बीच सुप्रबन्धक।

देवव्यचस्तम- (१) देवों में सबसे अधिक गतिवाला- अश्वि, (२) विद्वानों या विविध विद्याओं में सब से अधिक गतिवाला।
'प्रयज्ञ एतु आनुषक् अद्या देव व्यचस्तमः'
ऋ. ५.२२.२, ५.२६.८

देवव्यचाः- (१) दानशील तेजस्वी पुरुष, (२) विद्वान् का विशेष सत्कार करने वाला, (३) जो देव या पृथिवी आदि में प्राप्त हो। (दया.)
'स्तृणीमहि देवव्यचा विबर्हिः'
ऋ. ३.४.४

देववात- (१) सूर्य की किरणों से स्वच्छ, (२) विद्वानों या देवों से प्राप्त ।
'शुभ्रमन्धो देववातम्'
ऋ. ९.६२.५
(३) देवों द्वारा संचालित ।
'तिस्र उ ते तन्वे देववाताः'
ऋ. ३.२०.२, तै.सं. ३.२.११.१, मै.सं. २.४.४, ४२-११, का.सं. ९.१९.
(४) देवश्रुत तथा देववात भारतऋषि के नाम से प्रख्यात है जिन्होंने ऋग्वेद के मंत्र ३.२३.२ को देखा, (५) विद्वानों द्वारा प्रेरित या उनकी आज्ञा का वशंवद (६) काम्य गुणों से प्रेरित पुरुष या पति ।
'देवश्रवा देववातः सुदक्षम्'
ऋ. ३.२३.२

देववाततमः - देव, सूर्य, राजा या आत्मा के अतिनिकट पहुंच जाने वाला ।
'उक्था शंसन्तो देववाततमाः'
ऋ. ६.२९.४

देववान् - देवों का स्वामी प्रभु ।
'स गृणानो अद्भिर्देववान्'
ऋ. १०.६१.२६

देववाहनः - (१) देव, इन्द्रियों या उत्तम गुणों का धारक अग्नि ।
'अश्वो न देववाहनः'
ऋ. ३.२७.१४, अ. २०.१०२.२, साम. २.८८९, श.ब्रा. १.४.१.३०, ३.६, तै.ब्रा. ३.५.२.२.
(२) देवों का वाहन-अग्नि (३) वीर विक्रमी सैनिकों को युद्ध में ले जाने वाला (४) प्राणों का धारक आत्मा (५) द्योतक किरणों या प्रकाशों का धारक -सूर्य ।

द्वे विरूपे - द्वि.व. । (१) दो भिन्न भिन्न रूप रंग वाली स्त्रियां, (२) प्रकाश और अन्धकार से भिन्न भिन्न रूप वाली रात्रि और दिन, (३) प्राण और अपान रूप दो प्राण की गतियां, (४) ब्राह्मण और क्षत्रिय शान्त और उग्र रूप से भिन्न भिन्न हैं । (५) आकाश और पृथ्वी ।
'द्वे विरूपे चरतः स्वर्थे'
ऋ. १.९५.१, वाज.सं. ३३.५, तै.ब्रा. २.७.१२.२.

देववीतम - (१) दिव्य गुणों से कान्तियुक्त ।
'शोचस्व देववीतमः'
ऋ. १.३६.९, वाज.सं. ११.३७, ऋ.खि. ७.३४.५, तै.सं. ४.१.३.३, मै.सं. २.७.३,७७.१५, ४.९.३, १२३.११.का.सं. १६.३, श.ब्रा. ६ .४.२.९. तै.आ. ४.५.२.
(२) कान्तिमान सूर्य के समान सबसे अधिक तेजस्वी ।
'मदो यो देववीतमः'
ऋ. ९.६३.१६, ६४.१२.
(३) सब तेजस्वी पदार्थों में अति अधिक कान्तिमान अग्नि ।

देववी - (१) देवताओं को प्राप्त होने वाला सोम, (२) ज्ञानादाता को प्राप्त होने वाला शिष्य ।
'पवस्व देववीरतिपवित्रं सोम रंह्या'
ऋ. ९.२.१

देववीतिः - (१) शुभगुणों, वीरों, विद्वानों को प्राप्त कराने वाला कार्य-उनकी रक्षा, (२) विजिगीषु जनों के आने और चमकने या विघ्नों का स्थान- युद्ध ।
'त्वं नृभिर्नृमणो देववीतौ'
ऋ.७.१९.४, अ. २०.३७.४, तै.ब्रा. २.५.८.१०.
(३) प्राणों के एकत्र योग का अवसर, (४) इन्द्रिय गणों से प्राप्त ज्ञान का भोग
'युवो अध्वरो देववीतये'
ऋ. ६.६८.१०, अ. ७.५८.१, गो.ब्रा. २.२.२२.
(४) देवानां दिव्य गुणानां वीतिः प्राप्तिः (दिव्य गुणों की प्राप्ति) -दया.
(६) देवताओं की प्रसन्नता ।
'अथा नो धा अध्वरं देववीतौ'
ऋ. ३.१७.५.
दिव्य गुणों की प्राप्ति के लिए (देववीतौ) हमारे हिंसा रहित यज्ञ को धारण कर । (दया.)
तदनन्तर हमारे यज्ञ को देवताओं के प्रसन्न कारक बना- (६) विद्वान् या उत्तम गुणों की प्राप्ति, (८) परमेश्वर का ज्ञान (९) विद्वानों की रक्षा ।
'सुगंनो अस्यै देववीतये कृधि'
ऋ. २.२३.७.
(१०) उत्तम गुणों और भोगों की परिपूर्णता, (११) उत्तम भोगों की प्राप्ति ।
'यो अग्निं देववीतये
हविष्मां आविवासति'

ऋ. १.१२.९, साम. २.१९६, आप.श्रौ.सू. ९.१.११, जो अन्नादिपदार्थों का स्वामी होकर (हविष्मान्) देवों, उत्तम विद्वान् पुरुषों को तृप्त करने उत्तम गुणों और भोग्य पदार्थों को प्राप्त करने के लिये यज्ञाग्नि के समान परमेश्वर की आराधना करता है ।

देवश् – देव या विद्वानों को चाहने वाला ।
'प्रतितान् देवशो विहि'
ऋ. ३.२१.५, मै.सं. ४.१३.५, २०५.१, का.सं. १६.२१, ऐ.ब्रा. २.१२.१६, तै.ब्रा. ३.६.७.२.

देवशत्रु – (१) देव का शत्रु, (२) प्रकाश, जल, पृथिवी आदि, पदार्थों और शुभ गुणों का शत्रु (३) किरणों का शत्रु या उनसे नष्ट होने वाला ।
'हतासो वां पितरो देवशत्रवः'
ऋ. ६.५९.१

देवश्रवा – (१) एक वैदिक ऋषि जिसने भारत के नाम से अग्नि देवता के लिये देववात ऋषि के साथ ऋग्वेद का ३.२३.२. मंत्र देखा, (२) विद्वानों के ज्ञानों को श्रवण करने वाला, (३) प्रिय एवं काम्य पति का वचन श्रवण करने वाली स्त्री ।

देवशिष्टे – (१) ज्ञानवान् गुरु से अनुशासित दो शिष्य, (२) राजा से आज्ञापित दो भृत्य, (३) प्रकाशमान सूर्य से शासित या परमेश्वर से शासित रात और दिन ।
'समानो अध्वा स्वस्रोः अनन्तः
तम् अन्यान्या चरतो देवशिष्टे'
ऋ. १.११३.३, साम. २.११०.१.

देवश्रुत – (१) मेघ से स्रवित होने वाला, (२) विद्वानों द्वारा श्रवण करने योग्य ।
'देवश्रुतं वृष्टि वनिं रराणः'
ऋ. १०.९८.७, नि. २.१२.
(३) देवों से प्रार्थित, (४) ईश्वरीय नियम ।

देवश्रुति – देवों या विद्वानों से विद्या प्राप्ति करना ।
'देवश्रुतौ देवेष्वाघोषतम्'
वाज.सं. ५.१७, तै.सं. १.२.१३.१, मै.सं. १.२.९, १८.१२, का.सं. २.१०. श.ब्रा. ३.५.३.१३,१४.

देवसद् – विद्वानों या देवों में प्रशंसित ।
'दिविसदं देवसदम्'
वाज.सं. ९.२

देवसदन – (१) देवो अर्थात् इन्द्रियों का गृहभूत –मस्तिष्क (२) देवताओं की गृह ।
'अश्वत्थो देवसदनः'
अ. ५.४.३,६.९५.१,१९.३९.६.
(३) दिव्यगुणों तथा अग्नि का आश्रय सूर्य

देवस्य देवस्यमुनिः – (१) प्रत्येक इन्द्रिया का सके समान नाम रूप वाला होने वाला आत्मा ।
'मुनिर्देवस्य देवस्य
सौकृत्याय सखाहितः'
ऋ. १०.१३६.४

देवस्य पदः – (१) देव या अग्नि का आहवनीय स्थान ।
'पदं देवस्य नमसा व्यन्तः'
ऋ. ६.१.४, मै.सं. ४.१३.६, २०६.११, का.सं. १८.२०, तै.ब्रा. ३.६.१०.२. नि. ४.१९.
जो देव या अग्नि के आहवनीय स्थान को (देवस्य पदम्) नमस्कार स्तुति या मन्त्र से (नमसा) देखते या जानते हुए (व्यन्तः)

देवसुमति – देवताओं की वर्षा देने वाली कल्याण कारिणी मति ।
'आर्ष्टिषेणो होत्रमृषिर्निषीदन्
देवापि र्देवसुमतिं चिकित्वान्
स उत्तरस्मादधरं समुद्रम्
अपो दिव्या असृजद् वर्ष्या अभि'
ऋ. १०.९८.५, नि. २.११.
देवताओं की वर्षा देने वाली कल्याणकारिणी मति का ज्ञाता आर्ष्टिषेण देवापि ऋषि ने ऊपर के समुद्र से नीचे के समुद्र में दिव्य वर्षा के जलों को वरसाया ।

देवहित – (१) ईश्वर, देवों या विद्वानों से निश्चित ।
'व्यशेमहि देवहितं यदायुः'
ऋ. १.८९.८, साम. २.१२२४, वाज.सं. २५.२१.
(२) देवों या विद्वान जनों का हितकारी ।

देवहितं चक्षुः – (१) इन्द्रियों या प्राणों के बीच विद्यमान चक्षु, (२) सूर्य ।
'तच्चक्षुर्देवहितं
शुक्रमुच्चरत्'
ऋ. ७.६६.१६

देवहिति – (१) परमेश्वर का दिया ज्ञान कोश, (२) मेघ का जल ।
'देवहितिं जुगपुर्द्वादशस्य'
ऋ. ७.१०३.९

देवहूः - (१) विद्वानों और विद्या आदि शुभगुणों को स्वयं धारण करने वाला विद्वानों का आह्वाता (२) दिव्य शक्तियों के धारक विद्वानों या देवों को अपने पास बुलाने वाला परमेश्वर ।
'देवहूर्यज्ञ आ चवक्षत्'
वाज.सं. १७.६२, मै.सं. २.१०.५, १३७.१७, ३.३.८,४१.८, श.ब्रा. ९.२.३.२०

देवहूतम - सर्वोत्तम उपदेशकअग्नि, परमेश्वर ।
'देवानांमसि देवहूतमम्'
वाज.सं. १.८., मै.सं. १.१.५, ३.१, ४.१.५, ६.१२, का.सं. १.४.,श.ब्रा. १.१.२.१२.

देवहूतिः - (१) यज्ञ में देवों की आहुति का स्थान, । (२) प्राणायतन देह ।
'बृहस्पति र्देवहूतौ चकार'
ऋ. ६.७३.२, अ. २०.९०.२, का.सं. ४.१६.
(२) विद्वान् तथा देवों की वाणी ।
'अग्नेशुक्रेण शोचिषा
विश्वाभिर्देवहूतिभिः
इमं स्तोमं जुषस्व नः'
ऋ. १.१२.१२
(३) देव + हू + क्ति = देवहूति । देवनांहूतिः (देवताओं का आह्वान) (४) यज्ञ करने वाला, (५) दिव्य गुण वाला ।
'पृथक् प्रायन् प्रथमा देवहूतयः'
ऋ. १०.४४.६, अ. २०.९४.६, नि. ५.२५
मुख्य यज्ञ करने वाले या दिव्य गुण वाले अपने अपने कर्म के अनुसार पृथक् मार्ग से जाते हैं ।

देवहूय - मनुष्यों के परस्पर स्पर्द्धा और ललकार का अवसर रूप संग्राम ।
'स्पर्धन्ते वा उ देवहूये अत्र'
ऋ. ७.८५.२

देवहेडन - (१) परमेश्वर-राजा, विद्वान् या देवता, की क्रुद्ध करने वाला कार्य ।
'नाविष्ट्यं वसवो देवहेडनम्'
ऋ. १०.१००.७
'मा कर्म देवहेडनं तुरासः'
ऋ. ७.६०.८
(२) देवता, गुरुजन या विद्वान् का अनादर ।
'मनसो वा प्रयुती देवहेडनम्'
ऋ. १०.३७.१२, तै.आ. (आंध्र) १०.६०, वै.सू. २३.१२,
'यद् देवा देवहेडनम्'
अ. ६.११४.१, वाज.सं. २०.१४.

देवहेतिः - (१) दैवी आघातकारी पदार्थ ।
'अन्तरिक्षं रश्रतु देवहेत्याः'
अ. ८.१.१२

देवा - 'देवृ' शब्द का प्र.पु.ए.व. में रूप
'सम्राज्ञी अधिदेवृषु'
ऋ. १०.८५.४६, साम.मं.ब्रा. १.२.२०, आप.मं.पा. १.६.६

देवाची - देवान् प्रति अक्ता । देव + अञ्च् + ङीष् = देवाची । अर्थ-(१) हविहविन करने की क्रिया (२) देवों के रक्षार्थ लगा हुआ कर्म या सामर्थ्य-दया ।
(३) देवान् पूजयन्ती । देवों की पूजा करती हुई (४) देवपूजा वाली बुद्धि ।
'य ऊर्ध्वया स्वध्वरः
देवो देवाच्या कृपा
ऋ. १.१२७.१, अ. २०.६७.३, साम. १.४६५,२. ११६३, वाज.सं. १५.४७, तै.सं. ४.४.४.८, का.सं. २६.११, ३९.१५.
जो अग्नि शोभन यज्ञ वाला (स्वध्वरः) उत्कृष्ट हविवहन करने के कर्म से युक्त
जो तेजस्वी राजा (देवताओं के रक्षार्थ लगे हुए कर्म या सामर्थ्य से राज्य को भली प्रकार पालने वाला है (स्वध्वरः) -(दया.)

देवाञ्जन - (१) सर्वकान्तिमय परमेश्वर ।
'देवाञ्जन त्रैककुदम्'
अ. १९.४४.६

देवानाम् अनीकम् - (१) किरणों का समूह । देवशब्द किरण के अर्थ में भी आया है । 'विश्वे देवाः' का अर्थ भी किरणों का समूह बताया गया है ।
'चित्रं देवानामुदगादनीकम्'
ऋ. १.११५.१, अ. १३.२.३५, २०.१०७.१४, आ.सं. ५.३. वाज.सं. ७.१४, १३.४६.
किरणों का पूजनीय या विचित्र समूह उदित हुआ (उदगात्) ।

देवानाम् असुरः - दिव्य पदार्थों में प्राण शक्ति (असु) देने वाला परमेश्वर ।
'अयं देवानामसुरो विराजति'

अ. १.१०.१

देवानाम् एकम् असुरत्वम् – (१) सभी दिव्य पदार्थों का एक बड़ा भारी प्राणों में रमण करने वाला प्राणप्रद सामर्थ्य (२) विद्वानों का एक बड़ा भारी प्राणों के भीतर रमने वाला अद्वितीय ब्रह्म (३) तेजस्वी पिण्डों के बीच अन्धकार दूर करने वाला अद्वितीय बल, (४) सूर्य की किरणों का जीवनदान करने का विशेष कार्य

देवानांगर्भः – (१) देव, विजयशील वीर सैनिकों और विद्वानों, शासकों को अपने अधीन ग्रहण करने वाला (२) सूर्य, (३) समस्त सूर्यादि व्यापक, (४) सब को अपने भीतर लेने वाला।

'गर्भो देवानां पिता महीनाम्'

वाज.सं. ३७.१४, श.ब्रा. १४.१.४.३, तै.आ. ४.७.४, ५.६.८.

देवानां नामधा – (१) समस्त देवों के नामों को धारण करने वाला विश्वकर्मा– प्रभु।

'यो देवानां नामधा एकएव

ऋ. १०.८२.३, अ.२.१.३, वाज.सं. १७.२७, तै.सं. ४.६.२.२, मै.सं. २.१०.३, १३४.१०, का.सं. १८.१ दिव्य पदार्थों के नामों को स्वयं धारण करने वाला, (३) सब प्राणों का नाम या स्वरूप धारण करने वाला–आत्मा।

देवानां पत्नीनां गर्भः– (१) विषयों खेलने वाली इन्द्रियों (देवानां) की शक्तियां ही जिसकी उत्पत्ति कारण है–स्वप्न, प्रमाद।

'देवानां पत्नीनां गर्भ यमस्य करयो भद्रः स्वप्नः'

अ. १९.५७.३

देवानां पाथः– (१) देवों का भोजन मांस।

'प्रियं देवानामप्येतु पाथः'

अ. २.३४.२, का.सं. ३०.८, तै.ब्रा. ३.१.१.४.

देवानां प्रियः– देव, विद्वानों या राजाओं का प्रिय। बौद्धों में यह शब्द प्रचलित था। पीछे यह शब्द 'मूर्ख' का पर्याय बन गया।

'प्रियो देवानामुत सोम्यानाम्'

ऋ. १०.१६.८, अ. १८.३.५३, तै.आ. ६.१.४.

देवानां प्रिय पाथः– देवों का प्रिय मार्ग, देवयान।

'प्रियं देवानामप्येतु पाथः'

अ. २.३४.२

देवानां पुरोहितः– (१) पृथिव्यादि लोकों, पञ्चभूतों में से भी सबसे पूर्व विद्यमान (२) सबके बीच प्रवर्तक सूर्य, (३) देवताओं का पुरोहित– बृहस्पति।

'यो देवानां पुरोहितः'

वाज.सं. ३१.२०, तै.आ. ३.१३.२.

देवानां पूः – (१) इन्द्रियों की पुरी यह शरीर (२) देवताओं की पुरी अयोध्या।

'देवानां पूरयोध्या'

अ. १०.२.३१, तै.आ. १.२७.३

देवानांभागः– (१) देवताओं का भजन करने योग्य, (२) आश्रय स्थान।

'देवानां भाग उपनाह एषः'

अ. ९.४.५

देवानां भिषजा– (१) देवगण अर्थात् इन्द्रियों या विद्वानों के चिकित्सक अश्विद्वय. (२) प्राण और अपान।

'देवानामग्ने भिषजा शचीभिः'

अ. ७.५३.१, वाज.सं. २७.९, तै.सं. ४.१.७.४, मै.सं. २.१२.५, १४९.११, का.सं. १८.१६, तै.आ. (आंध्र) १०.४८.

देवानां मानम्– (१) दिव्य भावों से युक्त देव–अग्नि, विद्युत् सूर्य, भूमि या वायु की तन्मत्राओं का निर्माण (३) देवताओं की सृष्टि।

'देवानां माने प्रथमा अतिष्ठन्'

ऋ. १०.२७.२३, नि. २.२२.

देवताओं के निर्माण के समय सबसे पहले ये माध्यमिक देवगण मेघ निर्मित हुए। अथवा देवों के निर्माण में वायु ही प्रथम है।

देवानामधिपतिः– ग्राह्य विषयों में क्रीड़ा करने वाले प्राणों का स्वामी – आत्मा।

'स देवानामधिपतिर्बभूव

अ. ७.५.२, १३.२.२५, तै.सं. १.६.६.४, ३.२.७.२, शां.श्रौ.सू. ४.१२.१०.

देवानामस्थि– (१) इन्द्रियों का प्रेरक आत्मा।

'देवानामस्थि कृशनंबभूव'

अ. ४.१०.६

देवानां माता– (१) सूर्य की किरणों को प्रकट करने वाली उषा (२) देवों की माता अदिति (३) तेजस्वी स्त्री पुरुषों की माता।

'माता देवानाम् अदितेः अनीकम्'

ऋ. १.११३.१९

देवानां सधस्थः– (१) देवताओं के समान स्थान

वाला ।
' देवानां वक्षि प्रियमासधस्थम्
वाज.सं. २९.१, तै.सं. ५.१.११.१. मै.सं. ३.१६.२, १८३.१३, का.सं. (अश्व) ६.२.
हे अग्नि, देवताओं के समान स्थान वाले प्रिय अश्व या अन्न को भी ले जा (प्रियं वाजिनम् आवक्षि)

देवानां स्पशः- (१) लोगों का द्रष्टा-गुप्तचर (२) दिन जो सदा लोगों के देखने वाले हैं । ए.व. में रूप है- स्पश् । स्पश् धातु देखना अर्थ में आया है । स्पश् + क्विप्= स्पश् ।
(३) देवताओं के चार अर्थात् जासूस ।
'न तिष्ठन्ति न नि मिषन्त्येते
देवानां स्पश इह ये चरन्ति'
ऋ. १०.१०.८, अ. १८.१.९.
जो ये देवताओं के चार इस लोक में घूमते हैं वे न कभी विराम लेते और न कभी सोते हैं । ईश्वर के भेजे चारों की कल्पना आज भी है जो सृष्टि में किए जाने वाले कर्मों का सतत निरीक्षण करते हैं ।

देवानां स्वसा- (१) विद्वान् पुरुषों की उत्तम रूप से गुण प्रकाश करने वाली, (२) ग्रिफिथ के मत से सिलाची नामक औषधि । इस औषधि के अन्य नाम-स्परणी, अरुन्धती, निष्कृति, कनीना और कन्यला
'सिलाची नाम वा असि
सा देवानामसि स्वसा'
अ. ५.५.१, ६.१००.३
(३) देवताओं की बहन-सिनीवाली दृष्ट चन्द्रा अमावस्या -सा. (४) विद्वान् भाइयों वाली बहन - दया. ।
'सिनीवाले पृथुष्टुके या देवानामसि स्वसा'
ऋ। २.३२.६, अ. ७.४६.१, वाज.सं. ३४.१०., तै.सं. ३.१.११.३ मै.सं. ४.१२.६, १९५.४, का.सं. १३.१६, नि. ११.३२.
हे विस्तीर्ण जंघा या केशकलाप वाली या अति पूजनीय (पृथुष्टुके) द्रष्ट चन्द्रा अमावास्या या स्वामी दयानन्द के अनुसार ऋतु गम्या पत्नी (सिनीवालि) तू देवताओं की या विद्वान् भाइयों की बहन है ।

देवानांहृदयः- (१) देवों या दिव्य शक्तियों का संस्थापक, (३) अग्नि, वायु और आदित्य की खोज लगाने वाला ।
'नमो वः किरिकेभ्यो देवानां हृदयेभ्यः'
वाज.सं. १६.४६, तै.सं. ४.५.९.२. का.सं. १७.१६, श.ब्रा. ९.१.१.२२, २३.

देवानां होता- (१) देवताओं का होता अग्नि- (२) देव अर्थात् उत्तम पदार्थों का होता अर्थात् दाता- यज्ञाग्नि ।
'त्वं देवानामसि यह्वहोता'
ऋ. १०.११०.३, अ. ५.१२.३, वाज.सं. २९.२८, मै.सं. ४.१३.३, २०१.१५, ४.१४.१५, २४२.७, का.सं. १६.२०, तै.ब्रा. ३.६.३.२. नि. ८.८.
हे अग्नि, उत्तमगुणों से महान् तू देवों का होता है । हे यज्ञाग्नि तू उत्तमपदार्थों का दाता है ।

देवापिः- (१) प्रभु का बन्धु, (२) देवापि, (३) जल, (४) सूर्य की किरणों को प्राप्त करने वाला विद्वान् (५) जीव, ।
'त्वद्देवापे अभिमामगच्छत्'
ऋ. १०.९८.२
(६) राजा शन्तनु का पुरोहित जिसने वर्ष कामेष्टि यज्ञ में होता का कार्य किया था- (७) सत्संगी विद्वान् ।
'यद्देवापिः शन्तनवे पुरोहितो
हेत्राय वृतः कृपयन् अदीधेत्'
ऋ. १०.९८.७, नि. २.१२.

देवावी- (१) देव + अवी । देवों या विद्वानों का रक्षक-यज्ञ ।
'यज्ञं प्र णय देवाव्यं'
वाज.सं. ११.८, तै.सं. ४.१.१.३, मै.सं. २.७.१,७४.८, का.सं. १५.११, श.ब्रा. ६.३.१.२०.
(२) प्राणों या इन्द्रियों की रक्षा करने वाला ।
'देवाव्यं मनुषे पिन्वति त्वचम्'
ऋ. ९.७४.५

देवासः- देव शब्द का प्रथमा बहुवचन में वैदिक रूप । अर्थ- बहुत देव ।

देवी- (१) देवी नामक ओषधि जिससे बाल दृढ़ होता है, सायण और कौशिक ने 'काकमाची' नाम रखा है । राजनिघण्टु के अनुसार 'काकादनी' या 'केश्या' है ।
'देवी देव्यामधिजाता'
अ. ६.१३६.१

(२) दिव् + अच् = देव । देव + ङीष् । = देवी । प्रकाश माना ।

(३) नहर = दया. । (४) देव की स्त्री देवी ।

देवी अदितिः- (१) सूर्य के समान् ज्ञान प्रकाश देने वाली, (२) भूमि के समान अन्न और ज्ञान देने वाली माता (३)आचार्य एवं सावित्री वेदवाणी (४) अन्नदात्री भूमि ।

'प्रातर्देवीमदितिं जोहवीमिः'

ऋ. ५.६९.३

देवीः आपः- (१) दिव्यगुणों वाली प्रकृति के सूक्ष्म परमाणु, (२) राजा को चाहती हुई प्रजाएं ।

'आपश्चिदस्मा अरमन्त देवीः'

ऋ. ३.५६.४

(२) दिव्यजल ।

'उत वां विक्षु मद्या स्वन्धः
गाव आपश्च पीपयन्त देवीः'

ऋ. १.१५३.४

हे मित्र और वरुण, या हे उपदेशक तथा अध्यापक, आप दोनों की सुखी, मादयित्री या मदनीय प्रजाओं में (मध्यासु विक्षु) अन्न (अन्धः) गौएं और दिव्य जल निरन्तर बढ़ें (गावः देवीः आपश्च पीपयन्त) ।

देवीगौः- ज्ञान का प्रकाश देने वाली वाणी ।

'देवीं देवेभ्यः पर्येयुषींगाम्'

ऋ. ८.१०१.१६

देवीःद्वारः- (१) द्वाररूपी देवता- (२) अग्नि या अग्नि की ज्वालाएं रूपी द्वार -शाकपूणि (३) दिव्य पदार्थों का दाता यज्ञाग्नि ।

'उर्विया'

'देवीर्द्वारो बृहतीर्विश्वभिन्वाः'

ऋ. १०.११०.५, अ. ५.१२.५, वाज.सं. २९.३०. मै.सं. ४.१३.३, २०२. ४, का.सं. १६.२०, तै.सं. ३.६.३.३., नि. ८.१०.

बड़ी द्वाररूपी देवताओं, तुम सभी यज्ञ की सामग्रियों को द्वार से होकर जाने देने वाली (विश्वमिन्वा) हो अथवा,

अग्नि की बड़ी ज्वालारूपी द्वार, तुम सभी यज्ञ की सामग्रियों को द्वार से होकर जाने देने वाली हो ।

अथवा, अनेक गुणों वाली (बृहती)एवं सारे, जगत् को चलाने वाली गतिशील या रोगादिनिवारक अग्नि । यज्ञशाला के द्वार से तात्पर्य है (४) पापों को वर्जन करने वाली गृह देवियां, (५) सेना की छावनियां (६) प्रकाशयुक्त द्वार ।

'विश्रयन्तामृता वृधो द्वारोदेवीरसश्चतः'

ऋ. १.१३.६, १४२.६.

देवी धी- दिव्य गुण युक्त प्रज्ञा ।

'समख्ये देव्या धिया'

वाज.सं. ४.२३, श.ब्रा. ३.३.१.१२.

देवृ- (देवा) - देवर ।

'सम्राड्युत देवृषु'

अ. १४.१.४४.

देवृकामा- देवरों के प्रति शुभकामना चाहने वाली ।

'वीरसूर्देव कामा स्योना'

ऋ. १०.८५.४४, अ. १४.२.१७,साम. मं.ब्रा. १.२.१७, गों.गृ.सू. २.७.१२, पा.गृ.सू. १.४.१६,

देवेष्वाततः- समस्त प्राणों , समस्त लोकों और दिव्य पदार्थों में फैला हुआ-परमेश्वर ।

'तन्तुर्देवेष्वाततः'

ऋ. १०.५७.२, अ. १३.१.६०. ऐ.ब्रा. ३.११.१८.

देवेषितः(१) विषयक्रीड़ा द्वारा प्राप्त (२) वर्षाकाल में उत्पन्न (३) देवता के प्रकोप से प्राप्त ।

'यक्ष्माद् देवेपितादधि'

अ. ८.७.२

देवैनस- (१) देव, विद्वान् पुरुषों या दिव्य पदार्थों के प्रति किया गया पाप ।

'देवैनसादुन्मदितम'

अ. ६.१११.३

'देवैनसात् पित्र्यान्नमग्राहात्'

अ. १०.१.१२.

द्वेशीर्षे- (१) यज्ञ के दो शीर्षप्रायन् और उदयन अथवा ब्रह्मौदन और प्रवर्ग्य (२) कुमारिल कृत तन्त्रवार्तिक के अनुसार दो शीर्ष हैं- छः छः मासों के दो अपन- उत्तरायण और दक्षिणायन (३) सायण के मत से दो शीर्ष हैं- रात और दिन (४) शाब्दिकों के मत से शब्द रूप ब्रह्म के दो प्रकार के शब्द-नित्य और अनित्य ही दो शीर्ष हैं, । (५) व्यङ्ग्य और व्यञ्जक ।

'चत्वारि श्रृंगाःत्रयोअस्य पादाः
द्वे शीर्षे सप्तहस्तासो अस्य'

ऋ. ४.५८.३, वाज.सं. १७.९१, मै.सं. १.६.२, ८७.१७. का.सं. ४०.७ , गो.ब्रा. १.२.१६, तै.आ. १०.१०.२, महा.ना.उप.१०.१, आप.श्रौ.सू. ५.१७.४, नि. १३.७.

देशोपसर्गाः- देश में उत्पन्न होने वाले संहारक उपद्रव ।
'देशोपसर्गाः शमु नो भवन्तु'
अ. १९.९.९

द्वेष- (१) द्वेष, (२) द्वोषोत्पादन कर्म । द्विष् त्र अच् ।

द्वेषस्- द्विष् + असुन् = द्वेषस् । अर्थ है । (१) दौर्भाग्यं (२) अप्रिय । (३) शत्रु

देष्ठः- सर्वोत्तम दाता - इन्द्र ।
'देष्ठः सून्वते भुवः'
ऋ. ८.६६.६

देष्ट्र- (१) परस्पर दान, आदान करना, (२) उपदेश करने वाला विद्वान् ।
'क्व देष्ट्राय तस्थथुः'
ऋ. १०.८५.१५, अ. १४.१.१४.
(३) ज्ञानोपदेश ।
(४) उपदेश करने का कार्य ।
'तिस्रो देष्ट्राय निर्ऋरुपासते'
ऋ. १०.११४.२

देष्ट्री- उपदेष्टा ।
'प्राणो विराट् प्राणो देष्ट्री'
अ. ११.४.१२

देष्णम्- 'दा' (देना) धातु से सम्पन्न । अर्थ (१) देने योग्य, देय, दातव्य, ।
'पुरु हिवां पुरुभुजा देष्णम्'
ऋ. ६.६३.८.
हे अश्विद्वय, बहुभोजी या बहुपालक तुम दोनों को दातव्य धन बहुत है ।
'निते देष्णस्य धीमहि प्रेरके'
ऋ. ३.३०.१९, तै.ब्रा. २.५.४.१.
(२) दाता-दया.

द्वेषोयुत- द्वेषभावों से रहित अजात शत्रु ।
'द्वेषोयुतमाविवासन्ति धीभिः'
ऋ. ४.११.५

द्वे सृती- (१) दो मार्ग- देवयान और पितृयाण, (२) जीवन यापन के दो मार्ग-एक पालक (शासक रूप में सरकारी सेवा में लगना) और दूसरा साधारण पुरुष (अपने माता पिता के पेशे में लगा रहना)
'द्वे सृती असृणवम् पितृणाम्
अहं देवानामुत मर्त्यानाम्'
ऋ. १०.८८.१५, वाज.सं. १९.४७. मै.सं. २.३.८, ३६.१४. का.सं. १७.१९, ३८.२, श.ब्रा. १४.९.१.४, तै.ब्रा. १.४.२.३, २.६.३.५, आप.श्रौ.सू. १९.३.५.
छान्दोग्य में तीन मार्ग बतलाए गए हैं-
'तद् य इत्थं विदुः ये चेमेऽस्मदे श्रद्धा तप इत्युपासते तेऽर्चिषमभि संभवन्ति स एतान् ब्रह्म गमयति एष देवयानः पन्थाः ।
अथ य इमे ग्रामे इष्टापूर्तेदत्तम् इत्युपासते ते धूममभिसंभवन्ति अथैतया पथोर्न कतरेण चना । तानीमानि सुद्राण्यसकृ दा वर्तीनि भूतानि भवन्ति जायस्व म्रियस्वेत्येतत् तृतीयं स्थानं तेनासौ लोको न संपूर्यते ।

दैवीजनी- (१) देव अर्थात् परमात्मा से उत्पादित पशु, पक्षी, कीट पतंग आदि (२) प्राणों से उत्पन्न उपप्राण ।
'केन दैवजनीर्विशः'
अ. १०.२.२२

दैवत- देवता + अण् = दैवत । देवताम् अधिकृत्य कृतम् दैवतम् (जो देवता के आश्रय से किया जाय वह दैवत है) ।
वेद में जो ऋचा जिस देवता को लक्ष्य कर कही जाती है वह ऋचा उसी देवता के नाम से कही जाती है ।
(यानि नामानि प्राधान्यस्तुतीनां देवतानाम् तत् दैवतम्)

दैववात्- (१) सूर्यवत् तेजस्वी और वात के समान शत्रुओं को उखाड़ फेंकने वाला ।
'वृचीवतो दैववाताय शिक्षन्'
ऋ. ६.२७.७

दैव्या- द्वि.व. (वि.) (१) विद्वानों में उत्तम तथा ज्ञानानदि में कुशल स्त्रीपुरुष (२) दिनरात ।

दैव्यजन- (१) विद्वानों में कुशल, (२) ईश्वर भक्त, (३) राजा द्वारा नियुक्त ।
'अचित्तीयच्चकृमा दैव्येजने'
ऋ. ४.५४.३, तै.सं. ४.१.११.१, मै.सं. ४.१०.३,१४९.१६.

दैव्यंमधु- (१) मेघस्थजल, (२) देव तथा विद्वानों

के योग्य अन्न और ज्ञान ।
'वनस्पते मधुना दैव्येन'
ऋ. ३.८.१, मै.सं. ४.१३.१,१९९.२, का.सं. १५.१२, ऐब्रा. २.२. ४. तै.ब्रा. ३.६.१.१, नि. ८.१८.
(३) देवसम्बन्धी घृत- (४) घृत और मिष्ठान्न-दया. ।
' अञ्जन्ति त्वामध्वरे देवयन्तो
'वनस्पते मधुना दैव्येन'
ऋ. ३.८.१
हे खदिर या पलाश का यज्ञयूप, तुझे अध्वर्युजन (देवयन्तः) यज्ञ में यज्ञ -सम्बन्धी घृत से (दैव्येन मधुन्ता) सिक्त या मृष्ट करते हैं (अञ्जन्ति) ।
हे गार्हपत्य अग्नि, (वनस्पते) तुझे हिंसा रहित बलिवैश्वदेव यज्ञ में (अध्वरे) अपने देवभाव की कामना करने वाले गृहस्थ (देवयन्तः) मिष्टान्न और घृत से (दैव्येन मधुना) प्रकाशित करते हैं (अञ्जन्ति) ।

दैव्यं मनः - (१) विद्वानों का मननशील चित्त ।
'मा युष्महि मनसा दैव्येन'
अ. ७.५२.२

दैव्यंवचः- ईश्वर की वाणी वेद ।
'वृणानो दैव्यं वचः'
अ. ७.१०५.१

दैव्यं ब्रह्म- (१) देवअर्थात् आत्मसम्बन्धी ब्रह्मबल, (२) ईश्वरीय वेदज्ञान ।
'युनज्मि त्वा ब्रह्मणा दैव्येन'
अ. ७.७८.२, तै.सं. १.६.२.१,१०.१, मै.सं. १.४.१, ४७.६, १.४.५, ५२.१८, का.सं. ४.१४,३१.१५ आप श्रौ.सू. ४.६.४, कौ.सू. ३.१.
(३) दैवसम्बन्धी वेदराशि-सा. (४) देवजनों का अन्न -दया. ।
'द्रप्सं स्कन्नं ब्रह्मणा दैव्येन
विश्वेदेवाः पुष्करे त्वाददन्त'
ऋ. ७.३३.११, नि. ५.१४.
मैत्रा वरुण के वीर्य के स्खलित होने पर दैव सम्बन्धी वेदराशि से विश्वेदेवों ने तुझे जल कलश में रखा ।
अथवा, देवों के अन्न के निर्म्मित सूर्य की किरणों ने तुम जल को अन्तरिक्ष में धारण किया ।

दैव्यःश्लोक:- (१) विद्वानों की देवोचित स्तुति, (२) परमेश्वर से प्राप्त श्लोक -वेदवाणी
'इन्द्रं श्लोको महि दैव्यः सिषुक्तु'
ऋ. ७.९७.३

दैव्याः ऋषयः- (१) दिव्यगुण सम्पन्न अथवा देव आत्मा से सम्बद्ध अथवा देव इन्द्रियमय ऋषि गण, (२) ज्ञान के साधन आंख, नाक, कान, मुख, त्वचा, रसना आदि ज्ञानेन्द्रियां
'मानो हासिषुर्ऋयोदैव्या ये'
अ. ६.४१.३

दैव्याहोतारा- द्वि.व. । दैव्यो होतारौ (देव सम्बन्धी दो होता) । अर्थ- (१) देवताओं के होता अग्नि और आदित्य ।
(२) दिव्य गुण सम्पन्न सुख कारक अग्नि और वायु ।
'दैव्या होतारा प्रथमा सुवाचा'
ऋ. १०.११०.७, अ. ५.१२.७, वाज.सं. २९.३२, मै.सं. ४.१३.३, २०२.७, का.सं. १६.२०.तै.ब्रा. ३.६.३.३, नि. ८.१२.
देवताओं के होता अग्नि और आदित्य जो मनुष्य होताओं से प्रथम, मुख्य या बढ़कर है और जो सुस्तुत या सुन्दर स्तुति युक्त है । मनुष्य जीवन के लिए मुख्य (प्रथमा) वाणी आदि इन्दियों को उत्तम बनाने वाले (सुवाचा) अग्नि और वायु (दैव्या होतारा) (३) दुर्ग के मत से वायु और अग्नि ।
(४) दिव्य गुण-संपन्न अग्नि और वायु । (दया.) (५) प्राण और अपान वायु- ऐ.ब्रा. ।
'प्राणपानौ वा दैव्या होतारा'

दैवी - देव अर्थात् इन्द्रियों की शक्ति को बढ़ाने वाली ओषधि ।
'दैवीमर्नुष्यजा उत'
अ. ११.४.१६

दैवीक्षितिः- (१) जल प्रदान करने वाली मेघों से हरी भरी रहने वाली भूमि, (२) मनः कामना पूर्ण पति के अधीन रहने वाली दारा, (३) दानशील, राजा के पीछे चलने वाली प्रजा ।
'अग्निर्नेता भगइव क्षितीनाम्'
दैवीनां देव ऋतुपा ऋतावा'
ऋ. ३.२०.४, कौ.ब्रा. १५.२.

दैवीधी- (१) पूज्य परमेश्ववर तक पहुंचा देने

वाली धी, (२) ध्यान धारणावती योग-समाधि
'दैवीन्धियं मनामहे'
वाज.सं. ४.११.तै.सं. १.२.३.१, ६.१.४.४. मै.सं. १.२.३, ११.६, ३.६.९, ७२.७, का.सं. २.४, २३.५. श.ब्रा. ३.२.२.१७, आप. श्रौ.सू. १०.१७.९.

दैवीपूतिः- (१) देवों या विद्वानों को पालने की उत्तम व्यवस्था दक्षिणा ।
'दैवी पूर्तिर्दक्षिणा देवयज्या'
ऋ. १०.१०७.३

दैवीः विश- दर्शनशील आत्मा के भीतर प्रविष्ट प्राण आदि प्रजाएं-प्राणगण ।
'इन्द्रं दैवीर्विशो मरुतोऽनुवर्त्मानः'
वाज.सं. १७.८६, तै.सं. ४.६.५.६, मै.सं. २.११.१, १४०.७, ३.३.१०. ४४.१३, का.सं. १८.६, २१.२०.

दैवीस्वस्ति- (१) देव, परमेश्वर और विद्वानों द्वारा सम्पादित कल्याण एवं सुख शान्ति ।
'दैवी स्वस्तिः परिणःस्यातम्'
ऋ. ३.३८.९
(२) देवों का अनुग्रह- (३) देवताओं से प्राप्त कल्याण-आधिदैविक कल्याण-
'देवी स्वस्तिरस्तुनः'
ऋ.खि. १०.१९१.५, मै.सं. ४.१३.१०, २१४.१४. श.ब्रा. १.९.१.२७, तै.ब्रा. ३.५.११.१, तै.आ. १.९.७, ३.१.

देवोदास - द्युलोक में उत्पन्न होने वाला -अग्नि ।
'प्र दैवो दासो अग्निः'
ऋ. ८.१०३.२, साम. १.५१, २.८६७, साम. वि. ब्रा. ३.५.५.

द्यो - (१) दिव् + डो (गमेर्डो) = द्यो । अर्थ है- स्वर्ग । भासा स्वृतः भवति (प्रकाश से सर्वत्रः व्याप्त रहता है) । संस्पृष्टा ज्योतिभिः पुण्यकृद्भिश्च (ज्योतियों तथा पुण्यवानों से संस्पृष्ट)
(२) द्यौः द्योतनात् (स्वप्रकाश से चमकने वाला, (३) द्युलोक ।
पुनः -
'द्यावा नः पृथिवीं इमं सिध्रमद्य दिविस्पृशम् यज्ञं देवेषु यच्छताम्'
ऋ. २.४१.२०, तै.सं. ४.१.११.४, मै.सं. ४.१०.३, १५०.१५. नि. १०.३८
हे द्यौ और पृथिवी, हमारे स्वर्ग आदि के साधक (सिध्रम्) देवों को पहुंचाने वाले (दिवस्पृशम्) इस यज्ञ को (इमं यज्ञम्) देवों के लिये दो (देवेषु यच्छतम्) । पुनः

दोग्ध्री - दूध देने वाली गौ ।
'दोग्ध्री धेनुः'
वाज.सं. २२.२२, तै.सं. ७.५.१८.१, मै.सं. ३.१२.६, १६२.८, का. सं. (अश्व.) ५.१४, श.ब्रा. १३.१.९.३. तै.ब्रा. ३.८.१३.१.

दोघ - सुखदायक रूप ।
'उरु दोघं धरुणं देवरायः'
ऋ. ५.१५.५

द्रोघ - द्रोह
'द्रोघवाचस्ते निर्ऋथंचन्ताम्'
ऋ. ७.१०४.१४, अ. ८.४.१४.

द्रोण - (१) अरणी काष्ठ, (२) कुण्डपात्र (३) जाने योग्य मार्ग, (४) राष्ट्र (५) विश्व ।
'क्रत्वा हि द्रोणे अज्यसे
अग्ने वाजी न कृत्व्यः'।
ऋ. ६.२.८
(६)गति करने का स्थान कलश,(७) शरीर जिसमें सोमरूप आत्मा निवास करता है ।
'अभिद्रोणान्यासदम्'
ऋ. ९.३.१, ३०.४, साम. २.६०६
(८) द्रुनमय - काष्ठ निर्मिति । दोन जो काठ का बनाया जाता है इसके द्वारा कूप से या आहर से जल निकाला जाता है ।
'द्रोणाहावमवतमश्मचक्रम्'
ऋ. १०.१०१.७, नि. ५.२६.
लकड़ी का बना द्रोण ही जिस रस का निधान है उस द्रोणाहाव की रक्षा करो ।

द्रोणकलश - (१) सोम धारण के लिए कलश, यज्ञ में सोम रखने का पात्र ।
'वायव्यानि च मे द्रोण कलशश्च मे'
वाज.सं. १८.२१, मै.सं. २.११.५,१४३.८, का.सं. १८.११.
'द्रोणकलशाः कुम्भ्यः'
अ. ९.६.१७

द्रोणसाक्- (१) राष्ट्र या कलश में विद्यमान, (२) देह रूप घट में व्यापक आत्मा ।
' एवा पतिं द्रोमसाचं सचेतसम्'
ऋ. १०.४४.४, अ. २०.९४.४

(३) राष्ट्र की सेवा करने वाला ।

द्रोणाहाव- (१) द्रोण + आहाव । काष्ठ के बने जलपान पात्र से युक्त कूप (३) द्रोण काष्ठ निर्मित पानी पटाने का एक यन्त्र और आहाव निपान का वाचक है । ये दोनों शब्द कूप रूप संग्राम के विशेषण हैं । संग्राम ही कूप है । आहाव का अर्थ संग्राम भी है । इसमें शूर वीर आहूत होते हैं ।
ऋ. १०.१०१.७, नि. ५.२६

द्रोण्य - (१) शीघ्रगामिषुभवः -दया. । शीघ्रगामी जन्तुओं में सर्व श्रेष्ठ, (२) वेग से आगे बढ़ने वाला, (३) राष्ट्र में उत्तम ।
' दुद्रुवत् द्रोण्यः पशुः '
ऋ. ५.४०.४

द्योतना - (१) शोभती हुई चमकती हुई कुलवधू या (२) उषा ।
'सिषासन्ती द्योतना शश्वदागात्'
ऋ. १.१२३.४

द्योतनिः - (१) तेजस्वी, (२) प्रकाशवान्,।
'परिद्योतनिं चरतो अजस्रा
ऋ. १०.१२.७, अ. १८.१.३५
(३) चन्द्रमा, (४) चमकती चांदनी, (५) सूर्य की दीप्ति (६) अर्थ प्रकाश से युक्त विद्या, (७) प्रकाशक तेजस्वी राजा ।
'आद्योतनिं वहति शुभ्रयामा'
ऋ. ३.५८.१

दोधत् - (१) भय से कंपा देने वाला दुष्ट पुरुष ।
' विचिद् वृत्रस्य दोधतः '
ऋ. ८.६.६, अ. २०.१०७.३, साम. २.१००२.
(२) हिंसक, दुष्ट ।
'अनानुदो वृषभो दोधतो वधः '
ऋ. २.२१.४
(३) क्रोध करता हुआ, (४) उमड़ता हुआ ।
'इन्द्रो वृत्रस्य दोधतः सानु वज्रेण हीडितः '
ऋ. १.८०.५
सूर्य या वायु उमड़ते हुए (दोधतः) मेघ के ऊपरी भाग को (सानुम्) विद्युत् से (वज्रेण) छिन्न भिन्न करता है (हीडितः) ।

दोधवीति - (१)कंपाता है , (२) स्वच्छ शुद्ध पवित्र करता है ।
'अत्यो न रथ्यो दोधवीति वारान् '
ऋ. २.४.४.

द्रोघवाक्- द्रोह या परस्पर द्वेष की बात कहने वाला ।
'द्रोघवाचस्ते निर्ऋथं सचन्ताम्'
ऋ. ७.१०४.१४, अ. ८.४.१४

दोषण्य - बाहुओं में स्थित ।
'यक्ष्मं दोषाण्यमंसाभ्याम्'
ऋ. १०.१६३.२, अ. २.३३.२, २०.९६.१८, आप.मं.पा. १.१७.२.

दोषणि श्रीः (श्रिस्)- भुजाओं में लिपटी ।
'ममत्वा दोषणिश्रिषम्'
अ. ६.९.२

दोषणी - (१) बाहु के ऊपर के भाग ।
'त्वष्टा चार्यमा च दोषणी'
अ. ९.७.७.

दोषा - दुष् + अच् + टाप् = दोषा । अर्थ है- (१) रात्रि ।
'कुहस्वित् दोषा'
कहां रात बिताई'
आधुनिक अर्थ- (१) रात, (६) बाहु, (३) अन्धकार, (४) दोष, (५) पाप (२) रात्रि का अन्तिम याम ।
'दोषा दयमानः वायसः मामवूबुधत्'
रात के अन्तिम भाग में उड़ता हुआ पक्षी (दयमानः) या सूर्य किरण ने मुझे जगाया (माम् अवूबधत् ।

दोषावस्तः- (१) दिनरात, अहर्निश, ।
'दोषावस्तः दीदिवांसमनुद्यून्'
ऋ. ४.४.९, तै.सं. १.२.१४.४, मै.सं. ४.११.५, १७३.१०. का.सं . ६.११.
'त्वं नः पाह्यंहसः
दोषा वस्तरधायतः'
ऋ. ७.१५.१५

दोषावस्तोः- रातदिन ।
'दोषावस्तोर्वहीयसः प्रपित्वे'
ऋ. १.१०४.१
दिन और रात (दोषावस्तोः) प्राप्त करने योग्य समीप में (प्रपित्वे) ढोकर ले जाने में समर्थ अश्वों को या अश्वारोहियों को (वहीयसः) ....

दोस् - (१) हाथ । शिताम' शब्द से "दोस्' शब्द अभिहित है । ' श्रितम् अंश भागेन इति शिताम

(कन्धे से लटका हुआ है) या 'एतत् श्रितं कार्य भवति' (इसी के आश्रय से कार्य किया जाता है) अतः यह 'शिताम' हुआ है। निरुक्त के अनुसार 'द्रु' (गमनार्थक) + डोसि = दोस् (पृषोदरादिवत्) हुआ। तस्यैव वलेन पशवः द्रवन्ति गच्छन्ति (उसी के बल से पशु चलते हैं)। पशु दोल्ह मार कर या बाहु के बल से चलते हैं। यह 'दोल्ह' शब्द 'दोस्' का ही नाम धातु सा है।

लोक में दम् + डोसि = दोस् बना है। बाहु चलने के समय हिलता है। आधुनिक -बाहु, त्रिज्या का एक अंश।

द्रोः उपस्थः- (१) द्रोण कलश, (२) काष्ठ का बना बर्तन।

दोहत् - 'दुह्' धातु के लेट् प्रथम पुरुष एक वचन का रूप। 'बहुलं छन्दसि' से 'शप्' का लोप नहीं हुआ और 'इतश्च लोपः परस्मैपदेषु' से तिप् के इ का लोप हुआ है। अर्थ है- दोग्धुं प्रक्षारयतु उदकानिं (दुहने के लिये जल प्रक्षारित करें)।

'उपह्वये सुदुघां धेनुमेतां
सुहस्तो गोधुक् उतदोह देनाम्
श्रेष्ठं सवं सविता साविषन्नो
अभीद्धो घर्मस्तदुषु प्रवोचम्'

ऋ. १.१६४.२६, अ. ६.७३.७, ९.१०.४, नि. ११.४३

यहां माध्यमिका वाक् से धेनु का रूपक बांधा गया है। इस सुन्दर दुही जाने वाली माध्यमिका वाक् धेनु को बुलाता हूँ (एतां सुदुघां धेनुम् उपह्वये) और (उत) इसे (एनाम्) दुहने में सिद्ध हस्त (सुहस्तः) गाय दुहने वाला (गोधुक्) इन्द्र जल से प्रक्षारित करें। सविता सभी सवों में उत्तम सव (सविता श्रेष्ठं सवम्) उत्पन्न करने वाला है। अतएव अभिदीप्त मध्यमस्थानीय विद्युत् नामक धर्म (अभीद्धःघर्मः) हमारे लिये जल बनावे (नः सविषत्) अतः (तत्) इन्हीं को यह स्तुति करता हूँ (उसु प्रवोचम्)।

धेनु के अर्थ में अध्वर्यु ही गोधुक हुआ और दूध श्रेष्ठ सव।

दोहनः - प्राप्त कराने वाला, प्रदान करने वाला।

'अभीमृतस्य दोहना अनूषत,
योनौ देवस्य सदने परीवृताः'

ऋ. १.१४४.२,

इसको सब प्रकार से (ईम्) सत्य ज्ञान को प्रदान करने वाले (ऋतस्य दोहनाः) ज्ञानप्रद आचार्य के गृह (योनौ) और विद्याभवन में (सदने) विद्यावान् आप्त पुरुष भी सब प्रकार से उपदेश करें (अभि अनूषत्)

अथवा, जल के दोहन प्राप्त कराने वाली धाराएं (ऋतस्य दोहनाः) मेघ या सूर्य के आश्रय भूत अन्तरिक्ष में (योनौ) विद्यमान होकर भी उस अग्निमय सूर्य या विद्युत् के गुणों को (ईम्) बतलाती है (अनूषत्)

दोहस् - (१) पुत्र कामना को पूर्ण करना, (२) इच्छा-पूर्ति।

'तृतीयमस्य वृषभस्य दोहसे
दशप्रमतिं जनयन्त योषणः'

ऋ. १.१४१.२

जीवात्मा की तृतीय दशा में आने पर (तृतीयमस्य) वीर्य सेक्ता पुरुष के (वृषभस्य) पुत्र -कामना का पूर्ण करने के लिये (दोहसे) स्त्रियां (योषण) दसों उत्तम ज्ञान साधनों से युक्त पूर्णांग बालक को (दशप्रमतिम्) जनती है। यही उत्पन्न जीव के रूप में आत्मा का तीसरा स्वरूप है।

अथवा यौवन में रस सेचन समर्थ पुरुष का तीसरा पूर्ण समर्थ पुरुष का तीसरा पूर्ण यौवन का समय है। कामना-पूर्ति के लिये (दोहसे) जिसे दस धर्म लक्षणों से सम्पन्न पुरुष को प्राप्त कर स्त्रियां सन्तान उत्पन्न करती हैं।

द्वौ - (१) कार्य और कारण (२) प्रकृति और पुरुष

'द्वाभ्यां स्वाहा'

वाज.सं. २२.३४, तै.सं. ७.२.११.१, १९.१, का.सं. (अश्व) २.१,९

(३) प्राण और अपान, (४) महत् और अहंकार, (५) दो।

'द्वाभ्यामिष्टये विंशत्या च'

अ. ७.४.१, वाज.सं: २७.३३, मै.सं. ४.६.२, ७९.६, श.ब्रा. ४.४.१.१५, तै.आ. १.११८, आश्व.श्रौ.सू. ५.१८.५, शां.श्रौ.सू. ८.३.१०.

दौर्जवित्य - (१) दुःख से जीना (२) सासं लेनें के समय फेंफड़ो में पीड़ा होना।

'दौष्वप्र्यं दौर्जीवित्यम्'

ऋ. ४.१७.५, ७.२३.१.

दौर्वत्य - (१) दुःखदायी कष्टप्रद व्रत या कार्य।

'रुद्रं दौर्व्रत्येन'

वाज.सं. ३९.९

दौः स्वप्न्य - (१) बुरेस्वप्न, (२) दुःस्वप्न में होने वाला अनिष्टदर्शन।

द्यौः- (१) वृष्टिकारणभूत द्यौः वृष्टि (वृष्टि का कारण भूत द्यौ)

'द्यौरासीत् पूर्वचित्तिः'

वाज.सं. २३.१२,५४, तै.सं. ७.४.१८.१, मै.सं. ३.१२.१९, १६६.६, का.सं. (अश्व.).४.७, शं.ब्रा. १३.५.२.७

(२) स्वर्गलोक।

'मित्रोदाधार पृथिवीमुतद्याम्'

ऋ. ३.५९.१, तै.सं. ३.४.११. का.सं. २३.१२, ३५.१९. तै.ब्रा. ३.७.२.४, आप.श्रौ.सू. ९.२.६.नि. १०.२२.

मित्र पृथिवी और स्वर्गलोकको धारण या पालन करते हैं।

(३) सूर्य।

'तन्नो मित्रो वरुणोमामहन्ताम्
अदितिः सिन्धुः पृथिवी उतद्यौः'

ऋ. १.९४.१६, ९५.११, ९६.९, ९८.३, १००.१९, १०१.११, १०२.११, १०३.८.१०५.१९, १०६.७.१०७.३, १०८.१३, १०९.८. ११०.९, १११.५, ११२.२५, ११३.२०.११४.११, ११५.६, ९.९७.५८, आ.सं. ३३.४२, ३४.३०,का.सं. १२.१४, मै.सं. ४.१२.४, १८७.६, ८, ४.१४.४.२२०.१२, ऐ.ब्रा. १.२१.१९, तै.ब्रा. २.८.७.२, तै.आ. ४.४२.३.

हमारे इस वचन को मित्र, वरुण, अदितिः, पृथिवी और द्यौ बार बार पालन करें या पूजें।

द्यौ संशित - द्युलोक की शक्तियों में सुशिक्षित

'विष्णोःक्रमोऽसि सपत्नहा
द्यौ संशितः सूर्यतेजाः'

अ. १०.५.२७

ध

धक् - दद् - दा (दो या दीजिए)। दा धातु के लुङ् में मा के योग रूप। च्लि का लोप। यहां लोट् के अर्थ में लुङ् का प्रयोग वैदिक है- अर्थ है। दो या दीजिए।

धक्षुः- भस्म करने वाला अग्नि

'धक्षोर्न वाताः परि सन्त्यच्युताः'

ऋ. १०.११५.४

धनकाम्य - जिसका धन ही इष्ट हो, लोभी।

'ये ऽश्रद्धा धनकाम्याः'

अ. १२.२.५१

धनञ्जय- (१) ऐश्वर्य के लिये विजय प्राप्त करने वाला परमेश्वर।

'धनञ्जयो रणे रणे'

ऋ. १.७४.३, साम. २.७३२, तै.सं. ३.५.११.४, मै.सं. ४.१०.३, १४८.६, का.सं. ८.१६.

ऐश्वर्य के लिये विजय प्राप्त करने वाला परमेश्वर और राजा प्रत्येक रमण योग्य आनन्द प्रद अवसर में सबसे उत्तम पद पर विराजे

(२) संग्राम में शत्रु का धन जीतने वाला इन्द्र का विशेषण।

'विद्या हित्वा धनञ्जयम'

ऋ. ३.४२.६, ८.४५.१३, अ. २०.२४.६

धत्तात् - दास्पति (देगा)। यहां लृट् (भविष्य) के अर्थ में लोट् का प्रयोग हुआ है।

धनजित् - (१) धन ऐश्वर्य द्वारा सत्व को जीतने वाला, (२) सब से अधिक धनी- इन्द्र, परमेश्वर।

'विश्वजिते धनजिते स्वर्जिते'

ऋ. २.२१.१. कौ.ब्रा. २५.७,२६.१६, शां.श्रौ.सू. १८.१७.३.

धनदा - ऐश्वर्यदाता परमेश्वर।

धनपाल - धनाध्यक्ष।

'धनपालो धनवे'

अ. १९.३५.२

धनभक्ष - धन और ऐश्वर्य का सेवन।

'धनभक्षेपु नोऽव'

ऋ. १०.१०२.१

धनम् - धि (प्रीणनार्थक) + क्यु = धन (इदितो नुम् से नुम् का आगम) धिनोति प्रीणयति एतत्स्वामिनम् (यह धन स्वामी को प्रसन्न करता है)। अर्थ है- धन।

'गर्तारुगिव सनये धनानाम्'

ऋ. १.१२४.७, नि. ३.५.

जैसे पतिकुल का धन पाने के लिये दाक्षिणात्य

स्त्री गर्तनामक अक्ष निवापन स्थान पर चढ़ती है। धन के पर्यायवाची वैदिक शब्द।
(१) मघ, (२) रेक्ण (३) रिक्थ, (४) वेद।

धनयन् - धन के समान सञ्चय करे या धन के समान सञ्चय करता हुआ।

धनर्चः- धनैश्वर्यों से अर्चनीय।
'हिरिश्मश्रुंनार्वाणं धनर्चम्'
ऋ. १०.४६.५

धनसः- (१) ज्ञानधन का प्रदाता गुरु (२) धनदाता, (३) बल और ज्ञान का दाता प्राण।
'गोधायसं विधनसैरदर्दः'
ऋ. १०.६७.७, अ. २०.९१.७, मै.सं. ४.१४.१०, २३०.१०. तै.ब्रा. २.८.५.१.

धनसनिः- (१) धन का दाता।
'इहैधि धनसनिः'
अ. १८.४.३८

धनसा- (१) धन का दानी, (२) धन को प्राप्त करने वाला।
'उतत्यं वीरं धनसामृजीषिणम्'
ऋ. ८.८६.४
(३) धन + सन् + विट् = धनसा,। धन का विभाग करने वाला, ऐश्वर्य का दान देने वाला, (४) नाना ऐश्वर्यों को देने वाला।
'सत्राजितो धनसाअक्षितोतयः'
ऋ. ८.३.१५, अ. २०.१०.१, ५९.१, साम. १.२५१, २.७१२, मै.सं. १.३.३९.४६.६, आप.श्रौ.सू. १३.२१.३.
'धनसा धनसातये'
अ. १९.३१.८
(५) ऐश्वर्य का विभाग करने वाला विचारपति।

धनसातिः- ऐश्वर्य का लाभ।
'धनसा धनसातये'
अ. १९.३१.८

धनस्पृत्- (१) ऐश्वर्य धन देने वाला।
'बृहत्केतुं पुरुरूपं धनस्पृतम्'
ऋ. ५.८.२.
(२) धन से पूर्ण और पालन करने वाला।
'प्रवीर मुग्रं विविचं धनस्पृतम्'
ऋ. ८.५०.६
(२) धन की कामना करने वाला।
'येन कण्वं धनस्पृतम्'
ऋ. ८.७.१८
(३) धनैः विद्यासुवर्णादिभिः प्रीतः सेवितः धनीविद्वान् (धन एवं विद्या आदि से सेवित धनी विद्वान्) (४) ऐश्वर्यपूर्ण।
'यं कण्वो मेधातिथि र्धनस्पृतम्'
ऋ। १.३६.१०
जिस ऐश्वर्य से पूर्ण तुझको विद्वान् सत्संग करने योग्य पूज्य अतिथियों वाला गृहस्थ या मेध्यातिथि...।
धन से पूर्ण के अर्थ में
'तं सोतारो धनस्पृतम्'
ऋ. ९.६२.१८

धनस्पृत्- (१) धनों और ऐश्वर्यों का सेवन करने वाला, (२) ऐश्वर्य वान् परमेश्वर या इन्द्र।
'धनस्पृदुग्र सहमानो अन्यान्'
ऋ। ३.४६.२

धन्व- (१) जल, समुद्र।
'न यस्य द्यावापृथिवी न धन्व'
ऋ. १०.८६.६, नि. ५.३.
जिस इन्द्र या परमात्मा की महिमा न द्यौ न पृथिवी और समुद्र ही पाता है।
(२) निर्जल देश।
'धन्व च यत् कृन्तत्रं च'
ऋ. १०.८६.२०, अ. २०.१२६.२०

धन्वचर- (१) मरुभूमि में विचरने वाला, (२) धनुष के बल पर विचरण करने वाला।
'धन्वचरो न वंसगस्तृषाणः'
ऋ. ५.३६.१

धन्वच्युत् - (१) जल बरसाने वाला वायु, (२) धनुष के द्वारा शरवर्षा किरने वाला, (३) धनुष के बल से शत्रुओं को च्युत करने वाला, (४) धनुष को लेकर आगे आने वाला।

धन्वन् - (१) अन्तरिक्ष। अस्मात् आप धन्वन्ति। अन्तरिक्ष से जल निक्लता है)। धवि (गत्यर्थक) + कनिन् धन्वन्।
'यः परस्याः परावतः
तिरो धन्वातिरोचते
स नः पर्षदति द्विषः।'
ऋ. १०.१८७.२, अ. ६.३४.३.
जो अग्नि आदित्य रूप में अवस्थित हो (यः)

अति दूर में भी (परस्याः परावतः) रहकर तीर्णतम इस महान् अन्तरिक्ष को पार कर (तिरःधन्व अति) हम लोगों को प्रकाशित करते या प्रकाश देते हैं (रोचते), वह अग्नि (सः) हमारे शत्रुओं को नष्ट करें। (नः द्विप अति पर्षत्) (२) धनुष।

'धन्वनागाधन्वनाजिं जयेम'

ऋ. ६.७५.२. वाज.सं. २९.३९, तै.सं. ४.६.६.१, मै.सं. ३.१६.३. १८५.१२, का.सं.(अश्व.) ६.१. नि. ९.१७.

धनुष से गौवें और धनुष से संग्राम जीते।

(३) रेत, रेगिस्तान, मरुभूमि (४) अध्यात्म में कर्म।

'समुद्रस्य धन्वन् आर्द्रस्य पारे'

ऋ. १.११६.४, तै.आ. १.१०.३.

समुद्र, रेगिस्तान और अन्तरिक्ष के पार या ज्ञान कर्म और उपासना के पार...।

धन्वन्या – (१) मरुभूमि के उत्पन्न जल (२) मरुदेश में होने वाली जल धाराएं

'शं न आपो धन्वन्याः'

अ. १.६.४, का.सं. २.१, विष्णु स्मृति ६५.५.

धन्वर्णाः– (१) गतियुक्त जल से पूर्ण नदी, (२) स्थान स्थान पर उत्तम ज्ञानवान् उपदेष्टा।

'धन्वर्णसोनद्यखादो अर्णाः'

ऋ. ५.४५.२

धन्वायी – धनुष लेकर विचरने वाला।

'नम इषुमद्भ्यों धन्वायिभ्यश्च वोनमः'

वाज.सं. १६.२२, तै.सं. ४.५.३.१, मै.सं. २.९.४, १२३.९, का.सं. १७.१३.

धन्वासहा – यो धन्वा शत्रून् सहते (जो धनुष से शत्रु को वश में करता है)।

'धन्वासहा नायते'

ऋ. १.१२७.३, साम. २.११६५.

धनुर्धर के समान आगे ही बढ़ता जाता है।

धनिष्ठा– (१) अत्यन्त ऐश्वर्य से सम्पन्न (२) माता

'माता यद्वीरं दधनद्धनिष्ठा'

ऋ. १०.७३.१, वाज.सं. ३३.६४, मै.सं. १.३.२०, ३७.१०, का.सं. ४.८, तै.ब्रा. २.८.३.५.

धनी– धनवाला।

'वधीर्हि दस्युं धनिनं धनेनम्'

ऋ. १.३३.४

पीड़ाकारी धनैश्वर्ययुक्त मदमत्त पुरुष को भी अवश्य विनष्ट कर।

धनु– धनुष।

'धनोरधि विषुणक् ते व्यापन्'

ऋ. १.३३.४

हे प्रजाओं में अधर्म से घुसकर रहने वालों का विनाशक परमेश्वर (विषुणक्), वे तेरे धनुष पर ...।

धनुत्री – (१)सबको प्रसन्न करने वाली (२), धन, धान्य और बल को रखने वाली।

'द्युभिर्हिन्वन्ति अक्तुभिः धनुत्रीः'

ऋ. ३.३१.१६

(३) सन्मार्ग में प्रेरण करने वाली।

'दश धीरस्य धीतयो धनुत्रीः'

ऋ. ९.९३.१, साम. १.५३८, २. ७६८

धनुः– धवि (गत्यर्थक या वधार्थक) + उसि = धनुष् = धन्वन्ति अपनयन्ति अस्मात् इषवः (इससे बाण निकलते हैं)। अथवा घ्नन्ति अनेन (इससे मारते हैं)। अर्थ है- धनुष्।

'तुविक्षं ते सुकृतं सूमयं धनुः'

ऋ.८.७७.११, नि. ६.३३.

तेरा धनुष बहुवाणवर्षी, सुन्दर कर्मों का करने वाला तथा सुखकर है,।

पुनः –

'धन्वना गा धन्वनाजिं जयेम
धन्वना तीव्राः समदो जयेम।
धनुः शत्रो रपकामं कृणोति
धन्वना सर्वाः प्रदिशो जयेम।'

ऋ. ६.७५.२, वाज.सं. २९.३९, तै.सं. ४.६.६.१, मै.सं. ३.१६.३, १८५.१३, का.सं. (अश्व.) ६.१, नि. ९.१७.

हम धनुष से शत्रुओं की गौएं जीते या जीतते हैं, धनुष से संग्राम जीतते हैं। (धनुषा आजिं जयेम्)। धनुष शत्रुओं की योजनाओं को सफल कर देता है। धनुष से अत्यन्त मत्त सेना भी जीतते हैं (धन्वना तीव्राः समदः) और धनुष से ही हम सारी दिशाएं और अपदिशाएं जीतते हैं। (धन्वना सर्वाः प्रदिशः जयेम)।

धनुष्कार – धनुष आदि बनाने वाला शिल्पी।

'हेत्यै धनुष्कारम्'

वाज.सं. ३०.७, तै.ब्रा. ३.४.१.३.

धनुष्कृत् - धनुष बनाने वाला
'नम इषुकृद्भ्यो धनुष्कृद् भ्यश्च वो नमः'
वाज. सं. १६.४६, तै.सं. ४.५.४.२, मै.सं. २.९.४, १२३.९, का. सं. १७.१३.

धनूः- धनुषाकार रजो धर्म वाली नाड़ी
'धनूर्बृहत्यक्रमीत्'
अ. १.१७.४

धनेनः- धन + इन = धनेनः । ऐश्वर्य का स्वामी) ।

धमति- गच्छति (जाता है) । धम धातु गत्यर्थक है । स्तुति अर्थ में भी इसका प्रयोग निघण्टु में है ।
गति अर्थ में इसका प्रयोग में ।

धमनि- (सं.) - (१) गर्जना ।
'इन्द्रेषितां धमनिं पप्रथन्नि'
ऋ. २.११.८
(२) नाड़ी । धम (गत्यर्थक) + नि । इसका अर्थ गल्दा किया गया है । 'गालपति असौ' यह नाड़ी शरीर में रस को पहुंचाती है) ।
'आगल्दा धमनीनाम्'
आप.श्रौ.सू. ८.७.१०, नि. ६.२४.
जो सोमरस धमनियों में जा (धमनीनाम् आ) स्वयं धमनी बन जाते हैं (गल्दा)
आधुनिक अर्थ - (१) नरकुल या नरकट, (२) जुलाहे का वस्त्र बुनने का एक यन्त्र जिसे करघा कहते हैं, (३) हारमोनियम का वह भाग जिससे हवा उत्पन्न की जाती है । (४) मानव शरीर की धमनि जो पीपे के समान होती है । (५) नस, (६) गला, (७) गर्दन ।

धमन्ती- धम (गत्यर्थक) + शतृ + ङीष् = धमन्ती । नीचे की ओर जाती हुई ।
'प्रावन् वाणीः पुरुहूतं धमन्तीः'
ऋ. ३.३०.१०, नि. ६.२.
वे जल की ओर जाते हुए नदी तालाब में जाकर प्राणियों की रक्षा करते हैं ।
वाणी का अर्थ जल तथा पुरुहूत का अर्थ नदी है ।

धमित- जलाया हुआ ।
'ते बाहुभ्यां धमितम् अग्निमश्मनि'
ऋ. २.२४.७

धयति- पान करती है य देखती है ।
'धीरमधीरा धयति श्वसन्तम्'
ऋ. १.१७९.४
काम से अधीर लोपामुद्रा अपने धीर पर श्वास लेते हुए पति अगस्त्य को चित्त से पान करती या देखती है ।

धर्णसि- (सं) (१) धारण करने वाला (२) राज्य का कार्यभार धारण करने वाला, (३) सूर्य ।
'आ धर्णसि बृहद्दिवो रराणः'
ऋ. ५.४३.१३
'त्वामग्ने धर्णसिं विश्वधावयम्'
ऋ. ५.८.४
'हरिर्षत धर्णसिः'
ऋ. ९.३७.२, ३८.६, साम. २.६२८, ६४३.
'कद्व ऋतस्य धर्णसि
कद् वरुणस्य चक्षणम्'
ऋ. १.१०५.६
तुम्हारे मूल सत् कारण, सत्य ज्ञान और बल वीर्य का धारण करन वाला कहां है ? सर्वश्रेष्ठ परमेश्वर का साक्षात् दर्शन या ज्ञान कैसा है ?
(३) धैर्य विद्यादि का धारण करने वाला ।
'भगं दक्षं न पपृचासि धर्णसिम्'
ऋ. १.१४१.११
धैर्य विद्यादि के धारण करने वाले क्रिया कुशल ज्ञानवान् सेवन योग्य सुखकर ऐश्वर्य युक्त स्वरूप को प्रदान करता है । (पपृचासि)

धर्णिः- (१) यः धरति' (जो धारण करता है) । अग्नि का विशेषण (२) प्रजाओं को धारण करने में समर्थ ।
'अग्निरीशे वसूनां
शुचिर्यो धर्णिरिषाम्'
ऋ. १.१२७.७
जो शुद्ध, निष्कपट, और इन समस्त प्रजाओं को धारण करने में समर्थ हो (धर्णिः) वही अग्रणी नायक राष्ट्रों, प्रजाओं और ऐश्वर्यों का स्वामी हो । अथवा अग्नि इन सभी का पवित्र धारक है ।

धर्तृ- धारयिता, धारण करने वाला । धृ + तृच् = धर्तृ ।
'पावीरवी तन्यतु रेक पादजो
दिवोधर्ता सिन्धुरापः समुद्रियः
विश्वेदेवासः श्रृणवन् वचांसि मे
सरस्वती सह धीभिः पुरन्ध्या'

ऋ. १०.६५.१३, नि. १२.३०
माध्यमिका ऐन्द्री वाणी (पावीरवी) अन्यों की वाणी का विस्तार करने वाली है (तन्युतुः) लिखा भी है-
'ता विश्वरूपाः पशवो वदन्ति'
वही दिव्या वाणी है। एक चरण वाला अज भी द्युलोक का धारण करने वाला (अजः एकपात् दिवः धर्ता)। कर्मों के साथ (धीभिः सह) हमारी इन बातों को (नः वचांसि) सिन्धुनदी (सिन्धु), समुद्र के जल (समुद्रियःआपः), सभी देवता (विश्वेदेवासः) अनेक प्रज्ञा से उत्साहित या अनेक पुत्री वाली सरस्वती भी (पुरन्ध्या सरस्वती) सुने (श्रृण्वन्)।

धर्त्र- (१) धारण करने में समर्थ (२) चारों ओर दिशाओं को विजय करने में समर्थ वीरता वाला राजा।
'धर्त्रमसि दिवं दृंह'
वाज.सं. १.१८
'धर्त्र चतुष्टोमः'
वाज.सं. १४.२३, मै.सं. २.८.४, १०९.८, का.सं. १७.४, २१.१. श.ब्रा. ८.४.१.२६.

धर्मकृत् - धर्म + कृ + क्विप् = धर्म कृत्। अर्थ है। (१) कृतधर्म, (२) जो धर्म करता है। (३) धर्म-निर्माता।
'इन्द्राय साम गायत
विप्राय बृहते बृहत्
धर्मकृते विपश्चिते पनस्यवे'
ऋ. ८.९८.१, अ. २०.६२.५. साम. १.३८८,२, ३७५. पंच.ब्रा. १३.६ .३, ऐ.आ. ५.२.५.२, आश्व. श्रौ.सू. ७.८.२, शा.श्रौ.सू. ९.५. ९,१२.१२.१२, १८.१३.१०. वै.सू. ४.१.१७, नि. ७.२.
ऐ उद्गाताओं, मेधावी, महान् कृत धर्मा, विद्वान् एवं अपनी स्तुति की अभिलाषा करने वाले इन्द्र के निमित्त (पनस्यवे) बृहत साम पढ़ो।
(४) जगत् के धारण करने योग्य प्रबन्ध को करने वाला परमेश्वर।

धर्मणाम् अध्यक्षः- समस्त धर्मों का अध्यक्ष, साक्षी, द्रष्टाअग्नि, परमेश्वर।
'विशां राजानमद्भुतम्
अध्यक्षं धर्मणाभिमम्'
ऋ. ८.४३.२४

धर्मधृतः- (ब.व.)। एक वचन में (धर्मधृत्) धर्मधृत्। अर्थ-धर्म अर्थात् आत्मा को धारण करने वाले शरीर धारी वात, पित्त और कफ या सप्त धातु।
'यत्रा कृण्वन् धर्मधृतो नमांसि'
अ. १.२५.१

धर्मन् - (न.) धृ + मनिन् = धर्मन्। (१) धारण करने वाला, पोषण करने वाला।
'धर्मणे कं स्वधया पप्रथन्त'
ऋ. १०.८८.१, नि. ७.२५.
धारण, रक्षा या अविच्छेद के लिए सुखद अग्नि को (कर्म) हवि, अन्न या पुरोडाश से (स्वधया) बढ़ाते हैं।
(२) जगद्धारक।

धर्मवन्ता- द्वि.व.। धर्मयुक्त अश्विद्वय या स्त्री पुरुष

धर्मा- समस्त जगत् को धारण करने वाला।
'पितुंनु स्तोषं महो धर्माणम् तविषीम्'
ऋ. १.१८७.१, वाज.सं. ३४.७, नि. ९.२५.
मैं आगस्त्य अत्यन्त बल धारण करने वाले (महः तविषीं धर्माणम्) अन्न को (पितुम्) भजता हूं (स्तोषम्)।
'धर्माभुवत् वृजन्यस्य राजा'
ऋ. ९.९७.२३

धर्माणि- धारण करने योग्य। यम नियमादि तपोमय आचरण।
'तानि धर्माणि प्रथमान्यासन्'
ऋ. १.१६४.४३, ५०,१०.९०.१६, अ. ७.५.१, ९.१०.२५, वाज.सं. ३१.१६, तै.सं. ३.५.११.५, का.सं. १५.१२, मै.सं. ४.१०.३, १४८.१६, ऐ.ब्रा. १.१६.३७, श.ब्रा. १०.२.२.२, तै.आ. ३.१२.७, नि. १२.४१.

धरीमन् - (१) धरन्ति सुखानि यस्मिन् व्यवहारे -दया.। (जिस व्यवहार में सुखों को धारण करते हैं)
(२) राष्ट्र को धारण करने का कार्य, (३) धारण करने का कार्य।
'अयं जायत मनुषो धरीमणि'
ऋ. १.१२८.१, ऐ.ब्रा. ५.१२.४, कौ.ब्रा. २३.६, आश्व.श्रौ.सू. ८.१.९,
यह मननशील मनुष्य राष्ट्र के धारण करने के

कार्य में प्रसिद्ध हो ।

धरुण- धृ (धारण करना)+ उनन् = धरुण । 'धर्तुं शीलं यस्य '(धारण करना जिसका स्वभाव है । अर्थ- (१) अविनाशी स्थान-अप्रध्वंसी-सा. (२) धारक शक्ति ।

'आयोर्हस्कम्भ उपमस्य नीडे
पथां विसर्गे धरुणेषु तस्थौ '

ऋ. १०.५.६, अ. ५.१.६

(३) जल जिससे सृष्टि का धारण होता है ।

'धीरा इत् शेकु धरुणेषु आरभम् '

ऋ. ७.७३.३, तै.आ. १.११.१, नि. १२.३२.

बुद्धिमान् पुरुष जल वरसने पर (धीराः धरुणेषु) कृषि कर्म या वैदिक कर्म आरम्भ करते हैं (आरभं शेकु)

धरुणह्वरम्- (१) जिसमें धारक कुटिल हो, (२) आश्रय देने वाला आधार स्वरूप, कुटिल, टेढ़ा मेढ़ा स्थान जिसमें सूर्य का प्रकाश नहीं पहुंचता हो-तम का विशेषण ।

'अपामतिष्ठत् धरुणह्वरं तमः '

ऋ. १.५४.१०

जलों के बीच ऐसा अन्धकार रहता है जो अश्रय देने वाले कुटिल टेढ़े मेढ़े स्थान में सूर्य के नहीं पहुंचने से पाया जाता है ।

धरुणी- विशाल खम्भों या धरणों से युक्त शाला ।

'धरुण्यसि शाले बृहच्छन्दाः '

अ. ३.१२.३

धव- धू (कम्पन, धवन करना)+ णिच्, घञ् या अच् = धव । अर्थ है- (१) मनुष्य, (२) पति (धवः मनुष्यः पतिः वा) धवति धूयते वा (जो धवन करता है, या जो कम्पित किया जाय) ।

'धवः पुमान् नरे धूर्ते
पत्यौ वृक्षान्तरेऽपिच,

- मेदिनीकोष

आधुनिक अर्थ- (१) कांपना, कम्पन, (२) मनुष्य, (३) पति, (४) स्वामी, (५) धूर्त, दुष्ट, ठग, (६) एक प्रकार का वृक्ष ।

(२) धव नामक वृक्ष जिस का फूल उत्तम होता है, (३) सब दुःखों और पाप मलों का नाशक ।

'अश्वत्थः खदिरो धवः

अ. २०.१३१.१४

(४) बबूल का पेड़ ।

'अश्वत्थात्खदिरात् धवात् '

अ. ५.५.५.

धवीयान् - (१) कंपा देने वाला अग्नि (२) सबसे उत्तम पति-राजा ।

'सद्यो यः स्पन्द्रो विषितो धवीयान '

ऋ. ६.१२.५

ध्रजीमान्- (१) बहुत बह से युक्त, ।

'तवचित्तं वात इव ध्रजीमान् '

ऋ. १.१६३.११, वाज.सं. २९.२२, तै.सं. ४.६.७.४

(२) शीघ्र गतिवाला

अहि र्धुनिः वातइव ध्रजीमान '

ऋ. १.७९.१, तै.सं. ३.१.११.४.

पुरुष मेघ के समान (अहिः) ऐश्वर्यदान में निष्पक्ष और वायु के समान वेगवान् एवं उग्र होकर शत्रुओं को कंपाने वाला हो (वात इव ध्रजीमान् धुनिः)

ध्वन्य- उत्तम ध्वनि करने वाला

'उतत्ये मा ध्वन्यस्य जुष्टाः '

ऋ. ५.३३.१०

ध्वर- (१) हिंसा, (२) हिंसामय यज्ञ ।

ध्वरति- हिंसति (हिंसा करता है) । धृ (ध्वर्) धातु हिंसा करना अर्थ में आया है । इसी से 'अध्वर' शब्द बना है । अध्वर का अर्थ है वह यज्ञ जिसमें हिंसा न की जाय ।

ध्वराः- (१) हिंसा करने वाली सेना

'द्रुहं जिघांसन् ध्वरसम् अनिद्राम् '

ऋ. ४.२३.७

ध्वस्- ध्वस् (गिराना) । ध्वसन का अर्थ गिराने वाला मेघ है ।

ध्वसन- ध्वस् + ल्युट् = ध्वसन् । अर्थ है- उदकस्रसन मेघ, जल गिराने वाला मेघ

'मिमाति मायुं ध्वसनावधि श्रिता '

ऋ. १.१६४.२९, अ. ९.१०.७, नि. २.९.

. माध्यमिका वाक् विद्युत् जल के बरसने तक मेघ या जल को बनाती है ।

ध्वसनि- ध्वसन । वर्ण का व्यत्यय आर्ष है । अर्थ है (१)मेघ' । (२) समस्त संसार को ध्वंस करने वाला परमात्मा, (३) प्रलय काल ।

'मिमाति मायुं ध्वसनावधि श्रिता '

ऋ. १.१६४.२९, अ. ९.१०.७, नि. २.९.

ध्वसन्ति- (१) अधोगन्तापापी, (२) शत्रु नगरों का

ध्वसंक ।
'याभिः ध्वसन्तिं पुरुषन्तिमावतम्'
ऋ. १.११२.२३
जिन रक्षा साधनों से तुम शत्रु नगरों के ध्वंस करने वाले (ध्वसन्तिम्) और बहुत ऐश्वर्य देने वाले की रक्षा करते हो (पुरुषन्तिम् आवतम्)।

ध्वम्रा - (१) नगरादि को ध्वस्त करने वाली नदीं (२) शत्रुओं के किलों को तोड़ने वाली सेना, (३) खेदनाश करने वाली स्त्री या सन्मार्ग से चलने वाली अध्वम्रा ।
'ध्वम्रा अपिन्वत् युवतीःऋतज्ञाः'
ऋ. ४.१९.७

ध्वम्रिः- दुःखों को नाश करने वाला ।
'ध्वम्रयोः पुरुषन्त्योः
आ सहम्राणि दद्महे'
ऋ. ९.५८.३, साम. २.४०.९

ध्वसयन् - (१) गिरता पड़ता बालक (२) नाश करता हुआ ।

ध्वसिर - नष्टभ्रष्ट, पराजित ।
'सं भूम्या अन्ता ध्वसिरा अदृक्षत
ऋ. ७.८३.३

ध्वस्मानः- विध्वंस करने वाला ।
'न ध्वस्मानः तन्वीरेप आधुः'
ऋ. ४.६.६, तै.सं. ४.३.१३.१.

धाणिका- (१) प्रजा को भरण पोषण करने वाली कणिका, (२) अन्न कणिका, (३) सर्वपोषक पृथिवी, ।
'शीर्ष्णा हरति धाणिकाम्'
अ. २०.१३६.१०, शां.श्रौ.सू. १२.२४.२.५.

धात्- मानो रिषे धात् । मेघ हमारे हिंसक को न दे ।

धाता - (१) राष्ट्र का सन्निधाता नामक अधिकारी
'धातारातिः सवितेदं जुषन्ताम्'
अ. ३.८.२, ७.१७.४, वाज.सं. ८.१७, तै.सं. १.४.४४.१, मै.सं. १.३.३८, ४४.४, का.सं. ४.१२, १३.९, १०. श.ब्रा. ४.४.४.९.
(२) धा + तृच् = धातृ । सभी जीवों का उत्पादित आदित्य, (३) विश्वकर्मा, (४) आत्मा, (५) प्रजापति, (६) ब्रह्मा, ।
'धाता विधाता परमोत संदृक्'
ऋ. १०.८२.२, वाज.सं. १७.२६, तै.सं. ४.६.२.१, ५.७.४.३, का.सं . १८.१, नि. १०.२६.
सभी जीवों का उत्पादयिता धाता अन्न आदि आजीविका का म्रष्टा (विधाता) तथा प्रकृष्ट संदृष्टा (परमासंदृक्) ।
आधुनिक अर्थ - ब्रह्मा, स्रष्टा, आत्मा, विष्णु का विशेषण, सप्तर्षियों की एक संज्ञा, विवाहिता स्त्री का उपपति ।
(६) वायु ।
'धातर्विधातः कलशानभक्षयम्'
ऋ. १०.१६७.३, नि. ११.१२.
हे वायु और हे मृत्यु । (धातः विधातः) मैं ने ऐश्वर्य कलाओं का भक्षण किया (कलशान् अभक्षयम्) ।
'धात्रे विधात्रे समृधे'
अ. ३.१०.१०

धातु- (१) पुष्टि कारक, ।
'अत्यं हविः सचते सच्च धातु'
ऋ. ५.४४.३
(२) धन (धारण या पोषण) + तुन् = धातु । हिरण्य आदि द्रव्य जिससे धारण या पोषण होता है ।
आधुनिक अर्थ- (१) द्रव्य, (२) मुख्य तत्व जैसे पृथ्वी, अप्, तेजस् , वायु और आकाश, (३) शरीर के मुख्य तत्व-रसा, सृक् , मांस, मेदस् अस्थि, मज्ञा, शुक्र, कश, त्वच् और स्नायु (४) वात, पित्त, कफ, (५) सुवर्ण आदि द्रव्य, (६) क्रिया के धातु (७) आत्मा (८) पापात्मा (९) इन्द्रिय, (१०) रूप, रस, गन्ध, स्पर्श और शब्द ।

धान- अग्नि से पकाया विशेष पुष्टि कारक अन्न
'दिवे दिवे सदृशी रद्धिधानाः'
ऋ. ३.३५.३

धानाः- (१) भुने धान, (२) धारण पोषण करने वाली गौएं ।
'धानाः करम्भः सक्तवः'
वाज.सं. १९.२१
(३) लाजा, लावा ।
'धानानां न सं गृभाय'
ऋ. ८.७०.१२
(४) राष्ट्र को धारण करने योग्य सेना, (५) ऐश्वर्य युक्त , प्रजा ।

'हरिवते हर्यश्वाय धाना '
ऋ. ३.५२.७
(६) नित्य बहुवचनान्त और स्त्रीलिंग। इन्द्र के अश्वों के भाग के धाना कहते हैं। 'अस्य हर्योःभागः धानाः'
(७) अमरकोष में-
' धाना भृष्टयवे स्त्रियः '
(८) इन्द्र के घोड़ो का भाग ऋजीष भी कहलाता है। इन्द्र को ऋजीषी कहा है।
धाना भ्राष्टे हिता भवति (धाना भार में पकने के लिए डाली जाती है। या भार से निकाल कर जो दूसरे पात्र में रखी जाती है, वह धाना है। (फले हिता भवन्ति)।
(९) काल को धारण करने वाली दिन रात या किरणें, (१०) आत्मा को धारण करने वाली नाड़ियां (११) समस्त ऐश्वर्यों को धारण करने वाली प्रजाएं।
'नक्षत्राणां वा एतत् रूप यत् धानाः'
तै.सं.
'अहो रात्राणां वा एतत् रूपं यत् धानाः'
श.ब्रा. १३.२.१.४
आधुनिक अर्थ- भुना हुआ यव या चावल, भुना या पीसा अन्न्, अन्न, दाना, कली धाना से ही दाना (जलपान) बना है।
'धानाः सोभानां इन्द्राद्धि च
पिव च वन्धां ते हरी धाना
उपऋजीषं जिघ्रताम् '
हे इन्द्र, खा इन धानों को और सोमों के रस भी पी और ये तेरे अश्व भी धाना को खावें तथा ऋजीष को भी सूंघें (ऋजीषं च उप जिघ्रताम्, आज भी घोड़ो को दाना देने की प्रणाली है।
(१२) उजले प्रकाशमान दिन, (१३) चावल, (१४) उज्ज्वल, नक्षत्र, (१५) पशु।
'पशवो वै धानाः' गो.ब्रा. ३७.४६
'यास्ते धाना अनुकिरामि '
अ. १८.३.६९, १८.४.२६, ४३.
(६) लोक को धारण करने में समर्थ गौए।
'कृष्ण धाना रोहिणी धेनवस्ते '
ऋ. १८.४.३४
धानावान् - (१) धारण पोषण करने वाली नाना गौओं या शक्तियों से युक्त।
'धानावन्तं करम्भिणम् '
ऋ. ३.५२.१, ८.९१.२, साम. १.२१०. वाज.सं. २०.२९, आश्व.श्रौ. सू. ५.४.२.
(२) भुना जौ वाला, (३) सूक्ष्म तत्व स्पष्ट हो जाने पर धाना है, (४) आधान संस्कार से युक्त पुत्र, (५) रक्षण पालन करने की शक्तिवाला।
धान्याकृत्- (१) धान्य की रक्षा करने वाला, (२) धान काटने वाला।
'वपन्तो बीजमिव धान्याकृतः '
ऋ. १०.९४.१३
धामः- (१) स्थान।
'कदा ते मर्ता अमृतस्यधामे
यक्षन्तो न मिनन्ति स्वधावः '
ऋ. ६.२१.३.
हे बलवान्, तुझ अमर के स्थान में मनुष्य कभी यज्ञ के इच्छुक हो हिंसा नहीं करते।
धाम- (न) दाम,
'सर्वाधामानि मुञ्चतु '
अ. ७.८३.१
'धाम्नो धाम्नो राजन्
इतो वरुण मुञ्च नः ।'
अ. ७.८३.२, वाज.सं. ६.२२, तै.सं. १.३.११.१, मै.सं. १.२.१८. २८.५, का.सं: ३.८, शां.श्रौ. ३.८.५.१०, आश्व. श्रौ.सू. ३.६.२४, शा.श्रौ.सू. ८.१२.११.
'को अस्या धाम कतिधा व्युष्टिः '
अ. ८.९.१०
धामच्छत् - (१) तेज धारण करने वाला सूर्य, (२) अग्नि, (३) सूर्यवत् राजा।
'धामच्छदग्नि रिन्द्रो ब्रह्मा '
वाज.सं. १८.७६, श.ब्रा. १०.१.३.८.
धामधाः - तेजों धारण सामर्थ्यों और लोकों को धारण करने वाला।
'त्वमिन्दो प्रथमो धामधाअसि '
ऋ. ९.८६.२८
धामन् - (१) धा + मनिन् = धामन् (जो धारण करता है-स्थान, रहने की जगह।
'आरात्रि पार्थिवं रजः
पितुरप्रायि धामभिः '
अ. १९.४७.१, वाज.सं. ३४.३२, नि. ९.२९.
(२) स्तोत्र - सा (३) तेज-दया.।

'पुरुप्रियो भन्दते धामभिः कविः'
ऋ. ३.३.४, नि. ५.२.
बहुत मनोरथों वाला विद्वान् (पुरुप्रियः कविः)। अग्नि को स्तोत्रों से (धामभिः) स्तुति करता है। (भन्दते)-सा.। वह बहुप्रिय की कवि अपने तेजों से वेद का बखान करता है। दया.। पुनः

धामनी- (द्वि.व.) दोनों धारण करने वाले आकाश और पृथिवी (२) उत्तर और दक्षिण अयनों के तुल्य इह और पर, (३) प्राण और अपान, (४) जाग्रत और स्वप्न दोनों अवस्था।
'ताभ्यां विश्वस्य राजसि
ये पवमान धामनी'
ऋ. ९.६६.२.

धामधर्मन् - तेजों मय की धाम या पद और प्रत्येक धर्म या कर्त्तव्य।
'धामधर्मन् विराजति'
अ. २०.४९.३

धामसाच् - तेज को धारण करने वाला इन्द्र (सूर्य), परमेश्वर।
'धामसाचम् अभिषाचं स्वर्विद्म'
ऋ. ३.५१.२

धामहे - दधीमहि, धारयामः (धारण करें, पालन करें)। (धारण करना) के लेट् का रूप। शप् का लोप।
'उषस्तच्चि त्रमाभर
असम्भ्यं वाजिनीवति
येन लोकं च तनय ञ्च धामहे'
ऋ. १.९२.१३, साम. २.१०८१, वाज.स. ३४.३३. आश्व. श्रौ.सू. ४.१४.२, नि. १२.६.
हे हविरूपी अन्न से युक्त उषा (वाजिनीवति उषः) हमारे लिए (अस्मभ्यम्) सुन्दर मनोहर उस धन को दे (चित्रंतम् आभर) जिससे पुत्र को (तोकम्) तथा पौत्र को (तनयम्) पालें पोसें (धामहे)

धामशः - धारण सामर्थ्य या ग्रहण शक्ति के अनुसार।
'तेषाभिष्टानि विहितानि धामशः'
ऋ. १.१६४.१५, अ. ९.९.१६, तै. आ. १.३.१, नि. १४.१९.

धायस् - (१) योद्धाति सर्वाणिं कर्माणि (जो सभी कर्मों को धारण करता है। (२) सबका पालन पोषण करने वाला पुरुष।
'यो रातहव्योऽवृकम् धायसे'
ऋ. १.३१.१३
जिसे हव्य दिये जाते हैं, वह अग्नि या परमेश्वर अहिंसक तथा सबका पालन पोषण करने वाले के लिए....।
'स्वः स्वाय धायसे'
ऋ. २.५.७
(३) कार्यभार को उत्तमरीति से धारण करने वाला अधीनस्थ पुरुष।
'धायोभिर्वायो युज्येभिरर्कैः'
ऋ. ६.३.८

धाय्यारूप- (१) यज्ञ में 'यज' इस प्रकार से कहना धाय्या नाम ऋचा पढ़ने के समान है, (२) धारण या ग्रहण करने योग्य पदार्थ का उत्तम रूप।
'यजेति धाय्यारूपम्'
वाज.सं. १९.२४.

धायि - धत्ति (धारण करता है)। धा धातु के कर्तृवाच्य में और लुङ् में च्लि का चिण् हो जाता है तथा युक् और अट् का आगम नहीं होता। अर्थ है ध्यान करता है, मन रखता है, धारण करता है।
'यादृश्मिन् धायि तमपस्यया विदत्'
ऋ. ५.४४.८, नि. ६.१५.
यजमान जिस कामना में मन रखता है उसे वह क्रिया या फल रूप से प्राप्त करता है।

धायुः - सब को धारण पोषण करने वाला।
'यस्मै धायु रदधामर्त्याय'
ऋ. ३.३०.७

धारका - (१) ऐश्वर्य धारण करने में समर्थ प्रजा, (२) गर्भधारण करने में समर्थ स्त्री।
'निगल्गलीति धारका'
वाज.सं. २३.२२, श.ब्रा. १३.२.९.६.

धारयत्कवी- द्वि.व. (१) क्रान्त दर्शी प्रकाश को धारण करने वाला द्यावा पृथिवी (२) आत्म दर्शी विद्वानों को धारण करने वाले पतिपत्नी।
'ऋतावरी रजसो धारयत्कवी'
ऋ. १.१६०.१

धारपूत- (१) धारा का अर्थवाणी है (नि. १.११)। जिसकी धारा अर्थात् वाणी पवित्र हो-यस्य वाणी पूता। (-दया.)

धारयत् क्षितिः - (१) पृथ्वी को धारण करने वाली अदिति अर्थात् अविनाशी अखण्ड आकाश (२) निवास करने वाले प्राणियों और मनुष्यों को धारण करने वाली पृथिवी ।
'ज्योतिष्मती मदितिं धारयत् क्षितिम्'
ऋ. १.१३६.३

धारयन् - धारयन्ति, रखते हैं) ।
'देवा अग्नि धारयन् द्रविणोदाम्'
ऋ. १.९६.१-७, मै.सं. ४.१०.६, १५७.१३, १५, नि. ८.२.
उस धन दाता अग्नि को (द्रविणो दाम्) दानादियुक्त ऋत्विज (देवाः) गार्हपत्य रूप में धारण करते हैं (धारयन्)
अथवा, इन्द्र आदि देव ही हविर्दाता अग्नि को हवि पहंचाने वाला बनाकर रखते हैं (धारयन्)
विद्वान् लोग जिस धनदाता अग्नि को धारण करते हैं । (दया.)

धारयुः- (१) धारण युक्त, (२) धारा या वेदवाणी का स्वामी, (३) धारायुक्त सोमरस ।
'त्वं सोमासि धारयुः'
ऋ. ९.६७.१, साम. २.६७३
(४) राष्ट्र, विश्व या देह को धारण करने वाली शक्ति, आज्ञा या वाणी का स्वामी, (६) सोम

धारवाकः- (१) राष्ट्रधारक उपदेशक पुरुष, (२) शास्त्र वाक् का उपदेशक (दया.) ।
'धारवाकेष्वृजुगाथ शोभसे'
ऋ. ५.४४.५

धारा- (१) जल की धारा ।
'धारा उदन्या इव'
ऋ. २.७.३, का.सं. ३५.१२, आप.मं.पा. १.५.५, हि.गृ.सू. १.२०.५, २९.२.२.१.३.
(२)वाणी (नि. १.११)
'आदित्या सः शुचयो धारपूताः'
ऋ. २.२७.२
(३) धाराप्रवाह ।
'सृजो विधारा अव जानवं हन्'
ऋ. ५.३२.१, नि. १०.९
हे इन्द्र, तूने मेघ या वृत्र नामक दानव को मारकर उन्मुक्त जल धाराओं को छोड़ा ।
आधुनिक अर्थ - (१) नदीया जल की धारा (२) नीचे गिरते हुए जल की पंक्ति, (३) जोरों की वृष्टि, लगातार पंक्ति, (४) घड़े का छिद्र, (६) अश्व का पादप्रक्षेप, (७) किसी वस्तु का छोर (८) खड्ग या किसी अस्त्र की तीव्र धार, (९) पर्वत का किनारा या ढरकाऊ भाग, (१०) चक्का या चक्के की धार, (११) वाटिका की दीवाल या घेरा, (१२) उच्चतम बिन्दु, (१३) झुण्ड, (१४) प्रसिद्ध, (१५) रात्रि, (१६) हल्दी का पौधा । (१७) सादृश्य, (१८) कान का छोर

धारावराः- (१) मेघ की जलधारा को आवृत करने वाले मरुद्गण, (२) वाणी को धारण करने वाले या वाणियों की प्राप्ति के लिए अपने अधीन अवर अर्थात् नव शिष्यों को धारण करने वाले आचार्य, (३) धारा, स्वामी या नामक के अधीन रहने वाले वीर पुरुष ।
'धारावरा मरुतो धृष्ण्वोजस्वः'
ऋ. २.३४.१, ऐ.ब्रा. ५.२.१५, कौ.ब्रा. २१.४, २२.५, तै.ब्रा. २.५.५.४.

धार्या - पात्र आदि में रखा जल ।
'धार्याभ्यः स्वाहा'
वाज.सं. २२.२५

धारुवत्सः- दूध पीने से वाले बालक ।
'वत्सो धारुरिव मातरम्'
ऋ. ४.१८.२

धावत्- (१) भागता हुआ, (२) युद्ध से पलायनमान
'यो धावद्भि हूयते यश्च जिग्युभिः'
ऋ. १.१०१.६

धावमानः - धाव + शानच् = धावमान । अर्थ- दौड़ता हुआ- सूर्य का विशेषण ।
विश्वेषां त्मना शोभिष्ठम्
उमुपेव दिवि धावमानम् ।
ऋ. ८.३.२१

धाः- (१) धारण कर (२) बना ।
'अथा नो धा अध्वरं देववीतौ'
ऋ. ३.१७.५
दिव्यगुणों की प्राप्ति के लिये (देववीतौ) हमारे हिंसा रहित यज्ञ को (अध्वरम्) धारण कर (धाः) दया. । तदनन्तर हमारे यज्ञ को (अथा नःअध्वरम्) देवताओं के प्रसन्न कारक बना (देववीतौ धाः) ।

धासिः - (१) दूध पान करने वाला-बालक,

(२) किरणों द्वारा जलपान करने वाला सूर्य, (३) जगत् का धारक परमेश्वर ।
'प्रय आरुः शितिपृष्ठस्य धासेः'
ऋ. ३.७.१
(४) विद्यासुखधारक (५) प्राण गण का धारक आत्मा (७) अन्न जिससे शरीर का धारण पोषण होता है । (नि.. २७.)
'विदत् सरमा तनयाय धासिम्'
ऋ. १.६२.३
जिस प्रकार माता अपने पुत्र के लिए पोषक अन्न प्राप्त करती है ।

धासी– (१) धारण करने वाला सामर्थ्य (२) अन्न
'भूमिमातान् द्यां धासिनायोः'
ऋ. ६.६७.६

धास्युः– (१) जगत् को धारण करने का इच्छुक ।
'धास्युरेष नन्वेषो अग्निः'
अ. २.१.४

ध्मातः– फूला हुआ, विताड़ित, फूंक से भरा ।
'दृतिर्न ध्मातो अद्रिवः'
ऋ. ७.८९.२

ध्यान– ध्या + ल्युट् = ध्यान । अर्थ–दर्शन'

ध्राजिः– (१) गति ।
'साकं वातस्य ध्राज्या'
ऋ. १०.९७.१३, वाज.सं. १२.८७, तै.सं. ४.२.६.४, मै.सं. २.७.१३,९४.८, का.सं. १६.१३.
(२) ध्रज् (गत्यर्थक) + इन = ध्राजि । बाहुलक नियम से । अर्थ – अस्त्र ।
'अग्नेर्वातस्य ध्राज्या
तान् विषूचो विनाशय'
अ. ३.१.५.२.३.
(३) ध्रज् + इञ् = ध्राजि ।
'ध्राजिरेकस्य ददृशो न रूपम्'
ऋ. १.१६४.४४, अ. ९.१०.२६, नि. १२.१२७.
अग्नि, वायु और आदित्य में एक वायु की सिर्फ गति (ध्राजिः) देखी जाती है– रूप नहीं ।
(४) निद्रावृति ।
'वातस्यानु ध्राजिं यान्ति'
ऋ. १०.१३६.२

ध्वान्त– (१) गिराने वाला अन्धकार (२) नीला मेघ ।
'ध्वान्तात् प्रपित्वात् उदरन्त गर्भाः'
ऋ. १०.७३.२, शां.श्रौ.सू. १४.४९.३.

ध्वांक्ष– (१) गीध जाति का पक्षी ...
'ध्वांक्षाः शकुनयस्तृप्यन्तु'
अ. ११.९.९
(२) काक ।
'लोम ध्वांक्षो अजीहिडत्'
अ. १२.४.८

धितावान् – (१) विभक्त करने योग्य धन को सुरक्षित रखने वाला– इन्द्र ।
'इन्द्र प्र णो धितावनं यज्ञं विश्वेभिर्देवेभिः'
ऋ. ३.४०.३, अ. २०.६.३.
(२) धनधान्य से समृद्ध हितकारी (३) सेवन और धारने योग्य ज्ञानादि पदार्थों को धारण करने वाला अग्नि परमेश्वर ।
'श्रुष्टीवानम् धितावानम्'
ऋ. ३.२७.२, मै.सं. ४.११.२, १६३.३, का.सं. ४०.१४, तै.ब्रा. २.४.२.५.

धियं जिन्वः – ज्ञान और उत्तम कर्म द्वारा ईश्वर को प्रसन्न करने वाला ।
'धियञ्जिन्वो भुवने विश्वे अर्पितः'
ऋ. ६.५८.२, मै.सं. ४.१४.१६, २४४.२, तै.ब्रा. २.८.५.४.

धियञ्जिन्वा– (द्वि.व.) (१) ज्ञान और कर्म दोनों को प्रेरणा देने वाले – प्राण और अपान, (२) स्त्री पुरुष, (३) अश्विद्वंय ।
'धियञ्जिन्वा धिष्ण्या विश्पलावसू'
ऋ. १.१८२.१

धियन्धाः(ब.व.) । (१) कर्मणां धारयितारः (कर्मों का धारयिता), (२) दुर्ग के मत से – 'प्रज्ञानां यज्ञानां वा धारयिता (प्रज्ञाओं या यज्ञों का धारयिता) । धी का अर्थ–कर्म, प्रज्ञा या यज्ञ है और धा (धारणार्थक) से 'धाः' बना है ।
'नराशंसस्य महिमानमेषाम्
उप स्तोसाम यजतस्य यज्ञैः
ये सुक्रतवः शुचयो धियन्धाः
स्वदन्ति देवा उभयानि हव्या'
ऋ. ७.२.२ वाज.सं. २९.२७, मै.सं. ४.१३.३, २०१.१२, का.सं. ३७.४, तै.ब्रा. ३.६.३.१, नि. ८.७.
जो देवता सुन्दर कर्म या प्रज्ञावाले (ये सुक्रतवः) दीप्तिवाले (शुचयः) या दुर्ग के

अनुसार, निष्पाप तथा कर्मों, प्रज्ञाओं या यज्ञों के धारयिता हैं (धियन्धाः), वे पृथिवी आदि पञ्चभूत देव सौमिक तथा हवि मय हव्यों को (उभयानि हव्या) आस्वादित करते हैं . (स्वदन्ति) उनमें (एषाम्) हवि या स्तोत्रों से यज्ञैः) यजनीय अग्नि का (यजनस्य नराशंसस्य) महत्व (महिमानम्) हम निकट जाकर जानते हैं (उप स्तोषाम) या अग्नि की ही महिमा अधिक समझते हैं ।

धियसानः - ज्ञान और कर्म का सम्पादन करने वाला

'प्र सु ग्मन्ता धियसानस्य सक्षणि'

ऋ. १०.३२.१, आप. मं. पा. १.१.१.

धिया - धि (धारण करना) + क = धिया । अर्थ- विज्ञान जिससे श्रुत का धारण किया जाय ।

धियाजू (जुर्) - ज्ञान, अनुभव बुद्धि या कर्म से वृद्ध पुरुष ।

'धिया जुरो मिथुनांसः सचन्त'

ऋ. ५.४३.१५

धियापत् - (१) बुद्धिपूर्वक यत्न करने वाला (२) उत्तम कर्म और बुद्धि का ज्ञान का सम्पादन करने का इच्छुक विष्णु या व्यापक पुरुष ।

'प्र.वः पान्तमन्धसो धियापते
महे शूराय विष्णवे चार्चत'

ऋ. १.१५५.१

धियायु- (१) विज्ञान देने का इच्छुक गुरुओं से ज्ञान करने का इच्छुक ।

'विप्रासो वा धियायवः'

ऋ. १.८.६, अ. २०.७१.२.

जो विज्ञान को प्राप्त करने और और गुरुओं से ज्ञान लाभ करने के इच्छुक मेघावी पुरुष हैं वे भी आदर के योग्य हैं ।

(२) धारणशील बुद्धि को प्राप्त करने की इच्छा वाला ।

धियावसु- (१) कर्म का या ज्ञान का धनी (कर्म प्राप्य धननिमित्तभूताकर्म द्वारा प्राप्य धन का निमित्त भूत) (२) कर्म से प्राप्त होने वाला धन। धी कर्म, प्रज्ञां तथा यज्ञ का वाचक है । अतः यज्ञ का प्रज्ञा से प्राप्य धन, (३) कर्म से प्राप्य धन को देने वाला (४) कर्म योग में बसाने वाला-(दया.) ।

'पावका नः सरस्वती
वाजेभिर्वाजिनीवती
यज्ञं वष्टु धियावसुः'

ऋ. १.३.१०, साम. १.१८९, वाज.सं. २०.८४, मै.सं. ४.१०.१, १४२.८ , का.सं. ४.१६, तै.ब्रा. २.४.३.१, ऐ.आ. १.१.४.१६, नि. ११.२६.

शुद्ध करने वाली या जल से प्रक्षालित करने वाली या पवित्र व्यवहार बतलाने वाली (पावका) अन्न या हवि से युक्त कर्मवाली या ऐश्वर्य आदि देने वाली (वाजिनीवती) कर्म से प्राप्य धन को देने वाली (धियावसु) हमारे इस यज्ञ को (नः यज्ञम्) यजमानों द्वारा दत्त हवि या अन्न के निमित्त (वाजेभिः) आकर अपनावे या यज्ञ की कामना करे (वष्टु) या हवि को देवताओं के पास ले जाए ।

अन्य अर्थ- पवित्र व्यवहार को बतलाने वाली (पावका), अन्नादि ऐश्वर्य समृद्धि देने वाली (वाजिनीवती) कर्मयोग में बसानेवाली वेदवाणी (सरस्वती) अन्नादि ऐश्वर्यों के साथ हमारे प्रत्येक शुभ कर्म का संचालन करे (नः यज्ञं वष्टु) (५) समस्त कर्म और ऐश्वर्य वाला।

'प्रातर्मक्षू धियावसुर्जगम्यात्'

ऋ. १.५८.९, ६०.५, ६१.१६, ६२.१३,९.,६४.१५, ८.८०.८, ९.९३.५. अ. २०.३५.१६, कौ.ब्रा. २२.२.

धियोषित - धिया इषित । उत्तम ज्ञान या कर्म द्वारा प्राप्त होने योग्य इन्द्र ।

'इन्द्रायाहिधियेषितः'

ऋ. १.३.५, अ. २०.८४.२, साम. २.४९७, वाज.सं. २०.८८, ऐ.आ. १. १.४.९.

धिष्- उत्तम बुद्धि , वाणी ।

'धिषा यदि धिषण्यन्तः सरण्यान्'

ऋ. ४.२१.६

धिषण- हठधर्मी ।

'निःसालां धृष्णुं धिषणम्'

अ. २.१४.१

धिषणा- (१) धिष् (धारणार्थक) + ल्यु + टाप् =धिषणा । पिबति, दधाति धारयति' अर्थात् इति धिषणा (जो अर्थो तात्पर्यो को पीती खाती या धारण करती है वह धिसणा अर्थात् वाणी) अर्थ- (१) वाणी, (२) माध्यमिका वाक् -सा. (३) पदार्थ विद्या-दया. (४) बुद्धि ।

'आपश्चमित्रं धिषणा च साधन'

ऋ. १.९६.१, मै.सं. ४.१०.६, १५७.१३.

जिस विद्युत् रूप में वर्तमान अग्नि को मेघ में स्थित जल (आपः च) तथा माध्यमिका वाक् (धिषणा च) मित्र रूप से साधते या मानते हैं (मित्रं साधन्) ।

पदार्थ विद्या द्वारा (धिषणा) जल और वायु को (आप च मित्रं च) साधन करते हुए (साधन्) विद्वान् लोग...(-दया.) ।

(४) घी सदना = धिषणा । जो ज्ञान को देने वाली है - पदार्थ विद्या (५) धीसादिनी - धिषणा (जो ज्ञान को प्राप्त कराती है) ।

आधुनिक अर्थ - बुद्धि, स्तुति, प्रशंसा, पृथ्वी, प्याली कटोरी ।

धिषणे- द्वि.व. । (१) समस्त विश्व को धारण करने वाला आकाश और पृथ्वी, (२) नरनारी, (३) राजा प्रजा ।

'धिषणे निष्टतक्षतुः'

ऋ. ८.६१.२, अ. २०.११३.२, साम. २.५८४.

धिष्ण्य- धिषण्यः धिषणाभावः नेष्ट्रीयः, स्थानम् । अर्थ (१) जो धिषणा से हुआ है । (२) धिषणा पृथ्वी अर्थ में भी है अतः स्थान का वाचक है । नेष्ट्र का अर्थ यज्ञ-प्रदेश किया गया है । अमर कोश में भी- धिष्ण्यं स्थाने गृहे येऽग्नौ लिखा है ।

(३) वेदवाणी का ज्ञाता-(दया.) ।

आधुनिक अर्थ- (१) यज्ञ प्रदेश, (२) दैत्यगुरु शुक्र का एक नाम, (३) शुक्रग्रह, (४) शक्ति, बल, (५) गृह, (६) स्थान (७) आसन, (८) अग्नि, (९) नक्षत्र ।

धिष्ण्या अग्नयः- (१) देह के अपने अपने स्थान पर विराजमान प्राणादि अग्नियां

'या नग्नयो अन्वतप्यन्त धिष्ण्याः'

अ. २.३५.१, तै.सं. ३.२.८.३, मै.सं. २.३.८, ३६.१६.

(२) शरीर में वर्तमान रहने वाले ५ अग्नि अथवा धिषणा बुद्धि द्वारा प्रेरित होने वाले अग्नि (३) आधान के स्थान में विहरण करने वाले अग्नि आहवनीय गार्हपत्य और अन्वाहार्य पचन आदि, (४) सूर्य अग्नि एक ऋषि होकर एक मूर्धास्थान पर विराजता है । (५) दर्शनाग्नि, आहवनीयाग्नि होकर मुख से बैठता है । और शरीर अग्नि जठर में हवि प्राप्त करता है । वही दक्षिणाग्नि होकर हृदय में बैठता है, (६) कोष्ठाग्नि गार्हपत्य होकर हृदय में रहता है, (७) उससे नीचे प्रायश्चिन्ती अग्नियां प्रजननांग में रहती हैं । ये पांचों शरीर धारण करने से और शरीर में विद्यमान रहने से धिष्ण्य हैं ।

'पुनरग्नयो धिष्ण्या यथास्थाम'

अ. ७.६७.१, श.ब्रा. १४.९.४.५.

धिष्ण्या - द्वि.व. । उत्तम आधार वा धारण करने योग्य एवं बुद्ध विवेक से काम करने वाले अश्विद्वय या स्त्री पुरुष ।

'अहंपूर्वो यजतो धिष्ण्या यः'

ऋ. १.१८१.३

धी - (१) कर्म ।

'यामथर्वा मनुष्पिता
दध्यङ् धियमत्नत'

ऋ. १.८०.१६, नि. १२.३४.

जिस कर्म को अथर्वा ऋषि, मानव पिता मनु तथा अथर्वा के पुत्र दध्यङ् ने किया ।

'धियं धियं सीषधाति प्रपूषा'

ऋ. ६.४९.८, वाज.सं. ३४.४२, तै.सं. १.१.१४, २, नि. १२.१८.

पूषा हमारे प्रत्येक कर्म को प्रसाधित करें । (२) प्रज्ञा, (३) यज्ञ । आधुनिक अर्थ- बुद्धि, मस्तिष्क, विचार, भाव, उद्देश्य, भक्ति , स्तुति, (४) धारण शक्ति ।

'मनसे चेतसे धियआकूतये'

अ. ६.४१.१, कौ.सू. ५४.११.

धीजवः- ब.व. । एक वचन में धीजुः । अर्थ -बुद्धि के वेग वाले धीमान् पुरुष ।

'प्र त आशवः पवमान धीजवः'

ऋ. ९.८६.१

धीजवन- (१) संकल्प मात्र से जाने वाला मन

'अभी नरं धीजवनं रथेष्ठाम्'

ऋ. ९.९७.४९, साम. २.७७६.

(२) कर्म कुशल, (३) बुद्धि में गति देने वाला सोम ।

'पूषेव धीजवनोऽसि सोम'

ऋ. ९.८८.३

धीजवना- द्वि.व. । अश्विद्वय कर्म और बुद्धि में

तीव्र बुद्धि से ।
'धीजवना नासत्या'
ऋ. ८.५.३५.

धीजूः– उत्तम ज्ञान और कर्म द्वारा वेग वाली
'प्र त आश्विनी पवमान धीजुवः'
ऋ. ९.८६.४, साम. २.२३६.

धीतिः– धी + क्तिन् । अर्थ– (१) प्रज्ञा, (२) स्तुति की वाणी ।
'ऋतस्य धीतिः वृजिनानि हन्ति'
ऋ. ४.२३.८, नि. १०.४१.
ऋतदेव की स्तुति उदक दान द्वारा अकाल नष्ट करती हुई वर्जनीय अयशस्कर पापों को (वृजिनानि) नष्ट करती है (हन्ति) ।
(३) अग्निष्टोमादि अनुष्ठेय कर्म या व्यापारिक कर्म ।
'संवत्सरे समपृच्यन्त धीतिभिः'
ऋ. १.११०.४.
संवत्सर के बसन्तादि ऋतुं में 'अग्निष्टोमादि कर्मों से युक्त होते हैं या वर्ष भर व्यापारिक कर्मों से युक्त रहते हैं ।
(४) स्तुति रुपी कर्म । (५) अध्ययन (६) चिन्तन (७) मरण, (८) पोषण । (९) दुग्धपान कराने वाली माता
'इयंतेधीतिरिदमुते जनित्रम्'
अ. ११.१.११

धीति – (१) बुद्धिमती होती हुई (२) क्रियाशक्ति ।
'धीत्यग्रे मवसा संहि जग्मे'
ऋ. १.१६४.८, अ.९.९.८.

धीरः– (१) ध्यानबल, धीमान् , बुद्धिमान ।
'यत्रधीरा मनसावाचमक्रत'
ऋ. १०.७१.२, नि. ४.१०.
(२) ईश्वर का विशेषण ।
'इनो विश्वस्य भुवनस्य गोपाः
समाधीरः पाकमत्रा विवेश'
ऋ. १.१६४.२१. नि. ३.१२.
बुद्धिमान् अर्थ में प्रयोग–
'धीरा इच्छेकुर्धरुणेष्वारभम्'
ऋ. ९.७३.३, तै.आ. १.११.१, नि. १२.३२.
बुद्धिमान् पुरुष जल बरसने पर कृषि कर्म या वैदिक कर्म का आरम्भ करते हैं ।
(३) आदित्य मण्डल में स्थित पुरुष का विशेषण
'योऽसावादित्ये पुरुषः सोऽसावहम्'
वाज.सं. ४०.१७, ईश. उप. १६.
(४) अति विशिष्ट बुद्धि से युक्त ।
आधुनिक अर्थ– साहसी, दृढ़, स्थिर, टिकाऊ, दृढ़मना, संयमी, गम्भीर, बलवान्, बुद्धिमान्, सदाचारी, शीलवान्, नम्र, मधुर स्वभाव, आलसी, उत्साही

धीरणः– (१) बुद्धि कौशल, कर्म कौशल से रक्षा करने वाला वीर, (२) ध्यान स्तुति में रमण करने वाला बुद्धिमान् पुरुष
'इन्द्रं मदन्त्यनु धीरणासः'
ऋ. ३.३४.८, अ. २०.११.८.
(३) धीर, विद्वान्, (४) ध्यान शील योगी

धीर्या– धीर पुरुष
'पाक्या चित् वसवो धीर्याचित्'
ऋ. २.२७.११, तै.२.१.११.५, मै.सं. ४.१४.१४, २३८.१५

धीवत् – बुद्धिमान् ।
'धीवतो धीवतः सखा'
ऋ. ६.५५.३
(२) कर्मनिष्ठ ।
'इत्था धीवन्तमद्रिवः'
ऋ. ८.२.४०
हे वज्रधारी इन्द्र या राजन् , इस प्रकार से या सत्यवक्ता (इत्था) एक बुद्धिमान् या कर्म शील अतिथि को....।

धीवा – (१) बुद्धमान्, (२) कला कौशल में चतुर।
'ये धीवानो रथकाराः'
अ. ३.५.६

धुङ्क्षा– (१) शत्रुओं को धुन डालने वाली सेना। (२) एक पक्षी ।
'धुङ्क्षाग्नेयी'
वाज.सं. २४.३१, वाज.सं. (का.) २६.३५, मै.सं. ३.१४.१२,१७५.१ ।

धुनयः– ब.व. । मरुतों या सैनिकों का विशेषण। अर्थधुन डालने वाले या कंपा देने वाले ।

धुनि– (१) अन्यों को त्रास देने वाला (२) दूसरों को त्रास देने की प्रवृत्ति ।
'स्वप्नेनाभ्युप्या चमुरिंधुनिंच'
ऋ. २.१५.९

(३) चलने वाली ।
(४) धु (कम्पनार्थक) + नि = धुनि । अर्थ - कम्पयिता, शत्रुओं को कंपाने वाला (कम्पयिता शत्रूणाम्) (५) इन्द्र या राजा का विशेषण ।
'धुनिः शिमीवाञ्छरुमांऋजीषी'
ऋ. १०.८९.५, तै.सं. २.२.१२.३, तै.आ. १०.१.९, नि. ५.१२.
(६) कम्पायमान ।
'अश्वमिवा धुक्षत् धुनिमन्तरिक्षम्
अतूर्ते बद्धं सविता समुद्रम्'
ऋ. १०.१४९.१, नि. १०.३२.
जैसे धूलि धूसरित अश्व को सवार झाड़ता है । उसी प्रकार कम्पायमान अन्तरिक्ष में टिके मेघ को सविता झाड़ कर मानों प्रवाहित करता है ।
(७) नदी ।
'त्वं निदस्युं चुमुरिं धुनिं च'
ऋ. ७.१९.४, अ. २०.३७.४, तै.ब्रा. २.५.८.११.

धुनिमती आपः- (१) कांपती हुई जलधाराएं (२) शत्रु को कंपा देने वाले नायकों वाली प्रजाएं, (३) समस्त लोक और प्रकृति के सूक्ष्म परमाणु और आत्मा सहति लिंग शरीर ।
'त्वं धुतिरिन्द्र धुनिमतीः'
ऋ. १.१७४.९, ६.२०.९.

धुनिव्रतः- (१) शत्रुओं को कंपाने का कार्य करने वाला, (२) वायु ।
'धुनिव्रत मायिनं दातिवारम्'
ऋ. ५.५८.२
(३) सब जगत् को अपने कर्म से संचालित करने वाला-परमेश्वर (४) मरुत् ।
'धुनिव्रताय शवसे'
ऋ. ५.८७.१, साम. १.४६२.

धुनिः मही- चलने वाली पृथिवी ।
'स ईं महीं धुनिमेतोररम्णात्'
ऋ. २.१५.५, आश्व.श्रौ.सू. ९.८.४.

धुनी- शत्रुंको कंपा देने वाला सामर्थ्य ।
'सस्तो धुनी चुमुरी या हसिष्वम्'
ऋ. ६.२०.१३

धुनेतिः- शत्रुओं को कंपा देने वाला, आक्रमण करने वाला ।
'धुनेतयः सुप्रकेतं मदन्तः'
ऋ. ४.५०.२, अ. २०.८८.२

धुर् - (१) धुर् (वधार्थक) + क्विप् = धुर् । 'धूर्वन्ति ध्वन्ति उपक्षयन्ति कर्माणि अभिः इति धुरः (इन से कर्मों को नष्ट करते है अतः ये धुर हैं) ।
(२) धार् (धारण करना) + क्विप् = धुर् (आ का इ बाहुलक विधिसे)
(३) जुआठ भी धुर है । साऽपि विहन्ति वहं स्कन्धं अनडुहोः अश्वस्य वा (जुआठ बैलों या घोड़ो के कन्धे को काट डालता है), या जुआठ बैल या घोड़े को काबू में रखता है । (धारयति अनडुहौ अश्वं वा ।)
(४) अंगुलि । इससे अंगूठी आदि धारण करते हैं (अंगुल्याहि धार्यम् सुवर्णादि धारयन्ति)
(५) गाड़ी की धुरी । यह गाड़ी के चक्रों को धारण करती है ।
'दशाभीशुभ्यो अचर्ताजरेभ्यो
दश धुरो दश युक्ता वहद्भ्यः'
ऋ. १०.९४.७, नि. ३.९.
आधुनिक अर्थ - जुआ, जुए का वह अंश जो बैल के कन्धों पर रहता है, पतिओं को मिलाने वाली धुरी, वोझें, उत्तरदायित्व, शीर्षस्थानीय

धुर्याः- (१) धारक वायुगण, (२) सैन्यों और राष्ट्र को धारण करने में समर्थ पुरुष ।
'वातान् ह्यश्वान् धुर्यायुयुज्रे'
ऋ. ५.५८.७

धुर्यौ - द्वि.व. । शरीर के धारक प्राण और अपान ।
'इमौ भद्रौ धुर्याविभि'
साम. २.१००५, मै.सं. ४.२.५, २६.१७. तै.ब्रा. २.१४४.

ध्रुतिः- द्रुत वेग से जाना (२) दृढ़ता, (३) स्थिरता ।

ध्रुतिः सुरा- द्रुत गति से जाने वाले जल के समान आत्मा की सुरा अर्थात् सुख से रमण करने की प्रवृत्ति रजोगुणी काम ।
न स स्वो दक्षो वरुण ध्रुति साः
सुरा मन्युर्विभीदको अचित्तिः'
ऋ. ७.८६.६
रूप जीव, (२) कूटास्थ ब्रह्म ।
'एजद् ध्रुवं मध्य आपस्त्यानाम्'
ऋ. १.१६४.३०

ध्रुवक्षेमा - (१) स्थिर रक्षण और कल्याण ।
'व्रतेन स्थो ध्रुवक्षेमा'
ऋ. ५.७२.२.

(२) स्थिर चिति वाले नित्य कारण तत्व, (३) राष्ट्र में स्थिर रूप से निवास करने वाले प्रजागण।
'ध्रुव क्षेमा अनवस्यन्तो अर्थम्'
ऋ. ४.१३.३

ध्रुवक्षितिः- स्थिर जनपद वाली पृथिवीः (२) स्थिर निवास स्थान वाली स्त्री।
'ध्रुवक्षितिर्ध्रुवयोनिर्ध्रुवासि'
वाज.सं. १४.१, तै.सं. ४.३.४.१, मै.सं. २.८.१, १०६.७, का.सं. १७.१, श.ब्रा. ८.२.१.४, १४.

ध्रुवच्युतः- (ब. व.)। वायुगण का विशेषण। अर्थ-ध्रुव अर्थात् स्थिर पदार्थों को भी हिलाने वाले
'मखा अयासः स्वसृतो ध्रुवच्युतः'
ऋ. १.६४.११
वीर्य बलवर्धक, पूज्य, अपने बल से चलने वाले और स्थिर पदार्थों को भी हिलाने वाले वायु गण या वीर पुरुष।

ध्रुवयोनिः- स्थिर ग्रह और स्थान वाली पृथिवी, (२) स्थिर आश्रय वाली पृथिवी।

ध्रुवा- (१) यज्ञ के तीन स्रुवों - जुहू, उपभृत् और ध्रुवा में एक। (२) ये ब्रह्माण्ड में द्यौ, अन्तरिक्ष और पृथ्वी के तथा राष्ट्र में राजा, भृत्य और प्रजा के वाचक है।
'घृताच्यसि ध्रुवा नाम्ना'
वाज.सं. २.६, वाज.सं. (का.) १.८., श.ब्रा. १.३.४.१४.

ध्रुवदिशा- अविचल पृथिवी की ओर।
'येऽस्यां स्थ ध्रुवायां दिशि
निलिम्पा नाम देवास्तेषां व ओषधीरिषवः'
अ. ३.२६.५

ध्रुवपद- (१) अविनाशी अन्तरिक्ष
(२) परामात्मा का आश्रय-(दया.)।
'ध्रुवे पदे तस्थतु जागरूके'
ऋ. ३.५४.७.
(३) मेघ या वायु का स्थिर स्थान-अन्तरिक्ष
'गन्धर्वस्य ध्रुवेपदे'
ऋ. १.२२.१४

ध्रुवव्रत- नियत स्थिर स्थान से चला आता शाश्वत धर्म
'विद्वां अस्य व्रताध्रुवा वया इवानु रोहते'
ऋ. २.५.४, का.सं. ३८.१३, आप.श्रौ.सू. १६.१५.७,

ध्रुवस् - स्थिर होकर रहना।
'आयत् सेदथुः ध्रुवसेन योनिम्'
ऋ. ७.७०.१

ध्रुवसद् - (१) ध्रुवराजधर्म में स्थित।
'ध्रुवसदंत्वा नृषदं मनःसदम्'
वाज.सं. ९.२, श.ब्रा. ५.१.२.४.

ध्रुवा- (१) सदा स्थितिशील, कभी नाश न होने वाली पुनर्नवा ओषधि।
'ध्रुवा सहस्रनाम्नीः'
अ. ८.७.८
(२) परमात्मा की स्थिर करने वाली अचल शक्ति।
'ध्रुवादाधार पृथिवीं प्रतिष्ठाम्'
अ. १८.४.५
(३) नीचे।
'ध्रुवाया दिशःशालाया नमो
महिम्ने स्वाहा देवेभ्यः स्वाह्येभ्यः'
अ. ९.३.२९

ध्रुवादिक् - ध्रुवादिशा।
'स ध्रुवां दिशमनु व्यचलत्'
अ. १५.६.१

ध्रुवा विराट् - कान्तिपूर्ण विविध प्रकार से शोभा देने वाली ध्रुवा दिशा पृथिवी।
'ध्रुवेयं विराट् नमो अस्त्वस्यै'
अ. १२.३.११.

धूतयः- (१) कंपाने वाले, वायु, मरुद्गण, (२) प्राण गण जो आत्मा के बल पर कर चरणादि को हिलाते हैं, (३) वीर गण जो शत्रुओं को कंपा देते हैं।
'को वो वर्पिष्ठ आ नरो
दिवश्च ग्मश्च धूतयः'
ऋ. १.३७.६
'स्वयं महित्वं पनयन्त धूतयः'
ऋ. १.८७.३, तै.सं. ४.३.१३, ७. मै.सं. ४.११.२, १६८.५.

धूम- (१) धुआं, (२) शत्रु को कंपाने वाला बल।
विधूमग्ने अरुषं मियेध्य
ऋ. १.३६.९, वाज.सं. ११.३७, तै.सं. ४.१.३.४, श.ब्रा. ६.४.२.९, तै.आ. ४.५.२.

हे मेधावी एवं संगति करने योग्य, तू रोष रहित धूम को उत्पन्न कर या शत्रुओं को कंपाने वाले बल को उत्पन्न कर ।

धूमकेतुः- (१) समस्त संसार को स्पन्दन या गति देने वाले सामर्थ्य से जानने योग्य ।
'धूमकेतुः पुरुश्चन्द्रः'
ऋ. १.२७.११, साम. २.१०१४
(२) अग्नि, (३) अग्नि, परिच्छद वाला वाणप्रस्थी, (४) पके केशों वाला, (५) ईश्वर जो सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड है, (६) ईश्वर सत्ता का ज्ञापक । (७) धूम ही जिसका केतु हो । अग्नि, (८) अति अधिक दीप्ति से समस्त बन्धनों को तोड़ने वाला ।
'धूमकेतुः समिधा भा ऋजीकः'
ऋ. १०.१२.२, अ. १८.१.३०. नि. ६.४.

धूमगन्धिः- (१) धूएं की गन्ध वाला ।
अग्नि, (२) पर राष्ट्र को कंपा देने वाला बल
'मा त्वाग्नि ध्वनयीद् धूमगन्धिः'
ऋ. १.१६२.१५, वाज.सं. २५.३७, तै.सं. ४.६.९.२, मै.सं. ३.१६.१, १८३.१०, का.सं. (अश्व.) ६.५.
(३) विषैले धूम से पीड़ित करने वाली, (४) उत्तेजक गन्ध वाली ।

धूमशिखा- (१) धूएं की चोटियों वाली आग ।
'अग्निजिह्वा धूमशिखा'
अ. ११.९.१९

धूम्र - (१) धुआं, (२) कंपा देने वाला बल या बलीवीर ।
'अजोधूम्रो न गोधूमैः कुवलैर्भेषजम्'
वाज.सं. २१.२९, मै.सं. ३.११.२,१४१.२, तै.ब्रा. २.६.११.१.

धूम्रनीकाशः - धूमैले छाप वाली
'बभ्रवो धूम्रनीकाशाः पितृणां बर्हिषदाम्'
वाज..सं. २४.१८.

धूमरोहित- (१) धुँआ मिला लाल रंग (२) लाल नीला, (३) धूम्ररोहित रंग का पोशक पहनने वाला अधिकारी ।
'रोहिते धूम्र रोहितः कर्कन्धुरोहितस्ते सौम्याः'
वाज.सं. २४.२, तै.सं. ५.६.११.१, मै.सं. ३.१३.३, १६९.१, का.सं. (अश्व.) ९.१.

धूमिन् (धूमी) - (१)धूम वाला अग्नि ।
'सम्यक् संयन्ति धूमिन'
ऋ. ५.९.५

धूर्तिः- (१) हिंसा स्वभाव ।
'किमु धूर्तिरभृत मर्त्यस्य'
ऋ. ८.४८.३, तै.सं. ३.२.५.४, का.श्रौ.सू. १०.९.७, शि.उप. ३.
(२) आक्षेप वचन, धूर्ततापूर्ण वचन ।
'मा नः शंसो अररुषोः धूर्तिः प्रणङ् मर्त्यस्य'
ऋ. १.१८.३, वाज.सं. ३.३०.का.सं. ७.२, श.ब्रा. २.३.४.३५, आप.श्रौ.सू. ६.१७.१२.
अदानशील पुरुष का नाशकारक कष्टप्रद आक्षेप वचन हमारे पास न पहुंचे ।
(३) धूर्त ।
'पाहि धूर्तेरराव्णः'
ऋ. १.३६.१५

धूर्वतिः- वधं करोति (वध करता है) । 'धूर्वी' धातु के लृट् प्र.पु . ए. व का रूप है ।

धूर्वन्- (१) धूर्तता करने वाला, छली (२) असत्य वादी, (३) हिंसक ।
'सत्यं धूर्वन्तमचितं न्योष'
ऋ. १०.८७.१२, अ. ८.३.२१.

धूर्षद् - धू + षद् । (१) यः धूर्षु हिंसके षु सीदति दया. (२) जल भार को अपने में धारण करने वाला-मेघ, (३) सत्यज्ञान या वेदज्ञान के मुख्य पद पर विराजने वाला वेदविद्या के मुख्य पद विराजने वाला वेदविद्या का धुरन्धर आचार्य
'घृतप्रतीकं व ऋतस्य धूर्षदम्'
ऋ. १.१४३.७, आप.श्रौ.सू. ५.६.३.
(४) धुरा या राष्ट्र भार को वहन करने वाली धुरा पर विराजने वाला ।
'तिष्ठद्रथं न धूर्षदं वनर्षदम्'
ऋ. १०.१३२.७

धूर्षदः- ब.व. । एक -वचन में धूर्षद् । अर्थ . (१) धुरन्धर गाड़ी के भार उठाने वाले वृषभ (२) वायुगण ।
'ऋजिप्यासो न वयुनेषु धूर्षदः'
ऋ. २.३४.४
ए व. में-(३) समस्त राष्ट्र भार को उठाने वाला (४)सब बलों और लेखों का धारक परमेश्वर ।
'द्युक्षं होतारं वृजनेषुधूर्षदम्'
ऋ. २.२.१.

धूर्षाहौ - द्वि.व. । पृथ्वी का भार धारण करने में

समर्थ ।
'उस्त्रावेतं धूर्षाहौ युज्येथामनश्रू अवीरहजौ ब्रह्मचोदनौ'
वाज.सं. ४.३३, वाज.सं. (का.) ४.१०.४, तै.सं. १.२.८.२, श.ब्रा. ३.३.४.१२.

धृतदक्ष- उत्तम बल का धारण करने वाला ।
'अग्निधंवा धृतदक्षं दमूनसम्'
ऋ. १०.४१.३

धृतव्रता- ब.व.। (१) व्रतों नियमों को धारण करने वाले और उनमें स्थिर रहने वाले, (२) मित्रा वरुण का विशेषण । मित्रावरुण का अर्थ सूर्य और चन्द्रमा प्राण, अयात्, राजा मन्त्री, गृहस्थ तथा गृहपत्नी किया गया है ।
युंव दक्ष धृतव्रत
'मित्रा वरुण दूडभम्
ऋतुना यज्ञमाशाथे'
ऋ. १.१५.६
हे मित्रा वरुण, तुम दोनों सत्यधारक बल से (ऋतुना) शत्रुओं से नाश न होने वाले बल को एवं परस्पर संग से उत्पन्न प्रजापालन को व्याप्त होकर रहो ।

धृतव्रत - सब कार्यों को धारण करने वाला सूर्य या वरुण ।
'त्वया ह्यग्ने वरुणो धृतव्रतः
मित्रः शाशद्रे अर्यमा सुदानवः'
ऋ. १.१४१.९
हे अग्ने, तेरे ही बल से सब कर्मों को धारण करने वाला सूर्य (धृतव्रतः) और उत्तम सुख को देने वाले (सुदानवः) ये दोनों और गमन शील प्राणों का नियामक वायु ये सब तीक्ष्ण होकर कार्य करते हैं (शाशद्रे) ।

धृषद् - (१) शत्रु को धर्षण करने वाला अस्त्र शास्त्र बल ।
'यथा जघन्थ धृषता पुराचित्'
ऋ. २.३०.४
(२) धृष् (धर्षण करना) + शतृ = धृषत् । अर्थ है-शत्रुओं का पराजय, (३) धृष्टता करता हुआ ।
'प्रतिश्रुताय वो धृषत्'
हुवे सुशिप्र मूतये'
ऋ. ८.३२.४
हे ऋत्विजों, इन्द्र के प्रति की गई अपनी प्रतिज्ञा के पालन के लिये (प्रति श्रुताय) आम लोगों को निमित्त (वः) सुन्दर तनू या नाक वाले इन्द्र को (सुशिप्रम्) अपनी और तुम्हारी रक्षा के लिये पुकारता हूँ (हुवे) ।
(४) धर्षण करने वाला बल
'रुजो विदृढा धृषता विरप्शिन्'
ऋ. ६.२२.६, अ. २०.३६.६

धृद्वर्ण- शत्रुओं को पराजित करने में प्रसिद्ध ।
'धृषद्वर्णं दिवे दिवे'
ऋ. १०.८७.२२, अ. ७.७१.१, ८.३.२२, वाज.सं. ११.२६, तै.सं. १.५.६.४, ४.१.२, ५ मै.सं. २.७.२, ७६.९, का.सं. १६.२, ३८.१२.

धृषद्वी (द्विन्) - शत्रु को धर्षण करने वाले बल से युक्त ।
'तेयामन्ना धृषद्विनः'
ऋ. ५.५२.२

धृषणः- सबको दबाने वाला सर्व विजयी ।
'धृषाणो धृषितः शवः'
अ. ६.३३.२, शां.श्रौ.सू. १८.३.२.

धृषित्- (१) अभिमानी विजेता ।

घृष्णु- (१) ढिठाई, ढीठ ।
'निस्सालां धृष्णुं धिषणम्'
अ. २.१४.१
(२) शत्रुधर्षक । धृष् + नु ।
आयूया धृष्णो अभिगूर्या त्वं
नेष्ट्रात् सोमं द्रविणोदः पिब ऋतुभिः
ऋ. २.३७.३, नि. ८.३.
हे द्रविणोद नामक अग्नि, हे शत्रुधर्षक, तू यज्ञ से सोम रस को खूब मिलाकर तथा पलट कर ऋतुओं के साथ पी ।
आधुनिक अर्थ- साहसी, बलवान् , निर्लज्ज, ढीठ ।
(३) शत्रुओं को धर्षित पराजित करने वाला सामर्थ्य ।
'ते धृष्णुना शवसा शूशुवांसः'
ऋ. १.१६७.९.
(४) शरीर बल का नाशक रोग ।
'नेत् त्वा धृष्णु र्हरसा जर्हृषाणः'
ऋ. १०.१६.७, अ. १८.२.५८, तै.आ. ६.१.४.

धृष्णुया- दृढत्वादि गुणयुक्ता । धृष्णु + सु =

धृष्णुया । (सु का याच्)
'जयतामिव तन्यतुः
मरुतामिति धृष्णुया '
ऋ. १.२३.११

धृष्णुषेणः– शत्रुपराजयकारी सेना का स्वामी –इन्द्र ।
'पुरन्दरो वृत्रहा धृष्णुषेणः '
ऋ. ३.५४.१५

धृष्णवोजसः, धृष्णवोजाः – धर्षण या पराजय करने वाले बल से युक्त मरुत् ।
'धारावरा मरुतो धृष्णवोजसः '
ऋ. २.३४.१
'अधृष्टं धृष्णवोजसम्'
ऋ. ८.७०.३, अ. २०.९२.१८, साम. १.२४३, २.५०५.

धेना – (१) गर्जना, चीत्कार, (२) विद्या ।
'व्यस्य धारा असृजत् विधेनाः '
ऋ. ३.१.९
(३) धा (धारण करना) + शानच् = दधाना = धेना (अभ्यास के द का लोप और धा के आ का ए व्यत्यय द्वारा) । अर्थ है धारण करने वाली लोला या लोल, जिह्वोपजिह्विका ।
(४) आधसत्य दंष्ट्रा
'मादयस्व हरिभिर्येत इन्द्र
विष्यस्व शिप्रे वि सृजस्व धेने
आ त्वा सुशिप्र हरयो वहन्तु
उशन् हव्यानि प्रतिनो जुषस्व ।'
ऋ. १.१०१.१०
हे इन्द्र, घोड़ो के साथ तृप्त हो (इन्द्र हरिभिः मादयस्व) । जो तेरे सोमपान के लिये चौड़े हनू या सूंघने के लिए चौड़ी नासिकाएं तथा अन्न खाने के लिए उपजिह्विका या लोल हैं (शिप्रेधेना), उन्हें विवृत कर (विष्यस्व) । हे सुन्दर हनू वाला या सुन्दर नासिका वाला, तेरे अश्व तुष्ट होकर तुझे हमारे यहां लावें (त्वा आ वहन्तु) । तू भी हमारी कामना करता हुआ (उशन्) हमारे इन हव्यों को (नः हव्यानि) एक एक कर सेवन कर (प्रतिजुषस्व)
अथवा, सायण के अनुसार, उन से उदासीन न हो, या, दुर्ग के अनुसार, जिस श्रद्धा से तुझे हम हव्य देते हैं उसी श्रद्धा से तू उसका सेवन कर ।
(५) दूध की धारा वाली गौ, (६) जलों को धारण करने और पान कराने वाली मेघ की धारा ।
'ऋतस्य धेना अनयन्त सस्रुतः '
ऋ. १.१४१.२
दूध की धारावाली गौएं जिस प्रकार अपने वत्स को ही प्राप्त करती हैं, उसी प्रकार जल को धारण करने और पान कराने वाली मेघ की धाराएं भी (ऋतस्य धेनाः) समान रूप से प्रवाहित होती हुई (सस्रुतः) उस महान् अग्नि के तेज रूप मूल कारण तक ले जाती है ।
(७) स्मृति ।
जनानां धेना अवचकशद्वापा '
ऋ. १०.४३.६, अ. २०.१७.६

धेनु– धेट् (धयन करना, पीना) या धि (पीणनार्थक) + नु = धेनु । धय्यते पीयते असौ वत्से न (यह धेनु बछड़े द्वारा पीयी जाती है । अथवा–धिनोति तर्पयति असौ उदकेन पयसा वा (यह उदक या दूध से तृप्त करती है – बछड़े को पिलाती है । अर्थ (१) मेघ–नैरुक्त गौ ।
'धेनुं न इषं पिन्वतमसक्राम्'
ऋ. ६.६३.८, नि. ६.२९.
हमें धेनु और अन्यत्र न हटने योग्य अन्न दो ।
(२) माध्यमिक वाक् मेघ
(३) तर्पयित्री आहुति तृप्त करने वाला आहुति,
(४) शास्त्र , (५) धन ।

धेनुका – (१) दूध पिलाने वाली सच्ची माता ।
'सा प्रसूर्धेनुका भव'
अ. ३.२३.४, आप.मं.पा. १.१३.३, हि.गृ.सू. १.२५.१.

धेनुःगौः– दुधार गाय ।
'धेनुर्गौर्नवयोदधुः '
वाज.सं. २१.१९, मै.सं. ३.११.११, १५८.१३, का.सं. ३८.१०, तै.ब्रा. २.६.१८.४.

धेनुमती– (१) दुग्ध देने वाली गौओं और रसप्रद रश्मियों से पूर्ण पृथिवी ।
'इरावती धेनुमती हि भूतम् '
ऋ. ७.९९.३, वाज.सं. ५.१६, तै.सं. १.२.१३.२, मै.सं. १.२.९, १८.१९, श.ब्रा. ३.५.३.१४, तै.आ. १.८.२, आश्व.श्रौ.सू. ३.८.१.

(२) गौओं से पूर्ण समृद्धि
'इषे च नो मिमीतं धेनुमत्यै'
ऋ. १.१२०.९
(३) रसपान करने वाली गौ, वाणी तथा किरणों से युक्त द्यावापृथिवी'

धेनू - द्वि.व. । धेनु और वाणी ।
'ऋताय धेनू परमेदुहाते'
ऋ. ४.२३.१०

धेष्ठः- पालन पोषण और धारण करने वाला
'त्वं मित्राणां मित्रपते धेष्ठः'
ऋ. १.१७०.५

धेष्ठा- द्वि.व. । (१) उत्तमरीति से धारण करने में समर्थ - इन्द्र और अग्नि का विशेषण, (२) माता पिता ।
'ता वाजं सद्य उशते धेष्ठा'
ऋ. ७.९३.१, तै.सं. १.१.१४.२, मै.सं. ४.११.१,१६०.१, का.सं. १३.१५, तै.ब्रा. २.४.८.४.

धैर्य- धैर्य, धीरता ।
'धैर्याय तक्षणम्'
वाज.सं. ३०.६, तै.ब्रा. ३.४.१.२.

धैवर- (१) धीवर, (२) बुद्धि में श्रेष्ठ पुरुष ।
'सरोभ्यो धैवरम्'
वाज.सं. ३०.१६, तै.ब्रा. ३.४.१.१२.

धौतरी - शत्रुओं को कंपाने वाली सेना ।
'ससवान् स्तौलाभिः धौतरीभिः'
ऋ. ६.४४.७

धौती- (१) दौड़ती हुई, वेग से जाती हुई भूमि, नदी या लोक प्रजा
'यो धौतीनाम् अहिहन् आरिणक् पथः'
ऋ. २.१३.५.

न

न - (१) प्रतिषेधार्थक अव्यय, (२) उपमार्थीय, (३) किल के साथ भी इसका प्रयोग होता है जैसे 'नकिल' (४) सदृश, इव । (५) न चेत् (नहीं तो) (६) न इत् (भय में बोलने का ढंग) अर्थ है-नहीं तो ।
'हविभिरेके स्वरितः सचन्ते
सुन्वन्त एके सवनेषु सोमान्
शचीर्मदन्त उतदक्षिणाभिः
नेजिह्मा यन्त्यो नरके पताम'
ऋ. खि. १०.१०६.१, नि. १.११.
कुछ लोक इस भूलोक से हवि आदि द्वारा स्वर्ग प्राप्त करते हैं, और कुछ यज्ञों में सोम बनाते हुए । पुनः कुछ स्तुतियों द्वारा देवों को तृप्त कर (शचीःमदन्तः) और कुछ दक्षिणा द्वारा । हम स्त्रियां तो इन उपायों को न कर अपने पति की परिचर्या कर ही स्वर्ग पा सकती हैं नहीं तो (न इत्) पति के प्रति कपट कर (जिह्मा यन्त्यः) नरक में जायेंगी (नरके पताम) ।
सदृश अर्थ में प्रयोग-
'खलेन पर्षान् प्रतिहन्मि भूरि'
ऋ. १०.४८.७, नि. ३.१०.
जैसे खलिहान में धान्य -सहित पुआल रौंद देते हैं वैसे ही मैं अनेकों शत्रुओं को मार डालता हूँ ।
पुनः -
'अश्वं न त्वा वारवन्तम्
वन्दध्या अग्नि नमोभिः
सम्राजमध्वराणाम्'
ऋ. १.२७.१, साम. १.१७,२.९८४, नि. १.२०.
यज्ञों के सम्राट् स्वरूप तुझ अग्नि को स्तुतियों से प्रार्थना करने में हम प्रवृत्त हुए हैं जैसे बाल वाले अश्व को ।

नक् - (१) रात्रि, (२) नह् + क्विप् = नक् । अर्थ है-सम्बन्धी जन माता, पिता भाई आदि ।
'अप स्वसुरुषसो नग्जिहीते'
ऋ. ७.७१.१, कौ.ब्रा. २६.११

नक्त- (१) अव्यक्त ।
'मूर्धाभुवो भवति नक्तमग्निः'
ऋ. १०.८८.६, नि. ७.२७.
(२) एक ओषधि जो कुष्ठ और पलित रोग में प्रयुक्त होती है ।
'नक्त' से कलिकारी, गुग्गुलु, उलूक, प्रसहा, करंज, फंजी, तथा भार्ङ्गी नामक ओषधियों का ग्रहण होता है ।
कलिकारी (नक्तेन्दुपुष्पिका) कफ और वात का नाशक, रक्षोज बाल्य व्रण का नाशक है । उल्लू पक्षी का मांसादि विसर्ग कुष्ठ का नाशक है । करंज (नक्तमाल) या घृत करंज व्रण, प्लीहा, कृमिनाशक तथा त्वचा के रोगों को दूर करता

है । करंज के भी दो भेद हैं- उदकीर्ण और अंगार वल्लिका कण्डू, विचर्चिका कुष्ठ त्वचा रोग तथा व्रण (नासूर) आदि का नाशक है ।
(३) नपुंसक । अर्थ है रात्रि
रात में अग्नि भूलोक की मूर्धा हो जाता है । जिससे पूर्ण व्युत्पत्ति है ।

नक्ता- (१) रात्रि । अनक्ति भूतानि अव श्यायेन (तुषार से प्राणियों को क्लिन्न करती या घेर लेती है) । अञ्च् (क्लेदन, गति व्यक्ति, मुक्षण और कान्ति अर्थ में) + क्तन् + टाप् = नक्ता । दुर्ग के मत से 'अनक्ता' में अ का लोप करने से 'नक्ता' बना है । अथवा अव्यक्तवर्णा (जब वर्ण व्यक्त न हों) होने से रात्रि नक्ता कहलाई ।
न अक्ता न व्यक्ता अनक्ता (जो व्यक्त न हो वह अनक्ता है) । अनक्ता ही न 'क्ता' और 'नक्त' हुई 'दोषा च नक्तंञ्च रजनौ'-अमर । अंग्रेजी का night और लैटिन का noct इसी 'नक्त' से निकलते हैं । आधुनिक अर्थ (१) रात, (२) सिर्फ रात में भोजन करने का व्रत, (३) रात में ।

नक्तोषासा- (१) रात्रि और उषा, (२) रात्रि और दिन, (३) नक्त और उषस् नामक दो सभाएं, (४) स्त्री और पुरुष ।
'नक्तोषासा सुपेशसा
अस्मिन् यज्ञ उपह्वये
इदं नो बर्हिरासदे '
ऋ. १.१३.७,
इस यज्ञ में उत्तम सुखदायी रूप और ऐश्वर्य वाले रात और दिनों को उपयोग में लाऊं । राष्ट्र पक्ष में नक्त और उषसा दो सभाएं है । गृहस्थ पक्ष में- नक्त और उषस् स्त्री पुरुष हैं । वे उत्तम रूप वाले ऐश्वर्यवान् होकर यज्ञ में आवें ।

न्यक्रन्दयन्- नितरां क्रन्दनम् अकुर्वन् (सदा क्रन्दन किया) । अथवा - जोर से क्रन्दन कराया ।
'न्यक्रन्दयन् उपयन्त एनम् '
ऋ. १०.१०२.५, नि. ९.२३.
इस वृषभ को संग्राम में गए सैनिक उच्चशब्द के साथ शब्दायमान करते हैं ।

नाक - नी (नयनकरना) + आक = नाक (टि का लोप) अर्थ है (१) आदित्य । रसानां नेता (आदित्य रसों का नयन करने वाला है) भासां नेता (प्रकाश का हरण करने वाला), ज्योतिषां प्रणयः (प्रकाशक आदित्य जलों का रस खींच कर वर्षा देता है । प्रकाश देता है उसी के रश्मि जाल से जगत प्रकाशित होता है) (२) द्युलोक । विनाकमाख्यत् सविता वरेण्यः-वरणीय सविता द्युलोक को प्रकाशित करता है, (नाकम् व्याख्यात्) । आजकल- 'नास्ति अकं दुःखम् यत्र' (जहां दुःख नहीं है वह नाक है, ऐसी व्युत्पत्ति की जाती है) । नञ् + अ + क = नाक । अर्थ है- स्वर्ग, आकाश ।

नक्ति - रात ।
'अभित्वा नक्तीः उषसः ववाशिरे '
ऋ. २.२.२.

नकिः- (१) नैव किञ्चित् (कुछ नहीं तो) (२) कोई नहीं ।
'यं नु न किः पृतनासु स्वराजं
द्वितातराति नृतमं हरिष्ठाम् '
ऋ. ३.४९.२
पुनः-
'इमानूनु कवितमस्य मायां
महीं देवस्य नकि रादधर्ष
एंक यदुद्गा न पृणन्त्येनी
रासिञ्चती रवनयः समुद्रम् '
ऋ. ५.८५.६, नि. ६.१२
प्रकृष्ट प्रज्ञदेव वरुण का (कवितमस्य देवस्य) इव सर्वविदित महती माया को (इमां महीं मायाम्) कोई भी (नकिः) अभिभूत नहीं कर सकता (आदधर्ष ऊनु) जैसे (यंत्) बहुत सींचने वाली भी (बह्वयःअपि आसिञ्चतीः) अर्थात् पूर्ण जल वाली भी प्रगतिशील नदियां (एनीः अवनयः) एक समुद्र को भी (एकम्) जल से (उद्गा) भर नहीं सकतीं (न पृणन्ति) ।

नकी- अ । अर्थ है । और न ।
' न की राया नैवथान भन्दना '
ऋ. ८.२४.१५, साम. २.८६१

न कीम् - अ. । अर्थ - और कोई नहीं ।
' न कीं वृधीक इन्द्र ते '
ऋ. ८.७८.४

नक्ष- धातु । (१) प्राप्त करना , (२) गति करना ।
'अग्निं नक्षन्तु नो गिरः '

ऋ. ८.१०३.१, साम. १.४७, २.८६५
(२) व्याप्त होना, (३) करना, (४) अनुष्ठान करना ।
'नक्षत् होता परिसदम् मिता यन्
ऋ. १.१७३.३

नक्षत्र- (१) नक्षत्र, (२) कभी नाशन होने वाली प्रजा ।
'तस्य नक्षत्राण्यप्सरसो भेकुरयो नाम'
वाज.सं. १८.४०, तै.सं. ३.४.७.१, मै.सं. २.१२.२, १४५.४. का.सं. १८.१४, श.ब्रा. ९.४.१.९.
(३) नक्ष (गत्यर्थक) + अत्रन् = नक्षत्र । अर्थ है - तारा । ताराएं सदा चलती हैं (ताः. हि नित्यमेव गच्छन्ति)
(४) पाणिनि के अनुसार 'न क्षीयते नक्षरति इति नक्षत्रम्' (जो क्षीण नहीं होता वह नक्षत्र है) । न + क्षर + अत्रन् = नक्षत्र (५) न इमानि क्षत्राणि (ये धन नहीं है । क्योंकि सूर्य रश्मि पाकर ही वेप्रकाशित होते हैं । (सूर्यरश्म्यनुवेधात् दीप्यमाना निसन्ति) । हिरण्यानीव भ्राजन्ते (हिरण्य की तरह चमकते हैं) । (६) निरुक्त में 'क्षत्' शब्द धनवाचक है । (नि. २.१०) । 'क्षद्' ग्रहणार्थक धातु है । परन्तु माधव के मत से यह धातु शकलीकरण (खण्ड करना) तथा हिंसा करना अर्थ में भी आया है । सुबोधिनीकार ने भी 'क्षद् गति हिंसनयोः कहा है ।
क्षद् + त्र = क्षत्र । अर्थ है- धन क्योंकि भोगार्थी इसका ग्रहण करते हैं या यह दरिद्रता नष्ट करता है या उसे खण्ड खण्ड करता है अथवा किसी नाशक या पापसे रक्षा करता है ।
'क्षतः नाशकात् कुतश्चित् पापात्
वा त्रायत इति क्षत्रम् धनम्'

नक्षत्रजाः- (१) पाप नक्षत्र में उत्पन्न बालक- (२) अस्खलित वीर्य ब्रह्मचारी से उत्पन्न बालक ।
'नक्षत्रजा जायमानः सुवीरः'
अ। ६.११०.३

नक्षत्रदर्श- (१) नक्षत्रों को देखने वाला या दिखा देने वाला दूरवीक्षण यन्त्र, (२) दूरदर्शी विद्वान्
'प्रज्ञानाय नक्षत्रदर्शम्'
वाज.सं. ३०.१०, तै.ब्रा. ३.४.१.४.

नक्षत्रराज- (१) नक्षत्रों में राजा चन्द्रमा, (२) निर्बलों का राजा ।
'तस्मै ते नक्षत्रराजः'
अ. ६.१२८.४

नक्षत्रशवाः- न + क्षत्र + शवस्' । अर्थ- क्षात्रबल तथा धनबल से रहित ।
'विशां नक्षत्र शवसाम'
ऋ. १०.२२.१०

नक्षत्राणिरूपम्- (१) समस्त नक्षत्र सूर्य के ही रूप हैं । (२) समस्त तेजोमय पदार्थ परमेश्वर के अंश हैं ।
'नक्षत्राणि रूपमश्विनौ व्यात्तम्'
वाज.सं. ३१.२२

नक्षत्रिय- नक्षत्रों में गति उत्पन्न करने वाला ग्रह उपग्रह ।
'नक्षत्रियेभ्यः स्वाहा'
वाज.सं. २२.२८, मै.सं. ३.१२.७,१६२.१४.

नक्षत्रिया- नक्षत्रों में विद्यमान शक्ति ।
'अभ्रिये दिद्युन्नक्षत्रियेयाः'
अ. २.२.४

नक्षद्दाभः- नक्षत्र + दाभ । प्राप्त या राष्ट्र में फैलते हुए शत्रु और सेना को नाश करने वाला ।
'नक्षद्दाभं ततुरिं पर्वतेष्ठाम्'
ऋ. ६.२२.२, अ. २०.३६.२, नि. ६.३.

नक्षन् - नक्ष (गत्यर्थक) + शतृ = नक्षत्र । प्र.पु.ए.व. में रूप है । नक्षन् । अर्थ है - जाता हुआ ।
'अस्तं न गावो नक्षन्त इद्धम्'
ऋ. १.६६.९.

नक्षमाण - नक्ष (सेवा करना) + शानच् = नक्षमाण । अर्थ है-सेवा करता हुआ ।
'तेभ्यः शकेम हविषा नक्षमाणाः'
अ. १८.२.२९

नक्ष्य- नक्ष + यत् = नक्ष्य । अर्थ है । (१० प्राप्त होने योग्य, (२) शरण्य, (३) अग्नि
'नित्वा नक्ष्य विश्यते'
ऋ. ७.१५.७, साम. १.२६, साम.वि.ब्रा. २.६.११.

नक्षन्तः- (१) अनुष्ठान करते हुए ।
'आशेकुरित् सधमादं सखायः
नक्षन्त यज्ञम् क इदं वि वोचत्'
ऋ. १०.८८.१७, नि. ७.३०
यज्ञ में सखा रूप - ऋत्विज् मदान्वित करने वाले यज्ञ को करते हैं तथा सम्यक् रूप से

अनुष्ठान करते हुए (सखायः सधमादं यक्षम् आशेकुः नक्षन्तः)

नक्षमाण- व्याप्त होता हुआ ।
'संगोभिराङ्गिरसो नक्षमाणः'
ऋ. १०.६८.२, अ. २०.१६.२

नक्षमाणा- युक्त
'नक्षमाणा सहद्युभिः'
ऋ. ७.३१.८

नक्षसे- नक्ष धातु 'प्राप्त करना'अर्थ में आया है । अर्थ है-तू प्राप्त होता है या होती है ।

नकुल- (१) नेवला, ।
'यथा नकुलो विच्छिद्य'
अ. ६.१३९.५
(२) न कुत्सितं मलं लाति इति नकुलः शुद्धौषधप्रापकः (यह कुत्सित मल नहीं लाता है । शुद्ध और औषधि को प्राप्त कराने वाला है, नेवला (२) विषवैद्य ।
'आरण्योऽजो नकुलःशका ते पौष्णाः'
वाज.सं. २४.३२, तै.सं. ५.५.१२.१, मै.सं. ३.१४.१३, १७५.३, का.सं. (अश्व.) ७.२.
'दिग्भ्यो नकुलान्'
वाज.सं. २४.२६, मै.सं. ३.१४.७, १७३.११.

नख- (१) बांधने योग्य शस्त्र (२) नख । 'नह्' धातु से सम्पन्न ।
'सुपर्ण इत्था नखमा सिषाय'
ऋ. १०.२८.१०
(३) न + खम् आकाशम् नखम्'

नग्न- न + ग्न (१) स्तुति वाणी से रहित, (२) वाणी पर स्थिर न रहने वाला -असत्यवादी
(३) निर्लज्ज, बेहया ।
'आस्य वेदः खिदति हन्ति नग्नम्'
ऋ. ४.२५.७

नग्नक- नंगा, निर्वज्ञ ।
'शायकादुत नग्नकात्'
अ. ८.६.२१

नग्नहुः- (१) दरिद्रों का पालक, (२) प्रजा का सुखकारक ।
'नराशंसेन नग्नहुम्'
वाज.सं. २०.५७, मै.सं. ३.११.३, १४३.१२, का.सं. ३८.८, तै.ब्रा. २.६.१२.१.
(३) नग्नं शुद्धं जुहोति गृह्णाति इति -दया. (विशुद्ध ज्ञान को ग्रहण करने वाला) (४) सुन्दर स्त्री को स्वीकार करने वाला ।
(५) नग्नाम् अन्येनानुपगतां कन्याम् अथवा नग्नशरीरे शुभलक्षणवर्तीं कन्यां जुहोति गृह्णाति यः सः ।
अर्थात् जो अन्य से अनुपगत कन्या को अथवा नग्नशरीर में शुभलक्षणवती कन्या को करता है ।
नग्निकां श्रेष्ठां यवीयसीमुप यच्छेत- मानव गृह्यसूत्रम् (नग्निका श्रेष्ठा युवती का उपभोग कर)
नग्न शरीरेऽपि शुभलक्षण वतीमिति अष्टावक्रः
(६) नग्न अर्थात् अकिञ्चन पुरुषों को अन्न वस्त्र देने वाला (यः नग्नान् जुहोति आदत्ते इति नग्न हुः ।-(दया.)
'महावीरस्य नग्नहुः'
वाज.सं. १९.१४

नग्नी- न + ग्ना (वाणी) + ई = नग्नी ।
'येन महा नग्न्या जघनम्'
अ. १४.१.३६, कौ.सू. १३९.१५.

न्यग्रोध- न्यक् + रुध् + अच् = न्यग्रोध । अर्थ है- नीचे की ओर मूल छोड़ने वाला वटवृक्ष
'यत्राश्वत्था न्यग्रोधाः'
अ. ४.३७.४
'भद्रान् न्यग्रोधात् पर्णात्'
अ. ५.५.५.
(२) विजित देशों में छावनी बनाकर रहने वाला विजयी राजा (३) वनस्पतिनामक अधिकारी ।
'न्यग्रोधश्चमसैः'
वाज.सं. २३.१३, तै.सं. ७.४.१२.१, का.सं.(अश्व.) ४.१.श.ब्रा. १३.२.७.३.

नघमार-(१) कुष्ठ नामक औषधि का एक नाम जो पुरुष को कभी मरने नहीं देता ।
'त्रीणि ते कुष्ठ नामानि नघमारो नघारिषः'
अ. १९.३९.२

नघाय- (१) कुष्ठ औषधि का एकनाम । छपी पुस्तकों मं 'नघायु' पाठ है, परन्तु ग्रीफिथ 'नघाय' को ही शुद्ध मानते हैं । पैप्पलाद का भी यही मत है । शंकर पाण्डुरंग और ह्विटनी को ' नघायम् ' पाठ में संदेह है ।
'नघायं पुरुषोरिषत'

अ. १९.३९.२, ३.४,

नघारिष- न + घ + अरिष । कुष्ठ नामक औषधि जो कभी अरिष्ट या रोग नहीं होने देता है ।

नघारिषा- (१) किसी प्रकार की हानि न पहुंचाने वाली ओषधि ।

'जीवलां नघारिषाम्'

अ. ८.२.६, ८.७.६

(२) न हन्ति इति नघा, नघा रुषा रोषो अस्यां सा । कभी प्राण पर आघात न करने वाली

न्यङ्कु - (१) न्यङ्कवति इति न्यङ्कु । (नीचे स्वर से शनैः शनैः भाषण करने वाला) ।

न्यङ् + कु ।

'पिद्वो न्यङ्कुः कक्कट स्तेऽनुमत्यै'

वाज.सं. २४.३२, तै.सं. ५.५.१७.१, मै.सं. ३.१४.१३, १७५.४

(२) न्यङ्कु जाति का एक मृग ।

'आदित्यभ्ये न्यङ्कून्'

वाज.सं. २४.२७, मै.सं. ३.१४.९,१७४.३.

नचिकेता- (१) न चिकेत (जो नहीं जानता) (२) जिसके रोग दुःख दूर नहीं होते वह अल्पज्ञानी, (३) बद्धजीव ।

कठोपनिषद् में उक्त नाचिकेतोपाख्यान का यहीं मूल है ।

'एतमर्थ नचिकेताहमग्निः'

ऋ. १०.५१.४

न्यञ्च् - नि + अञ्च् + क्विप् = न्यञ्च् । प्रथमा एक वचन में 'न्यङ्' अर्थ है- नीचे जाता हुआ ।

'न्यङ्ङुत्तानमन्वेषि भूमिम्'

ऋ. १०.१४२.५

आदित्य विस्तृत रश्मि समूह से नीचे जाता हुआ (न्यङ्) । इस विस्तृत भूमि को (उत्तानाम्) आच्छादित करता है (अन्वेति) ।

न्यञ्चन- नि + अञ्च् + ल्युट् = न्यञ्चन् । अर्थ है- नित्य आना जाना ।

'अज्रे चिदस्मै कृणुथा न्यञ्चनम्'

ऋ. ८.२७.१८

न्यञ्चनी- (१) सब रोगों को दबानेवाली, (२) समस्त शरीर में सुगमता से व्याप जाने वाली ।

'जब्रानां च न्यञ्चनी'

अ. ५.५.२.

न्यञ्ज् - नि + अञ्ज् । संग्रह करना

'यथा मक्षा इदंमधु
न्यञ्जन्ति मधावधि'

अ. ९.१.१७

न जीवो न मृतः- न जिन्दा न मरा = स्वप्न ।

'यो न जीवोऽसि न मृतो
देवानाममृतागर्भोऽसि स्वप्न'

अ. ६.४६.१

नड - (१) नरकुल, नरकट ।

'केशा नडाइव वर्धन्ताम्'

अ. ६.१३७.२,३

(२) वर्षा ऋतु में होने वाला एक तृण विशेष ।

'नडमिवा च्छिन्धि वार्षिकम्'

अ. ४.१९.१

'नडा इव सरसो निरतिष्ठन्'

ऋ. ८.१.३३

नड्वला- (१) वह भूमि जिसमें नड़ तथा सरकण्ड आदि उत्पन्न हों (२) दल दल भूमि ।

'न ड्वलाभ्यो शौष्कलम्'

वाज.सं. ३०.१६, तै.ब्रा. ३.४.१.१२.

नद - सं. (१) समृद्ध करने वाला, (२) आज्ञापक

'नदं व ओदतीनाम् नदं यो युवतीनाम्'

ऋ. ८.६९.२, साम. २.८६२, ऐ.आ. १.३.५.२, ५.१.६.५.

(३) उपदेष्टा, (४) नदत्' (जप करता हुआ)।

(५) नद, नाला (६) वेदाध्ययन करने वाला ।

'नदस्य मा रुधतः काम आगत'

ऋ. १.१७९.४, नि. ५.२.

लोपामुद्रा कहती है - जप करते हुए, एवं इन्द्रियों पर संयम करते हुए (रुधतः) ब्रह्मचारी अगस्त्य के प्रति कामभावना मेर प्रति आई ।

(७) महानद ।

'नदं न भिन्नममुयाशयानम्'

ऋ. १.३२.८

जिस प्रकार जल धाराएं इस पृथ्वी के साथ सोए, प्रशान्त, टूटे तट वाले महानद को....तट तोड़ कर मिल जाती है ।

नदनिमा- (१) शब्द करने वाला चिरचिराने वाला जन्तु ।

'हतो नदनिमोत'

अ. ५.२३.८

नदनु- (१) गर्जन, ।
'यदा कृणोषि नदनुं समूहसि'
ऋ. ८.२१.१४, अ. २०.११४.२, साम. २.७४०.
(२) उपदेश करने वाला ।
नदनुमान् - (१) गर्जनशील, (२) उपदेष्टा, इन्द्र ।
'तुविम्रक्षो नदनुमां ऋजीषी'
ऋ. ६.१८.२, का.सं. १८.१७.
नद्ध- (१) नाधा हुआ, बांधा हुआ ।
'यत्ते नद्धं विश्ववारे'
अ. ९.३.२
(२) बन्धन, नाध ।
'नद्धानि वि चृतामसि'
अ। ९.३.१,४,५,
नदी- (१) शब्द करने वाला जल (२) राजा पर आघात होने से शब्द करने वाली प्रजा ।
'तस्मादा नद्यो नाम स्थ'
अ. ३.१३.१, तै.सं. ५.६.१.२, मै.सं. २.१३.१, १५२.८, का.सं. ३९.२
(३) स्त्री । नद् (ध्वनि करना) + अच् + ङीष् = नदी ।
'अद्या चिन्नू चित् तदपो नदीनाम्'
ऋ. ६.३०.३, नि. ४.१७.
आज भी और पहले भी नदियों का जल बहाना तेरा काम रहा,
(४) जल ।
'बुध्ने नदीनाम् रजासु षीदन्'
ऋ. ७.३४.१६, नि. १०.४४.
जलों के बांधने में । पुनः,
'समस्त नदीभिरुर्वशीवागृणातु'
ऋ. ५.४१.१९, नि. ११.४०.
रूपवती विद्युत् उर्वशी नाम से प्रसिद्ध माध्यमिका देवी हमें खूब जूलों से (नदीभिः) तृप्त करे (अभिगृणातु) ।
नदीतमा- (१) अतिशमेन अव्यक्त विद्यो पदेशिका-दया.
(२) उपदेश करने वालो में सबसे श्रेष्ठ,
(३) सरस्वती देवी ।
'अम्बितमे नदीतमे देवितमे सरस्वति'
ऋ. २.४१.१६
नदीनांसुमतिः- (१) गुणों में सम्पन्न स्त्रियों की शुभधर्मबुद्धि, (२) संमृद्ध प्रजाओं की सुसम्पत्ति ।
'अभक्तविप्रः सुमतिं नदीनाम्'
ऋ. ३.३३.१२
नदीपति- नदियों का पति- समुद्र ।
'प्लवो मद्गुर्मत्स्यस्ते नदीपतये'
वाज.सं. २४.३४, मै.सं. ३.१४.१५, १७५.१०.
नदीवृत- (१)समस्त आकाश को घेरने वाला मेघ या वृत्र । (२) बहने वाली नदियों को बहाने वाला ।
'इन्द्रो यद् वृत्रम् अवधीत् नदीवृतम्'
ऋ. १.५२.२
सामर्थ्यवान् सूर्य, विद्युत् वायु या इन्द्र जब समस्त् आकाश को घेरने वाले, अतिवेग से नदियों को वहाने वाले मेघ को आघात करता है ।
अथवा इन्द्र जब वृत्रनामक असुर को मारता है.।
न्यदृष्ट- (१० अप्रत्यक्ष (२) तन्मय, तल्लीन
'न्यदृष्टा अलिप्सत'
ऋ. १.१९१.१.४, अ. ६.४२.२
नन - नम् (झुकना) + नक् = नन । अर्थ -(१) जो पिता के सामने झुकता है - पुत्र । नना का अर्थ माता या पुत्री है ।
नन्त्व - (१) नमनीय -दया(२) दवाने योग्य भीतरी और बाह्य शत्रु सैन्य ।
'यो नन्त्वानि अनमन्त्योजसा'
ऋ. २.२४.२
नना - (१) नम् (नवना) + नक् = नना । नन + टाप् = नना । अर्थ-माता । माता दूध पिलाने के निमित्त अपने अपत्य के प्रति झुक्ती है । (स्तन्यदानाद्युपकाराय नमति) (२) पितुः शुश्रूषार्थं दुहिता प्रह्वी भवति (पिता की शुश्रूषा करने के लिए दुहिता झुक्ती है । नम् + अच् + टाप् = नमा = नना । अंग्रेजी में Nun संन्यासिनी के अर्थ में आया है । वृद्धावस्था के कारण नव जाने से हिन्दी में भी 'नाना' और 'नानी शब्दों का प्रयोग है । वेदों में माता और पुत्री के अर्थों में प्रयोग मिलता है ।
'उपलप्रक्षिणीनना'
ऋ. ९.११२.३, नि. ६.६,
अंगिरस की उक्ति है । कहते हैं मेरी माता या

पुत्री चक्की चलाने वाली या पिसाई कर जीविका चलानेवाली थी ।

ननान्दा - ननद । न नन्दयति इति ननान्दा (जो भाभी को प्रसन्न नहीं करती अर्थात् उससे झगड़ती है) ।

'ननान्दुः सम्राज्ञ्येधि'

अ. १४.१.४४.

'ननान्दरि सम्राज्ञीभव'

ऋ. १०.८५.४६, साम.मं.ब्रा. १.२.२०, आप.मं.पा. १.६.६.

ननाश- नश् (नष्ट होना) के लिट् प्रथम पु.ए. व. में रूप है । अर्थ है- अदृश्य हो गया, आखों से ओझल होगया ।

'महोजाया विवस्वतो ननाश'

ऋ. १०.१७.१, अ. १८.१.५३,नि. १२.११.

महान् आदित्य की जाया सरण्यू (त्वष्टा की दुहिता) विवाह होते ही यम और यमी को उत्पन्न कर अदृश्य हो गई (ननाश) अथवा, मध्यम देव यम की माता वह ज्योति महान् आदित्य की भार्या समझी गई । प्रभात होते ही सूर्य ज्योति सूर्य के समीप से छिटक कर सूर्य से दूर भाग गई ।

ननु- (१) प्रश्न में प्रयुक्त एक अव्यय यथा- ननु किलएवम् 'ऐसी बात है'

पहले न + नु से ननु बना, पीछे 'ननु' एक अलग अव्यय बन गया । आज भी प्रश्न की मुद्रा में कहते हैं न नु ? ह न ? प्रश्न के आदि में ही इसका प्रयोग होता है यथा -ननु समाप्तकत्यो गौतम ? क्या गौतम अपना कृत्य समाप्त कर चुके हैं । ?

(२) अवश्य, सचमुच, क्या ऐसीं बात नहीं है ? इन अर्थों में भी ननु का प्रयोग होता है । जैसे- यदाऽमेधाविनी शिष्या उप देशं मलिनयति तदाचार्यस्य दोषों ननु ?

'यदि मूर्ख शिष्या उपदेश को मलिन कर तो यह अवश्य आचार्य का दोष है ।

(३) अवधारण अर्थ में-

त्रिलोक नाथेन सदामखद्विषःत्वया नियम्या ननु दिव्य चक्षुषा

(४) सम्बोधनार्थक ओ ओह के अर्थ में प्रयोग- ननु मूर्खाः। पठितमेव युष्माभिः तस्मिन् काण्डे । ऐ मूर्खों तुमने तो उस काण्ड में पढ़ा ही है।

(५) प्रार्थना अर्थ में -

ननु मां प्राप्य पत्युरन्तिकम् 'कृपया मुझे पति के समीप पहुंचा ।

(६) संभल कर या शुद्ध बोलने में ।

'ननु विचिनोतु भवान्'

(७) शास्त्रार्थ के तर्क वितर्क में वाक्य के आरम्भ में ननु का प्रयोग किया जाता है ।

नप्त्यः- (१) नप्तृ शब्द का नप्त्य आदेश, नप्तरि भवः नप्त्यः । नप्तृ + यत् = नप्त्य । 'रीङ्तः' से रीङ् और 'पस्येति च' से इ का लोप । अर्थ है- (१) दौहित्र, नाती, पुत्री का पुत्र ।

'शादद्वह्नि दुहितुः नप्त्यं गात्'

ऋ. ३.३१.१, ऐ.ब्रा. ६.१८.२, १९.४, गौ.ब्रा. २.५.१५, ६.१, नि . ३.४.

अपुत्र पिता जो अपनी कन्या को पुत्रप्राप्ति के लिए विवाह में देता है (वह्निः) यह कहता हुआ (शासत्) विवाह में देता है कि कन्या का पुत्र उसका होगा और वह कन्या के पुत्र को अपनाता है (गात्) ।

नप्तिनप्त्यः - (१) ब.व. । 'सप्त शुन्ध्युवः' 'सूर्य की सात किरणों का विशेषण है । अर्थ है-नहीं गिरने देने वाली । नञ + पत् + इक् = नप्ति । बहुवचन में 'नप्त्यः' ।

'अयुक्त सप्त शुन्ध्युवः
सूरो रथस्य नप्त्यः
ताभिर्याति स्वयुक्तिभिः'

ऋ. १.५०.९, अ. १३.२.२४, २०.४७.२१, आ.सं. ५.१३, का.सं. ९.१९, तै.ब्रा. २.४.५.४.

नपात् - (१) अगम्य ।

'यस्ते श्रृंगवृषो नपात्'

ऋ. ८.१७.१३, अ. २०.५.७, साम. २.७७, तै.ब्रा. २.४.५.१.

(२) अनन्तराया प्रजायाः नाम धेयम् (पिता के अनन्तर होने वाला पुत्र और अनन्तर अर्थात् पुत्र का पुत्र नपात् है) । अर्थ है - पौत्र, पोता

(३) न पातयति न पतति अनेन इति यह कुल को गिराता नहीं कुलक्रम की रक्षा करता है । या इसके चलने कुल नहीं गिरता कुलक्रम नहीं टूटता अतः वह नपात् हुआ ।

नञ् + पाति (ण्यन्त) नपात् (४) निर्णततमः नीचैः .नततमः (पुत्र पिता के समक्ष नत रहता है परन्तु पौत्र तो और भी नत या नत तम रहता है। अतः वह नपात् है। इसी से 'तनूनपात् का अर्थ 'आज्य' हुआ। तनू का अर्थ गौ है। दुग्ध गौ का पुत्र है और दुग्ध से बना आज्य गौ का पौत्र है, (५) शाकपूणि ने इसे अग्नि के अर्थ में लिया है। अन्तरिक्ष से आप्, आप् से ओषधि और ओषधि से अग्नि।

(६) स्वामी दयानन्द ने 'नपात्' का अर्थ-राष्ट्र को धर्म से नहीं गिराने वाला किया है। (७) सूर्य। जल से अग्नि और अग्नि से सूर्य है अतः सूर्य जल का पौत्र हुआ।

(८) नहीं पतित होने वाला विद्वान्। -(दया.)

'एहिवां विमुचोनपात्'

ऋ. ६.५५.१

प्रजाओं को अन्धकार से मुक्त करने वाला पूषक या विषयादिकों से विमुक्त विद्वान् (विमुचः) हे सूर्य या हे कभी पतित न हो वाला विद्वान्

नपात - (२) प्रजा तन्तु को न गिरने देने वाला पुत्र

'नपातं च विक्रमणं च विष्णोः'

ऋ. १०.१५.३, अ. १८.१.४५, वाज.सं. १९.५६, तै.सं. २.६.१२.३, मै.सं. ४.१०.६, १५६.१६, का.सं. २१.१४.

नप्ता- (१) विवाह बन्धन में बांधने वाला, (२) जलों को बांधने वाला बल।

'आपो नप्त्रे घृतमन्नं वहन्ती'

ऋ. २.३५.१४

(३) राजप्रबन्ध कर्ता, (४) सर्वप्रबन्धक एवं बन्धु परमेश्वर (५) पैजवन सुदास नामक राजा का विशेषण।

'द्वेनप्तुः देववतः शते गोः'

ऋ. ७.१८.२२

Nuptial का अर्थ विवाह सम्बन्धी।

नप्त्या - द्वि.व.। परस्पर सम्बद्ध पुरुष और प्रकृति।

'मा की रणस्य नप्त्या'

ऋ. ८.२.४२

नप्ति- (१) बन्धन -ग्रन्थि।

'मरुता मुग्रा नप्तिः'

अ. ९.१.३,१०

(२) सम्बद्ध शास्य और शासक जन।

'वयांसि नप्त्यो र्हितः'

ऋ. ९.९.१, साम. १.४७६,२.२८५.

नप्ती- (१) कभी नष्ट न होने देने वाली शक्ति।

'सूरो रथस्य नप्त्यः'

ऋ. १.५०.९, अ. १३.२.४, अ. २०.४७.२१, आ.सं. ५.१३, का.सं. ९.१९,तै.ब्रा. २.४.५.४.

नभ् - (१) टूटना।

'नभन्तामन्यकेषां ज्याका अधिधन्वसु'

ऋ. १०.१३३.१-३,४-६,अ.२०.९५.२-४, साम. २.११५१-११५३, तै.सं. १.७.१३.५, मै.सं. ४.१२.४, १८९.९, तै.ब्रा. २.५.८.२.

(२) बांधना, (३) नाशकरना (४) हिंसक।

'स हो नभोऽविराणाय पूर्वी'

ऋ. १.१७४.८

पहले की शत्रु सेनाओं को विशेष युद्धादि के न करने के लिए (अविरणाय) पराजित कर।

नभनूः- (१) आकाश से आने वाली या किनारों (तटों) को तोड़ने वाली नदी, (२) शत्रुओं को मारने वाली सेना, (३) पुरुष को प्रेम में बांधने वाली।

'प्राग्रुवो नभन्वो न वक्वाः'

ऋ. ४.१९.७

नभन्ताम्- (१) नभ् हिंसा एवं अभाव अर्थ में प्रयुक्त है। लोट् प्र. पु. ब.व. का रूप है। अर्थ है- नष्टाः भवन्तु, हिंसिताः भवन्तु (नष्ट हो जाय)। (२) टूट जाय।

'नभन्तामन्यके समे'

ऋ. ८.३९.१-४०.११,४१,१-१०,४२.४-६, तै.सं. ३.२.११.३, नि. ५.२३,१०.५.

(और सभी शत्रु नष्ट हो जायँ)।

'नभन्तामन्य केषां ज्याका अधिधन्वसु। शत्रुओं के (अन्यकेषाम्) धनुषों पर चढ़ाई मौर्वी (अधिधन्वसु ज्याका) टूट जाय (नभन्ताम्)।

नभन्य- (१) पृथिवी या अन्तरिक्ष में हुआ। (दया.) (२) आकाश में व्याप्त वायु (३) अन्तरिक्ष स्थ मेघ, (४) द्युति करने योग्य प्रभु, (५) सम्बन्ध योग्य पुरुष।

'प्र क्रन्दनु र्नभन्यस्य वेतु'

ऋ. ७.४२.१

(६) न + भन्यः = नहन्यः किसी से भी परास्त

न होने वाला (७) किसी से भी न हनन करने योग्य ।

नभन्यं साम- (१) अज्ञान का नाश करने वाला, (२) अविनाशी ईश्वर की स्तुति करने वाला, (३) सूर्य के समान परमेश्वर से सम्बद्ध, (४) उत्त स्वर से आकाश भर में गूंजने वाला सामगाना ।

'गायत् सामनभन्यं यथा वेः'

ऋ. १.१७३.१, ऐ.ब्रा. ५.२०.१२, कौ.ब्रा. २४.५, २६.१६.

नभनु- (१) गर्जती जल धारा, (२) वज्र, (३) सेनापति का आज्ञा वचन ।

'प्रपर्वतस्य नभनूं रचुच्यवुः'

ऋ. ५.५९.७

नभस्- (१) चमकता अन्धकार, (२) आकाश प्रदेश ।

'द्यौरिव स्मयमानो नभोभिः'

ऋ. २.४.६

(३) श्रावण मास ।

'उपयामगृहीतोऽसि नभसे त्वा'

वाज.स. ७.३०

(४) आदित्य । आदित्य 'रसानां नेता आदत्ता (रसों का खींचने वाला है ।) अथवा 'भासां नेता' (सभी दिशाओं में प्रकाश पहुंचाने वाला है । अथवा 'ज्योतिषां प्रणयः (प्रकाशों का प्रणय है) (५) अथवा- भासन् से भन् (जो प्रकाशममय हो) हुआ और भन् का नभ हुआ । भा का भ और स् का लोप ।

अथवा-'न न भाति' (नहीं प्रकाश करता है यह बात नहीं है प्रकाश करने वाला ।

आधुनिक अर्थ- (१) आकाश, (२) वातावरण, (३) मेघ, (४) ओष, तुषार, वाष्प, (५) आयु, (६) वर्षा या वर्षाऋतु (७) नाक, गन्ध, (८) श्रावण मास (९) कमल की जड़ के रेशे, (१०) थूक फेंकने का बर्तन ।

नमस्वन्- (१) परस्पर विनयशील, (२) अन्न का लाभ करने वाला कृषक जन, (२) विनयी ।

'नमस्वन्त इदु पवाकमीयुः'

ऋ. १.१६४.८

नभोजू- (१) वायु में वेग देने वाली, (२) आकाश में प्रेरणा देने वाला परमेश्वर ।

'नभोजुवो यन्निरवस्य राधः
प्रशस्तये महिना रथवते'

ऋ. १.१२२.११

क्योंकि वायु में वेग देने वाले आकाश में प्रेरणा देने वाले (नभोजुवः) निःशेष समस्त कारणों और रक्षण-सामर्थ्य वाले परमेश्वर की (निरवस्य) आराधना या उसके द्वारा दिया ऐश्वर्य (राधः) महान् सामर्थ्य से (महिना) रमणसाधनरूप देह को धारण करने वाले आत्मा के (रथवते) उत्तम प्रशासन या ज्ञान प्राप्ति के लिये होता है (प्रशस्तये) ।

नमयिष्णु- (१) झुकाने में समर्थ ।

'स्थिर चित् नभ यिष्णवः'

ऋ. ८.२०.१

नभाक - नभ् वांधना और नाश करना अर्थमें आया है । अर्थ - (१) प्रवन्ध कर्ता, , (२) शत्रु नाशक

नभाक वत् - नभाक + वतुप्= नभाकवत् । उत्तम प्रवन्ध कर्त्ता के सहित

'अभ्यर्च नभाकवत् इन्द्राग्नी यजसा गिरा'

ऋ. ८.४०.४

नभोजाः- (१) नभ में उत्पन्न, (२) आकाशवत् महान् प्रभु के वीच में उत्पन्न ब्रह्मज्ञ पुरुष

'नभोजाः पृष्ठं हर्यतस्म दर्शि'

ऋ. १०.१२३.२

नभोरूपः- आकाश के समान वर्षा वाले हलके नीले रंग का ।

'नभो रूपाः पार्जन्याः'

वाज.सं. २४.३,६, मै.सं. ३.१३.४, १६९.६, ३.१३.७, १७०.२.

नमः- (१) आदरभाव, (२) वज्र, (३) सदुपयोग ।

'नमस्ते मृत्यो मूलेभ्यः'

अ। ६.१३.३

(४) नवाने का उपाय (५) नमस्कार योग्य (६) ब्रह्म ।

'नम इदुग्रं नमआविवासे'

ऋ. ६.५१.८,

(७) अन्न, (८) दमन (९) नियम व्यवस्था ।

नमोऽस्तु सर्पेभ्यो
ये केच पृथिवीमनु

वाज.सं. १३.६, तै.सं. ४.२.८.३, मै.सं. २.७.१५,९७.१, का.सं. १६.१५, श.ब्रा. ७.४.१.२८,

(१०) नमाने का साधन चाबुक आदि ।
'अश्वं न वाजिनं हिपेनमोभिः '
ऋ. ७.७.१
वज्र के अर्थ में-
'नमो अस्त्वरातये '
अ. ५.७.१,३.
(११) बलवीर्य ।
'नमो गन्धर्वस्य मनसे '
अ. १४.२.३५
(११) नम् + असुन् = नमस् । भक्तिभाव नमस्कार । प्रणामार्थक अव्यय ।
'पदं देवस्य नमसाव्यन्तः '
ऋ. ६.१.४, मै.सं. ४.१३.६,२०६.११, का.सं. १८.२०.तै.ब्रा. ३. ६.१०.२, नि. ४.१९.
अग्नि देव के पद को भक्तिभाव से देखते हुए....
अन्न के अर्थ में प्रयोगः-
एना वो अग्नि नमसा ऊर्जानपातमाहुवे ।
हे ऋत्विक यजमानो, इस अन्न से (एना नमसा) आप लोगों के अन्न के नप्ता (ऊर्जा नपात्) अग्नि को आमन्त्रित करता हूँ (आहुवे) । हे प्रजाजनो हमारे लिये (वः) इस अन्नादि से सत्कार पूर्वक बल का नाश न करने वाले (ऊर्जा नपात्) तेजस्वी उपदेशक को स्वीकार करता हूँ (अग्निम् आहुवे) ।
स्तुति अर्थ में-
'यत्रा चक्रु रमृता गातु मस्मै
श्येनो न दीयन् अदिति पाथः
प्रति वां सूर उदिते विधेम
नमोभि र्मित्रा वरुणो न हव्यैः '
ऋ. ७.६३.५
प्रथमार्द्ध का देवता सूर्य, द्वितीयार्द्ध का इन्द्रा वरुण । जिस अन्तरिक्ष में अमरधर्मा पूर्वकालीन देवों ने (अमृताः) इस सूर्य के लिए मार्ग बनाया (गातुं चक्रु) वह अन्तरिक्ष (पाथः) उस सूर्य को मार्ग देने के लिये शीघ्र उनका अनुगमन करता बाजपक्षी के समान चलता है (श्येनः न दीयन्) प्रन्वेति), अनुगमन करता है । हे मित्रा वरुणो, सूर्य के उदित होने पर (सूरे उदिते) या प्रातः सवन के समय तुम दोनों को (वाम्) स्तुतियों एवं हवियों से (नमोभिः उत हव्यैः) हम परिचर्या करें (प्रतिविधेम) ।

अन्य अर्थ - जब सूर्य की रश्मियां इन मनुष्यों के लिये गमन करती हैं और जब सूर्य श्येन की तरह बड़े वेग से गति करता हुआ अन्तरिक्ष में प्राप्त होता है तब सूर्योदय होने पर हे अध्यापक और उपदेशक (मित्रा वरुण) हम आप दोनों का नमस्कार से या उत्तम पदार्थों से सत्कार करते हैं ।

नम उक्तिः- (१) नमस्कार वचन, सत्कार सहित उत्तम गणस्तुति ।
'भूयिष्ठां ते नम उक्तिं विधेम '
१.१८९.१, वाज.सं. ५.३६,७, ४३ ४०.१६. तै.सं. १.१.१४.३, ४.४३.१, मै.सं. १.२.१३, २२.७. का.सं. ३.१,६.१०, श.ब्रा. ३.६.३.११, ४.३ .४.१२, तै.ब्रा. २.८.२.३, तै.आ. १.८.८.

नमस्यः- नमस् + यत् । नमस्कार करने योग्य ।
'पत्नी वन्तोनमस्य नमस्यन '
ऋ. १.७२.५
गृहपत्नियों से युक्त गृहस्थ नमस्करणीय पुरुष को नमस्कार करे (नमस्यन्) ।

नमस्यन्- (१) अन्न-प्राशन करता हुआ ।
'नमस्यन्तस्त्वा हविषा विधेम '
अ. १.१२.२
(२) प्रार्थना करता हुआ ।
(३) नमस्यन्तु (नमस्कार करें) ।

नमसानः- नमस्कार पूर्वक पूजा करता हुआ ।
'यशस्विनं नमसाना विधेम '
अ. ६.३९.२

नमस्युः- (१) नमस्कार करने वाला भक्त, विद्यार्थी ।
'स इत् वने नमस्युभिर्वचस्यते '
ऋ. १.५५.४

नमस्वान् - (१) ज्ञानवान् पुरुष, (२) अन्न वाले पुरुष,
'नमस्वन्त इदुपवाकमीयुः '
ऋ. १.१६४.८, अ. ९.९.८.

नमस्विन् - (१) नमस् + विनि = (नमस्वी) नमस्विन् । नमः प्रशस्तो वज्रः विद्यते यस्य सः (जिसे प्रशस्त वज्र हो वह नमस्वी है) ।
(२) नतमस्तक करने वाला ।
'तं घेमित्था नमस्विनः
उप स्वराजमासते '

ऋ. १.३६.७, ८.६९, १७.अ. २०.९२.१४, ऐ.ब्रा. १.२२.८, आश्व. श्रौ.सू. ४.७.४.
(३) उपासक
(४) नमस्कार करने वाला
'नक्षन्ति रुद्रा अवसा नमस्विनम्'
ऋ. १.१६६.२

नम्या- (१) रात्रि । नि. १.१७. (२) शत्रु को दबा देने में समर्थ या विनय से झुकने वाला नमी है । तृतीय ए.व. में 'नम्या' है ।
'नम्या यदिन्द्र सख्या परावति
निबर्हयो नमुचिं नाम मायिनम्'
ऋ. १.५३.७, अ. २०.२१.७.
तू जिस कारण शत्रु को दबा लेने में समर्थ एवं तेरे समक्ष विनय से झुकने वाले मित्र से मिलकर (नम्या सख्या) कभी जीता न छोड़ने योग्य (नमुचिम्) सबसे प्रसिद्ध और प्रबलतम (नाम) मायावी शत्रु को (मायिनम्) दूर देश में ही (परावति) विनाश करता है (निबर्हयः) अथवा, रात्रि काल में माया करने वाली को मित्र ही सहायता से ....।

नमी- (१) विनयशील ।
'प्रमेनमी साप्य इषे भुजेभूत्'
ऋ. १०.४८.९
(२) शत्रु को दबा देने में समर्थ ।
'नम्या यदिन्द्र सख्या परावति'
ऋ. १.५३.७, अ. २०.२१.७
(३) आगे झुकने वाला (४) नम्र होकर रहने वाला ।
'प्रावन् नमीं साप्यं ससन्तम्'
ऋ. ६.२०.६

नमुचि - (१) अधर्म को न त्यागने योग्य, (२) जिसे दण्ड दिए बिना कभी न छोड़ा जाय, (३) एक दैत्य ।
'यः पिपुं नमुचिं यो रुधिक्राम्'
ऋ. २.१४.५
(४) न छोड़ने योग्य शत्रु ।
'अपां फेनेन नमुचेः
शिर इन्द्रो दवर्तयः'
ऋ. ८.१४.१३. अ. २०.२९.३, साम. १.२.११, वाज.सं. १९.७१, श.ब्रा. १२.७.३.४.
'निबर्हयो नमुचिं नाम मायिनम्'
ऋ. १.५३.७, अ. २०.२१.७.
(५) न विद्यते मुचिः मोक्षणं यस्य सः (कभी जीता न छोड़ने योग्य अवश्य वध करने योग्य) ।
(६) अपना संग न छोड़ने वाला ।
'अत्रा दासस्य नमुचेः शिरोयत्'
ऋ. ५.३०.७
(७) कर आदि न देने वाला (८) दुर्भिक्ष कालिक मेघ के समान प्रजा के निमित्त कुछ भी सुख और राष्ट्र भोग को प्रदान न करने वाला ।
'यमश्विना नमुचेरासुरादधि'
वाज.सं. १९.३४, मै.सं. ३.११.७,१५१.१, का.सं. ३८.२, श.ब्रा. १२.८.१.३, तै.ब्रा. २.६.३.१, शां.श्रौ.सू. १५.१५.१३.

नमुरः- नहीं मरने वाला अमर ।
'भूयान् इन्द्रो न मुरात्'
अ. १३.४ (५) ४६

नमोवाक- नमः वचन करने योग्य ईश्वर प्रार्थना, स्तुति, ब्रह्मयज्ञ ।
'नमोवाके वषट्कारो ऽनुसंहितः'
अ। १३.४ (३) २६

नमोयुजानः- अन्न , ऐश्वर्य पद या सर्ववशकारी बल को अपने में धारण करने वाला परमेश्वर या अग्नि, ।
'नमो युजानं नमो वहन्तम्'
ऋ. १.६५.१

नमोवहन् - सबके पोषक अन्न और सबके भक्तिभाव को स्वीकार करता हुआ परमेश्वर या अग्नि ।

नमोवृक्ति- (१) नमनकारी दण्ड व्यवस्था (२) शासन व्यवस्था को भंग करने का अपराध, (३) नमस्य या पूजा में विच्छेद करना ।
'नमसः वृंक्तिः नमो वृंक्तिः
ये बर्हिषो नमो वृंक्ति न जग्मुः'
ऋ. १०.१३१.२, अ. २०.१२५.२, वाज.सं. १०.३२,१९.६,२३.३८. तै.सं. १.८.२१.१,५.२.११.२, का.सं. १२.९,१४.३,३७. १८.मै.सं. १.११. ४,१६६.४, श.ब्रा. ५.५.४.२४, तै.ब्रा. २.६.१.३.

न्ययन - (१) नि + अयन । जल के लिए नीचे

आने का स्थान ।
'अपामिदं न्ययनम्'
ऋ. १०.१४२.७, अ. ६.१०६.२, वाज.सं. १७.७, तै.सं. ४.६.१.३, मै.सं. २.१०.१, १३१.१२. का.सं. १७.१७, श.ब्रा. ९.१.२.२८, आश्व.श्रौ.सू. २.१२.२, आप.श्रौ.सू. १७.१३.४, मा.श्रौ.सू. ६. २.४.
(२) आश्रय स्थान पृथिवी, (३) गृहस्थाश्रम

नयमानः अश्वः– सवार ले जाता हुआ अश्व ।
'क्रन्दत् अश्वो नयमानो रुदद्गौः'
ऋ. १.१७३.३

नर, नरा– (१) मनुष्य । नृत् (नर्तन करना) + अच् = नर (त का लोप) । नृत्यन्ति कर्मसु गात्राणि इतस्ततः विक्षिपन्ति (कर्मों को करने में अंगों को इधर उधर संचालित करता है) (२) नयति नरति वा नरः । नृ + अच् = नर, नेता, (३) अश्व (३) अश्वनी द्वय का विशेषण होने पर 'नरा' शब्द आया है । सांसारिक कार्यों को चलाने वाले द्यौ और पृथिवी भी नरा है । नर अश्व का वाचक है । अतः अश्वनी कुमारों को नरा कहा गया ।

नरक – (१) न्यरकम् –नीचैः गमनम् (नीचे की ओर जाना अधः पतन (२) नीचैः अस्मिन् अर्यते (नीचों के द्वारा इसमें अर्थात् नरक में जाया जाता है) । नि + ऋ (गत्यर्थक) + वुन् (अधिकरण में) = नरक (निक्त पृषोदरादिवत् न और ऋ का अर्) शकन्धु आदि शब्दों के समान पर रूप । नि का अर्थ नीचैः है । इसका लोप न होने पर न्यरक होता है । अर्थ है – नरक ।
'ते जिह्नायन्त्यो नरके पताम'
नहीं तो पति तो कपट का आचारण करती हुई हम नरक में गिर जायंगी ।

नरन्धिषः– (१) मनुष्यों का पालन पोषण करने वाला (२) प्रजापालक राजा ।
'पूष्णे नरन्धिषाय स्वाहा'
वाज.सं. २२.२०, तै.सं. ७.३.१५.१, मै.सं. ३.१२.५, १६२.४, श.ब्रा. १३.१.८.६, तै.ब्रा. ३.८.११.२, तै.आ. ४.१६.१.

न्यर्थ– नि + अर्थ । निकृष्ट अर्थ , (२) नीचगति ।
'न भोजाममुर्न न्यर्थमीयुः'
ऋ. १०.१०७.८
(३) निश्चित प्रयोजन ।
'पात्राभिन्दाना न्यर्थान्यायन्'
ऋ. ६.२७.६
(४) निश्चितलक्ष्य ।
'ईयुरर्थं न न्यर्थं परुष्णी'
ऋ. ७.१८.९

न्यर्पयतम् – 'नि + अर्प' के लोट् म.पु. द्विवचन का रूप । नीचे रख दो नीचे दबाओ ।
'न्यर्पयतं वृषणा तमोवृधम्'
ऋ. ७.१०४.१, अ. ८.४.१, का.सं. २३.११.

नर्म– (१) कोमल वचनों का प्रयोग करना 'नर्म' है ।
'नर्माय रेभम्'
वाज.सं. ३०.६
(२) मनुष्योपयोगी ।
'अस्मान् त्रायस्व नर्याणि जाता'
अ. १९.४९.३

न्यर्बुद– दस अरब ।
'अर्बुदञ्च न्यर्बुदञ्च'
वाज.सं. १७.२, तै.सं. ४.४.११.३, मै.सं. २.८.१४, ११८.१५, का.सं . १७.१०

न्युर्बुदिः– (१) दस लक्ष सेनाओं का अधिकारी ।
'ईशानश्च न्यर्बुदिः'
अ। ११.९.४

नरा – द्वि. व. । (१) नर नारी का वाचक (२) अश्विद्वय का वाचक ।
'तद्वां नरा नासत्या वनुष्यात्'
ऋ. १.१८२.८.

नरावृषा– (१) सब नायक वायुओं में जलों की बरसाने वाला सूर्य, (२) सब नायकों और पुरुषों में श्रेष्ठ राजा, (३) देह के नायक प्राणों में श्रेष्ठ जीव ।
'स यो वृषा नरां न रोदस्योः'
ऋ. १.१४९.२

नराशंस– (१) प्रजाओं के नेतापुरुष का गुण ।
'नराशंस स्तविष्यते'
अ. २०.१२७.१, आश्व.श्रौ.सू. ८.३.१०, शां श्रौ. सू. १२.१४.१.१.
(२) नराः अस्मिन् आसीनाः शंसन्ति (यज्ञ में आसीन पुरुष स्तुति करते हैं) । नर + आसीन + शंस् + घञ् = नराशंस (सीन का लोप) अर्थ

है यज्ञ, यह काथक्य मुनि का मत है । (३) शाक पूणि ने इसका अर्थ अग्नि किया है । अग्नि नरों से प्रसंश्य होता है (नरैः प्रशंस्यो भवति)

'नरा शंसस्य महिमान मेषाम्
उपस्तोषाम यजतस्य यज्ञैः'

ऋ. ७.२.२, वाज.सं. २९.२,७, मै.सं. ४.१३.३, २०१.१२, का.सं. ३७.४, तै.ब्रा. ३.६.३.१, नि.८.७. उन देवताओं में (एषाम्) हवि या स्तोत्रों से (यज्ञैः) यजनीय अग्नि का (यजतस्य नराशंसस्य) महत्व (महिमानम्) हम निकट जाकर गाते हैं (उपस्तोषाम) या अग्नि की ही महिमा अधिक समझते हैं । (२) प्रजा और वाणी- ऐ.ब्रा. । प्रजा वै वरोवाक् । शंसः प्रजां चैव तत् वाचं च प्रीणाति प्रजां च वाचं च यजमाने दधाति' (३) जिससे नरों की प्रशंसा की जाती है । वह नराशंस है । (४) समस्त मनुष्यों की प्रशंसा और स्तुति करने योग्य परमेश्वर ।

'नराशंस सुधृष्टमपश्यं सुप्रथमस्तमम्'

नर्या - द्वि.व. । (१) द्यावापृथिवी या मातापिता का विशेषण ।

'उभा शंसा नर्या मामविष्ठाम्'

ऋ. १.१८५.९

नर्यापस् - (१) समस्त मनुष्यों के हितकारी कर्म या व्यापार करने वाला -परमेश्वर ।

'वृषभं नर्यापसम्'

ऋ. ८.९३.१, अ. २०.७.१, साम. १.१२५, २.८००, वाज..सं. २८.४, मै.सं. ३.११.२, १४२. ११, तै.ब्रा. २.६.७.२,

कर्म करने वाला ।

'ऋषभं नर्यापसम'

वाज.सं. २१.३८

'होता यक्षद्बर्हिषीन्द्रं निषद्वरं वृषभं नर्यापसम्'

वाज.सं. २८.४.तै.सं. २.६.७.२.

नरिष्टा- (१) अहिंसिता, (२) कभी न दबने वाला सभा ।

'विद्म ते समे नाम
नारिष्टा नाम वा असि'

अ. ७.१२.२.

(३) स्वच्छन्द चेष्टा ।

'हसो नरिष्टा नृत्तानि'

अ. ११.८.२४

(४) नेता के पद पर स्थिति की प्राप्ति ।

'नरिष्ठायै भीमत्वम्'

वाज.सं. ३०.६, तै.ब्रा. ३.४.१.२.

नर्मिणी- (१) क्रीड़ी विलासाः विद्यन्ते येषां तेषाम् इयम् -दया. (क्रीड़ा विलास वाली) (२) नाना विलास योग्य सुखों से सम्पन्न पुरुषों की नारी (३) नाना विलासों से भरी पूरी नगरी ।

'आ यः पुरं नार्मिणी मदीदेत्
अत्यः कविः नभन्यो नार्वा'

ऋ. १.१४९.३, साम. २.११२४.

जिस प्रकार अश्व नाना विलास योग्य सुखों सम्पन्न पुरुषों की नगरी को सुशोभित करता है उसी प्रकार जो सर्वत्र जाने वाला (अत्यः) व्यापक अधिकार वान् क्रान्तदर्शी आकाश में व्यापक वायु के समान (नभन्यः न) बलवान् वेगवान् और किसी से भी परास्त या हत न होने वाला :...।

नलदः- खस ।

'कष्ठस्य नलदस्य च'

अ. ६.१०२.३

नलदी- (१) नलदी, मासी या जटा मासी, गंधमासी- विष, भूत, दाह और ज्वर के तथा पकड़ी आदि के नाशक है , (२) कान ।

'गुल्गुलूः पीला नलदी'

अ. ४.३७.३

नव - (१) स्तुति योग्य ।

'वैयश्व दशमं नवम्'

ऋ. ८.२४.२३, अ. २०.६६.२

(२) सद्य एव कुतश्चित् आ नीतं भवति (जोतत्क्षण ही कहीं से आनीत हो) ।

(३) णु (स्तुति अर्थ में) + अच् = नव नूयते स्तूयते (जिसकी स्तुति की जाय । नई चीज स्तुत्य होती है ।

(४) न वननीयः नवः (जो सेवनीय नहीं हो । नञ् + वन् + क्विप् = नवन् ।

नवकोशाः- (१) आत्मा के नवकोश जो उसका स्तम्भान करते हैं ।

'तस्येमे नवकोशाः'

अ. १३.४ (१) १०

नवग्वन्- नव + गम् + ड्व = नवग्व । अर्थ है .
(१) नवनीत गति वाला, कोमल गति वाला ।
'स्वरेण अद्रिं स्वर्योनवग्वैः'
ऋ. १.६२.४
ताप और प्रकाश देने वाला सूर्य नए कोमल ताप से प्रवेश करने वाली किरणों से मेघ को....
(२) नवगतिः अभिनवगमन युक्तः, सदा नूतनवत् प्रीति जनकः (नई गति वाला, नूतन होने से सदा प्रीतिजनक) । (३) नवनीतगतिः (मक्खन की तरह शुभ करने वाला) (४) नवनीतं प्रति यस्यमनसः गतिः इदं मम इति-जिस के मन की गति सदा नवनीत के प्रति हो कि यह मेरा ही है, (५) नव मासों में सत्र करने वाला- (६) स्तुत्य गति वाला -उव्वट (७) नवीन नवीन गति वाला -महीधर । नक्षदाम' (८) नवशिक्षित, (९) नई भूमि को प्राप्त (१०) नई चाल, युद्धगति या शिक्षा को सीखने वाला (११) नव स्तुतिवाणियों का उच्चारण करने वाला
'तमुनः पूर्वेपितरः नवग्वाः'
ऋ. ६.२२.२, अ. २०.३६.२
'अयात यन्त क्षितयोनवग्वाः'
ऋ. १.३३,६
जब नवशिक्षित, नई भूमि को प्राप्त या युद्ध गति या युद्ध शिक्षा को सीखने वाले (नवग्वाः) मनुष्य प्रमाण करते हैं (१२) नवागत ।
'तामन्वर्तिष्ये सखिभिः नवग्वैः'
अ. १४.१.५६

नवग्वाः - (१) प्रशस्त कर्मा या मक्खन की तरह शुभ कर्म करने वाले पितर या गृहस्थाश्रमी ।
'अयास्यो अंगिरसो नवग्वाः'
ऋ. १०.१०८.८
'अंगिरसो नः पितरो नवग्वाः
अथर्वाणो भृगवः सोम्यासः'
ऋ. १०.१४.६, अ. १८.१.५८, वाज.सं. १९.५०, तै.सं. २.६.१२.६, नि. ११.१९.
हमारे प्राणप्रिय ब्रह्मचारी, शुभ कर्म करने वाले पितर, स्थिरमति वानप्रस्थी तथा योगैश्वर्य सम्पादक तपस्वी संन्यासी (२) देर में नव मार्गों से गति करने वाले प्राणिगण (३) नूतन के समान प्रीतिजनक या नई नई गति वाले - (४) नवीन नवीन वाणी उत्तमोत्तम ज्ञानोपदेश या नवों प्राणों को वश में करने वाला
' ये अत्रयो अंगिरसो नवग्वाः'
अ. १८.३.२०

नवःचरुः- स्तुतियोग्य आचरण ।
'असिं सूनां नवं चरुम्'
ऋ. १०.८६.१८, अ. २०.१२६.१८

नवः ज्वारः- (१) नया सन्ताप, पीड़ा या थकान ।
'न नवज्वारो अध्वने'
ऋ. १.४२.८
हमारे जीवनमार्ग में कोई नया संताप न हो ।

नवजाः- (१) नव उत्पन्न बालक, (२) उदय होता हुआ सूर्य ।
'उदुस्वरुः नवजा नाक्रः'
ऋ. ४.६.३

नवगत्- (१) नवागता, नवोढा, नवविवाहिता ।
'वधूर्जिगाय नवगत् जनित्री'
अ. ३.१०.४, ८.९.११.
(२) नव रूप को धारण करने वाली नव वधू

नवति- (१) नव्वे की संख्या ।
'आशीत्या नवत्या याहि'
ऋ. २.१८.६

नवतिर्नव- (१) नौ नब्वे अर्थात् ९x९०= ८x१०
(२) ज्ञान के आवरणकारी विघ्न
'जघान नवतीर्नव'
ऋ. १.८४.१३, अ. २०.४१.१, साम. १.१७९, २.२६३, मै.सं. २.१३.६, १५४.१०, का.सं. ३९.१२, तै.ब्रा. १.५.८.१.
आत्मा की शक्ति प्राकृतिक तीन गुणों के भेद से तीन प्रकार की त्रिकालभेद से नौ प्रकार की, प्रभाव, मन्त्र और उत्साह इन तीन शक्ति भेद से २७ प्रकार की । सत्त्व, रज, तम, इन तीनों के समविषय भेद से ८१ प्रकार की, और दस दिशा भेद से ८१० प्रकार की हो जाती है । इतनी शक्तियों से आत्मा इतनी ही व्युत्थान वृत्रियों को नाश करता है ।

नवतिनव्या- (१) नाव से खेने योग्य नब्बे नदियां, (२) नब्बे वर्ष ।
'विते वज्रासो अस्थिरन्
नवतिं नाव्या अनु'
ऋ. १.८०.८

हे ऐश्वर्यवन् इन्द्र, तेरे शस्त्र अस्त्रबल नावों से खेए जाने वाली ९० नदियों को भी अपने शासन में रखने में समर्थ हो ।

नवतिःपुरः– (१) नब्बे पुर, इन्द्रिय भेद से १०, सत्त्व, रजस, तमस् भेद से ३० और अन्न मय, प्राणमय और मनोमय भेद से तीनों कोशों से ९० पुर हुए । एकादश इन्द्रियां और मान कर ९९ पुर कहे जाते हैं ।

'इन्द्राग्नी नवतिं पुरः
दासपत्नीरधूनुतम्'

ऋ. ३.१२.६, साम. २.९२६,१०५४, तै.सं. १.१.१४.१, मै.सं. ४.१०. ५,१५५.९, का.सं. ४.१५.

नवद्वारं पुण्डरीकम् – (१) नव द्वारों वाला कमल के समान यह शरीर ।

'पुण्डरीकं नवद्वारम्
त्रिभिर्गुणेभिरावृतम्'

अ. १०.८.४३

नवद्वारा – नवद्वारों से युक्त यह शरीर रूपी पुरी

'अष्टा चक्रा नवद्वारा'

अ. १०.२.३१, तै.आ. १.२.७.२.

नवन् – (१) न वननीया (जिसका विभाग न हो सके) । नौ अंक अयुग्म है अतः इसका विभाग नहीं हो सकता । न + वन् + क्विप् = नवन् (२) नावाप्ता = न + अवाप्ता (रिक्ता होंने से नवमी तिथि शुभ कर्मियों द्वारा नहीं प्राप्त की जाती) । नवमी के दिन कोई शुभ कार्य नहीं किया जाता अतः यह अंक नवन् है (३) नव का अर्थ नवजात भी है ।

नवनवतिः– (१) निन्यानबे संख्या, (२) निन्यानबे वर्ष, (३) ९०x९ = ८१० प्रकृतिस्थ विकार (४) ८१० शत्रुसैन्य । शत्रु, मित्र उदासीन भेद से तीन, उनके मित्र और मित्रों के मित्र का प्रत्येक के तीन भेद होकर ९. उत्तम, मध्यम और अधम भेद से प्रत्येक के २७ भेद हुए । पुनः प्रत्येक के प्रभाव, उत्साह और मन्त्र भेद से ८१ और दस दिशा भेद से ८१०

'जघान नवतीः नव'

ऋ. १.८४.१३

नवनवतिः पुरः– निन्नयानबे देह के बन्धन ।

'नव यो नवतिं पुरः'

ऋ. ८.९३.२, अ. २०.७.२, साम. २.८०.१.

नवपदी – (१) अवान्तर दिशाओं में व्याप्त तथा प्रकृतिके आठ रूप – भूमि, आप, अनल, वायु, ख, बुद्धि, मन और अहंकार में पुरुष या जीवात्मा को जोड़कर नवरूपों में अभिव्यक्त ब्रह्म शक्ति (२) सात विभक्तियां, सम्बोधन और अव्यय भेद से नवपदी वाणी तथा नाभिभेद, कण्ठतालु आदि से उच्चरित वाणी ।

'अष्टापदी नवपदी बभूवुषी'

ऋ. १.१६४.४१, अ. ९.१०.२१, १३.१.४२, तै.ब्रा. २.४.६.११, तै. आ.१.९.४, नि. ११.४०.

'अपरेयमितस्त्वन्यां
प्रकृतिं विद्धि मे पराम्
जीवभूतां महाबाहो
ययेदं धार्यते जगत्'

गीता. ७.५

(३) नवपौरों या अधिष्ठानों से युक्त, (४) माध्यमिका वाक् गौरी का विशेषण । उसे एक पदी, द्विपदी, चतुष्पदी अष्टापदी और नवः पदी कहा गया है। माध्यमिका वाक जल बरसाती है । जब चारों दिशाओं चार अवानर दिशां तथा ऊपर की दिशा या सूर्य से एकात्म होकर जल बरसाती है । तो नवपदी कहलाती है,

'अष्टापदी नवपदी बभूवुषी
सहस्राक्षरा परमे व्योमन्'

ऋ. १.१६४.४१, तै.ब्रा. २.४.६.११, तै.आ.१.९.४, नि. ११.४०.

नवप्राणाः– (१)नव प्राण –मुख से ऊपर कान, आंख, नाक, मुख से नाभितक मुख, जीभ और हाथ तथा नाभि से चरण या गुदा तक लिंग, गुदा और चरण ।

'नवप्राणान् नवभिः संभिमीते'

अ. ५.२८.१

नवभूमीः– नव भूमियां ।

'नवभूमीः समुद्राः'

अ. ११.७.१४

नवमान– (१) मान करने योग्य ।

'आश्रृण्वन्ति नवमानस्य मर्ताः'

ऋ. १.१९०.१

(२) बहुमान्य, स्तुत्य ।

'गाथान्यः सुरुचो यस्यदेवाः
आश्रृण्वन्ति नवमानस्य मर्ताः'

ऋ. १.१९०.१

जिस वैदिक ज्ञान के प्रदाता तेजस्वी एवं बहुमान्य विद्वान् के उपदेशों को दाता गृहस्थ सदा सुनते हैं। -(दया.)

जिस स्तुत्य बृहस्पति की स्तुतियां देवता और मनुष्य सुनाते हैं।

नव्यम्- नव + यत् = नव्य। व के अ का 'यस्येतिच' से लोप। अर्थ है-स्तुत्य।

'बृहस्पतिं वर्द्धया नव्यमर्कैः'

ऋ. १.१९०.१, नि. ६.२३.

स्तुत्य बृहस्पति या वेदज्ञ विद्वान् को स्तुतियों या अन्नों से (अर्कैः) बढ़ा।

पुनः,

'तुरस्य कर्माणि नव्य उक्थैः'

ऋ. १.६१.१३, अ. २०.३५.१३.

नवरत्नी- नवहाथ।

'नवरत्नी रप मया अस्माकं ततः परि'

अ. १९.५७.५

नववास्त्व- (१) नवीन गृह या वस्त्र।

'परानव वास्त्व मनुदेयम्
महे पित्रे ददाथ स्वं नपातम्'

ऋ. ६.२०.११

(२) नवगृह में प्रवेश करने वाला।

'अहं स यो नववास्त्वं बृहद्रथम्'

ऋ. १०.४९.६

नववृष- नवप्राणों से युक्त आत्मा।

'यदि नववृषोऽसिसृजारसोऽसि'

अ. ५.१६.९

नवस्रक्ति- नव + सृज् + क्तिन्। अर्थ- (१) नौप्रकार की रचना वाली, शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निघण्टु, निरुक्त, छन्द, ज्योतिष धर्मशास्त्र और मीमांसा ये नौ रचनाएं है।

'नवस्रक्ति मृतस्पृशम्'

ऋ. ८.७६.१२, अ. २०.४२.१, साम. २.३४०, ऐ.आ. २.३.६.४,५.

(२) स्तुत्य रचनावाली वाणी।

नव्यस्- नवीन।

'मक्षू सुम्नाय नव्यसे'

ऋ. ८.२७.१०

(नए सुख के लिए)

नव्यसी- नई। 'इयं ते अग्ने नव्यसी मनीषा' हे अग्नि, यह तेरी नई स्तुति है।

अथवा, हे वनस्थ, यह वाण प्रस्थाश्रम सम्बन्धी तेरी नई इच्छा है। (२) नवीना (माता) (३) आनेवाली।

नववास्तु- (१) अरण्य में निर्मित नया घर जिसे हो- डाकू (२) नया मकान या गृह बनवाने वाला, (३) नया भवन बनाने में कुशल।

'अग्निर्नयन् नववास्त्वं बृहद्रथम्'

ऋ. १.३६.१८

नवा - नई।

'कनीनकेव विद्रधे नवे द्रुपदे अर्भके'

ऋ. ४.३२.२३, नि. ४.१५.

नई कन्याओं की तरह।

नवाक्षर- (१) मुख्य प्राण के नव द्वारों में स्थित अक्षय सामर्थ्य (२) राजा के नौ प्रकार के अक्षय कोष।

'मित्रो नवाक्षरेण त्रिवृतं स्तोममुदजयत्'

वाज.सं. ९.३३, तै.सं. १.७.११.१

नव्यान्- नवीन

'सनिं गायत्रं नव्यांसम्'

ऋ. १.२७.४, साम. १.२८,२.८४७, मै.सं. ४.९.११,१३२.११,तै.आ. ४.११.८.

समस्त सुख प्रदान करने वाले उपदेश करने और गान करने वाले सदा नये नये ज्ञान को।

नविष्ठ- (१) अतिस्तुत्य, (२) सदा नवीन, (३) अति रमणीय।

'तं मे जगृभ्र आशसोनविष्ठम्'

ऋ. ५.३२.११

(४) अतिनूतन।

'अस्तोपत स्वभानवो
विप्रा नविष्ठया मती'

ऋ. १.८२.२, साम. १.४१५, वाज.सं.३.५१, तै.सं. १.८.५.२, मै.सं. १.१०.३, १४३.१३, का.सं. ९.६, श.ब्रा. २.६.१.३८.

अपने तेज से चमकने वाले सूर्य आदि के समान तेजस्वी होकर मेधावी ज्ञानी पुरुष नयी से नयी वुद्धि से युक्त होकर ईश्वर की स्तुति करे।

नविष्टि- (१) आरम्भ, ।

'वज्रिन्नपसो नविष्टौ'

ऋ. ८.२.१७, अ. २०.१८.२, साम. २.७०

(२) उत्तम से उत्तम पूजा का अवसर।

नग्नः- (१) नग्नाः स्त्री यस्य सः स्त्री आदि से रहित ब्रह्म चारी, (२) वेदवाणी को त्याग न करने वाला विद्वान् (३) भक्तजन ।
'ऊधर्न नग्ना जरन्ते'
ऋ. ८.२.१२

नवीनोत्- उत्तम उपदेश ध्वनित होता है ।
'दिवो न यस्य विधतोवीनोत्'
ऋ. ६.३.७

नवीयाः- नवदीक्षाप्राप्त ।
'मन्म श्रुधि नवीयसः'
ऋ. १.१३१.६, अ. २०.७२.३

नवीयान् - सदा नवीन । ऋभु का विशेषण ।
'ऋभुर्न इन्द्रः शवसा नवीयान्'
ऋ. १.११०.७

नवेदसा- (द्वि.) । (१) अश्विद्वय, (२) रातदिन, (३) स्त्री पुरुष का विशेषण, (४) किसी प्रकार के ज्ञान और ऐश्वर्य को शेष न रखने वाले, (५) पूर्ण विद्वान्, (६) पूर्ण ऐश्वर्य वान् (७) पृथक् पृथक् धन न रखने वाले, (८) एक दूसरे से विशेष रूप से पूर्व अपरिचित एक ही ऐश्वर्य वाले (९) सूर्य चन्द्र ।
'त्रिश्चित् तो अद्या भवतं नवेदसा'
ऋ. १.३४.१
हे सूर्य चन्द्र, दिनरात या स्त्री पुरुष, हे किसी प्रकार के ज्ञान और ऐश्वर्य शेष न रखने वाले पूर्ण विद्वानों या ऐश्वर्यवानों आज के समान आप दोनों तीनों बार तीनों प्रकार से (त्रिः) अधिक सामर्थ्यवान् हो ।
मन, वाक्, कायतीन प्रकार से व्यापक रहने वालो, तुम दोनों तीनों प्रकार से विवाह द्वारा बद्ध हो जाओ ।

नवेदाः- न +वेदाः । (१) प्राप्त न करने वाला जिसके पास कुछ भी न हो ।
'भुवो नवेदा उचथस्य नव्यः'
ऋ.५.१२.३.
(२) विलकुल न जानने वाला अबोध शिष्य, (३) निर्धन ।
'देवो भुवन् नवेदाम ऋतानाम्'
ऋ. ४.२३.४
(४) प्राप्त करने वाला ।
'नवेदसो अमृतानामभूम'
ऋ. १०.३१.३
'एषां भूत नवेदा म ऋतानाम्'
ऋ. १.१६५.१३, मै.सं. ४.११.३, १७०.३, का.सं. ९.१८.

नवेदा - (१) या अविद्या न विन्दति सा (अविद्या न जानने वाली) -दया. (२) लौकिक कुटिल, अधार्मिक, कुसंग और दुराचारों से सर्वथा अनभिज्ञ निष्पाप कुमारी या स्त्री ।
'शुचिभ्राजा उषसो नवेदाः'
ऋ. १.७९.१, तै.सं. ३.१.११.४.
कुमारी या स्त्री शुचि, पवित्र निष्कलंक आचरण के प्रकाश या कान्ति से सुशोभित, उषा बेला के समान हृदय को आह्लादित तथा पवित्र करने वाली, लौकिक कुटिल अधार्मिक कुसंग और दुराचारों से सर्वथा अनभिज्ञ (नवेदा) उत्तम यशवाला, नित्य उत्तम कर्म और ज्ञानों को प्राप्त करने की इच्छा वाली, कभी निकम्मा रहने वाली, सत्य व्यवहार करने वाली हो ।

नंश् - नाश ।
'घोषेव शंसम् अर्जुनस्य नंशे'
ऋ. १.१२२.५
पीड़ा कारी दुःख को नाश करने के लिए (अर्जुनस्य नंशे) जिस प्रकार वेदवाणी (घोषा) उत्तम उपदेश प्रदान करती है (शंसम्)

नश्यति- नष्ट होता है ।
'आत्मा यक्ष्मस्य नश्यति'
ऋ. १०.९७.११, वाज.सं. १२.८५, तै.सं. ४.२.६.२, मै.सं. २.७. १३, ९३.१८, का.सं. १६.१३, नि. ३.१५.

नस् - (१) व्यापना ।
'सं पत्नीभिर्न वृषणो नसीमहि'
ऋ. २.१६.८
(२) नासिका ।
'सूकरस्त्वा खनन्नसा'
अ. २.२७.२, ५.१४.१

नसति - आप्नोति, व्याप्नोति (व्याप्त होता है) । नस् धातु व्यापन अर्थ में आया है । नभने और प्राप्ति अर्थों में इसका प्रयोग हुआ है ।

नसन्तः - व्याप्नुवन्ति' व्याप्त होती है ।
'घृतस्य धाराः समिधोनसन्तः'
ऋ. ४.५८.८, वाज.सं. १७.९६, का.सं. ४०.७,

आप.श्रौ.सू. १७.१८.१, नि. ७.१७.
(घृत की धारा समिधाओं में व्याप्त होती है ।
नंसन्ते - (१) नमन्ते, प्रह्वी भवन्ति (नवते हैं, नम्र होते हैं) । नस् धातु व्यापन एवं नमन अर्थ में आया है । आप्नोति कर्मा वा नमति कर्मा वा) (२) नंस धातु के लट् प.पु.ब.व.का रूप । अर्थ है- अनुगृहीत करते हैं ।
नम्र हो जाते हैं -दया । कुवित् नंसन्ते मरुतः पुनर्नःवे मरुत अनेकों बार (कुवित्) हमें जल दान द्वारा अनुगृहीत करते हैं (नंसन्ते) -
जो परमात्मा के सेवक करने पर हमारे प्रति अत्यन्त नम्र हो जाते हैं (नंसन्ते) -दया.
नस्वती- नस् + वतुप् + ङीप् । नाकवाली
'शीर्षण्वती नस्वती कर्णिनी'
अ। १०.१.२
न्ययनम् - नि + अयनम्, । जीवों का निम्न लोक या स्थिति में रहना ।
'यन्नियानम् न्ययनम्'
ऋ. १०.१९.४
न्यस्त - निश्चित रूप से स्थापित राजा ।
'वैकर्णयोर्जनान् राजान्यस्तः'
ऋ. ७.१८.११
नसोः यमः- (१) नासिकाओं में पहनाए जाने वाला नाथ या नथिया, (२) पशु आदि को नियन्त्रण करने वाला सारथि ।
'पृष्ठे सदो नसोर्यमः'
ऋ. ५.६१.२
न्यः- भीतर गति देने वाला वेद ।
'दृढो दृंहस्थिरो न्यः
ब्रह्म विश्वसृजोदश'
अ. ११.७.४
न्यरितका - (१) सब गुणों को दूर करने वाली ओषधि, (२) दौर्भाग्य लक्षणं नितरां अस्यन्ती शंखपुष्पिका ।
दुर्भाग्यलक्षण को एक दम से दूर कर देने वाली शंख पुष्पिका (३) जीवन रूप लता ।
'न्यस्तिका रुरोहिथ सुभगं करणी मम '
अ. ६.१३९.१
नह - बांधना ।
'नह्यन्ति धरुणाय कम्'
ऋ. १०.६०.८
नह्न - नह् + ल्युट् = नहन ।
'वंशानां ते नहनानाम्'
अ. ९.३.४
(१) आत्मा को बांधने वाला कर्मबन्धन, (२) बन्धन, (३) कारागार बन्धन, (४) भोग बन्धन ।
'अश्मन्मयानि नहना व्यस्यन्'
ऋ. १०.६७.३, अ. २०.९१.३, तै.सं. ३.४.११.३, मै.स. ४.१२.६, १९७.२, का.सं. २३.१२.
नहुष् - (१) शुभाशुभ कर्मबद्ध मनुष्य-दया । शुभ और अशुभ कर्मों में बंधा हुआ दया मनुष्य, (२) एक वैदिक राजा, (३) सबको एक सूत्र में बांधने वाला परम पुरुष ।
'सचा सनेम नहुषः सुवीराः'
ऋ. १.१२२.८
हम वीर पुरुष उस धन को साथ ही बांटे या भोगें ।
नहुष्टरः- (१) राष्ट्र का उत्तम प्रबन्धक (२) मनुष्यों को तारने वाला ।
'अहं सप्तहा नहुषो नहुष्टरः'
ऋ. १०.४९.८
नहुष्य- (१) मनुष्योंपयोगी ।
आदीं विश्वा नहुष्याणिजाता'
ऋ. ९.८८.२, साम. २.८२२.
नाक - नञ् + अक = नाक । जहां दुःख न हो वह नाक है । स्वर्ग, ।
'स्वर्गो वै लोको नाकः'
श.ब्रा. ६.३.३.१४
'तमु त्रिंश स्तोमं नाकमित्याहुः
न हि प्रजापतिः कस्मै चन अकम् ।'
तै.आ. २१.८.४
'अजो नाकमाक्रमतां तृतीयम्'
अ. ९.५.१,३
(२) छत्तीस विभागों का राजतन्त्र सुखप्रद होने से नाक है ।
'नाकः षट् त्रिंशः'
वाज.सं. १४.२३, तै.सं. ४.३.८.१, ५.३.३.५, मै.सं. २.८.४, १०९.७, का.सं. १७.४, २०.१३. श.ब्रा. ८.४.१.२४.
(३) महान् एकान्त सुख आत्मा, (४) विराट् रूपी नाक ।

'तेह नाकं महिमानः सचन्त'

ऋ. १.१६४.५०, १०.९०.१६, अ. ७.५.१, वाज.सं. ३१.१६, तै.सं. ३ .५.११.५, मै.सं. ४.१०.३, १४९.१, का.सं. १५.१२, श.ब्रा. १०.२.२.२, तै.आ. ३.१२.७, नि. १२.४१.

उन भावी देवरूपी ऋषियों ने (ते) महात्मा होते हुए (महिमानः) उसी महान् एकान्त रूप आत्मा का सेवन किया या उससे तादात्म्य स्थापित किया (नांक सचन्त)। (५) सूर्य, (६) सुखयुक्त राष्ट्र।

'ये नाकस्याधिरोचने
दिवेदेवास आसते'

ऋ. १.१९.६

नाकसद् - (१) स्वर्ग में स्थित, (२) सब सुखो में स्थित।

'देवसदं नाकसदम्'

वाज.सं. ९.२

नाक्र - (१) नक्र अर्थात् घड़ियाल के शरीर के समान बनी नाव।

'नाक्रोमकरः कुलीपयस्तेऽकूपारस्य'

वाज.सं. २४.३५, तै.सं. ५.५.१३.१, मै.सं. ३.१४.१६,१७६.१, का .सं. (आश्व.) ७.३.

(२) नक्रनामक जन्तु, घडियाल।

'वरुणाय नक्रान्'

वाज.सं. २४.२१

नाथ - स्वामी।

'विश्वे देवाममनाथं भवन्तु'

अ. ९.२.७

नाथविद् - ऐश्वर्यप्राप्त कराने वाला।

'अयं यज्ञो गातुविद् नाथविद् प्रजावित्'

अ. ११.१.१५

नाथित- (१) दुःखों से पीड़ित।

'स्तैमीन्द्रं नाथिता जोहवीमि'

अ. ४.२४.७, तै.सं. ४.७.१५.२, मै.सं. ३.१६.५, १९०.१३. का.सं . २२.१५.

(२) प्रार्थित, (३) ऐश्वर्यवान्।

'देवान् यन्ना थितोहुवे'

अ. ७.१०९.७

(४) संताप, पीड़ा, दीनता।

'अवतान्मा नाथितात्'

वाज.सं. ५.९, श.ब्रा. ३.५.१.२०.

(५) शत्रु को उपताप पैदा करने वाला।

'अमीमृणन् वसवो नाथिता इमे'

अ. ३.१.२.

(६) धनादि की याचना करने वाला।

'उद्या मिवेत तृष्णजो नाथितासः'

ऋ. ७.३३.५

नाद्यः- (१) नदी के जल को वश में करने वाला, (२) उपदेश करने वाले विद्या सम्पन्न गुरु का प्रिय हितैषी।

'चनोदधीत नाद्यो गिरोमे'

ऋ. २.३५.१, मै.सं. ४.१२.४, १८७.१७, का.सं. १२.१५, आप.श्रौ. सू. १६.७.४.

नादेय - (१) नद नालों पर का अध्यक्ष।

'नमो नादेयाय च वैशन्ताय च'

वाज.सं. १६.३७

(२) नाद के साथ कार्य करने वाला।

नाध- नह् (बन्धनार्थक) + घञ् = नाध। नध जिससे बैल को हल में नाधा जाता है।

नाधमानस्य गातुः- स्तुतिशील पुरुष का मार्ग सूर्य।

'पृथिवीप्रोमहिषो नाधमानस्य गातुः'

अ. १३.२.४४

नाधमान- (१) पांच वर्षों के लिये हृदय में पश्चाताप करने वाला।

'यो ब्रह्मणो नाधमानस्यकीरेः'

ऋ. २.१२.६, अ. २०.३४.६.

(२) ऐश्वर्य की कामना करने वाला भक्त जन।

'अभिख्यानो मघवन् नाधमानान्'

ऋ. १०.११२.१०

नाधमानाः - याचमानाः (याचना करती हुई)। नाधृ (नाध) + शानच् = नाधमान्। 'नाधृ याञ्चोपतापै श्वर्याशीषु' अर्थात् नाधृ धातु याचना, उपताप ऐश्वर्य और आशीर्वाद अर्थों में आया है। प्रथमा व. व. मे 'नाधमाना' रूप है। अर्थ - (१) लोगों की प्रज्ञा की जांच करने वाली सूर्य की रश्मियां।

'वयः सुपर्णा उपसेदुरिन्द्रम्
प्रियमेधा ऋषयो नाधमानाः।'

ऋ. १०.७३.११,- साम. १.३१९, का.सं. ९.१९, ऐ.ब्रा. ३.१९.१२, तै.ब्रा. २.५.८.३, तै.आ. ४.४२.३, तै.आ. (आंध्र.) १०.७३, आप. श्रौ.सू. ६.२२.१, नि. ४.३.

चलने वाली सूर्य की रश्मियां सूर्य के निकट गई। वे रश्मियां यज्ञ से प्रेम करती हुई (प्रिय मेधा) प्रकाशक होने के कारण सर्वद्रष्टा (ऋषयः) तथा लोगों की प्रज्ञा को जांचने वाली हैं (नाधमानाः)।

नाधित- नाधृ + क्त। अर्थ -(१) ऐश्वर्युक्त, (२) प्रार्थनाशील।
'युवं धेनुं शयवे नाधिताय
अपिन्वतम् अश्विना पूर्व्याय'
ऋ. १.११८.८
तुम दोनों अज्ञान निद्रा में (युवं शयने) सोनेवाले या शयु को और ऐश्वर्य युक्त या प्रार्थना शील उत्तम पुरुष से युक्त या पूर्व शुभ संस्कारों से युक्त पुरुष के लिए (नाधिताय) वेदवाणी को कामधेनु के समान (धेनुम्) ज्ञानरस देने वाली बना देते हो (अपिन्वतम्)
(३) अतिदुःखी, सतंप्त, (४) आशावान्
'यं तौग्र्यो नाधितः पर्यषस्वजत्'
ऋ. १.१८२.७

नानदत् - (१) हिनहिनाता हुआ, (२) तड़क या गर्जना करता हुआ, अश्व।
'नानंनद्भिः शाश्वसद्भिः धनानि'
ऋ. १.३०.१६
हिनहिनाते हुए घोड़ों से नाना ऐश्वर्यों का निरन्तर विजय करें।

नान्द्यः- (१) नन्दयितुं समर्धयितुं योग्यम् -शिल्पज्ञानम्- दया. (२) आनन्द प्रद सुख सामग्री को बढ़ाने वाला कार्य, (३) ऐश्वर्य (४) पुत्र आदि।
'त्रिर्नान्द्यं वहतमश्विनायुवम्'
ऋ. १.३४.४
आनन्दप्रद सुखसामग्री को बढ़ाने वाले कार्य को या ऐश्वर्य पुत्रादि या शिल्पज्ञान को भी बार बार प्राप्त करो या पति पत्नी को तीन बार प्रदक्षिणा द्वारा उद्वाह करो।
(५) अभिनन्दन, (६) हृदय को आनन्दयुक्त करना।
'अभिश्वान्तं मृशते नान्द्ये मुदे'
ऋ. १.१४५.४

नाना- अ. (१) नाना प्रकार से।
'नाना सन्तो बिभ्रतो ज्योतिरासा'
ऋ. १०.६७.१०, अ. २०.९१.१०, मै.सं. ४.१२.१, १७८.२
वि. (२) अनेक।
'नानाहनू विभृते संभरेते'
ऋ. १०.७९.१
वैश्वानर अग्नि की हनन समर्थ ज्वालाएं नाना रूप में रहकर भी (नानाहनू) एकत्र ही लकड़ियों को जलाती हैं।

नाना जातौ- (१) भिन्न भिन्न वंश में उत्पन्न (२) अपने अपने गुणों में प्रसिद्धि स्त्री पुरुष।
'नाना जाता वरेपसा'
ऋ. ५.७३.४

नानाधर्मा- अनेक धर्मों का पालक जन समुदाय
'नानाधर्माणं पृथिवी यथौकसम्'
अ. १२.१.४५

नानाधीः- (१) नानाकर्मा, अनेकों कर्मों को करने वाला, (२) अनेकों तरह की चिन्ता करने वाला
'नानाधियो वसूयवः'
ऋ. ९.११२.३, नि. ६.६.
अंगिरस पुत्रों की उक्ति। वे अपने ही प्रति कहते हैं, हम अपनी जीविका के लिये नाना प्रकार के कर्म करते रहें और सदा धन की चाह में मस्त रहें।

नानान- अ. (१) पृथक् पृथक्।
'व्याघ्रौ कृत्वा नानानम्'
अ. १२.२.४३
(२) अनेक प्रकार की।
'नानानं वा उ नो धियः'
ऋ. ९.११२.१

नानासूर्याः- अनेकों सूर्य।
'सप्त दिशो नाना सूर्याः'
ऋ. ९.११४.३, तै.आ. १.७.४.

नानाहनू- (१) दो हनू अर्थात् जबड़ों वाला शिशु- दया. (२) नाना ज्वालाएं

नाभ- यज्ञ की उत्तर वेदी।

नाभाकः- नाभाक नामक ऋषि।
'नाभाकस्य प्रशस्तिभिः'
(नाभाक ऋषियों की स्तुतियों से)

नाभि- सन्नहनात् (सम्यक् प्रकार से एकत्र नद्ध करना)। नह् धातु नाधना, जोडना और एकत्र बांधना अर्थों में आया है। (२) अभ्यास नद्ध

(अभि + आ + सम् + नह् + क्त) । अर्थात् नाभि चारों ओर से लेकर सम्यक् प्रकार से बांधा गया है। नाभि में शरीर की सभी नाड़ियां बद्ध रहती हैं । अर्थ है (१) नाभि, (२) गर्भ । इसी से 'सनाभि' शब्द ज्ञाति के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है । पुनः (३) यज्ञ की उत्तर वेदी

'त्वष्टा पोषाय विष्यत
राये नाभा नो अस्मयुः'

ऋ. १.१४२.१०, नि. ६.२१.

वैद्युताग्नि गौ आदि धन के लिए हमारी कल्याण-कामना करता हुआ यज्ञ की उत्तरी वेदी में हमारे पालन पोषण के लिये जल बरसावें ।

(४) नाभिभूत भूमि पर बरसने वाला द्युलोक का रस ।

'द्यौर्मेपिता जनिता नाभिरत्र'

ऋ. १.१६४.३३, नि. ४.२१.

मेरा द्युलोक पिता अर्थात् पालयिता या रक्षक है, यह उत्पादयिता है (जनिता) । इस द्युलोक में (अत्र) नाभि रूप में भूमि का रस रहता है ।

(५) कारण

आधुनिक अर्थ- नाभि, ठोंढ़ी, कोई नाभि सा पदार्थ, केन्द्र, चक्के का मध्यभाग, प्रधान, मुखिया, प्रमुख राजा, एकक्षत्रिय घर, मृग की नाभि, कस्तूरी, ।

नाम- (१) अव्यय (२) सबसे प्रसिद्ध (३) प्रबलतमः (४) नमनकारी बल ।

'यस्य धाम श्रवसे नामेन्द्रियम्'

ऋ. १.५७.३, अ. २०.१५.३

नामकरण- नाम क्रियते अनेन इति नाम करणम् (इससे नाम किया जाता है) । नाम + कृ + ल्युट् = नामकरण नाम करण+ सश् (संज्ञा प्रयोजक प्रत्यय)= नामकरण । अर्थ है (१) संज्ञा प्रयोजक । संज्ञा बनाने वाला शब्द । 'कंस' संज्ञाप्रयोजक प्रत्ययभूत शब्द है ।

उसी प्रकार 'ओ' भी नामकरण प्रत्यय है । जिसे 'गा' धातु में जोड़कर 'गौ' शब्द बनाया गया है ।

धस् + ईरन् = उशीर, 'थु' प्रत्यय से मिथुन शिष् + व = शेव ।

नामग्राह- (१) नाम कहकर पुकारना, (२) गालीगलौज करना, बुरा नाम धरना ।

'देवैनसात् पित्र्यत् नामग्राहात्'

अ. १०.१.१२

नामथा- ठीक रूप से ।

'यो वै तां विद्यान्नामथा'

अ. ११.८.७

नामधः- (१) सर्वगुण सम्पन्न होने के कारण नामों को भी स्वयं धारण करने वाला ।

'यो देवानां नामधा एक एव'

ऋ. १०.८२.३, अ. २.१.३, वाज.सं. १७.२७, तै.सं. ४.६.२.२, मै.सं. २.१०.३, १३४.१०, का.सं. १८.१.

नामन् - 'नम' या ण्यन्त 'नामि' का औणादिक निपात 'नाम' है । अर्थ है- (१) नाम ।

'अरेपसा तन्वा नामभिःस्वैः'

ऋ. १.१८१.४, नि. १२.३

तुम दोनों पाप-रहित यथा संकल्प अपने अपने नामों से स्तुत हुए, (२) 'सत्व प्रधानम् नाम' जिसमें लिंग वचन आदि का समावेश हो वह सत्व है । सीदति गच्छति लिंग संख्या दिकम् अस्मिन् इति सत्वम् । जिसमें आख्यात् या क्रिया प्रधान न होकर सत्व ही प्रधान हो वह नाम या संज्ञा है । किसी पदार्थ के नाम में उस गुण झुकाए जाते हैं ।

नमति आख्यात शब्दे गुण भावेन (जो आख्यात शब्द में गुण भाव से नवे) । अथवा 'नमयन्ति स्वयम् अर्थम् आख्यात शब्द वाच्ये गुणभावेन' इति नामानि (जो अपने अर्थ को आख्यातशब्द में ले जाय वह नाम है) । आख्यात के चार अर्थ हैं - भाव, काल, कारक और संख्या । इन चारों में भाव की प्रधानता रहती है । धातु का अर्थ ही भाव है - इसी से आख्यात को भाव प्रधान माना गया है । नाम के भी चार अर्थ हैं- सत्व, द्रव्य, संख्या और लिंग जिनमें सत्व प्रधान रहने से नाम को सत्वप्रधान कहा गया ।

(३) प्रसिद्ध । नाम शब्द 'प्रसिद्ध' अर्थ में प्रयुक्त एक अव्यय भी है ।

(४) स्तुति ।

नामानि- नानापदार्थ

'किविर्नामानि प्रवणे मुषायति'

ऋ. ५.४४.४

नारक - (१) नारक सम्बन्धी, (२) नीच योनि का कष्ट सहना ।

'नारकाय वीरहणम्'

वाज.सं. ३०.५, तै.ब्रा. ३.४.१.१.

नारक लोक - (१) नरक, (२) निकृष्ट पुरुषों से, युक्त लोक, ।

'अधाहु नरिकं लोकम्'

अ. १२.४.३६

नारद - (१) मनुष्यों को आश्रय देने वाला पालक राजा ।

'अभि नारद मन्यते'

अ। ५.१९.९

(२) पुरुषों का हित कारक विद्वान्

'तामेतां विद्यात् नारदः सहदेवैरुदाजते'

अ. १२.४.२४.

नार्मर- (१) मनुष्यों को मारने वाला घातक कारण, (३) मनुष्यों का घातक, (३) शत्रुबल का नाशक ।

'यो नार्मरं सहवसुं निहन्तवे'

ऋ. २.१३.८

नार्य- नरों जीवों का स्वामी परमेश्वर ।

'आ नार्यस्य दक्षिणाः'

ऋ. ८.२४.२९

नार्षद कण्व- (१) नर अर्थात् नेताओं की परिषद् में बैठने वाला विद्वान् मेधावी, (२) अपामार्ग औषधि का प्रयोग-ब्राह्मण, यष्टि, कण्व और नार्षद नामक औषध मिलाकर किया जाता है ।

'कण्वेन नार्षदेन'

अ. ४.१९.२

(३) नृषद् पुत्र नार्षद् ऋषि जिसे अश्विनीकुमारों ने श्रवण शक्ति दी थी ।

(४) नृषद् अर्थात् राज्य कर्मचारी का पुत्र । (दया.)

'प्रवाच्यंतद् वृषणां कृतं वाम्
यन्नार्षदाय श्रवो अध्मधत्तम्'

ऋ. १.११७.८

हे मनोरथ बरसाने वाले अश्विद्वय । तुमने जो नार्षद् ऋषिं को श्रवणशक्ति दी वह तुम लोगों का कृत्य सचमुच प्रशंसनीय है ।

हे बलवान् राजा तथा राजपुरुषो, तुम सब अपने राजकर्मचारियों की सन्तानों को ज्ञान तथा कर्म की शिक्षा दोगे तो वह कर्म सचमुच प्रशंसनीय होगा,(-दया.)।

नार्षद- (१) नृषद् + अण् = नार्षद् । अर्थ है बुद्धिमान का पुत्र (२) उपदेश करने वाला अध्यापक, (३) ज्ञानवान पुरुष, (३) प्राणरूप देह के नामकों पर अधिष्ठाता आत्मा, (५) नाना इन्द्रिय स्थानों मेंृ बैठते हुए आत्मा के विराजने का स्थान देह ।

'पुरू सदन्तो नार्षदो बिभित्सन्'

ऋ. १०.६१.१३

पुनः -

'युवं श्यावाय रुशतीमदत्तम्
महः क्षोणस्या श्विना कण्वाय
प्रवाच्युं तद्वृषणाकृतं वाम्
यन्नर्षदाम श्रवो अध्यधत्तम्'

ऋ. १.११७.८

हे सुखों के वर्षण करने वाले, प्रमुख राज्य के भोक्ता पुरुषो, आप दोनों ज्ञानवान् पुरुष को दीप्ति से युक्त तेजस्विनीविद्या का दान करो (श्यावाम् रुशतीमदत्तम्) । उपदेश करने वाले अध्यापक या एक स्थान में गुरु के अधीन रहकर विद्याभ्यास करने वाले अन्तेवासी ब्रह्मचारी ज्ञानवान् पुरुष के लिए (नार्षदाय) महान् सामर्थ्य और तेज प्रदान करो और जो आप दोनों नाम तथा प्रजा के पुरुषों के ऊपर शासकरूप से विराजने वाले अध्यक्ष और आचार्य को (नार्षदाय). प्रवचन करने योग्य (प्रवाच्यं) सुसम्पन्न ज्ञान और यश करते हो वह भी तुम दोनों का ही श्रेष्ठ कार्य है ।

नारायासः- न + अरायः = नारायः । बहुवचन में नाराय + जस् = नारायासः (असुक् प्रत्यय जोड़कर) 'राय' का अर्थ धन है अतः 'अराय' का अर्थ निर्धन है । अतः 'नाराय' का अर्थ हुआ न निर्धन अर्थात् धनी ।

नाराशंस- अर्थ है . (१) मंत्र, (२) मनुष्य प्रशंसापाक मन्त्र । येन मन्त्रा प्रशंस्यन्ते (जिससे नरों की प्रशंसा की जाती है वे ही मंत्र नाराशंस है । नरा शंस् + अण् - नराशंस (३) भावयव्य नामक राजा को लक्ष्य कर जो मन्त्र कहा गया है वह नाराशंस है । (४) मध्यमस्थानीय देवता

नाराशंसी- (१) नरनारियों की इतिहास कथा
'*नाराशंसीन्योचनी*'
ऋ. १०.८५.६, अ. १४.१.७.
(२) मनुष्यों की स्तुति

नारि - स्त्री ।
इन्द्राणीमासु नारिषु
सुभगामहमश्रवम'
ऋ. १०.८६.११, अ. २०.१२६.११, नि. ११.३८
सभी स्त्रियों में मैं इन्द्रणी या आत्म सहचारिणी, आत्मा के के विरुद्ध कभी कार्य न करने वाली विदुषी स्त्री को सौभाग्य वाली सुनता हूँ ।

नारी - (१) स्त्री, (२) नेतापुरुषों की बनी सभा ।
'*सक्थ्ना देदिश्यते नारी*'
अ. २०.१३६.४, वाज.सं. २३.२९, शां.श्रौ.सू. १२.२४.२.१, ला. श्रौ.सू. ९.१०.६.
(३) नरों से युक्त पृथिवी, (४) नायकों से युक्त सेना ।
'*वि वां चिकित्सत् ऋतचिद्ध नारी*'
ऋ. ४.१६.१०

नावप्रु- (१) अविवाहित पुरुष ।
'*जनियन्तिनावग्रवः*'
अ. १४.२.७२

नावा- (१) दो नावों के समान स्त्रीपुरुष दोनों फलों के तारने वाले ।
'*नावेव नः पारयतं युगेव*'
ऋ. २.३९.४
(२) नौका
'*सनः सिन्धुमिव नावया अतिपर्षा स्वस्तये ।*'
ऋ. १.९७.८, अ. ४.३३.८, तै.आ. ६.११.२.
वह तू नौका से जैसे महानद पार किया जाता है, उसी तरह हमारे सुख शान्ति के लिए हमें पार करें ।

नाव्या - (१) नदीं नौ + यत् + टाप् ।
'*नवतिं नाव्या अति*'
अ. ८.५.९
(२) वर्ष ।
'*अवर्धत मध्य आनाव्यानाम्*'
ऋ. १.३३.११, मै.सं. ४.१४.१२, २३५.७, तै.ब्रा. २.८.३.४.
इस मेघ का जल या शरीर नावों से पार उतरने योग्य बड़ी बड़ी नदियों के बीच में भी सब ओर से आकर बढ़ता है ।

न्याविध्यत् - निरविध्यत् - निरताड़यत् । तोड़ दिया- तोड़कर हटा दिया ।
'*न्याविध्यदिलीबिशस्य दृढा*'
ऋ. १.३३.१२, नि. ६.१९
इन्द्र ने मेघ या वृत्र के दृढ़ उदक रोकने वाले स्थानों को तोड़ दिया । राजा भूमि के अन्दर दुर्ग बनाकर रहने वाले शत्रुओं के दृढ़ दुर्गों को तोड़े -(दया.) ।

नाष्ट्रा- (१) नाशकारिणी अविद्या ग्रन्थि
'*या नाष्ट्रा अतितार्याः*'
अ. ८.२.२७
(२) नाश करने वाली दुष्टास्वभाव की प्रकृतिवाली शत्रुसेना
'*विश्वाभ्यो मा नाष्ट्रा भ्यस्यापहि*'
वाज.सं. ३७.१२, तै.सं. १.८.१२.३, मै.सं. ४.९.३, १२४.५, श.ब्रा. १४.१.३.२४, तै.ब्रा. १.७.६.८, तै.आ. ४.५.४, पा.गृ.सू. २.६.३१.

नाः (नै) - नायक
'*सचस्व नायम् अवसे अभीक*'
ऋ. ६.२४.१०

नासत्या - (१) नासत्यौ अश्विनौ, 'औ' का 'आ' होकर 'नासत्या' हुआ । अर्थ है- अश्विनीद्वय तौ सत्यमेव ब्रूतः
'*न कदाचिदपि असत्यम्*'
वे सत्य ही बोलते हैं कदापि असत्य नहीं बोलने अतः नासत्या कहे गए । न + असत्यौ = नासत्यौ । दो नञ् से प्रकृत अर्थ में दृढ़ता आती है । (२) अश्विनी कुमार -सा. (३) सत्यशील प्रध्यापक और उपदेशक - ज.दे.श. ।
'*तां अध्वर उशतो यक्ष्यग्ने*
श्रुष्टी भगं नासत्या पुरन्धिम्'
ऋ. ७.३९.४, नि. ६.१३.
हे अग्नि, उन हमारे यज्ञ में अपने अपने अंश चाहने वाले उन विश्वे देवों को पूज और भग अश्विनी कुमारों एवं इन्द्र को भी पूज । (३) और्णवाय आचार्य के मंत से सतौ का ही नासत्यौ हुआ है ।
(४)आग्रायण के मत से सत्यस्य प्रणेतारौ । (सत्य के प्रणेता हैं), अतः नासत्यौ कहे गए सत्य यज्ञ या उदक का वाचक है ।

(५) यास्क के अनुसार 'नासिका प्रभवौ बभूवतुः' नासिका से वे दोनों हुए अतः नासत्यौ कहलाये (६) ऐतिहासिक पक्ष वाले 'नासिवतुः' ऐसामाना हैं। (७) स्वा. दयानन्द ने सत्यधारी स्त्री पुरुष इसका अर्थ किया है। (८) नासिका गत प्राण और अपान वायु भी 'नासत्या' है।

न्यासदताम्- नि + आ + सदताम्। निरन्तर नियम पूर्वक रहे।

'उषासानक्ता सदतां नियोनौ'

ऋ. १०.७०.६, अ. ५.१२.६, वाज.सं. २९.३१, मै.सं. ४.१३.३, २०२.५, का.सं. १६.२०., तै.ब्रा. ३.६.३.३. नि. ८.११.

उषा और रात्रि यज्ञ सृष्टि या गृह में (योनौ) नित्य नियम पूर्वक रहे (निसदताम्)।

नासिका- (१) नस् (कौटिल्य अर्थ में) + ण्वुल् = नासिक। नासिक+ टाप् = नासिका। (२) नस् + अण् = नास, नास + कन = नासिक। नासिक + टाप् = नासिका (के ऽणः' से इकार) (३) निरुक्त के अनुसार नस् धातु नमना तथा प्राप्ति अर्थ में भी आया है। नाक टेढ़ी है या गन्ध प्राप्त करती है . अतः नासिका है। अर्थ है- (१) नाक।

'अक्षीभ्यां ते नासिकाभ्याम्'

ऋ. १०.१६३.१, अ. २.३३.१, २०.९६.१७. शां.श्रौ.सू. १६.१३.४, शां.गृ.सू. १.२१.३, अप.मं.पा. १.१७.१.

नाह- न + आह + नाह। अर्थ है - नहीं।

नाहुष- (१) नहुष के वंश का, मनुष्य प्रजा।

'करो वज्रिन् सुतुका नाहुषाणि'

ऋ. ६.२२.१०, अ. २०.३६.१०.

(२) मनुष्य का कुल या धन, नहुष का कुल या धन।

नाहुषा - परस्पर प्रेम बन्धन में बंधे मनुष्य के जोड़े।

'पर्यन्या नाहुषा युगा'

ऋ. ५.७३.३

नाहुषी- (१) मनुष्यों की, (२) नहुष राजा की, (३) सुप्रबद्ध।

'वृषण्वन्तं बिभ्रती धूर्षु रथं
मन्द्रा चिकेत नाहुषीषु विक्षु'

ऋ. १.१००.१६

सुप्रबद्ध प्रजाओं के बीच (नाहुषीसु विक्षु) अस्त्र शस्त्र बरसाने में समर्थ बलवान् रथारोही महारथी को धारण करती हुई जानी जाती है।

नि - नीच गति।

'पुमां कुस्ते निमिच्छसि'

अ. २०.१२९.१४

(२) नित्य।

'न्यैरयद् रथीतमः'

ऋ. ६.५६.३.

अतिशय रथों वाला या नृतम परमात्मा' सदा कालचक्र चलाता है।

नि.कः- नि + कः। अर्थ है - निश्चय ही करता है।

'नि काव्या वेधसः शश्वतस्कः'

ऋ. १.७२.१, तै.सं. २.२.१२.१.

जो पुरुष धनादि सनातन जगत् के विधाता, ज्ञानवान् परमेश्वर को विज्ञान और कर्म के प्रतिपादक वेद मन्त्रों का या सृष्टि-नियमों का अच्छी प्रकार अभ्यास करता है। (शश्वतः वेधसः काव्या निकः)।

निकर्तवे - अनादर और हिंसा न करने योग्य।

'नकीमिन्द्रो निकर्तवे'

ऋ. ८.७८.५

निक्त- (१) अतिशुद्ध,।

'अत्कं न निक्तंपरिसोमो अत्यत'

ऋ. ९.६९.४, साम. २.७२,२

(२) नहाया हुआ, (३) अभिषिक्त।

'अश्वो न निक्तो नदीषु'

ऋ. ८.२.२, साम. १.४३०, २.६८२.

निक्रमण- कार्यों में प्रवृत्त होना या जाना।

'मधुमन्मे निक्रमणम्'

अ. १.३४.३.

(२) घोड़ों की निश्चित चाल नियमपूर्वक पैरों को उठा उठाकर रखना, (३) चलना फिरना (४) निकलने का मार्ग।

'निक्रमणं निषदनं विवर्तनम्
यच्च पड्वीशमर्वतः'

ऋ. १.१६२.१४, वाज.सं. २५.३८, तै.सं. ४.६.९.१, मै.सं. ३.१६.१, १८३.८, का.सं. (अश्व.) ६.५.

निक्ष- धा.। सर्प का दशना।

'निक्ष दर्भ सपत्नान् मे'

अ. १९.२९.१

निकामः - (१) खूब कामना करता हुआ ।
'ईडे सखित्वं सुमतिं निकामः'
ऋ. ३.१.१५
(२) वि.- सर्वथा मनोहर ।
'हरिर्निकायो हरिरागभस्त्योः'
ऋ. १०.९६.३, अ. २०.३०.३
(३) कामना-रहित ।
'अपोरिरेच सखिभिः निकामैः'
अ. २०.७७.६
(४) अभिलाषा ।
'तथास्तु व्रात्य यथा ते निकामस्तथास्त्विति'
अ. १५.११.२.
(५) प्रार्थना, कामना ।
'निकामे निकामे नः पर्जन्यो वर्षतु'
वाज.सं. २२.२२, तैसं. ७.५.१८.१, मै.सं. ३.१२.६,१६२.१०, का.सं. (अश्व.) ५.१४,श.ब्रा. १३.१.९.१०, तै.ब्रा. ३.८.१३.३ .
(६) नित्य की इच्छा
'यत्र कामा निकामाश्च'
ऋ. ९.११३.१०

निकाय- (१) शरीर की प्राणवायु की साधना, (२) समस्त प्रजा के शरीरों की रक्षा, (३) विशेष खाद्य पदार्थों का संग्रह, (४) वायु
'निकायश्छन्दः'
वाज.सं. १५.५, तै.सं. ४.३.१२.२, मै.सं. २.८.७, ११२.१, का.सं. १७.६, श.ब्रा. ८.५.२.५.

निकारिणः- (१) गद्दी से उतार देने में समर्थ, (२) ज्ञान एवं कर्म समुच्चय से नाना जन्मों को नीचे करने वाले, (३) 'नितरां यज्ञ करणशील', भी इसका अर्थ किया गया है । परन्तु 'नि + कृ पद से बना यह पद नीचे उतारने के अर्थ प्रयुक्त हुआ है ।
'मात्वा निक्रन् पूर्वचित्ता निकारिणः'
वाज.सं. २७.४, अ. ७.८२.३, तै.सं. ४.१.७.२, मै.सं. २.१२.५, १४८.१७, का.सं. १८.१६.

निक्रामण- 'न' नि + क्रामि (ण्यन्त) + ल्युट् । अर्थ (१) घोड़ो का कदम बढ़ाना, (२) सुरक्षित रूप से निकलने का मार्ग ।
'निक्रमणं निपदनं विवर्तनम्'
ऋ. १.१६२.१४, वाज.सं. २५.३८, तै.सं. ४.६.९.१, मै.सं. ३.१६.१, १८३.८, का.सं. (अश्व.) ६.५.

निकारी- (१) निरादर करने वाला, (२) निरन्तर कर्मशील ।

निकिल्बिष- निष्पाप ।
'कृत्वा देवैः निकिल्बिषम्'
ऋ. १०.१०९.७, अ. ५.१७.११

निकूलः- नीचा स्थान ।
'उत्कूल निकूलेभ्यः त्रिष्ठिनम्'
वाज.सं. ३०.१४

निकृ - धा. । नि. + कृ । अर्थ है - (१) पद से हटाना, (२) निकालना । आज भी निकालना धातु का हिन्दी में प्रयोग है ।
'मा त्वा निक्रन् पूर्वचित्ता निकारिणः'
वाज.सं. २७.४, अ. ७.८२.३

निकृत्वा- 'निकृत्वन्' शब्द का प्रथमा एक वचन में रूप । अर्थ है दुष्टों का जड़से छेदन करने वाला ।
'निकृत्वान्स्तपनास्तापयिष्णवः'
ऋ. १०.३४.७

निखातक- भीतर से खोदा हुआ, खोखला ।
'अलाबुकं निखातकम्'
अ. २०.१३२.२, आश्व.श्रौ.सू. ८.३.१७, शां.श्रौ.सू. १२.१८.१. १०.

निखाताः- (१) निकटती दृढ़ रूप से गड़े हुए । नि + खन् + क्त = निखात । ब.व. में निखाताः' (२) अपना घर जमाकर बैठे हुए, (३) जो पृथ्वी में गाड़ दिए गए हो ।
'ये निखाता ये परोप्ताः'
अ. १८.२.३४

निखात- नि + खन् + क्त । अर्थ है गड़ा हुआ खजाना
'निखातं चिद् यः पुरुसम्भृतं वसु'
ऋ. ८.६६.४

निगत- पूर्ण रूप से प्राप्त ।
'तमिदं निगतं सहः'
अ. १३.४.१२,२०.

निगम- (१) निघण्टु । निश्चयेन अधिकं वा निगूढार्था । एते परिज्ञाताः सन्तः मन्त्रार्थान् गमयन्ति वोधयन्ति इति निगमाः (निगम निश्चयपूर्वक निगूढ़अर्थ को अधिक स्पष्ट करते और परिज्ञात होने पर मन्त्रों के अर्थ का बोध

कराते हैं)।

निगम को ही निघण्टु कहते हैं। 'ते निगन्तवः एव सन्तः निगमनात् निघण्टव उच्यन्ते इति औपमन्यवः' (अर्थों का निगमन कराने से ही निघण्टु कहे जाते हैं, यह औपमन्युओं का मत है।

शब्द तीन प्रकार के होते हैं- (१) परोक्ष वृत्ति जिसकी क्रिया कही हो, (२) अपरोक्ष वृत्ति जिसकी क्रिया छिपी हो और (३) अतिपरोक्षवृत्ति जिसकी क्रिया अविज्ञात हो। परोक्ष या अतिपरोक्षवृत्ति वाले शब्दों का अर्थ प्रत्यक्ष वृत्ति वाले शब्द के सहारे जाना जाता है। या इसका निर्वचन किया जाता है। जैसे- 'निघण्टुवः' शब्द अतिपरोक्षवृत्तिवाला है क्योंकि इसकी क्रिया अविज्ञात है। इसका परोक्ष वृत्ति वाला शब्द 'निगन्तवः' है तथा 'निगमयितारः' प्रत्यक्ष वृत्ति वाला है। अतः वे निगम कराने वाले ही (निगमयितारः) 'निगन्तवः' और 'निघण्टवः' हुए। इसी प्रकार शब्दों का निगमन या स्पष्टीकरण ही निगम या निघण्टु है।

(२) 'निघण्टु' शब्द 'आहनन्' से बना है न कि 'निगमन' से क्योंकि ये शब्द सम्यक मर्यादा के साथ बढ़े जाकर 'समाहताः' कहे जाते हैं। सम् + आ + हन् + क्त + जस् = समाहता ः। इसी समाहताः से सम्पन्न होकर उपसर्ग के व्यत्यय से अध्याहार से तथा वर्ण की व्यापत्ति से, अपरोक्ष वृत्ति वाले शब्द बन जाते हैं और वे ही निघण्टु कहे जाते हैं अथवा शब्दों से समाहृत होकर वर्णव्य व्यय आदि से 'निघण्टु' बन जाते हैं।

निगल्गलीति- गल श्रवणे (गल धातु श्रवणार्थक है)। अर्थ है श्रवण करता है।

'निगल्गलीति धारका'

वाज.सं. २३.२२, श.ब्रा. १३.२.९.६.

निग्राभ- निग्रह, दण्ड।

'निग्राभेणाधरां अकः'

वाज.सं. १७.६३, तै.सं. १.१.१३.१, ६.४.२, ४.६.३.४, मै.सं. १.१.१३, ८.१४. का.सं. १.१२, १८.३, श.ब्रा. ९.२.३.२१.

निगुत् - (१) नीची भ्रष्ट वाणी बोलने वाला दुष्टजन।

'अस्वापयन् निगुतः स्नेहयच्च'

ऋ. ९.९७.५४, साम. २.४५६.

निघण्टु- (१), निगम, निर्वचन। गूढ़ अर्थ वाले, अपरोक्ष वृत्ति वाले शब्दों का अर्थ निकालना ही निघण्टु या निगम है। निरूक्त पांच प्रकार के हैं- (१) वर्ण का आगम, (२) वर्ण का विपर्यय (३) वर्ण का विकार (४) वर्ण का नाश और (५) धातु के तद्वत् अर्थ का अतिशयता के साथ योग। वर्णागमो वर्णविपर्ययश्च द्वौ चापरौ वर्णविकारनाशौ, धातोस्तदर्थातिशयेन योगः तदुच्यते पञ्चविधं निरुक्तम्।

वस्तुतः जगत् के सम्पूर्ण उन भाषाओं के शब्दों के निर्वचन की आवश्यता है जिनका मूल स्रोत वेद है। प्रत्येक शब्द में इतिहास छिपा हुआ है।

निघनिघ्नत् - बाधा उत्पन्न करने वाले कण्टकों को शोधन करने वाला - इन्द्र, परमेश्वर।

निचकार- झुका दिया, नीच कर दिया।

'सा चित्तिभिः नि हिचकार मर्त्यम्'

ऋ. १.१६४.२९, अ. ९.१०.७, जै.ब्रा. २.२६०, नि. २.९.

उसमाध्यमिका वाक् विद्युत् ने चिट् चिट् आवाजों या वर्षा सम्बन्धी कर्मों से मनुष्य को डर से झुका दिया।

निचक्रा - गाड़ी जिसमें नीचे चक्र (पहिया) लगे हों।

'ययुर्निचक्रया नरः'

ऋ. ८.७.२९

निचाय्य- नि + चाय् (देखना) + ल्यप् = निचाय्य। चायृ पूजा निशामनयोः अर्थात् चाय् धातु पूजा और चाक्षुष ज्ञान में प्रयुक्त हुआ है। अर्थ है- (१) देखकर - (२) योग कर -(दया.)

'उज्जिहीते निचाय्या तष्टेव पृष्ट्यामयी
वित्तं मे अस्य रोदसी'

ऋ. १.१०५.१८, नि. ५.२१.

जैसे पृष्ठ रोगी बढ़ई ऊपर ही देखता है वैसे ही चन्द्रमा नक्षत्र को देखकर ऊपर ही देखता रहता है। अतः हे द्यावापृथ्वी, इस कुदशा में पड़े मुझे तुम दोनों ने जाना सा। जैसे पृष्ठरोगी चित्रा नक्षत्र चन्द्रमा से योग करता है एवं अन्य नक्षत्र

भी योग करते हैं, हे स्त्री पुरुषो, तुम मेरी इस नक्षत्र विद्या को जानो ।

निचित- (१) सर्वत्र व्यापक।
'यः सोमप निचितो वज्रबाहुः'
ऋ. २.१२.१३, अ. २०.३४.१४.
(२) सुदृढ़ शरीर, (३) संचित ऐश्वर्यवान्, (४) संचित बलवान् ।

निचिर- निश्चयेन चिरन्तनः दया. अतिकाल से विद्यमान ।
'अन्वीमविन्दन् निचिरासो अद्रुहः
अप्सु सिंहमिव श्रितम्'
ऋ. ३.९.४

निचिरा- द्वि.व.। खूब चिरायु, मित्रावरुण, (२) स्त्री पुरुष ।
'निचिन्मिषन्ता निचिरा निचिक्यतुः'
ऋ. ८.२५.९

निचिरौ- द्वि.व. । (१) अतिबद्ध, (२) चिरकाल से विद्यमान परमेश्वर और आचार्य या माता पिता । (३) प्राण और अपान ।
'प्रसुज्येष्ठं निचिराभ्यां बृहन्नमः'
ऋ. १.१३६.१
अतिवृद्ध चिरकाल से विद्यमान परमेश्वर और आचार्य, माता और पिता को सबसे अधिक उत्तम आदर या अन्न प्रदान करो (बृहत् नमः)

निचुङ्कुणः - नि + चुप् (मन्दगति के अर्थ में) + उणन् = निचुम्पुण । अर्थ है - (१) मन्द गतिवाला । यहां 'मुम्' का आगम हुआ है (२) नीचैः क्वणनः (नीचे की ओर क्वणन करने वाला) । 'नीचैः' का 'निचु' और 'क्वण' का 'कुण' निपातन से हुआ है । निचुङकुण ही निचम्पुण है । (३) शान्तिपूर्वक यज्ञ करने वाला- दया. (४) दीक्षान्त स्नान, (५) शान्तिपूर्वक किया गया स्नान

निचुम्पुण - अर्थ (१) मन्द गतिवाला, (२) नीचे की ओर क्वणन अर्थात् गति करने वाला, (३) शान्तिपूर्वक यज्ञ करने वाला, (४) दीक्षान्त स्नान का नाम भी निचुम्पुण है, (५) शान्तिपूर्वक किया गया स्नान ।
'अवभृथ निचुम्पुण निचेरुरसि निचुम्पुणः'
अवदेवैः देवकृतमेनोऽयासिषम् अवमर्त्यैः मर्त्यकृतम् पुरुराव्णो देव रिषस्पाहि'
वाज.सं. ३.४८, ८.२७, २०.१८, श.ब्रा. २.५.२.४७, ४.४.५.२२, १२.९.२.४, ला.श्रौ.सू. २.१२.९.
वरुण प्रधान कर्म के अन्त में जल के समीप अवभृथ नामक स्नान किया जाता है । इसी मन्त्र से दम्पति स्नान करते हैं ।
हे अवभृथ नामक यज्ञ जिसमें अवार्चन सोमपात्र जल के मध्य में रखे जाते हैं (अवभृथ), हे नीचे की ओर क्वणन करने वाले (निचुम्पुण), यद्यपि तू सदा गमन शील है (निचेरुः असि) तथापि तू सदा मन्द गति वाला हो (निचुम्पुण) क्योंकि तुझे पाकर ही अर्थात् शान्तिपूर्वक स्नान कर के ही अपने द्योतना इन्द्रियों से (देवैः) किए हुए हवि के प्रति पाप को (देव कृतम् एनः) इस जल में अवनीत कर सका, या डुबो सका (अनुयासितम्) तथा हमारे सहायक ऋत्विजों या मनुष्यों से (मर्त्यैः) यज्ञ दर्शन के निमित्त आए हुए मनुष्यों के प्रति फिर अवज्ञा या अपमान रूपी पाप को भी डुबो सका (मर्त्यैः मर्त्यकृतम् अवम्) । और हे देव अवभृथ नामक यज्ञ का या वरुण, (देव) अनेकों कर्मों के उपभोग तथा सन्तापों को देने वाले संसार को (पुरुराव्णः) बन्धन से (रिषः) रक्षाकर (रक्ष) ।
स्वामी दयानन्द का अर्थ - चुपचाप शान्तिपूर्वक किये जाने वाला यज्ञ (निचुम्पुण अवभृथ) तू पुण्य संचय कराने वाला है । (निचेरुः असि) । शान्ति पूर्वक यज्ञ करने वाला मैं (निचुम्पुणः) मन तथा वाणी आदि इन्द्रियों से (देवैः) मानसिक तथा वाचिक पाप को (देवं कृतम् एनः) दूर करूं (अव यासिषम्) और शरीरों से किए जाने वाले कायिक पाप को (मर्त्यैःमर्त्यकृतम्) नष्ट करूं । हे पूज्य प्रभो (देव), अनेक विधि दुःख देने वाले पाप से (पुरुराव्णः रिषः) मेरी रक्षा कीजिए (पाहि) ।
यहां अवभृथ अर्थात् स्नान रूपी यज्ञ अभिप्रेत है । शान्तिपूर्वक स्नान पाप को धोने वाला है।
(२) 'निचुम्पुण' का दूसरा अर्थ सोम है (नितान्त पृण ऋजीषरूपः सोमः) । सोमकल्क या सोम । निचमनेन पृणाति भक्षित, सन् (खाने पर प्रसन्न करता है नि + चम् + पृ = निचुंम्पुणः (निपातन से चम् की उपधा का उ, पृ का पुम् और पृ

के अन्त में णक् ।

(३) समुद्र । निचमनेन पूर्यते (समुद्र उदक से भरता है) । नि + चम + ल्युट् = निचमन । निचम् + पृ + णक् = निचुम्पुण (पृ का पु) ।

(४) अवभृथ स्नान । नीचैः अस्मिन् क्वणन्ति (नीचैःशब्द से इसमें कर्म करते हैं) । अथवा 'नीचैःअस्मिन् यज्ञपात्राणि दधति' (दीक्षान्त स्नान के समय यज्ञ पात्रों को नीचे रखते हैं) । वे जल में नहीं रखे जाते (तानि हि तत्र अप्सु निधीयन्ते) । नीचैः' का 'निचु' हो जाता है । और शब्दार्थक क्वण या धारणार्थक 'धा' का 'पुण' निपातन से हो जाता है ।

(५) चुपचाप शान्तिपूर्ण किये जाने वाला यज्ञ- (६) शान्तिपूर्वक यज्ञ करने वाला- दया. (७) मन्द मन्द गति से चलने वाला । (८) नीचे स्वर से सभ्यता पूर्वक कहने वाला ज्ञानी पुरुष (९) सोम रस की सीठी ।

'अपां जग्मिः निचुम्पुणः '

ऋ. ८.९३.२२, नि. ५.१८.

सोमरस की सीठी (निचुम्पुणः) जलों के बीच बह रही है ।

(१०) ऋजीष, सोमकल्क (११) जलों के अपने भीतर लेकर पूर्ण होने वाला, (१२) कर आदि लेकरपूर्ण होने वाला राजा, (१३) सब ऐश्वर्य अपने भीतर लेकर पूर्ण होने वाला-परमेश्वर ।

निचेताः- (१) उत्तम धन या ज्ञान का संग्रह करने वाला, (२) समूह कर्त्ता -दया. ।

'निचेतारो हि मरुतो गृणन्तम '

ऋ. ७.५७.२

निचेतारा - द्वि.व. । स्त्री पुरुष का विशेषण । अर्थ - (१) प्राप्त संपदाओं या ज्ञानों का अच्छी प्रकार संचय करने वाले, (२) संचयशील

' एष्टा नरा निचेतारा च कर्णैः "

ऋ. १.१८४.२

निचेरुः - (१) भली प्रकार से संग्रह करने वाला ।

'निचेरुरसि निचुम्पुणः '

वाज.सं. ३.४८, ८.२७,२०.१८

(२) नि + चेरुः = निचेरुः । सदा गमन शील -सा.

(३) पुण्य का संचय करने वाला - दया. ।

(४) भोगों का भोक्ता ।

'प्र वां निचेरू ककुहो वशां अनु '

ऋ. १.१८१.५.

(५) गुप्तरूप से राजा के कार्य से सर्वत्र विचरने वाला ।

'नमो निचेरवे परिचराय '

वाज.सं. १६.२०, तै.ब्रा. ४.५.३.१, मै.सं. २.९.३,१२३,४ का.सं .१७.१२.

निजघ्निः- दुष्टोंया विघ्नों का विनाशक ।

'अथा निजघ्नि रोजसा '

ऋ. ९.५३.२, साम. २.१०६५.

निजुर् - नितरां हिंसक।

'त्राध्वं नो देवा निजुरो वृकस्य '

ऋ. २.२९.६, वाज.सं. ३३.५१, मै.सं. ४.१२.६,१९४.६.

निजूर्वथः-

खूब अच्छीतरह से दण्डित करो

'येन रक्षो वावृधानं निजूर्वथः '

ऋ. ७.१०४.४, अ. ८.४.४.

निर्जूर्वन्- वेद से जाता हुआ ।

'वातस्य मेडिंसचते निजूर्वन् '

ऋ. ४.७.११, का.सं. ७.१६.

निण्या - सत्य सिद्धान्त ।

'एतानि धीरो निण्या चिकेत '

ऋ. ७.५६.४

(२) छिपा हुआ जीव ।

'निण्यः सन्नद्धो मनसा चरामिः '

ऋ. १.१६४.३७, अ. ९.१०.१५, नि. १४.२२.

(३) निर्णाम् 'येन असौ नीचैः नमति' जिससे यहां नीचे झुकता है ।

(४) झुकाने वाला या नीचे से जाने वाला मार्ग । निर्णीतम्-निण्यम् । 'निः + ना + क्त' अथवा 'नि + नी' से निण्य हुआ है ।

(५) निम्नागत या नीचे गया हुआ ।

(६) अन्तर्हित (छिपा हुआ)

' वृत्रस्य निण्यं विचरन्त्यापः '

ऋ. १.३२.१०, नि. २.१६.

(वृत्रासुर का शरीर अज्ञेय रूप से जल में छिपा हुआ है । मेघ के नीचे नीचे जल विचरण कर रहे हैं ।

(७) छिपा रहस्य ।

'क इमं वो निण्यं आ चिके

वत्सो मातृः जनयत स्वधाभिः'
ऋ. १.९५.४

निणिक्- (१) अतिशुद्ध, (२) बुद्धि को विभक्त करने वाला।
'गुहाहितमुप निणिक् वदन्ति'
ऋ. ४.५.८

नितली- (१) नीचे नीचे फैलने वाली ओषधि जो केश को दृढ़ करती है। कौशिक और सायण ने केशों के रोग की निवृत्ति के लिए काकमाची, जीवन्ती और भृंगराज का प्रयोगलिखा है। राजनिघण्टु के अनुसार 'देवी' नामक ओषधि से मूर्वा, सृक्वा, सहदेयी, देवद्रोणी, केसर और आदित्य भक्ता नामक छः औषधियां ली जाती हैं। काकमाची से काकदानी ओषधि ली गई हैं। राजनिघण्टु के अनुसार यह 'केश्या' है।

नित्य- (१) स्थायी, स्थिर।
'नित्यस्य रायः पतयः स्याम'
ऋ. ४.४१.१०, ७.४.७, नि. ३.२.
(२) मुख्य, (३) आत्मीय, (४) स्वयं उत्पादित, (५) चिरस्थायी (६)जिसका नाश न हो, (७) पैतृक धन।
आधुनिक अर्थ - चिरस्थायी, अपरिवर्तनशील, नियमित, निश्चित, आवश्यक , कर्तव्य, साधारण, नैमितिक का विरोधी, सदा, समुद्र।

नित्य सूनुः- औरस पुत्र।
'नित्यं न सूनुं मधु भिब्रत उप
क्रीडन्ति क्रीड़ा विदथेषु घृष्वयः'
ऋ. १.१६६.२

नित्यारित्रा - नित्य + अरित्रा। अर्थ (१) स्थिर अरित्रवाली नौका, (२) नित्य शत्रुओं से बचाने वाली सेना।
'रथाय नावम् उत नो गृहाय
नित्यारित्रां पद्वतीं रास्यग्ने'
ऋः १.१४०.१२
हे अग्नि, रमण करने तथा घर पहुंचाने के लिये स्थिर अरित्र वाली तथा लंगर वाली नौका तू देता है। अथवा, हे राजन्, तू नित्य शत्रुओं से बचाने वाली (नित्यारित्राम्) चरणों वाली (पद्वतीम्) शत्रुओं को दूर हटा देने वाली, (नावम्) सेना को देता है।

नित्यवत्सा- (१) नित्य मनोरूप वत्स के साथ जुड़ी हुई, (२) नित्य निवास करने वाली अविनाशिनी शक्ति।
'अथर्वणे सुदुघां नित्यवत्साम्'
अ. ७.१०४.१

नितानाः- नीचे मूल की तरफ गई शाखाएं।
'त्रयस्त्रिंशत् नितानाः'
अ. ६.१३९.१

नितिक्त- निर्बन्ध।
'अधे देता न रमन्ते नितिक्ताः'
ऋ. १०.१११.९

नितिक्ति- खूब तीव्र, बलदायक अन्न।
'नितिक्ति यो वारणमन्नमत्ति'
ऋ. ६.४.५

नितोदिनौ - द्वि. व.। मन और जीव जो मरण काल में निकलते समय समस्त शरीर में व्यथा उत्पन्न करने वाला हैं।
'आतोदिनौ नितोदिनौ'
अ. ७.९५.३

नितोदी- (१) सबको हर प्रकार से पीड़ी देने वाला
'शाङ्कुरस्य नितोदिनः'
अ. ७.९०.३
(२) व्यथा देने वाला।
'अक्षास इदं कुशिनो नितोदिनः'
ऋ. १०.३४.७

नितोश- (१) नितरां तोशयति इति नितोशा (जो सदा वध कता है वह नितोश है)। निघण्टु में 'तोश' धातु वधार्थक है, (२) शत्रुहन्ता राजा

नितोशनः - शत्रुओं का नाशक।
'असमातिं नितोशनम्'
ऋ. १०.६०.२
(२) समस्त दुःखों और बाधाओं को नष्ट करने वाला।
'नितोशनं वृषभं चर्षणीनाम्'
ऋ. ६.१.८, मै.सं. ४.१३.६, २०७.४, का.सं. १८.२०. तै.ब्रा. ३.६.१०.३.
(३) मारने वाला।
'आ देवासो नितोशनासो अर्यः'
ऋ. ७.९२.४

निद्- (१) निन्दा। निद् + क्विप्। णिद्धि धातु निन्दार्थक है।
'न स्तोतारं निदेकरः'

ऋ. ३.४१.६, अ. २०.२३.६.
(२)निन्दक ।
'दहा शसो रक्षसो पाह्यस्मान्
द्रुहो निदो मित्रमहो अवद्यात्'
ऋ. ४.४.१५, तै.सं. १.२.१४.६, मै.सं. ४.११.५, १७४.८, का.सं. ६.११.

निद- (१) अपने आप को नितरां सर्वथा दे देने वाला भक्त, (२ निन्दाकारी पुरुष, (३) निन्दनीय कर्म ।
'निंदनिदं पवमान नि तारिष'
ऋ. ९.७९.५

निदा- (१) निन्दितप्रजा, (२) निन्दा ।
'सत्वं नो अर्वन् निदायाः'
ऋ. ६.१२.६

निदान- ध्येय फल ।
'कासीत् प्रमाप्रतिमा किं निदानम्'
ऋ. १०.१३०.३

निदधे- निदधाति (रखता है) । लट् के अर्थ में लिट् का प्रयोग है ।
'त्रेधानिदधे पदम्'
ऋ. १.२२.१७, अ. ७.२६.४, साम. १.२२२, २.१०१९, वाज.सं. ५.१५, तै.सं. १.२.१३.१, मै.सं. १.२.९,१८.१७,४.१.१२,१६.४, का.सं. २.१०, श.ब्रा. ३.५.३.१३, नि. १२.१९.
आदित्य सृष्टि में तीन प्रकार से अपना पद अर्थात् डेग रखते हैं (त्रेधा पदं निदधे) ।

निदहाति - निदहतु (निश्चय रूप से भस्म कर दे) । दह् धातु के लट् में आट् का आगम हुआ है ।

निदाता- रोकने वाला ।
'निदातारं नि विन्दते'
ऋ. ८.७२.५

निदित- (१) खूब कर्म के वन्धनों में बंधा हुआ, (२) निन्दित जीव ।
'शुनश्चित् शेपं निदितं सहस्रात्'
ऋ. ५.२.७, ऐ.ब्रा. ७.१७.१, शां.श्रौ.सू. १५.२३.

निदिता- निन्दक, निन्दा करने वाला ।
'उदिता यो निदिता वेदिता वसु'
ऋ. ८.१०३.११

निधन- (१) समस्त धन सम्पदा ।
'अभ्रं पीबो मज्जा निधनम्'
अ. ९.७.१८
(२) निधान, परम आश्रय (३) अतिथि के भोजन के बाद बचा हुआ उच्छिष्ट अन्न । आश्रय और निधान अर्थ में प्रयोग-
'निधनं भूत्याः प्रजाया पशूनाम्'
भवति य एवं वेद'
अ. ९.६.४५.
(४) सामगान का भाग, ।
'प्रतीहारो निधनम्'
ऋ. ११.७.१२.

निझनवन् - (१) यज्ञ में पंक्ति छन्द से उत्पन्न निधनवन् साम (२) शत्रु से हनन ।
'पंक्त्यै निधनवत्'
वाज. सं. १३.५८, तै.सं. ४.३.२.३, मै.सं. २.७.१९, १०४.१३, का.सं. १६.१९, श.ब्रा. ८.१.२.८.

निधा- (१) जाल ।
'मुमुग्धि अस्मान् निधयेव बद्धान्'
ऋ. १०.७३.११, साम. १.३१९, का.सं. ९.१९, ऐ.ब्रा. ३.१९.१७, तैब्रा. २.५.८. ३, तै.आ.४.४२.३, तै.आ. (आंध्रः) १०.७३, आप.श्रौ.सू. ६.२२.१ , नि. ४.३.
(२) नि + धा + क = निधा, योहि बालमयः स्नायुमयः वा पाशसमूहः (बाल या स्नायु का बना पाश समूह) । निधा पाश्या भवति (निधा) बन्धना है ।
यत् निधीयते (चूंकि पक्षियों को फंसाने के लिये यह नीचे रखा जाता है) । 'निधि' से निधा बना है । नि + धा + कि = णिधि = निधा । अर्थ है- बन्धन ।
हे आदित्य । बन्धन में बंधे पक्षियों की तरह (निधया बद्धान् इव) हमें अपनी किरणों से मुक्त कर (मुमुग्धि) ।

निधाता- (१) समस्त संसार को नियम में धारण करने वाला, (२) प्रकृति के भीतर बीज निधाग करने या उत्पन्न कराने वाला - परमेश्वर ।
'उग्रं निधातुः अन्वायमिच्छन्'
ऋ. ५.३०.२

निधातुः- सं. । प्रथमा एक वचन में । अर्थ है- पाशों का जुए पर रखे जाने की क्रिया ।
'बिभीयादा निधातोः'
ऋ. १.४१.९, नि. ३.१६

जुएं पर पाशा रखने के समय डरते हैं ।
(२) चोरी का माल रखने वाला ।
(३) वीर्य निषेक करने वाला माता पिता ।
(४) अन्यायेन पर पदार्थानां स्वीकर्त्ता (अन्याय से दूसरे की चीज लेने वाला) ।

निधानम्- (१) निधान । नि + धा + ल्युट्
(१) जिसमें कुछ रखा जाय कोष ।
'चकारगर्भं सनितु र्निधानम्'
ऋ. ३.३१.२, नि. ३.६.
पालने पोसते बहनोई के गर्भ धारण के योग्य पुत्री को पिता बनावे ।
(२) नियोजन अश्वों का रथ मे जोता जाना भी निधान है -दया. (३) रथशाला ।

निधान्य- विशेष धन या धान्य के योग ।
ऋ. ८.७२.१८

निधानी - नि + धा + ल्युट् = निधान । निधान + ङीष् = निधानी । गर्भो निधीयते अस्याम् (इसमें गर्भ धारण किया जाता है) । गर्भ निधानी स्त्री का विशेषण है ।

निधि- नि + धा + कि = निधि । अर्थ है-
(१) शेवधि, भण्डार । निधीयते अस्मिन् इति निधिः (इसमें कोई पदार्थ रखा जाता है) ।

निधिपति- कोष, खजाने का स्वामी ।
'निधीनां त्वां निधिपतिं हवामहे वसो मम्'
वाज.सं. २३.१९, तै.सं.७.४.१२.१, मै.सं. ३.१२.२०, १६६.१२, (आश्व.) ४.१, तै.ब्रा. ३.९.६.१

निधिनाः - पृथ्वी रूप राष्ट्र या धन का बालक -राजा ।
'पृथिवी ह्येष निधिः'
श.ब्रा. ६.५.२.३
'षष्ट्यां शरत्सु निधिपा अभीच्छात्'
अ. १२.३.३४,४१,

निधिमान् - कोश का स्वामी ।
'गृध्रेव वृक्षम् निधिमन्तमच्छ'
ऋ. २.३९.१.

निध्रुविः- (१) स्थिर सबका धारक आत्मा ।
'अन्तर्देवेषु निध्रुविः'
ऋ. ८.२९.३
(२) नित्य, ध्रुव, स्थायी रूप से वर्तमान अग्नि ।
'यो मर्त्येषु निध्रुविर्ऋतावा'
ऋ. ७.३.१, साम. २.५६९, का.सं. ३५.१, आप.श्रौ.सू. १४.१७.१.

निनम- विनय से स्वीकार करने का अवसर ।
'न पर्वता निनमे तस्थिवांसः'
ऋ. ३.५६.१

निनसै- निनंसै- नीचैर्नमाम-निनिमाम- निनमै (नीचे हो जाते हैं, नवाते हैं, थाह में हो जाते हैं) । नि + नंस के लेट् उत्तम पुरुष एक वचन में निनसैः 'सिस बहुलम्' से 'म्' का 'स ' हो जाता है । नम् धातु नम्र होने के अर्थ में प्रयुक्त होता है ।

निनित्सु- (१) निन्दक पुरुष, निन्दा करने की इच्छा करने वाला ।
'विश्वात् रिरिक्षोरुत वा निनित्सो निनित्सोः'
ऋ. १.१८९.६
पुनः -
'आरेते शंसं कृणहि निनित्सोः'
ऋ. ७.२५.२

निशिशानः- खूब तीक्ष्ण करने वाला मनुष्य ।
'निशिशाना अतिथिमस्य योनौ'
ऋ. ७.३.५

निन्दिता- निन्द्रा करने वाला, ।
' न किरेषां निन्दिता मर्त्येषु'
ऋ. ३.३९.४

निपक्षतिः - दूसरी पसली ।
'सरस्वत्यै निपक्षतिः'
वाज.सं. २५.५, तै.सं. ५.७.२१.१.

निपत्ततः - पैर तक ।
'निशीर्षतो निपत्ततः'
अ. ६.१३१.१

निपात- उच्चानचेषु अर्थेषु निपतन्ति (जो शब्द ऊंच नीच अर्थों में प्रयुक्त हो जायें और वही मान भी लिया जाए और उसे निपात कहते हैं ।
नि + पत् + ण = निपात । ऐसे शब्द अनेक हैं । जैसे प्रपि, इव, न, चित् , नू, यथा, तथा, ननु इत्यादि ।

निपातभाज् - जिस देवता का अन्य देवों के साथ गौण रूप में वर्णन हो वह निपातभाक् है । जैसे 'सोमस्य राज्ञः' आदि मन्त्रों में विधाता, सोम, वरुण, बृहस्पति आदि अनेक देवताओं के साथ

किसी अन्य देवता का गौण रूप से वर्णन होने से निपातभाक् कह लायेगा।

निपाद- (१) निश्चिताः निम्नाः वा पादाः यस्य- दया. (जिसके पाद नीचे हो-) (२) नीचे आते हुए मेघ (३) निम्न स्थान पर स्थित प्रजाजन

'समा भवन्तूद्वतो निपादाः'

ऋ. ५.८३.७, तै.सं. ३.१.११.६, का.सं. ११.१३.

निपाति- (१) सब प्रकार से रक्षा करता है।

'कृत्वा निपाति वृजिनानि विश्वा'

ऋ. १.७३.२

निपुर् - (१) निकट का रहने वाला (२) विना घर बार का

'परापुरो निपुरो ये भरन्ति'

अ. १८.२.२८, वाज.सं. २.३०, श.ब्रा. २.४.२.१५, आप.श्रौ.सू. २.६.२, शां.श्रौ.सू. ४.४.२, आप.श्रौ.सू. १.८.७, मा.श्रौ.सू. १.१.२.८, साम. मं.ब्रा. २.३.४.

निपूत- (१) अच्छी प्रकार पवित्र किया हुआ।

'वने निपूतं वन उन्नयध्वम्'

ऋ. २.१४.९

(२) अत्यन्त पवित्र।

'निपूतो अधिबर्हिषि'

ऋ. ८.१७.११, अ. २०.५.५, साम. १.१५९,२.७५.

निभञ्जन- न.। (१) आमर्दन, (२) पराजय, (३) कटजाना।

'तस्य अनु निभञ्जनम्'

अ. २०.१३१.२

निभूयप- ब.व.। सबके नीचे सबका आश्रय होकर जो सब की रक्षा करे वह व्यापक शक्तिमान् प्रभु या राजा विष्णु।

'विष्णवे निभूयपाय स्वाहा'

वाज.सं. २२.२०, तै.सं. ७.३.१५.१, मै.सं. ३.१२.५,१६२.६, का.सं (अश्व) ३.५, श.ब्रा. १३.१.८.८, तै.ब्रा. ३.८.११.२.

निमन्युः- हार्दिक क्रोध से रहित कामिनी

'मृदुर्निमन्युः केवली'

अ. ३.२५.४

निमित- (१) स्थिर रूप से ज्ञानवान् (२) खूब परिमित भाषण करने वाला, (३) अपने राज्यों और क्षत्रों को मापने वाला।

'निमितासो यतस्रुचः'

ऋ. ३.८.७

(४) नियम में व्यवस्थित।

'अनुव्रताय निमितेव तस्थुः'

ऋ. ३.३०.४

(५) बनाई गई।

'ब्रह्मणा शालां निमिताम्'

अ. ९.३.१९

पुनः-

'भद्रे क्षेत्रे निमिता तिल्विले वा'

ऋ. ५.६२.७

निमिष्

निमिष् - (१) सूर्यास्त, (२) अज्ञानमय अन्धकार काल, (३) असावधा नता का अवसर, (४) निन्तब्ध रात्रि।

'अनिशितं निमिषि जर्भुराणः'

ऋ. २.३८.८

(५) देखते ही पलक मारते मारते।

'सखा सख्युः निमिषि रक्षमाणाः'

ऋ. १.७२.५

निमिषन्ति- सोते हैं। 'निमिष्' धातु सोना अर्थ में प्रयुक्त है।

'न तिष्ठन्ति न निमिषन्त्येते'

ऋ. १०.१०.८, अ. १८.१.९.

निमिश्ल- (१) निमिश्र निःसक्त।

'सुतइत त्वं निमिश्ल इन्द्र सोमे'

ऋ. ६.२३.१

(२) खूब कठोर।

'इन्द्रस्य वज्र आयसो निमिश्लः'

निमिश्ला- (१) निमिश्रा, (२) सब पदार्थों में गूढ़ रूप से रहने वाली विद्युत् (३) अच्छी प्रकार शुभ गुण विद्या आदि स्वभाव द्वारा अपने को मिलाने वाली -स्त्री।

'शुभे निमिश्लां विदथेषु वज्राम्'

ऋ. १.१६७.६

निमिषत्- (१) निमेष उन्मेष करने वाला, (२) श्वास प्रति श्वास लेने वाला प्राणी।

'ज्यायान् निमिषतोऽसि तिष्ठतः'

अ. ९.२.२३

निम्रुच् - (१) नितरां गच्छन्ती (सदा चलने वाली (२) रात- दया.।

'आ निम्रुच उपसस्तक्ववीरिव'

ऋ. १.१५१.५

निमृग्र- (१) नितरां शुद्धि हेतुः (२) अतिशुद्ध करने वाला।
'आपश्चिदस्य व्रत आ निमृग्नाः'
ऋ. २.३८.२

निमेघमानः- (१) मेघवत् ज्ञान की या शरों की वर्षा करता हुआ
'निमेघमाना अत्येन पाजसा'
ऋ. २.३४.१४
(२) नियम से प्रजा पर सुख वर्षा करने वाला राजा (३) मेघ, (४) इन्द्र
'निमेघमानो मघवन् दिवे दिवे'
ऋ. ८.४.१०

निमेष- (१) चमक, (२) रातदिन, (३) नियम से होने वाले मेष, आदि सूर्य की राशियां, (४) त्रुटि, (५) काष्ठा (६) विपल, पल, घटी, होरा याम, दिन, पक्ष,वर्ष आदि, (७) आत्मा के द्वारा नेत्रादि इन्द्रियों के निमीलन और उन्मीलन (८) जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय तथा निरन्तर होने वाला उन्माद और विनाश (९) राजा के पक्ष में-छोटे बड़े कार्य

निम्रुक्- अ.। नीचे नीचे
'निम्रुक् ते गोधा भवतु'
अ. ४.३.६

निम्रोचन् - अस्तहोता हुआ सूर्य
'निम्रोचन् हन्तु रश्मिभिः'
अ. २.३२.१

नियता- स्त्री. वि.। नि + यम् + क्त + टाप् = नियता। अर्थ है- निबद्ध। दे. 'गौः'
'वृक्षो वृक्षे नियता मीमयद्गौः'
ऋ. १०.२७.२२, नि. २.६.
प्रत्येक धनुष में निबद्ध मौर्वी (वृक्षे वृक्षे नियता गौः) इन्द्र की भुजाओं से खींची जाकर शब्द करती है। (मीमयत्)

निययी- धावा, आक्रमण करने वाला
'त्वेषं निययिनं रथम्'
ऋ. १०.६०.२

नियव- नियम से किया हुआ मेल-संयोग
'गोषु युधो न नियवं चरन्तीः'
ऋ. १०.३०.१०

नियान- (१) नीचे जाने वाला मार्ग
'यत् ते नियानं रजसम्'
अ. ८.२.१०
(२) रथ
'इदं पूर्वमपरं नियानम्'
अ. १८.४.४४
(३) जीवों का नीचे जाना
'यन्नियानम् न्ययनम्'
ऋ. १०.१९.४
(४) निरयणं वर्त्म (सूर्य का दक्षिणायन मार्ग)। यह मार्ग सूर्य के लिए रात्रि है इसलिए इसे कृष्ण समझा गया है। नि उपसर्ग निर् के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। नि + या + ल्युट् = नियान = निर्याण = निरयण। निर्गच्छति अनेन (इस मार्ग से बाहर जाता है। यह व्याख्या दुर्ग की है।
नियानम्' का अर्थ है- सूर्य का अयन - दक्षिणायन और उत्तरायण मार्ग।

नियुत् - (१) नियुध, (२) युद्ध कारिणी सेना या शक्ति
'सनो नियुद्भिः पुरुहूत वेधः'
ऋ. ६.२२.११, अ. २०.३६.११
(३) उवट के अनुसार यह उभय लिंग है। (४) अश्व, (५) नियुक्त पदाधिकारी, (६) शत्रुओं को छिन्न भिन्न करने वाली सेना (७) वेगवान् वायु, (८) अपने अधीन वेग से चलने वाला अश्व (९) सेना (१०) मृत्यु
'नियद् युवेथे नियुतः सुदानू'
ऋ. १.१८०.६.
'आ नो नियुद्भिः
शतिनी भिरध्वरम्'
ऋ. १.१३५.३, ७.९२.५, वाज.सं. २७.२८, मै.सं. ४.१४,२, १७.५, श.ब्रा. ५.१६.११, तै.ब्रा. २.८.१.२, आश्व.श्रौ.सू. ३.८.१, ८.९.२.
'अध वायुं नियुतः सश्चतस्वाः'
ऋ. ७.९०.३, वाज.सं. २७.२४, मै.सं. ४.१४., २१७.३, तै.ब्रा. २.८.१.१.
(९) वड़वा, (१०) वायोः वाहनम् (वायु का वाहन)। इसी से वायु का नाम नियुत्वान् है। नि. + यम्, अथवा युज् + क्विप् = नियुत् (११) वायु का अश्व नियुत् माना गया है,

नियुत- (१) लक्ष, लाख सहस्रं दश कृत्वः

अयुतम् । दश कृत्व अयुतम् नियतम् (दस हजार का एक अयुत और दस अयुत का एक नियुत)

'अयुतं च नियुतं च'

वाज.सं. १७.२, मै.स. २.८.१४,११८.१५, का.सं. १७.१०.

'नियुतं राय ईमहे'

ऋ. १.१३८.३.

ऐश्वर्य के लक्षों की सम्पदा तुझ से मांगते हैं। (२) समस्त वेगों या बलों को प्राप्त।

'याहि वायुर्न नियुतो नो अच्छा'

ऋ. ३.३५.१,७.२३.४, अ. २०.१२.४, वाज.सं. ३३.१८, तै.ब्रा. २.७.१३.१.

नि + यु + क्त = नियुत। युधातु मिश्रण तथा अभिश्रण अर्थ प्रयुक्त है। यहां मिश्रण अर्थ में प्रयोग है।

नियुतः नरः-(१) नाना पदों पर नियुक्त (२) लक्ष्यों की संख्या में नायकगण।

'अधानरोन्योहते
अध नियुत ओहते'

ऋ. ५.५२.११

नियुत्वाः- नियुक्त शिष्यों का (नियुत्वस्) स्वामी- गुरु।

'अधा नियुत्व उभपस्य नः पिव'

ऋ. ८.१०१.१०

नियुद्रथः- (१) सहस्रों, लक्षों वेगवान् रथों या लोकों का स्वामी (२) महारथी सेनापति।

'प्र दस्ता नियुद्रथः'

ऋ. १०.२६.१

नियुत्वान् - (१) सेनाओं का नियन्त, (२) वायु,

'नियुत्वान् वायवागहि'

ऋ. २.४१.२, वाज.सं. २७.२९, वाज.सं. (काण्व) २९.२९.

(३) लोकों को नियम में रखने वाला या उन्हें परस्पर मिलाने वाला- वायु या सूर्य का विशेषण ज.दे.श. (४) बड़वा को वाहन बनाने वाला वायु या पूषा।

नियुत् (बड़वा) + वतुप् = नियुत्वत्

'वायुः पूषा स्वस्तये नियुत्वान्'

ऋ. ७.३९.२, वाज.सं. ३३.४४, नि. ५.२८.

लोकों के कल्याण के लिए, लोकों को नियम में रखने वाला या उन्हें परस्पर मिलाने वाला या सायण के अनुसार बड़वा को वाहन बनाने वाला वायु एवं पूषा है।

नियूय- नि + यु (बांधना जोड़ना) + ल्यप् = नियूय। अर्थ है- बांधकर, निबद्धकर।

'वनस्पते रशनया नियूय'

ऋ. १०.७०.१०, मै.सं. ४.१३.७,२०९.१, का.सं. १८.२१, तै.ब्रा. ३.६.१२.१, आश्व.श्रौ.सू. ९.५.२.

हे वनस्पते, ज्वाला से निबद्ध कर...

नर्यः- नृभ्यो हितः(मनुष्यों का उपकारी)। नृ + यत् अर्थ (१) मनुष्यों के लिये कल्याण कारी परमेश्वर।

'यस्येदिन्द्र पुरुदिनेषु होता
नृणां नर्यो नृतयः क्षपावान्'

ऋ. १०.२९.१, अ. २०.७६.१

जिस स्तोत्र के लिये मनुष्यों में श्रेष्ठ राजा या शूरों में श्रेष्ठ शूर (नृणां नृतमा तथा मनुष्यों का उपकारी (नर्यः) सोम भागी (क्षपावान्) इन्द्र भी (इन्द्र इत्) नित्य यह स्तोत्र मेरा हो ऐसा कहता हुआ ललचता है। (पुरुदिनेषु होता)-

अथवा जिस वेद का (यस्य) नायकों में श्रेष्ठ नायक (नृणां नृलमः) मनुष्यों के लिये कल्याणकारी (नर्यः) और प्रलयरात्रि को करने वला (क्षपावान्) परमेश्वर ही (इन्द्रइत्) बहुत दिनों के व्यतीत हो जाने पर (पुरुदिनेषु) प्रलय के बाद प्रदाता है (होता)

निर्- एक अव्यय जिसका प्रयोग नञ् और वहि अर्थों में होता है जैसे निर्धन, निर्गमन।

निरज- निः + अज। शत्रुओं को उखाड़ फेकना।

'सुगान् पथो अकृणोन् निरजेगाः'

ऋ. ३.३०.१०, नि. ६.२.

निरव = निर् + अव। अर्थ है- निःशेष समस्त ज्ञानों और रक्षण सामर्थ्यों वाला परमेश्वर।

निर्ऋत्य- अलग करना।

'जङ्घे निर्ऋत्य न्यदधुः क्वसित्'

अ. १०.२.२.

निर्ऋत्याः पुत्रः- (१) पाप- प्रवृत्ति का पुत्र स्वप्न

'निर्ऋत्याः पुत्रोऽसि यमस्य करणः'

अ. १६.५.२.

निर्ऋति- (१) निरुद्ध ऋति अर्थात् सत्यगति या ज्ञानमय आचरण से शून्य अविद्या।

'यत् ते देवी निर्ऋतराबबन्ध'
अ. ६.६३.१, तै.सं. ४.२.५.२ आप.श्रौ.सू. १६.१६.१,
(२) दुष्टों को दुःख देने वाला परमेश्वर,
(३)दुःखदायिनी प्रकृति ।
'निर्ऋते निर्ऋत्या नः'
अ. १९.४४.४, कौ.सू. ४७.१६.
(४) चेतना से रहित जड़ प्रकृति ।
'बहुप्रजा निर्ऋति माविवेश'
ऋ. १.१६४.३२, अ. ९.१०.१०
(५) पाप की प्रवृत्ति ।
'आर्तिरवार्तिर्निर्ऋतिः'
अ. १०.२.१०
(६) निः + ऋतिः । आत्मा को नीचे ले जाने वाली पाप प्रवृत्ति ।
'अवामृक्षन् निर्ऋते ते मुखेन'
आ। ७.६४.२
(७) ऋति अर्थात् सम्यक् उपचार, लालन पालन और उत्तम शिक्षा के अभाव से होने वाला कष्ट ।
'क्षेत्रियात् त्वा निर्ऋत्या'
अ. २.१०.१
(८) महान् कष्ट ।
'स मातुर्योना परिवीतो अन्तः
बहुप्रजा निर्ऋतिमाविवेश'
ऋ. १.१६४.३२, अ. ९.१०.१०, नि. २.८.
वह जीवात्मा माता के गर्भ में आकर उदर में उत्त्व और जरायु से परिवेष्ठित हो यथा समय उत्पन्न होकर अनेकों जन्म प्राप्त करने वाला (बहप्रजाः) प्रकृष्ट दुःख को प्राप्त करता है (निर्ऋतिमाविवेश)
(९) पाप देवता ।
'देवाः कपोत इषिता यदिच्छन्
दूतो निर्ऋत्या इदमाजगांम'
तस्मा अर्चाम कृणवाम निष्कृतिम्
शं नो अस्तु द्विपदे शं चतुष्पदे
ऋ. १०.१६५.१, अ. ६.२७.१,
कपोत निलयरा शान्ति के लिए अभिप्रेत घर में कपोत के आने पर इस मन्त्र से जाप किया जाता है । हे देवो, पाप देवता के निकट से आया हुआ कपोत (निर्ऋत्याः इषितः कपोतः) जिस धन आदि की कामना करता हुआ (यत् इच्छन्) हमारे इस घर में आया (इदम् आ जगाम) उस पाप से निवृत्ति पाने के लिये (तस्मा निष्कृतिम्) आप लोगों की हम अर्चना करते हैं (अर्चाम) अतः हमारे पुत्र पौत्र का कल्याण हो तथा चतुष्पद गौ आदि का भी कल्याण हो ।
(१०) पृथिवी । निविष्टानि रमन्ते अस्यां भूतानि इति निर्ऋतिः (इस पृथिवी में निविष्ट हो जीव बसते हैं अतः यह निर्ऋति है)। निर् + रम् = + क्तिन् = निर्ऋति (रम् का ऋ) । निर्ऋतिः निरमणात्
(११) पाप । ऋक्ष धातु का अर्थ गति, इन्द्रिय प्रलय तथा मूर्तिमान हैं । इन अर्थों से विपरीत कृच्छ्रापत्ति अर्थ में यहां ऋक्ष का प्रयोग हुआ है । कृच्छ्रापत्ति का अर्थ नारकीय दुःख है अतः निर्ऋति का अर्थ पाप है । नि + ऋक्ष् + क्तिन् निर्ऋति ।
(१२) निर्घृण । नियता ऋति. घृणा यस्याः सा (जिसकी घृणा चली गई हो । घृणा रहित निर्घण
ऋतिर्गतौ घृणायाञ्च
स्पर्द्धापाञ्च शुभे ऽपिच-रभस
(१३) नरक, (१४) अशुभ । निर्गता ऋतेः (शुभ से रहित)
आधुनिक अर्थ- विनाश, ह्रास, आपत्ति, प्रकृष्ट दुःख, शाप, मृत्युदेवी, नैर्ऋत्य कोण की अधिष्ठात्री देवी ।

निर्ऋथ- (१) मृत्य दण्ड ।
'द्रोघवाचस्ते निर्ऋथं सचन्ताम्'
ऋ. ७.१०४.४, अ. ८.४.१४.
(३) अत्यन्त दुःख, (४) धन, सत्य, अन्न, ऐश्वर्य आदि से रहित कष्टमय जीवन ।

निरज- निरजनम् । निर + अज् (गति) । अर्थ है-
(१) निर्गमन, निकास ।
'सुगान् पथो अकृणोत् निरजेगाः'
ऋ. ३.३०.१०, नि. ६.२.
हे इन्द्र, तू ने जल के निर्गमन के लिये सुगम पथ बनाए ।

निरयण - (१) मूल प्रकृति 'बुध्न' से निकला व्यक्त जगत् ।
'पश्चात् निरयणं कृतम्'
ऋ. १०.१३५.६

निरवद्य- निर् + अवद्य । अर्थ निन्दनीय ।
'अद्या देवा उदिता सूर्यस्य निरंहसः पिपृता निरवद्यात्'
ऋ. १.११५.६, वाज.सं. ३३.४२, मै.सं. ४.१४.४, २२०.११, तै.ब्रा. २.२.७.२
सूर्य के उदय के समान हे विद्वानो, आप लोग निन्दनीय पाप से सर्वथा मुक्त हो जाओ ।

निरष्ट- पराजित, परास्त ।
'वृषायुधो न वध्रयोनिरष्टाः'
ऋ. १.३३.६

निर्ऋथ - सर्वथा नाश करने वाला ।
'निर्ऋथो यश्च निस्वरः'
अ. १२.२.१४, तै.अ. २.४.१

निर्जभार- निर्जहार, निर्हृतवान् (निकाल दिया)। नि + हृ का लिट् प्र .पु. ए.व. का. रूप । हृ का भ आदेश ।

निर्जर्जल्य - (१) अत्यन्त जर्जर, (२) बेसुध, (३) मृत्यु ग्रस्त ।
'निर्ऋतिं निर्जर्जल्येन शीर्ष्णा'
वाज.सं. २५.२

निर्दहनी- जलाने वाली ।
'निर्दहनी या पृषातकी'
अ. १४.२.४८

निर्दाह - अत्यधिक दाह कारी रोग । निर् + दाह ।
'निर्दाह आत्मदूषिस्तनूदूषिः'
अ. १६.१.३

निर्भक्त- (१) जिसे कोई भाग न मिले । निर् + भक्त ।
'ततो निर्भक्तो योऽस्मां द्वेष्टि'
वाज.सं. २.२५, श.ब्रा. १.९.३.१०,१२.
(२) फंसा हुआ ।
'निर्भक्तं प्रजा अनुतप्यमानम्'
अ. २.३५.२

निर्भज- बाहर करना । निर् + भज ।
'निरन्तरिक्षात् भजाम'
अ. १६.७.६

निर्भूति- (१) चेतना की बाह्य सत्ता ।
'निर्भूत्याः पुत्रोऽसि यमस्य करणः'
अ. १६.५.६

निर्मथित- (१) दो अरणियों के बीच मथा - अग्नि, (२) विशेष आलोकित ज्ञान, (३) शास्त्र का ज्ञाता विद्वान् ।
'निर्मथितः सुधित आ सधस्थे'
ऋ. ३.२३.१

निर्मायाः- (१) चेतना,-रहित इन्द्रियां (२) माया रहित ।
'निर्माया उ त्ये असुरा अभूवन्'
ऋ. १०.१२४.५

निर्याचन्- (१) मुक्त करने का प्रयत्न करता हुआ ।
'निर्याचन् भूतात् पुरुषं यमाय'
अ. ६.१३३.३

निबधि- (१) शरीरस्थ सिरके बीच के भेजे का श्वेत भाग, (२) अच्छी प्रकार रोक लेने का उपाय, (३) निरन्तर ताड़न या प्रहार ।
'स्तनयित्नुं निर्बाधेन'
वाज.सं. २५.२, तै.सं. ५.७.१२.१, मै.सं. ३.१५.२,१७८.४, का.सं.(अश्व.) १३.२.

निर्हस्त- (१) हनन साधन या सामर्थ्य से रहित पुरुष ।
'निर्हस्तेभ्यो नैर्हस्तम्'
अ. ६.६५.२
(२) निहत्था, शस्त्ररहित
'निर्हस्तांश्च कृणवज्जातवेदाः'
अ. ३.१.१,२.१

निर्ह्रय- विष को शरीर से बाहर करना । निर् + ह्वय । धातु ।
'ततस्ते निर्ह्वयामसि'
अ. ७.५६.३

निरामिन् - नित्य स्वंय ही रमण करने वाला विलासी पुरुष ।
'निरामिणो रिपवो ऽन्नेषु जागृधुः'
ऋ. २.२३.१६

निराल- निर् + आल । आल का अर्थ है बन्धन, अतः निराल' का अर्थ हुआ (१) निर्बन्ध, बन्धन रहित मुक्तजीव, (२) निराल नामक एक रोग ।
'बभ्रुश्च बभ्रुकर्णश्चापेहि निराल'
अ. ५.२३.४, ६.१६.३

निराविध्यत् - सम्प्राहरत् (सम्यक् प्रकार से प्रहार किया) । निर् + अविध्यत् = निराविध्यत् । यास्क के अनुसार 'अविध्यत्' के अ का आ हो गया है । विध् धातु के वेधन करने के अर्थ में आया है। उसी के लङ् में प्र. पु. ए.व.का

रूप 'अविध्यत्' है । अर्थ है – सम्यक् प्रकार से प्रहार किया ।

'निराविध्यत् गिरिभ्यः आ
धारयत् पक्वमोदनम्
इन्द्रो बुन्दं स्वाततम् ।'

ऋ. ८.७७.६, नि. ६.३४.

इन्द्र ने मेघों को लक्ष्य कर (गिरिभ्यः) अच्छी तरह से खींचे वज्र को (स्वाततम् बुन्दम्) चलाया (निराविध्यत्) और ऐसा कर पके विद्यत् और ऐसा कर पके भात, खीर या अन्न की उत्पत्ति के लिये आधार रूप जल स्थिर किया ।

निरिणानः– शत्रुओं का नाश करता हुआ

'निरिणानो विधावति'

ऋ. ९.१४.४

निर्णिज् – (१) सर्वस्व शोधियता (सबको शुद्ध करने वाला) सूर्य । निद् + णिज् + क्विप् = निर्णिज् ।

'स पादुरस्य निर्णिजो न मुच्यते'

ऋ. १०.२७.२४, नि. ५.१९.

इस सूर्य का वह गमन (अस्य निर्णिजः स पादुः) श्रम से कभी मुक्त नहीं होता (न मुच्यते) ।

निरीणीते– विवृणुते (विवृत करती है) प्रकट करती है ।

निरिन्द्रिय– इन्द्रियों से रहित ।

'निरिन्द्रियाः अरसाः सन्तुसर्वे'

अ. ९.२.१०

निर्णीतः– (१) निर्णिक्तः– शोधितः प्रमाणनयाभ्याम् (जो प्रमाण और नीति से शोभित हो)। निर् + नी + क्त = निर्णीत (२) अन्तर्हित होकर भी जो निश्चित साहो (अन्तर्हितोऽपि अदृष्टोऽपि निश्चितः । यह निर्णीत या निण्य है ।

(३) अनिश्चित पदार्थ का निश्चित होना ।

निरुद्धा– नि + रुध् + क्त + टाप् । अर्थ है – (१) रोकी हुई ।

'निरुद्धा आपः पणिनेव गावः'

ऋ. १.३२.११, नि. २.१७.

जिस प्रकार पाणि असुर ने गाएं रोक रखी थीं उसी प्रकार रोके हुए अन्तरिक्ष में थमे हुए थे ।

निरुन्धानः – (१) रोकता हुआ । नि + रुध् + शानच् ।

'निरुन्धानो अमतिं गोभिरश्विना'

ऋ. १.५३.४, अ. २०.२१.४

(२) इन्द्रियों को विषय विलासों से रोकता हुआ

(३) रोकने वाला ।

निरूहथुः– निर् + ऊहथुः अर्थ है– (१) निकाला (२) पहुंचाओं ।

'निष्टौग्र्यमूहथुरद्भ्यस्परि'

ऋ. १०.३९.४

हे अश्विनीद्वय, तुम दोनों ने तुग्र के पुत्र युज्यु को समुद्र से निकाला ।

हे राजा तथा राजपुरुषो, तुम दोनों वैश्य वण को (तौग्र्यम्) व्यापार के लिये समुद्र के पार पहुंचाओ (अद्भ्यः परि निरूहथुः) ।

निरेक – (१) निर्भय, (२) बहुत जनों से बसा स्थान, (३) अक्षय कोष ।

'उतश्वेतं वसुधितं निरेके'

ऋ. ७.९०.३, वाज.सं. २७.२४, मै.सं. ४.१४.२, २१७.३, तै.ब्रा. २.८.१.१.

(४) एकान्त ।

'स्वरन्ति त्वा सुतेनरो
वसो निरेक उक्थिनः'

ऋ. ८.३३.२, अ. २०.५२.२, ५७.१५, साम. २.२१५.

(५) सर्वोत्तम पद या धन ।

'अनिरेकमुत प्रियम्'

ऋ. ८.२४.४

(६) शंकारहित सन्मार्ग ।

'स्पद्दिष्टयः कृशनिनो निरेके'

ऋ. ७.१८.२३

(७) निर्धन – (८) संदेह स्थान ।

'इन्द्रो अश्रायि सुध्यो निरेके'

ऋ. १.५१.१४

इन्द्र शोभनकर्मा यजमानों के निर्धन होने पर (सुध्यः निरेके) सेवा करते हैं ।

राजा सन्देह स्थलों में बुद्धिमानों का आश्रय लें (इन्द्रः निरेके सुध्यः अश्रायि) ।

निरेतवे– (१) निर् + एतवे । निरन्तर जाने के लिये ।

'वयो मातु निरितवे'

ऋ. १.३७.९

पक्षीगण जिस वायु के कारण अन्तरिक्ष में आने जाने में समर्थ होते हैं ।

(२) बाहर निकलने के लिए।
'गोभ्यो गातुं निरेतवे'
ऋ. ८.४५.३०

निलायम्- नि + लाय। छिपे रहना क्रिया विशेषण।
'यो निलायं चरति'
अ. ४.१६.२

निलिम्पा देवाः- पृथ्वी से निपट जाने वाला देव।
'निलिम्पा नाम देवाः'
अ. ३.२६.५

निवचन- (१) निश्चित वचन, (२) सत्य वचन।
'अवोचाम निवचनानि अस्मिन्'
ऋ. १.१८९.८.
(३) निश्चय ही श्रवण और प्रवचन करने योग्य।
'इदं वपुः निवचनम् जनासः'
ऋ. ५.४७.५

निवत्- (१) नम्र होना।
'श्वघ्नीव निवता चरन्'
ऋ. ८.४५.३८
(२) नीचग, तिर्यक् (नीचगति वाला), (३) नीच योनिवाला। नि + अव (गत्यर्थक) + शतृ = निवत् (अव के अ का लोप) यह शब्द प्रवत् के प्रतिकूल अर्थ वाला है। प्रकृष्ट कर्म वाला या ऊंची गति वाल प्रवत् है। (४) निम्न प्रदेश। (५) नीचा स्थान, (६) निम्न श्रेणी का पुरुष।
'निवत्सु अपः स्वपस्य या नरः'
ऋ. १.१६१.११
नीचे के गहरे स्थानों में (निवृत्सुः) उत्तम कर्मों की इच्छा या परोपकार से प्रेरित होकर (स्वपस्यया) जल एकत्र करो (अपः)।

निवना- (१) नीचे प्रदेशों की ओर जाती हुई जलधारा।
'आस्मैरीयन्ते निवनेव सिन्धवः'
ऋ. १०.४०.९

निवरः- (१) सब कष्टों का निवारण करने वाला- प्रभु।
'आदु मे निवरो भुवत्'
ऋ. ८.९३.१५

निवर्तः - संसार को नियम से चलाने वाला।
'आ निवर्त निर्वर्तय'
ऋ. १०.१९.६,

निवर्तन- (१) आग का बुझ जाना (२) विद्याभ्यास के पथ से लौट जाना, (३) लौटना (४) अधम कार्यों से हटाना।
'न तत् ते अग्ने प्रमृषे निवर्तनम्'
ऋ. ३.९.२, साम. १.५३, मा.श्रौ.सू. ३.८.१, नि. ४.१४.
(५) लौटना, (६) गति प्रतिरोध।
'न पुनरस्ति निवर्तनम्'
अ. ३.६.७
(६) पुल्लिंग में अर्थ है - जगत् को नियम में चलाने वाला।
'आ निवर्तन वर्तय'
ऋ. १०.१९.८, तै.सं. ३.३.१०.१
(८) जीवों का इस संसार से लौटकर जाना।
'आवर्तनं निवर्तनम्'
ऋ. १०.१९.४,५, अ. ६.७७.२
(९) निवर्तन्ति प्रतिगन्छन्ति अनेन इति निवर्तनम् (इससे होकर निवृत होते या लौटते हैं)। नि + वृत् + ल्युट्। अर्थ है-मार्ग।
'न तत्ते अग्ने प्रमृषे निवर्तनम्
यद्दूरे सन्निहाभुवः'
ऋ. ३.९.२, साम. १.५३, मा.श्रौ.सू.३.८.१, नि. ४.१४
हे अग्नि, मैं तेरा माता (जल या कष्ट) के समीप रहना सहन नहीं कर सकता जिससे तू अदृश्य होता हुआ भी हमें प्राप्त होता है, (१०) निवृत्ति,

निवर्हयः -नाश करता है।

निवात- प्रवल वायु के झकोरों से रहित स्थान।
'निवात इद्वः शरणे स्याम'
अ. ६.५५.२

निबाधित- दुःखित, अत्यन्त खिन्न।
'पितुः स्वस्य त्यजसा निबाधितम्'
ऋ. १.११९.८

निवाढ़ - (१) नित्यं सुखानां प्रापयिता -(दया)। नित्य सुखों का प्रापक, (२) अज्ञानान्धाकर का नाशक, (३) गिरता हुआ , गिरा हुआ।

निवाश- चीख।
'निवाशा घोषाः संयन्तु'
अ: ११.९.११

निव्याधी- नियत् लक्ष्य पर ठीक ठीक निशाना

लगाने वाला ।
'नमः सहमानाय निव्याधिने'
वाज.सं. १६.२०, तै.सं. ४.५.३.१, मै.सं. २.९.३, १२२.१६,का.सं. १७.१२.

निविद्- (१) सब प्रकार के उत्कृष्ट ज्ञान कराने वाली शक्ति ।
'प्रैषा यज्ञे निविदः स्वाहा'
अ. ५.२६.४
(२) निविद नामक ऋचा, ।
(३) निखिल पदार्थों को प्राप्त करने वाला ज्ञानवान् पुरुष ।
'पदैराप्नोति निविदः'
वाज.सं. १९.२५
(४) ज्ञानमयी वाणी ।
'तान् पूर्वया निविदा हूमहेवयम्'
ऋ. १.८९.३, वाज.सं. २५.१६
(५) विशेष विद्या युक्त वाणी ।
'शंसन्ति के चित् निविदो मनानाः'
ऋ. ६.६७.१०
(६) पढ़ने- ज्ञान करनें योग्य वेद वाणी (७) नित्य विद्या, गुह्य उपनिषद्, (८) गुरु विद्या ।
'तामनु त्वा निविदं जोहवीमि'
ऋ. १.१७५.६, १७६.६.

निविदः- ब.व. । वेद की वाणियां ।
'किमुष्विदस्मै निविदो भनन्त'
ऋ. ४.१८.७

निविद्धा- (१) पति से अच्छी प्रकार संगत स्त्री, (२) सूर्य से संगत पृथ्वी (३) पुरुष से संगत प्रकृति ।
'सा वीभत्सः गर्भरसा निविद्धा'
ऋ. १.१६४.८, अ.९.९.८.

निविष्ट- छावनी या बस्ती बनाकर बैठा हुआ ।
'निविष्टाय स्वाहा'
वाज.सं. २२.७, तै.सं. ७.१.१९.१, मै.सं. ३.१२.३, १६०.१३, का. सं. (अश्व.) १.१०.

निवृत- (१) किया गया, (२) चाहा गया (३) व्यक्त किया गया, (४) एकत्रित ।
'आपो देवेभिर्निवृता अतिष्ठन्'
ऋ. १०.९८.६
(५) सब प्रकार से अपनाया हुआ, (६) विनीत, (७) उपवीत, (८) वासनाओं या अज्ञान से घिरा हुआ, (९) कष्टों से या अज्ञानों से घिरा हुआ ।

निवृत्र- निश्चित शत्रु ।

निवेशन- (१) पद, स्थान । नि + विश् + ल्युट् ।
'निवेशनात् हरिव आ जभर्थ'
ऋ. ४.१९.९
(२) घर, (३) स्थिति, (४) बसाना, (५) निवास ।
(६) सबको यथास्थान स्थापित करने वाला -सूर्य या परमेश्वर ।
'बृहत् सुम्नः प्रसवीता निवेशनः'
ऋ. ४.५३.६

निवेशनी- (१) निवास करने योग्य (२) पृथ्वी का विशेषण ।
स्योना पृथिवी भवानृक्षरानिवेशनी । हे पृथिवी, तू सुखदायिनी , निष्कंटक एवं निवास योग्य बना
(३) निन्द्रा में निवेशन कराने वाली रात्रि, (४) जगत् को अपने भीतर रखने वाली परमेश्वरी शक्ति ।
'ह्वयामि रात्रिं जगतो निवेशनीम्'
ऋ. १.३५.१

निवेष्यं- (१) गौ के बैठने के कुल्हा ।
'विधरणी निवेष्यः'
अ. ९.७.४
(२) राष्ट्र के भीतर व्यापक, (३) राजधानी में बना मुख्य भाग, (४) ध्येय पदार्थ ।
'निवेष्यं मूर्धा'
वाज.सं. २५.२
(५) उत्तम वेष पहनाने और बनाने वाला
'निवेष्याय च नमः'
वाज.सं. १६.४४

निःशश- क्रि. । सर्वथा दण्डित कर, (२) परास्त कर ।
'पृथिव्या निःशशा अहिम्'
ऋ. १.८०.१, साम. १.४१०.
पृथिवी से कुटिलाचारी सर्प तथा मेघवत् अस्त्र वर्षी शत्रु को सर्वथा दण्डित कर' ।

निःशस्- निः + शसु (हिंसा करना) + क्विप् । अर्थ- (१) पूर्ण हिंसा, (२) निर्बल कर गिराने वाला-पाप ।

'अवशसा निःशसा यत् पराशसा'
अ. ६.४५.२,
(३) निराशा, (४) अनिच्छा।
'यदाशसा निःशसा'
ऋ. १०.१६४.३
निशित- (१) तेज धार वाला अस्त्र।
'युष्मभ्यं हव्या निशिता न्यासन्
ऋ. १.१७१.४
निशितः- तीव्रता।
'यज्ञस्य वा निशितिम् वोदितिम् वा'
ऋ. ६.१५.११
(२) अतितीक्ष्ण बुद्धि।
'समिधा यो निशिती दाशददितिम्'
ऋ. ८.१९.१४.
निशिशीतम्- क्रिः (१) खूब तीक्ष्ण दण्ड दो। (नि + शिशीतम्)'
'इतं नुदेथां निशि शीतमत्रिणः'
ऋ. ७.१०४.१, अ. ८.१०४.१, का.सं. २३.११.
निशीर्षतः- सिर से लेर
'निशीर्षतो निपत्ततः'
अ. ६.१३१.१
निशृम्भः- (१) नि + श्रथ + घञ् = निश्रथा। निर्गतः श्राथः शैथिल्यं यस्याः सा निश्रथा गतिः (जिसगति की शिथिलता निर्गत हो गई हो)। निश्रथा + हृ + उ = निश्रृम्भ (श्रथ का शृम् और 'हर्' के 'ह' का 'भ')। निश्रथया गत्या हरति इति निश्रृम्भ (अविथिलगति से हरने वाला) (२) अथवा- निर + श्रथ् + क्विप् = निश्रृथ्। निशृथ् + हॅर् = निश्रृम्भ निश्रथ्यहारी, (३) अविश्रामहरण - विश्राम लिए बिना हरण करने वाला, (४) अविश्रान्त, अश्व के विशेषण के रूप में प्रयुक्त है। 'निश्रथया अशिथिलया दृढ़या गत्या हरन् (५) अशिथिल गति से ले जाता हुआ। (६) नित्य स्थिर, (७) सम्बद्ध।
'निशृम्भास्ते जनश्रियम्'
ऋ. ६.५५.६, नि. ६.४.
निष्क्रीत- (१) सब प्रकार से स्वतन्त्र। निस् + कृ + क्त। (२) जो किसी से खरीदा न गया हो।
'निष्क्रीतः स यज्ञियं भागमेतु'
अ. २.३४.१, तै.सं. ३.१.४.२, का.सं. ३०.८.
निषङ्गधिः- खड्ग का कोश, म्यान।
'आभुरस्य निषङ्गधिः'
वाज.सं. १६.१०, तै.सं. ४.५.१.४, मै.सं. २.९.२, १२२.४, का.सं. १७.११.
निषङ्गी- (१) खड्ग या तरकश वाला।
(२) निकृष्ट संगति वाला
'निषङ्गिणो रिपवो हन्त्वासः'
ऋ. ३.३०.१५
(३) शस्त्रागार में अस्त्र शस्त्रों का पालक।
'नमो निषङ्गिणे ककुभाय'
वाज.सं. १६.२०, वाज.सं. (का.) १७.२.४, मै.सं. २.९.३, १२३.२, का.सं. १७.१२.
निषत्स्नुः(१) गर्भाशय में स्थिर गर्भ।
'निषत्स्नुंयः सरीसृपम्'
ऋ. १०.१६२.३, अ. २०.९६.१३,.
(२) गर्भाशय में जमता हुआ।
निषत्तः- (१) निश्चित रूप से विदित।
'त्यं चिदस्य क्रतुभिर्निषत्तम्'
ऋ. ५.३२.५
(२) नि + षद् + क्त। निश्चित रूप से स्थित, (३) अन्तरिक्ष का विशेषण।
'असूर्ते सूर्ते रजसि निषत्ते'
ऋ. १०.८२.४, वाज.सं. १७.२८, मै.सं. २.१०.३, १३४.७, का.सं. १८.१, नि. ६.१५.
सुविस्तृत एवं निश्चित रूप से स्थित अन्तरिक्ष में वायु या प्राण से प्रेरित माध्यमिक देव गण मेघ मरुत् आदि।
निषत्तिः- (१) उच्चपद पर स्थिति।
'काते निषत्तिः किमु नो ममत्सि'
ऋ. ४.२१.९, मै.सं. ४.१२.३, १८६.१४
निषद्- (१) सिंहासन पर बैठना (२) बैठना।
'रणावा ये निषदि सत्ते'
ऋ. ६.२७.२
(३) नि + सद् + क्विप्। विराजना।
'योनिष्ट इन्द्र निषदे अकारि'
ऋ. १.१०४.१
हे इन्द्र, तेरे विराजने के लिये (निषदे) स्थान या आसन बनाया जाता है (योनिः अकारि)।
निषदन- (१) घोड़े को बैठाना, (२) सुरक्षित रूप से गुप्त बैठने का स्थान।
'निक्रमणं निषदनं विवर्तनम्'
ऋ. १.१६२.१४, वाज.सं. २५.३८, तै.सं. ४.६.९.१,

मै.सं. ३.१६१ ,१८३.८, का.सं.(अश्व.) ६.५.
(३) निश्चिंत बैठना, (४) घोड़ो का नियमपूर्वक खड़ा होना, (५) घोड़े की पीठ पर सवार होना, (६) राज सभा आदि के अधिवेशन का स्थान, (७) उठना बैठना ।

निषद्वर- (१) राजसभा में विराजने वालों में सबसे श्रेष्ठ । नि + सद् + क्विप् = निषद् । निषद् + वर = निषद्वर' ।
'होता यक्षद्बर्हिषीन्द्रं निषद्वरम्'
वाज.सं. २८.४, तै.ब्रा. २.६.७.२.

निषदा- (१) समीप बैठकर प्राप्त करने योग्य उपनिषद्-ब्रह्मविद्या ।
'अभिस्वरा निषदा गा अवस्यवः'
ऋ. २.२१.५

निष्क- (१) सुवर्ण आदि का बना आभूषण (२) सम्पूर्ण (३) समस्त रूप (४) सुवर्ण मुद्रा ।
'अर्हन् निष्कं यजतं विश्वरूपम्'
ऋ. २.३३.१०, मै.सं. ४.९.४,१२४.१०, तै.आ. ४.५.७.
(५) नीचे दबा हुआ, (६) निश्चेष्ट, (७) सोने का मोहर जिसमें छाप दी रहती है ।
'निष्कमिव प्रतिमुञ्चत'
अ. ५.१४.३,. १९.५७.५
'शतं निष्कान् दश स्रजः'
अ. २०.१२.३, शां.श्रौ.सू. १२.१४.१.३.

निष्कग्रीवः- (१) जिसके गर्दन में स्वर्ग का आभूषण हो,सोने के मोहरों का बना आभूषण पहनने वाला ।
'नास्य क्षत्ता निष्कग्रीवः'
अ. ५.१७.१४
'निष्कग्रीवो बृंहदुक्थः'
ऋ. ५.१९.३

निष्कर्त्ता- निस् + कृ + तृच् = निष्कर्तृ । प्रथमा . ए.व. में निष्कर्ता । अर्थ है - (१) ठीक कर देने वाला ।
'निष्कर्ता विह्रुतं पुनः'
अ. १४.२.४७,. साम. १.२४४, मै.सं. ४.९.१२, १३४.१, पंच.ब्रा. ९.१०.१, तै.आ. ४.२०.२.

निष्कृत- (१) स्थान ।
'एमीदेषां निष्कृतं जारिणीव'
ऋ. १०.३४.५
(२) सफलता ।
'भद्रा त एति निष्कृतम्'
ऋ. ८.८०.७
(३) घर
'सुतावतो निष्कृतमागमिष्ठः'
ऋ. ३.५८.९.
(४) सर्वसाधन सम्पन्न आश्रय, (५) शुद्ध ज्ञान, सुख ।
'देवानामेति निष्कृतम्'
ऋ. ३.६२.१३, तै.सं. १.३.४.२,
(६) पद ।
'वायोरिन्द्रस्य निष्कृतम्'
ऋ. ९.१३.१, साम. २.५३७.
(७) उत्तमरीति से बनाया हुआ
'उत त्यं चमसं नवं
त्व ष्टुर्देवस्य निष्कृतम्'
ऋ. १.२०.६.
(८) निष्पन्न, निश्चित, (९) निश्चित रूप से उत्तम शोभा सम्पन्न प्रकाश, (१०) शस्त्रादि से निश्चित उत्तम शोभाजनक कार्य ।
'अहरहः निष्कृत माचरन्ती'
ऋ. १.१२३.९
नित्य निश्चित रूप से उत्तम शोभा- सम्पन्न, प्रकाश करती हुई उषा ।
अथवा, शास्त्रादि से निश्चित उत्तम शोभाजनक कार्य का आचरण करती हुई स्त्री ।
(११) जुआड़ियों का अड्डा जहां से सभी इतर पुरुष यत्नपूर्वक बाहर रखे जाते हैं ।
'एमीदेषां निष्कृतं जारिणीव'
ऋ. १०.३४.५
इन जुआड़ियों के (एषाम्) अड्डे पर (निष्कृतम्) स्वैरिणी व्यभिचारिणी स्त्री के सदृश (जारिणीव) आ जाता हूँ । (एमीत्)

निष्कृतिः- (१) रोग दूर करने में अचूक ओषधि ।
'तस्य त्वमसि निष्कृतिः'
अ. ५.५.४
(२) पा यश्चित्, संताप शोधन करना ।
'निष्कृत्यै पेशस्कारीम्'
वाज.सं. ३०.९, तै.ब्रा. ३.४.१.४
(३) रोगांश को बाहर निकालने वाली ओषधि
'अथो यूयं स्थ निष्कृतीः'

ऋ. १०.९७.९, वाज.स,. १२.८३.
(४) निस् + कृ + क्तिन् = निष्कृति । अर्थ है- निवृत्ति, मुक्ति, छुटकारा
'तस्मा अर्चाम कृणवाम निष्कृतिम्'
ऋ. १०.१६५.१, अ. ६.२७.१,
उस पाप से निवृत्ति पाने के लिए आप लोगों की हम अर्चना करते हैं ।

निष्केवल्यउक्थ- (१) निष्कैवल्य भाव (२) एकमात्र राजा का ही बल, उसका सर्वोपरि ।
'निष्केवल्यमुक्थमव्यथायै स्तभ्नातु'
वाज.सं. १५.१३, तै.सं. ४.४.२.२, मै.सं. २.८.९, ११४.३, का.सं . १७.८, श.ब्रा. ८.६.१.८.

निष्कैवल्य- (१) एकयज्ञ, (२) मोक्षोपदेश ।
'मरुत्वतीयाश्च मे निष्कैवल्यश्च मे'
वाज.सं. १८.२०, तै.सं. ४.७.७.२, मै.सं. २.११.५, १४३.६, का.सं. १८.११.

निष्ट- बलवान् ।
'निष्टमूहथुः सुयुजा रथेन'
ऋ. १.११७.१५
तब दोनों वीर्य निषेक करने और धारण करने में बलवान् होकर (निष्टम्) परस्पर रीति से युक्त होकर (सुप्रजा) गृहस्थ कार्य का निर्वाह करें (ऊहथुः) ।

निष्टक्वरी- खूब ज्वर को फैलाने वाली, काटने वाली मच्छर जाति ।
'दांसी निष्टक्वरींमिच्छ'
अ. ५.२२.६

निष्टप्ता- खूब संतप्त ।
'निष्टप्ता अरातयः'
वाज.सं. १.७.२९, श.ब्रा. १.१.२.२,३.१.४, आश्व.श्रौ.सू. २.३.९, कौ.सू. ३.९.
(२) निस्तप्ता । निश् + तप् + तृच् = निष्टप्तृ । प्र.ए. में रूप निष्टप्ता । अर्थ है - खूब पीड़ित करने वाला
'निष्टप्ता शत्रुंपृतनासु सासहिः'
ऋ. २.२३.११

निष्ट्वक्रासः-निस् + त्वत्क्रासः । वस्त्रहीन मनुष्य ।
'निष्ट्वत्क्रासश्चिदिन्नरः'
नि. १.१०,
वस्त्रहीन (निष्टवत्क्रासः) तथा बहुत सन्तति वाले ।

निष्षपिन् - विनिर्गतः सपः यस्य स निष्षयी (जिसका जननेन्द्रिय विनिर्गत हो । । निर् + सप + इनि = निष्पपिन् ।
अर्थ - (१) स्त्रीकामः पुंश्चलः (जो स्त्रियों का कामी हो) । (२) विनिर्गतसपः (जिसका जननेन्द्रिय विनिर्गत हो । शेप का सप हो गया है ।
'प्रतियत् स्या नीथादर्शिदस्योः
ओको नाच्छा सदनं जानतीगात्
अघस्मानो मघवञ्च कृतादित्
मानो मघेव निष्षापी परादाः'
ऋ. १.१०४.५
हे इन्द्र, जिस प्रकार (यत्) हमारी वह स्तुति, (स्या नीथा) शत्रु को नष्ट करने वाले तेरे निवास स्थान के सदृश हृदय में (दस्योः ओकः न) सम्मुख ही (अच्छा) अपना घर समझती हुई (सदनं जानती) चली जाती है (गात्) । वह जाना हम से देखा जाता है (प्रत्यदर्शि) । अर्थात् यह जानते हुए कि हमारी स्तुति आप के हृदय में पहुंच जाती है हम यह कहते हैं कि बार बार की स्तुति रूपी कर्म से पराङ्मुख न करें (मा परादाः) अर्थात् हमें अपनी स्तुति से विमुख कर नष्ट न करे जैसे लम्पट विषयी मनुष्य अपने धन को नष्ट करता है (निष्पपी मघा इव)
स्वा. दयानन्द का अर्थ- जो यह न्याय प्राप्त प्रजा दस्यु से घर की तरह सुरक्षित होती है (यत् स्मया नीथा दस्योः ओकः न प्रत्यदर्शि) वह राष्ट्र को अपना घर समझती हुई प्राप्त होती है (सदनं जानती अच्छगात्) अतः हे मघवन् राजन् (अध मघवन्) दुष्कृत कर्म से (चकृतात्) हमें (नः) रक्षा करें, परन्तु (इत्) जैसे व्यभिचारी मनुष्य धन नष्ट करता है (निष्प मघा इव) एवं दुर्व्यसनों में डालकर हमारा नाश न कीजिए । (नः मा परादाः) ।
(३) स्त्रिया सह नितरां समवेतः (स्त्री भोग का व्यसनी पुरुष ।
तू हमें अपने व्यसनों के कारण पराए हाथों मत दे डाल जैसे व्यसनी व्यसन में ही नाना धन नष्ट कर जाता है ।

निष्ट्य- निस् + स्त्य । (१) नीचों के समान संघ-रहित, (२) निस्सहाय ।

'माभूम निष्ट्या इव'
ऋ.८.१.१३, अ. २०.११६.१, वै.सू. ४०.७,४१.१२.
(३) निकृष्ट पुरुष।
'सनाभिर्यश्च निष्ट्यः'
ऋ. १०.१३३.५, अ. ६.६.३.
(४) नीच स्वभाव का, nasty (५) नीच, हीन, (६) निर्वासित ((७) नीच वर्ण का, (८) निर्बल।
'सजातो यश्च निष्ट्यः'
अ. ३.३.६

निष्ट्य - नि + स्थ्य। (१) छिपकर रहने वाला, (२) दूर रहने वाला।
'यश्च निष्ठ्यो जिघांसति'
साम. २.१२२२.

निषणः- बैठा हुआ।
'निषण्णाय स्वाहा'
वाज.सं. २२.८, तै.सं. ७.१.१९.१, मै.सं. ३.१२.३, १६१.२, का.सं. (अश्व.) १.१०.

निषाद- नि + सद् + घञ् =निषाद अर्थ (१) वनों पर्वतों में रहने वाला।
'नमो निषादेभ्यः पुञ्जिष्ठेभ्यश्च वो नमः'
वाज.सं. १६.२७, मै.सं. २.९.५, १२४.७.
(२) निषण्णम् अस्मिन् पापकम् (जिसमें पाप स्थित है)। अर्थ है- पापी, नीच, (३) मनुष्य का विशेषण पञ्चजन है, जिसका अर्थ या तो ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और निषाद है या पञ्च शब्द मनुष्य का द्योतक है, पञ्चमुख परमेश्वर का भाव यही है पांच जो कहे वही परमेश्वर का कथन है। इसी शब्द से पञ्चायत बना है। इसका यह भी भाव है कि सभी वर्णों की सम्मिलित सम्मत्ति पञ्च की सम्मति है। यही पञ्चायत या प्रजातन्त्र है।

निष्षाट् - निस् + सह् + क्विप् = निष्षाह्। अर्थ है -(१) निश्चयपूर्वक अभिभूत करने वाला। इन्द्र का विशेषण।
'अभीदमेकमेको अस्मि निष्षाट्
अभी द्वा किमुत्रयः करन्ति'
ऋ. १०.४८.७, नि. ३.१०.
निश्चय पूर्वक शत्रुओं अभिभूत करने वाला मैं अकेले उन्हें जीत लेता हूं। भला दो या तीन क्या करेंगे। (२) सब विघ्नों पर विजय पाने वाला, (३) सबको व्यापता हुआ सूर्य या मेघ।
'प्र वां शरद्वान् वृषभो न निष्षाट्'
ऋ. १.१८१.६

निषिक्तपाः- अभिषिक्त माण्डलिकों या निषिक्त गर्भों का पालक दयालु परमेश्वर।
'अच्छा विष्णुं निषिक्तपाम् अवोभिः'
ऋ. ७.३६.९ आप.श्रौ.सू. १३.१८.१.

निष्टिग्री- (१) गुप्त रूप से सब को वश करने का उपदेश करने वाली राजसभा।
'निष्टिग्र्यः पुत्र माच्या वयोतये'
ऋ. १०.१०१.१२, अ. २०.१३७.२

निष्षिध् - (१) निषेधाज्ञा, (२) अनुशासन, (३) कार्य-साधन करने वाली सेना या चेष्टा (४) वेदाज्ञा।
'पूर्वीरस्य निष्षिधो मर्त्येषु'
ऋ. ३.५१.५
(५) बुरे मार्गों और बुरे आचरणों का निषेध करने वाला।
'विदानासो निष्षिधो मर्त्यत्रा'
ऋ. १.१६९.२

निष्षिध्वरी- रोगों को दूर करने और सब मंगल करने वाली ओषधि
'निष्षिध्वरीस्त ओषधीरुतापः'
ऋ. ३.५५.२२.

निष्ठित- खूब अच्छी तरह से स्थित।
'कः स्विद् वृक्षो निष्ठितो मध्ये अर्णसः'
ऋ. १.१८२.७

निष्ठुर - निष्टुर्। शत्रु का सर्वथा नाश करने में समर्थ।
'प्र व उग्राय निष्टुरे'
ऋ. ८.३२.२७.

निषेचन- मूत्रस्राव।
'पृथिव्यां ते निषेचनम्'
अ. १.३.१-५.

निः- सर्वत्र समर्थ।
'प्रेमन्धः ख्यन्निः श्रोणो भूत्'
ऋ. ८.७९.२

निः खिदन् - सब प्रकार से ताड़ित।
'तां न शक्नोति निः खिदन्'
अ. ५.१८.७

निंस्- प्राप्त होना, प्रेम से ग्रहण करना, चुम्बन

करना ।

निंसते- प्राप्त होता है । प्रेम से ग्रहण करता है, चुम्बन करता है ।
'या अस्य धाम प्रथमं हनिंसते'
ऋ. १.१४४.१
जो कान्तिमती कन्या इसके सर्वोत्तम तेज आदि गुणों को प्रेम से ग्रहण करती है । अथवा, जो वाणियां इस उत्तम विद्वान् शिक्षक के सबसे उत्तम धारण करने योग्य ज्ञान को प्राप्त होती है ।

निस्पृक्- खूब स्नेह करने वाला ।
'यदासु मर्तो अमृतासु निस्पृक्'
ऋ. १०.९५.९

निसर- शत्रु पर अभिसरन्, आक्रमण , चढ़ाई ।
'क्रोधाय. निसरम्'
वाज.सं. ३०.१४, तै.ब्रा. ३.४.१.१०.

निस्वरः- (१) अन्यों को उपताप या पीड़ा ने देने वाली ।
'निर्ऋथो यश्च निस्वरः'
अ. १२.२.१४.
(२) निःशब्द, विना आवाज किए चुपचाप ।
'नि पर्शा ने विध्यतं यन्तु निस्वरम्'
ऋ. ७.१०४.५, अ. ८.४.५.
'प्रनिस्वरं चातयस्व अभीवाम'
ऋ. ७.१.७.

निससत्थ - नियम से स्थिर रहता है ।
'महीमपारां सदने ससत्थ'
ऋ. ३.३०.९

निंसान- न. । चुम्बन, स्पर्श ।
'निंसानं जुह्वो मुखे'
ऋ. ८.४३.१०, का.सं. ७.१२.

निःसाला- (१) आवारागर्दी का स्वभाव ।
'निस्सालां धृष्णुं धिषणम्'
ऋ. २.१४.१

निःसृज् - (१) निरन्तर वेग से जाने वाला, (२) सब प्रकार के कार्यों का सम्पादन करने वाला, (३) सर्व प्रकार से आत्मोत्सर्ग करने वाला ।
'व्रजस्य साता गत्यस्य निःसृजः'
ऋ. १.१३१.३, अ. २०.७२.२, ७५.१.
वे सब प्रकार आत्मोत्सर्गकरने वाले, (निःसृजः) गौ के हितकारी बेड़े के समान आश्रयपद लोकों को शरण रूप से प्राप्त होने योग्य आश्रय के लाभ के लिए । (व्रजस्य साता)...

निह्- (१) घातक, (२) प्रजाघातक ।
'अतिनिहो अतिसृधः'
अ. २.६.५, वाज.सं. २७.६, तै.सं. ४.१.७.२, मै.सं. २.१२.५, १४९.४, का.सं. १८.१६.
(३) कामादि शत्रु, प्रजा नाशक शत्रु के प्रतिभट

निहाका - (१) हा, मरा आदि कष्टध्वनि कारक पीड़ा, (२) सान्निपातिक रोग ।
'साकं नश्य निहाकया'
ऋ. १०.९७.१३, वाज.सं. १२.८७,तै.सं. ४.२.६.४, मै.सं. २.७.१३ ,९४.८, का.सं. १६.१३.
(३) रोग को निःशेष दूर करने की प्रक्रिया ।

निहार- गिरवी, छाती ।
'निहारं च हरासि में'
वाज.सं. ३.५०, वाज.सं. (का.) ३.६.२, श.ब्रा. २.५.३.१९.

निहितम् - नि + धा + क्त । रखा हुआ ।
'यस्मिन् यशोनिहितं विश्व रूपम्'
नि. १२.३८.
जिस सूर्य में अनेकों प्रकार का जल रखा हुआ है ।

नीक्षण- नि + ईक्षण । निरन्तर ईक्षण, निरन्तर देख भाल करना
'यनीक्षणं मास्य चन्या उखायाः'
ऋ. १.१६२.१३, वाज.सं. २५.३६, तै.सं. ४.६.९.१, मै.सं. ३.१६.१,१८३.४, का.सं. (अश्व.) ६.४.

नीचायमानः- नीचैः अयमानः। अय (गत्यर्थक) + शानच् । नीचैः निचितं भवति (नीचे का अर्थ निचित होता है) । नि + चि + डैस् = नीचैः । 'नौदीर्घश्च' से नि कानी हुआ । अर्थ है- (१) नीचे नीचे जाता हुआ -सा. (२) नीचता की ओर जाने वाला -दया. ।
'उत स्मैनं वस्त्रमथिं न तायुं नीचायमानं जसुरिं न श्येनम्'
ऋ. ४.३८.५, नि. ४.२४.
और इस दधि क्रावा इन्द्र को युद्धों में देखकर लोग शत्रु शत्रु चिल्लाते हैं जैसे वस्त्र लेकर भागने वाले चोर को देखकर लोग चिल्लाते हैं तथा नीचे नीचे उड़ते हुए पालतू बाज को

देखकर अन्य पक्षी क्रन्दन करते हैं (नीचायमानं जसुरिं श्येनं न)
और चोर की तरह (तायुं न) युद्धों से (भरेषु) वस्त्रतक चुरा लेने वाले (वस्त्रमथिं)नीचता की ओर जाने वाले (नीचायमानम्) तथा मुक्त किए बाज की तरह हिंसक (जसुरिं श्येनं न) जिस राजा को प्रजा या शत्रु कोसते हैं (अनुक्रोशान्ति) - (दया.)

नीचावया- (१) निकृष्ट उम्र को प्राप्त हुई (२) नीचे
'नीचावया अभवद् वृत्रपुत्रा'
ऋ. १.३२.९
अन्तरिक्ष को ढंकने वाले मेघ को पुत्र के समान उत्पन्न करने वाली अन्तरिक्ष भूमि जल को नीचे (नीचावयाः) गिरा देती है ।

नीचासत्- नीच पक्ष में रहने वाला ।
'नीचा सन्तम् उदनयः परावृजम्'
ऋ. २.१३.१२

नीचीः- (अ.) नीचे, नम्र होकर ।
'आपो न सृष्टा अधवन्त नीचीः'
ऋ. ७.१८.१५
मेघ या असुर जल की तरह विलीन प्राय हो नीचे होकर अर्थात् नम्र होकर चलने लगे -सा.
फेंके हुए जल के समान राजद्रोहियों को नीचे पहुंचा ।

नीचीन- (१) नीचे पड़ा हुआ सर्प ।
'नीचीनस्योपसर्पतः'
अ. ७.५६.५
(२) न्यक् अच्यत इति नीचीनम् (नीचे की ओर जिसकी गति हो) । न्यक् + अञ्च् + ख (इन्) । = नीचीन ।

नीचीनबारः- (१) नीचे की ओर मुख वाला मधुमक्खी का छत्ता ।
'सारघेव गवि नीचीनबारे'
ऋ. १०.१०६.१०
(२) नीचीनद्वार । न्यक् अच्यत इति नीचीनम् (नीचे की ओर जिस की गति हो । नीचीनः वारःयस्य स नीचीन्वारः (जिसका घर नीचीन हो) (३) अधोमुखी द्वार वाला (४) जिसका ढक्कन या मुख नीचे की ओर किया गया हो-मेघ का विशेषण
'नीचीनबारं वरुणः कवन्धं
प्र ससर्ज रोदसी अन्तरिक्षम्'
ऋ. ५.८५.३, नि. १०.४
सम्पूर्ण भूतजात या उदक के राजा वरुण ने (वरुणः) मेघ को अधोमुखकर (कवन्धं नीचीन बारम्) द्यौ, अन्तरिक्ष और पृथिवी पर मानों पसार दिया (रोदसीं अन्तरिक्षं प्रससर्ज)

नीचैः- नीचैः निचितं भवति (नीच शब्द का अर्थ निचित होता है) । नि + चि + डैसि = नीचैः 'नौदीर्घश्च' से नि का नी । अर्थ है- नीचा, एक अव्यय ।

नीड- पु. । अर्थ- (१) स्थान, (२) निलय ।
'आयोर्हस्कम्भ उपमस्य नीडे
पथां विसर्गे धरुणेषु तस्थौ'
ऋ. १०.५.६, अ. ५.१.६.
(३) पक्षियों के रहने का स्थान-घोसला ।

नीलंगु- नीड़ मे बैठने वाला एक छोटी जाति का पक्षी ।
'नीलंगोः कृमिः'
वाज.सं. २४.३०, तै.सं. ५.५.११.१, मै.सं. ३.१४.११, १७४.९, का.सं.(अश्व.) ७.१.

नीथ- (१) उत्तम उद्देश्य की ओर जाने वाला मार्ग, (२) सत्य व्यवहार, (३) उत्तम वचन ।
'नीथे नीथे मघवानं सुतासः'
ऋ. ७.२६.२, तै.सं. १.४.४६.१, आप.मं.पा. २.११.८.

नीथा- (१) स्तुति - (२) न्यायप्राप्त प्रजा-दया (३) नीति (४) ब्रह्म मार्ग (५) सामगान
'प्रति यत् स्या नीथादर्शि दस्योः
ओको नाच्छा सदनं जानती गात्'
ऋ. १.१०४.५
हे इन्द्र, जिस प्रकार (यत्) हमारी वह स्तुति (स्यानीथा) शत्रु को नष्ट करने वाले तेरे निवास स्थान के सदृश (दस्योः ओकः न) हृदय में सम्मुख ही (अच्छा) अपना घर समझती हुई (सदनं जानती) चली जाती है (गात्)
जो यह न्याय प्राप्त प्र जा (स्या नीथा) दस्यु से (दस्योः) घर की तरह (ओकः न) सुरिक्षत दीखती है (प्रत्यदर्शि) वह राष्ट्र को अपना घर समझती हुई प्राप्त होती है (सदनं जानती अच्छा गात्) - (दया.)

नीथा विद् - (१) विनयाचारों और गुणों एवं

नीतियों का ज्ञाता ।
'नीथा विदो जरितारः'
ऋ. ३.१२.५, साम. २.९२५, १०५३, मै.सं. ४.११.१, १५९.७.
(२) सामगान या ब्रह्म मार्ग का ज्ञाता ।

नीनाह - (१) घोड़े की पीठ पर बंधी काठी आदि ।
'अश्वमिव नीनाहम् न'
अ. १९.५७.४

नीप्य- बहुत गहरे जलस्थानों का अध्यक्ष ।
'नमः काट्याय च नीप्याय च'
वाज.सं. १६.३७

नीपातिथि- (१) सन्मार्ग दिखाने वाला अतिथि, (२) अतिथिवत् पूज्य पुरुष (३) एक वैदिक ऋषि ।
'यथा नीपातिथिं धने'
ऋ. ८.४९.९.

नीरिणाति- जाती है ।
'लोपामुद्रा वृषणं निरिणाति'
ऋ. १.१७९.४.
कामाविष्ट लोपामुद्रा अपने पति अगस्त के पास जाती है ।

नीलग्रीवः- नीलास्यः 'नीलम् आस्यम् मुखम् प्रवृत्ति द्वारम् रागादिः = येषां तथोक्ताः' (३) नील ग्रीवा वाला -रुद्र (२) गले में नीलमणि बांधने वाला
'नीलग्रीवो विलोहितः'
वाज.सं. १६.७, तै.सं. ४.५.१.३, मै.सं. २.९.२, १२१.११, का.सं. १७.११.

नीलनख- नीलनख नामक सूक्त ।
'नीलनखेभ्यः स्वाहा'
अ. १९.२२.४.

नीलपृष्ठ- (१) सूर्य, (२) नीलवर्ण की पोशाक पहने हुआ, (३) नील मेघ के समान सौम्य ।
'प्र नीलपृष्ठो अतसस्य धासेः'
ऋ. ३.७.३
(४) श्यामरूप मेघ, (५)मेघ के समान प्रचुर द्रव्य दान करने वाला (५) अपनी पीठ पर अन्यों के आश्रय देने वाला ।
'आवेधसं नीलपृष्ठं बृहन्तम्'
ऋ. ५.४३.१२, मै.सं. ४.१४.४, २१९.११, तै.ब्रा. २.५.५.४.

नीलपृष्ठाः- (१) श्याम वर्ण की पीठ वाले (२) मेघ रूप में विद्यमान पवन (३) नीलवर्ण की पोशाक पहने, (४) कृष्ण मृगछाला पहने ।
'आ हंसासो नीलपृष्ठा अपप्तन्'
ऋ. ७.५९.७

नीललोहित- (१) नीला और लाल अधपका पात्र ।
'यां चक्रुर्नीललोहिते
अ. ४.१७.४.
(२) नील रंग से मिश्रित रक्त आर्तव ऋतुधर्म ।
'नीललोहितं भवति'
ऋ. १०.८५.२८, अ. १४.१.२६.

नीलवान्- (१) नीडवान् , (२) आश्रयदाता परमेश्वर ।
'तवद्रप्सो नीलवान् वाशऋत्वियः'
ऋ. ८.१९.३१, साम. २.११७३.
(३) नील धुएं वाला-अग्नि ।

नीलशिखण्ड- (१) सिर पर नीला तुर्रा लगाकर चलने वाला, (२) आश्रय शरीर में मूर्धाभाग में स्थित ब्रह्मरन्ध्र-गत प्राण, (३) तमोगुण मयी और रजोगुणमयी प्रकृति ।
'नीलशिखण्डवाहनः'
अ. २०.१३२.१६
(४) मनोहर कान्तिमय ।
'नीलशिखण्ड कर्मकृत्'
अ. २.२७.६
(५) नीलकेश वाले रुद्र ।
'अस्त्रा नीलशिखंडेन'
अ. ११.२.७

नीलागलसाला - (१) नील + आगल साला । नील अन्धकारमय तामसआगल-सबकी संहारक -प्रचण्ड वेगवती ब्रह्मशक्ति, (२) सत्यविशेष की मञ्जरी ।
'नीलागलसाला'
अ. ६.१६.४

नीवार- विना खेती किए उपजने वाला धान ।
'श्यामाकाश्च मेनीवाराश्च मे'
वाज.सं. १८.१२, तै.सं. ४.७.४.२, मै.सं. २.११.४, १४२.१४२.३

नीव्या- (१) नामावलि या पंक्तियों में सुसज्जित सेना (२) प्राप्तव्य उद्देश्यों को लक्ष्य में रखने वाली ।
'सनीव्याभिर्जरितारयच्छ'

ऋ. ६.३२.४

नीवि- (१) शरीर का कटि भाग, (२) कटिभाग में पहने जाने वाला वस्त्र, धोती, लंगोटी, पायजामा आदि ।

'यां नीविं कृणुषे त्वम्'

अ. ८.२.१६

(३) एकत्र होने का स्थान ।

'सोमस्य नीविरसि'

वाज.सं. ४.१०, का.सं.२.३, श.ब्रा. ३.२.१.१५, आप.श्रौ.सू. १०.६.६.

नीविदः- (१) स्तुति करने योग्य इष्ट देव के विशेष गुण प्रदर्शक वेद की ऋचाएं ।

'चातुर्मास्यानिनीविदः'

अ. ११.७.१९

नीविभार्यौ- द्वि.व. । धन और स्त्री के गर्भ की रक्षा करने वाले राजा और पति ।

'भेषजौ नीविभार्यौ'

अ. ८.६.२०

नीषाड्- सर्वथा पराजित करने वाला ।

'शत्रूषाण् नीषाड भिमातिषाहः'

अ. ५.२०.११

नीहार- (१) नी + हृ + घञ् = नीहार । अवश्याय, तुषार-सा. (२) हारादि भोग्य पदार्थों से वर्जित ।

'उदारन् गच्छोत वा नीहारान्'

अ। ६.११३.२

(३) नीहारिका, कुहरा, (४) अज्ञानान्धकार ।

'नीहारेण प्रावृताजल्प्या च'

ऋ. १०.८२.७, वाज.सं. १७.३१, तै.सं. ४.६.२.२, मै.सं. २.१०.३ ,१३५.२, का.सं. १८:२, नि. १४.१०.

(५) अंधकार, (६) अविद्यान्धकार ।

नु - (१) अनेकार्थ अव्यय (नु इति अनेक कर्मा,) (२) हेतु के अपदेश में यथा 'इदं नु करिष्यति' (कारण कि ऐसा वह करेगा) ।

हेतु दो प्रकार है -कारक और ज्ञापक (३) किसी प्रश्न का उत्तर कितने पर पुनः प्रश्न करने पर भी 'नु' का प्रयोग होता है । यथा-कथं नु करिष्यति (तो वह कैसे करेगा?। (४) उपमा अर्थ में यथा ।

'अक्षो नचक्र्योःशूर बृहन्
प्र ते महना रिरिचे रादेस्योः
वृक्षस्य नु ते पुरुहूत वयाः
न्यूतयो रुरुहुरिन्द्र पूर्वीः'

ऋ. ६.२४.३

हे बहुतों से आहूत शूरवीर इन्द्र, (पूरूहूत इन्द्र) तेरी चक्रों की धूरी के समान महान् महिमा द्यावा पृथिवी से अधिक है । तेरी पूर्वकाल में की हुई रक्षाएं विशेष प्रकार से बढ़ती हैं । (विरुरुहुः) जैसे वृक्ष की शाखाएं बढ़ती हैं (वृक्षस्य वयाःनु)

(५) प्रसिद्ध अर्थ में (६) निश्चयपूर्वक ।

'यं नु नकिः पृतनासु स्वराजं
द्विता तरति नृतमं हरिष्टाम्'

ऋ. ३.४९.२

(७) शीघ्र ।

'नूचित् दधिध्वमेगिरः'

ऋ. १.१०.९.

हे इन्द्र, तेरी स्तुतियों को शीघ्र चित्त में धारें (नूचित् दधिध्व) । 'नूचित्' का अर्थ होता है पहले भी, ।

नुत्त -नुद् + क्त । पराजित, पछाड़ा गया ।

'नुत्ता धावत ब्रह्मणा'

अ. ८.८.१९

नुदोथाम् - नुद् धातु भगाना अर्थ में है, ऐसा भागना कि शत्रु को कहीं शरण न मिले । अंग्रेजी का Nude शब्द नुद् के भाव से मिलता जुलता है । अर्थ है - दूर भगाते रहो या भगा दो ।

'हतं नुदेथां निशिशीतमत्रिणः'

ऋ. ७.१०४.१, अ. ८.४.१, का.सं. २३.११.

नुवन् - (१) बोलने चालने वाला, (२) चापलूसी करने वाला, (३) निन्दा करता हुआ ।

'समिन्द्रगर्दभं मृणनवन्तं पापयामुया'

ऋ. १२९.५ अ.२०.७४.५

अमुक अमुक पापमयी वाणी से निन्दा करने वाले, गधे के तुल्य स्वभाव वाले को दण्डित करे' ।

न्युप्ताःवभ्रवः- दाव पर फेंकते हुए पीले पीले जुए । के पाशे ।

'न्युप्ताश्च वभ्रवोवामक्रमतम्'

ऋ. १०.३४.५.

जब दाव पर फेंके हुए पीले रंग के पाश (न्युप्ताःवभ्रवः) शब्द करने लगते हैं (वाचम्

अक्रतम्) ।

नू - अ. (१) समान, तुल्य, सदृश ।
'तूर्वन्न यामन्नतेशस्य नूरणे'
ऋ. ६.१५.५, वाज.सं. १७.१०, तै.सं. ४.६.१.२, मै.सं. २.१०.१, १३१.१६, का.सं. १७.१७.
(२) निरन्तर
'नू ष्टुत इन्द्र नू गृणानः'
ऋ. ४.१६.२१, १७.२१, १९.११, २०.११, २१.११, २२.११, २३.११, २४.११.

नूच- (१) यह नियात पुराना और नया दोनों अर्थों में प्रयुक्त हुआ है । (२) आज ।
'नूच पुराच सदनं रमीणाम्
जातस्य च जायमानस्य च क्षाम्
सतश्च गोपां भवतश्च भूरेः
देवा अग्निं धारयत् द्रविणोदम्'
ऋ. १.९६.७, नि. ४.१७.
आज (नू च) और पहले भी (पुराच) सभी धनों के आवास स्थान (रयीणां सदनुम्) उत्पन्न एवं उत्पन्न होने वाले कार्यों का निवास (जातस्य च जायमानस्य च क्षाम्) वर्तमान् प्राणियों एवं होने वाले प्राणियों का (सतश्च भवतश्च) बहुतों के रक्षक (भूरेःगोपाम्) धन के दाता (द्रविणोदाम्) अग्नि को (अग्निम्) देवों ने हवि वहन करने के लिये धारण किया (धारयन्) ।

नूचित्- (१) अव्यय । निश्चार्थक ।
'पुरां च्यौत्नाय शयथाय नूचित्'
ऋ. ६.१८.८
(२) पहले भी ।
'अध्याचिन्नू चित्तदपो नदीनाम'
(आज भी और पहले भी नदियों का जल बहाना ही तेरा कमा रहा) ।
(३) नहीं तो ।
'नू चिन्नु वायोरमृतं वि दस्येत्'
ऋ. ६.३७.३, नि. १०.३.
नहीं तो इन्द्र का (वायोः) सोम रस (अमृतम्) कहीं फट न जाय (विदस्येत्) (४) भी ।
'यस्य ते नूचि दादिशम्'
ऋ. ८.९३.११
(५) कभी भी ।
'नूचिद्धि परिमम्नाथे अस्मान्'
ऋ. ७.९३.६

नूतन- (१) ईश्वर से उत्पन्न कार्य जगत् (२) नवीन ।
'स पूर्व्यो नूतनमवि वासत्'
अ. ७.२१.१, साम. १.३७२.
'अग्निः पूर्वेभिः ऋषिभिरीड्यो नूतनैरुत'
ऋ. १.१.२, नि. ७.१६.
पुनः-
'कृतं न श्वघ्नी वि चिनोति देवने
संवर्गं यन्मघवा सूर्यं जयत् ।
न तत् ते अन्यो अनुवीर्यं शकत्
न पुराणो मघवन्नोत नूतनः'
ऋ. १०.४३.५, अ. २०.१७.५,
पाधनहारी धूर्त या जुआरी (श्वघ्नी) जैसे पूर्व पुरुषों का अर्जित धन (कृतम्) द्यूत् में (देव ने) ढूंढ़ता है, इन्द्र जैसे (यत्) सम्यक् प्रकार से वृष्टि देने वाले मेघ को(संवर्ग सूर्यम्) जीतता है, हे इन्द्र, तेरा सूर्य को विजित करने वाला वह बल (ते तत् वीर्यम्) तेरे सिवा कोई अन्य अनुकरण नहीं कर सकता (अन्य अनुन शकत्) और न (न उत) कोई वर्तमान कालीन मनुष्य ही (नूतनः) और न किसी पुरातन पुरुष ने ही (पुराणः) पहले किया ।
अन्य अर्थ- जिस तेज से धनपति परमेश्वर (मघवा) सूर्य को जीता हुआ है (यत् मघवा सूर्य जयत्) दुर्गुणों को हटाने वाले उस तेज को (संवर्गम्) जैसे जुआरी जुए में विजय को ढूढ़ता है (श्वघ्नी देवने कृतं न विचिनोति) एवं ममतारहित त्यागी ढूंढ़ता है । हे ऐश्वर्यशाली प्रभो (मघवन्), आप से भिन्न कोई उस तेज के अनुप्रदान में समर्थ नहीं । हे धनपते, न पहले किसी ने दिया न अब या आगे कोई दे सकता है । अतः आप ही उस बल को दें ।
पुनः-
'आश्येनस्य जवसा नूतनेन'
ऋ. १.११८.११
आप दोनों पक्षी के समान वेग से हमारे गृह पर नए रथ से आइए ।

नूनम्- (१) अवश्य,
'न नूनमस्तिनोश्वः'
ऋ. १.१७०.१, नि. १.६.
(२) निश्चय , (३) पद पूरण में भी इसका प्रयोग

होता है । (४) विचिकित्सा अर्थ में (नूनमिति विचिकित्सार्थी पदपूरञ्च) ।
पदपूरण में-
'प्र नूनं जातवेदसमश्वं हिनोत वाजिनम्
इदं नो वर्हिरासदे'
ऋ. १०.१८८.१
हे स्तोताओ, तुम इस सर्वव्यापी (अश्वम्) ज्वालाओं से चंचल या अन्नयुक्त (वाजिनम्) या अश्व के सदृश बलवान् अग्नि को हमारे इस कुशासन पर या यज्ञ में आकर वैठने के लिये (नः इदं बर्हिः आसदे) स्तुतियों से वढ़ा । (प्रहिनोत' नूनम्)
'निश्चय से' के अर्थ में -
'नूनं तदस्य काव्यो हिनोति'
अ. ४.१.६

नृ (ना) - (१) नेता, मनुष्य, (२) ऋत्विज् ।
'अग्निं नरो दीधितिभिररण्यो
हस्तच्युती जनयन्त प्रशस्तम्'
ऋ. ७.१.१, साम. १.७२, २.७२३, का.सं. ३४.१९, ३९.१२, कौ.ब्रा. २२.७, नि. ५.१०.

नृचक्षसः- (१) सर्वनेता परमेश्वर को साक्षात् करने वाला । 'नृचक्षस्' का षष्टी ए. व में रूप ।
ऋ. १०.१०७.४, अ. १८.४.२९

नृचक्षसौ- (१) देह के नायक आत्मा को ज्ञानादि के दर्शन कराने वाले प्राण अपान, (२) यम के दो दूत ।
'चतुरक्षौ पथिरक्षी नृचक्षसौ'
ऋ. १०.१४.११, तै.आ. ६.३.१.

नृचक्षस्- (१) नृ + चक्षस् । अपने नायक या गुरु को सौम्य या उत्सुक दृष्टि से देखने वाला शिष्य, छात्र ।
'नृचक्षसे सुमृडीकाय वेधः'
ऋ. ४.३.३.
(२) मनुष्यों को उत्तम उपदेश करने वाला वचन ।
'नृचक्षसो दृशये कर्णयोनयः'
ऋ. २.२४.८
(३) सब मनुष्यों या जीवों का द्रष्टा सविता, परमेश्वर ।
'सवितारम् नृचक्षसम्'
ऋ. १.२२.७, वाज.सं. ३०.४, श.ब्रा. १०.२.६.६, तै.आ. १०.१०.२ ,
(४) राजा की राज सभा का सदस्य ।
'ये ते रात्रि नृचक्षसः'
अ. १९.४७.३, शा.श्रौ.सू. ९.२८.१०.
(५) प्रजा के हित पर सदा दृष्टि रखने वाला ।
'नृचक्षाः रक्षः परिपश्य विक्षु'
ऋ. १०.८७.१०, अ. ८.३.१०

नृजित्- (१) समस्त मनुष्यों को जीतने वाला , (२) सबसे बड़ा प्रधान नायक- इन्द्र ।
'सत्राजिते नृजिते उर्वराजिते'
ऋ. २.२१.१.

न्यृञ्जते- नि + ऋञ्जते । 'ऋञ्ज्' धातु व्यवस्थित करना, arrange, वश करना अर्थ में आया है । अर्थ है -वश में करे व्यवस्थित करे . लोट् के अर्थ में लट् का प्रयोग है ।
'योधीन शत्रून्त्स वना न्यृञ्जते'
ऋ. १.१४३.५

नृणां नर्यः- (१) शरीर के नेता रूप प्राणगणों का नेता आत्मा(२) मानवों का नेता (३) मनुष्यों के वीच नेता बनने के योग्य ।
'नृणां नर्यो नृतमः क्षपावान्'
ऋ. १०.२०.१, अ. २०.७६.१

नृणां नृतमः- (१) मनुष्यों में श्रेष्ठ राजा, (२) शूरो में श्रेष्ठ शूर (३) नायकों में श्रेष्ठ नायक-इन्द्र परमेश्वर ।
नृणां नर्यो नृतमः क्षपावान्
ऋ. १०.२९.१, २०.७६.१.
मनुष्यों में श्रेष्ठ राजा, या शूरों में श्रेष्ठ शूर या नायकों में श्रेष्ठ नायक या कल्याणकारी सोमभागी या कालिरात्रि को वनाने वाला परमेश्वर (क्षपावान्) ।

नृत् - (१) हाथ पैर आदि की इच्छानुकूल चेष्टा ।
'को बाणं को नृतं दधौ'
अ. १०.२.१७

नृतमः- (१) नेतृतम, (२) अतिशयरूप से लोगों का रक्षिता, (३) पुरुष श्रेष्ठ परमात्मा या पिता ।
'अपां गर्भो नृतमो यह्वो अग्निः'
ऋ. ३.१.१२
सन्तानों को गर्भ के सदृशधारण करने वाला, पुरुपश्रेष्ठ गुणों से महान् अग्नि या परमात्मा (४) प्रशास्त मनुष्य । (५) नायकों में श्रेष्ठ नायक

परमात्मा ।

नृतमा ऊतिः- (१) मनुष्यों की रक्षा करने वाली योग्यता-सा. (२) प्रशस्त मनुष्य बनाने वाली रक्षा -दया. ।

'नृवत्त इन्द्र नृतमाभिरूती
वंसीमहि वामं श्रोमतेभिः '

ऋ. ६.१९.१०

हे राजमान इन्द्र, हमें तुझ से मनुष्यों या परिचारकों से युक्त (नृवत्) श्रवणीय यशों से युक्त (श्रोमतेभिः) सुन्दर भावनीय या संभजनीय (वामम्) एवं मनुष्यों की रक्षा करने की योग्यता से युक्त धन को (नृतमाभिरूती) परस्पर बांटते हैं (वंसीमहि) ।

हे तेजस्वी राजन्, आप की प्रशस्त मनुष्य बनाने वाली रक्षा से (नृतमाभिरूती) श्रवणीयतम उपदेशों के द्वारा (श्रोमतेभिः) मनुष्योचित प्रशंसनीय कर्म का सेवन करे (नृवत् वामं वंसीमहि) ।

नृत्त- न. । (१) विलास ।

'हसो नारिष्टा नृत्तानि'

अ. ११.८.२४

(२) नाट्य ।

'नृत्ताय सूतम्'

वाज.सं. ३०.६

नृतमानः- नाचता हुआ ।

'नृम्णानि च नृतमानो अमर्तः '

ऋ. ५.३३.६

नृतिः-प्राप्ति - + नृ + क्तिन् ।

'नृतौ स्याम नृतमस्य नृणाम्'

ऋ. १०.२९.२, अ. २०.७६.२.

नृतु- (१) समस्त संसार को अपनी शक्ति से नचाने वाला ।

'तवत्यं नर्यं नृतो अप'

ऋ. २.२२.४, साम. १.४६६.

(२) सब का नेता, विश्वसंचालक ।

'ईशे कृष्टीनां नृतुः '

ऋ. ८.६८.७

नृतू - नृत् + कू = नृतू । अर्थ - (१) नर्तक, (२) नाई ।

'अधिपेशांसि वपते नृतूरिव
अपोर्णुते वक्ष उस्रेव वर्जहम्'

ऋ. १.९२.४

नाई जिस प्रकार नाना केशों को काट देता है अथवा नर्तक जैसे नाना रूप बदल लेता है, उसी प्रकार वह प्रभात बेला भी नाना प्रकार के रूपों के धारण करती है । उसी प्रकार पूर्ववयस में वर्तमान कन्या यो योग्य पुरुष की कामना करने वाली नववधू नाना आभूषणों को धारण करें । उदय होने वाली उषा जिस प्रकार अन्धकार निवारक प्रकाश के विनाशक घोर अन्धकार को (वर्जहम्) दूर कर देती है । और गाय दूध देने वाले थन भाग को विशाल रूप में प्रकट करती है उसी प्रकार नवयुवती भी वक्षस्थल को प्रकट करती है ।

नृधूत- (१) मनुष्यों से धूत अर्थात् अभिषिक्त या झकझोरा हुआ सोम ।

'नृधूतो अद्रिषुतो बर्हिषि प्रियः '

ऋ. ९.७२.४

नृपतिः- (१) यष्टाओं या यज्ञकर्त्ताओं का पालक-अग्नि ।

'त्वं नृणां नृपते जायसे शुचिः '

ऋ. २.१.१, वाज.सं. ११.२७, तै.सं. ४.१.२.५, मै.सं. २.७.२, ७६.११, नि. ६.१.

हे यष्टाओं के पालक अग्नि, तू मनुष्यों के द्वारा उत्पन्न किया जाता है ।

नृपती- द्वि.व. । (१) अश्विद्वय, (२) मनुष्य पति पत्नी, (३) विवाहित स्त्री पुरुष ।

'यो वां रथो नृपती अस्ति वोढा'

ऋ. ७.७१.४

नृपत्नी- (१) नेता पुरुषों का पालन करने वाली सेना, (२) नायक विद्वान् पति की पत्नी ।

'अभिनो देवीरवसा महः शर्मणा नृपत्नीः '

ऋ. १.२२.११.

नृपाण- (१) सब मनुष्यों की पालन करने में समर्थ ।

व्रजं कृणुध्वं स हि वो नृपाणः '

अ. १९.५८.४

(२) नृ + पा + ल्युट् = नृपाण । नरः योद्धारः पीयन्ते उदकवत् यत्र (जिसमें जल की तरह नर या योद्धा पीए जाते हैं । अर्थ है-संग्राम, (३) तलवार । (४) कूपतुल्य संग्राम

नृपाता- (१) मनुष्यों का पालक ।

'अवृकतमो नरां नृपाता'
ऋ. १.१७४.१०

नृपाय्य- (१) मनुष्यों और प्राणों के पालन करने योग्य, (२) मनुष्यों को मान्य ।
'वर्ती रुद्रा नृपाय्यम्'
ऋ. २.४१.७, वाज.सं. २०.८१
(३) नरों का पालन करने वाला ।
'वर्तिर्यातिं नृपाय्यम्'
ऋ. ८.९.१८ अ. २०.१४२.३
(४) मनुष्यों की रक्षा करने वाला राज्य, (५) मनुष्य मात्र को पालन करने वाला गृह ।

नृपीति- मनुष्यों का पालन ।
'अनाधृष्टो नृपीतये'
ऋ. ७.१५.१४

नृपेशस्- (१) वीर पुरषों से बने स्वरूप को धरने वाली (२) आत्मा को रूपवान् करने वाली वासनाएं ।
'नृपेशसो विदथेषु प्रजाता'
ऋ. ३.४.५

नृमणा- (१) मनुष्यों पर अनुग्रह करने वालाअग्नि (२) विद्यार्थियों में संलग्न मन अध्यापक
'तृतीयमप्सु नृमण अजस्रम्'
ऋ. १०.४५.१, वाज.सं. १२.१८, तै.सं. १.३.१४.५, ४.२.२.१, मै.स. २.७.९,८६.६, का.सं. १६.९, श.ब्रा. ६.७.४.३, आप.मं.पा. २.११.२१.
तृतीय अग्नि मनुष्यों पर अनुग्रहशील(नृमणा) अन्तरिक्ष लोक में (अप्सु) विद्युत् के रूप में उत्पन्न हुआ । अथवा,
विद्यार्थियों में संलग्नमन विद्वान् (नृमणा) कर्मप्रधान बाणप्रस्थाश्रम में (अप्सु) तृतीय जन्म ग्रहण करता है ।

नृम्णः- पु. । सेनालक्षणम् बलम्नृन् मनुष्यान् प्रति यत् विशेषतः नतम् प्रह्वीभूतम् उपनतम् प्राप्तम्लम् (मनुष्यों के प्रति विशेषतः आया बल) । अर्थ (१) सैनिक बल- (२) बल - दया. ।
'नृम्णस्य न मह्ना स जनास इन्द्रः'
ऋ. २.१२.१, अ. २०.३४.१, तै.सं. १.७.१३.२, मै.सं. ४.१२.३, १८६.५, का.सं. ८.१६, नि. १०.१०
हे असुरो या मनुष्यो, जो सैनिक बल के महत्व से जाने जाते हैं वही इन्द्र या परमेश्वर है । (३) योगबल, ।
'अनिमिषं नृम्णं पान्ति'
ऋ. ५.१९.२
जो प्रतिक्षण योगबल की रक्षा करते हैं वही इन्द्र या परमेश्वर है (४) धन-
'प्र वो महे मन्दमानायान्धसो
अर्चा विश्वानराय विश्वाभुवे ।
इन्द्रस्य वस्य सुमुखं सहोमहि
श्रवो नृम्णंच रोदसी सपर्यतः'
ऋ. १०.५०.१, वाज.सं. ३३.२३, नि. ११.९.
हे स्तोताओ, तुम महान् अन्न के देने वाले (महे अन्धेसः) मोदयुक्त (मन्दमानाय) या स्तोताओं से स्तूयमान, सभी विभूतियों से युक्त या सबके बनाने वाले (विश्वानराय) मध्यम देव के लिए स्तुति करो (प्रार्चा) । सायण के अनुसार 'मुझ इन्द्र को स्तुति करो' ऐसा अर्थ है । जिस इन्द्र का सुमहत् बल (सुमखं सहः) तथा महान् यश (महिश्रवः) तथा सैन्य बल की स्तुति करते हुए तुम्हें (नृम्णं च वः) द्यौ और पृथिवी अभिनन्दित करती हैं (सपर्यतः) ।

नृम्णवर्धन- (१) राष्ट्र धन और शक्ति को बढ़ाने वाला ।
'एष स्य ते तन्वो नृम्ण वर्धनः'
ऋ. २.३६.५, अ. २०.६७.६
(२) ऐश्वर्य वढ़ाने वाला पुत्र या प्रजा ।

नृमादन- (१) मनुष्यों को आनन्द देने वाला ।
'यज्ञश्रियं नृमादनम्'
ऋ. १.४.७, अ. २०.६८.७

नृवत्- (१) शरीर के प्राणों और रश्मियों से युक्त सूर्य, (२) इन्द्र, (३) जीव ।
'महां इन्द्रो नृवदा चर्षणिप्राः'
ऋ. ६.१९.१, वाज.सं. ७.३९, तै.सं. १.४.२१.१, मै.सं. १.३.२५, ३८.१२. का.सं. ४.८, ऐ.ब्रा. ५.१८.१४, कौ.ब्रा. २१.४,२६.१२, श.ब्रा. ४.३.३.१८, तै.ब्रा. ३.५.७.४.
परिचारकों से युक्त - (४) मनुष्योचित- दया ।
'नृवत्त इन्द्र नृतमाभिरूती'
ऋ. ६.१९.१०
(४) सैनिकादि अनेकों मनुष्यों से युक्त-दया.
'पुरुवीरस्य नृवतः पुरुक्षोः'
ऋ. ६.२२.३, अ. २०.३६.३

बहुत वीर वाले परिचारकों से युक्त एवं बहुत अन्न वाले धन का ।
(६) मनुष्यों का स्वामी ।
'भरद्वाजे नृवत इन्द्रसूरीन्'
ऋ. ६.१७.१४

नृवत्सखा- नायकों से युक्त सैन्यों का सखा अर्थात् परमसुहृत् ।
'नृवत्सखा सदमिदप्रमृष्यः'
ऋ. ४.२.५, तै.सं. १.६.६.४, ३.१.११.१, मै.सं. १.४.३,५१.२, का.सं. ५.६,३२.६.

नृवाहण -नायक पुरुषों को पहुंचाने वाला- रथ ।
'अर्वाञ्चमद्य यय्यं नृवाहणम्'
ऋ. २.३७.५, का.श्रौ.सू. १२.३.१३, आप.श्रौ.सू. २१.७.१७.

नृवाहसा- (१) मनुष्यों को देश देशान्तर पहुंचाने वाला ।
'शोणा धृष्णु नृवाहसा'
ऋ. १.६.२, अ. २०.२६.५, ४७.११,६९.१०, साम. २.८१९, वाज.सं. २३.६, तै.सं. ७.४.२०.१, मै.सं. ३.१६.३, १८५.७, तै.ब्रा. ३.९.४.३.

नृषद्- (१) राष्ट्र नायक जनों में प्राय ।
'ध्रुवसदं त्वा नृषदम् मनः सदम्'
वाज.सं. ९.२, श.ब्रा. ५.१.२.४
(२) नृषु नायकेषु सीदति इति (उत्तम व्यवहारों में पहुंचने वाला मनुष्य -दया. (३) बुद्धिमान्

नृषदः पुत्रः- (१) मनुष्यों के ऊपर विराजने वाले (२) मनुष्यों से अधिष्ठित राज्य का पुत्र या पुत्र के समान् रक्षक, (३) नृषद् का पुत्र कण्व ।
'उत कण्वं नृषद् पुत्रमाहुः'
ऋ. १०.३१.११.

नृषदन- (१) प्रमुख पुरुषों की बैठक या सभा (२) मनुष्य और प्रजाओं के विराजने का स्थान, (३) नेतृपद ।
'युजं वज्रं नृषदनेषु कारवः'
ऋ. १०.९२.७
(४) मनुष्यों के रहने योग्य स्थान ।
'अग्निर्ब्रह्मा नृषदने विधर्ता'
ऋ. ७.७.५

नृषह्य- (१) शत्रु वर्ग के नेता का पराजय, (२) मनुष्यों का हित ।
'उच्छ्वैत्रेयो नृषह्याय तस्थौ'
ऋ. १.३३.१४
और तथापि भूमि या पशु का इच्छुक (श्वैत्रेय) शत्रु वर्ग के नेता को पराजय के लिये खड़ा रहे ।
अथवा, और तो भी सूर्य या पृथ्वी पुत्र मेघ मनुष्यों के हित के लिए (नृषह्याय) आकाश में विराजता है ।

न्यृष्ट- (१) व्याप्त । नि + ऋष्ट ।
'गोभिरश्वेभिर्वसुभिर्न्यृष्टः'
ऋ. १०.१०८.७
(२) सबका आश्रय भूत ।
'कोशं न पूर्णं वसुना न्यृष्टम्'
ऋ. १०.४२.२, अ. २०.८९.२.
(३) पूर्ण ।
'इन्द्रं माता वीर्येणा न्यृष्टम्'
ऋ. ४.१८.५.

न्यृष्टे- द्वि.व. । नि + ऋष्टे । अर्थ (१) खूब, पूर्णत व्याप्त , (२) निश्चित स्वरूप को प्राप्त -दया. (३) द्यावा पृथिवी ।
'उभे ते अस्य वसुना न्यृष्टे'
ऋ. ३.५५.२०

नृषा- मनुष्यों का स्वामी सोम ।
'गोषा इन्दो नृषाअसि'
ऋ. ९.२.१०, साम. २.३९५,का.सं. ३५.६.

नृषाच् - मनुष्यों का समवाय बनाकर रहने वाला ।
'दूर उपब्दो वृषणो नृषाचः'
ऋ. ७.२१.२

नृषाच- ब.व. । ये नृन् सचन्ति समवयन्ति-मरुतः प्राणः (जो मनुष्यों को कर्म में संयुक्त करते हैं- प्राण) ।
(२) मनुष्यों का समवाय बनाने वाले ।
'स्वर्नृपाचो मरुतोऽमदन्नु'
ऋ. १.५२.९

नृषाता- नृ + साता । मनुष्यों को विभक्त करने वाला ।
'शूरो नृपाता शवसश्चकानः'
ऋ. ७.२७.१, साम. १.३१८, तै.सं. १.६.१२.१, मै.सं. ४.१२.३, १८५.१.

नृषाह्य- (१) नायकोचित शत्रुदमन कारी बल ।
'प्र नृषाह्याय शर्मणे'
ऋ. ८.९.२०, अ. २०.१४२.५.

(२) शूर वीरों से सह्य संग्राम ।
'स सूनुभिर्न रुद्रेभिः ऋभ्वा नृषाह्ये सासह्वां अमित्रान्'
ऋ. १.१००.५
वह पुत्रवत् प्रिय, शत्रुओं को रुलाने वाले, अति भयङ्कर विजय करने योग्य संग्राम में (नृषाह्ये) शत्रुओं को पराजित करने वाला (अमित्रान् सासह्वान्) ...

नृहा- मनुष्यों को मारने वाला ।
'आरे गोहा नृहा वधो वा अस्तु'
ऋ. ७.५६.१७

नेक्षण- न.। भोजन बनाते समय दाल आदि का चलाना । नेक्ष + ल्युट् ।
'सुग् दर्विर्नेक्षणमायवनम्'
अ. ९.६.१७

नेत्- अ. । (१) नहीं तो ।
'नेत् त्वा धृष्णु र्हरसा जर्हृषाणः'
ऋ. १०.१६.७, अ. १८.२.५८, तै.आ. ६.१.४.
(२) 'न' और 'इत्' -ये दोनों अनुपृष्ट होने पर एक साथ व्यवहृत होते हैं । किसी के द्वारा प्रश्न किए जाने पर प्रति वचन में इसका प्रयोग होता है । जैसे -'नचेत्' सुरां पिबन्ति (यदि सुरा न पीते हैं)
प्रश्न - तिष्ठन्ति गृहे वृषलाः? (घर में वृषल हैं ?)
उत्तर - तिष्ठन्ति (हैं)
प्र.- यदि तिष्ठन्ति किमिति नागच्छन्ति (यदि हैं तो आते क्यों नहीं ।
उन चेत् सुरां पिबन्ति (यदि सुरा न पीते हैं) ।

नेत्री- (१) नायिका, (२) मनुष्यों को काम में प्रवृत्त करने वाली उषा (३) सर्वश्रेष्ठ महिला ।

नेदीयः- अतिनिकट विद्यमान ।
'नेदीयसो वृषाकपे'
ऋ. १०.८६.२०, अ. २०.१२६.२०
(२) अन्तिक + ईयसु = नेदीयस् । निकटतर ।
'नेदीय इत् सृण्यः पक्वमेयात्'
ऋ. १०.१०१.३, अ. ३.१७.२, वाज.सं. १२.६८, तै.सं. ४.२.५.६, मै.सं. २.७.१२, ९१.१६, का.सं. १६.१२, श.ब्रा. ७.२.२.५, नि. ५ .२८.
पका हुआ अन्न हंसुआ या अंकुश से भी निकटतर आ जाए ।

नेदीयान्- (१) समीप रहने वाला ईश्वर ।

नेमः - (१) नियन्ता, न्यायशील, (२) यम नियम का पालक, (३) कुछ जन ।
'अदिन्नेम इन्द्र यन्ते अभीके'
ऋ. ४.२४.४.
(४) अन्न, (५) झुकने वाला, स्वल्प बल वाला प्रजाजन ।
'नहितेपूर्तमक्षिपत् भुवन्नेमानांवसो'
ऋ. ६.१६.१८, साम. २.५७, का.सं. २०.१४.
(६) अर्द्ध, आधा ।
'उत घानेमो अस्तुतः'
ऋ. ५.६१.८
(७) एक ।
'पचाति नेमो नहि पक्षदर्धः'
ऋ. १०.२७.१८
(८) नी + मन् = नेम । एक अव्यय । अर्द्ध, आधा । नेम अपनीतः अपभज्य नीतः, पृथक् कृतः(विभाग कर पृथक् किया हुआ और लाया हुआ नेम है) ।

नेमधितः- (१) आधे ऐश्वर्य को धारण करने वाला
'युध्यन्तो नेमधिता पृत्सुशूर'
ऋ. ६.३३.४
(२) संग्राम में प्रयुक्त बल ।
'नेमधिता न पौंस्या वृथे व विष्टान्ता'
ऋ. १०.९३.१३
(३) संग्राम में ।
'इन्द्रं नरो नेमधिता हवन्ते'
ऋ. ७.२७.१, साम. १.३१८,तै.सं. १.६.१२.१, मै.सं. ४.१२.३,१८४.१७, ४.१४.५, २२१.११, कौ.ब्रा. २६.१५, आश्व.श्रौ.सू. ३.७.११.

नेमन्- (१) लज्जा से विनीत कन्या ।
'तं गूर्तयो नेमन् इषः परीणसः'
ऋ. १.५६.२

नेमि- (१) सबको अपने सामने झुकाने वाला ईश्वर (२) सूर्य ।
'नेमिं नमन्ति चक्षसा'
ऋ. ८.९७.१२, अ. २०.५४.३, साम. २.२८१.
(२) चक्र पर , चढ़ाए जाने वाला लोहे का हाल ।

'अरान्ननेमिः परिता बभूव'
ऋ. १.३२.१५, मै.सं. ४.१४.१३, २३७.१२, तै.ब्रा. २.५.१.३, ८.४.३.
(३) अनुशासन ।
'अत्रा विनेमि रेषाम्'
ऋ. ८.३४.३, साम. २.११५८.

नेव- न + इव । नहीं, नतो, न.
'नेव मांसेन पीबसि'
अ. १.११.४

न्वेव- शीघ्र ही ।
'तमिन्वेव समानासमानम्
अभिक्रत्वा पुनती धीति रश्याः'
ऋ. ४.५.७
हे यजमान् , तू उसी (तम् इत्) सभी के लिये एकरूप (समानम्) आदित्य को उनके अनुरूप स्तुति से (समाना धीतिः) तथा पवित्र करने वाले कर्म या ज्ञान से (पुनती क्रत्वा) शीघ्र ही (न्वेव) प्राप्त कर (अभ्यश्याः) ।
उसी समय गुण कर्मों वाले पति को (तम् नु समानम्) समान गुण कर्मों वाली कन्या तू (समाना) कर्म से अपने आप को बुद्धिमती होती हुई (धीती) प्राप्त कर (अभ्पश्याः) ।

नेष्ट्रम् - (१) यज्ञ में नेष्ट्रा के समान अन्यों को सन्मार्ग में ले चलने वाला कार्य, (२) नेत्र, (३) अग्नि ।
'तवनेष्ट्रम् त्वमग्नित् ऋतायतः'
ऋ. २.१.२, १०.९१.१०
(४) पु.में । यज्ञ, (५) पुष्टिप्रद णिजिर् (शौच और पोषण अर्थ में)+ त्रन् = नेष्ट्र ।
'नेष्ट्रात् सोमं द्रविणोदः पिब ऋतुभिः'
ऋ. २.३७.३, नि. ८.३.
हे द्रविणोद नामक अग्नि, तू यज्ञ से (नेष्ट्रात्) सोम रस ऋतुओं के साथ पी ।
'उतनेष्ट्रात् अजुषत् प्रयोहितम्'
ऋ. २.३७.४.
हे इन्द्र, तूने नेष्ट्रा के यज्ञ से (नेष्ट्रात्) हितकारक अन्नरूप सोम या सेवन किया ।
(५) हवि का पुष्टि प्रद भाग -दया. । पुष्टि प्रद भाग से (नेष्ट्रात्) सेवन किया (अजुषत)- दया. ।
(६) पेष्ट्र (गत्यर्थक) + ष्ट्रन् = नेष्ट्र । नेता,
(७) सत्व का नामक सूर्य
'नेष्ट्रात् ऋतुभिरिष्यत'
ऋ. १.१५.९, वाज.सं. २६.२२.

नेष्ट्रा- नायक
'उत नेष्ट्रात् अजुषत प्रयोहितम्'
ऋ. २.३७.४

नेष्टा- (१) सब पदार्थों को शुद्ध करने वाला । णिजिर् + तृच् = नेष्टृ । प्रथमा ए.व. में रूप है- नेष्टा (२) विवेकी ।
'ग्नावो नेष्टः पिब ऋतुना'
ऋ. १.१५.३, वाज.सं. २७.२१
हे सब पदार्थों को प्राप्त करने की शक्ति वाले, हे सब पदार्थों को शुद्ध करने वाले तू- सत्य ज्ञान के बल पर आनन्द रस का पान कर ।
(३) यज्ञ स्थान, (४) सोम यज्ञ कराने वाले सोलह ऋत्विजों में एक प्रधान ऋत्विज्

नैगुतः- (१) निम्न, विनीत वाणी बोलने वाले शिष्य जनों का स्वामी, गुरु (२) नीची भूमि के शत्रुओं का स्वामी, निगुत + अण् - नैगुत
'षष्टिं सहस्रा नैगुतो वसूनि
ऋ. ९.९७.५३, साम. २.४५५.

नैघण्टुक - निघण्टु + अण = नैघण्टु । नैघण्टु + कप् = नैघण्टुक (१) देवता का नाम । किसी ऋचा में अप्रधान या दोनों (प्रधान ओर अप्रधान) नैघण्टुक देवता है ।
प्रत्येक ऋचा का एक प्रधान देवता होता है । उसके सिवा जो और गौण देवता है जिससे शब्द के निर्वचन में सहायता मिलती है, वह नैघण्टुक देवता है ।
'अश्वं न त्वा वारवन्तम्' में प्रधान देवता अग्नि है और अप्रधान देवता अर्थात् नैघण्टुक अश्व है ।
नदी नैघण्टुक देवता के रूप में वर्णित है । प्रधान देवता का पद शायद ही इसे मिला हो ।
वहुलमासां नैघण्टुकः वृतम् आश्चर्यमिव प्राधान्येन ।

नैचाशाखः- (१) नीचैः शाखः नीचाशाख (जिसकी वंश परम्परा नीच हो जाय) । नीची योनियों में उत्पन्न पुत्रादि को 'नैचाशाख' कहते हैं । नीच शाख + अण् =नैचा शाख ।
'नैचाशाखं मघवन् रन्धयानः'

ऋ. ३.५३.१४, नि. ६.३२.

हे इन्द्र, नीच योनि से उत्पन्न पुत्रादि का धन हमें दे या हमारे अधीन कर। कहा है- शूद्रावेदी पतत्यध (नैचाशाख धन पापपूर्ण होता है)।

नैतोशः- नितोश + अण् = नैतोश। नित्यवध करने वाला (नितरां तोशयति इति नितोशः) नितोश स्यापत्यं नेतोशः। नितोश का अपत्य ही नैतोश है (१) नैतोश नामक वधक।

'नैतोशेव तुर्फरी पर्फरीका'

ऋ. १०.१०६.६, नि. १३.५.

हे अश्विनी कुमारो, तुम दोनों नैतोश नामक वधक की तरह नाश करने वाले तथा शत्रुओं को विदीर्ण करने वाले हो।

न्यैरयत् - नि + ऐरयत्। अर्थ - चलाया।

'उतादः परुषे गवि
सूरश्चक्रं हिरण्ययं
न्यैरयद् रथीतमः'

ऋ. ६.५६.३, नि. २.६.

अतिशय रथों वाला या नेतृतम (रथीतमः) प्रेरक परमात्मा ने (सूरः) आदित्य के लिये (परुषे गवि) सुवर्ण मय कालचक्र (हिरण्ययं चक्रम्) चलाया (न्यैरयत्)।

नैर्ऋत- निऋति + अण = नैर्ऋत। अर्थ है - (१) पाप संम्बन्धी, अनाचार सम्वन्धी।

'चतुर्वीरं नैर्ऋतेभ्यः चतुर्भ्याः'

अ. १९.४५.५.

नैर्बाध्य- बाधा से रहित।

'नैर्बाध्येन हविषा'

अ. ६.७५.१

नैषाद- (१) निषाद या जंगली जाति का मनुष्य, (२) नीच धर्म से रहने वाला पुरुष, नि. + सद् + घञ् = निषाद्।

'ऋक्षीकाभ्यो नैषादम्'

वाज.सं. ३०.८, तै.ब्रा. ३.४.१.५.

विषाद + अण् = नैषाद्।

नो - अ.। नहीं

'नो यन्त्यधमन्तमः'

अ. ८.२.२४

'न नूनमस्ति नो श्वः'

ऋ. १.१७०.१, नि. १६.

न्योकस् - (१) नि + ओकस्। जिसका ओकस् अर्थात् निवास स्थान निश्चित हो, (२) दृढ़ दुर्ग का स्वामी।

'सुते सुते न्योकसे
बृहत् बृहत् एदरिः'

ऋ. १.९.१०, अ. २०.७१.१६.

शत्रु भी प्रत्येक अभिषेक में नियत स्थान बनाकर रहने वाले दृढ़ दुर्ग के स्वामी अपने से शक्ति में बड़े ऐश्वर्यवान् राजा और सेनापति के बड़े भारी बल का आदर पाता है।

ईश्वर के पक्ष में - सुखों का लिप्सु पुरुष प्रत्येक ऐश्वर्य की प्राप्ति में परमेश्वर के महान् बल की स्तुति करता है।

न्योकाः- (१) निश्चित निवास स्थान बनाकर रहने वाला।

'तवाहमस्मि सख्ये न्योकाः'

ऋ. ५.४४.१४, १५, साम. २.११७६,११७७.

न्योचनी- (१) गृह-प्रवेश के समय कन्या के ओढ़ने योग्य ओंढ़नी चादर या आभूषण।

'नाराशंसी न्योचनी'

ऋ. १०.८५.६, अ. १४.१.७.

(२) उत्तम सेविका, (३) उत्तम वस्त्र

न्योचर- नि + ओचर। शनैः शनैः जमते जाने वाला ज्वर

'बल्हिकेषु न्योचरः'

अ. ५.२२.५

नोदिव- न + उत् + इव। अर्थ न केवल।

'नोदिव दिवमस्पृशन्'

अ. ५.१९.१, तै.ब्रा. १.२५२.

नोधाः- (१) स्तुतिशील

'सद्यो भुवद् वीर्याय नोधाः'

ऋ. १.६१.१४, अ. २०.३५.१४.

(२) नोधा नामक ऋषि। नवनं स्तोत्रम् धारयति इति नोधा (जो स्तोत्र धारण करता है वह नोधा है। णु + ल्युट् = नवन् नवन् + धा + असुन = नोधस्।

'नोधा इवाविरकृतं प्रियाणि'

ऋ. १.१२४.४, नि. ४.१६.

उपाने नोधा ऋषि के समान अपना इष्टसाधन किया है या अपने उद्गीर्ण प्रकाश से लोगों का रूप प्रकाशित करती है।

आधुनिक अर्थ-नवधा, नव भागों में विभक्त

नोधा ऋषि ने देवता की स्तुति के लिए अनेकों मन्त्र बनाए। (३) नी + डो = नो, नो + धा + क्विप्। अर्थ- सेनानायक या सेनाध्यक्ष -दया.।

न्योषतम् - नि + ओषतम्। लोट् म.पु. द्वि.व.। अर्थ - इतना सन्तापित करो कि नीचे दबे रहे'
'पराश्रृणीतम् अचितो न्योषतम्'
ऋ. ७.१०४.१, अ. ८.४.१, का.सं. २३.११.

नौ - नुद् (प्रेरणार्थक) (अथवा नम (नवना) + डौ नौ। नुद् से डौ कर्म अर्थ में और नम् कर्त्ता अर्थ में होता है। प्रह्वीभवति नयति इति नौ (जो नवता है वह नौ है)। (१) नौका जल में नत होकर चलती है।
अथवा प्रणोतव्या -पारगमनाय प्रकर्षेण प्रेरयितव्या (पार जाने के लिये नाव प्रकर्ष से प्रेरित की जाती है अतः वह 'नौ' है) (२) हम दोनों में अस्मद् शब्द का सप्तमी द्विचवन में रूप।
'यज्ञन्योः कतरो नौ विवेद'
ऋ. १०.८८.१७, नि. ७.३०.
हम यज्ञ के नेताओं में कौन अधिक यज्ञ कर्म जानता है।
नौका के अर्थ में -
'इयर्ति वाचमरितेवनावम्'
ऋ. २.४२.१, ९.९५.२.

नौधस् - ब्रह्म वर्चस्, ब्रह्मतेज
तं श्यैतञ्च नौधसञ्च'
अ. १५.२.२६.

प

पंक्तिराधस् - (१) जिसका अन्त पंक्ति अर्थात् धर्मात्म समूह के लिए हो या सभी के लिए हो, (२) जो धर्मात्माओं का सेवक हो (३) धर्मात्मा या वीर पुरुषों का सिद्धकारक, (४) अक्षर पंक्ति का ज्ञाता विद्वान्।
'अच्छा वीरं नर्यं पंक्तिराधसम्
देवा यज्ञं नयन्तु नः'
ऋ.१.४०.३, सा.१.५६, वाज.सं. ३३.८९, ३७.७, मै.सं. ४.९.१,१२०. १०, श.ब्रा. १४.१.२,१५, तै.आ. ४.२.२,५.२.६,

पक्थ- (१) सुदास से लड़ने वाले दक्षजनों में एक। ये ही पक्थ इन दिनों पख्तून कहलाते हैं जिनमें अन्य वंशज भी शामिल हो गए हैं। अलिन, गन्धारि, वर्षाणि और भलानस भी आज पख्तूनों के रूप में मिलते हैं।
कण्व पुत्र सोभारि ने ऋ. ८.२२.१० में अश्विद्वय की प्रार्थना में पक्थ का नाम लिया है। पुनः ऋ.७.१८. ७. में वसिष्ठ भी पक्थ का वर्णन करते हैं।
(२) पाक करने योग्य-दिन
'पर्षत् पक्थे अहन्ना सप्त होतॄन्'
ऋ. १०.६१.१
(३) परिपक्व ज्ञान और परिपक्व उम्रवाला।
'आपक्थासो भलानसो भनन्त'
ऋ. ७.१८.७

पक्थदशव्रज- (१) दक्षमार्ग युक्त परिपक्व शरीर।
'यथा पक्थे दशव्रजे'
ऋ. ८.४९.१०

पक्वम्- पच् + क्त = पक्व। पका हुआ व्रीहि आदि। धान्य।
'नेदीयइत् सृण्यः पक्वमेयात्'
ऋ. १०.१०१.३, अ. ३.१७.२, वाज.सं. १२.६८, तै.सं. ४.२.५.६, मै.सं. २.७.१२, ९१.१६, का.सं. १६.१२, श.ब्रा. ७.२.२.५, नि. ५.२८.
पका अन्न हंसुआ या अंकुश से भी निकटतर आ जाय।

पक्वअज- (१) परिपक्व ज्ञानी, अजन्मा आत्मा, (२) परिपक्व बकरा- पाण्डरंग।
'अजः पक्वः स्वर्गे लोके दधाति'
अ.९.५.१८

पक्वक - परिपक्व ज्ञान वाला।
'कुहाकं पक्वकं पृच्छ'
अ. २०.१३०.६

पक्वा शाखा- (१) पकी हुई डाली (२) पुनःपुनः अभ्यस्त वेदशाखा।
'पक्वा शाखा न दाशुषे'
ऋ. १.८.८, अ. २०.६०.४, ७१.४

पक्तौदन- (१) राष्ट्र के क्षात्रबल का परिपाक करने वाला राजा (२) पकाया भात।
'पक्तौदनस्य सुकृतामेतु लोकम्'
अ. ११.१.१७

पक्ष- (१) परिग्रह अर्थ में प्रयुक्त भ्वादिधातु ।
'सपक्षन् महिषं मृगम्'
ऋ. ८.६९.१५, अ. २०.९२.१२

पक्ति- (१) परिपाक, (२) पकाना, (३) ज्ञान और तप की परिपक्वता ।
'आदित् पक्तिः पुरोडाशं रिरिच्यात्'
ऋ. ४.२४.५
(४) पकाने योग्य अन्न, बल, वीर्य, विद्या, ज्ञान, ।
'पचात् पक्तीरुत भृज्जाति धानाः'
ऋ. ४.२४.७
(५) पाक करने योग्य पदार्थ कार्य, (६) परिपक्व ज्ञान वाली संस्था ।
'अग्निमद्य होतारमवृणीतायं यजमानः पचन्पक्तीः पचन्पुरोडाशं बध्नन्निन्द्राय छागम्'
वाज. सं. २८.२३, वाज.सं. (का.) ३०.२.२३

पंक्ति- (१) एक वैदिक छन्द का नाम जिसमें पांच पद होते हैं . पंक्तिः पंचपदा । पंचपदाः परिणामस्य इति पंक्तिः (जिसका परिमाण पांच पद है वह पंक्ति छन्द) है । हरदत्त के अनुसार पद पाद का द्योदक है ।
पचन् + क्ति = पंक्तिः (अन् का लोप और चोः कुः से च् का क्)
(२) पांती, (३) परिपक्व या अभ्यस्त करने योग्य नाना कार्य ।
'पचन् पंक्तीरपिबः सोममस्य'
ऋ. ५.२९.११

पंक्तिश्छन्दः- (१) पंक्ति नामक एक वैदिक छन्द, (२) चालीस वर्षों तक ब्रह्मचर्य का पालक ।
'पंक्तिश्छन्द इहेन्द्रियम्'
वाज.सं. २१.१६, मै.सं. ३.११.११, १५८.७, का.सं. ३८.१०, तै.ब्रा. २.६.१८.२

पंक्तिराधाः- (१) सेना की पंक्तियों को वश में करने में समर्थ वीर पुरुष ।
'अच्छावीरं नर्यं पंक्तिराधसम्'
ऋ. १.४०.३, साम. १.५६, वाज.सं. ३३.८९, ३७.७, मै.सं. ४.९.१, १२०.१०, श.ब्रा. १४.१.२, १५. तै.आ. ४.२.२, ५.२.६

पक्ष- (१) कक्षागृह ।
'या द्विपक्षा चतुष्पक्षा'
अ. ९.३.२१.
(२) अपना ।
'पक्षेभिरपि कक्षेभिः'
ऋ. १०.१३४.७

पक्षत्- पक्षति (स्वीकार करता है, अपनाता है), 'पक्ष' धातु परिग्रहार्थक आदि है ।
'स पक्षन्महिषं मृगम्'
ऋ. ८.६९.१५, अ. २०.९२.१२

पक्षतिः- प्रथम पसली की हड्डी ।
'अग्नेः पक्षतिः'
वाज.सं. २५.४, तै.सं. ५.७.२१.१, मै.सं. ३.१५.४, १७८.१२, का.सं.(अश्व.) १३.११.

पक्ष्म- न (१) आंख की पपनी (पक्ष्मन्) (२) अपने पक्ष का ।
'पार्याणि पक्ष्माण्यवार्या इक्षवः'
मैं. सं. ३.१५.१,१७८.१, वाज.सं. २४.१

पक्षा- द्वि.व. (१) पक्षौ (दो पंख) । (२) आजू बाजू के दो सेना दल, (३) ग्रहण करने या अपनाने वाले वन्धुजन ।
'श्येनं पक्षेव वक्षतः'
ऋ. ८.३४.९
(४) दोनों पंख ।
'पक्षा वयो यथोपरि व्यस्मे शर्म यच्छत'
ऋ. ८.४७.२

पक्ष्या - (१) पक्षों का हितकरने वाली भूमि, विद्यार्थियों का हित करने वाली विद्या (२) ग्रहण करने वाले ।
'सापक्ष्या नव्यमायुर्दधाना'
ऋ. ३.५३.१६

पक्षिणी- (१) पक्षों से युक्त आयुध ।
'परिहेतिः पक्षिणीनो वृणक्तु'
ऋ. १०.१६५.२, अ. ६.२७.२

पक्षिणीहेतिः - (१) पक्षों वाली सेना ।
'हेतिः पक्षिणी न दभात्यस्मान्'
ऋ. १०.१६५.३, अ. ६.२७.३.

पक्थी- (१) परिपाक करने वाली (२) तेजस्वीपुरुष ।
'दभीतिरिध्मभृति पक्थ्यर्कै'
ऋ. ६.२०.१३

पक्षीप्लव - (१) पक्षों या पतवारों वाला जहाज, (२) वाम और दक्षिण पार्श्वों से युक्त शरीर ।

'युवमेतं चक्रथुः सिन्धुपुप्लवम्
आत्मन्वन्तं पक्षिणं तौग्र्यायकम्'
ऋ. १.१८२.५

पचत्- (१) पाचन करने वाला, (२) वीर्य, विद्या और बल को परिपक्व करने वाला (२) पाक करने वाला।
'यः सुन्वन्तमवति यः पचन्तम्'
ऋ. २.१२.१४, अ. २०.३४.१५

पचतः- (१) परिपक्व कर्म करने वाला, (२) पाक करने वाला (३) आत्मा को साधना द्वारा पचाने वाला मुमुक्षु।
'मुषायद् विष्णुः पचतं सहीयान्'
ऋ. १.६१.७, अ. २०.३५.७
(४) परिपक्व किया हुआ।
'पुरोडा अग्ने पचतः'
ऋ. ३.२८.२, आश्व. श्रौ.सू. ६.५.२५, नि. ६.१६.
(५) परिपाक या पीड़न करने का साधन।
'वायुष्टा पचतैरवतु'
वाज.सं. २३.१३, श.ब्रा. १३.२.७.२.

पचता- (१) पच् + अचत् = पचत। अर्थ है- पक्व। विशेषण पद होकर ब.व. में प्रयुक्त है, पकाये गए या परिपक्व।
'चनो दधिष्व पचतोत सोमम्
ऋ. १०.११६.८, नि. ६.१६.
हे इन्द्र या विद्वन्, इन परिपक्व अन्नों या फलों को पेट में धारण करें (पचता चनो दधिष्व) और सोमरस या दुग्ध को पीयें।
पुनः-
'मेदस्तः प्रतिपचतागृभीत'
वाज.सं. २१.६०,
मेघ के प्रदेश से पकाए हुए पशु को प्रतिगृहीत किया।
पुनः-
'पुरोडा अग्ने पचतः'
ऋ. ३.२८.२, आश्व. श्रौ.सू.६.५.२५, नि. ६.१५.
'तुभ्यं वा घा परिष्कृतः
तं जुषस्व यविष्ठ्य'
ऋ. ३.२८.२.
हे युवतम, या दुर्ग के मत से, मिश्र पितृसम अर्थात् मिलाने वालों में श्रेष्ठ अग्नि, पुरोडाश पका हुआ है (पुरोडाश पचतः) वह तेरे लिए अग्नि में परिष्कृत किया गया है। (तुभ्यं परिष्कृतः वा घ), तू उस पुरोडाश को खा (तं जुषस्व)।
अन्य अर्थ- हे युवा के समान वसिष्ठ विद्वान् (यविष्ठ्य अग्ने) पकाया हुआ पुरोडाश आप के लिए परिष्कृत किया गया है (पुरोडाशः पचतः)। उसका सेवन कीजिए।

पचत्य- (१) पचने में उत्तम, सुपाच्य अन्न।
'पुरोडाशं पचत्यम्
'जुषस्वेन्द्रा गुरस्व च'
ऋ. ३.५२.२

पचन्- (२) विद्या और बल का परिपाक करने वाला।
यः सुन्वन्तम् अवति यः पचन्तम्'
ऋ. २.१२.१४, अ. २०.३४.१५

पज्र- (१) युद्ध-सा. (२) उपार्जन कर्म-दया.।
'इन्द्रो अश्रायि सुध्यो निरेके
वज्रेपु स्तोमो दुर्यो न यूपः'
ऋ. १.५१.१४.
इन्द्र द्वार पर खड़े यूप की तरह शोभनकर्मा यजमानों या विद्वानों के निर्धन होने पर सेवा करते हैं जो इन्द्र युद्धों में (पज्रेषु) स्तोम या स्तोत्र की तरह निश्चल या प्रधान हो खड़े रहते हैं - सा.। राजा सन्देह स्थलों में विद्वानों का आश्रय लें तथा उपार्जन कर्मों में (पज्रेषु) प्रशस्त द्वारस्थ खंभे की तरह (दुर्यो न यूपः) घोड़ों, गायों, रथों तथा धनों से युक्त होकर ही नियामक राजा (प्रयन्ता इन्द्रः) समान ऐश्वर्यों को प्राप्त करता है - दया.
(३) पाप से जीर्ण (पापेन जीर्णः) आजकल का 'पाजी' शब्द का 'पज्र' से साम्य विचारणीय है।
(४) प्रसिद्ध। (५) प्रभूत

पज्रहोपिणा-द्वि.व.- (१) प्रार्जित होषिणौ प्रसिद्ध यागौ-दुर्ग। प्रसिद्ध याग-वाले (२) प्रसिद्ध स्तोत्रौ -सा. (प्रसिद्ध स्तोत्र वाले)। प्रज्र + होष + इनि = प्रज्रहोपिन्। द्वि.व. में पज्रहोषिणा। प्रसिद्धस्तोत्र वाले इन्द्र और अग्नि।
'जोषवाकं वदतः पज्रहोपिणा न देवा भसथश्चन'
ऋ. ६.५९.४, नि. ५.२२.

हे प्रसिद्ध स्तोत्र वाले इन्द्र और अग्नि (पज्रहोषिणादेवा), जो अविज्ञातमलीन बात बोलते हैं उनका सोमरस तुम कदापि ग्रहण नहीं करते ।

इन्द्र और अग्नि यज्ञ के प्रचुरतम भाग के भागी हैं । यदिन्द्रश्च अग्निश्च भूयिष्टभाजौ देवानां तस्मात् ब्राह्मणश्च राजा च भूमिष्ट भाजौ मनुष्याणाम् ।

पज्र का अर्थ प्रभूत है और होष का अर्थ 'याग' प्रभूतः होषः अनयोरिति प्रभूत होषौ- पज्रहौषौ प्रभूत यागौ ।

पज्राः- (१) अपने धन को भोग प्रधान पांपों या विलासों में लगाने वाले व्यसनी जन ।

'येत्वा देवो स्रिकं मन्यमानाः
पापा भद्रमुपजीवन्ति पज्राः'

ऋ. १.१९०.५.

पज्रा- पज्र + टाप् = पज्रा । अर्थ- (१) व्यापने वाली विद्युत, (२) गन्त्री , जाने वाली या बलवती-स्त्री ।

'शुभे निमिश्लां विदथेषु पज्रां'

ऋ. १.१६७.६

पज्रिम- पद् + रक् = पद्र = पज्र, पज्र + घ = पज्रिय । अर्थ (१) पदों में प्रसिद्ध होने वाला (२) ज्ञान प्राप्त करने के मार्ग में विद्यमान, (३) गतिशील कक्षीवान् नामक मुख्यप्राण (४) आकाश में गति करने वाला -सूर्य ।

'युवं नरा स्तुवते पज्रियाय
कक्षीवते अरदतं पुरन्धिम्'

ऋ. १.११६.७

हे सन्मार्ग पर ले जाने वाले शिक्षक, विद्वान् पुरुष या अश्विद्वय, तुम दोनों यथार्थ विद्याभ्यास कराने वाले, ज्ञान प्राप्त करने के मार्ग में विद्यमान (पज्रियाय) अश्व के समान कसे कसाए सदा कटिबद्ध या कक्ष में यज्ञोपवीत धारण करने वाले या अपनी कक्षा में उत्तम रहने वाले (कक्षीवते) बहुत अधिक ज्ञान धारण करने में समर्थ बुद्धि प्रदान करते हो (पुरन्धिम् अरदतम्) ।

प्राण और अपान दोनों कक्षीवान् नामक मुख्य प्राण को देह रूप पुर के धारण पोषण का बल प्रदान करते हैं । अथवा, आकाश में गति करने वाले सूर्य को आकाश और पृथिवी ब्रह्माण्ड पालन का सामर्थ्य देते हैं ।

पञ्च - डुपचष पाके भ्वादिः; पचि विस्तार वचने चुरादिः, पचि व्यक्तिकरणे भ्वादि (परिणाम, विस्तार और व्यक्तिकरण अर्थों में पच् धातु का प्रयोग हुआ है) । अर्थ है- (१) परिणाम स्वरूप विस्तृत या व्यक्तरूप पञ्चभूत ।

'बृहतः परिसामानि षष्ठान् पञ्चाधिनिर्मिता'

अ. ८.९.२.

(२) पांच सहायक साधन-उपाय -देश और काल की अनुकूलताएं ।

'यद्वा पञ्चक्षितीनाम अवः'
तत्सु न आभर'

ऋ. ५.३५.२, कौ.ब्रा. २३.२.

(३) पांच संख्या ।

पञ्च अध्वर्यवः- (१) पांच अध्वर्यु अर्थात् यज्ञ कर्त्ता, (२) देह को न मरने देने वाले पांच इन्द्रियां ।

'अध्वर्युभिः पञ्चभिः सप्त विप्राः'

ऋ. ३.७.७

पञ्चऋतवः - (१) पांच ऋतु, (२) गतिमान पांच प्राण,

'गां पञ्चनाम्नी मृतवोऽनुपञ्च'

ऋ. ८.९.१५, तै.सं. ४.३.११.४, मै.सं. २.१३.१०, १६.१.५, का.सं . ३९.१०, पा.गृ.सू. ३.३.५.

पञ्चक्षितयः- (१) पाँचों क्षिति (२) जीवों के निवास पृथिवी आदि पञ्चभूत, (३) ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य, शूद्र और निषाद ।

'इन्द्रः पञ्चक्षितीनाम्'

ऋ. १.७.९. अ. २०.७०.१५

(४) पांचों राष्ट्र वासी प्रजाजन ।

'यस्य विश्वानि हस्तयोः
पञ्च क्षितीनां वसुः'

ऋ. १.१७६.३, ६.४५.८

पञ्चकृष्टयः- (१) पांचों मार्गों से खींचने वाले पांचों इन्द्रियाँ ।

'अच्छान्तसुः पञ्चकृष्टयः'

ऋ. १०.११९.६

पञ्चकृष्टिः पंचजन- (१) देव, मनुष्य, असुर, राक्षस और पितर अथवा (२) ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और, निषाद । यह शब्द पञ्चजन का ही

पर्याय है और वैदिक समाज व्यवस्था का परिचायक है ।

'आ दधिक्राः शवसा पञ्च कृष्टीः '
सूर्य इव ज्योतिषापस्ततान '

ऋ. ४.३८.१०, तै.सं. १.५.११, नि. १०.३१.

जिन दधिक्रा देवता या मेघों ने देव, मनुष्य, असुर, राक्षस, पितर या चार वर्ण और निषाद के लिए जल का विस्तार उसी प्रकार किया जिस प्रकार सूर्य ने प्रकाश का ।

पञ्चजनाः-ब.व.। (१) पांचजन, (२) ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य शूद्र और निषाद , (३) गन्धर्व पितर, देव, असुर और राक्षस (४) ब्राह्मण ग्रन्थों में देव, मनुष्य, गन्धर्व, अप्सरा, सर्प तथा पितर को 'पञ्चजना' कहा गया है ।

सर्वेषां वा एतत्पञ्चजनानाम् उक्थं देवमनुष्याणाम् गन्धर्वाप्सरसाम् सर्पाणाञ्च पितृणाञ्च-ऐ.ब्रा.

(५) पञ्चजन की यह कल्पना अत्यन्त प्राचीन है और ऐतिहासिकों एव समाज शास्त्रियों के लिए विचारणीय है । मानव समाज का पञ्चजन में विभाग ऋग्वेद में स्पष्ट है ।

औपमन्यव आचार्य चार वर्णों एवं निषाद् को ही पञ्चजनाः कहते हैं । (गन्धर्वाः पितरो देवा असुरा रक्षांसि इत्येके । चत्वारः वर्णाः निषादः पञ्चम इत्यौपमन्यवः)

(६) 'पाञ्चजनन्यया विशा' से भी 'पञ्चजनाः' शब्द प्रजामात्र का पर्याय है ।

'यत्पाञ्चजन्यया विशा
इन्द्रे घोषा असृक्षत
अस्तृणाद्बर्हणा विपः
अर्यो मानस्य सक्षयः ।

ऋ. ८.६३.७

जब पञ्चजनों के समुदाय रूपी प्रजाओं के साथ ऋत्विजों के द्वारा (पाञ्चजन्यया विशा) इन्द्र के अवर्षण करने पर स्तुतियाँ रची गई, (घोषाः असृक्षत) तब उन स्तुतियों से प्रसन्न हो समस्त जगत् का ईश्वर (अर्यः) मेघों का पिता या मेघों का क्षेप्ता (विपः) वह इन्द्र बड़े वज्र से (बर्हणा) मेघों को वर्षा के निमित्त मारा (अस्तृणात्) क्योंकि वह दर्प, बल और वीर्य का निवास (मानस्य क्षयः) है (७) यास्क ने भी 'मनुष्य' के पर्याय 'पञ्चजन ' की गणना की है । पांच उत्पन्न होने वाले तत्व ।

(८) इन पञ्चजनों को ही अदिति भी कहा गया है ।

'विश्वेदेवा अदितिः पञ्चजनाः '

ऋ. १.८९.१०, अ. ७.६.१, वाज.सं. २५.२३

पञ्चदश - (१) राष्ट्र के १५ अंगों पर शासक-मुख्यराजा, ।

'अन्तर्यामात् पञ्चदशः '

वाज.सं. १३.५५, तै.सं. ४.३.२.१, मै.सं. २.७.१९, १०४.४, का.सं. १६.९, श.ब्रा. ८.१.१८.

(२) पन्द्रहवां, (३) आत्मा, (४) तेज स्वरूप सूर्य

'पञ्चदिशः पञ्चदशेन क्लृप्ताः '

अ. ८.९.१५, तै.सं. ४.३.११.४, मै.सं. २.१३.१०, १६१.६, का.सं. ३९.१०, पा.गृ.सू. ३.३.५.

(५) राज्य के १४ विभागों के ऊपर पन्द्रहवां राजा है ।

'क्षत्रं पञ्चदशः '

ऐ.ब्रा. ८.४.

'अहं पक्ता पञ्चदशस्ते अस्मि '

अ. ११.१.१९

(६) दसइन्द्रियगत प्राण और पंच प्राण, अपान, उदान व्यान और समान ।

'उक्ष्णो हि मे पञ्चदश
साकं पचन्ति विंशतिम् '

ऋ. १०.८६.१४, अ. २०.१२६.१४

(७) पन्द्रहवें पद पर स्थिपूर्णन्द्र

'तीव्रं सुतं पञ्चदशं निषिञ्चम् '

ऋ. १०.२७.२

(८) चन्द्रमा ।

'चन्द्रमा वै पञ्चदशः । एष हि
घपञ्चदश्यामपक्षीयते पञ्चदश्यामापूर्यते '

तै.सं. १.५.१०.५

'चतुर्दश ह्येवैतस्यां
करुकराणि वीर्यं पञ्चदशम् '

गो.ब्रा. २५.३

पञ्चदशाक्षर - (१) मेरु दण्ड के १४ मोहर और उनमें व्यापक पन्द्रहवां वीर्य मिलाकर १५ का समूह यह मेरुदण्ड, (२) राष्ट्र के १५ विभागों का अध्यक्षः (३) दसइन्द्रियाँ और ५ प्राण.

'आदित्याः पञ्चदशाक्षरेण पञ्चदशम् '

वाज.सं. ९.३४

पञ्चदशानि उक्था- (१) छन्दों की दृष्टि से १५ प्रकार के सूक्त ।

'सहस्रधा पञ्चदशान्युक्था '

ऋ. १०.११४.८, ऐ.आ. १.३.८.६.

(२) देह में १५ अंग या उक्थ-५ कर्मेन्द्रियां और ५ ज्ञानेन्द्रियां और पञ्चभूत हैं । ब्रह्म के अनन्त होने से वेदवाणी भी अनन्त हैं और ज्ञानवती हैं । प्रति देह में वही ब्रह्म यज्ञ का स्वरूप है । वेदिगत यज्ञ तो उसका प्रतिनिधि मात्र है ।

'सहस्रधा पञ्चदशान्युक्था
यावद् द्यावापृथिवी तावदित् तत्
सहस्रधा महिमानः सहस्रं
यावद् ब्रह्म विष्ठितं तावती वाक्'

ऋ. १०.११४.८

पञ्चदिशः- (१) पांच दिशाएं (२) शरीर की पाँच ज्ञानेन्द्रियां ।

'पञ्चदिशाः पञ्चदशेन क्लृप्ताः '

अ. ८.९.१५

पञ्च दोहाः- पांच प्राण के पांच ग्राह्य विषय, (२) पांच प्रकृति के विकार भूत पञ्चभूत की पांच तन्मात्राएं-गन्ध आदि ।

'पञ्चव्युष्टीरनु पञ्चदोहाः '

अ. ८.९.१५

पञ्चधा- (१) पांचों प्रकारों के प्राणों को धारण करने वाला, (२) पांच गुणा ।

'सरस्वती तु पञ्चधा '

वाज.सं. ३४.११

पञ्चधनेवः - पांच ज्ञानेन्द्रिय रूप धेनुएं ।

'पञ्चास्मै धनेवः कामदुघा भवन्ति '

अ. ९.५.२५

पञ्चजन् - पांच की संख्या । पञ्च पक्तासंख्या स्त्रीनपुंसकेवविशिष्टा । पञ्चपृक्त अर्थात् मिली हुई संख्या है । और स्त्रीलिंग, पुल्लिंग तथा नपुंसक लिंग का प्रयोक एक सा है । जैसे -पञ्चस्त्रियः, पञ्चपुरुषाः, पञ्चकुलानि

पञ्चनद्यः - (१) दृशद्वती, शतद्रु, चन्द्रभागा, विपाशा और इरावदी नामक पांच नदियां-उवट (२) पांचों समृद्ध प्रजाएं -ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और निषाद ।

(३) इन्द्रिय नलिकाओं में बहने वाली पांच प्रकार की वृत्तियां ।

'पञ्चनद्यः सरस्वतीम्'

वाज.सं. ३४.११.

पञ्चनवानिवस्त्रा - (१) पांच प्रकार के नए वस्त्र, (२) पांच कोश ।

'पञ्चरुक्मा पञ्चनवानि वस्त्रा '

अ. ९.५.२५

पञ्चनाम्नीगौः- (१) पांच नाम वाली गौ, (२) अध्याय में चितिशक्ति, (३) गन्धादि पांच गुणों के नाम धारण करने वाली पृथ्वी या आदित्य या गौ ।

'गां पञ्चनाम्नीमृतवोऽनुपञ्च '

अ.. ८.९.१५

पञ्चपदानि- (१) सीढ़ी के पांच पगदण्ड, (२) योग की पांच भूमियां या पांच यम ।

'पञ्चपदानि रूपो अन्वरोहम् '

ऋ. १०.१३.३

पञ्चदशवः-गौ, अश्व, पुरुष, अज और अवि (भेड़)

'तवेमे पञ्चशवोविभक्ताः
गावो अश्वाः पुरुषाः अजावयः '

अ. ११.२.९

पञ्चप्रदिशः- (१) पांच दिशाएं (२) गुरु आदि पांच शिक्षक-माता, पिता गुरु, आचार्य और सुहृद

'या देवीः पञ्च प्रदिशः '

अ. ११.६.२२.

(३) आत्मा के अधीन पांच इन्द्रियां , (४) राजा के अधीन पांच प्रजाएं ।

'तवेमाःपञ्च प्रदिशो विधर्ममणि '

ऋ. ९.८६.२९

'दुह्रां मे पञ्चप्रदिशः '

अ. ३.२०.९

(५) पांच विद्वत्समितियाँ ।

'त्वामिमाः प्रदिशः पञ्च देवीः '

अ. ३.४.२

पञ्चपाद- (१) पांचपैरों वाला बच्चा ।

'पञ्चपादादनङ्करेः '

अ. ८.६.२२

(२) पांच ऋतु सूर्य के पांच पाद-या चरण हैं, (३) ईश्वरीय शक्ति के पांच पाद अन्न, प्राण, मन, विज्ञान और अहंकार, (४) पञ्च प्राण पांच

पाद हैं ।
'पञ्चपादं पितरं द्वादश्यकृतिम्'
अ. १.१६४.१२, अ. ९.९.१२.
(५) सूर्य, (६) संवत्सर जिसके पांच चरण– क्षण, मुहूर्त, प्रहर, दिवस, पक्ष या हेमन्त, शिशिर को एक मानकर पांच ऋतुएं ही पांच चरण हैं । (६) ज्ञान करने के पांच साधनों का स्वामी आत्मा ।

पञ्चप्रियाः– पञ्चमहामृत ।
'प्रियं प्रियाः समविशन्त पञ्च'
ऋ. १०.५५.२

पञ्चभिः पराङ् – पांचों से अर्थात् पांच बहिर्मुख प्राणों से बाहर की ओर या पञ्चभूतों के बाहर की ओर ।
'पञ्चभिः पराङ् तपस्येकयार्वान्'
अ. १७.१.१७

पञ्चमानवाः – (१) पांच प्रकार के मनुष्य ।
'यथा यमाय हर्म्यम्
अपवन् पञ्चमानवाः'
अ. १८.४.५५, तै.आ. ६.६.२.
'तवेमे पृथिवि पञ्चमानवाः'
अ. १२.१.१५
(२) मानव जाति सम्बन्धी वसन्त आदि पांच ऋतुएं (३) पांच मानव अर्थात् शरीर गत प्राणों के समान समष्टि में पांच तन्व ।
'त्रयोदश भौवनाः पञ्चमानवाः'
अ. ३.२१.५

पञ्चयाम– पांचयमों वाला शरीर, देह के नियम में रखने वाले प्राण, अपान, व्यान, उदान और समान के कारण शरीर पञ्चयाम है ।
'पञ्चयामं त्रिवृतं सप्ततन्तुम्'
ऋ. १०.५२.४, १०.१२४.१
(२) देह में पांच इन्द्रियों के समवाय से करने योग्य यज्ञ ।

पञ्चरश्मि– (१) पांच प्रकार की ऋतूत्पादक सूर्य किरणों से युक्त, संवत्सर, (२) प्राण, अपान उदान, व्यान और समान इन पांच प्रकार की प्रवर्तक शक्तियों से युक्त अथवा नाक, कान, त्वचा, आंख और रसना इन पांच ज्ञान प्रकाशक किरणों से युक्त शरीर ।
'तं जिन्वथो वृषणा पंचरश्मिम्'
ऋ.२.४०.३, मै.सं. ४.१४.१, २१५.२, तै.ब्रा. २.८.१.५.

पंचरात्रः– (१) पांच दिनों में समाप्त होने वाला यज्ञ ।
'चतूरात्रः पञ्चरात्रः'
अ. ११.७.११

पंचर्तु –पांच ऋतुएं । पञ्चर्तु रूप में संवत्सर की स्तुति की गई है । पंच + ऋतु= पंचर्तु । 'पञ्चर्तवः संवत्सरस्य' ऐसा ब्राह्मण ग्रन्थों में आया है । हेमन्त और शिशिर को एक मानकर (हेमन्तशिशिरयोः समासनम्) पांच ही ऋतुएं मानी गई हैं ।
'पञ्चारे चक्रे परिवर्तमानेः
तस्मिन् आतस्थुः भुवनानि विश्वा ।
तस्य नाक्षः तप्यते भूरिभारः
सनादेव न शीर्यते सनाभिः'
ऋ. १.१६४.१३, अ. ९.९.११, नि. ४.२७.

पंचवर्धयन्ती (१) पांच ज्ञानेन्द्रियों को बढ़ाती हुई वाणी (२) ब्राह्मणादि तथा निषाद इन पांचों को बढ़ाने वाली ।
(३) पिता, श्वसुर, भाई, देवर, और पुत्र पांचों को बढ़ाने वाली स्त्री ।
'पंच जाता वर्धयन्ती
वाजे वाजे हव्याभूत्'
ऋ. ६.६१.१२

पंचवृष– (१) पांच प्राणों से युक्त आत्मा ।
'यदि पंच वृषोऽसि सृजारसोऽसि'
अ. ५.१६.५

पंचरुक्मा – (१) पांच रुचिकर, सुवर्ण रूप पांच प्रकार के भोग्य पदार्थ, (२) पांच रोचमान इन्द्रियां ।
'पंचरुक्मा पंचनवानि वस्त्रा'
अ. ९.५.२५

पंचवासांसि – (१) पांच वस्त्र, (२) पांच आच्छादक कोश ।
'वर्म वासांसि तन्वे भवन्ति'
अ. ९.५.२६

पंञ्चवाही – पांचों प्राणों और पंचभूतों को वहन करने वाला परमात्मा या आत्मा ।
'पञ्चवाही वहत्यग्रमेषाम्'
अ. १०.८.८

पञ्चव्राताः- पांच प्रकार के मनुष्य संघ ।
'गिरायदी सबन्धवः
पञ्चव्राता अपस्यवः'
ऋ. ९.१४.२

पञ्चव्युष्टी- (१) पांच प्राण, (२) पांच प्रकृति के विशेष विकार पञ्चभूत ।
'पञ्चव्युष्टीरनु पञ्चदोहाः'
अ. ८.९.१५, तै.सं. ४.३.११.४ मै.सं. २.१३.१०, १६१.५, का.सं. ३९.१०, पा.गृ.सू. ३.३.५.

पञ्चशल - (१) सन्ताप करने वाले सर या शर (२) पञ्च प्राणों का कष्ट ।
'इत् त्वाहार्षं पञ्चशालादथो दशशलादुत'
अ. ८.७.२८

पञ्चसंदृशः- (१) पांच देखने वाली इन्द्रियां, (२) पांचों प्रकार के सम्यक् दृष्टिवाले तत्वज्ञ विद्वान्, (३) अच्छी प्रकार दिखलाने वाली पांचों प्रकार के प्रकाशक अग्नि (४) चार वेद और पांचवां आत्मानुभव, (५) निषाद सहित पांच वर्ण ।
'षडस्तभ्ना विष्टिरः पञ्च संदृशः'
ऋ. २.१३.१०,

पञ्चस्वसारः - पाचों प्रजाएं ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य शूद्र, एवं चण्डाल ।
'द्विर्यं पञ्च स्वयशसं
स्वसारो अद्रिसंहतम्'
ऋ. ९.९८.६, साम. २.६८०.

पञ्चहोता - पाचों प्राणों द्वारा गृहीत ज्ञान को अपने में लेने वाली वाणी, (२) जिस वाणी को पांच जन स्वीकार करें, ।
'पृषद् योदिनः पञ्चहोताश्रृणोतु'
ऋ. ५.४२.१

पञ्चहोतारः- (१) ऋत्विक् आदि पांच होता, (२) पांच राजपद को धारण करने वाले अधिकारी, (३) देह के पंच होता-प्राण, अपान, व्यान, उदान और समान ।
'त्रिनोन यान् पञ्चहोतृन् अभिष्टये'
ऋ. २.३४.१४.

पंचाक्षर- (१) अविनाशी पंचभूत रूपी पांच सामर्थ्य (२) वायु के पांच अक्षय-स्वाभाविक उत्क्षेपण, अवक्षेपण, आकुञ्चन, प्रसारण और गमन रूप पांच कर्म ।
'पूषा पञ्चाक्षरेण पञ्चदिश उदजयत्'
वाज.सं. ९.३२.

पञ्चाङ्गुरि- (१) पाचों अंगुलियाँ जोड़कर शिकार करने वाला ।
'यस्त आस्यत् पञ्चाङ्गुरिः'
अ. ४.६.४

पञ्चापूप- पञ्च + अपूप ' (१) पांच मालपूए, (२) पांच विषयभोगों से युक्त भोक्ता ।
'पञ्चापूपं शितिपादम्'
अ. ३.२९.४,५

पञ्चार- पञ्च + अर = पञ्चार । (१) पांच ऋतुओं का संवत्सर, ऋतु ही अर मानी गई है । छः ऋतुओं को 'षडर' कहा गया है । पञ्चार चक्रे परिवर्तमाने
'तस्मिन् आतस्थु र्भुवनानि विश्वा
तस्य नाक्षस्तप्यते भूरिभारः
सनादेव नशीर्यते सनाभिः ।'
ऋ. १.१६४.१३, अ. ९.९.१०, नि. ४.२७.
पांच ऋतुओं के अर वाले बार-बार आने वाले उस संवत्सर नामक चक्र में (परिवर्तमाने तस्मिन्पञ्चारे चक्रे) सभीजीवस्थित हैं (भुवनानि आतस्थुः) उस काल चक्र में वर्तमान संवत्सर नामक अक्ष (तस्य अक्षः) प्रभूतभार वाला होंने पर भी (भूरिभारः) पीड़ित या भग्न नहीं होता (न तप्यते) तथा वह चिरन्तन अक्ष (सनात् एव) समान नाभि या सदा एक सी नाभिवाला होंने के कारण या सूर्य रुपी नाभि पात्र (सनाभि) कभी शीर्ण नहीं होता (नशीर्यहि) ।

पञ्चार चक्र - (१) पांच तत्व रूप अरों वाला चक्र, (२) संवत्सर, परिवत्सर, इदावत्सर और अनुवत्सर इन पांच वर्षो के रूप में पांच अरों से युक्त काल चक्र, (३) पांच प्राणमय पांच अरों से बना चक्र -कर्त्ताआत्मा ।
'पञ्चारे चक्रे परिवर्तमाने'
ऋ. १.१६४.१३, अ. ९.९.११, नि. ४.२७.

पञ्चाविः- (१) पांचों प्राणों एवं पांचों इन्द्रियों को वश में करने में समर्थ ।
'पञ्चाविर्वयो गायत्रीछन्दः
वाज.सं. ४.१०
(२) ढाई वर्ष का बैल ।

'पञ्चाविश्च में पञ्चावी च मे '
वाज.सं. १८.२६

पञ्चाविःगौः- षण्मास कालोऽविः (छः महीनों का काल अवि है) । अतः पञ्चअवि ढाई वर्ष हुआ । अर्थ ढाई वर्ष का बैल ।
'पञ्चाविर्गौ वयोदधुः '
वाज.सं. २१.१४, मै.सं. ३.११.११,१५८.३, का.सं. ३८.१०, तै. ब्रा. २.६.१८.२.

पञ्चावी- ढाई वर्ष की गाय ।
पञ्चाशत् - पचास ।
'आ पञ्चाशता सुरथेभिरिन्द्रा'
ऋ. २.१८.५

पञ्चोक्षणः- पञ्च + उक्षणः । अर्थ- (१) पांच प्राण जो सुख देने वाले हैं । (२) अग्नि, वायु, मेघ, विद्युत् और सूर्य मण्डल का प्रकाश-ये पांच जल बरसाने वाले पंचोक्षण हैं. -दया. (३) राजसभा के पांच नरश्रेष्ठ ।
'अमीये पंचो क्षणाः
मध्ये तस्थुः महोदिवः '
ऋ. १.१०५.१०
ये पांच जल बरसाने वाले अग्नि, वायु, मेघ, विद्युत्, और सूर्य-प्रकाश महान् आकाश में विराजमान हैं । अथवा, ये जो पांच प्राण हृदया काश में विराजमान हैं ।
(४) पृथिवी में अग्नि, अन्तरिक्ष में वायु, आकाश में सूर्य, दिशाओं में चन्द्रमा और आकाश में नक्षत्र-तैत्तिरीय (५) पृथिवी में अग्नि, अन्तरिक्ष में वायु, दूर आकाश में सूर्य, नक्षत्रों में चन्द्र और जलों में विद्युत्-शांखायन ब्रा. ।
(६) अग्नि, वायु, सूर्य, चन्द्र और विद्युत्-सा.

पञ्चोदन- (१) पांच प्रकार के विषयों का ज्ञान जिसके पांच प्रकार के ओदन अर्थात् योग हैं ।
'पञ्चौदनं पञ्चभिरङ्गुलिभिः '
अ. ४.१४.७

पञ्चौदन- (१) पांच ओदनों, पांच वीर्यों-पांच प्राणों से युक्त पुरुष ।
'यदा पञ्चा वतिष्ठन्ते ज्ञानानि मनसा सह
बुद्धिश्च न विचेष्ठते तामाहुः परमां गतिम् '
कठ उप. ६.१०
(२) अज-पांच प्राणों से युक्त आत्मा, (३) पांच प्राणों से युक्त बकरा - पाण्डुरंग । यह अर्थ भ्रमात्मक एवं अशुद्ध है . ओदन शब्द रूपक है ।
'पञ्चौदनं ब्रह्मणेऽजं ददाति '
अ. ९.५.११,१२

पट्- पा (पीना), स्पश् (बांधना), या स्पृश् (स्पर्श करना) + अटि = पट् । धातु का प आदेश होता है । अर्थ है- (१) पान, (२) स्पर्श, (३) बन्धन, (४) गुणों का ग्रथन (सोमपानम् गुणस्य अशनम्, बन्धनम्, स्पर्शनम्) ।
'एवा महोअसुर वक्षथाय
वम्रकः पड्भिरूप सर्पदिन्द्रम्
स इयानः करति स्वस्तिमस्मा
इषमूर्जं सुक्षितिं विश्वमाभाः '
ऋ. १०.९९.१२
वम्रकऋषि कहते हैं- हे बलवान् इन्द्र (असुर) इसी प्रकार से (एवम्) दूसरे कल्प में उत्पन्न वम्रक ऋषि ने (वम्रकः) स्तुति करने वाले महान् यजमान के लिये (वक्षथाय महः) सोमपानों या गुणगानों के द्वारा (पड्भिः) कल्पान्तरीण तुझी इन्द्र को (इन्द्रम्) उपसर्पण किया (उपसर्पत्) । इस प्रकार अनुसृत हो उसने (स इयानः) स्वस्त्ययन या कल्याण किया (स्वस्तिं करति) इस समय इस जन्म में वही वम्रक उसी तुझ इन्द्र को उन्हीं स्तुतियों से तेरा अनुसरण करता हूं- ऐसा समझ इस यजमान के निमित स्वस्त्यपन कर तथा अन्न एवं क्षीर आदि (इषं ऊर्जम्) तथा सुन्दर निवास स्थान (सुक्षितिम्) यह सब (विशम्) प्रत्यक्ष होकर तू दे (आभर) ।

पटर - (१) सूर्य, (२) आंख की पटर की इस शब्द से समानता विचारणीय है ।
'अर्वाङ् सुवर्णैः पटरे विभाति '
अ. १३.३.१६

पटूर- ऋग्वेद कालीन एक जनपद ।

पठर्वा- (१) पतत् अर्वा= पकर्वा (छान्दसठ और पृषोदरादिवत् सिद्ध) (२) पठतः ऋच्छति इति पठर्वा ।
अर्थ- (१) वेग से जाने वाले अश्वों का स्वामी सेनापति (२) पढने वाले विद्यार्थियों को प्राप्त होने वाला आचार्य ।
'याभिः पठर्वा जठरस्य मज्मना

अग्निर्ना दीदेन् चितइद्धो अज्मन्ना '
ऋ. १.११२.१७
जिन साधनों से भुक्त पदार्थों को अपने भीतर धारण करने वाले पेट की सब कुछ पचा लेने वाली भाग की तरह वीर तथा धर्मात्मा राजा सब भुक्त अर्थात् अधीन देशों को महान् बल से चमकाता है और जिन साधनों से सञ्चित काष्ठों में लगे चितागिन के समान जलते हुए संग्राम में वीर भटो को अपने तेज से भस्म करने वाला, पठन शील विद्यार्थियों को प्राप्त करने वाला आचार्य या वेग से जाने वाले अश्वों का स्वामी सेनापति ।

पड्गृभिः- पैर पकड़ने वाला ।
'अहं सव्याय पड्गृभिम रन्धयम् '
ऋ. १०.४९.५

पड् - पैर
'अत्राण्यस्मै पड्भिः संभरन्ति '
ऋ. १०.७९.२

पड्बीश- (१) घोड़ों कों पिछाड़ी से बांधना, (२) चरण आदि का बांधना, (३) वस्त्रादि क्रान्त का आच्छादन करना, (४) आचरण आदि का नियम बन्धन (५) पदाधिकार के योग्य नियुक्ति
(६) पैरों में बेड़ी
'अथो यमस्य पड्बीशात् '
ऋ. १०.९७.१६, अ. ६.९६.२, ७.११२.२, ८.७.२८, वाज.सं. १२.९०.
(७) पञ्ज में आजाना, (८) फांसे में फंसना ।
'मृत्योः पड्वीश आद्यति '
अ. १२.५ १५
(८) घोड़े के पैरों को अगाड़ पिछाड़ से बांधना ।
'यञ्च पड्वीशमर्वतः '
ऋ. १.१६२.१४, वाज.सं. २५.३८, तै.सं. ४.६.९.१, मै.सं. ३.१६.१, १८३.८, का.स. (अश्व.)६.५.
(९) पैरों को जकड़ देने वाला रोग ।

पणयः- (१) सर्व व्यवहारसाधक प्राण गण ।
'हता इन्द्रेण पणयः शयध्वे '
ऋ. १०.१०८.४
(२) व्यापारीगण ।

पणति- (१) पूजयति (पूजा करता है) 'पण' धातु व्यवहार तथा स्तुति अर्थ में प्रयुक्त होता है ।
(२) व्यवहार करता है ।

पण्डगः- चूतड़ो के बल सरकने वाला ।
'अस्त्रैणाः सन्तु पण्डगाः '
अ. ८.६.१६

पणिः - पणति व्यवहरति हि असौ (यह व्यवहार या व्यवसाय करता है) । पण् + इन् = पणिन् । अर्थ-व्यापारी पण् (पणन व्यवहार कर्म करना) + इ = पणि ।
'इन्द्रो विश्वां बेकनाटां अहर्दृश
उत क्रत्वा पणींरभि '
ऋ. ८.६६.१०, नि. ६.२६.
इन्द्र सभी दिन गिनने वाले सूदखोरों को (अहर्दृशः वेकनाटान्) और व्यापारियों को (पणीन्) कर्म से ही अभिभूत करते हैं ।
(२) पणि नामक असुर ।
'निरुद्धा आपः पणिनेव. गावः '
ऋ.१.३२.११, २.१७.
जिस प्रकार पणि असुर ने गाएं रोक रखी थीं उसी प्रकार जल अन्तरिक्ष में थमे हुए था ।
आधुनिक अर्थबाजार, कृपण, पापी
(३) कुव्यसनी, स्वार्थी
'तस्मिन् तं धेहि मां पणौ '
ऋ. ८.९७.२, अ. २०.५५.३
(४) देह में नमन व्यापार करने वाला प्राण ।
'अरोदयत् पाणि मागा अमुष्णात् '
ऋ. १०.६७.६, अ. २०.९१.६, मै.सं. ४.१४.५, २२२.६
(५) स्तुति योग्य प्रभु ।
'बडस्य.नीथा विपणेश्च मन्महे '
ऋ. १०.९२.३

पणेः भोजनम्- (१) उत्तम व्यवहार योग्य, स्तुतियों एवं उपदेश योग्य वेदज्ञान का पालन सामर्थ्य
(२) उत्तम व्यवहार कुशल सम्पन्न पुरुष ।
'सर्वेपणेः समविन्दन्त भोजनम् '
वे सभी स्तुतियोग्य उत्तम व्यवहार और उपदेश योग्य वेदज्ञान का पालन सामर्थ्य वाले हैं । अथवा, उत्तम व्यवहार कुशल सम्पन्न पुरुष के योग्य भोजन पाते हैं ।

पत् - जाना जाना, ।
'यः पत्यते वृषभोवृष्ण्यावान् '

ऋ. ६.२२.१, अ.२०.३६.१

पतङ्ग – (१) टिड्डी दल ।

'तर्दहै पतङ्ग है'

अ. ६.५०.२

(२) आत्मा ।

'पतङ्गो वाचं मनसाबिभर्ति'

ऋ. १०.१७७.२, तै.आ. ३.११.११, अश्वश्रौ.सू. ३.८.१, जै उप.ब्रा. ३.३६.१

(३) अति वेग से चलने वाला अश्व

'नासत्या भुज्युमूहथुः पतंगैः'

ऋ. १.११६.४, तै.आ. १.१०.३,

सदा सत्य विज्ञान वाले दो विद्वान् या अश्विद्वय समस्त राष्ट्र के पालक और भोक्ता स्वामी तथा भोग्ये ऐश्वर्य को (भुज्युम्) अतिवेग से चलने वाले अश्वों के कारण समान यन्त्र कलाओं से पार करें । अथवा,

नासिकागत प्राण अपान (नासत्या) वेग से चलने वाले अश्वों के समान मन सहित पांच इन्द्रियों से पार करते हैं ।

(४) अग्नि की ज्वाला से निकला ताप या स्फुलिग ।

(५) वेग से जाने वाला अश्वारोही (६) वाण ।

'तपूंसि अग्ने जुह्वा पतङ्गान्'

ऋ. ४.४.२. वाज.सं. १३.१०, तै.सं. १.२.१४.१, का.सं. १६.१५.(७) पतन पातनादि गुणों से प्रकाशित स्वयं गतिशील शील अन्यों का प्रेरक –अग्नि –दया. (८) परमेश्वर, (९) प्राण ।

'प्राणो वै पतङ्गः'

कौ.सू. ८.४.

'पंतन्निव हि अङ्गेषु
वाक् पतङ्गायधीयते'

ऋ. १०.१८९.३, अ. २०.४८.६ वाज.सं. ३.८. साम. २.७२८ आ.सं. ५.६, तै.सं १.५.३.१ मै.सं. १.६.१, ८५.११, श.ब्रा. २.१.४.२९.

पतत्रि– इतश्च ततश्च पतनशीलः पक्ष्यादि प्राणि जातम् (इधर उधर पतनशील पक्षी आदि जीव)। पतति अनेन इति पतत्रम् (इससे पतन करता है अतः अतः यह पतत्र या पंख है) ।

पत् + त्रन् = पतत्रम् । पतत्रमस्य अस्ति इति पतत्री (इसे पंख है अतः यह पतत्री है) । पतत्र + इन् (मतुप् अर्थ में) = पतत्रिन् ।

अर्थ– (१) पक्षी ।

'स पतत्रीत्वरं स्था जगत् यत्
श्वात्रभग्नि रकृणोतजातवेदाः'

ऋ. १०.८८.४, नि. ५.३.

उस जातवेदा अग्नि ने सरीसृप् आदि एवं स्थावर जगत् को शीघ्र बनाया ।

(२) जाने वाला (३) व्यापक ।

'अरेणुभिः जेहमानं पतत्रि'

ऋ. १.१६३.६, वाज.सं. २९.१७, तै.सं. ४.६.७.३, का.सं. (अश्व) ६.३.

पतत्रिणी – (१) पत्तों वाली, पंखों वाली, शाखा पर चिपटे छिलकों वाली, शाखा पर चिपटे छिल कों वाली सिलिची लाक्षा नामक ओषधि ।

'सारा पतत्रिणी भूत्वा'

अ. ५.५.९

(२) वेग से शत्रु पर आक्रमण करने वाली, दाएं बाएं रहने वाली और पक्ष प्रतिपक्ष से विवाद करने वाली सभा के सदस्यों की श्रेणी, (३) शरीर के मिथ्या ज्ञान और अकर्म दोनों पत्री अर्थात् जीव को गिराने वाले हैं ।

'मा मामिमे पतत्रिणी विदुग्धाम्'

ऋ. १.१५८.४

ये अज्ञान और अकर्म रूपी पतत्रिणी मुझ जीव को दग्ध न करें ।

अथवा, मुझे सभा के सदस्यों की दो श्रेणियां विपरीत रूप से दोहन न करें ।

(३) रोग को शरीर से बाहर कर रक्षा करने वाली ओषधि ।

'सीराः पतत्रिणी स्थान'

ऋ. १०.९७.९, वाज.सं. १२.८३.

पतत्रिन् – (१) पाल वाली नौका या विमान ।

'सं वाताः सं पतत्रिणः'

अ. १.१५.१, १९.१.१.

पतन्ती– जाती हुई ।

'विद्युन्न या पतन्ती दविद्योत्'

ऋ. १०.९५.१०, नि. ११.३६.

जो माध्यमिका देवता उर्वशी विद्युत् के सदृश अन्तरिक्ष में जाती हुई चमकती है ।

पतयालू– नीचे दुराचार में गिरने वाली ।

'या मा लक्ष्मीः पतयालूरजुष्टा'

अ. ७.११५.२

पतयिष्णु- (१) वेगवान् ,(२) विनाश शील ।
'तव शरीरं पतयिष्णु अर्वन्'
ऋ. १.१६३.१, वाज.सं. २९.२२, तै.सं. ४.६.७.४, का.सं. (अश्व.) ६.३.
(३) वेग से जाने में समर्थ ।

पतर- (१) वेग से चलने वाला अग्नि या तप्त पदार्थ, (२) ऐश्वर्य युक्त करने वाला ।
'पृश्न्याः पतरं चितयन्तमक्षभिः'
ऋ. २.२.४
(३) किरण, (४)गमनशील प्राण, (५) पक्षी ।
'यदेतशेभिः पतरैरथर्यसि'
ऋ. १०.३७.३

पतरा - दो पक्षी । द्वि.व. में प्रयोग ।
'पतरेव चचरा चन्द्र निर्णिक्'
ऋ. १०.१०६.८

पतरू- पतनशील, गिरता हुआ ।
'पर्णा मृगस्य पतरोरिवारभे'
ऋ. १.१८२.७
गिरते हुए वानर को जैसे पत्ते ही संभालने के लिये पर्याप्त होते हैं ।

पत्तः- व्याप्त पुरुष ।
'पत्तो जगार प्रत्यञ्चमत्ति'
ऋ. १०.२७.१३

पत्तवे - (१) पहुंचने के लिये (२) अपमानित करने के लिये ।
'मा मातरम् अमुया पत्तवे कः'
ऋ. ४.१८.१

पत्नी- पत्नी का अर्थ है- पालने वाली, । 'पालयित्र्य आपः' (जल पालने वाले हैं) । अर्थ
(१) जल ।
(२) स्त्री ।

पत्नीवन्तः सुताः - पत्नी का अर्थ जल है । अतः पत्नीवत् का अर्थ है - जलमय । 'पत्नीवन्तः सुताः' का अर्थ हुआ- (१) जलमय अभिसुत सोम रस -
'पत्नीवन्तः सुता इमे
उशन्तो यन्ति वीतये'
ऋ. ८.९३.२२, नि. ५.१८
ये जलमय अभिसुत सोम रस इस उद्देश्य से कि देवगण पीयें देवदाओं की ओर जाते हैं ।

पत्मन्- (१) मार्ग, (२) चाल चलन ।
'यातेव पत्मन् त्मना हिनोत'
ऋ. ७.३४.५

पत्मा- पतनशील ।
'व्रेशीनां त्वा पत्मन् आधूनोमि'
वाज.सं. ८.४८, श.ब्रा. ११.५.९.८.

पत्वा- वेग से आक्रमण करने या उड़ने में समर्थ
'सीदन वनेषु शकुनो न पत्वा
ऋ. ९.९६.२३

पत्संगिनी- पत् + संगिनी । पैरों में पड़ने वाली रस्सी ।
'पत्संगिनीरा समन्तु विगते बाहुवीये'
अ. ५.२१.१०

पत्सुतः शीः - पादों के तले सोने वाला । पाद् का पत्, सप्तमी अर्थ में तसिल् प्रत्यय ।
'तारामहिः पत्सुतः शीर्बभूव'
ऋ. १.३२.८.
उन जलों का धारक मेघ (तासाम् अहिः) वज्र से ताड़ित होकर पावों तले आ पड़ता है । (पत्सुतःशीः) ।

पति- (१) पाला , पालयिता (रक्षा या पालन करने वाला) (२) पालयिता जायनाम् (स्त्रियों का पालक) पति ।
'अन्यमिच्छस्व सुभगेपतिंयत्'
ऋ. १०.१०.१०, अ. १८.१.११, नि. ४.२०.
हे सुभगे, तू मुझ से किसी अन्य को अपना पति बना । (२) स्वामी मालिक ।
'क्षेत्रस्य पते मधुमन्तमूर्मिं
धेनुरिव पयो अस्मासु धुक्ष्व ।
मधुश्चुतं घृतमिव सुपूतम्
ऋतस्य नः पतयो मृडयन्तु ।'
ऋ. ४.५७.२, तै.सं. १.१.१४.३, का.सं. ४.१५, ३०, ४. आप.मं.पा. २.१८.१८, नि. १०.१६.
हे क्षेत्रपति, तू मधुरजल के संघात की (मधुमन्तम् ऊर्मिम्) गौ के दूध के समान (धेनुः पय इव) हमारे लिए (अस्मासु) बरसा या दुह (धुक्ष्व) । मधु की तरह चूने वाले (मधुश्चुतम्) अतिपवित्र (सुपूतम्) घृत के समान (घृतमिव) जल को जल के स्वामी हमारे लिए दो (नः मृडयन्त) ।
पुनः,
'दीर्घायुरस्याः यः पतिः

जीवाति शरदः शतम्'
ऋ. १०.८५.३९. अ. १४.२.२, आप.मं.पा. १.५.२, नि. ४.२५.

पतिजुष्टा- (१) पति के प्रति प्रेम से बद्धस्त्री, (२) नायकगण से बनी प्रजा ।
'अनवद्या पतिजुष्टेव नारी'
ऋ. १.७३.३

पतित्वनम् - पतित्व ।
'अस्मा अह्ने भवति तत् पतित्वनम्'
ऋ. १०.४०.९

पतिद्विट् - पति + द्विष् + क्विप् = पतिद्विट् । अर्थ-पति या बन्धु आदि पालक जनों से प्रीति न करने वाली स्त्री ।
'कुवित् पतिद्विषो यतीः'
ऋ. ८.९१.४

पतिरिष् - पति से द्वेष करने वाली स्त्री ।
'पतिरिषो न जनयो दुरेवाः'
ऋ. ४.५.५

पतिलोक - (१) पति का गृह ।
'शिवास्योना पतिलोके विराज'
अ. १४.१.६४
(२) मृत पति के निकट (३) पति का लोक, परलोक, ।
'इयं नारी पतिलोकं वृणाना'
अ. १८.३.१

पतिवेदन- (१) पति को प्राप्त कराने वाला बन्धुस्वरूप परमेश्वर ।
'अर्यमणं यजामहे सुबन्धुं पतिवेदनम्'
अ. १४.१.१७
'सुगन्धिं पतिवेदनम्'
वाज.सं. ३.६०, श.ब्रा. २.६.२.१४, आप.श्रौ.सू. ८.१८.३:
(२) पति की प्राप्ति, पति का वरण ।
'धातुर्देवस्य सत्येन कृणोमि पतिदेवनम्'
अ. २.३६.२

पतिवेदनौ - पति के रूप में प्राप्त होने वाले ।
'जाता याः पतिवेदनौ'
अ. ८.६.१

पती - द्वि.व.। (१) गृहस्थ धर्म को निभाने वाले एक दूसरे के पालक पति पत्नी, (२) पति पत्नी के समान व संसार के प्रति अति प्रेम मय ।
'पूषा पुरन्धिरश्विनावधा पती'
ऋ. २.३१.४

पत्नी- (१) स्त्री ।
'पुनः पत्नीमग्निरदात्'
ऋ. १०.८५.३९, अ. १४.२.२, आप.मं.पा. १.५.४, ९,१४,
पिता के द्वारा देने पर अग्नि ने पुनः पत्नी का दान दिया ।

पत्नीनां सदनम्- स्त्रियों के लिए गृह ।
'पत्नीनां सदनं सदः'
अ. ९.३.७

पत्नीवत्- सस्त्रीक, स्त्रीयुक्त हो यज्ञकर्त्ता यजमान ।
'पत्नीवन्तो नमस्यं नमस्यन्'
ऋ. १.७२.५
पत्नीयुक्त पुरुष नमस्कार योग्य पुरुष को नमस्कार करें ।

पत्नीवान्- पत्नी या प्रजापालक शक्ति और व्रीहि से युक्त ।
'पत्नीवन्तो वषट्कृताः'
ऋ. ८.२८.२

पत्नीशाल- (१) पालन करने वाले राजा की राज सभा का भवन (२) यज्ञ की पत्नी शाला ।
'पत्नीशालं गार्हपत्यः'
वाज.सं. १९.१८

पत्नी संयाज- (१) पत्नी के साथ मिलकर यज्ञ करना, (२) पालन -शक्ति से प्रजाओं को सुख प्रदान करना ।
'शंयुना पत्नी संयाजान्'
वाज.सं. १९.२९

पतु - मार्ग, राजमार्ग ।
'आदित्यानां पत्वान्विहि'
वाज.सं. २२.१९, तै.सं. ७.१.१२.१, मै.सं. ३.१२.४, १६१.११, का.सं. (अश्व.) १.३, पंच.ब्रा. १.७.२, शं.ब्रा. १३.१.६.२,तै. ब्रा. ३.८.९.३, आप. मं. पा. २.२१.३०.

पत्सुतः- ज्ञान में निष्णात ।
'कृष्णा रजांसि पत्सुतः प्रयाणे जातवेदसः'
ऋ. ८.४३.६, का.सं. ७.१६, शा.श्रौ.सू. ३.५.१०

पथ्य- पथों का अध्यक्ष ।
'नमः सुत्याय च पथ्याय च'
वाज.सं. १६.३७

पथां विसर्गः- (१) जीवन की समाप्ति (२) जहां अनेक मार्गों की सृष्टि नहीं होती वह परमात्मा का धाम
'आयोर्हस्कम्भे उपमस्यनीडे
पथां विसर्गे धरुणेषु तस्थौ'
ऋ. १०.५.६
(३) मार्गों का विविध दिशाओं में जाने का केन्द्र स्थान।

पथ्या- पद्यते तत् मध्यमस्थानिभिः इति पन्था अन्तरिक्षम् (मध्यम स्थानीय उस पर चलते हैं। अतः यह पन्था या अन्तरिक्ष हुआ)।
'यथायाम् भवापथ्या'
जो अन्तरिक्ष में हो वह पथ्या है। पन्था+ यत् = पथ्या, पथ्य + टाप = पथ्या। (१) अन्तरिक्ष में मेघ का निवास है अतः पथ्या का अर्थ मेघ है। (२) पथ पर धर्म मार्ग पर रहने वाली प्रजा।
'पथ्या रेवती बहुधा विरूपाः'
अ. ३.४.७
(३) अन्नादि देने से हितकारिणी पृथिवी, (४) सदा सूर्य के साथ पतिपरायणा पत्नी की तरह रहने वाली पृथिवी, (५) स्व क्रान्ति पथ से विचलित न होने वाली (६) धर्मपथ से अति क्रमण न करने वाली।
'सध्रीचीना पथ्या सा विषुसी'
ऋ. ३.५५.१५

पथ्या- (१) सन्मार्ग।
'देवां अच्छा पथ्या का समेति'
ऋ. ३.५४.५
(२) पगडंडी।
'विश्लोक एतु पथ्येव सूरेः'
ऋ. १०.१३.१, अ. १८.३.३९, वाज.सं. ११.१५, तै.सं. ४.१.१.२ मै.सं. २.७.१.७४.२, का.सं. १५.११, श.ब्रा. ६.३.१.१७, श्वेत उप. २.५.
(३) मार्गवर्ती प्रजा, (४) उत्तम पथ योग्य, (५) धार्मिक शिष्टाचार।
'अंगिरस्तमा पथ्या अजीगः'
ऋ. ७.७५.१
(६) धर्म मार्ग पर चलने वाली प्रजा।
'आ या ह्यग्ने पथ्या अनुस्वाः'
ऋ. ७.७.२

पथ्याः रायः- सन्मार्ग से आने वाले ऐश्वर्य।
'संजग्मिरे पथ्या रायो अस्मिन्'
ऋ. ६.१९.५

पथिकृत् - (१) मार्गदर्शक, (२) व्यवस्थापक, कानून बनाने वाला।
'लोककृतः पथिकृतो यजामहे'
अ. १.८.३.२५-३५, ४.१६-२४.
(२) मार्ग बनाने वाला।
'हि जिष्णुः पथिकृतःसूर्याय'
ऋ. १०.१११.३
(३) उत्तम मार्ग बनाने वाला -परमेश्वर।
'त्वं नो गोपा पथिकृत् विचक्षणः'
ऋ. २.२३.६.
'उत दुर्गेषु पथिकृत विदानः'
ऋ. ६.२१.१२

पथिकृता- द्वि.व.। मार्ग बनाने वाले अग्निषोमा।
'अग्निषोमा पथिकृता स्योनं'
अ. १८.२.५३

पथिन्- पत्, पद या पथि + इन् = पथिन्। पद्यते तत् (उस पर चला जाता है)। अर्थ (१) मार्ग।
'मा पथो विदुक्षः'
(२) विषयानुप्रवेश मार्ग (३) इन्द्रिय। अंग्रेजी का Path शब्द से पथिन की समता विचारणीय है।

पथिरक्षी- द्वि.व.। जीवन मार्ग की या काल की रक्षा करने वाले दिन रात का कुत्ते।
'यमस्य यौ पथिरक्षीश्वानौ'
अ. ८.१.९
(२) यमलोक के मार्ग में रक्षा करने वाले दो सारमेय कुत्ते, (३) जीवन के मार्ग में रक्षा करने वाले प्राण और अपान वायु (४) यम के दो दूत।
'चतुरक्षौ पथिरक्षी नृचक्षसौ'
ऋ. १०.१४.११, अ. १८.१२, तै.आ. ६.३.१.

पथिरक्षिः- (१) मार्ग का रक्षक, (२) रुद्र, (३) मार्ग में चलने वाले यात्रियों का रक्षक।
'ये पथां पथिरक्षयः'
वाज.सं. १६.६०, वाज.सं. (का.) १७.८.१४, तै.सं. ४.५.११.१, मै.सं. २.९.९.१२९.१, का.सं. १७.१६. मा.श्रौ.सू. ११.७.१.

पथिष्ठा- पथि + स्था। मार्ग में खड़ा।

'स्थाणुं पथिष्ठामप दुर्मतिं हतम्'
अ. १४.२.६

पथीनां पतिः- (१) मार्ग और मार्गगामी यात्रियों का पालक (२) रुद्र, (३) मार्गाध्यक्ष ।
'पथीनां पतये नमः'
वाज.सं. १६.१७, तै.सं. ४.५.२.१, मै.सं. २.९.३, १२२.११, का. सं. १७.१२.

पथेष्ठा - (१) सन्मार्ग में स्थित ।
'आरे विश्वं प्रथेष्ठाम्'
ऋ. ५.५०.३
(२) मार्ग में स्थिति ।
'स्थागुं पथेष्ठामप दुर्मतं हतम्'
ऋ. १०.४०.१३

पथ्यास्वस्ति- (१) अन्तरिक्षस्थ कल्याणकारी मेघ, (२) पथ्या का अर्थ है-अन्तरिक्ष । स्वस्ति का अर्थ कल्याण या कल्याणकारी है ।

पद् - (१) चेतना सामर्थ्यरूप पद, (२) सूर्य की किरण ।
'वव्रि वसाना उदकं पदापुः'
ऋ. १.१६४.७, अ.९.९.५

पद - (१) डेग ।
'त्रेधा निदधे पदम्'
ऋ. १.२२.१७, अ. ७.२६.४, साम. १.२२२, २.१०,१९. वाज.सं. ५.१५, तै.सं. १.२.१३.१, मै.सं. १.२.९, १८.१७, ४.१.१२, १६.४, का.सं. २.१०, श.ब्रा. ३.५.३.१३, नि. १२.१९.
आदित्य इस सृष्टि में तीन प्रकार से अपना डग (पदम्) रखते हैं (निदधे) -द्युलोक में सूर्यरूप में अन्तरिक्ष में विद्युत् के रूप में और पृथ्वी में अग्नि के रूप में ।

पदज्ञ- (१) जो प्राप्तव्य धर्ममोक्ष कामादि पदों का साधन जानता है (२) प्राप्तव्य पद का ज्ञाता ज्ञानी ।
येना नः पूर्वे पितरः पदज्ञाः
अर्चन्तो अङ्गिरसो गा अविन्दन्'
ऋ. १.६२.२, वाज.सं ३४.१७.
(३) आत्म स्वरूप का ज्ञाता, (४) ज्ञानयोग्य तत्व का ज्ञाता (५) प्राप्तव्य उत्तम पद को जानने वाला ।
'मा पूर्वे अग्ने पितरः पदज्ञाः'
ऋ. ३.५५.२

पदज्ञा- स्त्री । (१) अपने निवास स्थान को जाने वाली गौ ।गौ प्रायः अपने रहने की जगह को नहीं भूलती यह पदज्ञा है, (२) परम पद आनन्द धाम को जानने वाली चितिशक्ति ।
'पदज्ञास्थ रमतयः'
अ. ७.७५.२

पदनी - पदपंक्ति, ।
'विद्धस्य पदनीरिव'
अ. १.१.२.१३

पदपंक्ति- (१) गृहस्थ का पालन, (२) यह लोक ।
'पदपंक्तिश्छन्द्रः'
वाज.सं. १५.४, तै.सं. ४.३.१२.३, मै.सं. २.८.७,१११.१५, का.सं . १७.६.श.ब्रा. ८.५.२.४.

पदयोपन- पद अर्थात् देह का विलोपन ।
'मृत्युं प्रत्यौहन् पदयोपनेन'
अ. १२.२.२९

पदयोपनी- पैरों को कष्ट देने वाली ।
'कूद्यं पदयोपनीम्'
अ. ५.१९.१२

पदवत् - पैरों वाला जीव ।
'पद्वत् विवेद शफवत् नमे गोः'
ऋ. ३.३९.६

पदवाय- (१) स्वरूप को दर्शाने वाला ।
'ब्रह्मपदवायम्'
अ. १२.५.४
(२) मार्गदर्शक ।
'अग्निर्वैनःपदवायः'
अ. ५.१८.१४

पदवी- (१) परम पद को प्राप्त कराने वाला ज्ञान ।
'श्रमयुवः पदव्यो धियन्धाः
तस्थुः पदे परमे चार्वग्नेः'
ऋ. १.७२.२
(२) प्रतिष्ठा ।
'अघ्न्ये पदवीर्भवः'
अ. १२.५.५८
(३) परमाणुओं में गति उत्पन्न करने वाला-परमेश्वर ।
'अभीक आसांपदवीरबोधि'
ऋ. ३.५६.४
(४) पगडंडी ।
'प्रणोदिवः पदवीर्गत्युरर्चन्'

ऋ. ३.३१.८

पद्घोष- पदाघात ।

'पद्घोषैश्छायया सह'

अ. ५.२१.८

पदया- (१) पैरों से जाने योग्य या सूर्य की किरणों से प्रकाशित होने योग्य भूमि, (२) सूर्य की किरणों से उत्पन्न उषा ।

'पद्या वस्ते पुरुरूपा वपूंषि'

ऋ. ३.५५.१४

(३) जाने योग्य गति ।

'यदा शवः पदयाभिः तित्रतोरजः'

ऋ. २.३१.२

(४) उत्तम चलने योग्य मार्ग, ।

'अरंहत पद्याभिः ककुद्मान्'

ऋ. १.१०२.७

(५) ज्ञान कराने वाले उत्तम क्रिया ।

पद्याभिराशुं वचसा च वाजिनम्'

ऋ. २.३२.३

(६) क्रियामार्ग ।

'उतो पद्याभिर्जविष्ठः'

अ. २०.१३५.८, ऐ.ब्रा. ६.३५.१३, गो.ब्रा. २.६.१४, शां.श्रौ. सू.१२.१९.४.,

पद्वत्- (१) चरणों वाली, गौ का विशेषण । अवसाय पद्वते रुद्र मृड । हे रुद्र, तू इस चरण-युक्त पथ में चल चल कर खाने वाली गौ की हिंसा न कर ।

(२) ज्ञान साधन या चरणों से युक्त जीव संसार ।

'पद्वन्तं गर्भमपदी दधाते'

ऋ. १.१८५.२, मै.सं. ४.१४.७, २२४.११, तै.ब्रा. २.८.४.८.

पद्वती- (१) शुभचरणों वाली, सप्त पदी से युक्त कन्या ।

'कृत्यैषा पद्वती भूत्वा'

ऋ. १०.८५.२९, अ. १४.१.२५. आप.मं.पा. १.१७.७.

(२) स्थूला पायों वाली शाला ।

'हस्तिनीव पद्वती'

अ. ९.३.१७

(३) अच्छी लंगर वाली नौका (४) चरणों वाली सेना ।

'नित्यारित्रां पद्वतीं रास्यग्ने'

ऋ. १.१४०.१२

(५) पद वाले जन्तु, (६) पाद, अध्याय चरण आदि से युक्त वाणी (७) प्रशंसित विभागों वाली क्रिया ।

'अपादेति प्रथमा पद्वतीनाम्'

ऋ. १.१५२.३, अ. ९.१०.२३.

जिस प्रकार पैरों वाले जन्तुओं से सबसे प्रथम पाद रहित उषा आती है उसी प्रकार चरण, अध्याय, पाद, सर्ग आदि विभाग वाली वाणी से भी प्रथम चरणादि से रहित वाणी प्रकट होती है ।

पद्वतीनां प्रथमा- (१) एकपदी द्विपदी, चतुष्पदी, अष्टापदी तथा नवपदी ब्रह्मशक्तियों में से सबसे प्रथम विद्यमान अव्याकृत ब्रह्मशक्ति जिसे अपाद् कहते हैं ।

'अपादेति प्रथमा पद्वतीनाम्'

ऋ. १.१५.३, अ. ९.१०.२३

पदि- (१) पक्षी, (२) पथिक, (३) परिव्राजक । पदिः जन्तुर्भवति (पदि गमनशील होता है) । आकशेष्यवं नित्यमेव पद्यते (आकाश में यह सदा चला जाता है) ।

पदीष्ट- (१) प्राप्त हो, आवे ।

'पदीष्ट तृष्णया सह'

ऋ. १. ३८.६

तृष्णा के साथ अकाल, दुष्काल आदि के रूप में प्राप्त न हो ।

(२) जाए, चरण रखे ।

'अन्ति दूरे पदीष्ट सः'

ऋ. १.७९.११

पदे - आकाश और भूमि जो दो चरणों के समान हैं ।

'पदे इव निहिते दस्मे अन्तः'

ऋ. ३.५५.१५

पदेसिता - (१) पैरों में बंधी गौ, (२) ज्ञातव्य विषय में शब्दार्थ से बंधी वाणी ।

'यथाह त्यद् वसवो गौर्यंचित्
पदि पितामुञ्चतां यजत्राः'

ऋ. ४.१२.६, १०.१२६.८, तै.सं. ४.७.१५.७, मै.सं. ३.१६.५, १९२, ९. का.सं. २.१५, आप.श्रौ.सू. ६.२२.१

पन– (१) स्तुति करना। (२) प्रशंसा करना
'महोमहानि पनयन्त्यस्य'
ऋ. ३.३४.६, अ. २०.११.६

पनयाय्य– अति प्रशंसनीय।
'इन्द्राविष्णू तत्पनयाय्यं वाम्
सोमस्ये मद उरु चक्रमाथे'
ऋ. ६.६९.५

पनस्यु– (१) स्तुतियोग्य, (२) ज्ञानदृष्टि से समाधिद्वारा दर्शनीय परमेश्वर।
'धर्मकृते विपश्चिते पनस्यवे'
ऋ. ८.९८.१, अ. २०.६२.५
(३) पन (अर्चना, स्तुति), + ल्युट् = पनन् = पनस्। अर्थ है स्तुति। पनस् + स + कयच् + उ = पनस्यु। अर्थ है। अपनी स्तुति की अभिलाषा करने वाला।
कृतधर्मा विद्वान् एवं अपनी स्तुति की अभिलाषा वाले (पनस्यवे) इन्द्र के निमित्त बृहत् साम को पढ़ो।
(४) स्तुति की कामना करने वाला।
'पनस्युवः संवसनेष्वक्रमुः'
ऋ. ९.८९.१७, साम. २.५०३.

पन्न– पद् + क्त = पन्न। अर्थ–पराजित।
'तेषां पन्नानाम् अधमा तमांसि'
अ. ९.२.९

पन्य– (१) स्तुत्य, (२) उत्तम।
'पन्यंपन्यमित् सोतारः'
ऋ. ८.२.१५, साम. १.१२३, २.१००७, शां.श्रौ.सू. ९.१९.२.

पन्यस् – स्तुत्य व्यवहार।
'उदावता त्वक्षया पन्यसा च'
ऋ. ६.१८.९,

पन्थाः– (१) पगडंडी, उपमार्ग।
'वेत्थाहि वेधो अध्वनः
पथश्च देवाञ्जसा'
ऋ. ६.१६.३, साम. २.८२६, का.सं. ६.१०.श.ब्रा. १२.४.४.१

पनायत– पण (व्यवहार और स्तुति अर्थ में) के लोट् म.पु. ब.व. का रूप। अर्थ है– गुण गाओ, प्रशंसा करो। पन धातु प्रशंसा करने के अर्थ में आया है।
'अभीशूनां महिमानं पनायत'
ऋ. ६.७५.६, वाज.सं. २९.४३, तै.सं. ४.६.६, २, मै.सं. ३.१६.३, १८६.४, का.सं. (अश्व.) ६.१, नि. ९.१६.
घोड़े के वागों का गुण गान करो।

पनाय्य – स्तुति योग्य
'पनाय्यमोजो समिन्वतम्'
ऋ. १.६०.५, कौ.ब्रा. १९.९.

पनितः– प्रशंसनीय, व्यवहारकुशल
'पनित आप्त्यो यजतः सदानः'

पनिता– व्यवहार, स्तुति और उपदेश करने वाला।
'देवासो यत्र पनितार एवैः'
ऋ. ३.५४.९

पनिप्रत– (१) सब को ज्ञानोपदेश करने वाला।
'शिशुंरिहन्ति मतयः पनिप्रतम्'
ऋ. ९.८५.११, ८६.३१.
(२) सदा क्रिया, शील, (३) नित्य प्रयोग में आने वाली।
'उपप्रियं पनिप्रतम्'
ऋ. ९.६७.२९, अ.७.३२,१, कौ.ब्रा. ९.६, आश्व.श्रौ.सू. ४.१०.३.

पनिष्ठ – (१) सबसे अधिक व्यवहारोपयोगी और स्तुत्य।
'पनिष्ठं जातं तवसं दुवस्यन्'
ऋ. ३. १.१३

पनिष्पदा– पनिः + पदा। स्तुति करने तथा वाग् व्यापार करने में चतुर।
'जिह्वा बद्धा पनिष्पदा'
अ. ५.३०.१६

पनीफनत्– पुनःपुनः गच्छति (बार बार जाता है)। फण् धातु गत्यर्थक है। इसी के यङ् लुगन्त लट् प्र.पु. ए.व. में 'पनीफणति' का वैदिक रूप 'पनीफनत' है।

पनीयसी – (१) अतिस्तुत्य, (२) व्यवहार कुशल।
'युष्माकमस्तु तविषी पनीयसी'
ऋ. १.३९.२
हे वीर पुरुषो, तुम लोगों की बलवती सेना अति व्यवहार कुशल एवं प्रशंसनीय हो।

पनीयाः– (१) व्यवहार में लाने योग्य (२) स्तुति योग्य।
'उषो न शुभ्र आ भरा पनीयसे'
ऋ. १.५७.३, अ. २०.१५.३

पप्तता- पतत, गच्छत, जाओ गिरो, पत्लृ (गति अर्थ में) के लुङ् म. पु.ब.व. का रूप । च्लि का अङ् करने पर पुम् का आगम हुआ । दीर्घ आर्ष है ।

पप्रथानः- (१) अति विस्तृत, (२) विख्यात ।
'रुवद्धोक्षा पप्रथानेभिरेवैः'
ऋ. ४.५६.१, मै.सं. ४.१४.७, २२४.७, कौ.ब्रा. २३.३.
'मातेव यद् भरसे पप्रथानः'
ऋ. ५.१५.४

पपानः - पालन करता हुआ ।
'पपानो देवेभ्यो वस्यो अचैत्'
ऋ. ६.४४.७

पप्रा- (१) पूर्ण करने वाला, (२) पूर्ण बल देने वाला ।
'पप्रा समीची दिवो न ज्योतिः'
ऋ. १.६९.१
सूर्य का प्रकाश जिस प्रकार (द्विवःज्योतिः न) परस्पर संगत भूमि और आकाश दोनों को (समीची) प्रकाश से पूर्ण करने वाला हो (पप्रा) । (३) पानीय शाला, पान शाला, जल पिलाने का स्थान ।
'समानी पप्रा सह वोऽन्नभागः'
अ. ३.३०.६

पपिः - (१) पीने वाला, (२) रक्षा करने वाला, (३) भोक्ता ।
'वभ्रिर्वज्रं पपिः सोमं ददिर्गाः'
ऋ. ६.२३.४

पपिरे- पिबन्ति (पीते हैं) लट् के अर्थ में लिङ् का प्रयोग ।

पपिवान्- (१) रसपान करने वाला सूर्य, (२) पी लिया -दया. । (३) पीता है ।
'सोमं मन्यते पपिवान्'
ऋ. १०.८५.३, अ. १४.१.३, गो.ब्रा. १.२९.९, नि. ११.४.
जिसे पीता है उसे ही सोम मानता है ।
(४) पीता हुआ ।
'जक्षिवांसः पपिवांसो मधूनि'
अ. ७.९७.३

पपिवांसः- 'पपिवान्' के प्र.ब.व. का रूप । वसुओं के विशेषण के रूप में प्रयुक्त । अर्थ पीते हुए या पीए हुए ।
'जक्षिवांसश्च पपिवांसश्च विश्वे'
वाज.सं. ८.१९.तै.सं. १.४.४४.२, मै.सं. १.३.३८,४४.११, का.सं. ४.१२, श.ब्रा. ४.४.४.११, नि: १२.४२.
हवियों को खाए तथा सोमरस को पीए हुए ।

पप्रिः- (१) पूरक ।
'मंहिष्ठारातिं स हि पप्रिरन्धसः'
ऋ. १.५२.३
वही अन्न, जीवन और ऐश्वर्यों को पूर्ण करने वाला है ।
(२) पालक ।
(३) पालक राजा ।
'इममिन्द्रं वह्निं पप्रिमन्वारभध्वम्'
अ. १२.२.४७
(४) पालन करने और सब ऐश्वर्य से पूर्ण करने वाला ।
'बृहस्पते पप्रिणा सस्निना युजा'
ऋ. २.२३.१०
(५) पूर्ण व्यापक परमेश्वर ।
'सनः पप्निः पारयाति'
ऋ. ८.१६.११, अ. २०.४६.२.
(६) सबका पालक इन्द्र परमेश्वर ।

पप्रितमः- सर्वोत्तम पालक-अग्नि परमेश्वर ।
'देवानामसि वह्नितमं सस्नितमं
पप्रितममं जुष्टतमं देवहूतमम्'
वाज.सं. १.८, मै.सं. १.१.५, ३.१, ४.१.५: ६.१२, का.सं. १.४, श.ब्रा. १.१.२.१२

पप्रिवत् - (१) पूर्ण करता हुआ (२) व्याप्त ।
'छायेव विश्वं भुवनं सिसक्षि
आ पप्रिवान् रोदसी अन्तरिक्षम्'
ऋ. १.७३.८
तू समस्त संसार को आकाश भूमि तथा अन्तरिक्ष को भी सब तरह से पूर्ण करता हुआ (आ पप्रिवान्) छाया के समान उनके भीतर व्याप्त है ।

पपुरिः- (१) पालक, (२) सूर्य का विशेषण । (३) पृ + किन् = पपुरि । पृ धातु 'पालन तथा पूरण करना' अर्थ में आया है । अर्थ है-समय आने पर पूरा करने वाला या प्रीणयिता या पालक या तृप्त करने वाला सूर्य (४) पालक या

तृप्त करने वाला -दया.
'आदृगम हन् जनः किकिनौ लिट् च'
-पा. ३.२.१७१'
'पिपर्ति पपुरिर्नरा'
ऋ. १.४६.४, नि. ५.२४.
हे द्यावापृथिवी या हे अश्विनीद्वय (नरा), समय आने पर पूरा करने वाला या प्राणयिता या पालक या तृप्त करने वाला (पपुरिः) सूर्य.....
(५) पालन करने वाला (६) पल ऐश्वर्य से पूर्ण करने वाला
'ओजिष्ठं पपुरि श्रवः'
ऋ. ६.४६.५, अ. २०.८०.१, अ.सं. १.१.

पपुष्- पालक
'वर्धान ते पपुषो वृष्ण्यानि'
ऋ. १०.४४.२, अ. २०.९४.२

पप्तुः- गिरती है। लट् के अर्थ में लिट् का प्रयोग।
'वयोन पप्तू रघुया परिज्मन्'
ऋ. २.२८.४
पक्षियों की तरह रश्मियां गिरती हैं

पपृक्षेण्य- (१) सदा प्रश्न का विषय (२) पोषक
'पपृक्षेण्य मिन्द्रत्वे ह्योजः'
ऋ. ५.३३.६

पपृचानः - (१) निरन्तर प्रेम करने वाला
'अद्भिः सोम पपृचानस्य ते रसः'
ऋ. ९.७४.९
(२) संग या संपर्क करता हुआ
'भगमिव पपृचानास ऋञ्जते'
ऋ. १.१४१.६
जब संग या सम्पर्क करते हुए (पपृचानासः) कामना की एषणाओं में (दिविष्टिषु) ऐश्वर्य के समान सुखजनक भोग को (भगमिन) साधते हैं (ऋञ्जते)

पर्यगात्- परि + अगात्। आप को समर्पित है। आप को प्राप्त होता है। दे. 'ओमन्'
'परिध्रंसमोमना वां वयो गात्'
ऋ. ७.६९.४, मै.सं. ४.१४.१०,२३.६, तै.ब्रा. २.८.७.८. नि. ६. ४.
यह हविरूपी अन्न (वयः) दिन में (घ्रसम्) रक्षा के लिये (ओमना) आपको समर्पित है (वाम् पर्यगात्)

पर्वत- (१) पर्ववाला मास, (२) पर्वत, (३) प्राणिवर्ग को पालन करने वाला-जल, वायु, अग्नि आदि तत्व।
'यः शम्बरं पर्वतेपु क्षियन्ताम्'
ऋ. २.१२.११, अ. २०.३४.११.

पराकः - दूरदेश।
'एषास्या युजाना पराकात्'
ऋ. ७.७५.४

पवते - (१) जाता (२) गति करता है।
'नेन्द्रादृते पवते धाम किञ्चन'
ऋ. ९.६९.६, साम. २.७२०, कौ.ब्रा. २.७, नि. ७.२.
सोम इन्द्र के सिवा और किसी स्थान पर नहीं जाता (न पवते)। सोम यहां आत्मा का भी बोधक है।
परमेश्वर के बिना कोई भी लोक (किञ्चन धाम) गति नहीं करता (न पवते)।

पविः- पू + इ = पवि (विपुनाति विदलयति इति पविः (जो विदलित करता है वह पवि है।))।
अर्थ (१) वज्र।
'सृकं संशायपविमिन्द्र तिग्मम्'
ऋ. १०.१८०.२, अ. ७.८४.३, साम. २.१२२३, वाज.सं. १८.७१, तै.सं. १.६.१२.५, मै.सं. ४.१२.३, १८३.१५, का.सं. ८.१६.
हे इन्द्र, तू सरणशील (सृकम्) तीक्ष्ण वज्र को (तिग्मम् पविम्) सम्यक् प्रकार से तेज कर (संशाय)।
'उतस्मते परुष्ण्यामूर्णावसत शुन्ध्यवः
उतपव्या रथानामद्रिं भिन्दन्त्योजसा'
ऋ. ५.५२.९
हे मरुतो, जिन आप लोगों को कभी अन्तर्ध्यान और कभी प्रकट होने की शक्ति है (उतस्म) वे आप (ते) इरावती नाम्नी नदी में या अन्तरिक्ष की नदी में (परुष्ण्याम्) शुद्ध होने वाले या स्नान करने वाले (शुन्ध्यवः) विचित्र रूप से तिरोहित होकर रहते हैं (ऊर्णा वसत) और प्रकट होने के समय- आप लोगों के रथों के चक्रे ही बल से पर्वत या मेघ को (अद्रिम्) छिन्न भिन्न करते हैं। आप की शक्ति की तो बात ही क्या।
(२) रथनेमि। रथ के साथ पवि के होने से पवि का अर्थ रथनेमि हुआ।
ब्राह्मण में भी-

'देवावै वृत्रस्य मर्म नाविदन् तं
मरुतः क्षुरपविना व्यसुः'
देवों ने वृत्र के रहस्य को नहीं समझा। उस वृत्र को मरुतों ने तीक्ष्ण धारवाले रथनेमि से छिन्नभिन्न किया।
अन्य अर्थ - वे मनुष्य पर्वों वाली भूमि अर्थात् पर्वत प्रदेश पर सुरक्षित (ऊर्णाः) तथा शुद्धता पूर्वक रहे और भोगों की नेमि के लिए (रथानां पव्या) पराक्रम से (ओजसा) पर्वत को तोड़ें
(४) वृक्षाकार पत्थर का अस्त्र भी पवि है (५) शल्य।
'पविः शल्यो भवति यज्ञे विपुनानि कायम्'

प्र - एक उपसर्ग जो धातुओं के पूर्व जोड़ा जाता है। वेद में उपसर्गों का प्रयोग धातु से अलग ही किया गया है। (२) प्रतापवान् (३) कहता हूँ, स्तुति कर -
'प्र प्रा वो अस्मे स्वयशोभिरुती'
ऋ. १.१२९.८
हे स्तोताओ, मैं आप से कहता हूं (प्र.वः) कि आप मेरे निमित्त (अस्मे) अपने यशों से युक्त रक्षा परायण इन्द्र की स्तुतियां करें (स्वयशोभिःऊतीः प्र.)।
हे प्रजाजनों, तुम्हारी और हमारी रक्षा के लिये (वः अस्मे ऊती) राजा अपने सामर्थ्य और प्रताप से प्रतापवान् हो (स्वयशोभिः प्र) -दया.
पुनः-
'प्र सीमादित्यो असृजद् विधर्ता
ऋतं सिन्धवो वरुणस्य यन्ति
न श्राम्यन्ति न वि मुचन्येते
वयो न पप्तू रघुया परिज्मन्'
ऋ. २.२८.४.
विविध प्रकार से रसों, रश्मियों या रश्मि जाल में स्थित सम्पूर्ण जगत् को धारण करने वाला (विधर्ता) अदिति के पुत्र विवस्वान् सूर्य ने (आदित्यः) चारों ओर (सीम्) प्रकर्ष के साथ रश्मियों की सृष्टि की (प्रासृजत्)। वे सूर्य की रश्मियां (सिन्धवः) आदित्य मण्डल से निकलकर पृथ्वी तथा अन्तरिक्ष लोक से चल लेकर (ऋतम्) सूर्यमण्डल की ओर जाती हैं (वरुणस्य यन्ति)। वे रश्मियां अपना-अपना कर्म करने से न थकतीं और न छोड़ती हैं (एते न श्राम्यन्ति न विमुञ्चन्ति), पक्षियों की तरह शीघ्र नीचे आतीं (वयः न पप्तुः) और लघु गति से चारों ओर उड़ती सी हैं (रघुया परिज्मन्)।
सायण का अर्थ- वरुण ने नदियों के उपादानभूत उदक को या सत्य को सर्वतः सिरजा क्योंकि वरुण भी अदिति का ही पुत्र है। उस वरुण के जल से नदियां बहती हैं (वरुणस्य ऋतम् सिन्धवःयन्ति)। ये नदियां कभी थमतीं नहीं जैसे शीघ्र गामी पक्षी (रघुया वयःन) उड़ती हुई भूमि पर आती हैं (परिज्मन्)।
'रघुया' का अर्थ शीघ्रगामी और परिज्मन् का अर्थ पृथिवी है।
(४) प्रबोधयतम् (ज्ञानवान कर)
'प्रदक्षाय प्रचेतसा'
ऋ. ८.९.२०, अ. २०.१४२.५
(५) सब कार्य करने में समर्थ।
'प्र यद् इत्था महिना नृभ्यो अस्ति'
ऋ. १.१७३.६

प्रउग - (१) मुख के समान स्थान। त्रिकोण (३) यज्ञ में प्रउग आदि का अर्थ शंसनीऋचा है,
'छन्द किमासीत् प्रउगं किमुक्थम्'
ऋ. १०.१३०.३

प्रकंकत- (१) अति चंचल विषैला जीव, (२) वेगवान् (३) तीव्र वेदना देने वाला।
'सूचीका ये प्रकंकताः'
ऋ. १.१९१.७

प्रकरिता - (१) शत्रुओं को उखाड़ फेंकने वाला, (३) उत्तम ज्ञानादि प्रदान करने वाला
'मनुष्य लोकाय प्रकरितारम्'
वाज.सं. ३०.१२, तै.ब्रा. ३.४.१.८

प्रकलवित् - प्र + कल + विद् + क्विप् = प्रकलविद्। अर्थ है-
(१) प्रकृष्ट धूर्त, (२) कलाबाज (३) वणिक्, व्यापारी,
'स हि कलाश्चवेद प्रकलाश्च'
(वाणिक् कला और प्रकला दोनों जानता है)। मान, उन्मान तथा प्रतिमान आदि विषय कला है। वणिक् में ये सब गुण पाए जाते हैं। प्रकृष्ट अश्व गणित तथा रत्नादि की परीक्षा प्रकला

है ।

*'दुर्मित्रासः प्रकलवित् मिमानाः
जहुर्विश्वानि भोजनानि सुदासे'*

ऋ. ७.१८.१५, नि. ६.६.

दुष्ट कलाबान बनिए (दुर्मित्रासः प्रकलवित् मिमानाः) सुन्दरदान देने वाले यजमान या सुदास राजा को सभी प्रकार के भोजन या भोग्य धन दे ।

प्रकला - प्रकृष्ट अश्व गणित तथा रत्नादि की परीक्षा का नाम प्रकला है ।

प्रकाश - (१) उत्तम प्रकार की चाबुक, (२) प्रेरक बल ।

'विद्युत् प्रकशो हिरण्ययो विन्दुः'

अ. ९.१.२१.

प्रकामः - (१) उत्तम कामना, (२) काम्य गृहस्थसुख ।

'प्रकामाय रजयित्रीम्'

वाज.सं. ३०.१२, तै.ब्रा. ३.४.१.७.

प्रकामोद्य - प्रकाम + उद्य, (२) उत्तम इच्छाओं का कथन, यथेष्ट विषय पर विवाद या कथनोंपकथन, (३) उत्तम कामनाओं से कार्य करने में उद्यत पुरुष ।

'प्रकामोद्यायोपसदम्'

वाज.सं. ३०.९, तै.ब्रा. ३.४.१.६.

प्रक्री - (१) एक प्रकार का सोम यज्ञ ।

'सद्यः क्रीः प्रक्री रुक्थ्यः'

अ. ११.७.१०

(२) ओंषधि जिसे बघछाला या मृगछाला से बदल कर बेचते हैं ।

राज निघण्टु में इसका नाम प्रकीर्य है जिसके ५ भेद हैं- करञ्ज, उदकीर्य, अंगारवल्ली, गुच्छक रञ्ज, रीठा करंज । ये विषनाशक एवं कुष्ठ, कण्डू, स्फोट तथा त्वचादोष दूर करते हैं ।

'प्रक्रीरसि त्वमोषधे'

अ. ४.७.६

प्रक्रीड - उत्तम मन को बहलाने वाला विनोद ।

'इन्द्रं प्रक्रीडेन'

वाज.सं. ३९.९, वाज.सं. (का.) ३९.८.

प्रक्रीड़ी - खूब खेलने वाला, विनोदी स्वभाव वाला ।

'वत्सासो न प्रक्रीडिनः पयोधाः'

ऋ. ७.५६.१६, तै.सं. ४.३.१३.७, मै.सं. ४.१०.५, १५५.७, का.सं . २१.१३.

प्रकेत - (१) उत्कृष्ट ज्ञान के साधन प्रस्तकालय, विद्यालय आदि, (२) उषा का प्रकाश ।

'प्रकेतेनादित्येभ्य आदित्यान् जिन्व'

वाज.सं. १५.६

(३) अन्धकारावृत सभी पदार्थों का प्रकाशक । उषा का विशेषण ।

'चित्रः प्रकेतो अजनिष्ट विभ्वा'

ऋ. १.११३.१, साम. २.१०,९९, नि. २.१९.

चयनीय या पूजनीय अन्धकारावृत सभी पदार्थों का प्रकाशक, सर्वत्र व्यापक उषाकाल प्रकट हुआ ।

(४) प्रकेतन, प्रज्ञापक, सूचक जनाने वाला, (५) ज्ञान ।

'न रात्र्य अह्न आसीत् प्रकेतः'

ऋ. १०.१२९.२

प्रलय काल की स्थिति में रात या दिन का ज्ञान नहीं था अर्थात् काल की स्थिति नहीं थी ।

(६) प्र + अन्तर्भावित ज्यन्कितत् (ज्ञानार्थक धातु) + घञ् = प्रकेत निरुक्त के भाष्यकार कश्यप प्राजापति के अनुसार ' प्र + जन् + घञ् प्रकेत'

प्रकुपित पर्वत - ज्वालामुखी पर्वत ।

'यः पर्वतान् प्रकुपितान् अरम्णात्'

ऋ. २.१२.२, अ. २०.३४.३

प्रखाद- (१) उत्तम राष्ट्र का भोक्ता, (२) खा जाने वाला शत्रु, (३) अति भक्षक ।

*'एवा नृभिरिन्द्रः सुश्रवस्या
प्रखादः पृक्षो अभि मित्रिणो भूत्'*

ऋ. १७.८.४

प्रखिदात् - बहुत पलित दीनों पर नियुक्त पुरुष ।

'नम आखिदते च प्रखिदते च'

वाज.सं. १९.४६, तै.सं. ४.५.९.२, मै.सं. २.९.८: १२७.३, का.सं. १७.१५

प्रखुद्- सबसे बढ़कर आनन्द लेने वाला आत्मा ।

'सुसत्यामिद्रवामस्यासि प्रखुदसि'

अ. २०.१३५.४

प्रगर्धिनी- लोलुप ।

'पृथगेपि प्रगर्धिनीव सेना'

ऋ. १०.१४२.४

प्रजाथ- (१) प्रजाथा ऋचाओं का पाठ, (२) उत्तम रूप से स्तुति करने योग्य ।
'प्रगाथा ये यजामहाः'
वाज.सं. १९.२४

प्रगाम- प्रकृष्ट गमन । पैगाम शब्द का मूल यही शब्द प्रतीत होता है ।

प्रघ्नत्- (१) उत्तम प्रहार करने वाला (२) उत्तम प्रकृष्ट मार्ग से उत्तम उद्देश्य की ओर जाने वाला ।
'पवमानः संतनिः प्रघ्नतामिव'
ऋ. ९.६९.२

प्रघासी- (१) उत्तम अन्न का भोजन करने वाला ।
'प्रघासिना हवामहे'
वाज.सं. ३.४४,श.ब्रा.२.५.२.२१,कौ.सू.५.५.१०
'स्वतवाश्च प्रघासी च'
वाज.सं. १७.८५, आप.श्रौ.सू. १७.१६.१८

प्रङ्- गमनार्थक धातु ।

प्रच्छत्- (१) अन्न, (२) प्रजा की सब ओर से रक्षा ।
'प्रच्चच्छन्दः'
वाज.सं. १५.५

प्रचर्षणी- द्वि.व. (१) सम्यक् सुखप्रापकौ - दया. (२) सर्वकार्य- व्यवहारों के प्रकृष्ट द्रष्टा इन्द्राग्नी, ।
'प्रचर्षणी मादयेथां सुतस्य'
ऋ. १.१०९.५

प्रच्यावयतु- ले जाय, पहुंचावे । सम्भवतः 'पहुंचाना' 'प्रच्यावन' का ही बिगड़ा रूप है ।
'पूषा त्वेत श्च्यावयतु प्रविद्वान्'
ऋ. १०.१७.३, अ. १८.२.५४, तै.आ. ६.१.१, आश्व.श्रौ.सू. ६.१०. १९, नि. ७.९.
हे मृतात्मा ! अव्यवहित ज्ञान एवं प्रत्यदर्शी आदित्य (विद्वान्) पूषा तुझे इस लोक से (इतः) उत्तम लोक में पहुंचावे (प्रच्यावयतु) ।

प्रचिकिताः- उत्कृष्टज्ञान वाला ।
'त्वं सोम प्रचिकितोमनीषा'
ऋ. १.९१.१, वाज.सं. १९.५२, तै.सं. २.६.१२.१, मै.सं. ४.१०.६, १५६.६, का.सं. २१.१४, ऐ.ब्रा. १.९.७, तै.ब्रा. २.६.१६, १, आश्व.श्रौ.सू. २.१९.२२, ३.७.७, ४.३.२

प्रचिकित्सा- प्रकृष्ट विचार । खूब अच्छी तरह से सोचना विचारना ।

प्रच्छिद् - दूर तक छेदन भेदन करने में समर्थ पुरुष ।
'संशाय प्रच्छिदम्'
वाज.सं. ३०.१७, तै.ब्रा. ३.४.१.१४.

प्रचित्रा- प्र + चित् + र + टाप् = प्रचित्रा । घी का विशेषण (१) कमनीय, (२) अद्भुत् विचित्र ।
'इन्द्र प्रचित्रया धिया'
ऋ. ८.६६.८, अ. २०.९७.२, साम. २.१०४२,
हे इन्द्र ! कमनीय स्तुतिरूपी कर्म से आ ।
हे राजन अद्भुत बुद्धि से या कर्म से यज्ञ की रक्षा के लिए आ ।

प्रच्युता- नष्ट ।
'यां प्रच्युतामनुयज्ञाः प्रच्यवन्त'
अ. ८.९.८

प्रचेतयति- (१) प्रज्ञापयति (प्रज्ञात कराता है), (२) बरसाती है - (३) बतलाता है, सुझाता है । (४) आविष्करोति (प्रकट करता है)
'महोअर्णः सरस्वती
प्रचेतयति केतुना'
ऋ. १.३.१२, वाज.सं. २०.८६, नि. ११.२७.
माध्यमिका वाक् सरस्वती अपनी प्रज्ञा से महान् जलराशि बरसाती है- वेदवाणी, कर्मयोग तथा ज्ञानयोग से महान् शब्द -सागर को बतलाती या सुझाती है ।-दया.

प्रचेता- प्र + चित् + असुन् = 'प्रचेतस्' । पु.ए.व.का रूप । (१) प्रकृष्ट चेतना का ज्ञान वाला । (२) अग्नि का विशेषण
'त्वं दूतः कविरसि प्रचेताः'
ऋ. १०.११०.१, अ. ५.१२.१, वाज.सं. २९.२५, मै.सं. ४.१३.३, २०.१.९, का.सं. १६.२०, तै.ब्रा. ३.६.३.१, नि. ८.५.
इन्द्र का विशेषण ।
'तमु त्वा नूनमसुरं प्रचेतसम्
राधो भागमिवेमहे'
ऋ. ८.९०.६, साम. २.७६.२.
हे इन्द्र ! अवश्य ही हम सब बलवान् या प्रज्ञावान् या महा- प्राण (असुरम्) प्रकृष्ट चेतना वाले तुझ में (प्रवेतसम्) पैतृक भाग के सदृश (भागम् इव) धन (राधस्) याचते हैं ।

'ततः पाहित्वं नः प्रचेतः'
अ. ७.१०६.१
प्रचेति- उत्तम ज्ञान देने वाला।
'तद्वां चेति प्रवीर्यम्'
ऋ. ३.१२.९, साम. २.१०४३, तै.सं. ४.२.११.१, मै.सं. ४.१०.४, १५२.१४, का.सं. ४.१५, तै.ब्रा. ३.५.७.३,
प्रचेतु- सबको चेताने वाला न्यायाधीश, (२) जिसमें आनन्द से चित्त प्रफुल्लित होता है।
'तेन सत्येन जागृतमधि
प्रचेतुने पदे'
ऋ. १.२१.६
प्रचोदयन्ता- प्रचोदयमानौ प्रेरयन्तौ। प्रेरित करते हुए।
अर्थ- (१) पूजा के लिए प्रेरणा करने वाले सूर्य और अग्नि - (२) शुभकर्मों की ओर प्रेरित करने वाले अग्नि और वायु।
'प्रचोदयन्ता विद्रथेषु कारू'
ऋ. १०.११०.७, अ. ५.१२.७, वाज.सं. २९.३२, मै.सं. ४.१३.३, २०२.८, का.सं. १६.२०, तै.ब्रा. ३.६.३.४, नि. ८.१२.
यज्ञकर्त्ता में पूजा के लिए प्रेरणा करने वाले तथा यज्ञों में स्तुति करने वाले (विदथेषु कारू) यज्ञों में शुभ कर्मों की ओर प्रेरित करने वाले (विदथेषु प्रचोदयन्ता) तथा अनेक कर्मों को सिद्ध करने वाले (कारू) अग्नि और वायु।
प्रजज्ञिवान् - प्रमुख।
'स जिन्वते जठरेषु प्रजज्ञिवान्'
ऋ. ३.२.११
प्रजनन - (१) मन्थन दण्ड के नीचे का काठ, (२) उत्तम सन्तान उत्पन्न करने का साधन-जननोन्द्रिय, (३) अपान नामक प्राण, (४) उत्तम प्रजा को उत्पन्न करने वाला राष्ट्र।
'अस्ति प्रजननं कृतम्'
ऋ. ३.२९.१
(५) उत्तम सन्तान उत्पन्न करने वाला वीर्य।
(६) उत्तम फल जनक।
'इदं हविः प्रजननं मे अस्तु'
वाज.सं. १९.४८, मै.सं. ३.११.१०, १५६.१६, का.सं. ३८.२, श.ब्रा. १२.८.१.२२, तै.ब्रा. २.६.३.५, शा.श्रौ.सू. ४.१३.१.
प्रजननवान् - (१) सन्तानोपादक की शक्ति से युक्त।
'प्रजापतिं ते प्रजननवन्त मृच्छन्तु'
अ. १९.१८९
प्रजनू- (१) प्रजास (२) उत्पादक शक्ति।
'शिवास्ते सन्तु प्रजन्व इह या इमाः'
अ. ९.४.६
प्रजवः- उत्तम वेग।
'वातस्येव प्रजवो नान्येन'
ऋ. ७.३३.८, नि. ११.२०
प्रजाहित- (१) छोड़ा गया, परित्यक्त।
(२) शाखा -रहित।
'वनानि न प्रजहितानि अद्रिवः'
ऋ. ८.१.१३, अ. २०.११६.१, पंच.ब्रा. ९.१०.१.
(३) बिना देख भाल किया हुआ।
प्रजा- (१) जो उत्पन्न किया जाय (प्रजायते), (२) प्रजा
'पुपोष प्रजाः पुरुधाअजानः'
ऋ. ३.५५.१९, नि. १०.३४.
(३) सन्तति।
'इह प्रियं प्रजयाते समृध्यताम्'
ऋ. १०.८५.२७, अ. १४.१.२१, आश्व.गृ.सू. १.८.८, आप.मं.पा. १. ९.४.
हे वधू! इस गृह में सन्तति से युक्त तेरा मंगल बढ़े।
(४) सन्तति, उत्पन्न करने का -विशेष सामर्थ्य।
'प्रजां त्वष्ट रधिनिधेह्यस्मै'
अ. २.२९.२
प्रजानती- उत्तम ज्ञान वती।
'प्रजानतीव न दिशो मिनाति'
ऋ. १.१२४.३, ५.८०.४
उत्तम ज्ञानवती उषा अन्य दिशाओं का लोप नहीं करती।
अथवा
स्त्री गुरुजनों के आदेशों को और उपदेशकों को नष्ट नहीं करती।
प्रजानन् - (१) जानता हुआ या (२) उत्पन्न करता हुआ।
'अपो यत्तूर्णेश्चरतिं प्रजानन्'

ऋ. १०.८८.६, नि. ७.२७.
जो सूर्य या अग्नि कर्मों को जानता या जल उत्पन्न करता हुआ शीघ्रता से चलता है। (३) उत्तम ज्ञान वान् पुरुष।
'प्रजानन् इत् ता नमसा विवेश'
ऋ. ३.३१.५

प्रजापति - (१) प्रजानां पाता वा पातयिता वा (प्रजाओं का पालक) (२) एक वैदिक देवता, (३) प्राण वायु, (४) वायु।
'प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो
विश्वा जातानि परिताबभूव
यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नोअस्तु
वयं स्याम पतयो रयीणाम्'
ऋ. १०.१२१.१०, अ. ७.८०.३, वाज.सं. १०.२०, २३.६५, वाज.सं.(का.) २९.३६, तै.सं. १.८.१४.२, ३.२.५.६, मै.सं. २.६.१२, ७२.४, ४.१४.१, २१५.९, का.सं. १५.८, श.ब्रा. १.६.१९, तै.ब्रा. २.८.१.२, ३.५.७.१, तै.आ.(आंध्र.) १०.५४, साम.मं.ब्रा. २.५.८, आप.मं.पा. २.२२.१९, नि. १०.४३.
हे प्रजापति, तेरे सिवा कोई (त्वत् अन्यः) इन सभी प्राणियों को (एतानि विश्वा जातानि) व्याप्त नहीं करता (न परिबभूव) तू ही उन सभी में व्याप्त है (ता)। इसी से कहता हूँ कि जिन कामनाओं से हम तुझे हवि देते है (यत्कामा ते जुहुमः) वह फल हमें दो (तत् फलम् नःअस्तु) और हमें दो (तत् फलम् नः अस्तु) और हम धनों के स्वामी बनें (वयं रयीणां पतयः स्याम)। (४) नाई।
'चिकित्सतु प्रजापतिः
दीर्घायुत्वाय चक्षसे'
अ. ६.६८.२

प्रजापति भक्षित- (१) प्रजापति या मातापिता द्वारा खाया गया, (३) उपयुक्त, (४) प्रजापतिद्वारा भक्षित।
'इन्द्रयीतस्य प्रजापतिभक्षितस्य
मधुमत उपहूत उपहूतस्य भक्षयामि'
वाज.सं. ३८.२८

प्रजायतेः दुहितरौ- (१) प्रजा के स्वामी राजा की दुहिता के समान हितकारिणी सभा और समिति।
'प्रजापतेर्दुहितरौ संविदाने'
अ. ७.१२.१, पा.गृ.सू. ३.१३.३.

प्रजावत्- प्रजा + वतुप् = प्रजावत्। अर्थ -(१) पुत्र = सहित।
'यं भद्रण शवसा चोदयासि
प्रजावती राधसाते स्याम'
ऋ. १.९४.१५, नि. ११.२४.
जिसे कल्याण -कारक बल से तथा पुत्र सहित धनसे प्रेरित करता है उसी प्रकार हम भी तेरे यजमान होवें।
(२) प्रजा से युक्त।
(हम प्रजावान् होवें)

प्रजावत् रयि- प्रजा के सहित अर्थात् भोगने वाले सन्तान से युक्त धन।
'ब्रह्म प्रजावदयिमश्वपस्त्यम्
पीतइन्द्रविन्द्रमस्मभ्यं याचतातात्'
ऋ. ९.८६.४१
प्रजा के सहित अर्थात् भोगने वाले सन्मान से युक्त अन्न, गों, हिरण्यादि धन तथा व्याप्त गृह या अश्व वाला घर (अश्वपस्त्यम्) हमारे लिये हे दीप्त सोम (इन्दो) तू पीया जाकर (पीतः) इन्द्र से मांग।
हे प्रकाशक परमेश्वर (इन्दो), प्राप्त किए हुए आप (पीतः) उत्तम प्रजा-सहित ब्रह्मज्ञान (प्रजावत् ब्रह्म) बल का भण्डार धन (अश्वपस्त्यं रयिम्) तथा तेजस्वी जीवात्मा को (इन्द्रम्) हमें प्रदान करें (अस्मभ्यं याचतात्)।

प्रजावत् वचः- (१) प्रजा की सम्मति से युक्तवाणी, व्यवस्था शास्त्र (२) प्रजा की हितकारी वाणी वेद।
'प्रजावता वचसा वह्निरासा
बोधि प्रयन्तर्जनितःवसूनाम्'
ऋ. १. ७६.४
हे राजन् या परमेश्वर, तू प्रजा की सम्मति से युक्त वाणी, व्यवस्था शास्त्र या प्रजा की हितकारिणी वाणी वेद से सब को ज्ञानवान् कर।

प्रजावत् शर्म - प्रजा अर्थात् सन्तति सहित कल्याण।
'प्रजावत् शर्म यच्छन्तु'
अ. १४.२.७३

प्रजावती इष् - (१) प्रजा से युक्त अश्व ।
'प्रजावती रिष आधत्तमस्मे'
ऋ.६.५२.१६.
हमें प्रजायुक्त अन्न दें ।

प्रजावती भन्दना - (१) सृष्टि -रचना विषयक स्तुति -ज.दे.श. (२) प्रजा अर्थात् सन्तान रूपी भल देने वाली स्तुति ।
'स भन्दना उदिपर्ति प्रजावतीः'
ऋ. ९.८६.४१, नि. ५२.
वह समस्त मनुष्य वर्ग सृष्टि रचना-विषयक स्तुति उच्चारण करना है ।
वह यजमान सन्तान रूपी फल देने वाली स्तुति करता है ।

प्रजावान्- प्रजाओं का स्वामी परमेश्वर -सूर्य ।
'उत त्र्युधा पुरुध प्रजावान्'
ऋ. ३.५६.३.

प्रजासनि - प्रजा देने वाला ।
'आत्म सनि प्रजासनि'
वाज.सं. १९.४८, मै.सं. ३.११.१०, १५६.१७, का.सं. ३८.२, तै.ब्रा. २.६.३.५, श.ब्रा. १२.८.१.२२, शा.श्रौ.सू. ४.१३.१, आप.श्रौ.सू. ६.११.५,

प्रज्ञान- दूरस्थ पदार्थों का ज्ञान ।
'प्रज्ञानाय नक्षत्रदर्शम्'
वाज.सं. ३०.१०.तै.ब्रा. ३.४.१.४.

प्रजिनोषि - प्र + जि (प्रसन्न करना, तृप्त करना) + सिप् । लट् म.पु. ए.व. का रूप । अर्थ- तू प्रसन्न करती, तृप्त करती है ।
'प्र या भूमिं प्रवत्वति
मह्ना जिनोषि महिनि'
ऋ. ५.८४.१, तै.सं. २.२.१२.२, मै.सं. ४.१२.२, १८१.२, का.सं. १०.१२, आप.मं.पा. २.१९.९, नि. ११.३७.

प्रजूति- महती वेगवती शक्ति ।
'मखस्य ते तविषस्य प्रजूतिम्'
ऋ. ३.३४.२, अ. २०.११.२

प्रणक् - प्र + नश् + क्विप् = प्रणक् । (१) नाश करने वाला ।
'मानः शंसो अररुषो
धूर्तिः प्रणङ् मर्त्यस्य'
ऋ. १.१८.३, वाज.सं. ३.३०, का.सं. ७.२, श.ब्रा. २.३.४.३५, आप.श्रौ.सू. ६.१७.१२.
दानशील पुरुष का नाशक, कष्टप्रद वचन या उपदेश हमारे पास न पहुंचे ।

प्रणपात् - (१) अति अधिक अगम्य या शक्तिशाली ।
'प्रणपात् कुण्ड पाय्यः'
ऋ. ८.१७.१३, अ. २०.५.७, साम. २.७७, तै.ब्रा. २.४.५.१,
(२) उत्तम पुत्रवत् पालनीय ।

प्रणव- (१) ओंकार, (२) उत्कृष्ट प्रशंसनीय नवयुवक ।
'प्रणवैः शस्त्राणां रूपम्'
वाज.सं. १९.२५

प्रणी- उत्तम मार्ग पर जाने वाली या अन्यों को ले जाने वाली ।
(२) प्रकृष्ट नीति वाला -दया. ।
'इमा उते प्रण्यो वर्धमानाः'
ऋ. ३.३८.२

प्रणीतिः- (१) वेद प्रतिपादित उत्तम मार्ग ।
'प्रणीती रभ्यावर्त्तस्व'
अ. ७.१०५.१
(२) कृपा, (३) सुन्दरनीति- दया.
'तव प्रणीत्यश्याम वाजान्'
ऋ. ४.४.१४, तै.सं. १.२.१४.६, मै.सं. ४.११.५, १७४.५, का.सं. ६.११.
हे अग्नि, तेरी कृपा से हम अन्न खाते हैं-
हे राजन् , हम आप की सुनीति से बहुविध अन्नों का भोग करें ।
(४) प्रणाम ।
'तदश्याम तव रुद्रप्रणीतिषु'
ऋ. १.११४.२, तै.सं. ४.५.१०.२, का.सं. ४०.११.
हे रुद्र, हम तेरी उत्तम नीतियों अनुसार चले या तेरी स्तुतियों में मग्न रहें ।

प्रणीती- प्रेरणा, अनुज्ञा, सुन्दरनीति

प्रणुत्त- प्र + नुद्ध + क्त । पछाड़ा गया ।
'बृहस्पति प्रणुत्तानाम्'
अ. ८.८.१९

प्रणेता- (१) उत्तम नायक (२) वस्तु नामकं मुख्य प्राण का प्रणेता आत्मा ।
'प्रणेतारं वस्यो अच्छा'
ऋ. ८.१६.१०, अ. २०. ४६.१, वै.सू. ४२.८.

(३) सब कार्यों का प्रवर्तक अग्नि, (४) सन्मार्ग में प्रजाओं को चलाने वाले ।
'त्वं वस्य वृषभ प्रणेता'
ऋ. २.९.२, तै.सं. ३.५.११.३, मै.सं. ४.१०.४, १५२.७, का.सं. १५.१२, ऐ.ब्रा. १.२८.३८.

प्रणेनीः - उत्तम उद्देश्यों की ओर ले जाने वाला
'प्रणेनी रुग्रो जरितारमूती'
ऋ. ६.२३.३

प्रणोद- प्रशिक्षिता ।
'ऋचा कपोतं नुदतं प्रणोदम्'
ऋ. १०.१६५.५, अ. ६.२८.१

प्रतक्वा- दुष्टों को खूब पीड़ा देने वाला, ।
'नभोऽसि प्रतक्वा'
वाज.सं. ५.३२, मै.सं. १.२.१२, २१.१४, का.सं. २.१३, पंच. ब्रा. १.४.३.

प्रतङ्क- (१) अतिकष्ट दायी ।
'प्रतङ्कं दद्रुषीणाम्'
अ. ५.१३.८
(२) दूसरे को पीड़ा देना, अत्याचार करना,
'यो निलायं चरति यः प्रतङ्कम्'
अ. ४.१६.२

प्रततामह- प्रपितामह ।
'एतत् ते प्रततामह स्वधा ये च त्वामनु'
अ. १८.४.७५, वै.सू. २२.२२, कौ.सू. ८८.११.

प्रतद्वसू- (१) प्राप्त वसू (प्राप्त प्रत प्रतद्) । प्राप्त वसु येन स प्राप्तं वसुः (जिस ने धन प्राप्त किया हो)
(२) धनों को पहुंचाने वाले ।
'इहत्या सधमाद्या
युजानः सोमपीतये
हरी इन्द्र प्रतद्वसू अभिस्वर'
ऋ. ८.१३.२७,.
हे इन्द्र, इस कर्म में (इह) उन दोनों अश्वों को (त्याहरी) जिन्हें ऋजीष और धान रुपी धन मिलते हैं (प्रतद्वसू) और जो साथ ही मत्त या प्रसन्न रहते हैं (सह माद्या) सोमपान करने लिये (सोमपीतये) हमारे यहां आ (अभिस्वर) । अन्य अर्थ- हे राजन् , साथ रहकर आनन्द देने वाले (सधमाद्या) और धनों को पहुंचाने वाले (प्रतद्वसू) पालन तथा संहार के गुणों से अपने को युक्त करता हुआ (हरी युजानः) शान्ति के लिये (सोमपीतये) राष्ट्र में सर्वत्र विचरें (अभिस्वर) ।

प्रतन्वती- खूब बढ़कर फैलने वाली ओषधि ।
'प्रतन्वतीरोषधीरा वदामि'
अ. ८.७.४.

प्रतर- (१) प्रकृष्ट । (२) अति उत्कृष्ट
'द्राघीय आयुः प्रतरं दधानाः'
ऋ. १.५३.११, १०. ८२.२,३, ११५.८, अ. ८.२.२, १२.२.३०, २०.२१.११ तै.आ. ६.१०.२.२, आश्व. गृ.सू. २.९.२.
(३) खूब अच्छी तरह वेगवान् ।
'अस्तेव सु प्रतरं लायमस्यन्'
ऋ. १०.४२.१, अ. २०.८९.१, वै.सू. ३३.१९.
(४) दुःख सागर से तरने का साधन ।
'अधिक्षमि प्रतरं दीध्यानः'
ऋ. १०.१०.१, अ. १८.१. १
(५) शत्रु को पार करने वाला सैन्य, (६) भवसागर को पार करने वाला ज्ञानानुष्ठान ।
'साम्राज्याय प्रतरं दधानः'
ऋ. १.१४१.१३, का.सं. ७.१२, आप.श्रौ.सू. ५.९.१०.
साम्राज्य पद या सम्राज्ञ परम प्रभु के अद्वितीय वेद के लाभ के लिए शत्रुगण और भवसागर को पार करने वाले सैन्य और ज्ञानानुष्ठान को धारण करता हुआ (६) खूब अच्छी प्रकार दुःख संकट आदि से तरने और दूर जाने का साधन-नाव आदि, (२) संसार सागर में तरण का साधन स्त्री ।
'पुरुष्टुताय प्रतरं दधातन'
ऋ. ५.३४.१

प्रतरण- प्र + तृ + ल्युट् = प्रतरण (१) कूदना , फांदना, (२) पैंतरा करना, (३) कूदने फानने वाला ।
(४) जीवन को दीर्घ करने वाला ।
'आयुषोऽसि प्रतरणम्'
अ. १९.४४.१
(५) सबको नौका के समान पार उतारने वाला ।
'क्षेम्यस्तिष्ठन् प्रतरणः सुवीरः'
अ. १२.२.४९
'गयस्फानः प्रतरणः सुवीरः
अवीरहां प्रचरो सोम दुर्यान्'

ऋ. १.९१.१९, वाज.स. ४.३७, तै.सं. १.२.१०.१, का.सं. ११.१३, मै.सं. ४.१२.४, १८८.१२. ऐ.ब्रा. १.१३.२४, श.ब्रा. ३.३.४.३० .
धन तथा गौ आदि पशुओं को बढ़ाने वाला, दुःखों से प्रजा को पार उतारने वाला उत्तम वीरों से युक्त वीर पुरुषों का व्यर्थ नाश करने वाला न होकर (अवीरहा) तू हमारे घरों या द्वार वाले नगरों में अच्छी प्रकार जा ।
'त्वं वाजः प्रतरणो बृहन्नसि'
ऋ. २.१.१२
'वास्तोष्पते प्रतरणो न एधि
ऋ. ७.५४.२, पा.गृ.सू. ३.४.७, आप.मं.पा. २.१५.२०, हि.गृ.सू. १.२८.१.
'नमः प्रतरणाय चोत्तरणाय च'
वाज.सं. १६.४२, तै.सं. ४.५.८.२, मै.सं. २.९.८, १२६.१०. का. सं. १७.१२.

प्रतरणी– (१) दुःख से पार लगाने वाली ।
'सुङ्गली प्रतरणी गृहाणाम्'
अ. १४.२.२६
(२) प्रतरति यया – दया (३) गति शील गाड़ी
(४) संसार मार्ग से तार देने वाली स्त्री ।
'तां वहामि प्रतरणीमवस्युवम्'
ऋ. ५.४६.१

प्रतरीता– उत्पादक् ।
'प्रतरीतोषसो दिवः'
(२) देने या बढ़ाने वाला ।
'बृहस्पते प्रतरीता स्यायुषः'
ऋ. १०.१००.५

प्रतवसः– प्रकृष्ट बल वाले ।

प्रतवाः– प्रतवस् –प्रबल
'कद्वाताय प्रतवसे शुभं ये'
ऋ. ४.३.६, मै.सं. ४.११.४, १७२.१३, का.सं. ७.१६

प्रत्नः– (१) पुराण, (प्राचीन) ।
(२) पुरातन ।
'प्रत्नासो अग्न ऋतमाशशानाः'
अ. १८.३.२१

प्रत्नथा– प्रत्न + थाल = प्रलया । (१) प्राचीनवृत्, चिरन्तन की तरह, (२) पुरातन भृगु आदि ऋषियों की तरह ।
'तं प्रत्नथा पूर्वथाविश्वथेमथा'
ऋ. ५.४४.१, वाज.सं. ७.१२, का.सं. १.४.९.१, मै.सं. १.३.११, ३४.४, का.सं. ४.३, कौ.ब्रा. २४.९, श.ब्रा. ४.२.१.९, नि. ३.१६ .
हे राजन् , सनातन धर्म की तरह (प्रत्नथा) प्राचीन राजाओं की तरह (पूर्वथा) सभी प्रजाओं की अनुमति के अनुसार (विश्वथा) तथा इस मन्त्रिमण्डल की सम्मति के अनुकूल (इमथा) उस अपने आप को (तम्) – दया. ।
हे सोम, तूने पुरातन भृगु आदि ऋषियों की तरह (प्रत्नथा) सब ऋषियों तथा ऋषिपुत्रों के मनोरथों को जैसे और पूर्ण किया उस तरह (विश्वधा) तथा वर्त्तमान कालीन ऋषियों एवं यजमानों की कामनाएं जैसे तूने पूर्ण की उस तरह (इमथा) उस यजमान को (तम्) ।
पुनः
(३) पूर्व से ही वर्तमान बीस ।
'शुष्मा यदस्य प्रत्नथोदीरते'
ऋ. २.१७.१

प्रत्नम् ओकः– सब से पुरातन आश्रय रूप परब्रह्म
'अनु प्रत्नस्यौकसः'
ऋ. १.३०.९, ८.६९.१८, अ. २०.२६.३, २०.९२.१५

प्रत्नधाम– पुरातन सूर्यादि लोक ।
'तदिद् रुद्रस्य चेतति
यह्वं प्रत्नेषु धामसु'
ऋ. ८.१३.२०

प्रत्नःपिता– प्राचीन रक्षक, विद्युत नामी वरुण का विशेषण ।
'पितैषा प्रत्नः अभिरक्षतिव्रतम्'
ऋ. ९.७३.३, तै.आ. १.११.१, नि. १२.३२.
प्राचीन रक्षक वह विद्युत् नामक वरुण देव मरुत् प्रभति माध्यमिक देवों के कर्म की रक्षा करते हैं ।

प्रत्नमन्म– अनादिज्ञान वेद ।
'अग्नि प्रत्नेन मन्मना'
ऋ. ८.४४.१२, मै.सं. ४.१०.१, १४२.१५, ४.१०.५, १५४.११, का.सं. २.१४, ऐ.ब्रा. १.४.३, तै.ब्रा. ३.५.६.१, आश्व.श्रौ.सू. १.५.३५.

प्रत्नं मानम् – अति प्राचीन सनातन ज्ञान या सर्वनिर्माता प्रभु ।
'प्रत्नात् मानात् अधि आये समस्वान्'
ऋ. ९.७३.६

प्रत्लवत् - पुरातन विद्वानों के समान ।
'प्रत्लं प्रत्लवत् परितंस यध्यै'
अ. २०.३६.७

प्रतारिषत् - प्रवर्धयतु (बढ़ावे) । लोट् अर्थ में लट् का प्रयोग ।

प्रतारिषः- लिङ् के अर्थ में लट् का प्रयोग । लिङर्थे लोटि' से सिप् । अर्थ है-प्रवर्धय (बढ़ा) ।

प्रत्नासः- वृद्धजन । 'प्रत्न' का बहुवचन ।
'प्रत्नासो अग्न ऋतमाशुषाणाः'
ऋ. ४.२.१६, अ. १८.३.२१, वाज.सं. १९.६९,तै.सं. २.६.१२.४.

प्रत्यग्र - आगे बढ़ा हुआ भाग ।
'वृथा मध्यं प्रत्यग्रं श्रृणीहि'
ऋ. ३.३०.१७, नि. ६.३.

प्रत्यग्रभीष्टाम् - प्रति + अग्रभीष्टाम् । प्रतिगृहीत किया । 'गृह्' धातु के लुङ् प्र.पु. द्वि.व. का रूप ।

प्रत्यङ्- (१) प्रति + अञ्छ् (गत्यर्थक) सत्यञ्च् । + क्विप् = । प्रथमा ए.व.में प्रत्यङ् । अर्थ - (१) प्रतिकूलगामी । जल का विशेषण ।
'पत्तो जगार प्रत्यञ्चमत्ति'
ऋ. १०.२७.१३.
आदित्य उस प्रतिकूल जाते हुए जल को ग्रहण कर स्वयं पी जाता है अर्थात् अपने मण्डल में स्थापित करता है (प्रत्यञ्म् अति) ।
(२) पूर्व दिशा ।
(३) प्रतिकूल दिशा से आने वाला ।
(४) प्रति पक्षी शत्रु (५) बाधक प्रतिपक्षी क्रोधादि व्युत्थान ।
'जहि प्रतीचो अनूचः पराचः'
ऋ. ३.३०.६, अ. ३.१.४.

प्रत्यदर्शि- देखा जाता है ।
'प्रतियत् स्या नीथा दर्शि दस्थोः'
ऋ. १.१०४.५
जिस प्रकार वह स्तुति, देखी जाती है -सा. जों यह न्याय-प्राप्त प्रजा (नीथा) सुरक्षित देखी जाती है । - दया.

प्रत्यभिचरण- अपने विरुद्ध प्रतिद्वन्दी को लक्ष्य कर उस पर आक्रमण करने में समर्थ ।
'प्रत्यभिचरणोऽसि'
अ. २.११.२

प्रतारीः- प्रबर्द्धय (प्रवर्धित कर, बढ़ा ।
'सोम राजन् प्र ण आयूंषितारीः'
ऋ. ८.४८, नि. ४.७.
हे सोम ! हे स्वामिन् ! हमारी आयु को बढ़ा ।

प्रत्यातिष्ठन्ती- खूब मजबूती से जड़ जमाकर रहने वाली लता ।
'जयन्ती प्रत्यतिष्ठन्ती'
अ. ५.५.३

प्रत्याश्रावः- (१) यज्ञ में अस्तु श्रौषट् । इस प्रकार कहना प्रत्याश्राव है । (२) विद्यार्थी को विद्योपदेश की प्रत्याश्राव है ।
'प्रत्याश्रावोअनुरूपः'
वाज़.सं. १९.२४

प्रत्रास- खूब भय ।
'प्रत्रासेनाज्ये हुते'
अ. ५.२१.२

प्रत्वक्षसः- तीक्ष्ण शस्त्रों से शत्रुओं को खूब कांट छांट करने वाले ।
'प्रत्वक्षसः प्रतवसो विरप्शिनः'
ऋ. १.८७.१, ऐ.ब्रा. ४.३०.११, कौ.ब्रा. २०.२,

प्रत्वक्षाः- शत्रुबल - नाशक ।
'प्रत्वक्षसं वृषभं सत्य शुष्मम्'
ऋ. १०.४४.३, अ. २०.९४.३,
(२) अच्छी प्रकार शत्रुओं का छेदन भेदन करने वाला - मरुतों का विशेषण ।
'प्रत्वक्षसो महिना द्यौरिवो रवः'
ऋ. ५.५७.४.
(३) अति तेजस्वी ।

प्रत्वक्षाणः- उत्तम रीति से बनाता या गढता हुआ ।
'प्रत्वक्षाणो अति दिशा सहांसि'
ऋ. १०.४४.१, अ. २०.९४.१

प्रतान- फैलाव, विस्तार ।
'शतं तव प्रतानाः'
अ. ६.१३९.१

प्रति- (१) एक उपसर्ग । 'अभि' के विपरीत अर्थ का द्योतक जैसे अभिगत, प्रतिगत ।
'प्रतित्यं चारुमध्वरं गोपीथाय प्रहूयसे । मरुद्भिरग्न आगहि'
ऋ. १.१९.१, साम.१.१६, आश्व.श्रौ.सू. २.१३.२, वै.सू. २३.८, कौ.सू. १२७.७, नि. १०.३६.
हे अग्नि ! उस अंग वैल्कव्यरहित सुन्दर यज्ञ

के प्रति आकर (त्वं चारुं अध्वरं प्रति) सोम पान करने के लिए (गोपीथाय) तू प्रकर्ष के साथ बुलाया जाता है (प्रहूयसे)। तू मरुतों के साथ आ (मरुद्भिः आगहि)।

(२) प्रतिद्विन्द्वी। मुकाबले में आने वाला।

'नहित्वा कश्चन प्रति'

ऋ. ८.६४.२, अ. २०.९३.२, साम. २.७०५.

प्रतिकामम्- (१) इच्छानुकूल, (२) भरपेट।

'उशन्नुशद्भिः प्रतिकाममत्तु'

ऋ. १०.१५८, अ. १८.३.४६, वाज.सं. १९.५१.

(३) प्रेम का बदला।

'प्रतिकामाय वेत्तवे'

अ. २.३६.७

प्रतिकाम्य- (१) कन्या के प्रति अभिलापा करने वाला वर।

'दधातु प्रति काम्यम्'

अ. ६.६०.३

(२) अभिलाषा करने के योग्य।

'यो वरः प्रतिकाम्यः'

अ. २.३६.५.६

प्रतिक्षियन्- विद्यमान।

'प्रतिक्षियन्त भुवनानि विश्वा

ऋ. २.१०.४, वाज.सं. ११.२३, तै.सं. ४.१.२.५,५.१.३.२, मै.सं. २.७.२.७६.३, का.सं. १६.२.१९.३, १९.३. श.ब्रा. ६.३.३.१९.

प्रतिक्रोश- (१) कलह का अवसर।

'प्रतिक्रोशेऽमावास्ये'

अ. ४.३६.३

प्रतिग्रहीता- (१) दान लेने वाला।

'नास्य दातेशे न प्रतिग्रहीता'

अ. ४.११.५

'मयोमह्यं प्रतिग्रहीत्रे'

वाज.सं. ७.४७, मै.सं. १.९.४, १३३.१५.२०, १३४.४, १०.१५, श.ब्रा. ४.३.४.२८, तै.ब्रा. २.२.५.४, शां.श्रौ.सू. ७.१८.१.

(२) धन या दान लेने वाला।

'कामो दाता कामः प्रतिगृहीता कामैतत्ते'

वाज.सं. ७.४८

प्रतिगृभाय- स्वीकार कर।

'प्रतिस्तोमं शस्यमानं गृभाय'

ऋ. ४.४.१५, तै.सं. १.२.१४.६, मै.सं. ४.११.५.१७४.७, का.सं. ६.११.

हमारे कहे स्तोत्रों या प्रशंसनीय कार्यों को स्वीकार कर।

प्रतिध्नाना- छाती पीटती हुई।

'प्रतिध्नानाश्रुमुखी'

अ. ११.९.७

प्रतिचक्ष्य- परित्याग कर

'तेविद्वांसः प्रतिचक्ष्या नृता पुनः'

ऋ. २.२४.६

प्रतिचक्ष्या- प्रत्यक्ष, साक्षात्,।

'अस्मांभिरु नु प्रति चक्ष्याभूत्'

ऋ. १.११३.११,तै.सं. १.४.३३, तै.आ. ३.१८.१.

हमें भी वह उषा प्रत्यक्ष हो।

प्रतिच्यवीयसी- (१) पति के प्रति प्रेम से झुकने वाली।

'न यत् प्रतिच्यवीयसी'

ऋ. १०.८६.६ अ. २०.१२६.६

(२) पति के पास जाने वाली।

प्रतीचीन फल - (१) अपामार्ग (चिचिरा) जो अपने फलों को छूने वाले के प्रति लिपटा देता है। (२) अपने शत्रुओं के विपरीत फल उत्पन्न करने वाले कार्यों को करने वाला।

'प्रतीचीन फलो हित्वम्'

अ. ७.६५.१

प्रतिजन - प्रतिकूल जन।

'हयन्तु त्वा प्रतिजनाः'

अ. ३.३.५

प्रतिजानत् (१) व्यवहार जाने वाला (२) बालिग, वयस्क पुत्र, (३) प्रतिज्ञा करने वाला।

'अंशं न प्रतिजानते'

ऋ. ३.४५.४

प्रतिजुषस्व- एक एक कर सेवन कर दे।

'उशन् हव्यानि प्रतिनोजुषस्व'

ऋ. १.१०१.१०.

हे इन्द्र, हमारे हव्यों को श्रद्धा पूर्वक सेवन कर।

प्रतिजोपयेते- संवेते, प्रत्यासंवेते। णिच् का प्रयोग यहां स्वार्थ में हुआ है। अतः अर्थ में भिन्नता नहीं आई है। अथ हैं - (१) सेवक करते हैं, (२) सेवा भाव से बढ़े।

प्रतिदधानः - धनुष पर बाण लगाने वाला।

'नम आतन्वानेभ्यः

प्रतिदधानेभ्यश्च वो नमः'
वाज.सं. १६.२२, तै.सं. ४.५.३.२, मै.सं. २.९.४,१२३.१०, का. सं. १७.१३.

प्रतिदधौ- बरसाता या रखता है।
'शीर्ष्णा शिरः प्रतिदधौ वरूथम्'
ऋ. १०.२७.१३.
आदित्य अपने रश्मिजाल से (शीर्ष्णा) ताप निवारक वृष्टि जल को (वरुथम्) समस्त संसार के सिर पर (शिरः) बरसता या रखता है (प्रतिदधौ)।

प्रतिदीवा- (१) प्रतिपक्षी होकर विजय करने वाला -शत्रु।
'आदिनवं प्रतिदीव्ने'
अ. ७.१०९.४
(२) प्रतिदिवन्। प्रतिपक्षी द्यूत का खिलाड़ी।
'प्रतिदीव्नेदधत आकृतानि'
ऋ. १०.३४.६

प्रतिदुहीयात् - (१) प्रतिदुग्धाम्, ददातु (प्रदान् करे)।
'नूनं साते प्रतिवरं जरित्रे
दुहीयादिन्द्र दक्षिणा मघोनी
ऋ. २.११.२१, नि. १७.
(२) प्रति पूरयतु - (प्रतिदोहन करे, प्रतिपूर्ण करे)
हे इन्द्र, तेरी वह पुत्र रूपी दक्षिणा धनधान्य से संयुक्त होती हुई (इन्द्र सा ते दक्षिणा मघोनी) स्तुतिशील यजमान को अभिमत अर्थ प्रदान करे (वरं प्रति दुहीयात्)

प्रतिदोषम् - प्रतिदिन रात।
'अस्थाद् देवः प्रतिदोषं गृणानः'
ऋ. १.३५.१०, वाज.सं. ३४.२६.
अपने गुणों से स्तुति करने योग्य होता हुआ (गृणानः) सविता दिनरात विराजमान है।

प्रतिधर्ता- (१) धारण करने वाला, (२) प्रतिकार करने वाला।
'अग्निर्हेतीनां प्रतिधर्ता'
वाज.सं. १५.१०, तै.सं. ४.४.२.१, मै.सं. २.८.९, ११३.५, का.सं. १७.८, श.ब्रा. ८.६.१.५.

प्रतिधा- (१) प्रतिकूल रूप से धारण करना।
'मा शकन् प्रतिधामिषुम्'
अ. ८.८.२०, ११.१०.१६.
(२) प्रतिधान, प्रहित, (३) प्रणिधान, ध्यान, (४) झोंका, (५) टिकाव,।
'एकया प्रतिधापिबत्
साकं सरांसि त्रिशतम्
इन्द्रः सोमस्य काणुका'
ऋ. ८.७७.४, नि. ५.११.
इन्द्र एक ही प्रणिधान से या एक ही झोंके से एक साथ ही सोम रस के तीस सुन्दर बर्तनों को पी गए।
अथवा,
कालाभिमानी इन्द्र कृष्ण और शुक्ल पक्ष के तीसों रातों को एक सा अनुभव करते हैं। अथवा, यह सूर्य एक टिकाव से पक्ष से तीस दिन रात में आई हुई चन्द्रमा की निर्मल रश्मियों को पीता है।
(६) प्रतिधान, अमावास्या या प्रतिपदा की विपरीत स्थिति (६) विग्रह पूर्वक आक्रमण (८) सावधानता।

प्रतिधातवे - प्रत्येक पदार्थ तक पहुंचने के लिये
'अपदे पादा प्रतिधातवेऽकः'
ऋ. १.२४.८, वाज.सं. ८.२३, तै.सं. १.४.४५.१, मै.सं. १.३.३९, ४५.४, का.सं. ४.१३, श.ब्रा. ४..४.५.५
उसने सूर्य की किरणों को प्रत्येक पदार्थ तक पहुंचने के लिये (प्रतिधातवे) अगम्य आकाश में (आपदे) अवकाश (पादा) बनाया।

प्रतिधि- (१) प्रतिपालक।
'स्तोमा आसन् प्रतिधयः'
ऋ. १०.८५.८, अ. १४.१.८
(२) आदरणार्थ प्रस्तुत पदार्थ, उपहार।
(३) प्रतिनिधि।
'प्रतिधिना पृथिव्या पृथिवींजिन्व'
वाज.सं. १५.६, मै.सं. २.८.८, ११२.६.

प्रतिधीयमान- (१) वह पदार्थ जो किसी कर्म के फल फलस्वरूप दिया जाता है।
'यामर्त्याय प्रतिधीयमानमित्
कृशानोरस्तुरसनामुरुष्यथः'
ऋ. १.१५५.२, नि. ११.८
जो इन्द्र और विष्णु यज्ञशील मनुष्य को (या मर्त्याय) यज्ञ के पलस्वरूप (प्रतिधीयमानम् इत्) अन्नदेता है।

(२) प्रतिक्षण धारण पोषणार्थ देने योग्य अन्नादि पदार्थ ।

प्रतिधुक पीयूषम् - (१) नवीन दुहा हुआ या प्रति दिन का दुहा हुआ दूध (२) प्रतिकल्प, प्रतिसर्ग में दोहन करने योग्य पीयूष-पयस् रस, प्राण या परम सूक्ष्म जगत् का मूल कारण भूत परमाणुरूप अपः

'वत्सो जरायु प्रतिधुक् पीयूषः'

अ. ९.४.४, तै.सं. ३.३.९.२, मै.सं. २.५.१०, ६१.१८.

प्रतिधृष् - पराजित होना, पराजयः

'तिग्मा अस्य हनवोन प्रतिधृषे'

ऋ. ८.६०.१३

प्रतिनन्दन- प्रसन्न करने वाला ।

'आयतः प्रतिनन्दनम्'

अ. ७.३८.१

प्रतिपण- दूसरे के पदार्थ को स्वयं प्राप्त करने के लिये दर नियत करना ।

'प्रतिपणः फलिनं मा कृणोतु'

अ. ३.१५.४

प्रतिपत् - (१) प्रत्येक पदार्थ को प्राप्त करने में समर्थ अधिकारी, (२) प्राप्त कने योग्य पद, (३) श्री रूपा स्त्री, (४) श्री ।

'प्रतिपदसि प्रतिपदे त्वा'

वाज.सं. १५.८

प्रति प्रस्थान- शत्रु के प्रति चढाई करने वाला अधिकारी ।

'आश्विनश्च मे प्रति प्रस्थानश्च में'

वाज.सं. १८.१९, तै.सं. ४.७.७.१, मै.सं. २.११.५, १४३.४, का. सं. १८.११,

प्रतिपाण - प्रत्येक पदार्थ या रक्षा व्यापार करने में समर्थ परमेश्वर ।

'प्रतिपाणायक्षये'

अ. १९.५२.३

प्रतिप्राश- (१) हृदय में व्याप्त शोक, मोह, क्रोध आदि भावों को (प्राश) जीतने के लिये विपरीत भावना ।

'प्राशं प्रतिप्राशो जहि'

अ. २.२७.१-६

प्रतिभृत - (१) साक्षात् भेंट किया हुआ ।

'पिबा यथा प्रतिभृतस्य मध्वः'

ऋ. १०.९६.१२, अ. २०.३२.२

(२) प्रत्येक मनुष्य से धारण करने योग्य ।

'या इन्द्र प्रतिभृतस्य मध्वः'

ऋ. ४.२०.४

(३) एवज में बदले में दिया गया भरण पोषणार्थ पदार्थ ।

'हव्यानि च प्रतिभृता वीतं नः'

ऋ. ७.६८.१

प्रतिमा- (१) प्रत्येक पदार्थ का ज्ञान कराने वाली बुद्धि ।

'प्रतिमाच्छन्द'

वाज.सं. १४.१८, तै.सं. ४.३.७.१, मै.सं. २.१३.१४, १६३.९, २.८.३, १०८.१२, ३.२.९, ३०.३, का.सं. १७.३, ३९.४.

(२) मापक साधक, (३) परिमाण, (४) प्रतिकृति, मूर्त्ति ।

'न तस्य प्रतिमा अस्ति'

वाज.सं. ३२.३

प्रतिमान - (१) सादृश्य, सदृश, मुकाबला करने वाला ।

(२) परिणाम करने वाला, (३) सबको मानने वाला, (४) सबसे अधिक बल शाली ।

'सत सतः प्रतिमानं पुरोभूः'

ऋ. ३.३१.८

(५) प्रतिमान भूतानि समानभूतानि द्रव्याणि (समान एक मान वाला पदार्थ) -

(६) यैः प्रतिमीयन्ते स्तोत्राणि तानि-दुर्ग

(७) असुर या स्थान (८) उपमा

'प्र साक्षते प्रतिमानानि भूरि'

ऋ. १०.१२०.६, नि. ११.२१.

जो इन्द्र अनेकों असुरों को अभिभूत करता या उनके स्थानों पर अधिकार जमाता है (प्रसाक्षते)-सा. । जो अनेक उपमाओं को (प्रतिमा नामि) पाता है (प्रसाक्षते) ।

प्रतिमिता - प्रत्येक अंग में नापी हुई ।

'उपमितां प्रतिमिताम्'

अ। ९.३.१

प्रतिमुञ्चते - विराजता है, प्रतिबिम्बित होता है ।

'विश्वारूपाणि प्रति मुञ्चते कविः'

ऋ. ५.८१.२, वाज.सं. १२.३, तै.सं. ४.१.१०.४, मै.सं. २.७.८, ८४.१४, ३.२.१,१४.१५, का.सं.

१६.८, ऐ.ब्रा. १.२९.१४, कौ.ब्रा. ९.३, श.ब्रा. ६.७.२.४, आश्व.श्रौ.सू. ४.९.५, नि. १२.१३.

वह क्रान्तदर्शन मेधावी सविता (कविः) सभी रुपों में विराजते हैं (विश्वा रूपाणि प्रतिमुञ्चते)

प्रतिमुञ्चमानः- बदलने वाला, रूप बदलने वाला ।

'ये रूपाणि प्रतिमुञ्चमाना
असुराः सन्तः स्वधया चरन्ति'

वाज.सं. २.३०, श.ब्रा. २.४.२.१५, आश्व.श्रौ.सू. २.६.२, शां. श्रौ.सू. ४.४.२, आप.श्रौ.सू. १.८.७, कौ.सू. ८८.१, साम.मं.ब्रा. २.३.४.

प्रतिमान- न (१) प्रतिमान, (२) प्रत्येक पदार्थ का निर्माता (३) विश्व का प्रति निधि रूप (४) प्रत्येक पदार्थ में तद्रूप-परमात्मा ।

'यो विश्वस्य प्रतिमानं बभूव'

ऋ. २.१२.९, अ. २०.३४.९

प्रतियन्ति- लौट जाती हैं, लीन हो जाती हैं ।

'प्रति गावोऽरुषीर्यन्ति मातरः'

ऋ. १.९२.१, साम. २.११०.५, नि. १२.७.

गमनशीला, आरोचमाना, सूर्यप्रकाश की निर्मात्री उषाएं सूर्य में ही लीन हो जाती है ।

प्रतिर- (१) वर्धय (बढ़ा) । (२) विशेषण होने पर 'प्रतिर' का अर्थ प्रतीर्ण दीर्घ होता है ।

प्रतिरते- प्र + तृ (वर्द्धनार्थक) के लट् प्र.पु.ए.व का रूप । अर्थ है- बढ़ाती है ।

'प्रोर्वशी तिरत दीर्घमायुः

ऋ. १०.९५.१०, नि. ११.३६.

जल की ऊर्मियों से अन्न उत्पन्न कर उर्वशी (माध्यमिका वाक्) दीर्घ आयु बढ़ाती है । (दीर्घम् आयुः प्रतिरते) ।

पुनः

'प्र चन्द्रमास्तिरते दीर्घमायुः'

ऋ. १०.८५.१९, अ. ७.८१.२, १४.१.२४, तै.सं. २.४.१४.१, मै.सं. ४.१२.२, १८१.६, का.सं. १०.१२, नि. ११.६.

चन्द्रमा आयु को दीर्घ करता है ।

प्रतिरन्तु- प्रवर्द्धयन्तु (बढ़ावें) तिर् बढ़ाना अर्थ में आया है ।

'देवा न आयुः प्रतिरन्तु जीवसे'

ऋ. १.८९.२, वाज.सं. २५.१५, मै.सं. ४.१४.२, २१७.९, नि. १२.३९.

पुनः

देव या सूर्य रश्मियां हमारी आयु को चिरजीवन के लिये प्रवर्द्धित करें ।

प्रतिरम् - प्रतीर्ण, दीर्घ ।

'तस्मा इन्द्रं प्रतिरमेम्यायुः'

ऋ. ८.४८.१०, तै.सं. २.२.१२.३, मै.सं. ४.११.२, १६४.१०, का.सं. ९.१९.

उसके लिये तुझ इन्द्र से प्रतीर्ण आयु मांगता हूं-सा. । उससे दीर्घायु की प्राप्ति के लिए अन्नदाता प्रभु से (इन्द्रम्) याचना करता हूँ ।

प्रतिरव- (१) गुरु के कहे वचन को दुहराने वाला शिष्य, (२) प्रतिस्पर्द्धी ।

'स्वाहा प्रतिरवेभ्यः'

वाज.सं. ३८.१५, श.ब्रा. १४.३.२.३, कौ.सू. २६.७.४९.

प्रतिलोभयन्ती- प्रतिलोभयमाना, विमोहयन्ती (लुभाती हुई, विमुग्ध करती हुई) ।

प्रतिवव्रिः- प्रतिरूप, जल का वाष्पीय रूप ।

'विद्युत्भवन्ती प्रतिवव्रिमौहत'

ऋ. १.१६४.२९, अ. ९.१०.७, सै.ब्रा. २.२६०, नि. २.९.

ग्रीष्म ऋतु में वही विद्युत् सूर्य रूप से रश्मियों द्वारा बरसाये जस को वाष्प रूप में जलाशयों से ले लेता है ।

प्रतिवस्तोः- प्रतिदिन ।

'प्रतिवस्तो रहद्युभिः'

ऋ. १०.१८९.३, अ. ६.३१.३, २०.४८.६, साम २.७२८, आ.सं. ५.६, वाज.सं. ३.८, का.सं. ६.१३, श.ब्रा. २.१.४.२९.

प्रतिविधेम- परिचर्या करें, पूजा करें ।

'प्रति वां सूर उदिते विधेम'

ऋ. ७.६३.५, गौ.ब्रा. २.३.१३.

हे मित्रावरुण, या अध्यापक 'और उपदेशक आ हम सूर्य को उदित होने पर (सूरे उदिते) दोनों की पूजा करें ।

प्रतिबद्ध- खूब अपने लिये सावधान जीव ।

'प्रतिबुद्धा अभूतन'

ऋ. १.१९१.५, अ. ४.३७.३,४,

प्रतिवेदयन् - परिचय कराता हुआ ।

'यज्ञं देवेभ्यः प्रतिवेदयन्नजः'

ऋ. १.१६२.४, वाज.सं. २५.२७, तै.सं. ४.६.८.२, मै.सं. ३.१६.१ ,१८२.३, का.सं. (अश्व.) ६.४.

प्रतिवेश - (१) पड़ोसी ।
'माते अग्ने प्रतिवेशा रिषाम'
अ. ३.१५.८, १९.५५.१, २.७,
(२) धर्म -मर्यादा ।

प्रतिबोध- (१) बल, (२) उत्तम शिक्षा ।
'प्रतीबोधेन नाशय'
अ. ८.६.१५, १९.३५.३

प्रतिश्रव- प्रतिशब्द करने वाला ।
'नमःश्रवायच प्रतिश्रवाय च'
वाज.सं. १६.३४, तै.सं. ४.५.६.१, मै.सं. २.९.६, १२५.७, का.सं. १७.१४.

प्रतिशीवरी- सब को अपने ऊपर सुलाने वाली पृथिवी ।
'माहिंसीस्तत्र तो भूमे
सर्वस्य प्रतिशीवरि'
अ. १२.१.३४

प्रतिष्कुतः - (१) जो दूसरे से प्रति शब्दित हो-सा. (२) जो धर्म मार्ग से स्खलित हो-दया. ।
'ईशानो अप्रतिष्कुत इन्द्रो अंग'
ऋ. १.८४.७, अ. २०.६३.४, साम. १.३८९, २.६९१
सम्पूर्ण जगत् का स्वामी (ईशानः) दूसरे से अप्रतिशब्दित (अप्रतिष्कुत) इन्द्र हैं- सा.
जो शासन करने योग्य है (ईशानः) और जो कभी धर्म मार्ग से स्खलित नहीं होता । (अप्रतिष्कुतः) उसे ही राजा बनाना चाहिए । -दया.

प्रतिश्रुत- (१) प्रतिज्ञा-सा. (२) किसी का दुःखादि सुनना ।
'प्रतिश्रुताय वोधृषत्
हुवे सुशिप्रमूतये'
ऋ. ८.३२.४
हे ऋत्विज् , यजमानो, इन्द्र के प्रति की गई अपनी प्रतिज्ञा के पालन के लिये (प्रतिश्रुताय) आपलोगों की निमित्त (वः) सुन्दर तन या नाक वाले इन्द्र को (सुशिप्रम्) रक्षा के लिए (ऊतये) पुकारता हूँ (हुवे) -सा.
हे मनुष्यों, तुम्हारे दुःखों को सुनने के लिये (प्रतिश्रुताय) और तुम्हारी रक्षा के लिये (वः ऊतये) शत्रुओं को पालन करने वाले (धृषत्) और क्षिप्रकारी राजा को (सुशिप्रम्) मैं देता हूँ ।

प्रतिश्रुत्का- (१) प्रतिज्ञा की पूर्ति ।
'प्रतिश्रुत्काया अर्तनम्'
वाज.सं. ३०.१९, तै.ब्रा. ३.४.१.१३.
(२) प्रति प्रति श्राव्यतते यया क्रियया (प्रत्येक को घोषणा सुनाने को कार्य)
'प्रतिश्रुत्कायै चक्र वाकः'
वाज.सं. २४.३२, तै.सं. ५.५.१४.१, मै.सं. ३.१४,१७५.४, का.सं. (अश्व.) ७.४.

प्रतिष्कम् - (१) जिस कर्म से शत्रुओं को प्रति बद्ध किया जाय-युद्ध (२) शत्रुओं का मुकाबला ।

प्रतिष्ठा - बीच में बैठने के लिये चूतड़ ।
'के नोच्छलंखौमध्यतः कः प्रतिष्ठाम्'
अ. १०.२.१.
(२) सब को अपने भीतर स्थिर करने वाली पृथिवी
'ध्रुवा दाधार पृथिवीं प्रतिष्ठाम्'
अ. १८.४.५
(३) खड़े होने की शक्ति, ।
'पादयोः प्रतिष्ठा'
अ. १९.६०.२, वै.सू. ३.१४, मा.श्रौ.सू. ५.२.१५.१०
(४) बत्तीस विभागों पर स्वयं तैतीसवां प्रवर्तक राजा ।
'प्रतिष्ठा त्रयस्त्रिंशः'
वाज.सं. १४.२३, तै.सं. ४.३.८.१, ५.३.३.५ मै.सं. २.८.४, १०९.६, का.सं. १७.४, २०.१३, श.ब्रा. ८.४.१.२२.

प्रतिष्ठिः- (१) मुकाबले पर खड़ा होने वाला, (२) आश्रय ।
'न प्रतिष्ठिः पुरुमायस्य सह्योः'
ऋ. ६.१८.१२

प्रतिष्ठिति- प्रतिष्ठा ।
'रथन्तरं साम प्रतिष्ठित्या अन्तरिक्षे'
वाज.सं. १५.१०, तै.सं. ४.४.२.१, मै.सं. ३.१६.४, १८७.१६, का.सं. २२.१४. आश्व.श्रौ.सू. ४.१२.२.

प्रतिसदृक्ष- (१) किसी अंश में समान पदार्थ , (२)मरुद्गण ।
'सदृक्षासः प्रतिसदृक्षास एतन'
वाज.सं. १७.८४,तै.सं. ४.६.५.६, मै.सं. २.११.१,

१४०.५, का.सं. १८.६.

प्रतिसदृङ- प्रत्येक पदार्थ इस अंश में समान है ।
'सदृङ् च प्रतिसदृङ् च '
वाज.सं. १७.८१, मै.सं. २.११.१,१४०.४, का.सं. १८.६.

प्रतिसरः- (१) शत्रुओं पर चढ़ाई करने में समर्थ, (२) एक यन्त्र जिससे शत्रुओं पर विजय होती है' ।
'प्रतीवर्तः प्रतिसरः '
अ. ८.५.४
(३) शत्रु के बाधक बल के मुकाबले में जाने में समर्थ ।
'स्रक्त्योऽसि प्रतिसरोऽसि '
अ. २.११.२

प्रतिसर्य- (१) शत्रु पर चढ़ाई करने और उसे पीछा करने में समर्थ ।
'नमः सोभ्याय च प्रतिसर्याय च '
वाज.सं. १६.३३, तै.सं. ४.५.६.१, मै.सं. २.९.६,१२५.५, का.सं. १७.१४.

प्रतिस्पाशन- (१) बाधा देने वाला, (२) पीड़ा कारी
'प्रतिस्पाशनमन्तितम् '
अ. ८.५.११.

प्रतिसुत्वा- (१) प्रतिपक्ष में अभिषेक को प्राप्त राजा, (२) पुत्रोत्पादन समर्थ पति ।
'प्रतीयं प्रतिसुत्वनम् '
अ. २०.१२९.२, ऐ.ब्रा. ६.३३.२, शा.श्रौ.सू. १२.१८.२.

प्रतिसूर्य- सूर्य का प्रतिरूपक ।
'देव त्वं प्रतिसूर्य '
अ. २०.१३०.१०

प्रतिहरण- प्रतिहार, प्रतिहरणविधि ।
'पुनःकृत्यां कृत्याकृते प्रतिहरणेन हरामसि '
अ. ५.१४.८

प्रतिहर्यते- प्रतिकामयते (प्रतिकामना करती है) 'हर्य ' धातु गति और कामना अर्थों में आया है ।
'इयं वो अस्मत् प्रतिहर्यते मतिः '
ऋ. ५.५७.१, नि. ११.१५
हे रुद्रो, यह हमारी स्तुति आप लोगों की कामना करती है ।

प्रतिहर्यन् - कामना करता हुआ ।
'प्रतिमन्वानोरुचथानि हर्यन् '
ऋ. ४.२४.७

प्रतिहर्यामसि- प्रतिहयमिः । वेद में 'मस्' का 'मसि' हो जाता है । अर्थ है- हम कामना करते हैं ।
'प्रयस्वन्तः प्रतिहर्यामसि त्वा '.
ऋ. १०.११६.८
हे इन्द्र या विद्वन् ! हम अन्न वाले (प्रयस्वन्तः) तेरी कामना करते हैं (त्वां प्रतिहर्यामसि) ।

प्रतिह्वर- (१) आकाश में प्रत्यक्ष प्रतीयमान चक्राकार वृत्त मार्ग, (२) कुटल व्यवहार ।
'दिव एति प्रतिह्वरे'
ऋ. ६.६६.१४

प्रतिहिता- फेंकने के लिये तैयार वाण ।
'नमः प्रतिहितायै '
अ. ६.९०.३

प्रतीक - (१) प्रति + अञ्च + क्त = प्रतीक (निपातन से सिद्ध) अर्थ है । प्रत्यक्त, व्यक्ततर, अंग, प्रकाशाख्य दर्शन, (२) दुर्ग की व्युत्पत्ति प्रत्याञ्चितं प्रतिगतम् प्रकाशस्य (प्रकाश से आया पदार्थ अर्थात् प्रकाश के सम्मुख आया मुख आदि प्रतीक है)
(३) कोश में भी कहा है-
'अङ्गं प्रतीकोऽवयवोऽपघनम् '
(४) प्रतीक का फलितार्थ मुख है । या आर्यसमाजी विद्वान् इसका अर्थ - प्रतिदर्शन, प्रत्यागमन या सुदर्शन करते हैं ।
(५) रूप ।
'यावन्यात्रमुषसोन प्रतीकं
सुपर्ण्यो वसते मातरिश्वः '
ऋ. १०.८८.१९., नि. ७.३१
हे मातरिश्वा, जितनी रात्रियाँ उषाओं का प्रतीक आच्छादित करती है या जितनी ही उषाएं रात्रियों में देखी जाती है ।
पुनः
आधुनिक अर्थ- (१) किसी ओर फेरा या घुमाया हुआ, (२) उल्टा, प्रतिकूल, विपरीत, संज्ञा होने पर (३) अंग, अवयव, (४) प्रतिमा मूर्ति , (५) मुख, (६) किसी पदार्थ का अगला भाग, (६) छन्द का प्रथम शब्द ।

प्रतीकाश - स्वरूप ।
'यस्य भीमः प्रतीकाशः '
अ. ९.८.६

प्रतीचिका- (१) विरुद्ध उठने वाली शत्रु सेना ।
'मा मा प्रापत् प्रतीचिका'
अ. १९.२.४

प्रतीची- प्रति + अञ्च् + क्विप् = पत्यञ्च, प्रत्यञ्च् + ङीप् = प्रतीची । अर्थ है '(1) अभिमुख, समक्ष, अभिमुख हुए ।
'उभे त्वष्टुर्बिभ्यतु र्जायमानात्
प्रतीची सिंहं प्रतिजोषयेते'
ऋ. १.९५.५, मै.सं. ४.१४.८, २२७.५, तै.ब्रा. २.८.७.५, नि. ८.१५.
जायमान अग्नि से दोनों द्यौ और पृथिवी या उनके निवासी का अरणी से उत्पन्न करने वाले डर गए । अतः उस शक्तिशाली अग्नि की ओर (सिंह प्रतीची) सेवाभाव से बढ़े (प्रतिजोष) येताम्)
(२) विपरीतगामी ।
'प्रतीचीः कृत्याः प्रतिसरैरजन्तु'
अ. ८.५.५.६,
(३) पूर्वाभियुव पुरुष के पीठ की दिशा -पश्चिम दिशा ।
'प्रतीच्यैदिशेस्वाहा'
वाज.सं. २२.२४, तै.सं. ७.१.१५,मै.सं.३.१२.८, १६३.५, का.सं. (अश्व.) १.६.

प्रतीचीदिक् - (१) पश्चिम दिशा, (२) ब्रह्मचर्य के पीछे आने वाला, गृहस्थाश्रम ।
'प्रतीचीदिशामिर्यामिद वरम्'
अ. १२.३.९

प्रतीचीन- (१) पराङ्मुख, पीछे ।
'प्रतीचीनं ददृशे विश्वमायत्'
ऋ. ३.५५.८
(२) अभिमुख समक्ष - (३) प्रजा के प्रतिचलने वाला दया. ।
'प्रतीचीनम् वृजनं दोहसे गिरा'
ऋ. ५.४४.१, वाज.सं. ७.१२, तै.सं. १.४.९.१, मै.सं. १.३.११.३४,५, का.सं. ४.३. श.ब्रा. ४.२.१.९.
हे सोम ! तू अभिमुख इन्द्र को तृप्त कर (प्रतीचीनम्) यजमान् क्रोध न दे (वृजनं दोहसे) -सा । हे राजन् ! प्रजा के प्रति चलने वाले (प्रतीचीनम्) बलदान् अपने को जिन प्रजाओं में रहकर बढ़ाते हो उस प्रजावर्ग को शिक्षा से पूर्ण करा (दोहसे गिरा) ।
(४) देह के भीतर आता हुआ प्राण ।
'प्रतीचीनाय ते नमः'
अ. ११.२.५, ४.८

प्रतिचीनफलः- (१) अपामार्ग नाकर ओषधि जिसका फलउसके डंठल पर उल्टे लगा रहता है - चिचिरा, (२) अपामार्ग विधान जो पहले दुःखकर पर पीछे सुखकर होता है ।
'प्रतीचीनफलस्वत्वम्'
अ. ४.१९.७
'प्रतीचीन फलो हित्वम्'
अ. ७.६५.१,

प्रतीति- प्रति + इति । अर्थ - (१) आक्रमण ।
'प्रतीत्या शत्रून् विगदेषु वृश्च'
ऋ. १०.११६.५

प्रतीवर्त- शत्रुओं से अभिमुख खड़ा होने वाला (२) एक यन्त्र ।
'प्रतीवर्तः प्रतिसरः'
अ. ८.५.४, साम. १.१.३

प्रतीत्यः- (१) प्रत्यक्ष में कान्तियुक्त ।
'ईडिष्वा हि प्रतीव्यं
यजस्व जातवेदसम्'
ऋ. ८.२३.१
(२) ज्ञेयतत्व, (३) आक्रमण करने योग्य ।
'इनोति च प्रतीव्यम्'
ऋ. ८.३९.५
(३) विरुद्ध ज्ञान वाला -बाधित ।
'प्रतीत्येन कृधुना तृपासः'
ऋ. ४.५.१४
(४) प्रसिद्धि करने वाला कर्म ।
'च्यवानाय प्रतीत्यं हविर्दे'
ऋ. ७.६८.६

प्रतीप- विरुद्ध सुन्दर ।
'प्रतीपं प्रतिसुत्वनम्'
अ. २०.१२९.२, ऐ.ब्रा. ६.३३.२, शा.श्रौ.सू. १२.१८.२.

प्रतीवर्तः- शत्रुओं का मुख फेर देने में समर्थ ।
'अयमिद् वै प्रतीवर्तः'
अ. ८.५.१६.

प्रतिबोध- (१) सतर्क रहने की प्रवृत्ति, जागरुकता ।

'प्रतीबोधेन नाशय'
अ. ८.६.१५, १९.३५.३.
(२) प्रत्येक पदार्थ का ज्ञान कराने वाला उपदेशक ।
'बोधश्च त्वा प्रतीबोधश्च रक्षतम्'
अ. १.१.१३

प्रतीहार- सामगान का भाग ।
'प्रतीहारो निधानम्'
अ. ११.७.१२

प्रत्युष्ट - दग्ध
'प्रत्युष्टं रक्षः प्रत्युष्टा अशतयः'
वाज.सं. १.७.२९, तै.सं. १.१.२.१, १,१०.१. तै.ब्रा. १.३९, श.ब्रा. १.१.२.२, ३.१.४, तै.ब्रा. ३.२.२.२, ४.३, ३.१.१.

प्रतूर्ति- (१) बड़ा संग्राम ।
'त्वमिन्द्र प्रतूर्तिषु'
ऋ. ८.९९.५, अ. २०.१०५.१, साम. १.३११, २.९८७, वाज.सं. ३३.६६, ऐ.ब्रा. ५.४.२२, आश्व.श्रौ.सू. ७.३.१९.४.३, शां.श्रौ.सू. १२. ९.११, वै.सू. ३९.११.
(२) उत्तम क्रियाशक्ति ।
'देवीरापो यो व ऊर्मिः प्रतूर्तिः'
वाज.सं. ९.६, वाज.सं. (का.) १०.२.२, श.ब्रा. ५.१.४.६.
(३) अच्छी प्रकार शत्रुओं का नाश करना,
(४) सद्यः अनुष्ठाता - किसी कार्य को शीघ्र कर देने वाला -दया.
'असि प्रतूर्तये नृभिः'
ऋ. १.१२९.२
नायक पुरुषों द्वारा शत्रुओं को नाश करने में तू समर्थ होता है ।
(५) उत्तम रीति से शत्रु का दुष्ट पुरुषों का नाश करने वाली सेना, (६) उत्तम एवं शीघ्र कार्य करने में कुशल प्रजा ।
'इमा अस्य प्रतूर्तयः
पदं जुषन्त यद् दिवि'
ऋ. ८.१३.२९

प्रतूर्वत्- (१) अतिशीघ्र कार्य करने में कुशल ।
'मित्रस्यहि प्रतूर्वतः
सुमतिरस्ति विधतः'
ऋ. ५.६५.४

प्रतृद्- (१) तीनों आश्रयों को अन्नादि देने वाला गृहस्थ, (२) खण्ड खण्ड कर वेद का अध्ययन करने वाला ब्रह्मचारी, (३) संशयो का छेत्ता ज्ञानी पुरुष ।
'आवो गच्छति प्रतृदो वसिष्ठः'

प्रतोद- (१) हण्टर चाबुक ।
'वातः सारथी रेष्मा प्रतोदः'
अ. १५.२.७

प्रत्यौहत- प्रत्यसंहरति (प्रत्युप संहार करता है) । ऊह धातु सामर्थ्य से उपसंहार का वाचक है । अर्थ - (१) पुनः खींच लेता है या ले लेता है ।

प्रथ - (१) बढ़ना ।
'धर्मणे कं स्वधया प प्रथन्ते'
ऋ. १०.८८.१ नि. ७.२५
सुखकारक अग्नि को धारण, रक्षा या अविच्छेद के लिए (धर्मणं) अन्न, हवि एवं पुरोडाश से (स्वधया) बढ़ाते हैं (पप्रथन्त) (२) पथवसिष्ठ नामक वैदिक ऋषि, (३) विस्तृत ।
'प्रथश्च स यस्य सप्रथश्चनाम'
ऋ. १०.१८.१.१, अ.सं. २.५.ऐ.ब्रा. १.२१.२.

प्रथताम् - (१)बढ़े ।
'उरुप्रथा उरु प्रथस्वोरु ते यज्ञपतिः उरु प्रथताम्'
वाज.स. १.२२, श.ब्रा. १.२.२.८.
तेरा यजमान खूब बढ़े समृद्ध हो ।

प्रथमः- प्रकृष्टतमः प्रतमः प्रथमः (तका थ पृषोदरादि वत्) । अर्थ - (१) सबसे प्रथम श्रेष्ठ
'योहोतासीत् प्रथमो देवजुष्टः'
ऋ. १०.८८.४
(२) सर्वाधार ।
'योजात एव प्रथमोः मनस्वान्'
ऋ. २.१२.१, अ. २०.३४.१, तै.सं. १.७.१३.२, मै.सं. ४.१२.३, १८६.४, का.सं. ८.१६, ऐ.ब्रा. ५.२.१, कौ.शा. २१.४, २२.४.
जो परमात्मा (इन्द्र) सदा विद्यमान ही रहता है । जो सर्वाधार और चेतन है - दया. ।
(३) पहले के ।
'पृथक् प्रायन् प्रथमा देवहूतयः'
ऋ. १०.४४.६, अ. २०.९४.६, नि. ५.२५.
पहले के दोनों आह्वाता अपनी विद्या या कर्म के अनुसार देवयान या पितृयान से पृथक् हो जाते हैं । पुनः

प्रथमच्छद् – (१) सबसे प्रथम समस्त जगत् को व्यापने वाला विश्वकर्मा प्रभु ।
'प्रथमच्छदवरां आविवेशः'
ऋ. १०.८१.१, वाज.सं. १७.१७.

प्रथम जनुष्– विस्तृत या प्राथमिक संसारोपत्ति ।
'प्रथमाय जनुषे भुवनेष्ठाः'
अ. ४.१.२.

प्रथमजा– प्रकृष्टतमः प्रथमः प्रथमः । प्रथम + जन् + ड = प्रथमज, प्रथमज + टाप् = प्रथमजा । अर्थ – (१) सब से प्रथम उत्पन्न होने वाली बुद्धि । सभी इन्द्रियों में पहले बुद्धि का ही प्रादुर्भाव हुआ । अतः बुद्धि का वाचक प्रथमजा है ।
(२) आत्मज्ञान ।
(३) सर्वश्रेष्ठ विकार– पञ्च तन्मत्राएं विषयग्राही इन्द्रियरूप ज्ञान साधन ।
'यदामागन् प्रथमजा ऋतस्य'
ऋ. १.१६४.३७, अ. ९.१०.१५.

प्रथमजायमान– हिरण्यगर्भ ।
'को ददर्शप्रथमं जायमानम्'
ऋ. १.१६४.४, अ. ९.९.४

प्रथमधास्यु– धारण पोषण करने वाला अनादि पुरुष ।
'धर्मं श्रीणन्तु प्रथमाय धास्यवे'
अ. ४.१.२

प्रथमभाक्– प्रथम्, पूज्यों का सेवन करने वाला ।
'प्रथमभाजं यशसं वयोधाम्'
ऋ. ६.४९.९, आश्व.श्रौ.सू. ३.८.१,

प्रथमंवयः– (१) प्रथम अवस्था, (२) ब्रह्मचर्य (३) प्रथम बल ।

प्रथमवास्य– प्रथम आश्रय ब्रह्म चर्याश्रम – में पहनने योग्य वस्त्र ।
'यस्य ते वासः प्रथमवास्यं हरामम्'
अ. २.१३.५.

प्रथमशंख – प्रथं शंखसूक्त
'प्रथमेभ्यः शंखेभ्यः स्वाहा'
अ. १९.२२.८

प्रथमा– (वि.द्वि.व.) (१) दैव्या होतारा अग्नि और आदित्य का अग्नि और वायु का विशेषण अर्थ है – मुख, बढ़कर (२) सर्वोत्तम स्त्रीपुरुष ।
'प्रथमा हि सुवाचसा'
ऋ. १.१८८.७.
'दैव्या होतारा प्रथमा सुवाचा'
ऋ. १०.११०.७, अ. ५.१२.७, वाज.सं. २९.३२, मै.सं. ४.१३.३, २०२ ,७, का.सं. १६.२०, तै.ब्रा. ३.६.३.३, नि. ८.१२.
देवताओं के होता अग्नि और आदित्य जो मनुष्य होताओं से प्रथम अर्थात् बढ़कर हैं और जो सुस्तुत या सुन्दर स्तुतियुक्त है ।
दिव्य गुण सम्पन्न सुखकारण अग्नि और वायु जो मनुष्यजीवन के लिए मुख्य हैं (प्रथमा) और वाणी आदि इन्द्रियों को उत्तम बनाने वाले (सुवाचा) हैं ।

प्रथमः– (ब.व.) सब से पहले या प्रमुख । (२) मेघ या वायु
'देवाना माने प्रथमा अतिष्ठन्'
ऋ. १०.२७.२३, नि. २.२२.
देवताओं के निर्माण के समय सबसे ये माध्यमिक देव गणं मेघ या वायु ही हुए

प्रथमा देवहूतयः – (१) पहले के देवों के आह्वाता ।
'पृथक् प्रायन् प्रथमा देवहूतयः'
ऋ. १०.४४.६, अ. २०.९४.६
पहले के देवों के आह्वाता (प्रथमा देवहूतयः) अपनी विद्या या कर्म के अनुसार देवयान या पितृयान से पृथक् हो जाते हैं ।

प्रथमानि धर्माणि – (१) सृष्टि की आदि में मुख्य ज्ञानयुक्त कर्म (२) प्रसिद्ध जगत् रुपी विकारों के धारक प्रजापति के प्राणरूप देव, (३) यजन शील, देव बनने वाले तथाविश्व की रचना करने वाले प्राण रूप ऋषियों के कर्म ।
'तानि धर्माणि प्रथमान्यासन्'
ऋ. १.१६४.४३, ५०, १०.९०.१६, अ. ७.५.१, ९.१०.२५, वाज.सं. ३१.१६, तै.सं. ३.५.११.५, का.सं. १५.१२, मै.सं. ४.१०.३, १४८.१६, ऐ.ब्रा. १.१६.३७, श.ब्रा. १०.२.२.२, तै.आ. ३.१२.७. नि. १२.४१.

प्रथस्व– प्रथ (बढ़ना) के लोट् म.पु.ए.व. का रूप । अर्थ–बढ़, विस्तीर्ण हो, फैल ।
'उरुप्रथा उरु प्रथस्वोरु ते यज्ञपतिः उरुप्रथताम्'
वाज.सं. १.२२, श.ब्रा. १.२.२.८.

प्रथस्वती– विस्तारवाली पृथिवी ।

'व्यचस्वतीं प्रथस्वतीं'
वाज.सं. १३.१७

प्रथाना- प्रथ + शानच + टाप् = प्रथमा । बढ़ती हुई, वृद्धि को प्राप्त ।
'पशून्न चित्रा सुभगा प्रथाना'
ऋ. १.९२.१२
जिस प्रकार संग्रह शील वैश्य प्रजा (चित्रा) पशुओं को प्राप्त होकर (पशून्)वृद्धि को प्राप्त होती है ।

प्रति- विस्तार ।
'द्यौर्न प्रथि ना शवः'
ढ. १.८.५, ८.५६.१, अ. २०.७१.१, साम. १.१६६

प्रथमा - (१) विस्तृत क्षेत्र, (२) गृह, (३) राज्य आदि
'वरिमा च मे प्रथिमा च मे'
वाज.सं. १८.४, तै.सं. ४.७.२.१, मै.सं. २.११.२, १४१.२, का.सं. १८.७.

प्रदक्षिण- प्रदक्षिणा ।
'सर्वं प्रदक्षिणं कुरु'
अ. २.३६.६

प्रदक्षिणित् - (१) प्रदक्षिण + इत् = प्रदक्षिणित् । अर्थ है- प्रदक्षिण से ही
(२) प्रदक्षिणिदा -प्रदक्षिणित्-'सुपां सु लुक्' से तृतीया का लोप । प्रदक्षिणाम् एति इति दाहिनी ओर, रख दिया जाने वाला ।
(३) दाहिनी ओर से घेरता हुआ ।
'प्रदक्षिणिदभि सोमास इन्द्रम्'
ऋ. ३.३२.१५, अ. २०.८.३
(४) प्रदक्षिणा को प्राप्त होने वाला (५) आकाश में चक्कर लगाने वाला पक्षी, (६) दाहिने हाथ की ओर बैठा हुआ ।
'प्रदक्षिणिदभिगृणन्ति कारवः'
ऋ. २.४३.१.
(७) वेदी की प्रदक्षिण करती हुई ब्रह्मचारिणी ।
'प्रदक्षिणिद् देवतातिम् उराणः'
ऋ. ३.१९.२, ४.६.३.

प्रदर - (१) राष्ट्र के भीतर फटा दरार (२) पेट का भीतर भाग ।
'प्रदरान् पायुना'
वाज.सं. २५.७, मै.सं. ३.१५.९, १८०.६

प्रदिवः- (१) पूर्वेषु अहःसु (पूर्व दिनों में, पहले), (२) सकारान्त अव्यय । पुराण शब्द के पाठ में यह पढ़ा गया है ।
प्रगतानि दिनानि = प्रदिन = प्रदिवस् (न का वस्) अर्थ है- बीते दिन । वस्तुतः यह वान्त अव्यय है और 'अत्यन्त संयोगे द्वितीया' के अर्थ में व्यत्यय से प्रथमा है । अर्थ है-बीते दिन ।
'त्वं राजा प्रदिवः सुतानाम्'
ऋ. ३.४७.१, वाज.सं. (का.) २८.१०, तै.सं. १.४.१९.१, मै.सं. १.३.२२, ३८.२, का.सं. ४.८, नि. ४.८.
कल (प्रदिवः) जो सोम रस बनाए गए उनका भी तू राजा है ।
(३) जीवन के प्रारम्भ काल में -दया.
(४) द्योतमान- सा. ।
'अयं वो यज्ञऋभवोऽकारि
यमा मनुष्यवत् प्रदिवो दधिध्वे'
ऋ. ४.३४.३

प्रदिव- उत्कृष्ट व्यवहार वाला ।
'शिक्षानरः प्रदिवो अकामकर्शनः'
ऋ. १.५३.२, अ. २०.२१.२

प्रदिश् - (१) प्रकर्षेण दिश्यमानः । प्र + दिश् + क्विप् = प्रदिश् । अर्थ -प्रदृश्यमान मन्त्र जिससे आह्वनीय अग्नि का प्रदिशन किया जाता है ।
(२) वेदोक्तिविधि (३) पूर्वदिशा ।
'अस्य होतुः प्रदिश्यृतस्य वाचि'
ऋ. १०.११०.११, अ. ५.१२.११, वाज.सं. २९.३६, मै.सं. ४.१३.५, २०५.६, का.सं . १६.२०, तै.ब्रा. ३.६.३.४, नि. ८.२१.
पूर्वदिशा में (प्रदिशि) आह्वनीय अग्नि के रूप में वर्तमान (ऋतस्य होतुः) । इस अग्नि के...
(४) विधि, (५) विधि वाक्य (६) दिशा, (७) प्रतिदिशा, (८) प्रदेशः ।
'प्राचीनं बर्हिः प्रदिशापृथिव्या
वस्तोरस्या वृज्यते अग्रे अह्नाम्
व्युप्रथते वितरं वरीयो
देवेभ्यो आदितये स्योनम्'
ऋ. १०.११०.४, अ. ५.१२.४, वाज.सं. २९.२९
पूर्व दिशा में स्तीर्ण कुश (प्राचीनं बर्हिः) मंत्र द्वारा या विधि पूर्वक काटा या बिछाया जाता है (प्रदिशा प्रवृज्यते) । पूर्व या उत्तरमुख होकर

कुश काटना चाहिए (प्राग् उदग्वाबर्हि छिनत्ति) । पूर्वाह्न समय में कुश का काटना या बिछाना श्रेयस्कर होता है (वरीयः) तथा वेदी पर विविध प्रकार से विस्तीर्ण कर बिछाया जाता है (वितरं विप्रथते) और इस वेदी रूपी पृथ्वी पर बिछाने के लिये (अस्याः पृथिव्याः वस्तोः) और इस प्रकार देवों तथा वेदी के लिये सुखकर होता है (देवेभ्यः अदितये स्योनम्) ।
अन्य अर्थ - वस्तुओं को फैलाने वाला यज्ञाग्नि (बर्हिः) गृह की प्राची दिशा में (प्राचीनम्) वेदोपदिष्ट विधि के साथ (प्रदिशा) इस पृथ्वी के निवास के लिये (अस्याः, पृथिव्याः वस्तोः) पूर्वाह्न में (अह्नः अग्ने) स्थापित की जाती है (वृज्यते) और अत्युत्तम या प्रभूत यज्ञाग्नि अधिक विस्तृत होकर सम्पूर्ण वायुमण्डल में प्रख्यात होती है (वरीयः वितरं विप्रथते) तथा वह यज्ञकर्त्ता देवों के लिये और पृथिवी के लिये सुखकारी बनता है (देवेभ्यः अदितये स्योनम्)
पुनः-
'तेन जीवन्ति प्रदिशश्चेतस्रः'
ऋ. १.१६४.४२, अ. ९.१०.१९,११.५.१२. तै.ब्रा. २.४.६.११, नि. ११.४१.

प्रदीध्याना- दीप्तिमती उषा का विशेषण ।
'प्रदीध्याना जोषमन्याभिरति'
ऋ. १.११३.१०.
यह उषा दीप्तिमती होकर (प्रदीध्याना) आगे-आने वाली अन्य उषाओं से (अन्याभिः) अनुकरण की जाती है ।

प्रदुद्रद - खदेड़ने वाला ।
'प्रदुद्रदो मघाप्रति'
अ. २०.१३०.१२

प्रदृप्ति- भारीदर्प, घमण्ड, मोह ।
'नांहो मर्तं नशते न प्रदृप्तिः'
ऋ. ६.३.२.

प्रदोष- रात्रि के प्रारम्भ का समय ।
'प्रदोषं तस्करा इव'
ऋ. १.१९१.५.

प्रद्यौ- (१) अत्यधिक प्रकाश वाली,
(२) शुद्ध ज्ञान वाली,
(३) उत्तम कर्मफलों वाली,
(४) सात्विक ।
'तृतीयाह प्रद्यौरिति'
अ. १८.२.४८
(५) उत्कृष्ट,तेजोमय ज्ञान स्वरूप परब्रह्म
(६) उत्कृष्ट राजसभा ।
'यद् दधिषे प्रदिवि चार्वन्नम्'
ऋ. ७.९८.२. अ. २०.८७.२

प्रधन - (१) प्रचुर धन देने वाला संग्राम ।
'आजा यमस्य प्रधने जिगाय'
ऋ. १.११६.२
सर्वनियामक राजा के प्रचुर धन देने वाले संग्राम में (यमस्य प्रधने) विजय कर ।
(२) प्रकीर्णनि अस्मिन् धनानि भवन्ति (संग्राम में धन प्रकीर्ण होते हैं)- इसमें प्रकृष्ट धन जीता जाता है अतः यह प्रधन है ।
'तेन सूभर्वं शतवत् सहस्रम्
गवां मुद्गलः प्रधने जिगाय'
ऋ. १०.१०२.५, नि. ९.२३.
उस वृषय से युद्ध में मुद्गल ने या जितेन्द्रिय निरभिमानी या हर्ष शोक में समचित्त राजा ने धनापहारक शत्रु राजा को तथा लक्ष लक्ष गौओं को जीता ।
(३) उत्तम धन ।
'स्वर्मीढस्य प्रधनस्य सातौ'
ऋ. १.१६९.२.

प्रधन्या- (१) उत्तम धान्य योग्य भूमि, (२) उत्तम ऐश्वर्य विभूति से सम्पन्न ।
'आजुहोतिप्रधन्यासु सस्रि'
ऋ. १०.९९.४

प्रधन- (२) उत्कृष्ट धन सम्पन्न प्रभु, ।
'गवां मुद्गलः प्रधने जिगाय'
ऋ. १०.१०२.५, नि. ९.२४.

प्रधि- (१) लोहे का हाल ।
'यथाप्रधिर्यथोपधिः'
अ. ६.७०.३
(२) प्र + धा + कि = प्रधि । प्रधिः प्रहितः भवति (प्रश्लिष्ट होकर जो निहित है वह प्रधि है) । अर्थ है-परिधि । रभस ने कहा है-
'गण्डपुच्छः प्रधिः पुमान्'
अमरकोश में चक्र के अन्तिमभाग को अधि कहा गया है-'चक्रान्तः' प्रधिः' । चक्र की बाह्य

रेखा का नाम प्रधि है ।

'द्वादश प्रधयश्चक्रमेकं
त्रीणिनभ्यानि क उतच्चिकेतत्
तास्मिन् साकं त्रिशतान शंकवोः
पिताः षष्टिर्न चला चलासः'

ऋ. १.१६४.४८, नि. ४.२७.

मास रुपी बारह घेरे या परिधियां हैं, और वर्ष रूपी एक चक्का। उसमें ग्रीष्म, वर्षा तथा हेमन्त रुपी तीन नाभियां हैं (त्रीणि नभ्यानि) जैसे सूर्य के रथ चक्र के बारह परिधियाँ और नाभि रुपी तीन फलक हैं, उसी प्रकार काल चक्र के भी। इस चक्र के रहस्य को कोई विद्वान् पुरुष ही समझता है (क उ चिकते)। उस चक्र में साथ साथ शंकुओं के समान तीन सौ साठ दिनों के रूप में चक्र के आरे भी हैं (त्रिशताः षष्टिः न) जो चल और अचल दोनों हैं। दिनरात अस्थायी अर्थात् चलनशील है, परन्तु दिन के बाद रात और रात के बाद दिन का आयोजन अचल है। इसी से चलाचल कह गये हैं ।

(३) सर्वोत्कृष्ट धारक प्रभु ।

'उतप्रधिमुदहन्नस्य विद्वान्'

ऋ. १०.१०२.७

पधी - द्वि. व. । (१) रथ के ऊपर लगे लोहे के दो हाल, .(२) प्रधि के समान स्त्री पुरुष ।

'नभ्येव न उपधीव प्रधीव'

ऋ. २.३९.४

प्रपणः- (१) अपने पदार्थ को दूसरे को हाथ बेचने के लिए उसका दर नीयत करना, (२) व्यापार विनिमय, लेन देन का व्यवहार ।

'शुनं नो अस्तु प्रपणो विक्रयश्च'

अ. ३.१५.४

'येन धनेन प्रपणं चरामि'

अ. ३.१५.५,६

प्रपित्वम् - आगेबढ़ना, प्रयाण अपवान ।

'अप्रपित्वं चिकितुर्न प्रपित्वम्'

ऋ. ३.५३.२४.

पपथ- (१) प्रकृष्ट मार्ग, उत्तम मार्ग ।

'पूषात्वा पातु प्रपथे पुरस्तात्'

ऋ. १०.१७.४, अ. १८.२.५५, तै.आ. ६.१.२.

'अंसेष्वा वः प्रपथेषु खादयः'

ऋ. १.१६६.९

तुम्हारे कंधों पर और मार्गों में उत्तम उत्तम खाने के पदार्थ हों ।

(२) अन्तरिक्ष ।

'स्वस्तिरिद्धि प्रपथे श्रेष्ठा'

ऋ. १०.६३.१६, ऐ.ब्रा. १.९.७, नि. ११.४६.

स्वास्ति नाम्नी देवता जिसे देवगण कहा गया है या आर्यसमाजी व्याख्याताओं के अनुसार जो मेघ का वाचक है इस अन्तरिक्ष में श्रेष्ठ देवता है ।

उत्तम मार्ग के अर्थ में-

'प्रपथे पथामजनिष्ठ पूषा'

ऋ. १०.१७.६, अ. ७.९.१, मै.सं. ४.१४.१६, २४३.१३, तै.ब्रा. २ .८.५.३, आश्व.श्रौ.सू. ३.७.८

प्रपथ्य - (१) उत्तम पथ्य, आहार, योग्य पोषक अन्न ।

'प्रपथ्याय स्वाहा'

वाज.सं. २२.२०.

(२) उत्तम मार्गों का अधिकारी

'नम इरिण्याय च प्रपथ्याय च

वाज.सं. १६.४३, तै.सं. ४.५.९.१, मै.सं. २.९.८,१२६.८, का.सं. १७.१५.

प्रपथिन्तमः- सबसे उत्तम मार्ग में चलने वाला ।

'प्रपथिन्तमं परितं सयध्यै'

ऋ. १.१७३.७.

प्रपद- पंजा , (२) आगे का कदम ।

'पार्ष्णिभ्यां प्रपदाभ्याम्'

ऋ. १०.१६३.४, अ. २.३३.५, २०.९६.२१.

प्रपद् - पैर का अगला हिस्सा

'पाष्ण्योः प्रपदोश्चयत्'

अ. ६.२४.२

'अवक्रामन्तः प्रपदैरमित्रान्'

ऋ. ६.७५.७, वाज.सं. २९.४४, तै.सं. ४.६.६.३, मै.सं. ३.१६.३, १८६.६, का.सं. (अश्व.) ६.१.

प्रप्र - खूब, अच्छी प्रकार ।

'प्र प्र वो अस्मे स्वयशोभिरूती
परिवर्ग इन्द्रो दुर्मतीनां दरीमन् दुर्मतीनाम्'

ऋ. १.१२९.८

ऐश्वर्यवान् इन्द्र या सेनापति अपने यशों, यशकारी कर्मों से तुम्हारे और हमारे दोनों की रक्षा के लिये और दुष्टों के विनाश के लिये (परिवर्गे) और तोड़ने फोड़ने के लिये (दरीमन्)

अच्छी प्रकार (प्र प्र) समर्थ हो (असत्) ।

प्रपा - प्र + पा । (१) मेघ, (२) मरुभूमि का प्याऊ, (३) उत्तम रक्षक ।
'धन्वन्निव प्रपा असित्वमग्ने'
ऋ. १०.४.१, तै.सं. २.५.१२.४.

प्रपित्व - प्राप्त-प्रपित्व (प्राप्त होना, निकट आना, आसन्न) । प्रपित्व के दो पर्याय हैं- प्रपित्व और अभीक ।
'प्रपित्वे प्राप्ते अभीकेऽभ्यक्ते'
अभी + अञ्च् + क्त = अभ्यक्त = अभीक
अर्थ - (१) आसन्न (२) सम्मुख गव, (२) पीने का समय प्राप्त होने पर ।
'आपित्वेनः प्रपित्वे तूयमागाहि'
ऋ. ८.४.३, साम. १.२५.२, २.१०७१, नि. ३.२०
सोमपान का समय आने पर शीघ्र आ'
(३) प्राप्ति, प्राप्त होना ।
'वेषि प्रपित्वे मनुष्यो यजत्र'
ऋ. १.१८९.७

प्रपितामह- (१) पितामह का पिता ।
'पितामहान् विभर्ति पिन्वमानः'
अ. १८.४.३५
(२) पालकों के पालक का भी पालक शासक पुरुष ।
'प्रपितामहेभ्यः स्वधायिभ्यः स्वधानमः'
वाज.सं. १९.३६, का.सं. ३८.२, श.ब्रा. १२.८.१.१७.

प्रपीता- हृष्टपुष्ट, तृप्त स्त्री ।
'घृतं दुहाना विश्वतः प्रपीताः'
ऋ. ७.४१.७, अ. ३.१६.७, वाज.सं. ३४.४०.

प्रपूतनी- पवित्र और पुष्ट करने वाली अदिति पृथ्वी ।
'द्यौर्न भूमिः पयसा प्रपूतनि
ऋ. १०.१३२.६

प्रपूता- आचारआदि में पवित्र प्रभाव जनकवाणी ।
'ब्रह्मणां हस्तेषु पपृथक् सादयामि'
ऋ. ६.१२२.५,१०.९.२७, ११.१.२.७.

प्रपृथक् - पृथक् पृथक् ।

प्रपृचती- (१) प्रकृष्ट पृंचती । अर्थ- सम्बन्ध से सकल विद्या सम्पर्क कारयित्री, (२) शब्दोच्चारण ।
'साधिकावायुः' नि. १-११
'वायो तव पपृञ्चती'
ऋ. १.२.३.

प्रप्रोथ- उत्कृष्ट कोटि का धनैश्वर्यादि प्राप्त करने वाली ।
'प्रप्रोथाय स्वाहा'
वाज.सं. २२.७, तै.सं. ७.१.१९.१, मै.सं. ३.१२.३, १६०.१३.

प्रफरी- (१) स्त्री, (२) चेतना शक्ति ।
'पीबरीं च प्रफर्व्यम्'
अ. ३.१७.३
(३) नवयुवती
'शूद्रामिच्छ प्रफर्व्यम्'
अ. ५.२२.७

प्रफर्वीशूद्रा- नवयुवती काटने वाली कीट जाति ।

प्रभङ्ग- नाना प्रकार के कष्टों को नष्ट करने वाला
'प्रभङ्गं दुर्मतीनाम्'
ऋ. ८.४६.१९

प्रभङ्गी- (१) नष्ट कर देने वाला । (२) शत्रु को अच्छी प्रकार तोड़ देने वाला ।
'प्रभङ्गी शूरो मघवा तुवीमघः'
ऋ. ८.६१.१८

प्रभर्ता- (१) शत्रुपर प्रहार करने वाला (२) उत्तम भरण पोषण करने में समर्थ ।
'प्रभर्ता रथं दाशुष उपाके'
ऋ. १.१७८.३
(३) सर्वोत्कृष्ट प्रजा का भरण पोषण करने वाला-इन्द्र, परमेश्वर ।
'प्रभर्ता रथं गव्यन्तम्'
ऋ. ८.२.३५

प्रभर्मन्- (१) प्रकर्ष के साथ भरण पोषण, (२) प्रकर्ष के साथ भरण पोषण करने वाला अच्छी प्रकार धारण करने का कार्य ।
'अवानो अग्न ऊतिभिः
गायत्रस्य प्रभर्मणि'
ऋ. १.७९.७, साम. २.८७४
हे परमेश्वर या अग्नि, तू हमें गान करने या स्तुति करने वाले पुरुष की रक्षा करने में समर्थ वेद ज्ञान के अच्छी प्रकार धारण करने के कार्य में (गायत्रस्य प्रभर्मणि) या पृथ्वी लोक के उत्तम रीति से भरण पोषण के कार्य में रक्षा साधनों

द्वारा (ऊतिभिः) रक्षाकर ।
(३) उत्तम ऐश्वर्य संग्रह करने वालों से युक्त राष्ट्र (४) उत्तम पदार्थों का संग्रह ।
'मध्वः प्रतिप्रभर्मणि'
ऋ. ८.८२.१

प्रभरा- (१) प्रभर, प्रहर, (प्रहार कर) । छन्द में ह और गृह् धातुओं के 'ह्' का 'भ्' हो जाता है ।
'अस्मा इदुप्रभरा तू तुजानः'
ऋ. १.६१.१२, अ. २०.३५.१२, मै.सं. ४.१२.३, १८३.१०, का.सं. ८.१६, नि. ६.२०.
हे इन्द्र या राजन् , तू आशुकारी है (तूतुजानः) या शीघ्रता करता हुआ वृत्र या दुष्टजन पर प्रहार कर (प्रभरा) ।

प्रभरे- उच्चारण करता हूँ ।
'अमन्दान् स्तोमान् प्रभरे मनीषा'
ऋ. १.१२६.१, नि. ९.१०.

प्रभवन् - (१) प्रभुता सम्पन्न ।
'आभवन् प्रभवन् भवन्'
अ. ३.२९.२
(२) सबका प्रभु होने वाला ।
'रयिमिव पृष्ठं प्रभवन्तमायते'
ऋ. २.१३.४

प्रभा- (१) प्रकृष्टदीप्ति, (२) तीव्र अग्नि ।
'प्रभाया अग्न्येधम्'
वाज.सं. ३०.१२, तै.ब्रा. ३.४.१.८.

प्रभागपाद- (१) दीनारादि पाद, (२) दीनारआदि का चतुर्थांश । गणित में प्रभाग का अर्थ भाग का है। अतः (३) प्रभागपाद भाग के भाग का चतुर्थांश हुआ ।

प्रभ्राजमाना- (१) अतिशय तेज में प्रकाशमान ब्रह्मपुरी ।

प्रभ्वी- (१) सामर्थ्ययुक्त ।
'उतेव प्रभ्वी रुत संमितासः'
अ. १२.३.२७.
(२) उत्तम सामर्थ्यवाली प्रजा ।
'विराट् सम्राड् विभ्वीः प्रभ्वीः'
ऋ. १.१८८.८
(३) उत्कृष्ट बल पैदा करने वाली ।
'तास्ते सन्तु विभ्वीः प्रभ्वीः'
अ. १८.३.६९

प्रभुञ्जती- (१) प्रकृष्ट पालन वाली, (२) उत्तम भोग प्रदान करती हुई, (३) पति और सन्तानों को व्रत नियमादि का पान कराती हुई, (४) उषा या स्त्री का विशेषण ।

प्रभूती- (१) प्रचुर विभूतिमान्
'दीनैर्दक्षैः प्रभूती पुरुषत्वा'
ऋ. ४.५४.३

प्रभूवरी- (१) प्रभु शब्दवाली ऋचा (२) प्रभूत बल और धन सामर्थ्यवाली ।
'विश्वा आशाः प्रभूवरीः'
वाज.सं. २३.३५, तै.सं. ५.२.११.१, का.सं. (अश्व.) १०.५.

प्रभूवसुः- (१) अधिक ऐश्वर्य वाला ।
'सत्वामिन्द्र प्रभूवसो ममत्तु'
ऋ. ७.२२.२,अ. २०.११७.२, साम. २.२७८
अति सामर्थ्य रूपधन वाला ।
'ये त्वारभ्य चरामसि प्रभूवसो'
ऋ. १.५७.४, अ. २०.१५.४, साम. १.३७३.
(३) सबको वास और आश्रय देने वाला इन्द्र या परमेश्वर ।
(४) प्रचुर धन वाली, बहुत प्रजाओं का स्वामी इन्द्र ।
'पुनानस्य प्रभूवसोः'
ऋ. ९.३५.६
'मापुत्रस्य प्रभूवसो'
ऋ. ८.४५.३६.
(५) प्रचुर ऐश्वर्य का स्वामी ।

प्रभूषत्- उत्तम सामर्थ्यवान् ।
'देवाँ अनुप्रभूषतः'
ऋ. ९.२९.१, साम.२.१११५, पंच.ब्रा. ६.१०.१७.

प्रभृत- (१) उत्तम पुष्टिकारक पदार्थ ।
'यद्वा घास्य प्रभृतमास्ये तृणम्'
ऋ. १.१६.२.८, वाज.सं. २५.३१, तै.सं. ४.६.८.३, मै.सं. ३.१६.१, १८२.११, का.सं. (अश्व.) ६.४.
(२) प्र + भृ + क्त = प्रभृत । भली प्रकार वेतन या वृत्ति पर नियत ।

प्रभृति- सं. । (१) सबसे उत्कृष्ट भृति, (२) उत्तम आजीविका धारण पोषण ।
सेमामविड्ढि प्रभृतिं ईशिषे'
ऋ. २.२४.१,
(३) भरण पोषण करने वाला साधन
'यज्ञस्य चक्षुः प्रभृतिर्मुखञ्च'

अ. २.३५.५, १९.८५.५.

प्रभृथ- (१) अच्छा धारण किया हुआ स्थान -दया. (२) उत्तम प्रकार से सबका भरण पोषण करने वाला यज्ञ आदि कार्य (३) राजा, (४) पुरोहित, (५) आचार्य, (६) श्रेष्ठ पुरुष ।

'विश्वे सन्वन्तु प्रभृथेषु वाजम्'

ऋ. १.१२२.१२.

उत्तम प्रकार से सबका भरण पोषण करने वाले यज्ञ आदि कामों में और राजा, पुरोहित, आचार्य आदि श्रेष्ठ पुरुषों में (प्रभृथेषु) अपने ऐश्वर्य का दान करो (वाजं सन्वन्तु) ।

(७) उत्तम रीति से भरण पोषण करने योग्य हरिजन

'भगो न हव्यः प्रभृथेषु चारुः'

ऋ. ५.३३.५

(८) प्रकर्षेण संभृतः (सम्यक् प्रकार से रक्षित या एकत्रित) । प्र + भृ + क्त = प्रभृत = प्रभृथ । प्रचुर । दे. 'इडा 'प्रभृथस्य आपोः(प्रचुर मात्रा में एकत्रित जल से)

प्रम - उत्तम ज्ञान ।

'प्र मध्यमासु मातृषु प्रमे सचा'

ऋ. ९.७०.४.

प्रमगन्द- (१) 'मां गद' का अपत्य 'प्रमगन्द' है । मगन्दः कुसीदी । मगन्द सूद पर रूपया चलाने वाले को कहते हैं । मगन्द शब्द मागन्द से बना है । मागन्द का अर्थ हैः 'माम् आगमिष्यति इति च ददाति' (जितना देता हूं उससे दूना या तिगुना मेरे पास आयेगा ऐसा समझ कर जो दूसरे को द्रव्य देता है, वह 'मांगद' है) । 'म' 'ग' और 'द' का समन्वय। अर्थ है- (१) अत्यन्त कुसीदि कुलीन-बहुत ब्याज लेने वाले पुरुष के कुल में उत्पन्न (तदपत्यं प्रमगन्दोऽत्यन्तकुसीदि-कुलीनः)

(२) अथवा 'प्रमदक' ही 'प्रमगन्द' है। 'प्रमदक' विषयपरायण या प्रमादशील व्यक्ति को कहते हैं-जो यही एक लोक है दूसरा नहीं ऐसा समझ कर नास्तिक सा आचरण करता है (प्रमदको वा योऽयमेवास्ति न पर इति प्रेप्सुः)

(३) अथवा 'पण्डक' या 'पण्डुग''प्रमगन्द' है (पण्डकोवा पण्डकः पण्डुगः)

(४) 'प्रमगन्द' नपुंसक को भी कहते हैं । 'पंड' नपुंसक का पर्याय है । पण्ड ही पण्डक है । पण्डग वह है जो निर्वंश होकर नष्ट हो जाता है ।

दुर्ग के अनुसार पण्डग वह है जो स्त्री का रूप होने से अव्यक्त होकर रहता है। अतः प्रमगन्द का अर्थ नपुंसक और स्त्रीरूप वाला पुरुष या 'मडगड़ा' है । इन दोनों का धन सत्कार्य में लगाना ठीक नहीं ।

(४) जो अण्डकोष को निकलवा देता है वह प्रार्दक भी प्रमगन्द है । जो प्रजनन में समर्थ होने के लिये बढ़े हुए अण्डकोश को निकलवा दे वह भी प्रमगन्द है ।

(६) विषय परायण नास्तिक, (७) नपुंसक, (८) मडगड़ा (९) हिंजड़ा ।

'आ नो भर प्रमगन्दस्य वेदः'

ऋ. ३.५३.१४, नि. ६.३२.

हे इन्द्र, ब्याज पर धन चलाने वाले, विषय परायण नास्तिक या नपुंसक या मड़गड़े का जो धन है उसे हमें दे ।

(१०) मगन्द शब्द में प्र उपसर्ग का सम्बन्ध प्रभव अर्थ लाने के निमित्त प्रयुक्त किया गया जान पड़ता है । प्रमगन्दः मगन्दात् प्रभूतः (मगन्द का सन्तान) ।

मगध शब्द की व्युत्पत्ति भी मगन्द से ही प्राप्ति होती है ।

(११) मुझे अधिक धन प्राप्त हो इस आशा से अन्यों को देने वाला, (१२) अपने धन को आमोद प्रमोद में खर्च करने वाला ।

प्रमतिः- (१) प्रकृष्ट मतिवाला, (२) अग्नि या परमेश्वर का विशेषण ।

'आपिःपिता प्रमतिः सोम्यानां भृमिरस्यृषिकृन्मर्त्यानाम्'

ऋ. १.३१.१६.

हे अग्नि या परमेश्वर, तू सोम यज्ञ करने वाले या सोम्य पुरुषों के प्रापणीय है, पिता है, प्रकृष्ट बुद्धि वाला है, तथा दर्शनकारी सभी पदार्थों को प्रत्यक्ष कराने वाला या तत्त्वदर्शी बनाने वाला है(ऋषि कृत्) है ।

(३) उत्कृष्ट ज्ञानवान्, (४) विद्वानों को प्रमुख रखने वाली सेना ।

(४) ज्ञानवान् पति या पुत्र से युक्त स्त्री ।

'सं देव्या प्रमत्या वीरशुष्मया'
ऋ. १.५३.६, अ. २०.२१, ५, मै.सं. २.२.६, २०.५, का.सं. १०.१२ .
'पितृणां कविः प्रमतिर्मतीनाम्'
अ. १८.३.३६

प्रमतिदेवी- उत्कृष्ट ज्ञान वाली देवी

प्रमद्- प्रसन्न ।
'प्रमदामर्त्यान् प्रयुनक्षिधीरः'
अ. १९.५६.१

प्रमद- (१) अत्यधिक हर्ष, (२) काम-वेग को उत्पन्न करने का कार्य ।
'प्रमदे कुमारी पुत्रम्'
वाज.सं. ३०.६

प्रमन्दनी- (१) प्रमोदिनी, (२) मल्लिका (पुष्प) जो गन्ध से पूर्ण होती है । यह कुष्ठ, विस्फोट, कण्डू विष और व्रण का नाशक है । (३) त्वचा ।
'औक्षगन्धिः प्रमन्दनी'
अ. ४.३७.३

प्रमनाः- (१) प्रकृष्ट, (२) उत्तम ज्ञानवान् ।
'मातेव पुत्रं प्रमना उपस्थे'
अ. २.२८.१

प्रमयुः- मरणोन्मुख ।
'मा जिह्वा बर्हिः प्रमयुः कथास्याः'
अ. ८.१.१६

प्रमर- मृत्यु को प्राप्त होने वाला ।
'एतौ मे गावौ प्रमरस्य युक्तौ'
ऋ. १०.२७.२०

प्रमा- (१) परिमाण
'कासीत् प्रमा प्रतिया किं निदानम्'
ऋ. १०.१३०.३
(२) उत्कृष्ट ज्ञान कराने वाली प्रमाण वती बुद्धि ।
'माछन्दः प्रमाछन्दः'
वाज.सं. १४.१८, तै.सं. ४.३.७.१, मै.सं. २.८.३, १०८.११, २.१३.१४, १६३.८, ३.२.९, ३०.३, का.सं. १७.३, ३९.४, श.ब्रा. ८.३.३.५, आप.श्रौ.सू. १६.२८.१.

प्रमाद- (१) प्रमाद, (२) उत्तम कोटि का आनन्द
'यन्ति प्रमादमतन्द्राः'
ऋ. ८.२.१८, अ. २०.१८.३, साम. २.७१.

प्रमायुकः- प्रमा- प्रमरणधर्म, आयु-जीवनकाल । जिसकी आयु मरणधर्म वाली वह प्रमायुक है । प्रमायु + कप् = प्रमायुक (१) प्रमरणधर्म वाला
'प्रमायुको यजमानः'
(प्रमरण धर्म वाला यजमान)

प्रमार- (१) प्राण का घुट जाना, मृत्यु प्रथमेन प्रमारेण ।
'त्रेधा विष्वङ् विगच्छति'
अ. ११.८.३३

प्रमिनत्- (१) हिंसाकारी ।
'मा वेशस्य प्रमिनतो मापेः'
ऋ. ४.३.१३.

प्रमिनती- (१) नाश करती हुई ।
'प्रमिनती मनुष्या युगानि
योषा जारस्य चक्षसाविभाति'
ऋ. १.९२.११.
उषा मनुष्यों के आयु के वर्षों को या स्त्री पुरुष आदि के बने जोड़ो को (मनुष्या युगानि) काल धर्म से नाश करती हुई अपने प्रेमी पुरुष के दर्शन से विशेष शोभा से खिल उठती है ।
(२) मान करती हुई, (३) निर्माण करती हुई ।
'अमिनती दैव्यानि व्रतानि
प्रमिनती मनुष्य युगानि'
ऋ. १.१२४.२

प्रमीली (प्रमीलिन्)- सदा अपनी आंखें मिचमिचाने वाला ।
'ऋक्षग्रीवं प्रमीलिनम्'
अ. ८.६.२.

प्रमुञ्चन् - दूर करता हुआ ।
'तासां जरां प्रमुञ्चन्नेति नानदत्'
ऋ. १.१४०.८०

प्रमुद् - (१) अति आह्लाद कारी ऐश्वर्य ।
'मुदः प्रमुद आसते'
ऋ. ९.११३.११
(२) रतिसुख, भोगविलास ।
'अन्येन मत् प्रमुदः कल्पयस्व'
अ. १०.१०.१२, अ. १८.१.१३.
(३) विनोदकारी कार्य
'प्रमुदे वामनम्'
वाज.सं. ३०.१०, तै.ब्रा. ३.४.१.६

प्रमूर्ण - मारा गया ।

'त्वया प्रमूर्णम् मृदितम्'
अ. १२.५.६१

प्रमृणत्- विनाश करता हुआ ।
'प्रते वज्रः प्रमृणन्नेतु शत्रून्'
ऋ. ३.३०.६, अ. ३.१.४.

प्रमृमन्- (१) अच्छी प्रकार मारता हुआ । (२) मारता हुआ रोग ।
'रुजन् परिरुजन् मृणन् प्रमृणन्'
अ. १६.१.२
(३) शत्रुदल को खूब कुचलता हुआ ।
'जयन्तमज्म प्रमृणन्तमोजसा'
ऋ. १०.१०३.६, अ. ६.९७.३, अ. १९.१३.६, साम. २.१२०४, वाज.सं. १७.३८, तै.सं. ४.६.४.२, मै.सं. २.१०.४, १३६.४, का.सं. १८.५.

प्रमृश- (न) उत्तम विचारशील ।
'नमो धृष्णवे च प्रमृशाय च'
वाज.सं. १६.३६, तै.सं. ४.५.७.१, मै.सं. २.९.७, १२५.११, का.सं. १७.१४.

प्रमृशन्- पता लगाने वाला ।
'अनुजिघ्रं प्रमृशन्तम्'
अ. ८.६.६.

प्रमृषे - प्रमृष्यते, लुप्यते, प्रमृज्यते (लुप्त होता है) । मृष् धातु तितिक्षा अर्थ में आता है । कर्म वाच्य में 'त' प्रत्यय का लोप हुआ है (लोपस्त आत्मनेपदेषु पा. ७.१.४१) ।

प्रमोचन- जाल से दूर रहना, दूर रहना ।
'उन्मोचन प्रमोचने'
अ. ५.३०.२-४

प्रमोत- (१) प्र + मूङ् (बांधना) + क्त = प्रमोत् , अथवा प्र + मृड् + क्त = प्रमोत । प्रवद्ध सर्वेन्द्रिय व्यापारः । मूकवधिरमिति यावात् (२) खूब बांधा हुआ (३) मूकवधिर कर देने वाला दर्द । मोट शब्द का मूल मोत ही है ।
'यः कृणोति प्रमोतम्'
अ. ९.८.४

प्रम्लोचन्ती- (१) दिन के समान प्रकाश करने वाली विद्युत आदि ।
(२) विज्ञान की शक्ति ।
'प्रम्लोचन्ती चानुम्लोचनी चाप्सरसौ'
वाज.सं. १५.१७, वाज.सं. (का.) १६.४.९, तै.सं. ४.४.३.१, का. सं. १७.९, श.ब्रा. ८.६.१.१८.

प्रयक्ष- (१) उत्तम मैत्रीभाव और संगति का लाभ, (२) उत्तम दान प्रतिदान ।
'प्र सस्राति दीर्घमायुः प्रयक्षे'
ऋ. ३.७.१

प्रयक्षतम - अति पूजनीय ।
'तदु प्रयक्षतममस्य कर्म'
ऋ. १.६२.६, ऐ.ब्रा. १.२२.२, आश्व.श्रौ.सू. ४.७.४
इन्द्र या विद्युत का यही सब से पूजनीय कर्म है

प्रयज् - (१) प्रकृष्ट यज्ञ ।
'अग्निः स्रुचो अध्वरेषु प्रयक्षु'
अ. ५.२७.५

प्रयज्य- (१) प्र + यज् + युच् = प्रयज्यु । प्रतत या विस्तृत या प्रकृष्ट यज्ञ करने वाला । (२) सर्वोच्च प्रभु
'विश्ववाराभिरागहि प्रयाज्यो'
ऋ. ६.२२.११, अ. २०.३६.११

प्रयत्- वि. । (१) प्रयत्न साध्य ।
'वयं हि त्वा प्रयति यज्ञे अस्मिन्'
वाज.सं. ८.२०, श.ब्रा. ४.४.४.१२.
हे अग्नि या तेजस्वी ब्रह्मचारी । इस प्रयत्न साध्य गृहस्थ यज्ञ में यहाँ इस यज्ञ को करने में समर्थ तुझ को ही होता बनाते हैं ।
(२) प्रैति प्रकृष्टं ज्ञानं ददाति इति प्रयत् । अर्थ- उत्तम ज्ञान देने वाला
'इन्द्रं प्रातर्हवामहे
इन्द्रं प्रयत्यध्वरे'
ऋ. १.१६.३.

प्रयतदक्षिणः- (१) बहुत दक्षिणा या दान देने वाला ।
'अथा नरः प्रयतदक्षिणासः'
ऋ. १०.१०७.३.
(२) उत्तम संपत् बल वीर्य से युक्त, (३) खूब दान दक्षिणा देने योग्य ।
'वीरं प्रयत दक्षिणम्'
ऋ. ६.५३.२.
(४) समस्त चित्त वृत्ति, क्रिया शक्ति और वीर्य को नियम में रखने वाला साधक ।
'त्वमग्ने प्रयतदक्षिणं नरं
वर्मेव स्यूतं परिपासि विश्वतः'

ऋ. १.३१.१५
हे अग्ने, परमेश्वर, विद्वान् , यज्ञकर्त्ता और यज्ञाग्नि जिस प्रकार दान दक्षिणा देने वाले धार्मिक पुरुष की रक्षा करता है और खूब दृढ़ता से सिला हुआ कवच जिस प्रकार युद्ध में मनुष्य की रक्षा करता है उसी प्रकार तू परमेश्वर अपनी समस्त चित्तवृत्ति, क्रिया शक्ति और वीर्य को अच्छी प्रकार नियम में रखने वाले साधक पुरुष को सभी प्रकार से रक्षा करता है ।

प्रयती- प्र + यम (दान करना) + क्तिन् = प्रयति । अर्थ है प्रदान । 'सुयां सु लुक्' से प्रयति का प्रयती, (पूर्व सवर्ण) तृतीया एक वचन में रूप है । अर्थ है - 'प्रयत्या प्रदानेन सह' अर्थात् दान के साथ साथ ।
'अथा सोमस्य प्रयती युवाभ्यास्
इन्द्राग्नी स्तोमं जनयामि नव्यम्'
ऋ. १.१०९.२, तै.सं. १.१.१४.१, नि. ६.९.
इस लिए हे इन्द्राग्नी, या अध्यापक तथा उपदेशक, मैं तुम्हें सोम रस के साथ साथ बिलकुल नवीन स्तोत्र का उच्चारण करता हूँ या दुग्धादि उत्तम पदार्थों के प्रदान से आप के लिये नया नया सत्कार भेंट करता हूँ ।

प्रयत् यज्ञ- (१) प्रयत्नसाध्य यज्ञ या संग्राम, (२) परस्पर संगति से युक्त, समुदाय ।
'यदद्य त्वा प्रयति यज्ञे अस्मिन्'
ऋ. ३.२९.१६, अ. ७.९७.१, तै.सं. १.४.४४.२, मै.सं. १.३.३८, ४४.१४, का.सं. ४.१२.

प्रयत- (१) सुप्रसिद्ध, (२) अच्छी प्रकार नियत-मार्ग ।
'व्रजं न गावः प्रयता अपिग्मन्'
ऋ. ५.३३.१०.

प्रयति- प्र + यम (दानकरना) + क्तिन् = प्रयति । अर्थ है- (१) प्रदान, प्रकृष्ट दान ।
(२) प्रकृति से ऊंची शक्ति प्रयत्न करने वाला आत्मा ।
'स्वधा अवस्तात् प्रयतिः परस्तात्
ऋ. १०.१२९.५, वाज.सं. ३३.७४, तै.ब्रा. २.८.९.५.
(३) प्रयत्न, व्यापार, (४) चेष्टा, सामर्थ्य ।
'पूर्वामनु प्रयतिमाददे वः'
ऋ. १.१२६.५.
में आप लोगों के उत्कृष्ट प्रयत्नों को अपने अनुकूल धारण करता हूँ ।
(५) उत्कृष्ट यत्न, (६) समस्त जनों का सम्मिलित प्रयत्न या श्रम, (७) उत्तम नियमन या शासन व्यवस्था
'लोमानि प्रयतिर्मय'
वाज.सं. २०.१३, मै.सं. ३.११.८,१५२.९, का.सं. ३८.४, श.ब्रा. १२.८.३.३१, तै.ब्रा. २.६.५.८, आप.श्रौ.सू. १९.१०.२.

प्रयन्ता - प्र + यम् + तृच् = प्रयन्तृ । प्रथमा ए.व.में रूप प्रयन्ता । (दान करना, नियमन करना)
अर्थ - (१) दाता- (२) नियामक -दया. ।
'इन्द्र इन्द्रायः क्षयति प्रयन्ता'
ऋ. १.५१.१४.
इन्द्र ही धन के प्रकृष्ट दाता हैं अतः वे सर्वोपरि द्रष्टा या प्रभु हैं ।
इन्द्र ही नियामक राजा समस्त ऐश्वर्यों को प्राप्त करता है- दया.
(३) उत्तम नियन्त्रण करने वाला परमेश्वर या राजा ।
'बोधि प्रयन्तर्जनितर्वसूनाम्'
ऋ. १.७६.४.
हे उत्तम नियन्त्रण करने वाले, हे समस्त लोकों और वसने वाली प्रजाओं को उत्पन्न करने वाले, तू हमें ज्ञानवान् बना ।
'प्रयन्तासि सुष्वितराय वेदः'
ऋ. ७.१९.१, अ. २०.३७.१

प्रयम्यमान - (१) उत्तमरीति से यम नियमों का पालक विद्यार्थी (२) उत्तम नियमों में स्थित लोक या प्राण ।
'प्रयम्यमानान् प्रतिषूगृभाये'
ऋ. ३.३६.२, तै.ब्रा. २.४.३.१२.

प्रयस्- (१) अन्न, (२) आहुति ।
'प्रयो न हर्मिस्तोमं माहिनाय'
ऋ. १.६१.१, अ. २०.३५.१.
(३) उत्तम मनोहर नदी का स्रोत, (४) मनोहर अन्नादि ऐश्वर्य ।
'प्रयांसि च नदीनां चक्रमन्त'
ऋ. २.१९.२.
(५) उत्तम तृप्ति कारक अन्न । पृ (तृप्त करना) से सिद्ध ।

'आपो न द्वीपं दधति प्रयांसि'
ऋ. १.१६९.३.
जैसे जल द्वीप को धारण करते हैं वैसे उत्तम अन्न आप को धारण करते हैं।
पुनः
(६) प्रीयमाण स्थान, (६) गन्तव्य स्थान, (८) प्राप्ति स्थान।
'अभि प्रयोनासत्या वहन्ति'
ऋ. १.११८.४, ६.६३.७.
हे विद्वानों, शिल्पिजनों, आप दोनों को वे गन्त स्थान पर (प्रयः अभि) ले जाते हैं (वहन्ति)।
(९) पुष्टि कर प्रीतियुक्त अन्न आदि पदार्थ।
'उत नेष्ट्रादजुषत प्रयो हितम्'
ऋ. २.३७.४.
(१०) दूर तक जाने वाला तेज, (११) ज्ञानमय वेदमय वचन।
'तत् तु प्रयः प्रत्नथा ते शुशुक्वनम्'
ऋ. १.१३२.३
सूर्य का जिस प्रकार दूर तक जाने वाला तेज (प्रयः) अतिदेदीप्यमान और अति पुरातन सनातन से चला आ रहा है (प्रत्नथा) उसी प्रकार हे गुरो, तेरा ज्ञानमय वेदमय वचन सदा से विद्यमान और अति प्रकाशमान हो।

प्रयस्ता- (१) सताई गई।
'विषं प्रयस्यन्ती तकमा प्रयस्ता'
अ. १२.५.३१
(२) खूब संतप्त, (३) प्रयास, उद्यम या प्रहार करती हुई।
'प्रयस्ता फेनमस्यति'
ऋ. ३.५३.२२

प्रयस्यन्ती- कष्ट उठाती हुई।
'विषं प्रयस्यन्ती तक्मा प्रयस्ता'

प्रयस्वन्ती- नाना प्रकार के तृप्ति कारी अन्नादि भोग्य ऐश्वर्यों से युक्त।
'प्रयस्वती रीडते शुक्रमर्चिः'
ऋ. ३.६.३.

प्रयस्वान् - प्रयस् + वतुप् = प्रयस्वत् । अर्थ-
(१) अन्न वाला।
'प्र स मित्र मर्तो अस्तु प्रयस्वान्'
ऋ. ३.५९.२, तै.सं. ३.४.११.५, मै.सं. ४.१०.२, १४६.१३, का.सं. २३.१२, आश्व.श्रौ.सू. ३.१२.९, ४.१.६, नि. २.१३.
हे आदित्य (मित्र) वह मनुष्य अन्न वाला (प्रयस्वान्) हो।
'प्रयस्वन्तः प्रति हर्यामसि त्वा'
ऋ. १०.११६.८.
हे इन्द्र या विद्वन् हम अन्न वाले तेरी कामना करते हैं (त्वां प्रति हर्यामसि)।

प्रयाज- (१) मन्त्र के तीन भेद-प्रयाज, अनुयाज और उपयाज में एक प्रयाज मन्त्र यज्ञ का मुख्य भाग है। प्रयाज के बाद अनुयाज मन्त्र पढ़े जाते हैं। उपयाज मन्त्र प्रयाजों के सहयोगी हैं . इन सब मन्त्रों का उच्चारण कर सोमरस के सिवा अन्य पदार्थों की आहुति दी जाती है।
(२) प्रधान देव जिन्हें सर्व प्रथम आहुति दी जाती है।
'प्रयाजान् मे अनुयाजांश्च केवलान्'
ऊर्जस्वन्तं हविषोदत्तभागम्'
ऋ. १०.५१.८
(३) उत्तम यज्ञ, दान या सत्संग का अवसर
'नराशंसोनोऽवतुप्रयाजे'
ऋ. १०.१८२.२
(४) राष्ट्र का उत्तम अधिकार।
'प्रयाजेभिरनुयाजान्'
वाज.सं. १९.१९.

प्रयाण- प्र + या + ल्युट् = प्रयाण । अर्थ -
(१) उदय।
'वि नाकमख्यत् सविता वरेण्यः
अनु प्रयाणमुषसो विराजति'
ऋ. ५.८१.२, अ. ७.७३.६, वाज.सं. १२.३, तै.सं. ४.१.१०.४, मै. सं. २.७.८, ८४.१५, ३.२.१, १५.३, २.१.१५.२, का.सं. १६.८, श. ब्रा. ६.७.२.४, नि. १२.१३.
वरणीय सविता द्युलोक को भी (नाकम्) प्रकाशित करता है (व्याख्यात्) और उषा के उदय के बाद उदित होता है।
(२) पराक्रम पूर्वक किया गया गमन।
'यस्य प्रयाणमन्वन्य इद्ययुः'
ऋ. ५.८१.३, वाज.सं. ११.६, तै.सं. ४.१.१.२, मै.सं. २.७.१,७४.४, का.सं. १५.११, श.ब्रा. ६.३.१.१८.

प्रयामन् - उत्तम मार्ग।

प्रयाहि- प्र + या + हि । अर्थ है जा ।

प्रयियु - (१) प्रयायते, प्रगम्यते यत् तत् प्रयियु (धन) ।(२) अश्व आदि धन, (३) प्रचुर धन ।

उतमे प्रयियोर्वयियोः
सुवास्त्वा अधितुग्वनि'

ऋ. ८.१९.३७

और मेरे लिए अश्व आदि धन तथा वस्त्र का सुवास्तु नदी के तट पर दान किया - और नदी के तट पर रहने वाले (सुवास्त्वा अधि तुग्वनिः) ने मुझे प्रचुर धन और वस्त्र दिया (४) प्रयाण करने वाला सैन्य (५) शरीर में प्रयाण करने वाली आत्मा ।

प्रयुक् - उत्कृष्ट योगाभ्यास के लिए प्रवृत्त ।

'प्रयुग्भ्य उन्मत्तम्'

वाज.सं. ३०.८

प्रयुक्ति - (१) प्रयोग' ।

'ऋतावाना मनसो न प्रयुक्तिषु'

ऋ. १.१५१.८

सत्यज्ञान, धर्माचरण और ऐश्वर्य वाले तुम दोनों को (ऋतावान) ज्ञान के उत्तम प्रयोगों में भी (मनसः प्रयुक्तिषु).....

(२) उत्तम प्रयोग और क्रिया कौशल को जानने वाला ।

प्रयुज् - उत्तम प्रयोगों में कुशल पुरुष ।

'प्रयुञ्जते प्रयुजस्ते सुवृक्ति'

ऋ. १.१८६.९

(२) प्रयोग, (३) प्रयोजन, (४) योजना (५) विधान, (६) मेलजोल ।

'आयुजः प्रयुजोयुजः'

अ. ११.८.२५

(७) उत्तम रीति से जुतने वाला अश्व

'यूयं धूर्षु प्रयुजोन रश्मिभिः'

ऋ. १०.७७.५

(८) उत्तम ऐश्वर्य प्राप्त करना ।

'क्षेमस्य च प्रयुजश्च
त्वमीशिषे शशीपते'

ऋ. ८.३७.५

प्रयज्यु- (१) प्रयोक्तुंयोग्य प्रयुक्त करने योग्य -दया. । (२) उत्तम विद्यादि देने वाला, (३) सत्संगति करने योग्य ।

'विपत्मनोनर्यस्यप्रयज्योः'

ऋ. १.१८०.२.

प्रयन्- (१) सूर्य के तुल्य उत्तम मार्ग से जाता हुआ ।

'प्रयन्तमित् परिजारं कनीनाम्
पश्यामसि नोपनिपद्य मानम्'

ऋ. १.१५२.४

कन्याओं के पति को हम लोग सदा उत्तम मार्ग से जाते देखें न कि नीच मार्ग से ।...

प्रयुञ्जती- (१) उत्तम प्रयोग करती हुई, (२) उत्तम मार्ग में प्रेरित करती हुई माता ।

'प्रयुञ्जती दिव एति 'ब्रुवाणा'

ऋ. ५.४७.१.

प्रयुत- दसलाख । वियुतमपि दश कृत्वोऽभ्यस्तम् प्रयुतम् (नियुत एक लाख है और नियुत का दसगुण प्रयुत दस लाख है) ।

'नियुतं च प्रयुतम् च'

वाज. सं. १७.२, तै.सं. ४.४.११.३, का.सं. १७.१०.

प्रयै - (१) प्राप्त करने के लिए ।

'प्रयै सुतस्य हर्यश्व तुभ्यम्'

ऋ. १०.१०४.३, अ. २०.२५.७, ३३.२.

(२) गमना गमन के लिये (३) प्रयोग के लिये ।

पये देवेभ्यो महीः'

ऋ. १.१४२.६

जिस प्रकार बड़े बड़े द्वार विद्वानों और व्यवहारवान् पुरुषों के आने जाने के लिए (देवेभ्यः प्र यै) विविध प्रकार से खड़े किए जाते हैं (विश्रयन्ताम्) उसी प्रकार शत्रुओं का और बुरे कर्मों का कारण करने वाली (द्वारः) सत्याचरण को बढ़ाने वाली (ऋतावृधः) पूज्य स्त्रियाँ (महीः देवीः) अथवा अन्न और धन से प्रजा को समृद्ध करने वाली उत्तम उपजाऊ और रसमयी भूमियों (ऋतावृधःमहीः) विद्वानों को पाने और व्यवहारों के योग और विजयेच्छओं को प्रयोग के लिए विशेष रूप से प्राप्त हों ।

प्रयोता - (१) लादेने वाला, (२) दूर करने वाला ।

'स्वप्न श्च ने दनृतस्य प्रयोता

ऋ. ७.८६.६

प्ररिक्वा - सबसे बढ़कर - परमेश्वर ।

'स प्ररिक्वा त्वक्षसा क्ष्मो दिवश्च'

ऋ. १.१००.१५

प्ररुत् - (१) विशेष बल उत्पादक शक्ति ।

'या स्ते रुहः प्ररुहो यास्त आरुहः'

अ. १३.१.९.

प्रेरक - (१) अतिरिक्त, श्रेष - (२) धन धान्य राज्य -दया. (३) बड़ा भारी शंकास्थान, संशयपूर्ण (४) संकटापन्न, (५) विपत्ति काल ।
'निते देष्णस्य धीमहि प्रेरके'
ऋ. ३.३०.१९, तै.ब्रा. २.५.४.१

प्रेचनम् - प्रचुर धन ।
'स्यादुत प्रेचनम्'
ऋ. १.१७.६
हमारे पास प्रचुर धन है ।

प्रलाप- व्यर्थ बकवास ।
'आलापाश्च प्रलापाश्च'
अ. ११.८.२५

प्रलयन- (न)। शरीर में औषधि का लीन हो जाने वाला गुण ।
'असितं ते प्रलयनम्'
अ. १.२३.३, तै.ब्रा. २.४.४.१.

प्रवण- (१) प्रदेश ।
'सिन्धोरिव प्रवणे निम्न आशवः'
ऋ. ९.६९.७
(२) नीचा स्थान ।
'रघ्वीरिव प्रवणे सस्रुरूतयः'
ऋ. १.५२.५
'तस्येदिमे प्रवणे सप्तसिन्धवः'
ऋ. १०.४३.३, अ. २०.१७.३
(३) नदी की ढाल, (४) परस्पर का आक्षेप, निन्दा या कलहवृत्ति ।
'क्षीरेण स्नातः कुयवस्य योषे
हतेते स्यातां प्रवणे शिफायाः'
ऋ. १.१०४.३
कुत्सित अन्न खाने वाले दरिद्र की दो स्त्रियां जैसे (कुयवस्य योषे) नदी की ढाल में खड़ी या परस्पर की कलह वृत्ति के नीच व्यवहार में पकड़कर आपस में लड़ती और नष्ट हो जाती हैं (शिफायाः प्रवणे हतेस्याताम्) ।
(४) उत्तम रीति से बना योग्य रणस्थान या सभासदन
'युवोरहप्रवणे चेकिते रथः
यदश्विना वहथः सूरिमावरम्'
ऋ. १.११९.३
जब आप दोनों श्रेष्ठ विद्वान् धार्मिक तथा प्रतिष्ठित पुरुष को प्राप्त होते हो तब उत्तमरीति से सेवने योग्य रणस्थल और सभाभवन में (प्रवणे) भी आप दोनों का ही रथ विशेष रूप से कुशल जाना जाता है ।

प्रवत् - (१) प्रकृष्ट कर्म करने वाला ।
'परेयिवांसं प्रवतो महीरनु'
ऋ. १०.१४.१, अ. १८.१.४९, मै.सं. ४.१४.१६, २४३.६, तै.आ. ६.१.१, आश्व.श्रौ.सू. २.१९.२२, नि. १०.२०.
(२) प्रवण, (३) निम्न प्रदेश, । (४) प्रकृष्ट गति वाला मनुष्य ।
प्र + अव (गति अर्थ में) + शतृ = प्रवत् (अव के अ का लोप), (५) नीच मार्ग से भागने वाला, पलायन योग्य मार्ग । (६) प्रकर्ष प्राय ।
'त्वया वयं प्रवतः शश्वतीरपः'
ऋ. ७.३२.२७, अ. २०.७९.२, साम. २.८०.७, पंच.ब्रा. ४.७.६
(७) वेग से जाने वाली जल धारा (८) उत्तम आचार से रहने वाला ।
'समानो अध्वा प्रवतामनुष्यदे'
ऋ. २.१३.२.

प्रवतः नपात् - (१) प्रपातों या वेगों से उत्पन्न विद्युत् ।
'नमस्ते प्रवतो नपात्'
अ. १.१३.२,
(२) गिरे हुए सैनिकों को न गिरने देने वाला ।
'यूयं न प्रवतो नपात्'
अ. १. २६.३

प्रवत्वती- प्रवत् + मतुप् = प्रवत्वत् । प्रवत्वत् + ङीष् = प्रवत्वती= प्रवणवती, गमनवती । प्रङ (गत्यर्थक) के भाव में लट् से शतृ प्रत्यय कर प्रवत् बना है । अर्थ है-(१) चलने वाली (२) विद्युत् का विशेषण (३) नीचे पृथ्वी की ओर आने वाली विद्युत् -दया ।
'प्रयाभूमिं प्रवत्वति
मह्ना जिनोषि महिनि'
ऋ. ५.८५.१, तै.सं. २.२.१२.२, मै.सं. ४.१२.२, १८१.२, का.सं. १०.१२, आप.मं.पा. २.१८.९, नि. ११.३७.
हे महति या जल वाली (महिनि), हे चलने वाली (प्रवत्वति) जो तू इस प्रत्यक्ष भूमि को

(भूमिन्) महत्व से या जल से (मह्ना) वर्षा देकर प्रसन्न करती है (प्रजिनोषि)।
नीचे पृथिवी की ओर आने वाली (प्रवत्वति), महान् गुणों वाली या मेघ जलवाली (महिनि) जो तू वृष्टि कर्म के महत्त्व से (या मह्ना) भूमि को तृप्ति करती है (भूमि प्रजिनोषि) -दया. (४) निम्न देश युक्ता - दया. (५) उत्तम जलों से युक्त हो झुकने वाली।
'प्रववत्वतीयं पृथिवीमरुद्भ्यः'
ऋ. ५.५४.९

प्रवदः- उत्कृष्ट आज्ञा देने वाला।
'संक्रन्दमः प्रवदो धृष्णुषेणः'
अ. ५.२०.९

प्रवद्यमन् - प्रकृष्टं याति यः स रथः (प्रकृष्ट गति से चलने वाला रथ) - दया।
'प्रवद्यामना सुवृता रथेन'
ऋ. १. ११८.३

प्रवत्वान्- (१) नाना वेगों से युक्त रथ, (२) उत्तम वेग युक्त साधनों का स्वामी।
'आवां रथोऽवनिर्न प्रवत्वान्'
ऋ. १.१८१.३

प्रवदिता- प्रवक्ता, उपदेशक।
'यशसाऽस्या संसदोऽहं पवदितास्याम्।'

प्रवन्तवे - (१) उत्कृष्ट पद या ऐश्वर्य दान करने के लिए।
'पृतनासु प्रवन्तवे'
ऋ. १.१३१.५, अ. २०.७५.३
ऋ. १.१३१.५
(२) उत्तम ऐश्वर्य का विभाग करने के लिए
'चकर्थ कारमेभ्यः पृतनासु प्रवन्तेव'
ऋ. १.१३१.५
तू संग्रामों में इनके हितार्थ उत्तम ऐश्वर्य का विभाग करने के लिए उनके हित योग्य कार्य विभाग नियत कर।

प्रवपन्- सब लोगों में अन्न और जीवादि का बीज बोने वाली परमेश्वर।
'इन्दुं प्रोथन्तं प्रवपन्तमर्णवम्'
ऋ. १०.११५.३

प्रवयाः- सबसे उत्कृष्ट बल शाली।
'ईशानकृत प्रवया अभ्यवर्धत'
ऋ. २.१७.४

प्रवर्त्त- कान वा कुण्डल।
'रात्री केशा हरितौ प्रवर्त्तौ'
अ. १५.२.५

प्रवर्तमानक- पला हुआ।
'गिरेः प्रवर्तमानकः'

प्रवसथ- दूर का स्थान।
ऋ. १.१९१.१६.
'मा ज्योतिषः प्रवसथानि गन्म'
ऋ. २.२८.७, मै.सं. ४.१४.९, २२९.६.

प्रवसन् - परदेशी, प्रवासी।
'येषामध्येति प्रवसन्'
अ. ७.६०.३, वाज.सं. ३.४२, आप.श्रौ.सू. ६.२७.३, ला.श्रौ.सू. ३.३.१, शां.गृ.सू. ३.७.२, हि.गृ.सू. १.२९.१.

प्रवा- (१) वायु का निरन्तर बहना।
'व्रातस्य प्रवामुप वामनुवाति अर्चिः'
अ. १२.१.५१.
(२) द्विव। अश्विवद्वय या सूर्य चन्द्रमा का विशेषण (३) अच्छी प्रकार पहुँचाने वाले।
'तिग्र पृथिवीरूपरिप्रवा दिवः'
ऋ. १.३४.८
पृथिवी, अन्तरिक्ष और आकाश पर पहुँचाने वाले आप दोनों ...।
(४) प्रतति, विस्तार, (५) राष्ट्र का कार्य चलाना, (६) प्रगति (७) फैलावट।
'प्रवयाऽह्नाऽहर्जिन्वा'
वाज.सं. १५.६

प्रवाच्य- (१) प्रवचनीय, (२) वर्णनीय। प्रशंसनीय।
विश्वेत् ता वां सवनेषु प्रवाच्या। हे अश्विनीद्वय, तुम्हारे वे सभी कर्म (वां ता विश्वेत्) यज्ञों में प्रवचनीय हैं।
'प्रवाच्यं तद् वृषणा कृतं वाम्'
ऋ. १.११७.८
हे मनोरथ बरसाने वाले अश्विद्वय, तुम दोनों का वह कृत्य सचमुच प्रशंसनीय है।

प्रवाच्य जन्म - अच्छी प्रकार गुरु का उपदेश प्राप्त करने योग्य विद्या जन्म।
'प्रवाच्यं वृष्णा दक्षसे महे'
ऋ. १.१५१.३

प्रवातेजाः - प्रचुर वात स्थाने काले वा।

प्रावृषिजाताः प्रवातेजाः । प्रवाते + जन् + ड + अस् = प्रवातेजाः ।
प्रचुरवायु के स्थान में या वर्षाऋतु में उत्पन्न होने वाला ।
'प्रवातेजाः इरिणे वर्वृतानाः'
ऋ. १०.३४.१, नि. ९.८.
वर्षा ऋतु तथा सूखे स्थलों में बहुत पाए जाने वाले ।
(२) चतुष्पथ में कुत्सित कार्य करने वाले -
(३) प्रवणेज अर्थात् प्रवण (चतुष्पथ, चौराहे) में कुत्सित कर्म करने वाला । प्रवण + ईज् (गतिकुत्सा अर्थ में) + घ = प्रवणेज' ।
(४) नीच देश में उत्पन्न (५) प्रवल वात के सदृश बलवान् (६) मन के अधीन उत्पन्न (७) जूए के पाशे ।

प्रवाय्य - चिन्तनीय विषय ।
'मनसोऽनुप्रवाय्यम्'
ऋ. ६.१०५.१

प्रबावृजे- (१) प्रववृजे, प्रवृज्यते, प्रस्तीर्यते (बिछाया जाता है)
(२) प्रदान किया जाता है ।
'प्रवावृजे सुप्रयाबर्हिरेषाम्'
ऋ. ७.३९.२, वाज.सं. ३३.४४, नि. ५.२८.
सुन्दर बैठने या आने योग्य (सुप्रयाः) कुशासन (बर्हिः) बिछाया जाता है ।
इन मनुष्यों के लिए (एषां विशाम्) शुभागमनयुक्त वृद्धि प्रदान की जाती है (सुप्रयाः बर्हिः प्रवावृजे) ।

प्रवासः- उत्तम वस्त्र पहनने वाला ।
'प्रवासोन प्रसितासः परिप्रुषः'
ऋ. १०.७७.५

प्रवासा- द्वि.व.। प्रवासिनौर (दो प्रवासी), (२) जीवात्मा और परमात्मा ।
'प्र प्रवासेव वसतः'
ऋ. ८.२९.८

प्रवाहण- (१) नौका, (२) नौका के समान सब भार को उठाने वाला, (३) अग्नि ।
'विभूरसि प्रवाहणः'
वाज.सं. ५.३१, तै.सं. १.३.३.१, मै.सं. १.२.१२, २१.११, का.सं. २.१३, शां.श्रौ.सू. ६.१२.११, हि.गृ.सू. १.१६.२१.

प्रवाह्य- जल धारा का प्रयोग जानने वाला ।
'नमः सिकत्याय च प्रवाह्या चः'
वाज.सं. १६.४३, तैसं. ४.५.८.२, का.सं. १७.१५

प्रवाही- (१) आगे बढ़ने वाला (२) उत्तम अश्व आदि, सवारियों पर चढ़कर चलने वाला ।
'उग्रा यस्य प्रवाहिणः'
अ. २०.१२७.२, शां.श्रौ.सू. १२.१४.१.२.

प्रव्राज- (१) मृत्यु -सा. (२) नदी का मार्ग-दया. ।
(३) उत्तम गन्तव्य मार्ग ।
'प्रवाजेचिन्नद्यो गाधमस्ति'
ऋ. ७.६०.७

प्रविक्त - परिशुद्ध ।
'भूमा रेजन्ते अध्वनि प्रविक्ते'
ऋ. ६.५०.५
जीवन मार्ग के परिशुद्ध होने पर बहुत जन कांपने लगते हैं ।

प्रवित्का- अच्छी प्रकार सुविभक्त भूमि ।
'कृष्टीरन्यो धारयति प्रविक्ताः'
ऋ. ७.८५.३

प्रविद् - (१) उत्तम लाभ, (२) प्राप्ति (३) उत्तम ज्ञान प्राप्ति ।
'उतो पितृभ्यां प्रविदानुघोषम्'
ऋ. ३.७.६

प्रविद्ध- (१) फंसा हुआ, लगा हुआ ।
'अनारम्भणे तमसि प्रविद्धम्'
ऋ. १.१८२.६

प्रविध्यन्तः देवाः- प्रवलता से ताड़ने वाले देवता ।
'प्रविध्यन्तो नाम देवाः'
अ. ३.२६.४

प्रसव- (१) प्र + सु + अच् = प्रसव (२) जन्म, (३) आज्ञा, ।
'तस्य वयं प्रसवे याम उर्वीः'
ऋ. ३.३३.६, नि. २.२६
अतः हम ऐसे इन्द्र या सूर्य की आज्ञा में या प्रसव में रहने वाली नदियाँ फैलती जाती हैं ।
'तमुत्सवे च प्रसवे च सासहिम्
इन्द्रं देवासः शवसामदन्नु'
ऋ. १.१०२.१, वाज.सं. ३३.२९, तै.ब्रा. २.७.१३.४
(४) अन्न प्राप्ति कराने वाला चैत्र (५) वृद्धि कराने वाला शासक ।
'प्रसवाय स्वाहा'

वाज.सं. १८.२८, २२.३२, मै.सं. १.११.३, १६३.१७, १.११.८, १६९. २०, ३.४.२, ४६.१८, ३.१२.१२, १६४.१, का.सं. १४,१.८, ४०.४, श.ब्रा. ९.३.३.८.

प्रसवीता - (१) प्रसविता, (२) समस्त संसार को उत्तम रीति से उत्पन्न करने वाला-सूर्य, परमेश्वर ।
'बृहत्सुम्नः प्रसवीता निवेशनः'
ऋ. ४.५३.६

प्रसम्रणिः- खूब फैला हुआ ।
प्रसम्राणि मनुदीर्घाय चक्षस'
अ. ६.३९.१

प्रसहते - अभिभूत करता है, ।
'प्रादेवीर्मायाः सहते दुरेवाः'
ऋ. ५.२.७, अ. ८.३.२४, तै.सं. १.२.१४.७, का.सं. २.१५.
अग्नि अदेवनशील आसुरी मायाओं को अभिभूत करता है -
तेजस्वी पुत्र दुष्ट मार्ग में ले जाने वाली (रेवाः) राक्षसी मायाओं को पराभूत करता है -दया.

प्रस्कण्व - (१) कण्वस्य अपत्यः प्रस्कण्वः (कण्व का पुत्र प्रस्कण्व है) । प्र प्रभव का द्योतक है । एक वैदिक ऋषि (२) कण्व का अर्थ मेधावी भी है । अतः प्रस्कण्व का अर्थ मेधावी का पुत्र भी हुआ ।
'अङ्गिरस्वन्महिव्रत
प्रस्कण्वस्य श्रुधीहवम्'
ऋ. १.४५.३, नि. ३.१७.

प्रस्तर - (१) सर्वत्र विस्तार करने वाला परमेश्वर ।
'ऋषीणां प्रस्तरोऽसि
नमोऽस्तु दैव्याय प्रस्तराय'
अ. १६.२.६.
(२) उत्तम बिछा हुआ आसन ।
'इमं यम प्रस्तर मा हि रोह'
अ। १८.१.६
(३) आसन, (४) पत्थर, (५) यजमान ।
'यजमानो वै प्रस्तरः'
(६) क्षत्र ।
'क्षत्रं वै प्रस्तरः'
श.ब्रा. १.२.४.२०
(७) उत्तम रीति से राष्ट्र को विस्तृत करने में कुशल ।
'प्रस्तरेण परिधिना'
वाज.सं. १८.६३, तै.सं. ५.७.७.२, का.स. ४०.१३, श.ब्रा. ९.५.१.४८.

प्रस्तरेष्ठः- उत्तम आसन, आस्तरण या पद पर अधिष्ठित ।
'प्रस्तरेष्ठा परिधयाश्च देवाः'
वाज.सं. २.१८, वाज.सं. (का.) २.४.६, का.सं. १.१२, श.ब्रा. १.८.३.२५.

प्रस्नपिता- स्नान से शुद्ध हुई । प्रस्तावित
'यद् दुर्भगां प्रस्नपिताम्'
अ. १०.१.१०

प्रस्फर्व्या- खूब हृष्ट पुष्ट अंगों वाली कन्या ।
'अन्यामिच्छ प्रफर्व्याम्
ऋ. १०.८५.२२, श.ब्रा. १४.९.४.१८, ब्रा.आ. उप. ६.४.१८, आप.मं.पा. १.१०.१.

प्रस्रवण- (१) झरना, निर्झर
'पवित्रस्य प्रस्रवणेषु वृत्रहन्'
ऋ. ८.३३.१, अ. २०.५२.१, ५७.१४, साम. १.२६१, २.२१४.
(२) जल पूर्ण शब्द (३) श्रवण योग्यज्ञान ।
'विरुद्रस्य प्रस्रवणस्य सातौ'
ऋ. १.१८०.८
(४) प्रवाहों का तट ।

प्रस्व- प्र + स्व = प्रस्व (१) उत्तम धनवाला, (२) उत्तम रीति से ओषधियों को उत्पन्न करने वाली भूमि प्रसू है ।
'अपांगर्भः प्रस्व आविवेश'
ऋ. ७.९.३

प्रस्वनित - प्रकृष्टतम् शब्द करने वाला - गर्जने वाला ।
'सिन्धोरिव प्रस्वनितास ऊर्मयः'
ऋ. १.४४.१२

प्रसाधन- संचालन करने वाला ।
'यो यज्ञस्य प्रसाधनः'
ऋ. १०.५७.२, अ. १३.१.६०, ऐ.ब्रा. ३.११.१८.

प्रस्थावा - (१) प्रधान पद पर स्थित पुरुष, (२) रणादि में प्रस्थान करने वाला, (३) आगे बढ़ने वाला ।
'प्रस्थावानो मापस्थाता समन्यनः'
ऋ. ८.२०.१, साम. १.४०१

प्रस्थावत् - प्रस्थान करने योग्य ।
'प्रस्थावद्रथवाहणम्'
ऋ. ३.१७.३, वाज.सं. १२.७१, तै.सं. ४.२.५.६, मै.सं. २.७.१२, ९१.१८, का.सं. १६.१२, श.ब्रा. ७.२.२.११,व.ध.शा. २.३४.

प्रस्नाती- स्नान करती हुई ।
'प्रस्नातीरिवोस्राः'
ऋ. ८.७५.८, तै.सं. २.६.११.२, मै.सं. २.६.११.२, मै.सं. ४.११.६, १७५.५, का.सं. ७.१७

प्रस्वादाः - अति उत्कृष्ट स्वाद लेने वाला ।
'यस्य प्रस्वादसो गिरः'
ऋ. १०.३३.६

प्रसित- (१) नियमों में बद्ध, (२) नियम पालक ।
'प्रवासो न प्रसितासं परिप्रुषः'
ऋ. १०.७७.५

प्रसिति - प्र + सिञ् + क्तिन् = प्रसिति । (१) जिसमें जोर से बन्धन बांधा गया हो वह जाल, (२) प्रकृष्ट सेना ।
'कृणुष्व पाजः प्रसितिं न पृथ्वीम्'
ऋ. ४.४.१, वाज.सं. १३.९ तै.सं. १.२.१४.१, मै.सं. २.७.१५, ९७.७, का.सं. १०.५, १६.१५, ऐ.ब्रा. १.१९.८; कौ.ब्रा. ८.४, श.ब्रा. ७.४.१.३३. नि. ६.१२.
हे अग्नि देव, तेजः संघ, इस पृथ्वी को जाल की तरह बना दे । हे सेनापति, फैले हुए या जाल की तरह तू आपस में बल धारण कर । (३) प्रसितिः प्रसयनात् (जो प्रसित किया जाय) जाल, (४) छिन्न भिन्न एवं रुग्ण शत्रुओं से प्रकीर्ण मार्ग-सा. (२) बन्धन ।
'शूरस्येन प्रसितिः क्षातिरग्नेः'
ऋ. ६.६.५.
शूरवीर योद्धा के छिन्न भिन्न रुग्ण शत्रुओं से प्रकीर्ण मार्ग के समान (शूरस्य प्रसितिःइव) या शूर पुरुष के बन्धन की तरह अग्नि का मार्ग (अग्नेः क्षतिः) दुर्वार्य है ।
आधुनिक अर्थ - जाल, बन्धन (६) उत्तम राज्य प्रबन्ध, व्यवस्था या धर्ममर्यादा ।
'पूर्वीश्चनः प्रसितयस्तरन्ति तम्'
ऋ. ७.३२.१३, अ. २०.५९.४
(८) उत्तम प्रबन्ध से युक्त पृथ्वी (९) सूत्र के समान परस्पर बंधी हुई सुप्रबद्ध सेना ।
'कृणुष्व पाजः प्रसितिं न पृथ्वीम्'
ऋ. ४.४.१, वाज.सं. १३.९, तै.सं. १.२.१४.१, मै.सं. २.७.१५, ९७.७, का.सं. १०.५, १६.१५, ऐ.ब्रा. १.१९.८, कौ.ब्रा. ८.४, श.ब्रा. ७.४.१.३३, आश्व.श्रौ.सू. ४.६.३, बौ.ध.शा. ३.६.६. नि. ६.१२.

प्रविवेशिथः- प्रविष्ट हुआ या प्रविष्ट है ।
'येनाविष्टितः प्रविवेशिथापः'
ऋ. १०.५१.१.
हे अग्नि या विद्युत, जिस जरायु या आवरण से घिर कर तू जल में प्रविष्ट हुआ या पुष्टि है ।

प्रविष्टी- उत्तम प्रजा का ।
'प्रविष्टी मिन माविषुः'
अ. २०.१३६.४, वाज.सं. २३.२९, शां.श्रौ.सू. १२.२४.२.१.

प्रवीता- (१) उत्तम रीति से पति द्वारा संगत स्त्री, (२) अच्छी प्रकार कोई बोई हुई भूमि, (३) उत्तम ज्ञान से युक्त बुद्धि ।
'सद्यः प्रवीता वृषणं जजान'
ऋ. ३.२९.३,. वाज.सं. ३४.१४
(४) अच्छी प्रकार प्रेम में बंधी प्रजा या स्त्री ।

प्रवीयमाना- प्रजा उत्पन्न करती हुई ।
'प्रवीयमाण चरति
क्रुद्धा गोपतये वशा'
अ. १२.४.३७

प्रब्लीन- चारों तरफ से घिरा हुआ शत्रु ।
'प्रब्लीनो मृदितः शयाम्'
अ. ११.९.१९

प्रबुद्ध - अच्छी प्रकार जगा हुआ ।
'प्रबुद्धाय स्वाहा'
वाज.सं. २२.७, तै.सं. ७.१.१९.२, मै.सं. ३.१२.३, १६०.१६, का.सं. (अश्व.) १.१०.

प्रब्रुवाणः- प्र + ब्रू + शानच् = प्रब्रुवाण । प्रकर्ष के साथ गर्जन करता हुआ या बोलता हुआ ।

प्रवृक्त- (१) प्रवर्जित, इधर उधर जाने से रोका हुआ (२) प्रवृत्त ।
'विप्रुतं रेगमुदनि प्रवृक्तम्'
ऋ. १.११६.२४
जल में रोकी हुई या धर्मनाश में प्रवृत्त ।
(३) ऊंचे आसन को प्राप्त ।
'घर्मः प्रवृक्तः'

वाज.सं. ३९.५

प्रवृत् - (१) चेष्टा, प्रवृत्ति, (२) कार्य करने की शक्ति ।

'मही प्रवृद्धर्यश्वस्य यज्ञैः'

ऋ. ३.३१.३

(३) तीनों गुणों के बरतने के लिये प्रवृत्ति रूपा स्त्री, (४) दूर देश में भी व्यवहार करने में समर्थ अधिकारी ।

'प्रवृदसि प्रवृते त्वा'

वाज.सं. १५.९, का.सं. १७.७, ३७.१७, तै.सं. ३.५.२.५, ४.४.१.३ , पंच.ब्रा. १.१०.९, गो.ब्रा. २.२.१४, वै.सू. २६.८.

प्रवृद्ध- (१) अति शक्तिशाली ।

'यद्वा प्रवृद्ध सत्पते'

ऋ. ८.९३.५, अ. २०.११२.२

(२) प्रकृष्ट बुद्धि से युक्त, (३) इन्द्र ।

'मापणि भूरस्यदधि प्रवृद्ध'

ऋ. १.३३.३.

हे प्रकृष्ट बुद्धि से युक्त इन्द्र, (प्रवृद्ध) हमें धन देते हुए तू (अस्मद् अधि) बनिया मत बन (मा आपणिःभूः) ।

(४) सबसे अधिक बढ़ा हुआ ।

'यानि करिष्या कृणहिप्रवृद्ध'

ऋ. १.१६५.९

प्रवृषा- (१) प्रवर्षिता, बरसाने वाला (२) अग्नि का विशेषण ।

'अधजिह्वा पापतीति प्रवृष्णः'

ऋ. ६.६.५.

और प्रवर्षिता अग्नि की ज्वाला लकड़ियों पर बार बार पड़ती है (पापतीति) ।

प्रवदेकृत् - उत्तम धनों और ज्ञान को प्राप्त करने वाला ।

'प्रवदेकृत् बहुधाग्रामघोषी'

अ. ५.२०.९

प्रवेपनी धुनिः- (१) वेग से चलने वाली नदी, (२) खूब कंपा देने वाली सैन्य शक्ति ।

'युजं ह्यन्यमकृत प्रवेपनी
उदीं गव्यं सृजते सत्वर्मिुनिः'

ऋ. ५.३४.८

प्रवोचम् - प्रव्रवीमि (बोलता हूं, वर्णन करता हूँ)

'अभीद्धो घर्मस्तदु षु प्र वोचम्'

ऋ. १.१६४.२६, अ. ७.७३.७, ९.१०.४, नि. ११.४३.

इसी से यह स्तुति (तत् उसु) कहता हूँ (प्रवोचम्) । यहां लङ् का प्रयोग वर्तमान अर्थ में किया गया है । 'अस्यति वक्ति' से च्लि का अङ्, 'वच् उम्' से उम् का आगम हुआ है ।

प्रवोचेयम् - (१) प्रकर्षेण वक्तुं शक्तोभूयासम् (प्रकर्ष से बोल सकूं) । वच् धातु के आशीर्लिङ् में ।

(२) स्तुति करूँ या करता हूँ ।

'प्रतद्वोचेयं भव्यायेन्दवे'

ऋ. १.१२९.१, नि. १०.४२

मैं भव्य इन्द्र के लिए उनकी इष्टतम स्तुति करता हूँ ।

प्रवोढा- (१) अच्छी प्रकार वहन करने वाला, ढोने वाला, लाने वाला- अग्निजलादितत्व (२) उत्तम कार्य-निर्वाहक ।

'स प्रवोढ़न् परिगत्या दभीतेः'

ऋ. २.१५.४

प्रशर्ध- (१) उत्कृष्ट बल शाली ।

'असि प्रशर्ध तुर्वशे'

ऋ. ८.४.१, अ. २०.१२०.१, साम. १.२७९, २.५८१

प्रशंसामि - (१) स्तुति करता हूँ- (३) जपता हूँ ।

'प्रतत्ते अद्य शिपिविष्ट नाम
'अर्यः शंसामि वयुनानि विद्वान्'

ऋ. ७.१००.५, साम. २.९७६, तै.सं. २.२.१२.५, मै.सं. ४.१०.१, १४४.६, का.सं. ६.१०, नि. ५.९.

हे रश्मियों से आविष्ट विष्णु देव (शिपिविष्ट), तेरा वह शिपिविष्ट नाम श्रेष्ठ है (तत् ते नाम अर्यः) तेरे प्रज्ञानों या गुणों को जानता हुआ (वयुनानि विद्वान्) मैं आज तेरी स्तुति करता हूँ (अद्य प्रंशंसामि) ।

हे तेज स्वरूप विष्णु परमेश्वर (शिपिविष्ट), विज्ञानों को जानता हुआ मैं वाचस्पति आज तेरे उस प्रसिद्ध नाम को जपता हूँ (तत् तेनाम प्रंशंसामि) ।

प्रशस्ति- प्र + शस् + क्तिन् । प्रकृष्ट प्रंशंसा या स्तुति ।

'नाभाकस्य प्रशस्तिभिः'

ऋ. ८.४१.२, नि. १०.५.

(नाभाक ऋषि की स्तुतियों से)

प्रशस्तिकृत् - (१) उत्तम स्तुतियों को प्रकट करने

वाली उषा, (२) स्तुति युक्त वचन रहने वाली स्त्री ।
'प्रशस्तिकृद् ब्रह्मणे ना व्युच्छा'
ऋ. १.११३.१९

प्रश्नविवाक – प्रश्नों को विविध प्रकार से कहने वाला विवेचक पुरुष ।
'मर्यादायै प्रश्नविवाकम्'
वाज.सं. ३०.१०, तै.ब्रा. ३.४.१.६.

प्रश्रवाः– (१) उत्तम श्रवण योग्य ज्ञान से सम्पन्न पुरुष (२) उत्तम अन्नोत्पादक जल से पूर्ण –वायु ।
'प्रश्रवसो मरुतो अच्छोक्तौ'
ऋ. ५.४१.१६

प्रसाक्षते– (१) अभिभूत करना या अधिकार जमाता है– (२) पाता है ।
'प्रसाक्षते प्रतिमानानि भूरि'
ऋ. १०.१२०.६, नि. ११.२१.
जो अनेक असुरों को अभिभूत करता है या उनके स्थानों पर अधिकार जमाता है । जो अनेकों उपमानों को पाता है ।

प्रशासन – उत्तम शासन ।
'युवं तासां दिव्यस्य प्रसासने
विशां क्षयथो अमृतास्य मज्मना'
ऋ. १.११२.३
उस उत्तम तेजस्वी अमरआत्मा के उत्तम शासन में जिस प्रकार में प्राण और अपान दोनों रहते हैं ।

प्रशास्त्र – (१) सबसे उत्तम सर्वोपरि प्रधान शासन ।
'तव प्रशास्त्रं त्वमध्वरीयसि'
ऋ. २.१.२,१०.९१.१०,
(२) उत्तम प्रवचन देने वाला उपदेशक – विद्वान् ।
'प्रशास्त्रादापिबतं सोम्यं मधु'
ऋ. २.३६.६

प्रशास्ता – (१) सबसे मुख्य शासक ज्ञानोपदेष्टा (२) अग्नि ।
'त्वमध्वर्युरुत होतासि पूर्व्यः
प्रशास्ता पोता जनुषां पुरोहितः'
ऋ. १.९४.६

प्रशिष्– (१) समस्त प्रशासन ।
'आशिषश्च प्रशिषश्च'
अ. ११.८.२७
(२) उत्कृष्ट शासन ।
'उपासते प्रशिषं यस्य देवाः'
ऋ. १०.१२१.२, अ. ४.२.१, १३.३.२४, वाज.सं. २५.१३, तै.सं. ४.१.८.४, ७.५.१७.१, मै.सं. २.१३.२३,१६८.९, का.सं. ४०.१, नृसिंह.ता. उप. २.४.
(३) प्रकृष्ट शिक्षा ।
'तस्मिन् सन्ति प्रशिषस्तस्मिन्निष्टयः'
ऋ. १.१४५.१

प्रशिष्ट– अधिक शिष्ट, सुसभ्य, सुशिक्षित ।
'ता ओदनं दंपतिभ्यां प्रशिष्टाः'
अ. १२.३.२७

प्रष्टिः– (१) प्रश्नोत्तरादि विद्या जिससे प्रश्न या जिज्ञासा की जाय, (२) जिज्ञासा के कार्य में कुशल (३) राष्ट्र भार या सेनापति का पद भार उठाने वाला ।
'प्रष्टिर्वहति रोहितः'
ऋ. १.३९.६, ८.७.२८, अ. १३.१.२१.
रक्त वर्ण की उज्ज्वल पोशाक पहनने वाला (रोहितः) एवं उदय को प्राप्त होने वाला , पीठ से बोझ उठाने में समर्थ या राष्ट्र भार या सेनापति पद को उठाने वाला, जिज्ञासा कार्य में कुशल अति तेजस्वी मतिमान पुरुष उस पद को धारण करे ।
(४) वेगवान् अश्व ।
'प्रष्टिं धावन्तं हर्योः'
अ. २०.१२८.१५, शां.श्रौ.सू. १२.१६.१.२.
(५) वेगवान् वायु, (६) शीघ्र चालक (७) प्रश्न, (८) पूछे जाकर ।
'ऋज्राश्वः प्रष्टिभिरम्बरीषः
सहदेवो भयमानः सुराधाः'
ऋ. १. १००.१७
सधे हुए बड़ी शक्तियों या अश्वों का नायक (ऋज्राश्वः) भय सञ्चार के साधनों का ज्ञाता (भयमानः) युद्धार्थी सैनिकों के साथ रहने वाला (सहदेवः) यादवों के साथ रहने वाला इन्द्र, उत्तम धनों और उपायों का वेत्ता (सुराधाः) पूछे जाने पर या प्रश्नकिए जाने पर (प्रष्टिभिः)..

प्रष्टिमत् – (१) पूछकर काम करने का स्वभाव

वाला, (२) अधीन, (३) स्वतन्त्र इच्छा से रहित पुरुष ।
'दशरथान् प्रष्टिमतः'
ऋ. ६.४७.२४

प्रश्न – प्रश्न करने वाला ।
'आशिक्षायै प्रश्निनम्'
वाज.सं. ३०.१०, तै.ब्रा. ३.४.१.६.

प्रसक्त– उत्तम शक्ति से सर्वत्र व्यापक।
'इह प्रसक्तो विचयत् कृतं नः'
अ. ७.५०.३

प्रसक्षिणा– द्वि.व. । उत्तम रीति से विजय करने वाले ।
'हरी यस्य प्रसक्षिणा'
ऋ. ८.१३.१०

प्रसन्ना– द्वि. व. । (१) अश्विद्वय का विशेषण + (२) उत्तम सामर्थ्यवान् , मानयुत
'स्तुषे नरा दिवो अस्य प्रसन्ता'
ऋ. ६.६२.१

प्रससर्ज – पसार दिया ।
'प्रससर्ज रोदसी अन्तरिक्षम्'
ऋ. ५.८५.३, नि. १०.४.
वरुण ने मेघ को अधोमुख कर रोदसी और अन्तरिक्ष में पसार दिया ।

प्रसर्स्राणः– बढ़ता हुआ ।
'प्रसर्स्राणो अनुबर्हिर्वृषा शिशुः'
ऋ. ५.४४.३

प्रसिति– प्र + सिञ् + क्तिन् = प्रसिति । अर्थ – (१) बन्धनागार, जेल ।
'माते भूम प्रसितौ हीडितस्य'
ऋ. ७.४६.४

प्रस्थित – (१) भेजा हुआ । (२) आगे रखा, परोसा हुआ ।
'आद्धीदिन्द्र प्रस्थितेमा हवींषिं'
ऋ. १०.११६.८, नि. ६.१६.

प्रस्थिताः – (१) प्रस्थित किए गए या उपस्थित किए गए हवि या फल ।

प्रसुप् – (१) प्रसूत-यास्क, (२) शत्रूणां प्रस्वापकाः हन्तारः (शत्रुओं को सुलाने या मारने वाला) (२) सोने वाला, (३) अन्त में कारण में मिल जाने वाला – (४) शत्रुओं को नष्ट कर भूमि में सुला देने वाला, (५) सुखप्रद ।
'मत्सरासः प्रसुपः साकमीरते'
ऋ. ९.६९.६, साम. २.७२०.

प्रसुपाः – (ब.व.) । (१) सोम रस का विशेषण । (२) प्रसूत किये गए (३) प्रसुप्त हो जाने वाले (४) अन्त में कारण में मिल जाने वाले लोक लोकान्तर ।
'मत्सरासः प्रसुपः साक मीरते'
मदकारक प्रसूत किए सोम रस साथ ही इन्द्र के समीप जाते हैं (ईरते) । हर्ष कारक तथा प्रसुप्त होने वाले अर्थात् अन्त में अपने कारण में मिल जाने वाले (प्रसुपः) लोक लोकान्तर साथ साथ चलते हैं (साकम् ईरते) ।

प्रस्तुत – (१) प्रस्तोता से स्तुत किया गया सामभाग
'उद्गीथः प्रस्तुतं स्तुतम्'
अ. ११.७.५.

प्रस्तुतिः – (१) यथार्थ तत्व का वर्णन करने वाला, (२) यथार्थ तत्त्व ।
'प्रस्तुतिर्वां धाम न प्रयुक्तिः
अयामि मित्रावरुणासुवृक्तिः'
ऋ. १.१५३.२
मैं यथार्थ तत्व को वर्णन करने वाले के समान ही उत्तम प्रयोग क्रिया कौशल को जानने वाला (प्रयुक्तिः) और उत्तम रीति से पापादि मार्गों से रोककर सन्मार्ग में प्रेरित करने वाला होकर (सुवृक्तिः) आप दोनों के गृह को प्राप्त होऊं ।

प्रस्तुभानः– (१) गर्जना करता हुआ (२) अच्छी प्रकार आर्चित ।
'वाजी न सर्गेषु प्रस्तुभानः'
ऋ. ४.३.१२

प्रस्फुरन् – तड़पता, तड़फड़ाता हुआ ।
'यदेभि प्रस्फुरन्नि व दृतिर्न ध्मातो अद्रिवः'
ऋ. ७.८९.२

प्रसू – (१) फल (२) स्वयं उत्पन्न होने वाली नदी, (३) वृक्ष अन्नादि उत्पन्न करने वाली जल धारा (४) उत्तम फल फूल उत्पन्न करने वाली ओंषधि, (५) अग्नि को उत्पन्न करने वाली ओंषधि (६) माता ।
'यदीवर्धन्ति प्रस्वो घृतेन'
ऋ. ३.५.८
(७) पुत्र आदि उत्पन्न करने का सामर्थ्य ।
'सूश्च मे प्रसूश्च मे

वाज.सं. १८.७, तै.सं. ४.७.३.२, मै.सं. २.११.४, १४१.१५, का.सं. १८.८.

प्रसुता – निकली हुई ।
'गोभिः सन्नद्धा पतति प्रसूता'
ऋ. ६.७५.११, वाज.सं. २९.४८, तै.सं. ४.६.६.४, मै.सं. ३.१६. ३, १८७.२, का.सं. (अश्व.) ६.१, नि. २.५., ९.१९.
इषु स्नायु, मज्जा या ज्या से (गोभिः) सन्नद्ध है और धनुष से छोड़े जाने पर (प्रसूता) गिरती है ।

प्रसूमती – नव पल्लव, नई शाखाएं, नई जड़ों को उत्पन्न करने वाली ओषधि ।
'पुष्पवतीः प्रसूमतीः'
अ. ८.७.२७, का.सं. १६.१३.

प्रसूवरी – (१) फलों से युक्त । (२) फलों से युक्त ओषधियां ।

प्रसृजति– करोति (प्रसर्जन करता है) । सृज् धातु निर्माण करना अर्थ में आया है ।

प्रस्तृणति – अच्छी प्रकार फैलने वाली ।
'प्रस्तृणती स्तम्बिनीरेकशुंगाः'
अ. ८.७.४

प्रस्तोकः – उत्तम स्तुति करने वाला ।
'प्रस्तोक इन्नु राधसस्त इन्द्र'
ऋ. ६.४७.२२

प्रहर्मि– देता हूँ ।
'अस्मा इदु प्रतवसे तुराय
प्रयो न हर्मि स्तोमं माहिनाय'
ऋ. १.६१.१, अ. २०.३५.१
उस बलवान्, फुर्तीले, पूज्य इन्द्र के लिए तृप्ति कर अन्न की तरह (प्रयो न) उचित स्तुति देता हूँ (प्रहर्मि) ।

प्रहर्य– अच्छी प्रकार प्रकट करना ।
'प्रपस्त्यमसुर हर्यतं गोः'
ऋ. १०.९६.११, अ. २०.३२.१

प्रहतम् – क्षिप्त करते हैं, प्रहार करते हैं ।
'यस्यामुशन्तः प्रहरामशेपम्'
ऋ. १०.८५.३७, पा.गृ.सू. १.४.१६, नि. ३.२१.
जिसमें हम कामुक जननेन्द्रिय क्षिप्त करते हैं ।

प्रहा – (१) पाशे पर आघात करने वाला अक्ष, (२) विघ्नकारी उपद्रव ।
'उतप्रहा मनिदीव्या जयाति'
ऋ. १०.४२.९, अ. ७.५०.६, अ. २०.८९.९
(३) प्रहार करने वाला, (४) जूए में पाशा मारने वाला ।

प्रहाय्य – दूत, गुप्तचर ।
'आसन् संकल्पाः प्रहाय्याः'
अ. १५.३.१०

प्रहावान् – प्रेरणा करने वाला, विजय प्राप्त करने वाला– इन्द्र परमेश्वर ।

प्रहासी – अट्टहास करने वाला ।
'आपाकेष्ठाः प्रहासिनः'
अ. ८.६.१४

प्रहिणोत – प्रहिणुत, प्रवर्धयत, प्रेरयत (१) स्तुति करो । प्रवर्धित करो, प्रेरित करो । प्र + हि (गति और वृद्धि अर्थ में) के लोट् म.पु.ब.व. का रूप । त का तन आदेश होने पर गुण होता है ।
'प्र नूनं जातवेदसम्
अश्वं हिनोत वाजिनम्
इदं नो बर्हिरासदे'
ऋ. १०.१८८.१, नि. ७.२०.
समस्त संसार में व्याप्त गतिशील अग्नि या वेदवेत्ता विद्वान् को इस आस्तीर्ण कुशासन पर बैठने के लिए प्रेरित करो (प्रहिणोत) ।
पुनः–
(२) बढ़ा, प्रेरित कर ।
हे स्तोताओ, तुम इस सर्वव्यापी ज्वालाओं से चंचल या अन्नयुक्त या अश्व के सदृश बलवान् अग्नि को स्तुतियों से प्रेरित कर (प्रहिनोत) ।

प्रहुतिः – सर्वोत्तम दान ।
'ईशानाय प्रहुतिं यस्त आनट्'
ऋ. ७.९०.२, मै.सं. ४.१४.२, २१६.६, आश्व.श्रौ.सू. २.२०.४, ३.८.१.

प्रहेता – (१) शत्रु को मार भगाने वाला ।
'प्रहेतारमप्रहितम्'
ऋ. ८.९९.७, अ. २०.१०५.३, साम. १.२८३.
(२) सब का प्रेरक ।

प्रहेतिः– उत्तम श्रेणी का अस्त्र ।
'पौरुषेयो वधः प्रहेतिः'
वाज.सं. १५.१५, तै.सं. ४.४.३.१, मै.सं. २.८.१०, ११४.१८, का.सं. १७.९, श.ब्रा. ८.६.१.१६.

प्रहोष – (१) उत्तम रीति से दान, प्रदान,

(२) होता-दया ।

'प्रहोषेचित् अररुषः'

ऋ. १.१५०.२

प्रहोषी - (१) उत्तम रीति से बल देने वाला, (२) उत्तम दानी ।

'सुदक्षस्य प्रहोसिणः'

ऋ. ८.९२.४, साम. १.१४५.

प्लक्ष - पिलखण का पेड़ ।

'भद्रात् प्लक्षान्निस्तिष्ठसि'

अ. ५.५.५

प्लव - (१) जहाज, (२) शरीर । (३) सर्वप्रवर्त्तक राजा ।

'अनड्वाहं प्लवमन्वारभध्वम्'

अ. १२.२.४८

(४) बत्तक।

'प्लवो मद्गुर्मत्स्यस्ते नदीपतये'

वाज.सं. २४.३४, मै.सं. ३.१४.१५, १७५.१०.

प्सर - (१) भोजन, (२) अन्न ।

'महि प्सरः सुकृतं सोम्यंमधु'

ऋ. ९.७४.३

(३) यं प्सन्ति भुंजते स भोगः- (भोगने योग्य ऐश्वर्य या वैभव विस्तार, (४) स्वरूप ।

'महि प्सरो वरुणस्य'

ऋ. १.४१.७

वरुण या सर्वश्रेष्ठ राजा का भोगने योग्य ऐश्वर्य और वैभव विस्तार या स्वरूप बहुत बड़ा है ।

पयते- प्रप्यायते, आप्यायनं करोति, प्रकर्षे वर्द्धते (खूब बढ़ता है) । 'पा' या 'पी' 'धातु' बढ़ने या मोटाना अर्थ में है । अर्थ है- पुष्ट करते हैं ।

'मिमातिमायुं पयते पयोभिः'

ऋ. १.१६४.२८, अ. ९.१.८, १०.६, नि. ११.४२

पयस् - पा (पीना या पुष्ट करना) + असुन् = पयस् । पीयते हि तत् (वह पीया जाता है) अथवा, प्या + असुन् = प्यायस् = पयस् । तेन हि पीतेन वर्द्धन्ते प्राणिनः (दूध पीकर प्राणी बढ़ते हैं) । लोक में पीङ् (पीना) या पय (गमन) से 'असुन' प्रत्यय कर ' पयस्' बनता है ।

अर्थ - (१) पुष्ट करने वाला दुग्ध । (२) जल ।

पयस्पा - द्वि.व. । (१) शुद्ध जल और पुष्टि कारक दुग्ध आदि पान करने वाले अश्विद्वय या स्त्रीपुरुष ।

'आवामश्वासः शु चयः पयस्पाः'

ऋ. १.१८१.२

पयस्फाति- दूध आदि की वृद्धि ।

'पयस्फातिं च धान्यम्'

अ. १९.३१.१०

पयस्वत् - पा + असुन् = पयस् , पयस् + वतुप् = पयस्वत् । अर्थ है- उदक वाला ।

पयस्वती- पयस् + ङीष् = पयस्वती (१) उदक वाली । द्विवचन में यहां प्रयोग है । (२) द्यावापृथिवी का विशेषण (३) जलवाली ।

'असश्चन्ती भूरिधारेपयस्वती'

ऋ. ६.७०.२, नि. ५.२.

एक दूसरे से असंश्लिष्ट, बहुत धारा वाली या बहुत जीवों को धारण कारण करने वाली एवं जल वाली द्यावापृथिवी ।

पयस्वान् - पुष्टिकारक अन्न, दुग्ध एवं पशु आदि समृद्धि से सम्पन्न ।

'पयस्वन्तोऽमृताः प्रस्थिताः'

वाज.सं. २१.४२.

पयोधाः- दूध पीने वाला ।

'वत्साओ न प्रक्रीडिनः पयोधाः'

ऋ. ७.५६.१६, तै.सं. ४.३.१३.७, मै.सं. ४.१०.५, १५५.७, का.स. २१.१३.

पयोवृधा- द्वि. व.। (१) मातापिता के समान दूध और ज्ञान से बढ़ाने वाले ।

'उत सुत्ये पयोवृधा'

ऋ. ८.२.४२.

परः- (१) पारं परं भवति (पार ही पर है) । यत् अवनाय भवति तत् अवरम् (जो रक्षा के लिए होता है वह अवर है)। यत् अवराय न भवति तत् परम् (जो रक्षा के लिए नहीं है वह पर या पार दुर्गम होने से रक्षा के लिए नहीं होता) । इस कूल से उधर ही पार होता है (अवरस्मात् कूलात् परः) । वही पार पर है। (तदेव पारम् स्वार्थिनः)। अव + अरन् = अवर । पृ + अच् = परः ।

(१) दूसरा ।

'तस्माद्धान्यन्न परः किं चनास'

ऋ. १०.१२९.२, तै.ब्रा. २.८.९.४.

प्रलय काल की स्थिति में उस एक सत् ब्रह्म

से दूसरा कुछ नहीं था ।
आधुनिक अर्थ- अन्य, भिन्न, दूर, उस पार, आगे, उच्चतम, प्रमुखतम, सर्वोत्तम, प्रधान, परायण अर्थ में और शब्दों के साथ जोड़ा जाता है । पराया, शत्रु, शेष, अधिक, जैसे परशतम् (एक सौ से अधिक) अन्तिम, परमात्मा, सुन्दर स्वरूप, तत्पश्चात, लेकिन, नहीं तो, बहुत अधिक, पूर्णतः पश्चात्, भविष्य में (२) सबसे ऊंचा ।
'यमः परोऽवरोविवस्वान्'
अ. १८.२.३२.
(३) पालक, पूरक (४) उत्कृष्ट ।
'परि परो अभवः सास्युक्थ्यः'
ऋ. २. १३.१०
(४) दक्षिण, दाहिना ।
'परमक्ष्युतावरम्'
अ. १.८.३

परः अग्निः- (१) सूर्य अर्थात् अन्तरिक्ष अग्नि (२) वायु ।
'यत्रावदेते अपरः परश्च
यज्ञन्योः कतरो नौविवेद'
ऋ. १०.८८.१७, नि. ७.३०
जिस कर्म में यह पार्थिव अग्नि और वह सूर्य अर्थात् अन्तरिक्ष अग्नि वा वायु परस्पर विवाद करते हैं कि हमे दोनों यज्ञ करने के नेताओं में कौन अधिक यज्ञ कार्य जानता है।

परः अर्धः - (१) परमेश्वर का परम स्वरूप ।
'दिवआहुः परे अर्धे पुरीषिणम्'
ऋ. १.१६४.१२, अ. ९.९.१२, प्रश्न उप. १.११

परः परः- दूर रहकर ।
'यद्यज्ञाया पचति त्वत् परः परः'
अ. १२.३.३९

परम - (१) निरतिशय, (२) पराद्धर्यस्थ परम अर्ध में स्थित, (३) आदित्य मण्डल ही परम पद है । वह परार्द्ध में स्थित है । (४) उत्कृष्ट ।
'सहस्राक्षरा परमे व्योमन्'
ऋ. १.१६४.४१, तै.ब्रा. २.४.६.११, तै.आ. १.९.४. नि. ११.४०.
आधुनिक अर्थ - अत्यन्त दूर, अन्तिम, उच्चतम प्रधान, सर्वोच्च, सर्वोपरि, काफी, पूर्ण, अत्यन्त होंने पर स्वीकृति सूचक जैसे ।
'परममित्युक्त्वा मुनिमण्डलं प्रतस्थे' (बहुत अच्छा कहकर मुनिमण्डली चली गई) ।
सत्य (५) परम तत्व, श्रेष्ठतत्व ।
'क्व स्विदस्याः परमं जगाम'
ऋ. ८.१००.१०, तै.ब्रा. २.४.६.११, नि. ११.२८.
इस माध्यमिका वाक् का परमतत्व कहां चला जाता है ।
मनुष्य इस वाणी के प्रभाव से उत्पन्न रस को कहां कहां पाता है ।

परमज्या- (१) परमज्या, (२) प्रधान वधिक, (३) कारण और बन्धन का नाशक ।
'परमज्या ऋचीषमः'
ऋ. ८.९०.१, अ. २०.१०४.३, साम. १.२६९, २.८४२.
(४) बड़ीज्या (डांरी) वाला इन्द्र ।

परमं पदम् - (१) परम पद जो विष्णु का निवास स्थान समझा जाता है (२) विष्णु लोक ।
'अत्राह तदुरुगायस्य वृष्णः'
परमं पदमवभाति भूरि'
ऋ. १.१५४.६, नि. २.७.
यहीं पर अति स्तुत्य या सब को गति देने वाले,कामना बरसाने वाले विष्णु का परम पद अत्यन्त सोहता है ।

परमः पाथः- (१) सबसे उत्कृष्ट पाथस्-अन्न, (२) पृथिवी आदि लोक, (३) परम पद, (४) परम सूक्ष्म जल, (५) पालक सैन्य बल ।
विष्णुर्गोपाः प्रथमं पाति पाथः'
ऋ. ३.५५.१०

परमं व्योम- (१) परम व्योम रूपी ऋ पा या प्रणव के अक्षर अ उ म, (२) ओम् अथात् ऋच् का वाचक । ओम् को ही परमव्योम कहा गया है, क्योंकि ओम् अविनाशी, सभी वेदों में व्याप्त एवं सर्वश्रेष्ठ है और इसमें विविध शब्द ओतप्रोत हैं । जिस प्रकार सभी देवता परम व्योम में व्याप्त हैं उसी प्रकार प्रणव में भी, (२) आदित्य मण्डल जिसमें रश्मिरूपी सभी देवता विद्यमान हैं- ओम् है, (३) शरीर भी परम व्योम है जिसमें इन्द्रियां देवता अविनाशी आत्मा को पूजती हैं
अ + उ + म = ओम् । वि + ओम् = व्योम ।

'ऋचो अक्षरे परमे व्योमन्
यस्मिन् देवा अधिविशो निषेदुः '
ऋ. १.१६४.३९, अ. ९.१०.१८, तै.ब्रा. ३.१०.९.१४, तै.आ. २.११.१, श्वे.उप. ४.८, नृसिंह पू.ता.उप. ४.२,५.२, नि. १३.१०.

परमं व्योमन् – (१) सबसे उत्कृष्ट विशेष रूप से सबके रक्षक और आकाश के समान निराकार और सर्व व्यापक परमेश्वर ।

परम सधस्थ– (१) परम एकत्र होने का स्थान ।
'उप प्रागात् परमं यत् सधस्थम् '
ऋ. १.१६३.१३, वाज.सं. २९.२४, तै.सं. ४.६.७.५, का.सं. (अश्व.) ६.३, श.ब्रा. १३.५.१.१७,१८.
(२) परम उत्कृष्ट ब्रह्मस्थान ।
'प्रियो देवानां परमे सधस्थे '
अ. १८.३.७, तै.आ. ६.३.१, ४.२.

परमा– उत्कृष्ट गुण वाली पृथ्वी ।
'मध्यमस्थां परमस्यामृत स्थः '
ऋ. १.१०८.९

परमादिक् – परमदिशा ।
'स परमां दिशमनु व्यचलत् '
अ. १५.६.१३.

परमा परावत्– दूर से दूर देश ।
'सुदेवो अद्य प्रपतेदनावृत्
परावतं परमां गन्तवा उ '
ऋ. १०.९५.१४, श.ब्रा. ११.५.१.८, नि. ७.३.
आज तेरा शोभन पति पर्वत से गिर पड़े जिससे वह पुनः लौटने वाला न होकर दूर से दूर देश जाने के लिये महा प्रस्थान करे ।

परमा रजांसि– (१) दूर से दूर लोक प्रदेश (२) परम सर्वोत्कृष्ट ज्ञान ।
'न ते दूरे परमाचिद् रजांसि '
ऋ. ३.३०.२, वाज.सं. ३४.१९.

परमा सहक् – प्रकृष्ट संद्रष्टा, आदित्य विश्वकर्मा ।
'धाता विधाता परमोत संदृक् '
ऋ. १०.८२.२, वाज.सं. १७.२६,तै.सं. ४.६.२.१, ५.७.४.३, का.सं. १८.१, नि. १०.२६.

परमेष्ठिनी– (१) सर्वोपरि विद्यमान परमेश्वर में स्थित वाणीरूप दिव्य शक्ति ।
'इयं या परमेष्ठिनी वाग्देवी ब्रह्मसंशिता '
अ. १९.९.३

परमेष्ठी– (१) परमेश्वर का यह रूप ।
'परमेष्ठ्यभिधीतः '
वाज.सं. ८.५४
(२) परम उच्च पर स्थित ब्रह्मा, परमेश्वर , अग्नि ।
'आज्यस्य परमेष्ठिन् '
अ. १.७.२.

परशु– पर + शु । अनात्म पदार्थों को काटने में समर्थ ज्ञान रूप वज्र, (२) फरसा ।
'उज्जायतां परशुर्ज्योतिषासह '
ऋ. १०.४३.९, अ. २०.१७.९

परस्तराम् – सर्वथा ।
'मुह्यन्त्वद्याभूः सेनाः
अमित्राणां परस्ताराम् '
अ. ६.६७.१

परस्तात् – (१) परे, दूर देश में (२) ज्ञानेन्द्रियों या मन वाणी से अव्यक्त रूप में विद्यमान ।
'शयुः परस्तादध नु द्विमाता '
ऋ. ३.५५.६
(३) ऊपर की ओर, (४) ऊंची शक्ति ।
'स्वधा अयस्तात् प्रयतिः परस्तात् '
ऋ. १०.१२९.५, वाज.स. ३३.७४, तै.ब्रा. २.८.९.५,

परस्प – (१) दूसरों का पालन करने वाला, (२) दूसरों का पालन करना ।
'क्षत्रस्य त्वा परस्पाय ब्रह्मणस्तन्वं पाहि '
वाज.सं. ३८.१९, श.ब्रा. १४.३.१.९.

परःपन्थाः– अन्य मार्ग ।
'परं मृत्योअनुपरेहि पन्थाम् '
ऋ. १०.१८.१, अ. १२.२.२१, वाज.सं. ३५.७, श.ब्रा. १३.८.३.४, तै.ब्रा. ३.७.१४.५, तै.आ. ३.१५.२, ६.७.३, तै.आ. (आंध्र) १०.४६, आप.श्रौ.सू. २१.४.१, आश्व.गृ.सू. ४.६.१०, साम.मं.ब्रा. १.१.१५, हि.गृ.सू. १.२८.१, नि. १०.७.
हे मृत्यो, तू अन्य मार्ग से पराङ्मुख होकर जा (परेहि) ।

परस्पाः – (१) परम पालन पोषण करने वाला –अग्नि ।
'त्वं दूतस्त्वमु नः परस्पाः '
ऋ. २.९.२, तै.सं. ३.५.११.२, मै.सं. ४.१०.४,

१५२.७, का.सं. १५.१२, ऐ.ब्रा. १.२८.३७, कौ.ब्रा. ९.२.

(२) परम पालक इन्द्र परमेश्वर ।

'परस्पा नो वरेण्यः'

ऋ. ८.६१.१५

(३) द्वि.व. । एक दूसरे की रक्षा करने वाले -मित्रावरुण, स्त्रीपुरुष, राजा आमात्य ।

'अक्रविहस्ता सुकृते परस्पा'

ऋ. ५.६२.६

(४) परम पालक , शत्रुओं से बचाने वाला ।

'यातं छर्दिष्पा उत नः परस्पा'

ऋ. ८.९.११, अ. २०.१४१.१

परस्फान- शत्रुओं से रक्षा करने वाला ।

'परस्फानो वरेण्यः'

अ. १९.१५.३

परस्याः परावत् - (१) द्युलोक के भी उस पार का स्थान । 'परा' द्युलोक का नाम है और द्युलोक से भी परा लोक परस्पाः परावत है । पुराणों में इसे विष्णु लोक कहा गया है ।

'परावत आजगन्था परस्याः'

ऋ. १०.१८०.२, अ. ७.२६.२, ८४.३, साम. २.१२२३. वाज.सं. १८.७१, तै.सं. १.६.१२.४, मै.सं. ४.१२.३, १८३.१४, का.सं. ८.१६.

हे इन्द्र या परमेश्वर, तू द्युलोक के भी उस पार के स्थान से (परस्या परावतः) आ (आजगन्थ) ।

(२) अतिदूर देश में ।

'यः परस्याः परावतः
तिरो धन्वातिरोचते'

ऋ. १०.१८७.२, ६.३४.३.

जो अग्नि आदित्य रूप में (यः) अति दूर देश में भी (परस्याः परावतः) रहकर तीर्णतम इस महान् अन्तरिक्ष को पार कर (तिरः धन्व अति) हम लोगों को प्रकाशित करते या प्रकाश देते हैं ।

प्रज्ञातारः - (१) प्रकृष्ट ज्ञान वाले । मरुद्गण या व्यापारिवर्ग का विशेषण ।

'प्रज्ञातारो न ज्येष्ठाः सुनीतयः'

ऋ. १०.७८.२

परस्वत् - (१) पूर्णता प्राप्त पुरुष (२) पशुविशेष

'यावत् परस्वतः पसः'

अ. ६.७२.२

परस्वन्तः - पर + सु + अन्त । अन्तःस्थ परमेश्वर दूरस्थ है ऐसी भावना ।

'परस्वन्तं हतं विदत्'

ऋ. १०.८६.१८, अ. २०.१२६.१८.

परस्वान् - (१) मैं परमेश्वर से दूर हूँ ऐसा भाव, (२) परस्वान् नामक अश्व ।

'अत्यर्धर्च परस्वतः'

अ. २०.१३१.१९

पर्चः- सम्पर्क ।

'पर्चो यथा नः सुवितस्य भूरेः'

ऋ. ७.१००.२

पर्जन्य - (१) तृप् + क्विप् = तृप् = तर्पयिता, तृप्त करने वाला । जन + यत् = जन्य (जनेभ्यः हितः जन्यः) अर्थ है लोकोपकारक । तृप् च जन्यश्च च पर्जन्यः सर्वजनपद तर्पयिता (समस्त जीवों को तृप्त करने वाला) । वर्ण-विपर्यय से तृप् का पर हो जाता है।

पर + जन्य = पर्जन्य । अर्थ- (१) मेघ ।

'यत्पर्जन्यः स्तनयन्हन्ति दुष्कृतः'

ऋ. ५.८३.२, नि. १०.११.

यह मेघ अशनिपात द्वारा दुष्कृत करने वालों को नष्ट करें।

(२) पर- जेता जनयिता वा (प्रकृष्ट जेता या जनयिता) । पर् + जि (जय करना) अथवा जनि (उत्पन्न करना) + यत् = पर्जन्य (जिनके बाद अनङ्ग और 'जनि' के 'इ' का लोप (३) रसानां प्रार्जयिता (रसों का संचेता संचय करने वाला) जि के बाद अवङ् और जनि के इ का लोप) (४) रसानां प्रार्जयिता (रसों का संचेता या संचय करने वाला)। प्र + जि + यत् = पर्जन्य (प्र का पर)

आधुनिक अर्थ - मेघ, इन्द्र (५) सर्प विष की एक ओषधि ।

'वातापर्जन्योभा'

अ. १०.४.१६

पर्जन्यक्रन्दयं - सब मेघों को भी गर्जन कराने वाला अग्नि, विद्युत्

'पर्जन्यक्रन्द्यं सहः'

ऋ. ८.१०२.५, तै.सं. ३.१.११.८, का.सं. ४०.१४.

पर्जन्यजिन्वत् - तृप् + क्विप् = तृप् । जन् + यत्

= जन्य (लोकोपकारक) । तृप् + जन्य = पर्जन्य (सर्वजनतर्पयिता)-मेघ या प्रकृष्ट जेता या जनयिता ।
अथवा - रसानां प्रार्जयिता (रसों का संचेता वा संचय करने वाला) । प्र + जि + यत् = पर्जन्य ।
पर्जन्य + जि + शतृ = पर्जन्य जिन्वत् । अर्थ है- (१) पर्जन्यं प्रीणयति (मेघ को प्रसन्न करने वाला) । 'जिवि' प्रेरणार्थक धातु है ।
'संवत्सरं शशयानाः
ब्राह्मण व्रतचारिणः
वाचं पर्जन्यजिन्वितां
प्रमण्डूका अवादिषुः'
ऋ. ७.१०३.१, अ. ४.१५.१३, नि. ९.६.
वर्षा बरसाने के लिए इस मंत्र का जप किया जाता है । एक वर्ष तक (संवत्सरम्) बिना बोले बिल में सुप्त से पड़े हुए या वर्षा के लिये तपस्या करते हुए (शशमानाः) सदा बोलने में समर्थ होने पर भी (ब्राह्मणाः) बोली पर संयम रखने वाले (व्रत चारिणः) ये मेढ़क (मण्डूकाः) वर्षा ऋतु के आ जाने पर मेघ को प्रसन्न करने वाली वाणी (पर्जन्य जिन्वतां वाचम्) जोर से बोलते हैं (प्र अवादिषुः)।

पर्जन्य जिन्विता - (१) मेघ की स्तुति करने वाली वाणी, (२) आनन्द रस प्रदाता, प्रभु को प्रसन्न करने वाली वाणी ।
'वाचं पर्जन्य जिन्वताम्'
ऋ. ७.१०३.१.

पर्जन्यपत्नी - (१) मेघ द्वारा सींची जाने वाली पृथिवी ।
'भूम्यै पर्जन्य पत्न्यै'
अ. १२.१.४२.
(२) मेघ वत् सुखों की वर्षा करने वाले परमात्मा की पत्नीरूप वशा शक्ति ।
'वशा पर्जन्य पत्नी'
अ. १०.१०.६

पर्जन्यरेताः - (१) मेघ के जल से सींच कर वृद्धि पाने वाला (२) तृप्ति देने वाले प्रिय पुरुष की वीर्य धारण करने वाली ।
'इदं पर्जन्य रेतसे
इन्द्रै देव्यै बृहन्नमः'
ऋ. ६.७५.१५

पर्जन्यवृद्ध - (१) मेघवत् बड़े-बड़े शत्रुओं का विजेता, (२) मेघों से बढ़ने वाला ।
'पर्जन्यवृद्धं महिषम्'
ऋ. ९.११३.३

पर्ण - (१) पत्ता ।
'पर्णेभिः शकुनानाम्'
ऋ. ९.११२.२.
पक्षियों के पंख से जैसे कुशल कारीगर
'हिमेव पर्णा मुषिता वनानि'
ऋ. १०.६८.१०, अ. २०.१६.१०
(२) सूर्य
'सरौ पर्णभिवादधत्'
अ. ५.२५.१
(३) पलाश, ढाक का पेड़ ।
'भद्रान्यग्रोधात् पर्णात्'
अ. ५.५.५
(३) गिरे पत्तों का ठेकेदार
'नमः पर्णाय च पर्णशदाय च'
वाज.सं. १६.४६, मै.सं. २.९.८, १२७.१, का.सं. १७.१५.
(४) पंख ।
'चरित्रं हि वेरिवा च्छेदि पर्णम्'
ऋ. १.११६.१५

पर्णक - रक्षा तथा युद्धादि कार्य में कुशल पुरुष ।
'स्वनेभ्यः पर्णकम्'
वाज.सं. ३०.१६., तै.ब्रा. ३.४.१.१२.

पर्णधि - (१) पर्णधि नामक वृक्ष जिस का पत्ता विष हरता है, (२) विषैला सरकण्डा ।
'प्राञ्जनादुत पर्णधेः'
अ. ४.६.५

पर्णमारी - (१) उत्तम ज्ञानवान् पालन करने वाला शिरोमणि पुरुष (२) उत्तम पालक यन्त्र, पत्तों का निर्मित ताबीज ।
'आयमगन् पर्णमणिः'
अ. ३.५.१.

पर्णय - यः पर्णनि प्राप्ताप्राप्तानि वस्तूनि याति स चौरः (प्राप्त या अप्राप्त वस्तुओं को चुराने वाला,) (२) प्रजा के पालक पुरुषों पर आक्रमण करने वाला ।
'त्वं करञ्जमुत पर्णयं वधीः'

ऋ. १.५३.८, अ. २०.२१.८
(३) पर्ण अर्थात् गतिशील रथों से प्रयाण करने वाला शत्रु ।

पर्णयहा - (१) पालक पुरुष का नाश करने वाला ।
'यत् पर्णयघ्न उतवा करञ्जहे'
ऋ. १०.४८.८

पर्णवी- (१) पत्तों से युक्त वृक्ष (२) किरणों से युक्त सूर्य ।
'पर्णवीरिव दीयते'
ऋ. ९.३.१, साम. २.६०६
(३) पक्षी के समान वेग से जाने वाले रथों से जाने वाला (४) पंखों से चलने वाला पक्षी, (५) मुमुक्षु, (६) राजहंस, (७) पक्षी, (८) आत्मा ।

पर्णशद - पत्तों का काटने वाला ।
'नमः पर्णाय च पर्णशदाय च'
वाज.सं. १६.४६

पर्फरीका - द्वि.व. । (१) पर्फरीकौ, शत्रूणां विदारयितारौ (शत्रुओं को विदीर्ण करने वाले) (२) अश्विनी कुमारों का विशेषण,
'नैतोशेव तुर्फरी पर्फरीका'
ऋ. १०.१०६.६, नि. १३.५.
हे अश्विनी कुमारो, तुम दोनों नैतोश नामक वधक के समान नाश करने वाले एवं शत्रुओं को विदीर्ण करने वाले हो ।
(३) प्रजाओं का पालन पोषण करने वाले अश्विद्वय (४) स्त्री पुरुष ।

पर्यगात् - सर्वव्यापक
'स पर्यगाच्छुक्रमकायमव्रणम्'
वाज.सं. ४०.८, ईश उप. ८.

पर्यखयाते - घर लेता है ।
'दधृग्विधक्ष्यन् पर्यखयाते'
ऋ. १०.१६.७

पर्यभूषन् - (१) पर्यगृहणात्, परिगृहीतवान् परिगृहीत किया) (२) राजपद से अलङ्कृत किया (३) पर्यरक्षत् (परिरक्षण किया)- दया. (४) आत्माक्रामत् प्रभावेण (प्रभाव से अतिक्रान्त किया) 'परि + भू' के लङ् प्र.पु.ए.व. का रूप (शप् और सिप बाहुलक नियम से) ।
'जातं यत्त्वा परिदेवा अभूषन्
महे भराय पुरुहूत विश्वे ।'
ऋ. ३.५१.८, कौ.ब्रा. २२.७.
हे बहुतों के द्वारा आहूत इन्द्र, सभी देवों तथा प्राणिमात्र ने तुझे अच्छी तरह से पालन पोषण या रक्षा के लिये परिगृहीत किया ।
हे निर्वाचित राजन् , राजा बनाए गए जिस तुझ को सब देवताओं ने राज्य पोषण के महान् कार्य के लिए राज-पद से अलंकृत किया है । -दया.

पर्यास्ताक्ष- जिसकी आखें फिरी हुई हो, जो सीधा न देख सके।
'पर्यस्ताक्षा अप्रचङ्कशा'
अ. ८.६.१६

पर्वत- पर्व + तप् (मत्वर्थीय) = पर्वत । पर्ववान् पर्वतः (पर्वत पर्व वाला होता है ।)
शिला शिखर सम्बन्धिभिः असौ पर्ववान् भवति (शिला और शिखरों की सन्धियों से पर्वत पर्व अर्थात् जोड़ वाला होता है) ।
अर्थ - (१) पर्वत, (२) मेघों में भी पर्व-सन्धि रहती है ।
'महान्तमिन्द्र पर्वतं वियद्वः'
ऋ. ५.३२.२., साम. १.३१५, नि. १०.९.
हे इन्द्र, तूने महान् मेघ को उन्मुक्त किया ।
'बडित्था पर्वतानाम्
खिद्रं बिभर्षि पृथिवि'
ऋ. ५.८४.१, तै.सं. २.२.१२.२. मै.सं. ४.१२.२, १८१.१, का.सं. १०.१२, आप.मं.पा. २.१८.९, नि. ११.३७.
हे पृथिवी अर्थात् विद्युत् , तू इस भूमि या अन्तरिक्ष में (इत्था) बल रखती है जिससे मेघ छेदे जा सकते हैं (खिद्रम् बलम्) ।
हे विद्युत् , तू सचमुच इस अन्तरिक्ष में (इत्था) मेघों का छेदक बल धारण करती है ।
'पर्वतानां खिद्रं बिभर्षि' ।
प्र पर्वतानामुशती उपस्थात्
अश्वे इव विषिते हासमाने'
ऋ. ३.३३.१, नि. ९.३९.
ये पर्वत की गोद से आती हुई विपाशा और शुतुद्रि नदियां इस प्रकार वेग से चलती हैं- जैसे वाजिशा से छूटी घोडियां हिनहिनाती चलती हैं ।
(३) पूर्ण सामर्थ्यवान् परमेश्वर (४) पर्ववाला मास (५) पालन करने वाला शासक ।

यः शम्बरं पर्वतेषु क्षियन्तम्
अ. २०.३४.११
'उदुस्रिया पर्वतस्य त्मनाजत्'
ऋ. १०.६८.७, अ. २०.१६.७
(६) पूर्ण ज्ञान देने वाला गुरु।

पर्वतच्युत् - (१) मेघ से युक्त (२) जो मेघ से च्युत करता है, (३) प्रबल शत्रु को छिन्न भिन्न करने वाला।
'इमां वाचमन जा पर्वत च्युते'
ऋ. ५.५४.१,

पर्वताः- पोरु वाले अंगों से स्थित हड्डियां।
'आस्थाने पर्वता अस्थुः'
अ. ६.७७.१, अ. ७.९६.१

पर्वती- (१) पालन करने के बल से युक्त।
'धिषणासि पर्वती'
वाज.सं. १.१९, श.ब्रा. १.२.१.१५

पर्वतीय - (१) पूर्ण ज्ञान देने वाले गुरु से प्राप्त ज्ञानाञ्जन, (२) पर्वत से प्राप्त अञ्जन, (३) पालन करने वाले राजा के पद पर अधिष्ठित
'चतुर्वीरं पर्वतीयं यदाञ्जनम्'
अ. १९.४५.३

पर्वतेष्ठ- (१) मेघ में स्थित विद्युत् (२) पर्वत में स्थित।

पर्वन् - (१) पृ (पूरणार्थक) + वनिप् = पर्वन्। 'यः पूरयति' (जो पूर्ण करता है वह पर्व है)। प्री (प्रीरणार्थक) + वनिप् = पर्वन्, (प्री के ई का अ और र का आगम)। 'प्रीणयन्ति स्वाश्रयम् इति पर्वाणि (जो अपने आश्रय को प्रसन्न करते हैं वे पर्व हैं)।
अर्थ- (१) पर्व, ग्रन्थि, गिरह, गाँठ, पोर। (२) हड्डी का जोड़।
'निर्मज्ञानं न पर्वणोः जभार'
ऋ. १०.६८.९, अ. २०.१६.९

पर्शनः- (१) स्पर्श पाने वाला, (२) पीडित।
'गिरयश्चिन्नि जिहते
पर्शनासो मन्यमानाः'
ऋ. ८.७.३४

पर्षः- (१) धान्य -सहित पुआल।
'खले न पर्षान् प्रतिहन्मि भूरि'
ऋ. १०.४८.७, नि. ३.१०.
जैसे खलिहान में धान्य सहित पुआल को रौंद देते हैं वैसे ही मैं अपने शत्रुओं को एक ही साथ मसल डालता हूँ। (२) पुरुष। अंग्रेजी का Person शब्द पर्ष से मिलता जुलता है।

पर्षणिः - (१) पार पहुंचा देने वाला।
तं त्वा नावं न पर्षणिं
शूषस्य धुरि धीमहि।
ऋ. १.१३१.२, अ. २०.७२.१
(५) पार करने वाला। पार + सन् + इन।
पारवीर कर्म समाप्तौ,

पर्षत् - पार करे।
'सनः पर्षदति दुर्गाणि विश्वाः'
ऋ. १.९९.१, अ. ७.६३.१, तै.आ. १०.२.१, महा.ना.उप. ६.२. नि. १४.३३.
वह अग्नि या परमेश्वर सभी दुर्गमनीय दुःखों से हमें पार करें (अति पर्षत्)।
(२) नष्ट करे।
'स नः पर्षदति द्विषः'
ऋ. १०.१८७.१-५, अ. ६.३४.१-५, मै.सं. ४.१०.६,१८५.७, का.सं. २१.१३, ऐ.ब्रा. ५.२१.२०, ऐ.आ. ४.६,४.७, आश्व.श्रौ.सू. २.१८.३.
(वह हमारे शत्रुओं को नष्ट करें)

परा - (१) एक उपसर्ग, (२) उस पार जैसे 'परागत' लांघ गया। (३) पर + टाप् = परा। (४) परा और अपरा विद्या के भेद (५) द्युलोक।
'परावत आजगन्था परस्याः'
ऋ. १०.१८०.२, साम. २.१२२३.
(१) ऊर्ध्व शरीर की नाड़ी, (२) बड़ी स्त्री।
'तिष्ठावरे तिष्ठ परे'
अ. १.१७.२

पराकः - (१) दूर स्थित परमकर्त्ता आत्मा।
'यस्येदं दूतीरसरः पराकात्'
ऋ. १०.१०८.३
(२) दूर स्थित।
'सचस्वनः पराक आ
सचस्वास्तमीक आ'
ऋ. १.१२९.९
दूर देश में भी तू हमें प्राप्त हो (नः पराके आसचस्व) और अति समीप हमारे घरमें भी तू प्राप्त हो (अस्तमीके) (३) दूर।
'आन्तादा पराकात्'

ऋ. १.३०.२१.
अति निकट या अति दूर से
पुनः दूर देश के अर्थ में-
'यन्नासत्या पराके'
ऋ. ८.९.१५, अ. २०.१४१.५
'एषास्या यजाना पराकात्'
ऋ. ७.७५.४

पराकात्तात् - पराकात् + तात्। दूर से भी दूर से
'पराकात्ताच्चिदद्रिवः'
ऋ. ८.९२.२७

पराके - (१) पराक्रान्ते, दूरे, दूरिस्थित (२) दूर देश -सा. (३) दूर, पृथक,
'तं त्वा गृणामि तवसमतव्यान्
क्षयन्तमस्य रजसः पराके।'
ऋ. ७.१००.५, साम. २.९७६, तै.सं. २.२.१२.५, मै.सं. ४.१०.१, १४४.७, का.सं. ६.१०, नि. ५.९.
जो तू सर्वगुण- सम्पन्न ईश्वर है उस एक महान् तथा इस अन्तरिक्ष से भी महान् तथा इस अन्तरिक्ष से भी दूर देश में बसने वाले को (तं त्वा तवसम् अस्य रजसः पराके क्षयन्तम्) मैं क्षुद्र या अमहान् (अतव्यान्) स्तुतियों से प्रणाम करता हूँ (गृणामि) -
इस पृथ्वी से (अस्य रजसः) दूर पृथक् रहते हुए तुझ को (पराके क्षयन्तम्) महाशक्तिशाली उस तुझ को (तव सम् तम्) भजता हूँ (तृणामि)
परागत - कहीं अन्यत्र गया हुआ
'यद्वो मनः परागतम्'
अ. ७.१२.४.

पराङ् - दूर देश से आक्रमण करने वाला।
'जहि प्रतीचो अनूचः पराचः'
ऋ. ३.३०.६, अ. ३०.१.४

पराङ्नाः- पूर्वबीते की चिन्ता करने वाला।
'मात्र तिष्ठः पराङ्नाः'
अ. ८.१.९

पराचः - (१) पराञ्चनम्, पराङ् मुखगमनम् (पराङ् मुख होकर गमन करना) पर + अञ्च् + ल्युट् = पराञ्चन् = पराच ('पृषोदर' आदि के जैसा) (२) बहुत चलने वाला।
'दूरे ह्यध्वा जगुरिः पराचैः'
ऋ. १०.१०८.१, नि. ११.२५
यह मार्ग दूरी पर है और बहुत चलने वालों के लिये भी दुस्साध्य है।
यह मार्ग बहुत दूरी पर है और पराङ् मुख चलने वाले से ही गम्य या प्राप्य है।

पराचीन - (१) दूर तक फैला हुआ, विशाल।
'पराचीन मुखा कृधि'
अ. ६.१०६.२, वाज.सं. १६.५३, तै.सं. ४.५.१०.५ मै.सं. २.९.९, १२८.६
(२) देह से बाहर जाता हुआ प्राण।
'पराचीनाय ते नमः'
अ. ११.४.८

पराचैः - पर + चि + डैसि = पराचैः। अर्थ - (१) दूर।
'युद्ध शूर वृषमानः पराचैः'
ऋ. १.६३.४
'आरेबाधेथां निर्ऋतिं पराचैः'
ऋ. ६.७४.२, तै.सं. १.८.२२.५, मै.सं. ४.११.२, १६५.१२, का.सं. ११.१२.
(२) अव्यय। दूर से ही।

पराजिता - पर + अजिता। शत्रु सेना से हारे बिना।
'पुनरेतु पराजिता'
अ. ३.१.६

पराञ्च् - (१) दूर गया, (२) दूर का शत्रु, (३) दूरगत चिरकालिक संस्कार।
'जहि प्रतीचो अनूचः पराचः'
ऋ. ३.३०.६, अ. ३.१.४.

पराञ्चः - ब.व.। (१) दूरवर्ती (२) कारण रूप से स्थित पदार्थ (३) दूर के ग्रह आदि, (४) दूर लोक में स्थिति जीवगण जो ब्रह्म से दूर हैं।

परातरम् - खूब अच्छी तरह से।
'परातरं सु निर्ऋतिर्जिहीताम्'
ऋ. १०.५९.१-४.

पराणुद् - (१) शत्रु का जिसमें नोदन हो युद्धस्थल, संग्राम।
'स्थिरा व सनवायुधा पराणुदे
वीळू उतप्रतिष्कभे'
ऋ. १.३९.२
आप लोगों के युद्ध करने के अस्त्र शत्रुओं को दूर हटा देने वाले संग्राम के लिये स्थिर अर्थात् सुदृढ़ हो और शत्रुओं को रोकने और मुकाबले पर डट जाने के लिए (प्रतिष्कभे) वे अस्त्र दृढ़

लें ।
(२) परे हटना ।
'स्थिराणि न पराणुदे'
ऋ. ८.१४.९, अ. २०.२८.३, २०.३९.४, ऐ.ब्रा. ६.७.८, गो.ब्रा. २.५.१३.

परादादि - (१) बहुत पराजय करने वाले, (२) बहुत देने वाला ।
'असि भूरि परा ददिः'
ऋ. १.८१.२, अ. २०.५६.२, साम. २.३५३.

परादान - जो दूसरों से लिया जाता है ।
'यद् दत्तं यत्परादानम्'
वाज.सं. १८.६४, श.ब्रा. ९.५.१.४९.

परादाः - पराङ्मुख को, नाश करे ।
'अधस्मा नो मघवन् चर्कृतादित्
मानोमघेव निष्षपी परा दाः'
ऋ. १.१०४.५.
हे मघवन् । बार-बार की गई हमारी स्तुति रूपी कर्म से (चकृतात्) हमें पराङ्मुख न करें (मा परादाः) जैसे लम्बा एवं विषयी मनुष्य अपने धन को नष्ट करता है (निष्षपी मघा इव)- अतः हे राजन्, दुष्कृत कर्म से (चकृतात्) हमें रक्षा करें, परन्तु जैसे व्यभिचारी मनुष्य धन नष्ट करता है (निष्षपी मघा इव) एवं दुर्व्यसनों में पड़वा कर हमारा नाश न कीजिए (नः मा परादाः) -दया. ।

परादै - त्याग देने योग्य ।
'अघाय भूम हरिवः परादै'
ऋ. ७.१९.७, अ. २०.३७.७, तै.सं. १.६.१२.६, मै.सं. ४.१२.३, १८३.२.

परानी - परा + नी । दूर एकान्त में ले जाना ।
'ये गोपतिं परानीय'
अ. १२.४.५२

परापरा - अति अधिक, बड़ी से बड़ी ।
'मो षु णः परा परा
निर्ऋतिर्दुर्हणा वधीत्'
ऋ. १.३८.६.

परापरैता - परा + परा + एता । दूर दूर देशों में जाने वाला व्यापारी ।
'परापरैता वसुविद् वो अस्तु'
अ. १८.४.४८

पराभूत्याः पुत्र - अपमान का पुत्र स्वप्न ।
'पराभूत्या पुत्रोऽसि'
अ. १६.५.७

परायण - आयन अर्थात् घर में रहने वाला स्थान से दूर ।
'आपने से परायणे
दूर्व रोहन्तु पुष्पिणीः'
ऋ. १०.१४२.८, अ. ६.१०६.१.

परायतिः - सबका प्राप्य स्थान ।
'सहस्रणीतिर्यतिः परायतिः'
ऋ. ९.७१.७

परायन - दूर देश को जाता हुआ ।
'परायतो निवर्तनम्'
अ. ७.३८.१

परायती - पूर्व की बीती हुई -उषा ।
'परायतीनामन्वेति पाथः
आयतीनां प्रथमा शश्वतीनाम्'
ऋ. १.११३.८
पूर्वबीती हुई उषाओं के मार्ग का अनुसरण करती हुई आगे आने वाली उषाओं में से सबसे पहली है ।

परापुर् - (१) दूर देश का वासी ।
'परापुरो निपुरो ये भरन्ति'
अ. १८.२.२८, वाज.सं. २.३०, श.ब्रा. २.४.२.१५, आश्व.श्रौ.सू. २.६.२, शां.श्रौ.सू. ४.४.२, आप.श्रौ.सू. १.८.७, साम.मं.ब्रा. २.३.४.
(२) दूर दूर तक महल भवन बनाने वाला ।

पराभृत - (१) आत्मा से अतिरिक्त इन्द्रिय, मन और शरीर आदि कारणों द्वारा प्राप्त, (२) पराचीनेन पाणिना आहुतं प्रक्षिप्तम् ।
'स नोनियच्छात् वसुयत् पराभृतम्'
अ. ७.४१.२.

परामृश - (१) लोट प्र.ए.व. का रूप । छू, अंग को छू - (२) परामर्श कर -दया. ।
'उपोप मे परामृश'
ऋ. १.१२६.७, नि. ३.२०.
हे पतिदेव, मेरे अति निकट आ मेरे अंगों को छू ।
हे पतिदेव मेरे साथ भली भांति परामर्श कर -दया.

परामृष्टा - (१) कठोर स्पर्श को प्राप्त करती हुई ।
'मिथोयोधः परामृष्टा'

अ. १२.५.२४.

परायण - (१) परमस्थान, मोक्ष (२) पराङ्मुख गमन ।

'य उदानट् परायणम्'

ऋ. १०.१९.५, अ. ६.७७.२.

परायत् - जुआ खेलने के लिये अड्डे पर जाता हुआ पुरुष ।

'परायद्भ्योऽवहीये सखिभ्यः'

ऋ. १०.३४.५.

जुआ खेलने जाते हुए मित्रों को देखकर मैं अपने को उन से हीन समझने लगता हूँ (अवहीये) या (सायण के अनुसार) यह सोचने लगता हूँ कि मैं पहले पासा न फेंकूंगा ।

परायती - परलोक जाती हुई, (२) दूर जाती हुई ओंषधि या पीछे प्राप्त हुई ओषधि ।

'परायती मातरमन्वचष्ट'

ऋ. ४.१८.३

'अथो हन्ति परायती'

ऋ. १.१९१.२.

परायणम् - परा + अयनम् (१) जीवों का दूर - परमपद को प्राप्त करना ।

'संज्ञानम् यत् परायण्'

ऋ. १०.१९.४

(२) परदेश जाना ।

'मधुमन्मे परायणम्'

ऋ. १०.२४.६, अ. १.३४.३.

(३) गृह का पिछला-पीछे का निकास ।

'आयने ते परायणे
दूर्वा रोहतु पुष्पिणी'

ऋ. १०.१४२.८, अ. ६.१०६.१

(४) कार्यों का समाप्ति तक पहुंचाना या पुनः अन्त ।

परावत् - (१) परमपद मोक्ष में स्थित परमेश्वर ।

'ये सोमासः परावति'

ऋ. ८.९३.६, ९.६५.२२, अ. २०.११२.३, साम. २.५१३, पंच.ब्रा. १४.५.९

(२) दूर का देश ।

'परावतश्च वृत्रहन्'

ऋ. ३.४०.८, अ. २०.६.८, मै.सं. ४.१२.३,१८४.९.

(३) परम ज्ञान की रक्षा करने वाली वेदवाणी ।

'बृहस्पते या परमा परावत्'

ऋ. ४.५०.३, अ. २०.८८.३, आश्व.श्रौ.सू. ३.७.९.

परावत- परा + वति + परावत, परावत् + अच् = परावत । अर्थ है- दूर से भी दूर ।

परावाक - (१) पराभव को कहने वाला दूत (२) प्रतिकूल या दूर करने का उपदेश ।

'परावाकाय ते नमः'

अ. ६.१३.२

परावृज- (१) दूर त्याग किया हुआ (२) अनाथ जिसे बन्धु बान्धव छोड़कर चले गए हों ।

'नीचा सन्तमुदनयः परावृजम्'

ऋ. २.१३.१२.

(३) यः परिवृणक्ति- (जो दूर करता है) -दया ।

'आविर्भवन्नुदतिष्ठत् परावृक्'

ऋ. २.१५.७

(४) धर्म मार्ग से पराङ्मुख होने वाला ।

'याभिः शचीभिर्वृषणा परावृजम्
प्रान्धं श्रोणं चक्षसे एतवे कृथः'

ऋ. १.११२.८

जिन शक्तियों से समस्त सुखपूर्वक तुम दोनों तो धर्म मार्ग से प्राङ्मुख जाने वाले (परावृजम्) चक्षुहीन (प्रान्धन्) अज्ञानी या वधिर का (श्रोणम्) सम्यक् दर्शन करने योग्य और लंगड़े के चलने में अच्छी प्रकार समर्थ कर देते हो (एतवे कृप्यः) ।

पराशर - (१) दूर के शत्रुओं का नाशक इन्द्र ।

'पराशरत्वं तेषां'

अ. ६.६५.१

(२) परा + शृ + रक = पराशर पराशरः पराशीर्णस्य वसिष्ठस्य स्थविरस्य जज्ञे । (अतिजीर्ण वसिष्ठ का नप्ता (वसिष्ठ के पुत्र शक्ति के मरने पर पराशर उत्पन्न हुए) ।

अर्थ - (१) वसिष्ठ का पौत्र पराशर, (३) अड़तालीस वर्ष के आदित्य ब्रह्मचारी का पुत्र (४) पराशीर्ण-वसिष्ठ- स्थविरः उसका पुत्र पराशर, (५) इन्द्र (इन्द्रोऽपि पराशरः) (६) उच्यते पराशयिताऽपि पराशरः - इन्द्र भी पराशर है, क्योंकि वह राक्षसों का श्रेष्ठ विनाशक है ।

'प्र ये गृहादममदुस्त्वाया
पराशरः शतयातुर्वसिष्ठः
न ते भोजस्य सख्यं मृषन्ता

अधा सूरिभ्यः सुदिना व्युच्छान्'
ऋ. ७.१८.२१
हे इन्द्र, वसिष्ठ का नाती तथा शक्ति का पुत्र पराशर हुए। वे बहुतों के नष्ट करने वाले हुए (शतयातुः) या पराशर के पिता शतपातु, शक्ति और वसिष्ठ आदि जो ऋषि तेरे साथ घर पर जा घर जाकर सोम पीकर या यज्ञों में अत्यन्त प्रसन्न हुए (प्रअममदुः) वे पराशर आदि ऋषि (ते) तुझे भोजक या भोजी का संग नहीं बिसारते (भोजस्य सख्यं न मृषन्त) और इसी कारण से (अधा) विद्वानों के पास (सूरिभ्यः) सुन्दर दिन आते हैं (सुदिना व्युच्छान्) अर्थात् उन्हीं मनुष्यों की रात्रियां सुन्दर प्रभात वाली होती हैं।
अन्य अर्थ - हे राजन् , ४८ वर्ष के ब्रह्मचारी का पुत्र, सब दुर्गुणों का नाशक और आदित्य ब्रह्मचारी (पराशर शतयातुः वसिष्ठ) यदि तेरी नीति के कारण (त्वाया) गृहस्थाश्रम को पाकर अत्यन्त प्रसन्न रहे (गृहात् अममदुः) तो वे तुम राष्ट्रपालक के सुख को नहीं छोड़ते (भोजस्य सख्यं न मृषन्त) और इन विद्वानों के साथ मित्रता होने पर उनके साथ उत्तम दिन बिताते हैं (अधाता सूरिभ्यः सुदिना व्युच्छन्)।
इन्द्र के अर्थ में पराशर शब्द का प्रयोग।
'इन्द्रोयातूनामभवत् पराशरः
हविर्मथीनामभ्या विवासताम्'
ऋ. ७.१०४.२१, अ. ८.४.२१, नि. ६.३०.
इन्द्र राजा यज्ञविध्वसंक (हविर्मथीनाम्)और धर्म कार्य को निर्वासित करने वाले आततायियों का (अभ्याविवासताम् यातूनाम्) सम्पूर्ण तया दमन करने वाला है(पराशरः अभावत्) और शक्ति शाली राजा या इन्द्र (शक्रः) जैसे कुल्हाड़ी वृक्ष को काट डालती है (यथा परशुः वनम्) और जैसे मुद्गर मिट्टी के पात्रों को तोड़ डालता है (पात्रा इव) एवं प्राप्त राक्षसों का नाश करता हुआ (सतः रक्षसः भिन्दन्)। सुख सम्पत्ति को पाता है (अभ्येति)।
(७) प्रबल विनाशक, (८) दुष्टों का हिंसक -दया. (९) पराशर नामऋषि।
'पराशरः शतयातुर्वसिष्ठः'
ऋ. ७.१८.२१, नि. ६.३०.

पराशस् - परा + शसु (हिंसा करना) + क्विप् = पराशस् (१) पराङ्मुख हिंसा।
(२) सत्कर्मों से दूर ले जाकर आत्मा का नाश करने वाला -पाप -।
'अवशसा निः शसा यत् पराशसा'
अ. ६.४५.२

परासः- (१) पालन करने में कुशल, (२) बाद में होने वाले।
'अधायथानः पितरः परासः'
ऋ. ४.२.१६, अ. १८.३.२१, वाज.सं. १९.६९, तै.सं. २.६.१२.४, ऐ.ब्रा. ७.६.४.

पारसः पितरः- (१) द्युलोक में रहने वाले पितर लोग।
(२) उत्तम श्रेणी के ऐश्वर्य सम्पादक पितर लोग-दया.। आर्य समाजी विद्वान् पितरः का अर्थ प्रेतात्मा नहीं मानते।
'उदीरतामवर उत्पराहासः
उन्मध्यमाः पितरःसोम्यासः'
ऋ. १०.१५.१, अ. १८.१.४४, वाज.सं. १९.४९, तै.सं. २.६.१२.३, मै.सं. ४.१०.६, १५७.४, ऐ.ब्रा. ३.३७.१३, नि. ११.१८.
जो निकृष्ट पितर पृथ्वी में आश्रित हैं वे ऊपरी लोक में आवें (अवरे पितरः उदीरताम्)। जो द्युलोक में स्थित हैं वे ऊपर उठें और मोक्ष पावें और जो मध्यस्थानाश्रयी हैं वे उत्तम लोक प्राप्त करें।
स्वामी दयानन्द अर्थ- प्रथम श्रेणी के ऐश्वर्य सम्पादक पितर हमें शिक्षा प्रदान करें। उत्तम श्रेणी के ऐश्वर्य सम्पादक पितर हमें शिक्षा प्रदान करें और मध्यम श्रेणी के पितर हमें शिक्षा प्रदान करें।.
दिवंगत पितरों का कर्मानुसार अनेक लोगों में वास थियोसफीमत वाले भी मानते हैं।
यह ऋचा मननीय है।

पराहता- ताड़ित।
'मीढुष्मतीव पृथिवी पराहता'
ऋ. ५.५६.३

पर्ता- पालक, पूरक।
'तां अंहसः पिपृहि पर्तृभिष्ट्वम्'
ऋ. ७.१६.१०
'पर्षितोकं तनयं पर्तृभिष्ट्वम्'
ऋ. ६.४८.१०, साम. २.९७४

पर्याक्रियमाणा- पूर्णरूप से विकृत कर दी गई ।
'मूलबर्हणी पर्याक्रियमाणा'
अ. १२.५.३३.
पर्याकृता - पूर्णरूप से विकृत की गई ।
'क्षितिः पर्याकृता'
अ. १२.५.३३.
पर्याणद्ध- चारों तरफ सुसम्बद्ध रूप से बंधा हुआ । या पहना हुआ आभूषण आदि ।
'पर्याणद्धं विश्वरूपं यदस्ति'
अ. १४.२.१२.
पर्याभृत- प्राप्त किया गया ।
'सिन्धु तस्पर्याभृतम्'
अ. ७.४५.१
'वनस्पतिभ्यः पर्याभूतं सहः'
ऋ. ६.४७.२७, अ. ६.१२५.२, वाज.सं. २९.५३, का.सं. (अश्व.) ६. १.
पर्यायिणी- (१) पर्याय अर्थात् क्रम से कालों का ज्ञान कराने वाली यन्त्रकला या गणित विद्या (२) एक बार नर और एक बार नारी उत्पन्न करने वाली स्त्री ।
'संवत्सराय पर्यामिणीम्'
वाज.सं. ३०.१५, तै.ब्रा. ३.४.१.११
पर्याणिक - पर्याय सूक्त ।
'पर्यायिकेभ्यः स्वाहा'
अ. १९.२२.७
पर्यायी- समीप आने वाला ।
'नैनं घ्नन्ति पर्यायिणः'
अ. ६.७६.४.
पर्यावृत- परि + आ + वृत् = करवट बदलना ।
'यच्छयानः पर्यावर्ते'
अ. १२.१.३४.
पर्शान- (१) पास, कोंख ।
'नि पर्शाने विध्यतं यन्तु निस्वरम्'
ऋ. ७.१०४.५, अ. ८.४.५.
(२) विवेक शील पुरुष ।
'यत् पर्शाने पराभृतम्'
ऋ. ८.४५.४१, अ. २०.४३.२, साम. १.२०७, २.४२२.
(३) पार्श्व का वल समुदाय ।
परि - (१) पूर्ण सामर्थ्य वाला ।
'परित्रयः प्रदाकवः'
अ. २०.१२९.८, ९.शां.श्रौ.सू. १२.१८.८.
(२) समीप ।
'हृदयानजायते परि'
अ. ९.८.८
(३) ऊपर ।
'दिवस्परि प्रथमं जज्ञे अग्निः'
ऋ. १०.४५.१, वाज.स. १२.१८, तै.सं. १.३.१४.५, ४.२.२.१. का. सं. १६.९, श.ब्रा. ६.७.४.३, आप.मं.पा. २.११.२१.
यह जातप्रज्ञ अग्नि पहले द्युलोक के ऊपर (दिवःपरि) आदि के रूप में उत्पन्न हुआ (जज्ञे) या अग्रणी श्रेष्ठ मनुष्य सर्वप्रथम ज्ञान प्रकाश देने वाले ब्रह्मचर्याश्रम में उत्पन्न होता है। हिन्दी का 'पर' विभक्ति इसी 'परि' से निकला है । जैसे वृक्ष पर ।
(४) यहां ।
'अस्मद् द्वितीयं परि जातवेदाः'
ऋ. १०.४५.१, वाज.सं. १२.१८, तै.सं. १.३.१४.५, द्वितीय अग्नि हम लोगों के यहां (अस्मत् परि) अग्नि रूप में उत्पन्न हुआ । पुनः
'अदितेर्दक्षो अजायत
दक्षाद्वदितिः परि'
ऋ. ८.३.१.४.
सन्ध्या के पश्चात् (अदितेः) सूर्य उत्पन्न हुआ (दक्षः अजायत) और सूर्य से (दक्षात् परि) सन्ध्या उत्पन्न हुई ।
अन्य अर्थ- अदिति से दक्ष और दक्ष से अदिति उत्पन्न हुई -सा. (५) अव्यय । समान अर्थ में भी प्रयुक्त ।
'धक्षोर्न वाताः परिसन्त्यच्युताः'
ऋ. १०.११५.४
परिआसते- पर्यासते । घेर कर बैठते हैं ।
परिक्षित् - (१) प्रजा की रक्षा के लिए उनके चारों ओर रक्षक रूप से विद्यमान, (२) अपने इर्द गिर्द प्रजा को बसाने वाला, (३) शत्रुओं का नाश करने वाला, (४) अग्निर्वै परिक्षित् । अग्नि र्हि इमाः प्रजा परिक्षियन्ति '
(अग्नि परिक्षित् है, अग्नि प्रजा के चारों ओर रक्षक है और अग्नि के चारों ओर समस्त प्रजा बसती हैं ।)
'आश्रृणोता परिक्षितः'

अ. २०.१२७.७, शां.श्रौ.सू. १२.१७.१.१.
(५) सर्वतः निवसत -दया. (६) समीप साथ निवास करते हुए रात दिन (७) पतिपत्नी ।
'परिक्षितोस्तमो अन्या गुहाकः
अद्यौदुषाः शोशुचता रथेनः'
ऋ. १.१२३.७.

परिक्षव- चारों ओर से घृणा का भाव ।
'परिवादं परिक्षवम्'
अ. १९.८.४

परिक्षिता- (१) बालकों को ऊपर और साथ रहने वाले माता पिता, (२) दोषों का सब प्रकार से दूर करने वाले ।
'परिक्षिता पितरा संचरेते'
ऋ. ३.७.१
(३) एक अन्तरिक्ष में रहकर भी पृथक् रहने वाले द्यावापृथिवी (४) खूब ऐश्वर्य युक्त माता पिता ।
'परिक्षिता पितरा पूर्वजावरी'
ऋ. १०.६५.८

परिकृत्यमानः- टुकड़े टुकड़े काटा जाता हुआ ।
'कोश इवाबन्धः परिकृत्यमानः'
अ. ४.१६.७, का.सं. ४.१६.

परिक्रोश- (१) रुलाने वाला व्यवहार, (२) प्रजा को रुलाने वाला, (३) सर्वत्र निन्दा फैलाने वाला दुष्टपुरुष ।
'सर्वं परिक्रोशं जहि'
ऋ. १.२९.७, अ. २०.७४.७.
सब प्रकार से प्रजा को रुलाने वाले सर्वत्र निन्दा फैलाने में दुष्ट पुरुष का विनाश कर । (४) निन्दा करने वाला ।

परिगधिता- परि + गध (आलिंगन करना) + क्त + टाप् = परिगधिता । (१) प्रगाढ़ रूप से आलिंगित ।
(२) सब तरह से संयुक्ता -दया. । गध् धातु को 'मिश्रीभाव' में स्वा. दयानन्द ने लिया है ।
'आगधिता परिगधिता'
ऋ. १.१२६.६, नि. ५.१५.
आलिंगित की गई प्रगाढ़ आलिंगन करने पर भी... सब कर्मों में मेरे साथ मिली हुई और सब तरह से संयुक्त रानी -दया.

परिचक्ष्यम् - (१) वर्जनीयम् परित्याज्यम् (२) प्रख्यातम्, प्रख्यापनीयम् (परित्याग करने योग्य या प्रख्यात) प्रतिपन्नरश्मि, या प्रकाश जगत्, 'अपरिचक्ष्य' का अर्थ 'अप्रकाश्य जगत' है ।
'किमित्ते विष्णो परिचक्ष्यं भूत्
प्रयद्ववक्षे शिपिविष्टो अस्मि
मा वर्पो अस्मदप गूह एतद्
यदन्यरूपः समिथे बमूथ'
ऋ.७.१००.६, साम. २.९७५, तै.सं. २.२.१२.५, मै.सं. ४.१०.१, १४४.५, नि. ५.८.
वसिष्ठ कहते हैं - हे विष्णो, तू जो अपना यह नाम मुझे बार बार कह रहा है कि मैं शिपि विष्ट हूँ (ते यत् प्रयत् ववक्षे शिपिविष्टेऽस्मि) अर्थात् शेप के संदृश तेज से निर्वेष्टित हूँ या शरीर में व्याप्त वीर्य की तरह सर्वत्र व्याप्त हूँ, अप्रतिपन्न रश्मि अनाच्छादित हूँ, वह नाम क्या परित्याज्य या प्रख्यात है (किं परिचक्ष्यं भूत)? वह नाम अच्छा नहीं है अतः हमसे (अस्मत्) अपना यह वैष्णवीरूप (एतत् वर्पः) मत छिपा (मा अपगूहः) क्योंकि अन्य रूप धारण कर (अन्यरूप) संग्राम में (समिथे) तू हमारा सहायक बना है (बमूथः) ।
अन्य अर्थ - हे परमेश्वर, क्या यही तेरा सामान्य रूप है जिसे तू बतलाता है कि शरीर में व्याप्त वीर्य की तरह मैं इस भूमण्डल में व्याप्त हूँ या सूर्य रश्मियों के साथ इस भूमण्डल में प्रविष्ट हूँ ? नहीं तेरा अन्य रूप भी है । हे परमेश्वर, जिस अन्य रूप में संसार रूपी रंगस्थली में तू व्याप्त है उस रूप को हम से मत छिपा ।

परिचर- परिचारक, सेवक, भृत्य, नौकर ।
'यस्यामापः परिचराः समानीः'
अ. १२.१.९
'नमो निचेरवे परिचराय:'
वाज.सं. १६.२०, तै.सं. ४.५.३.१, मै.सं. २.९.३, १२३.४, का.सं. १७.१२.

परिचित् - सब ओर से ज्ञान संग्रह करने वाला ।
'चितस्थ परिचितः'
वाज.सं. १२.४६, तै.सं. ४.२.७.४, का.सं. १.७, १६.११, ३१.६, ३८.१२, तै.आ. ४.५.५., ५.४.८, ६.६.२, आप.श्रौ.सू. १५.७.९, १६. १४.४, २०.९, १९.११.९.

परिजज्ञिरे - उत्पन्न हुए।
'ते अग्नेः परिजज्ञिरे'
ऋ. १०.६२.५, नि. ११.१७
वे अंगिरस के पुत्र अग्नि से उत्पन्न हुए। वे संन्यासी वानप्रस्थाश्रम से (अग्नेः) उत्पन्न हुए (परिजज्ञिरे)।
अग्नि वानप्रस्थाश्रम का भी वाचक है।

परिजगन्वांसा - सर्वत्र गमन करने वाले - मित्रावरुण।
'परि व्रजेव बाह्वोर्जगन्वाँसा स्वर्णरम्'
ऋ. ५.६४.१

परिजर्भुराण- शत्रुओं को पुनः पुनः दूर करता हुआ
'वर्मेव युत्सु परिजर्भुराणः'
ऋ. १.१४०.१०
संग्रामों में शत्रुओं को पुनः पुनः दूर करता हुआ।

परिज्मन् - (१) परितः ज्मन् (चारों तरफ उठती या जाती हुई) (२) भूमि पर - । 'ज्मा' शब्द का अर्थ पृथ्वी मानकर परिज्मन् का अर्थ 'पृथ्वी पर' किया गया है।
'वयो न पप्तू रघुया परिजन्मन्'
ऋ. २.२८.४.
लघुगति से चारों ओर जाती हुई या उड़ती चिड़ियों सी (रघुया परिजन्मन वयो न) सूर्य की रश्मियाँ नीचे गिरती हैं (पप्तुः)।
जैसे शीघ्र गामी पक्षी उड़ती और भूमि पर आती है।

परिज्रयः - ब.व. । एक वचन में रूप है - 'परिज्रि'। अर्थ है-(१) सर्वत्र गमन करने वाले वायुगण (२) सब देशों और स्थानों में जाने वाले विद्वान्, वीरजन।
(३) सब ओर से पदार्थों को जीर्ण करने वाले -(दया.)
'भूमिं पिन्वन्ति पयसा परिज्रयः'
ऋ. १.६४.५
सर्वत्र गमन करने वाले वायुगण जल से भूमि को तृप्त करते हैं।
सर्वत्र विचरण करने वाले वीरजन भूमि को अन्न एवं ऐश्वर्य आदि से सींचते हैं।

परिजाः- ब.व.। (१) साथ साथ उत्पन्न होने वाली प्रवृत्तियाँ, दुष्परिणाम।
'विद्म ते सर्वाः परिजाः पुरस्तात्'
अ. १९.५६.६

परिजात- उत्पन्न।
'पुमान् पुंसः परिजातः'
अ. ३.६.१.

परिज्मा- सर्वत्र गतिमान् सर्वाप्रकाम।
'परिज्मा चित्क्रमते अस्य धर्मणि'
अ. ७.१४.४, आप.श्रौ.सू. ५.१८.२, शां.श्रौ.सू. ८.३.४.

परिज्माना- (१) चारों ओर घूमने वाले दो ग्रह- सूर्य, चन्द्र (२) अश्विद्वय, (३) स्त्रीपुरुष।
'परिज्मानेव यजथः पुरुत्रा'
ऋ. १०.१०६.३.

परिज्रिः- चारों ओर जाने वाला।
'स्वरन्त्यापोऽवन्ता परिज्रयः'
ऋ. ५.५४.२

परितक्म्य- (१) परितः हर्ष निमित्त चारों ओर से सब प्रकार से हर्ष का निमित्त अग्नि -परमेश्वर (२) चारों ओर से आक्रमण करने योग्य युद्ध।
'यः शूरसाता परितक्म्ये धने'
ऋ. १.३१.६

परितक्म्या - परितकनम् परितः भ्रमणम् गमनं वा (सर्वत्र जानां या घूमना)।
परि + तक (गमनार्थक) + मनिन् = परितक्मन्।
परि + तक्मा + यत् = परितक्म्या) अर्थ है
(१) रात्रि। रात्रि सभी जगह जाती है।
(२) तक्मा उष्ण अर्थ में भी लिया गया है।
तक् + मनिन् = तक्मन्। उष्म गतिशील है।
उभयतः तक्मा उष्णं यस्याः सा परितक्म्या रात्रिः (जिसके दोनों ओर उष्ण हो उसे परितक्म्या या रात्रि कहते हैं)।
(३) अथवा रात के दोनों ओर उष्णा दिन रहते हैं। अतः वह परितक्म्या कही गई (तक्मनी उष्णभूते दिने पूर्वोत्तरे ते एवा रात्रि परिगृह्य वर्तेते)।
(२) आगमन
'कास्मे हितिः का परितक्म्यासीत्'
ऋ. १०.१०८.१, नि. ११.२५.
हे सरमे, वहां यह रात्रि थी, इस समय हमारे यहां आने की क्या जरूरत थी।
हे वेदवाणी, हमारी ओर आने का क्या काम ?

यह हमारी ओर आगमन क्यों ?
(३) अर्द्धरात्रि के बाद का समय - (४) अविद्या रूपी अन्धकार ।
'युवोः श्रियं परियोषा वृणीत
सूरो दुहिता परितक्म्यायाम् मे'
ऋ. ७.६९.४, मै.सं. ४.१४.१०, २३०.५, तै.ब्रा. २.८.७.८.
(५) चारों ओर से कठिनाई से जाने योग्य भूमि ।
(६) सब तरफ से आपत्ति युक्त संग्राम बेला ।
(७) सुख-दुःख देने वाली प्रकृति ।
'सूरश्चिद् रथं परितक्म्यायाम्'
ऋ. ५.३१.११.

परितन्तु- (१) सब ओर से फैला हुआ, विस्तृत ।
'परित्वा परितन्तुना'
अ. १.३४.५.

परितंस- अलंकृत करना ।
'प्रत्नं प्रत्नवत् परितंसयध्यै'
ऋ. ६.२२.७, अ. २०. ३६.७

परितंसयध्यै- सब प्रकार से सुशोभित करने के लिए

परिदीयत् - जावे ।
'रथोयद्वां पर्यर्णासि दीयत्'
ऋ. १.१८०.१

परिदेहत् - सुजादे ।
'अष्ठीवन्तौ परिकुल्फौ च देहत्'
ऋ. ७.५०.२

परिद्वेषाः - परितः द्विषन् (सर्वतः द्वेष करने वाला) -सब प्रकार से द्वेष करने वाला । परि + द्विष् + असुन् = परिद्वेषस्'
'मानः समस्य दूढ्यः
परिद्वेषसो अंहतिः'
ऋ. ८.७५.९, तै.सं. २.६.११.२, नि. ५.२३.
मुझे परिद्वेषियों का वध या उत्पात चोट न पहुँचावे ।

परिधान - न । (१) शरीर ढंकने का वस्त्र
'यत् ते वासः परिधानम्'
अ. ८.२.१६
(२) सब प्रकार से धारण करने में समर्थ, (३) सब प्रकार से धारण पोषण का पदार्थ ।
'उक्षाह यत्र परिधानमक्तोः'
ऋ. ३.७.६.

परिधि- (१) वृत्त के चारों ओर घूमने वाली, रेखा, (२) मेघ का पटल ।
'अभिनद् वलस्य परिधींरिवत्रितः यत्रितः'
ऋ. १.५२.५.
(३) परितः वर्तमान । परि + धा + कि = परिधि । जो चारों ओर से घेरे रहे - घेरा ।
'अपाहन् वृत्रं परिधिं नदीनाम्'
ऋ. ३.३३.६, नि. २.२६.
(४) नगर का कोट ।
'परिधिर्मनुष्याणाम्'
अ. १२.२.४४.
(५) उत्तम सुरक्षा ।
'जीवातवे ते परिधिं दधामि'
अ. ८.२.९
(६) चारों ओर से रक्षा और पोषण करने वाला ।
'यजमानस्य परिधिरसि'
वाज.सं. २.३. वाज.सं.(का.) २.१.४, मै.सं. १.१.१२, ७.१०.११ .
(७) सीमा
'यं परिधिं पर्यधत्थाः'
वाज.सं. २.१७, तै.सं. १.१.१३.२, मै.सं. ४.१.१४, २०.५, का.सं. १.१२.३१,११, श.ब्रा. १.८.३.२२, तै.ब्रा. ३.३.९.५, आप. श्रौ.सू. ३.७.१२.
(८) राष्ट्र को सब ओर से धारण एवं रक्षा करने वाला (९) दिशा ।
'दिशः परिधयः'
(१०) लोक ।
इमे लोकाः परिधयः
'प्रस्तरेण परिधिना'
वाज.सं. १८.६३, तै.सं. ५.७.७.२,
(११) सब तरफ से रक्षा करने वाला परिवार का अग्रणी व्यक्ति ।
'अन्य स्तेषां परिधिरस्तु कश्चित्'
ऋ. १.१२५.७.
उन परिवार के रक्षकों में कोई सब तरफ से रक्षा करने वाला हो (परिधि) (१२) धारक रक्षक देह (१३) सांसारिक जीवन, (१४) सब प्रकार से धारण करने योग्य ज्ञानमय शास्त्र ।
'यमेन ततं परिधिं वयिष्यन्'
ऋ. ७.३३.१२.

परिधेय - (१) रक्षा करने के लिए परिधि अर्थात् राज्य सीमाओं पर रखने योग्य, (२) रक्षार्थ रखने

योग्य ।
'प्रस्तरेष्ठाः परिधेयाश्च देवाः'
वाज. सं. २.१८, वाज.सं. (का.) २.४.६, का.सं. १.१२, श.ब्रा. १.८.३.२५.
(३) देवों का विशेषण ।

परिनृत्य - (१) इधर उधर नाचना, (२) अश्लील चेष्टा करना ।
'ये शालाः परिनृत्यन्ति'
अ. ८.६.१०

परियतिः- (१) अधिपति ।
'पथस्पथः परियतिं वचस्या
कामेन कृतो अभ्यानऽर्कम्'
ऋ. ६.४९.८, वाज.सं. ३४.४२, तै.सं. १.१.१४.२, श.ब्रा. १३. ४.१.१५, आश्व.श्रौ.सू. ३.७.८, नि. १२.१८.
मार्ग मार्ग के अधिपति अर्चनीय पूषा को मनोवांछित फल की प्राप्ति से वशीकृत स्तोता स्तुति द्वारा प्राप्त करें ।
(२) शुद्ध मन होता ।
(३) सब स्थानों पर पालन करने वाला- विष्णु, राजा ।
'आपतये त्वा परिपतये गृह्णामि तनूनप्त्रे
शाक्वराय शक्वन ओजिष्ठाय ।'
वाज.सं. ५.५

परिप्रीत - अति प्रसन्न ।
'दुर्नियन्तुः परिप्रीतो न मित्रम्'
ऋ. १.१९०.६.

परिपद् - (१) आ पड़ने वाली विपत्ति ।
'अहरहः शुन्ध्युः परिपदामिव'
ऋ. ८.२४.२४, अ. २०.६६.३, साम. १.३९६.
(२) चारों ओर चलने वाली पृथिवी ।
(३) पंजा ।
'अवरुद्धः परिपदं न सिंहः'
अ. १०.२८.१०

परिपन्थी- (१) बटमार, डाकू , चोर ।
'मा विदन् परिपन्थिनः'
ऋ. १०.८५.३२, अ. १२.१.३२, १४.२.११, आश्व.गृ.सू. १.८.६, शां.गृ.सू. १.१५.१४, साम. मं.ब्रा. १.३.१२, गो.गृ.सू. २.४.२, आप.मं.पा. १.६.१०.
(२) प्रतिकूल मार्ग पर चलने वाला (३) मार्ग से हटकर छिपने वाला और मार्ग में जाते हुए पर आक्रमण करने वाला ।
'अपत्यं परिपन्थिनम्
मुषीपाणं हुरश्चितम्
दूरमधि स्रुते रज'
ऋ. १.४२.३
परिपन्थी, चुराए धन को सेंध मारकर ले जाने वाले (मुषीवाणम्), नाना प्रकार के कुटिल चालों से या झपट कर दूसरे के पदार्थों को हर लेने वाले (हुरश्चितम्) इन तीन प्रकार के चोरों को मार्ग से दूर कर (स्रुते दूरम् अधि अज)
(४) हत्यादि करने के इच्छुक बटमार ।
'मात्वा परिपन्थिनो विदन्'
वाज.सं. ४.३४, तै.सं. १.२.९.१, श.ब्रा. ३.३.४.१४.
(४) शत्रु ।

परिप्रजातः- उत्तम रीति से विराजमान ।
'परि प्रजातः क्रत्वा बभूथ
भुवो देवानां पिता पुत्रः सन्'
ऋ. १.६९.२.
हे अग्नि या विद्वन् , तू क्रतु से या विज्ञान या उत्तम कर्मों द्वारा ही ऊपर उत्तम रीति से विराज मान हो, और तू विद्वान् उत्तम पुरुषों का पुत्र शिष्य होकर (देवानां पुत्रः) अन्य विद्या के अभिलाषी शिष्यों का भी पिता तुल्य आचार्य परिपालक गुरु हो ।

परिप्रधन्वा - (१) पात्रों में प्रवेश कर ।
(२) दिशाओं उपदिशाओं में प्राप्त रहे ।
'परिसोम प्रधन्वा स्वस्तये'
ऋ. ९.७५.५.
हे सोम, कल्याण के लिये पात्रों में प्रवेश कर (परिप्रधन्वा)
हे जगदुत्पादक प्रभो (सोम) आप हमें सभी दिशाओं उपदिशाओं में प्राप्त रहें (परिप्रधन्वा) सोम पात्र में सोम के प्रवेश के लिए यह प्रार्थना है ।

परिपाणः - (१) समस्त संसार का परिपालक ।
'परिपाणमसि परिपाणं मे दाः स्वाहा'
अ. २.१७.७
(२) सब ओर से सुरक्षित ।
'परिपाणः सुमङ्गलः'

अ. ८.५.१, १६, १९.३४.७.
(३) सब ओर से रक्षा करने वाला ।
'परिपाणोऽसि जंगिड्'
अ. १९.३५.३
(४) मध्य आदि उत्तेजक पदार्थों का पान ।
'तनूपानं परिपाणं कृणवाना'
अ. ५.८.६, ११.१०.१७
(५) सब तरह से रक्षक ।
'परिपाणं पुरुषाणाम्'
अ. ४.९.२,

परिप्रुष् - उत्तम शुक्ल कर्मों से शुद्ध अन्तःकरण वाला ।
'प्रवासो न प्रसितासः परिप्रुषः'
ऋ. १०.७७.५

परिप्लव- (१) तारा, (२) आकाश में स्वच्छन्द से विहार करने वाला उपद्रव करने वाला धूम केतु ।
'परिप्लवेभ्यः स्वाहा'
वाज.सं. २२.२९, तै.सं. १.८.१३.३, मै.सं. ३.१२.१०,१६३.१२, का.सं. १५.३.

परिपानम् - (१) सबकी रक्षा करने वाला पद ।
'विदुर्विषाणं परिपानमन्तिते'
ऋ. ५.४४.११

परिपूत- पवित्र या दीक्षित हुआ ।
'तुभ्यायं सोमः परियूतो अद्रिभिः'
ऋ. १.१३५.२.

परिभरमाणः - सब ओर परिपुष्ट करता हुआ ।
'परिवर्णं भरमाणो रुशन्तम्'
ऋ. ९.९७.१५

परिभूः - (१) सर्वत्र रखने वाला, (२) अग्नि या परमेश्वर, का विशेषण ।
'देवो देवान् परिभूर्ऋतेन'
ऋ. १०.१२.२, अ. १८.१.३०.
हे अग्नि, तू द्योतमान देव इन्द्रादि देवों के निकट हवि आदि ले जाने के कारण सर्वत्र रहने वाला है । (देवः देवान् परिभूः) अतः यज्ञ के साथ (ऋतेन) हवि ले जा ।
हे परमेश्वर, वैदिक ज्ञान के द्वारा (ऋतेन) आप हमें सुख पहुंचाइए (नः हव्यं वह) । वह परमेश्वर सर्वपूज्य देवों में विद्यमान है (देवः देवान् परिभूः)
(३) यः परितः भवति (सर्वत्र व्याप्त परमात्मा) ।
'अपः स्वः परिभूरेष्या दिवम्'
ऋ. १.५२.१२
(४) अपनी किरणों द्वारा सर्वत्र व्यापक सूर्य
(४) आत्मा ।
'सर्वान् लोकान् परिभूर्भ्राजमानः'
अ. १३.२.१०
(६) सर्वोपरि शासक (७) चारों ओर से प्रजा की परकोट आदि से रक्षा, (८) दिशा ।
'परिभूश्छन्दः'
वाज.सं. १५.४, तै.सं. ४.३.१२.२, मै.सं. २.८.७, १११.१३, का.सं. १७.६, श.ब्रा. ८.५.२.३.

परिभूतमः- सर्वत्र व्यापक ।
'अग्निं होतारम् परिभूतमं महिम्'
ऋ. १०.९१.८, साम. २.३३४, का.सं. ३९.१३. तै.सं. ३.११.६.३, आप.श्रौ.सू. १६.३५.५.

परिभूतिः- (१) उत्तम सामर्थ्य ।
'त्रीणि ये येमुर्विदथानि धीतिभिः'
विश्वानि परिभूतिभिः'
ऋ. ७.६६.१०

परिमृश- विनाश करने की इच्छा करना ।
'यस्ते गर्भं परिमृशात्'
अ. ८.६.१८

परिमन्युः- (१) अति क्रुद्ध, मन्यु से परिवेष्टित जिसे सर्वत मन्यु हो ।
'ऋषि द्विषे मरुतः परिमन्येव'
ऋ. १.३९.१०
वेद, वेदविद् या ऋषि के द्वेषी मनुष्यों के प्रति क्रुद्ध होने वाले मरुतो या मनुष्यो ।

परिमिता - (१) चारों ओर से पर्याप्त प्रमाण वाली शाला ।
'अथो परिमितामुत'
अ. ९.३.१

परियत्त - सब प्रकार से नियन्त्रित ।
'दाशराज्ञे परियत्ताय विश्वतः'
ऋ. ७.८३.८

परिरथ्य - रथ के ऊपर का पर्दा ।
'वाक् परिरथ्यम्'
अ. ८.८.२२.

परिराप् - पाप से पूर्ण पुरुष ।
'बृहस्पते वि परिरापो अर्दयः'

ऋ. २.२३.१४

परिरायी- (१) बुरी सम्मति देने वाला ।
'वदन्ति परिरापिणः'
अ. १२.४.५१
(२) नाना प्रकार से बुरा भला कहने वाला,
(३) बड़बड़ाने वाला ।
'पुरुषं परिरापिणम्'
अ.५.७.२.

परिरुजन् - सब प्रकार से देह को फोड़ने वाला रोग ।
'रुजन् परिरुजन् मृणन् प्रमृणन्'
अ. १६.१.२.

परिवञ्चत् - परिवञ्चना करने वाला ठगने वाला ।
'नमो वञ्चते परिवञ्चते'
वाज.सं. १६.२१, तै.सं. ४.५.३.१, मै.सं. २.९.३, १२३.३, का.सं. १७.१२.

परिवत्सर - (१) द्वितीय वर्ष ।
'अविजातां परिवत्सराय'
वाज.सं. ३०.१५.
(२) पंचयुगी के पांच वर्षों में दूसरा,
(३) आदित्य ।
'आदित्यः परिवत्सरः'
तै.ब्रा. १.४.१०.१
'इदावत्सराय परिवत्सराय'
अ. ६.५५.३, कौ.सू. ४२.१७.
(४) चारों ओर बसने वाले शिष्यों से आवृत आचार्य ।
'ऋतेनाभिन्दन् परिवत्सरे वलम्'
ऋ. १०.६२.२.
(५) जिसके चारों ओर घेरकर शरण में आ बसते हैं । ईश्वर (६) अग्नि ।
'संवत्सरोऽसि परिवत्सरोऽसि'
वाज.सं. २७.४५

परिवत्सरीणम् - (१) वर्षभर ।
'हविष्कृण्वन्तः परिवत्सरीणम्'
अ. ३.१०.५, साम.मं.ब्रा. २.२.१३, आपमं.पा. २.२०.३४, हि.गृ.सू. २.१४.४,
(२) अध्ययन काल का एक वार्षिक सत्र ।
'ब्रह्म कृण्वन्तः परिवत्सरीणम्'
ऋ. ७.१०३.८

परिवर्क्तम् - कभी त्याग न करो ।
'मा परिवर्क्तम् उतमा माति धक्तम्'
ऋ. १.१८३.४

परिवर्ग- (१) संग्राम, - (२) परिवर्जन-दया.
'परिवर्ग इन्द्रो दुर्मतीनाम्'
ऋ. १.१२९.८
इन्दु दुर्मति शत्रुओं के संग्राम में - राजा दुर्जनों के परिवर्जन में -दया. ।
(३) विनाश ।

परिवर्ग्य- (१) परिवर्जनीय, छोड़ने योग्य
'द्वेष्यो मित्राणां परिवर्ग्यः स्वान्तम्'
अ. ९.२.१४

परिवर्तमान - बार बार आने वाला ।
'पञ्चारे चक्रे परिवर्तमाने'
ऋ. १.१६४, १३. अ. ९.९.११, नि. ४.२७.
पांच ऋतुओं के अर वाले संवत्सर नामक चक्र में सभी जीव स्थित हैं ।

परिवर्तिः - परि + वृत् + इन् = परिवर्त्ति । अर्थ है- (१) परिवर्तनं कृत्वा आयातः, परिवर्तन कर आया हुआ, (२) सायण के मत से 'वर्तिस्' का अर्थ गृह है अतः 'परिवर्ति' का अर्थ 'अस्मत् गृहम्' (हमारे घर पर) है ।

परिवाद- (१) वर्जनीय वचन, निन्दा
'परिवादं परिक्षवम्'
अ. १९.८.४.

परिबाध् - (१) बाधा, विघ्न-कारी चेष्टा ।
'न वरन्ते परिबाधो अदेवीः'
ऋ. ५.२.१०, तै.सं. १.२.१४.७.
परिबाधः 'परिबाध' का ब.व. रूप । (१) पुरुषों को रात और राष्ट्र को पीड़ित करने वाला ।
'मा नः सोम परिबाधो
मारातयो जुहुरन्त'
ऋ. १.४३.८
उत्तम पदार्थों, पुरुषों और राजा और राष्ट्र को पीड़ित करने वाले मनुष्य हम पर बलात्कार न कर सकें । हे वेग से द्रुतगति से शत्रुओं पर आक्रमण करने वाले, तू हमारे लिए युद्ध में हमें प्राप्त हो ।

परिबाधमानः- परिबाध + शानच् = परिबाधमान
(१) निवारयन् (निवारण करता हुआ, निवारता हुआ, रोकता हुआ)

(२) चारों ओर से आघातों को काटता हुआ।
'ज्याया हेतिं परिबाधमानः'
ऋ. ६.७५.१४, वाज.सं. २९.५१.तै.सं. ४.६.६.५, मै.सं. ३.१६.३, १८७.४, का.सं. (आश्व.) ६.१, नि. ९.१५.
ज्या से होने वाली हिंसा या चोट को रोकता हुआ

परिव्राजक - परि + व्रज + ण्वुल् = परिव्राजक। परिव्रजति परित्यज्य सर्वं रुदन्तं पुत्रादिक व्रजति इति परिव्राजकः (जो पुत्रादि को रोता छोड़ संन्यासी के रूप में सर्वत्र भ्रमण करता है वह परिव्राजक है)।

परिवित्त - (१) अपने ज्येष्ठ भाई का अधिकार हड़पने वाला, (२) छोटा भाई जो बड़े भाई के विवाह के पहले अपना विवाह कर ले।
'येभिः पाशैः परिवित्तो विबद्धः'
अ. ६.११२.३
(२) पर्याप्त धनवान् पुरुष (३) छोटे भाई के विवाहित होने पर अविवाहित बड़ा भाई।
'आर्त्यै परिवितम्'
वाज.सं. ३०.९, तै.ब्रा. ३.४.१.४.

परिविदान- (१) सब तरह से साधनों को प्राप्त करने वाला, (२) बड़े भाई के अविवाहित रहते छोटा विवाहित भाई, (३) बड़े भाई की उपेक्षा कर दायभाग लेने वाला छोटा भाई -दया.।

परिविष्ट - (१) परोसा हुआ अन्न (२) खूब चबाया हुआ।
'दद्भिर्न जिह्वा परिविष्टमादत्'
ऋ. १०.६८.६, अ. २०.१६.६.
(३) घिरा हुआ।

परिवीत - परि + वि + इ + क्त = परिवीत। अर्थ है- परिवेष्टित।
'स मातुर्योना परिवीतो अन्तः'
ऋ. १.१६४.३२, अ. ९.१०.१०, नि. २.८.
वह जीवात्मा माता के गर्भ में परिवेष्ठित हो। (परिवीत)....
(२) सब ओर से सुरक्षित घर।
'अर्वाचीनः परिवीतो निषीद'
ऋ. ४.३.२.
(३) सब प्रकार से विद्याओं को प्राप्त, (४) उपवीत धारी ब्रह्मचारी।
'युवा सुवासाः परिवीत आगात्'
ऋ. ३.८.४, मै.सं. ४.१३.१, १९९.१३, का.सं. १५.१२, ऐ.ब्रा. २.२.२९, कौ.ब्रा. १०.२, तै.ब्रा. ३.६.१.३, आश्व.श्रौ.सू. ३.१.९, आश्व.गृ.सू. १.२०.९, पा.गृ.सू. २.२.९.
(४) खूब सुरक्षित, (५) छिपा हुआ।
'अविन्दद् दिवो निहितं गुहानिधिम्
वेर्न गर्भं परिवीतमश्मनि'
ऋ. १.१३०.३
पर्वतों में खूब सुरक्षित पक्षिणी के गर्भ अर्थात् अण्डे को जिस प्रकार शिकारी पुरुष खोज लेता है उसी प्रकार अनन्त शस्त्रास्त्र या शत्रुसेना के बीच छिपी निधि को प्राप्त करें।

परिवीः- प्रजाओं की चारों ओर से रक्षा करने वाला।
'परिवीरसि परित्वा दैवीर्विशो व्ययन्ताम्'
वाज.सं. ६.६, तै.सं. १.३.६.२, मै.सं. १.२.१४, २४.५, कां.सं. ३.३,२६.६, श.ब्रा. ३.७.१.२१.

परिवृक्ता - (१) पतित्यक्ता नारी।
'परिवृक्ता च महिषी'
अ. २०.१२८.१०, शां.श्रौ.सू. १२.२१.२.५.
(२) त्यक्ता, छोड़ने योग्य।
'परिवृक्ता यथा ससि'
अ. ७.११३.२
(३) दी हुई, (४) पृथक् रहने वाली।
'परिवक्तें पति विद्यमानट्'
ऋ. १०.१०२.११

परिवृज - परि + वृज् + अच्। वर्जन का उपाय।
'वज्रहस्त परिवृजम्'
ऋ. ८.२४.२४, अ. २०.६६.३, साम. १.३९६.
(३) परिक्रमा करने का मार्ग।

परिवृढ - परि + वृह् + क्त = परिवृढ। परितः वृढः व्याप्तः (जो चारों ओर से व्याप्त हो)। अर्थ है- (१) ब्रह्म।
'ब्रह्म परिवृढं सर्वतः'
ब्रह्म चारों ओर व्याप्त है।
(२) जो महान् होता है वही सर्वत्र व्याप्त होता है (यद्धि महत् भवति तत् सर्वत्र व्याप्तं भवति)
(३) पाणिनिने प्रभु के अर्थ में 'परिवृढ' लिया है। प्रभु भी सर्वत्र व्याप्त है।

परिवृणक्तु - छोड़ दे।

'या ते दिद्युदवसृष्टा दिवस्परि
क्ष्मया चरति परिसा वृणक्तु नः'
ऋ. ७.४६.३, नि. १०.७.
हे रुद्र, जो तेरे ज्वरादि रोग रूपी आयुध (या ते दिद्युत्) द्युलोक से छोड़कर (दिवः परिअवसृष्टा) पृथ्वी में उत्पन्न अन्न पानादि से मिश्रित हो सर्वत्र विराजमान है (क्ष्मया चरद्वि) वे अनुग्रह करें हमें छोड़ दें (नः परिवृणक्तु)।

परिवृणीत- (१) भजती है-सा. (२) ग्रहण करे।
'युवोः श्रियं परियोषा वृणीत
सूरोदुहिता परितक्म्या याम्'
ऋ. ७.६९.४, मै.सं. ४.१४.१०,२३०.५, तै.ब्रा. २.८.७.८.
हे अश्विद्वय, तुम दोनों के रथ या कान्ति को (युवोः श्रियम्) सूर्य की उषा नाम्नी दुहिता (सूरो दुहिता) तुममें अपने को मिश्रित करती हुई (योषा) अर्द्ध रात्रि के बाद सब प्रकार से भजती है (परिवृणीत)।
हे अध्यापक तथा उपदेशक, आप की विद्या लक्ष्मी तथा धर्मलक्ष्मी को (युवोःश्रियम्) अविद्यान्धकार के समय (परितक्म्यायाम्) स्त्री, पुत्र, एवं पुत्रियां सभी ग्रहण करें (योषा सूरः दुहिता परिवृणीत)।

परिवृत- छिपा हुआ।
'अपावृधि परिवृतं न राधाः'
ऋ. ७.२७.२

परीवृत - (१) ढका हुआ, (२) सब ओर से सुरक्षित।
'अपावृणोदिष इन्द्रः परीवृता
द्वार इषः परीवृताः'
ऋ. १.१३०.३.
जिस प्रकार ऐश्वर्यवान् गृहपति ढके हुए गृह के द्वारों को खोलता है उसी प्रकार इन्द्र या राजा सब प्रकार से सुरक्षित शत्रुओं को दूर से वारण कर देने वाली प्रेरणा करने योग्य सेनाओं को (द्वारः इष्यः) खोले।

परिवेशाः- (१) समीपवर्ती कीट।
'हतासः परिवेशसः'
अ. २.३२.५, अ. ५.२३.१२.
(२) बाहर का रक्षक, (३) एक कीट से मिलते जुलते अन्यकीट।

परिवेष - भोजन परोसना।
'यत्पुरा परिवेषात् खाद् माहरन्ति'
अ. ९.६.१२.

परिवेष्टा- (१) रसोई परसने वाला।
'यत् परिवेष्टारः पात्रहस्ताः'
अ। ९.६.५१
(२) पाणि ग्रहण करने वाला।
'सुपरिविष्टा वयं परिवेष्टारोभूयास्म'
वाज.स. ६.१३, श.ब्रा. ३.८.२.३.
(३) सर्वत्र व्यापक, सब सुखों का दाता परमेश्वर।
'वार्षिष्ठाय नाकाय परिवेष्टारम्'
वाज.सं. ३०.१२, १३, तै.ब्रा. ३.४.१.८.

परिंश- (१) शरीर में सर्वत्र व्यापने वाला अंग।
'यदपामोषधीनां परिंशमारिशामहे'
ऋ. १.१८७.८, का.स. ४०.८

परिशक्तवे - बल द्वारा पराजय करने योग्य।
'न शक्रः परिशक्तवे'
ऋ. ८.७८.५

परिशद् - (१) चारों तरफ स्थित मेघस्थ जल, (२) चारों ओर घेर कर बैठी शत्रुसेना, (३) शत्रुओं की छावनी, (४) चारों ओर बैठा शिष्य जन।
'वि वज्रेण परिषदो जघान'
ऋ. ३.३३.७

परिषद्य- (न.)। परि + सद् + यत् = परिषद्य (परित्याज्य) अर्थ है। (१) त्याज्य।
'परिषद्यं ह्यरणस्य रेक्णः'
ऋ. ७.४.७, नि. ३.२.
(२) पर्याप्त (३) परिषद् या जन सभा का धन।

परिषद्वा - चारों ओर वर्तमान।
'तदिन्न्वस्य परिषद्वा नो अग्मन्'
ऋ. १०. ६१.१३.

परिषन् - ऊपर बाहर एवं भीतर विद्यमान प्रभु।
'अस्मे वत्सं परिषन्तं न विन्दन्'
ऋ. १.७२.२
हम सभी में व्याप्त, बाहर भीतर एवं ऊपर विद्यमान प्रभु को चाहते हुए भी सभी नहीं पाते।

परिषस्वजाना - (१) परिष्वजमाना। परि + स्वज + शानच् + टाप् = परिष्वजाना। 'स्वज' का अभ्यास = द्वित्व-होना अनर्थक है (२)

आलिंगन करती हुई, (३) प्रिय संवाद करती हुई।
'प्रिय सखायं परिषस्वजाना'
ऋ. ६.७५.३, वाज.सं. २९.४०, तै.सं. ४.६.६.१, मै.सं. ३.१६.३, १८५.१४, का.सं. (आश्व.) ६.१, नि. ९.१८.
प्रिय सखा रूपपति का आलिंगन करती हुई।

परिष्कन्द – (१) आगे पीछे चलने वाला सिपाही।
'भूतञ्च भविष्यञ्च परिष्कन्दौ'
अ. १५.२.६
(२) सर्वत्र वीर्य -सेचन में समर्थ पुरुष, (३) विशेष छावनी , (४) स्कन्धावार।
'भूम्ने परिष्कन्दम्'
वाज.सं. ३०.१३.

परिष्कृत– परि + कृ + क्त = परिष्कृत। अर्थ – (१) परिष्कार किया हुआ, सजाया हुआ।
'परिष्कृतं देवमानेव चित्रम्'
ऋ. १०.१०७.१०
परिष्कृत राजा प्रसाद की तरह सुन्दर (गृह)।

परिष्कृता – (१) सुन्दर, (२) सुसज्जित।
'दृढा नद्धां परिष्कृता'
अ. ९.३.१०

परिष्वजाते – परिष्वक्ष्यते (आलिंगन करेगा) वर्त्तमान के सामीप्य मे भविष्य अर्थ में लट् का प्रयोग।

परिष्टिः– (१) सर्वतः अन्वेषणं यस्याः सा (जिसका सर्वत्र अन्वेषण हो)–दया.
(२) परीक्षा, (३) ज्ञानदर्शन
'भुवत् परिष्टिर्द्यौर्न भूम'
ऋ. १.६५.३.
उनकी परीक्षा करना और ज्ञान दर्शन सूर्य के समान स्पष्ट है और पृथ्वी के समान दृढ़ आश्रय हैं।

परिष्टोभत– सब प्रकार से संभाले।
'परि ष्टोभतत विंशतिः'
ऋ. १.८०.९
बीसों सब तरह से राज्य कार्य संभाले (परिष्टोभतः)'
अथवा, दस आभ्यन्तर और दस बाह्य प्राणगण जीव को संभालें।

परिष्वज् – परि + स्वज् + क्विप् = परिष्वज्।
'मयः पतिभ्यो जनये परिष्वजे'
ऋ. १०.४०.१०, अ. १४.४६, आप.मं.पा. १.१.६.

परिष्वञ्जस्य – (शाला में) चारों ओर सटा हुआ।
'परिष्वञ्जल्यस्य च'
अ. ९.३.५.

परिष्वजीयसी – सूक्ष्म वस्तु के लिये भीतर व्यापक।
'ततः परिष्वजीयसी
देवता सा ममप्रिया'
अ. १०.८.२५.

परिष्ठा – परि + स्था। ऊपर टिका हुआ।
'इन्द्रासोमावहिमपः परिष्ठाम्'
ऋ. ६.७२.३.

परिष्टिः – (१) सेवा आदर एवं पालन का कार्य।
'मा ते अस्यां सहसावन् परिष्टौ'
ऋ. ७.१९.७, अ. २०.३७.७, तै.सं. १.६.१२.५, मै.सं. ४.१२.३, १८३.२. आश्व.श्रौ.सू. २.१०.४.
(२) नाना वाञ्छनीय फलों की प्राप्ति।
'अर्चन्तितो के तनये परिष्टिषु'
ऋ. १०.१४७.३
(३) सब ओर से प्राप्त हुआ।

परिष्ठिता– (१) परिस्थिता, (२) मेघ द्वारा किया हुआ धारण की हुई 'आपः' (जल) (३) शत्रुओं द्वारा घेरी हुई पृथिवी।
'परिष्ठिता अहिना शूरपूर्वीः
ऋ. २.११.२, ७.२१.३.
(४) चारों ओर से खड़ी शत्रुसेना।
'परिष्ठिता अतृणद् बद् वधानाः'
ऋ. ४.१९.८

परिष्टुभ्– (१) स्तुति, (२) शत्रुहिंसक शक्ति।
'विश्वा अर्ष परिष्टुभः'
ऋ. ९.६२.२४, साम. २.४१३.
(३) सबको धारण करने वाला (४) सब विद्याओं का अध्ययन करने वाला।
'सम्मिश्ला इन्द्रे मरुतः परिष्टुभः'
ऋ. १.१६६.११.

परिषूत– (१) सब प्रकार से उत्पन्न किए पदार्थ, (२) अधीन पुरुषों से प्राप्त पदार्थ, ।
(३) घेरा हुआ।
'अनानुदः परिषूता ऋजिश्वना'
ऋ. १.५३.८, अ. २०.२१.८

परिषूतिः– (१) हिंसाकारी, (२) जन्म बन्धन वाला।

'माकिर्नो अस्य परिषूतिरीशत'
ऋ. ९.८५.८
(३) प्रसव किया।
'युवं रेभं परिषूते रुरुष्यथः'
ऋ. १.११९.६
हे विद्वान् स्त्री पुरुषो, या अश्विनो, तुम दोनों उत्पन्न होते ही शब्द करने वाले बालक की प्रसव क्रिया के भी पूर्व (परिषूतेः) रक्षा करते हो (उरुष्यथः)।

परिसंभृत - समस्त शरीर में प्रविष्ट-विष।
'पृदाकोः परिसंभृतम्'
अ। ७.५६.१

परिसर्गासः- (ब.व.) परिसृताः तन्त्वययवाः (सूत्र) अर्थात् विस्तृत वस्त्र में व्याप्त छोटे छोटे अवयवों को परिसर्ग कहते हैं।
'तन्तुं ततं परिसर्गास आशवः'
ऋ. ९.६९.६, साम. २.७२०
जैसे विस्तृत वस्त्र में छोटे छोटे अवयव (परिसर्गासः) व्याप्त रहते हैं उसी प्रकार सोमरस इन्द्र में व्याप्त रहते हैं।
(अथवा)
विस्तृत ब्रह्मरुपी सूत्र में (ततं तन्तुम्) फैले हुए लोक लोकान्तर (आशवः सर्गाः) हैं।
(२) चमसेषु व्याप्ताः सृज्यमाना सोमाः (चमसों में चारों ओर से लगे सोम।

परिस्तरण- बिछावन।
'परिस्तरणः मिद्धविः'
ऋ. ९.६.२.

परिस्रव- वृष्टि कर, चू।
'इन्द्रायेन्दो परि स्रव'
ऋ. ८.९१.३, ९.१०६.४, ११२.१-४, ११३.१-११, ११४.१-४, साम. १.५६७, जै.ब्रा. १.२२०, नि. ६.६, ९.२.
हे ऐश्वर्य धाम प्रभो, (इन्दो) ऐश्वर्य प्राप्ति के लिये (इन्द्राय) ऐश्वर्य की वृष्टि कर (परिस्रव)।
अथवा, हे सोम, (इन्दो) इन्द्र के लिए (इन्द्राय) तू चू (परिस्रव)

परिसृष्ट - (१) सब प्रकार से परिपूर्ण गर्भ (२) पति द्वारा गर्भ में आहित वीर्य।
'परिसृष्टं धारयतु'
अ। ८.६.२०

परिस्पृध् - स्पर्द्धा करने वाला।
'नुदस्व याः परिस्पृधः'
ऋ. ९.५३.१, साम. २.१०६४

परिस्रुच् - (१) बहने वाली,, (२) आज्ञा में चलने वाली।
'परिस्रुचो बबृहाणंस्याद्रेः'
ऋ. ५.४१.१२.

परिस्रुत - न.। (१) सब ओर से प्राप्त मक्खन (२) सब प्रकार से अभिषित (३) परिस्रुत नामक सोम।
'दधिमन्थां परिस्रुतम्'
अ. २०.१२७.९, शां.श्रौ.सू. १२.१७.१.३,
'पुनाति ते परिस्रुतम्'
ऋ. ९.१.६, वाज.सं. १९.४, श.ब्रा. १२.७.३.११, का.श्रौ.सू. १९.२.८.

परिस्रुत - (१) स्रवण करने वाले पदार्थ जैसे घी, दूध, मक्खन, शहद आदि।
'एमां परिस्रुतः कुम्भः'
अ. ३.१२.७.
(२) अभिषेक जलादि सेचन।
'शशमानः परिस्रुता'
वाज.सं. २०.६५, मै.सं. ३.११.३, १४४.११, तै.ब्रा. २.६.१२.४.
(३) एक प्रकार का सोम (४) सब देशों से प्राप्त राज्य लक्ष्मी।
'परिस्रुत परिषिच्यते'
वाज.सं. १९.१५
(५) सब ओर से बहने वाली जल धारा।
'त्वामायः परिस्रुतः
परियन्ति स्वसेतवः'
ऋ. ८.३९.१०

परिहव - वर्जन करने योग्य संघर्ष।
'अनुहवं परिहवम्'
अ. १९.८.४, आप.मं.पा. १.१३.५, नक्षत्र कल्प २६.४.

परिहस्त - (१) अपने हाथों का सहारा देने वाला पति, पत्नी का हाथ ग्रहण करने वाला (२) हाथ में पहनाया कंकण (परिसर)।
'परिहस्तो अभूदयम्'
अ. ६.८१.१

परिहित - परि + धा + क्त = परिहित अर्थ - (१) पहना हुआ, (२) फैला हुआ, (३) दृढ़ता से बंधा।
'शुष्णस्यंचित् परिहितं यदोजः
दिवस्परि सुप्रथितं तदादः'
ऋ. १.१२१.१०.
मेघ का जो ओज आकाश या सूर्य पर दृढ़ता से बंध कर उसे ढक लेता है उसको भी तू छिन्न भिन्न करता है (तद् आदः)।
(अथवा)
शोषणकारी का जो बल भूमि पर फैला हुआ हो उसे तू छिन्न भिन्न कर।

परिहिता- (१) सुरक्षित।
'स्वधया परिहिता'
अ. १२.५.३.

परिह्रुता- अपने अधिकार से च्युत कर दी गई।
'अस्वगता परिह्रुता'
अ. १२.५.४०.

परिहृत् - कुटिलता से रहित।
'परिहृतेदना जनः'
युष्मादत्तस्य वायति'
ऋ. ८.४७.६

परिहृति - (१) कुटिलता, (२) कुटिल चाल।
'तिरोमर्तस्य कस्यचित् परिहृतिम्'
ऋ. ९.७९.२
'न तं मर्तस्य नशते परिहृतिः'
ऋ. ७.८२.७

परीणश- परि + नश् + क = परीणश। (१) सब प्रकार से लुप्त कर देने वाला, मिटा देने वाला, सर्वनाशक।
'मा नो अस्मिन् मघवन् पृत्स्वंहसि
नहि ते अन्तः शवसः परीणशे'
ऋ. १.५४.१.

परीणस् - (१) शुभनासिका वाली स्त्री। (२) परितो नासिका येषाम् कुक्कुरवत् इष्टानिष्टवस्तुघ्राण परा (चारों तरफ नाक वाला) अतिसावधान। (३) कुक्कुर के समान इष्ट तथा अनिष्ट वस्तु को सूंघने वाला।
'वनोति हि सुन्वन् क्षयं परीणसः'
ऋ. १.१३.३.७, अ. २०.६७.१, आश्व.श्रौ.सू. ८.१.२, वै.सू. ३१. २७.
(४) बहुत -दया।
(५) बहुत ऐश्वर्य।
'त्वं न इन्द्र राया परीणसा'
ऋ. १.१२९.९
हे विद्वन्, बहुत से ऐश्वर्य से युक्त होकर। (परीणसा)
पुनः-
'प्र नो राया परीणसा'
ऋ. ५.१०.१, साम. १.८१, कौ.ब्रा. २१.३.
(६) महान्।
'विदमा पुरा परीणसः'
ऋ. ८.२१.७.

परीणाह- (१) परि + नह् + घञ् = परीणाह। चौतरफी घेरा (२) राष्ट्र का तेजस्वी स्वामी।

परीत्त - (१) सुरक्षित, (२) व्याप्त।
'श्येने वात उतयोऽचरत् परीत्तः'
अ. ६.९२.२.

परीमण्- सर्वश्रेष्ठ पद।
'नेनिक्ते अप्सु यजते परीमणि'
ऋ. ९.७१.३.

परीवाप- (१) हविष्य, (२) पृथ्वी पर अन्न आदि बीजों का आवपन।
'परीवापः पयो दधि'
वाज.सं. १९.२१.

परीवृत- परिवर्ति।
'विश्वा यद् गोत्रा सहसा परीवृता'
ऋ. २.१७.१.

परीशास- (१) परिशास, चारों ओर से चुभने वाली बर्छी आदि (२) चारों ओर से चोट पहुंचाने वाला।
'रिश्यस्येव परीशासम्'
अ. ५.१४.३.

पर्णी- (१) पत्तों वाला, वृक्ष (२) पालक, (३) पूरण, (४) दूर देशों तक गमन साधन वाला।
'पर्जन्यः पिता महिषस्य पर्णिनः'
ऋ. ९.८२.३, साम. २.६६७.
(५) पंखों वाला बाण।
'यदन्तरिक्षे पतयन्ति पर्णिनः'
ऋ. ६.४६.११
(६) उत्तम रथ और वाहन का स्वामी।

परुक्षुः - सर्ववशकारी परमेश्वर।

'वि राय और्णाद् दुरः पुरुक्षुः'
ऋ. १.६८.१०
सर्ववशकारी परमेश्वर (पुरुक्षु) आनन्द कर्मफलों का स्वामी हो कर ऐश्वर्यों और द्वारों को खोल देता है।

परुष् - (१) अंग, (२) तेजस्वी भास्वान्, (३) पर्व सन्धि, ग्रन्थि, गाँठ, गिरह।
'सन्धिर्वा पर्व परुषी'
(४) औपमन्यव आचार्य के मन से परु, का अर्थ 'भा' (दीप्ति) है। और परुष्मान् का अर्थ दीप्तिमान् (ग्रन्थि वाला) है।
परुष् + मतुप् = परुष्यत् = परुष (मत् का लोप)।
आधुनिक अर्थ - गिरह, (२) सन्धि, (३) अंग, (४) स्वर्ग, (५) पर्वत।

परुष- (१) कठोर शस्त्र या पुरुष।
'परुषानमून् परुषाह्वः कृणोतु'
अ. ८.८.४.
(२) शरीर के पोर पोर में बसा हुआ ज्वर।
'यः परुषः पौरुषेयः'
अ. ५.२२.३.
(३) पर्ववाला या प्रकाश वाला आदित्य।
'उतादः परुषे गवि
सूरश्चक्रं हिरण्ययम्
त्यैरयत् रथीतमः'
ऋ. ६.५६.३, नि. २.६
और प्रेरक सूर (सूरः) तथा अतिशय रथों वाला या नेतृतम (रथीतमः) पर्ववाले या प्रकाश वाले आदित्य के लिए (परुषेगवि) सुवर्णमय (हिरण्ययम्) उसके रथ कालरूपी चक्र को नित्य चलाता है (अदः चक्रं न्यैरयत्)।

परुषः गौः - (१) पर्ववाला या प्रकाश वाला आदित्य - (२) अहोरात्रादि पर्वोंवाले।
सर्वप्रेरक (सूरः) तथा रथिक श्रेष्ठ जिसके सूर्य चन्द्र आदि सभी लोकरथ हैं (रथीतमः) वह पोषक परमात्मा उस सुदूरवर्ती, (अदः) अहोरात्रादि पर्वों वाले या प्रकाशमान सूर्य में (परुषे गवि) स्वर्णसदृश चमकीले रथ को नियम से चला रहा है (हिरण्ययं चक्रं नि ऐरयत्)।

परुषवार- (१) परुष नामक छोटी दाम (दर्भ) की जाति जिसे राज-निघण्टु में 'खर' कहा गया है। पित्तों ल्वण दाह विष आदि का नाशक है, (२) परुष अर्थात् पोर वाल नड़ (नल)।
नलः स्यादधि को वीर्यः शस्यते रस कर्मणि।
परुपक, तरुणव, तरुण, या कर्तृक भी इसके नाम हैं।
'भूतग्रह विषघ्नं च
व्रणक्षत विरोपणम्
अश्वस्य वारः परुषस्य वारः'
अ. १०.४.२.

परुषाह्वः- परुष या कठोर शस्त्रों या पुरुषों का सामना पाने में समर्थ वीर।
'परुषा नमून् परुषाह्वः कृणोतु'
अ. ८.८.४.

परुष्णी- (१) एक नदी, (२) पर्ववती, भास्वती, कुटिल गामिनी-नि. (३) प्रतिपर्व पीठ के मोहरों में से नीचे तक जाने वाली शरीर की नाड़ी जो वर्ण में चमकीली और कुटिल मार्ग से से गई है। (४) पालन कर्त्री, (५) पालन साधनों से युक्त तेजस्विनी, राष्ट्र रक्षा या राजनीति।
'उतस्य ते परुष्ण्याम्'
ऋ. ५.५२.९
(६) परुष् (ग्रन्थि) + न (मतुप् अर्थ में) ङीष् = परुष्णी। पर्व वाली। नदी भी टेढ़ी मेढी चाल वाली होती है। अतः जहाँ जहां वह फिरती है। वहीं उसका पूर्व हुआ। परुष्णी नामक नदी जो इरावती नदी का पूर्व नाम है।
'शुतुद्रि स्तोयें सचता पुरुष्ण्या'
१०.७५.५, तै. आ. १०.१.१३, महा. ना.उप. ५.४, नि. ९.२६,
(७) कुटिल गामिनी नदी -दुर्ग (८) पर्वों वाला पर्वत प्रदेश।
इरावती परुष्णी त्याहुः'
(९) पर्ववती, ग्रन्थियुक्त, (१०)भास्वती, प्रकाश वती, परुप का अर्थ 'भास्' भी है। (११) पर्वों वाली भूमि।
'उतस्म ते परुष्ण्याम्
ऊर्णा वसात शुन्ध्यवः'
ऋ. ५.५२.९.
हे मरुतो, आप इरावती नाम्नी नदी में (परुष्ण्याम्) शुद्ध होने वाले या स्नान करने

वाले (शुन्ध्यवः) विचित्र रूप से तिरोहित होकर रहते हैं (ऊर्णाः वसत)।
और वे मनुष्य (ते) पर्वों वाली भूमि या पर्वत प्रदेश पर (परुष्ण्याम्) सुरक्षित (ऊर्णाः) तथा शुद्धता पूर्ण निवास करें (वसत)। (११) ऊन का वस्त्र जो पर्व पर उष्ण रहता है, (१२) स्थान पर शत्रु को सन्ताप देने वाली नाना पर्व अर्थात् विभागों से युक्त सेना और प्रजा।
'श्रिये परुष्णीमुषमाण ऊर्णाम्'
ऋ. ४.२२.२
(१३) दिन, मध्याह्न बेला, (१४) पोर पोर या अंग अंग में निवास करने वाली ज्ञान वाहिनी चित् कुण्डलिनी सुषुम्ना आदि नाड़ी।
'परुष्णीषु रुशत् पयः'
ऋ. ८.९३.१३, आ.सं. २.१.
(१५) झुकाव पर बहती हुई जल धारा।
'मधु परुष्णी शीपाला'
अ. ६.१२.३.
(१६) गौ, (१७) पर्व पर पर उष्ण देह की नाड़ी।

परुस् – (१) पोर, अंग।
'परुष्परुरनुघुष्या विशस्त'
ऋ. १.६२.१८, वाज.सं. २५.४१, तै.सं. ४.६.९.३, का.सं. (अश्व.) ६.५.
प्रत्येक पोरु को बार बार अभ्यास कर विविध प्रकार से शिक्षित करो।

परुष्परु – (१) शरीर के पोर पोर में।
'परुष्परुराविवेश यो अस्य'
अ. १.१२.३
(२) पोर पोर अंग अंग।

परुस्रंस– (१) पोरुओ को तोड़ने वाला, उन में प्रवल पीड़ा उत्पन्न करने वाला–खांसी।
'अस्थिस्रंसं परुस्रंसम्'
अ. ६.१४.१

परुस्वान् – (१) मृग की एक जाति।
'ईशानाय परस्वत आलभते'
वाज.सं. २४.२८, मै.सं. ३.१.४.१०,१७४.५.

पर्युक्ता – सब प्रकार से विवेचित, प्रवचन या प्रयोग की हुई ओषधि।
'ब्राह्मणेन पर्युक्तासि'
अ. ४.१९.२.

पर्यूढा– ढंकी हुई।
'श्रद्धया पर्यूढा'
अ. १२.५.३

पर्शु– (१) पसली की हड्डी
'उपसदः पर्शवः'
अ. ९.७.६
(२) स्पृश्, + शुन् = पर्शु,।
'परान् श्रृणाति हिनस्ति इति पर्शुः।
पार्श्व की हड्डी।
(३) कुएं का ईंट –सा. (४) बाह्यं आपदा, विपत्ति –दया.।
'सं मा तपन्त्यभितः
सपत्नीरिपर्शवः'
ऋ. १.१०५.८, १०.३३.२, नि. ४.६.
मुझे ये कुएं के ईंट या विपत्तियां उसी प्रकार से संतप्त कर रही हैं जैसे सपत्नियाँ। यास्क ने 'पर्श' के लिए 'आधी' और बाह्यदुःख के लिए पदार्थ पर्शु शब्द प्रयुक्त किया है।
आधुनिक अर्थ – कुल्हाड़ी, पसली की हड्डी।
(५) सर्वत्र स्पर्श करने वाली सह चारिणी बुद्धि या विचार शक्ति (६) पुरुषी की पार्श्ववर्तिनी सहचारिणी प्रकृति।
'पर्शुर्ह नाम मानवी'
ऋ. १०.८६.२३, अ. २०.१२६.२३.
(७) मननशील आत्मा की कर्मशक्ति (८) पर्शुः पश्येतेः रकारोपजनः अकारलोपः। पर्शुः स्पृशतेः। नि. ४.१४.
(९) सर्वद्रष्टा, सर्वस्प्रष्टा, सर्वव्यापक प्रभु, (१०) शत्रु छेदन करने में समर्थ।
'सहस्रं पर्शावा ददे'
ऋ. ८.६.४६

पयुह्यमाना – परि + उह्यमाना। अर्थ है– विवाहित होकर।
'यमस्यमाता पर्युह्यमाना
महो जाया विवस्वतो ननाश'
ऋ. १०.१७.१, अ. १८.१.५३, नि. १२.११.
वह यम की भाविनी माता (सरण्यू) विवाहित हो (पर्युह्यमाना) यम और यमी को उत्पन्न कर महान् आदित्य की भार्या अदृश्य हो गई है।
अथवा
मध्यम देव यम की माता वह ज्योति महान् आदित्य की भार्या समझी गई। प्रभात होते ही

सूर्य की ज्योति सूर्य के पास से छिटककर दूर भाग गई ।

परेणअवः- परम परमेश्वर से उतर कर विराजमान आत्मा ।
'अवः परेण पितरं यो अस्य'
ऋ. १.१६४.१८, अ. ९.९.१८.

परेमा (परेमण्) - परमता ।
'अरं शक्र परेमणि'
साम. १.२०९

परेतः- वह रोगी जो सीमा से परे चला गया हो ।
'यदि क्षितायुर्यदि वा परेतः'
ऋ. १०.१६१.२, अ. ३.११.२, २०.९६.७.

परेयिवान् - परा + इ (गमनार्थक) + क्वसु = परेयिवस्) अर्थ है- (१) पर्यागतवान् (प्राप्त कराया) (२) कर्मानुसार स्वर्गादि स्थानोंको पहुंचाने वाला ।
'परेयिवांसं प्रवतोमहीरनु'
ऋ. १०.१४.१, अ. १८.१.४९, मै.सं. ४.१४.१६, २४३.६, आश्व.श्रौ .सू. २.१९.२२, नि. १०.२०.
प्रकृष्टकर्म वाले मनुष्यों, देवों एवं नीच योनिवाले प्राणि वर्गों को अपने कर्मानुसार स्वर्गादि स्थान पहुंचाने वाले वैवस्वत यम को ।

परेहि- पराङ्मुख हो कर जा ।

पर्येता (१) मुकाबला करने वाला, सामना करने वाला ।
'न किरस्य सहन्त्य
पर्येता कयस्यचित्'
ऋ. १.२७.८, साम. २.७६६.
हे सहनशील, इस ज्ञान वान् युद्ध विद्या कुशल सेनापति का मुकाबला करने वाला कोई नहीं है ।
(२) कष्ट देने वाला ।

पर्येति - परि + एति = पर्येति । परितः एति वेष्टयति (परि वेष्टन करता है, घेर लेता है)।

परोप्ताः- (१) जो दूर में अपनी सन्तान उत्पन्न करते हैं, (२)जो दूर देश में युद्ध क्षेत्र में कट गए हैं ।
'ये निखाताः ये परोप्ताः'
अ. १८.२.३४

परोमात्र- सब मात्रा पर परिमाणों से परे अतिसूक्ष्म और अनन्त ।
'परोमात्रमृचीषमम्'
ऋ. ८.६८.६

पलक्षी- (१) श्वेत ऊन वाली, (२) अति चंचल आखों वाली स्त्री ।
'लोहितोर्णी पलक्षी'
वाज.सं. २४.४,

पलद- घास फूस ।
'संदंशानां पलदानाम्'
अ. ९.३.५

पलस्ति जमदग्नयः- वयोवृद्ध तथा ज्ञानवृद्ध आत्माग्नि को प्रज्वलित करने वाले तेजस्वी पुरुष या जमदग्नि वंश वाले ।
'यां मे पलस्ति जमदग्नयोददुः'
ऋ. ३.५३.१६

पल्पूलन- मूत्र ।
'यदस्याः पल्पूलन्'
अ. १२.४.९.

पल्प- मांस भक्षी ।
'पल्प बद्ध वयो इति'
अ। २०.१२९.१५
'पलालान् उपलाल्यौ शकुं कोकम्'
अ. ८.६.२.

पलाली- यव के ऊपर का तुष ।
'यवस्य ते पलाल्या'
अ. २.८.३

पलाश- (१) पल + अश् + अण् (कर्म में) = पलाश । पलं मांसम् अश्नाति प्रायेण पर्णाशिनः निर्मांसाः भवन्ति (पल मांस को खाते हैं, प्राय पत्ते वाले पत्ते का नाम पलाश पड़ा) ।
(२) पलाशानि यस्मिन् स पलाशः (जिसमें सुन्दर पत्ते हों वह पलाश है) पलाश नामक वृक्ष ।
(३) पराशीर्णमलः दीप्तिमान् (जिस में मल न हों, जो दीप्तियुक्त हो वह पलाश है)
(४) पलाशं पर्णम् पलाशं पलाशनात् पलाश पत्ता है, पलाश शब्द मांस के अशन से बना है) । पत्ते के अर्थ में-
'यस्मिन् वृक्षे सुपलाशे
देवै संपिबते यमः।
अत्रानो विश्पतिः पिता
पुराणाँ अनु वेनति'
ऋ. १०.१३५.१, तै.आ. ६.५.३, नि. १२.२९.

जिस सुन्दर पत्ते वाले वृक्ष में (यस्मिन् सुपलाशे वृक्षे) या सुखकर स्थान में आदित्य (यमः) रश्मियों के साथ चलते हैं (देवैः संपिबते) इस मण्डल में (अत्रा) प्रजाओं के पालक अधिपति या पिता (विश्पतिः पिता) हमें पुण्य कर्मों या विद्या में वहां के पुराने वाशिन्दों के सदृश प्रेम पूर्वक रखे (पुराणान् अनु वेनति)।
'यम का अर्थ यम होने से पितृलोक में हमें रखें' ऐसा अर्थ होगा।

पलिक्नी- (१) श्वेतकेशा, वृद्धा, मलकिनी या मलकिनी का सादृश्य विचारणीय है।
'पलिक्नीरित युवतयो भवन्ति'
ऋ. ५.२.४.
(२) वह स्त्री जिसे उम्र के पूर्व ही पलित आ जाय।
'संवत्सराय पलिक्नीम्'
वाज.सं. ३०.१५, तै.ब्रा. ३.४.१.११

पलितः- (१) पालयिता (पालन करने वाला) (२) पल (गत्यर्थक) + क्त = पलित। पल धातु का 'पाल' धातु से विनिमय हो जाता है। 'पल' 'धातु' 'रक्षा करना' अर्थ में है। पालयति (रक्षा करता है) का निपातन से 'पलित' हो जाता है। अतः 'पलित' का अर्थ 'पालन करता है' हुआ।
(३) पके केशों वाला, (४) प्रकाश, वृष्टि आदि के दान से सबका नाशक सूर्य।
'अस्य वामस्य पलितस्य होतुः तस्यभ्राता मध्यमोऽस्त्यश्वः'
ऋ. १.१६४.१, अ. ९.९.१, नि. ४.२६.
स्वर्ग में चमकने वाले, आरोग्यार्थियों के सेवनीय तथा पालक उस आहवनीय या ग्रहोपग्रहों के आहर्त्ता आदित्य का मध्यमस्थानी सर्वव्यापक वायु या मेधवर्ती अशनि भाई के समान है।
(५) पालक या पूर्ण परमेश्वर।
'निवेवेति पलितोदूत आसु'
ऋ. ३.५५.९
(६) परमपुराण, (७) वृद्धज्ञानी-दया.।
'दिवा न नक्तं पलितो युवाजनि'
ऋ. १.१४४.४
(८) सर्वव्यापक परम पुराण, परम वरणीय आत्मा, (४) सर्वदाता सूर्य।

पलीजक- श्वेताबालवाला पलितरोगी
'मलिम्लुचं पलीजकम्'
अ. ८.६.२.

पव- गत्यर्थक धातु।

पवमानः- (१) एक देह से अन्य देह में जाने वाला- आत्मा (२) विषय इन्द्रिय देहादि संघात से निःसङ्ग (३) परिशुद्ध।
'विपश्चिते पवमानाय गायत'
ऋ. ९.८६.४४, साम. २.९६५, तै.ब्रा. ३.१०.८.१.

पवमानः देवः- (१) पवित्र करने वाला।
सोमरस- (२) तेजस्वी शान्त विद्वान्।
'एष देवो रथर्यति पवमानो दशस्यति'
ऋ. ९.३.५, साम. २.६०९,
यह पवित्र करता हुआ सोम देव यज्ञ में आने के लिये रथ की कामना करता है तथा और देवों के निमित्त अपना दान चाहता है।
परमेश्वर की कामना वाला यह तेजस्वी शान्त विद्वान् (पवमानः देवः) सुख प्रदान करता है। (दशस्यति)

पवस्त- वस्त्र, छाज।
'पवस्तैस्त्वा पर्यक्रीणन्'
अ. ४.७.६

पवस्वत- घी, दूध, मक्खन से भरपूर।
'ऊर्जस्वन्तः पयस्वन्तः'
अ. ७.६०.२

पवा- पवित्र करने वाली।
'उत न एना पवया पवस्व'
ऋ. ९.९७.५३, साम. २.४५५.

पव्या- (१) रथचक्र की रेखा -दया. (२) रथ की चक्रधारा।
'उत पव्या रथानाम्'
ऋ. ५.५२.९, नि. ५.५.

पवि- रथ की चक्रधारा।
'पव्या रथस्य जङ्घनन्तभूम'
ऋ. १.८८.२.
वीर विद्वान्गण रथ की चक्र धारा से भूमि को पीड़ित करते हैं।

पवित्र- (१) कुश या कम्बल का बनाया छनना।
'पूतं पवित्रेणाज्यम्'

अ. ६.११५.३, वाज.सं. २०.२०, मै.सं. ३.११.१०, १५७.१२, का.सं. ३८.५, श.ब्रा. १२.९.२,७, तै.ब्रा. २.४.४.९, ६.६.४.

(२) यज्ञ में सोम रस छानने के लिए दशापवित्र नामक वस्त्र खण्ड ।

'शूर्यं पवित्रम्'

अ. ९.६ (१) १६

(३) प्र + त्रन् = पवित्र । 'प्र' धातु का अर्थ है 'पवत्र करना' । जो शुद्ध करता है वह पवित्र है । अर्थ है- मन्त्र जिसमें शुद्ध करने की शक्ति है ।

'येन देवा पवित्रेणात्मानं पुनते सदा
तेन सहस्रधारेण पावमानीः पुनन्तु नः'

ऋ.खि. ९.६७.४, साम. २.६५.२, तै.ब्रा. १.४.८.६

ऋत्विज् तथा यजमान जिसमें मन्त्र से (येन पवित्रेण) सदा अपने को पवित्र करते हैं (सदा आत्मानं पुनते) वैसे ही सामर्थ्य वाले प्रखर मन्त्र से (तेन सहस्र धारेण) पवमान देवता वाली ऋचाएं हमें पवित्र करें (वः पुन्तु) । पवमान सोम का नाम है, क्योंकि सोम भी पवित्र करता है ।

(४) रश्मिकिरण भी पवित्र करता है ।

'रश्मयः पवित्रमुच्यन्ते'

(५) जल ।

'शतपवित्रताः स्वधया मरन्ती
देवीर्देवानामपि यन्ति पाथः
ता इन्द्रस्य मिनन्ति व्रतानि
सिन्धुभ्यो हव्यं घृतवत्जुहोत'

ऋ. ७.४७.३, नि. ५.६.

बहुत जलों वाली (शतपवित्राः) स्वकार्यभूत अन्न से (स्वधया) मानवों को मत्त करती हुई (मदन्तीः) द्योतमान या दानादि गुणों से युक्त (देवीः) इन्द्रादि देवों के मार्ग अन्तरिक्ष में भी जाती है । (देवनामपि पाथः यन्ति) ऐसी वे देवियाँ (ताः) इन्द्र के यज्ञादि कर्मों को नष्ट नहीं करतीं (इन्द्रस्य व्रतानिन मिनन्ति) । हे ऋत्विजो, आप उन नदियों के लिए (सिन्धुभ्यः) घृत मिश्रित हव्य दो (घृतवत् हव्यं जुहोत । (६) अग्नि, (७) वायु, (८) सूर्य, और (९) इन्द्र भी पवित्र है ।

अग्निः पवित्रमुच्यते । वायुः पवित्रमुच्यते । सोमः पवित्रमुच्यते । सूर्यः पवित्रमुच्यते । इन्द्रः पवित्रमुच्यते । अग्निः पवित्रः समा पुनातु । वायुःसामः सूर्य इन्द्रः (पवित्राः ते मा पुनन्तु) । पुनः-

'पूतं पवित्रेणाज्यम्'

अ. ६.११५.३, वाज.सं. २०.२०, मै.सं. ३.११.१०,१५७.१२, का.सं. ३८.५, श.ब्रा. १२.९.२.७.

तै.ब्रा. २.४.४.९, ६.६.४.

पवित्रवन्तः - पवित्र + वतुप् = पवित्रवत् । अर्थ है- (१) रश्मियुक्त, (२) उदकयुक्त (३) माध्यमिक देवगण का एक पर्याय । (४) रश्मियुक्त मरुत् आदि देवगण ।

'पवित्रवन्तः परिवाचमासते'

ऋ. ९.७३.३, तै.आ. १.११.१, नि. १२.३२.

रश्मियुक्त मरुत् आदि देवगण (पवित्रवन्तः) माध्यमिक देववाणी विद्युत् संज्ञक वरुणदेव को (वाचम्) घेरकर बैठते हैं, (परिआसते) ।

पवित्रवन्ता- शरीर को शोधन करने वाले बल से युक्त प्राण और अपान ।

'पवित्रवन्ता चरतः पुनन्त'

ऋ. १०.२७.१७

पवित्रवान् - (१) पवित्र आचार और वेदज्ञान से युक्त पुत्र ।

पविता- (१) सत्यासत्य का विवेक करने वाला ।

'वैश्वानरः पविता मा पुनातु'

अ. ६.११९.३

पवि - पवित्र व्यवहार-दया. (२) क्रम (३) पवित्र, मार्ग (४) वाणी , (५) बल ।

'अनु वामेकः पविराववर्त'

ऋ. ५.६२.२, मै.सं. ४.१४.१०.,२३१.१३, तै.ब्रा. २.८.६.६.

पविष्टः- अत्यन्त पवित्र करने वाला ।

'इन्दुः पविष्ट चेतनः'

ऋ. ९. ६४.१०, साम. १.४८१.

पवीता - पविता, पवित्र करने वाला सोम ।

'पवीतारः पुनीतन'

ऋ. ९.४.४., साम. २.४००.

पवीनसः- पूतिगन्ध से युक्त, सड़ी नाक वाला ।

'पवीनसात् तङ्गल्वात्'

अ. ८.६.२१.

पवीर- पवि + र (मतुप् के अर्थ में) = पवीर। दीर्घ आर्ष है। अर्थ है (१) आयुध नो पवि अर्थात् वज्र या पत्थर का बना हो।
'तद्वत् पवीरमायुधम्'
(२) शल्यवान्।

पवीरवः- (१) बड़ा बड़ा जनपद।
'अतितस्थौ पवीरवान्'
ऋ. १०.६०.३
(२) वज्रध्वनि।
'प्रशस्तयेयवीरवस्य मह्ना'
ऋ. १.१७४.४.

पवीरवान् - पवीर + वतुप् = पवीरवत्। प्रथमा एक वचन में 'पवीर वान्' रूप है। अर्थ (१) इन्द्र। इन्द्र की ध्वनि 'पावीरवी' है जिसे माध्यमिका वाणी कहते हैं।
'पावीरवी च दिव्या वाक्
यो जनान् महिषाँ इव
अतितस्थौ पवीरवान्
उता पवीरवान्युधा'
ऋ. १०.६०.३
जो इन्द्र अतिमहान् असुरों के भी (महिषान् इव) हराकर (युधाअति) ठहरे हुए हैं (तस्थौ) चाहे वे आयुध लिए हो या निरायुध हों (पवीर वानं उत अपवीर वान्)।

पशव्यम् - (१) पशुसमूह, (२) सब ओर से फैला दोपायों चौपायों का हितकारी संसार।
'तवेदं विश्वमभितः प्रशव्यम्'
ऋ. ७.९८.६, अ. २०.८७.६, मै.सं. ४.१४.५, २२१.१५, तै.ब्रा. २.८.२.६.
(३) पशु अर्थात् इन्द्रियों से देखने योग्य, (४) पशु अर्थात् द्रष्टा जीवों के भोगने योग्य, (५) दर्शनीय।

पश्यत् - द्रष्टा, ज्ञानवान्।
'पश्यदक्षण्वान्न वि चेतदन्धः'
ऋ. १.१६४.१६
द्रष्टाज्ञानी ही आखों वाला है।

पश्यत- (१) दर्शनीय (२) द्रष्टा।
'नमस्ते अस्तु पश्यत'
अ. १३.४, ४८, ५५.

पश्वः इष्टिः - (१) सम्यक् दर्शन करने वाले विद्वान् का सखा, (२) रथ में पशु का जोड़ना।
'तद्वां नरावश्विना पश्व इष्टी
रथ्येव चक्रा प्रतियन्ति मध्वः'
ऋ. १.१८०.४.

पश्वयन्त्रः- (१) देखने वाले यन्त्रों से युक्त (२) नाना यन्त्रों का साक्षात्कार करने वाला, (३) देखने वाली इन्द्रियों को अपने अधीन नियन्त्रित करने वाला, (४) नाना देखने को दूरदर्शक और सूक्ष्मदर्शक यन्त्रों से युक्त, (५) पशु के समान यन्त्र बनकर या यन्त्रादि रखकर रहने वाला।
'पश्वयन्त्रासो अभिकारमर्चन्'
ऋ. ४.१.१४.

पश्चा - पीछे।
'पश्चा मृधो अपभवन्तु विश्वाः'
ऋ. १०.६७.११, अ. २०.९१.११.
'न प्राचीनमादित्या नोत पश्चा'
ऋ. २.२७.११, तै.सं. २.१.११.५, मै.सं. ४.१४.१४, २३८.१४.
'पश्चा स दघ्या यो अघस्य धाता'
ऋ. १.१२३.५.
जो पाप को पोषण करने वाला है उसे पीछे कर।

पश्चात् - पीछे।
'मर्यो न योषामभ्येति पश्चात्'
ऋ. १.११५.२, अ. २०.१०७.१५, मै.सं. ४.१४.४, २२०.६, तै.ब्रा. २.८.७.१.
जैसे विकट काल में पुरुष अपने अनुरूप रुचिकर प्रेम पात्री स्त्री के पीछे सूर्य भी चलता है।

पश्चात्सद् - पश्चिम भाग में विराजने वाला।
'विश्वदेवनेत्रेभ्यो देवेभ्यः पश्चात्सद्भ्यः स्वाहा'
वाज.सं. ९.३५., श.ब्रा. ५.२.४.५.

पश्चातात् - (१) पीछे से।
'पाहिपश्चातादुत् वा पुरस्तात्'
ऋ. ८.४८.१५.
(२) पश्चिम से।
'आ पश्चाता न्नासत्या पुरस्तात्'
ऋ. ७.७२.५, ७३.५, आश्व. श्रौ.सू. ३.८.१.

पश्चादोष- पीछे से दोष देना।
'पश्चादोषाय ग्लाविनम्'
वाज.सं. ३०.१७, तै.ब्रा. ३.४.१.१४.

पश्विष् - पशु + इष् + क्विप् = पश्विष्।

अर्थ-पशुओं का चाहने वाला कृषक ।
'अनर्विशे पश्विषे तुराय'
ऋ. १.१२१.७
दृश् + उश् = पशु । दृश् का पश् और य का लोप । (१) जो घ्राण से ही भक्ष्य पदार्थों को समझ या देख लेता है । वह पशु है । (पश्यति असौ स्वतो घ्राणेन भक्ष्यान्)
(२) लोक में पश (बन्धनार्थक) + उ = पशु । पश्यते बन्ध्यते असौ दाम्ना (यह रस्सी से बांधा जाता है) ।
(३) पशु पांच हैं- गौ, अश्व, पुरुष, अजा और अवि ।
'तवेमे पञ्च पशवो विभक्ताः
गावो अश्वाः, पुरुषाः अजावयः'
अ. ११.२.९.
पुनः-
'न सायकस्य चिकिते जनासो
लोधं नयन्ति पशु मन्यमानाः
ना वाजिनं वाजिना हासयन्ति
न गर्दभं पुरो अश्वान्नयन्ति'
ऋ. ३.५३.२३.
यह ऋचा वसिष्ठ द्वेषिणी है ।
'तप का क्षय, न हो, इस शाप से निवृत्त मौनी विश्वामित्र को वसिष्ठ के आदमी बांध कर लाए । इस पर विश्वामित्र उन लोगों से कहते हैं- ऐ लोगो (जनासः), मन्त्र बल से नाश करने वाली विश्वामित्र की शक्ति का तुझे ज्ञान नहीं है (सायकस्य न चिकिते) । इसी से मेरी तपस्या का क्षय न हो इस लोभ से मौन व्रतधारी मुझे (लोधम्) पशु समझ (पशु मन्यमानः) । मूर्ख को वागीश या विद्वान् हास्यास्पद नहीं करते (अवाजिनम्) वाजिना न हासयन्ति), अर्थात् बुद्धिमान् मूर्ख से स्पर्धा नहीं करते और गधे को घोड़े के सामने नहीं लाते (गर्दभम् अश्वान् पुरः न नयन्ति), अतः वसिष्ठ की मेरे साथ स्पर्द्धा ठीक नहीं है ।
स्वा. दयानन्द का अर्थ-जो क्षत्रिय तपोलुब्ध ब्राह्मण को तत्वदर्शी समझ युद्ध में नहीं पकड़ते (लोधं पशु मन्यमानाः न नयन्ति), सबल से निर्बल को नहीं लड़ाते (वाजिनम् अवाजिनम् न हासयन्ति), जो घोड़े के सामने गधे को नहीं ले जाते उन्हें ही राजा शस्त्रास्त्रों का अधिकारी जाने (सायकस्य चिकिते) ।
(४) रूप दिखाने वाला - किरण ।
'त्वष्टा रूपाणि हि प्रभुः
पशून् विश्वान् समानजे'
ऋ. १.१८८.९
(६) सर्वद्रष्टा प्रभु
'हिरण्यपावाः पशुमासु गृह्णते'
ऋ. ९.८६.४३, अ. १८.३.१८, साम. १.५६४, २.९६४

पशुतृप् - (१) पशुओं को घास आदि से तृप्त करने वाला, (२) इन्द्रिय रूप पशुओं को भोग विलासों से तृप्त करने वाला
'अवराजन् पशुतृपं न तायुम्
सृजा वत्सं न दाम्नो वसिष्ठम्'
ऋ. ७.८६.५.

पशुपति- (१) धनुर्धारी पशुपति, । शिव का एक पयभि ।
'पशुपतिरेनमिष्वासः'
अ। १५.५.८.
(२) दर्शन शील इन्द्रियों का, भृत्य के समान शरीर के काम करने वाले अंगों का पालक आत्मा
'पशुपतेः पुरी तत्'
वाज.सं. ३९.९.

पशुपा- (१) पशुओं का पालक ग्वाला ।
(२) विद्वानों का पालक राजा ।
'उप ते स्तोमान् पशुपा इवाकरम्'
ऋ. १.११४.९, आश्व.श्रौ.सू. ४.११.६.

पशुमत् - पशुयुक्त । पशु + मतुप् ।

पशुमत् यूथः- (१) पशुओं का यूथ ।
(२) पशु तुल्य कर्मचारी वर्ग या सैनिक वर्ग -दया. ।
'श्रवश्याच्छा पशुमच्च यूथम्'
ऋ. ४.३८.५, नि. ४.२४.
ऐसे इन्द्र को हम धन एवं पशुओं के यूथ का लक्ष्य कर प्रार्थना करते हैं ।
जिस राजा की पशुतुल्य कीर्ति या धन को या पशुतुल्य कर्मचारी वर्ग या सैनिक वर्ग को कोसते हैं ।

पशुमान् - पशु से युक्त ।

'प्रजावान्नः पशुमां अस्तु गातुः'
ऋ. ३.५४.१८.
पशुरक्षि- पशुओं का रक्षक ।
'आजा यूथेव पशुरक्षि रस्तम्'
ऋ. ६.४९.१२.
पशुबन्ध - पशु अर्थात् द्रष्टा परमात्मा को हृदय में बन्धन द्वारा किया जाने वाला सोम याग ।
'पशुबन्धास्तदिष्टयः'
अ. ११.७.१९
पशुष् - (१) बन्धक , बांधने वाला -दया. (२) पशुओं को सब प्रकार की पुष्टि देने वाला गोपालक ,(३) समस्त प्राणियों का परिपोषक और व्यवस्थापक ।
'उषर्बुधे पशुषे नाग्नये
स्तोमो बभूत्वग्नये ।'
ऋ. १.१२७.१०
प्रातः जागने वाले (उषर्बुधे) और योग दशा में विशोका के उदय में ज्ञान का विषय होने वाले (उषर्बुधे) पशुओं को सब प्रकार की पुष्टि देने वाले गोपालक या समस्त प्राणियों का परिपोषक और व्यवस्थापक (पशुषे) के लिए होवें ।
(४) पशु ।
'यज्ञायते वा पशुषो न वाजान्'
ऋ. ५.४१.१.
पशुसनि - पशुदेने वाला ।
'पशुसनि लोकसन्यभयसनि'
वा.सं. १९.४८, मै.सं. ३.११.१०, १५६.१७, श.ब्रा. १२.८.१.२२.
पशुसाधनी- पशुओं को वश में करने वाली ।
'या ते अष्ट्रा गो ओपशा
आघृणे पशुसाधनी'
ऋ. ६.५३.९
पशूनां पतिः - (१) पशुओं का पालक, (२) रुद्र ।
'पशूनां पतये नमः'
वाज.सं. १६.१७, तै.सं. ४.५.२.१, मै.सं. २.९.३, १२२.१०, का.सं. १७.१२.
पष्ठवाट् - पीठ से बोझा उठाने वाला बैल, हाथी, गधा, घोड़ा आदि ।
'पष्ठवाट् च मे पष्ठौही च मे'
वाज.सं. १८.२७, का.सं. १८.१२.
पष्ठौही - पीठ से बोझा उठाने वाली गौ, गधी, घोड़ी आदि ।
पसः- (१) प्रजननांग
'यथा पसस्तायादरम्'
अ. ६.७२.२.
(२) राज प्रबन्ध, (३) जननेन्द्रिय ।
'यदास्थूलेन पससा'
अ. २०.१३६.२, शां.श्रौ.सू. १२.२४.२.३.
'धनुरिवा तानया पसः'
अ. ४.४.६, ६.१०१.२.
पस - 'सप' का वर्ण व्यत्यय से 'पस' । 'षप्' धातु समवाय अर्थ में प्रुयुक्त है । अर्थ है-(१) संघ बनाकर बैठने वाला । (२) सुसम्बद्ध, सुप्रबद्ध (३) राष्ट्र का राज्य प्रबन्ध (४) संगति ।
'आहन्ति गभेपसः'
वाज.सं. २३.२२, श.ब्रा. १३.२.९.६.
पस्त्य - पत् + य = पस्त्य । अर्थ है । (१) पतन, (२) गृह ।
पस्त्या - वसन्ति अस्मिन् । पततः वा संगत्यर्थो वा इतिमाधवा(१) उत्तम गृह वाली भूमि (२) गृहों में निवास करने वाली प्रजा, (३) राष्ट्रभूमि, (४) सुसंगत सुव्यवस्थित सेना ।
'प्र प्र दाश्वान् पस्त्याभिरस्थित
अन्तर्वावते क्षयं दधे ।'.
ऋ. १.४०.७.
दानशील पुरुष ही (प्र प्रदाश्वान्) गृहों में निवास करने वाली प्रजाओं, राष्ट्र भूमियों और सुसंगत, सुव्यवस्थित सेनाओं से (पस्त्याभिः) प्रतिष्ठा को प्राप्त करता है (अस्थित) । भीतर गति करने वाले वायु से युक्त या भीतर आने वाले नाना ऐश्वर्यों से युक्त पदार्थों से पूर्ण निवास योग्य गृह को (अन्तर्वावत् क्षयम्) धारण करता है । (५) प्रजा, (६) आश्रय भूत प्रकृति विकृति ।
'स जायत प्रथमः पस्त्यासु'
ऋ. ४.१.११.
पस्त्या अदितिः- साक्षात् गृह स्वरूप अदिति, पृथ्वी या माता ।
'प्रपस्त्यामदितिम् सिन्धुमर्कैः'
ऋ. ४.५५.३.
पस्त्यावत् - (१) गृह के समान (२) उत्तम प्रजा से

सम्पन्न ।

'स्तृणाना सो बर्हिः पस्त्यावत्'

ऋ. २.११.१६

(३) पस्त्या + वतुप् = पस्त्यावत् गृहवान्, गृह का स्वामी ।

'उतश्रुतं वृषणा पस्त्यावतः'

ऋ. १.१५१.२

आप दोनों स्त्री पुरुष उस गृह के स्वामी की वाणी की आज्ञा का श्रवण करो ।

(४) जल धाराओं से युक्त मेघ, (५) निवास गृहों से युक्त ।

'क्षयाँ एभ्यः सुवसि पस्त्यावतः'

ऋ. ४.५४.५

(६) उत्तम प्रजा से सम्पन्न या नाना गृह भवनों से समृद्ध नगर या देश ।

'आर्जीके पस्त्यावति'

ऋ. ८.७.२९

पस्पशानः- देखता हुआ ।

'गाः पस्पशानस्तविषीरधत्त'

ऋ. १०.१०२.८

पस्पशे - करता है ।

'विष्णोः कर्माणि पश्यत
यतो व्रतानि पस्पशे ।'

ऋ. १.२२.१९, अ. ७.२६.६, साम. २.१०२१., वाज.सं. ६.४, १३.३३ , तै.सं. १.३.६.२, मै.सं. १.२.१४, २३.१८, का.सं. ३.३, १६.१६ .श.ब्रा. ३.७.१.१७, ७.५.१.२५.

इस विष्णु के सृष्टि आदि कर्मों को देखो जिसके अनुग्रह से जीव अपने कर्त्तव्य कर्मों को करता है ।

पस्पृधान- (१) स्पर्धा करता हुआ ।

'प्रैतशं सूर्ये पस्पृधानम्'

ऋ. १.६१.१५.

तेज में सूर्य से स्पर्धा करने वाले तथा आश्व के समान निर्भिक ।

'सं यन्मिथः पस्पृधानासो अग्मत'

ऋ. १.११९.३.

एक दूसरे से स्वर्धा करते हुए एकत्र होते हैं ।

(२) अधिक होने के लिए स्पर्धा करने वाला ।

'पस्पृधानेभ्यः सूर्यस्य सातौ'

ऋ. २.१९.४

प्रहा- मारने वाला ।

'उत प्रहामतिदीवा जयति'

अ. ७.५०.६

पाकः - पच् + घञ् = पाक । अर्थ है- (१) प्रत्यक्ष प्रज्ञ, सम्यक् दर्शन, (२) सम्यक् दर्शन ईश्वर, (३) तत्वदर्शी, (४) जिसकी प्रज्ञा शक्ति प्रखर हो ।

'इनो विश्वस्य भुवनस्य गोपाः
समाधीरः पाकमत्राविवेश'

ऋ. १.१६४.२१, नि. ३.१२.

(५) पच् + घञ् = पाक । विपक्व ।

'तं पाकेन मनसापश्यमन्तितः'

ऋ. १०.११४.४, ऐ. आ. ३.१.६.१५, नि. १०.४६.

उस सुपर्ण नामक वायु को मैं निकट ही विपक्व प्रज्ञा से (पाकेन मनसा अन्तितः) देखता हूं ।

आधुनिक अर्थ - रसोई बनाना, जलाना, अन्न् का पचाना, पकना, परिपक्व, पूर्णविकास, पूर्ति पूर्णता, फल, परिणाम कृतकर्मों का फल भोग, अन्न, घाव का पकना, बाल का पकना, गृह अग्नि, उल्लू पक्षी, बच्चा, इन्द्र द्वारा मारा गया एक राक्षस ।

पाकत्र - (१) न्यून ज्ञान ।

'यत्पाकत्रा मनसा दीन दक्षाः'

ऋ. १०.२.५, कौ.ब्रा. २६.६, तै.ब्रा. ३.७.११.५, आप. श्रौ.सू . ३.१२.१.

(२) परिपक्व ज्ञान वाले तपस्विजनों के अधीन ।

'पाकत्रा स्थन देवाः'

ऋ. ८.१८.१५.

पाकदूर्वा- पकी दूब ।

'पाकदूर्वा व्यल्कशा'

ऋ. १०.१६.१३.

पाकबलिः- परिपक्व वीर्य वाला ।

पाक बलिः

अ. २०.१३१.१२.

पाकशंसः- (१) परिपक्व, दृढ़ सत्य वचन कहने वाला, (२) ठोस पक्की बात कहने वाला ।

'ये पाकशंसं विहरन्त एवैः'

ऋ. ७.१०४.९

पाकस्थामा- (१) पाकस्थामा नामक एक राजा । (२) महाबली, (३) परमेश्वर का

विशेषण-(दया.) । (४) परिपक्व बल वाला परमेश्वर ।
यं मे दुरिन्द्रो मरुतः
पाकस्थामा कौरयाणः '
ऋ. ८.३.२१.
इन्द्र और मरुतों ने जो दान मुझे दिया वैसा ही सदा शत्रुओं पर आक्रमण करने वाले (कौरयाणः) पाकस्थामा नामक राजा ने दिया (पाकस्थामा) ।
महाबली (पाकस्थामा) सबको गति देने वाला (कौरयाणः) और सबके जीवनाधार वायु के स्वामी परमेश्वर (मरुतः इन्द्र) जिस सूर्य वृष्टि आदि पदार्थ समूह को मुझे देने वाला है (यम् मे दुः) (-दया.) ।

पाकसुत्वा - (१) आत्म ज्ञान का परिपाक करने वाला, (२) आत्म ज्ञान रूपी रस का सवन करने वाला (३) सोमरस बनाने वाला ।
'पिबामि पाक सुत्वनः '
ऋ. १०.८६.१९, अ. २०.१२६.१९.
(४) विपाक या कर्मफल का स्वामी प्रभु

पांक्त - (१) पंक्ति बनाकर चलने वाला पक्षी ।
'अन्तरिक्षाय पांक्त्रान् '
वाज.सं. २४.२६, मै.सं. ३.१४.७, १७३.११.
(२) पांचों जनों का हिताकारी ।
'पांक्ताय त्रिणवाय शाक्वराय '
वाज.सं. २९.६०

पांक्तं छन्दः- (१) पंक्ति छन्द, (२) दसों दिशाओं को बल, (३) पांचों जनों का बल (४) पांच स्वतन्त्र प्राणों से युक्त पुरुष- आत्मा ।
'पांक्तेन त्वा छन्दसा सादयामि '
वाज.सं. १३.५३, मै.सं. २.७.१८,१०३.१३, श.ब्रा. ७.५.२.६१.
'पांक्त छन्दः पुरुषो बभूव '
अ. १२.३.१०.

पाक्य- (१) विद्या योगाभ्यासेन परिपक्व धीः -(दया.)
'विद्या और योगाभ्यासेन परिपक्व बुद्धि वाला । (२) परिपक्व विज्ञान वाला ।
'विपृच्छामि पाक्यान्न देवान्
वषट्कृतस्याभ्द्भुतस्य दस्रा '
ऋ. १.१२०.४.
हे दुःखों के विनाश करने वाले, आप दोनों परिपक्व विज्ञान वालों से ही इस अद्भुत आश्चर्यकारी वषट्कार, यज्ञ आहुति या आदान प्रदान, सृष्टि गत सर्ग और प्रलय के विषय में (अद्भुतस्य वषट्कृतस्य) विविध प्रश्न पूछता हूँ (विपृच्छामि) ।

पाकारु- (१) पकने वाला फोड़ा ।
'पाकारोरसि नाशनी '
वाज.सं. १२.९७

पाक्या- परिपक्व ज्ञान वाला ।
'पाक्याचिद् वसवो धीर्याचित् '
ऋ. २.२७.११, तै.सं. २.१.११.५, मै.स. ४.१४.१४, २३८.१५.

प्राघर्मसत् - उत्तम तेज को धारण करने वाला ।
'द्विबर्हज्मा प्राघर्मसत् ऋतावरी '
ऋ. ६.७३.१, अ. २०.९०.१.

पाजः - पा + जुट् + असुन् = पाजस् । इससे अपनी या दूसरे से रक्षा होती है । अर्थ है (१) तेजः संघ । 'पातेर्वले जुट् च' से पाजसम्' बना है ।
(२) बल ।
'कृणुष्व पाजः प्रसितिं न पृथ्वीम् '
ऋ. ४.४.१, वाज.सं. १३.९.
हे सेनापति, तू फैले जाल की तरह (पृथ्वीम् प्रसितं न) बल धारण कर - दया. ।
हे अग्निदेव, तेजः संघ इस पृथ्वी को जाल के सदृश बना ।

पाजस्य - न. (१) गौ का पेट ।
'क्ष्येनः क्रोडों अन्तरिक्षम् पाजस्यम् '
अ. ९.७.५.
(२) उदर का मध्य भाग ।
'पाजस्यात् जज्ञे यज्ञः '
अ. १०.१०.२०
(३) पाद, खड़े होने का स्थान ।

पाजसी - द्वि. व. । (१) बलवती (२) द्यावाक्षाया का विशेषण ।

पाञ्चजन्य- (१) पाँचोंजन (२) पांचों इन्द्रिय और पाँचों भूतों समान रूप से उपासनीय परमेश्वर ।
'पाञ्चजन्यस्य बहुधा यमिइन्धते '
अ. ४.२३.१.
(४) पांचों जनों - ब्रहण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र

एवं निषाद (चाण्डाल) । अथवा गन्धर्व, अप्सरा, असुर, देव और राक्षस, अथवा अध्यापक, उपदेशक, सभाध्यक्ष, सेनापति और जनाध्यक्ष के बीच शासक ।

'चम्रीषो न शवसा पाञ्चजन्यः'

ऋ. १.१००.१२

(५) पांचों जनों का हितकर ।

'पांचजन्यः पुरोहितः'

ऋ. ९.६६.२०, वाज.सं. २६.९, साम. २.८६.९, वाज.सं. (का.) २९.३९, मै.सं. १.५.१,६६.१०. तै.आ. २.५.२, आप.श्रौ.सू. ५.१७ .२.

पाञ्चजन्यः पुरोहितः- (१) अग्नि, (२) ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और निषाद्, या देव, मनुष्य गन्धर्व, अप्सरा, सर्प और पितर, या पांच इन्द्रियों का समान रूप से हितकारी समस्त कार्यों के पूर्व हृदय और समस्त विश्वसृष्टि के पूर्व जगत् में साक्षी रूप से स्थित परमेश्वर ।

'अग्नि ऋषिः पवमानः
पाञ्चजन्यः पुरोहितः ।

पाञ्चजन्यः रैः- पांचों जनों का हितकारी धन ।

'आविश्वतः पाञ्चजन्येन राया'

ऋ. ७.७२.५, ७३.५.

पाञ्चजन्यां- पञ्चजन + ण्यत् = पाञ्चजन्य । पाञ्चजन्य + टाप् = पाञ्चजन्या । अर्थ (१) पञ्चजन समुदाय लक्षणा, ब्राह्मण, क्षत्रिय वैश्य, शूद्र तथा निषाद पञ्चजन हैं । इन्हीं का समुदाय जनता या प्रजागण हैं । इसी से - 'पाञ्चजन्या विशः' कहा गया है ।

पाञ्चजन्या कृष्टि- पांचजनों में उत्पन्न मनुष्यादि प्रजा ।

'अधिश्रवः पाञ्चजन्यासु कृष्टिपु'

ऋ. ३.५३.१६.

पाञ्चजन्या विट् - (१) पांचों-जनों ब्राह्मण, क्षत्रिय वैश्य, शूद्र एवं निषाद, या देव, यक्ष, किन्नर, रक्षः और गन्धवों से बनी प्रजाए (२) पञ्चजनों के समुदाय वाली प्रजा ।

'यत्पाञ्चजन्यया विशा'

ऋ. ८.६३.७, ऐ.ब्रा. ५.६.८. कौ.ब्रा. २३.१, आश्व. श्रौ.सू. ७.१२.९, नि. ३.८.

प्रजा के विशेषण के रूप में पञ्च जन शब्द का प्रयोग वेदों में प्रचुर है । यास्कने पञ्च जनों का प्रयोग मनुष्य के पर्याय में किया है ।

'यत्पाञ्चजन्यया विशा
इन्द्रे घोपा असृक्षत'

ऋ. ८.६३.७

जव पञ्चजनों के समुदाय रूपी प्रजाओं के साथ ऋत्विजों के द्वारा इसी प्रकार की स्तुतियाँ वर्षा के लिए रची गई ।

पाटा - (१) दीप्ति मती आत्मशक्ति, (२) विवेकख्याति रूप प्रत्यक् चेतना शक्ति ।

'पाटामिन्द्रो व्याश्वात्'

अ. २.२७.४

पाणि- पण (व्यवहार, स्तुति या पूजा अर्थ में) + इण् (कारण अर्थ में) = पाणि । अर्थ -तिस से कार्य किया जाय या पूजा की जाय ।

(२) कर, हाथ ।

पाणिघ्न- हाथ से तवला आदि बजाने वाला ।

'वीणावादं पाणिघ्नम् तूणवध्मं तान्नृत्ताय'

वाज.सं. ३०.२०

पात- पा (रक्षा करना) के लोट् म.प्र. व.व. का रूप । अर्थ है- रक्षा करो ।

'यूयं पात स्वस्तिभिः सदानः'

ऋ. ७.१.२०, २५. ३.१०, ७. ७,८, ९.६, ११.५, १२.३, १३.३, १४.३, १९.११, २०.१०,

हे देव, आप आशीर्वाद से सदा हमारी रक्षा करें ।

पातल्य- गिरने वाला, मर्यादा से च्युत होने वाला ।

'इन्द्रः पातल्ये ददतां शरीतोः'

ऋ. ३.५३.१७

पात्र- न. । (१) पात्र ।

'वराय ते पात्रं धर्मणे तना'

ऋ. १०.५०.६.

हे इन्द्र, अपनी श्रेष्ठ कामना के लिए तुझे सोम रसपूर्ण पात्र तथा धन देता हूँ, (तना) (२) रक्षा का साधन ।

'मृणीहि विश्वा पात्राणि'

अ. ६.१४२.१

(३) पालन सामर्थ्य ।

'अनाधृष्या तव पात्राणि धर्मणा'

ऋ. १०.४४.५, अ. २०.९४.५.

(४) पा (पीना) + ष्ट्रन = पात्र । पात्रं पानात् पीयते हि तेन (इस से पीया जाता है अतः पात्र

है)
'पात्रान्तु कुलयो र्मध्ये
पर्णे नृपतिमन्त्रिणि
योग्य भाजनयो र्यज्ञ
भाण्डे नाद्या नुकर्त्तरि ।' -हेम
(५) कच्चा पात्र (६) पालन करने योग्य बच्चा ।
(७) पीने का बर्तन, घड़ा आदि ।
'मा नः पात्रा भेत् सहजानुषाणि'
ऋ. १.१०४.८.
'ओषः पात्रं न शोचिषा'
ऋ. १.१७५.३, साम. २.७८४.
(८) शत्रु के बचाव का साधना ।
'पात्राभिन्दाना न्यर्थन्यापन्'
ऋ. ६.२७.६

पात्रहस्त- (१) हाथ में पात्र लिया हुआ, (२) परसने वाला ।
'यत् परिवेष्टारः पात्रहस्ताः'
अ. ९.६.५१.

पात्नीवत- (१) पात्नी वत यज्ञ, (२) एक प्रकार का राज्याधिकारी ।
'पात्नीवतश्च मे हारियोजनश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम्'
वाज.सं. १८.२०

पात्री- थाली आदि पात्र ।
'इमां पातृममृते नासमङ्क्धि'
अ. ३.१२.८.

पाथ्- पान करने योग्य जल, (२) उत्तम अन्न, (३) उत्तम पालन का उपाय ।
'पाथो देवेभ्यः सृज'
ऋ. १.१८८.१०

पाथ- (१) अन्न ।
'उपावसृज त्मन्या समञ्जन्
देवानां पाथ ऋतुथा हवींषि'
ऋ. १०.११०.१०, अ. ५.१२.१०, वाज.सं. २९.३५, मै.सं. ४.१३.३, २०२.१३, का.सं. १६.२०.तै.ब्रा. ३.६.३.४, नि. ८.१७.
हे अग्ने, आत्मा से, जीव से या स्वयं (त्मन्या) अन्न तथा आज्य आदि हवि ऋतु के अनुसार सम्मुख कर जनों के लिए निकट आकर दो । अथवा हे अग्ने, तू स्वयं अपने को अभिव्यक्त कर ऋतु के अनुकूल देवजनों के अन्न तथा आज्य आदि हवि को बना ।

(२) पत् + असुक् = पायस् (उपधा की वृद्धि, 'त' 'थ')। 'पतस्य च' । 'पतति इतिपाथः (जो पतनशील है वह पाथस है) । अर्थ है- 'अन्तरिक्ष' 'पाथोऽरिक्षं पथा व्याख्या तम्' ।
(३) जल । 'उदकमपि पाथ उच्यते पानात्' (उदक को भी पाथस् कहते हैं । इसकी व्युत्पत्ति पा (रक्षार्थक धातु से) है । पा + असुन् पाथस् । उदके थुट्च । उदकञ्च अन्नञ्च लोकान् पाति इति पाथ उच्चते (उदक और अन्न को पाथस कहा जाता है क्योंकि ये लोक की रक्षा करते हैं ।
'आचष्ट आसां पाथो नदीनाम्
वरुण उग्रः सहस्रचक्षाः'
ऋ. ७.३४.१०, नि. ६.७.
अनेक चक्षुवाले (सहस्रचक्षा) उद्गूर्ण या ओजस्वी (उग्रः) वरुण इन नदियों का जल (आसां नदीनां पाथः) देखता है (अभिपश्यति) ।
अन्य अर्थ - हे राजन् , जैसे अनन्त प्रकाश वाला तेजस्वी सूर्य (सहस्र चक्षाः) इन नदियों के जल को खींचकर फिर उन्हीं में बरसा देती है उसी प्रकार अपने राज्य में सर्वत्र दृष्टि रखने वाले प्रतापी और अविद्यान्धकार दूर करने वाले इन प्रजाओं से कर लेकर उन्ही में खर्च करने की आज्ञा देते हैं (आचष्टे) ।
पुनः अन्तरिक्ष के अर्थ में -
'श्येनो न दीयन्नन्वेति पाथः'
ऋ. ७.६३.५, नि. ६.७
वह अन्तरिक्ष (पाथः)उस सूर्य को मार्ग देने के निमित्त शीघ्र बाज पक्षी के समान (श्येनःन) चलता हुआ (दीयन्) उनका अनुकरण करता है (अन्वेति) ।
अथवा, जब सूर्य की तरह बड़े वेग से गति करता हुआ अन्तरिक्ष में प्राप्त होता है ।

पाथ्य - (१) समस्त ज्ञानों का ज्ञाता ।
'तमु त्वा पाथ्यो वृषा'
ऋ. ६.१६.१५, वाज.सं. ११.३४, तै.सं. ३.५.११.४, ४.१.३.३, ५.१. ४.४.मै.सं. २.७.३, ७७.८, ४.१०.३, १४८.३, का.सं. १५.१२, १६.३, १९.४, श.ब्रा. ६.४.२.४, वै.सू. ५.१४.

पाथ्यःवृषा- (१) जल युक्त मेघ, (२) धर्म पथ पर

आरुढ़ बलवान् प्रबन्ध कुशल पुरुष ।
(३) अध्यात्म में प्राण ।

पाद् – (१) पद्यते अनेन इति (इससे चला जाता है) – पैर ।
'कदामर्तमराधसं पदाक्षुम्पमिव स्फुरत्'
ऋ. १.८४.८, अ. २०.६३.५, साम. २.६.९३, नि. ५.१७.
(२) रश्मिमयं चरण, (३) पादस्था नीय भूमि ।
'पत्तो जगारे प्रत्यञ्चमत्ति'
ऋ. १०.२७.१३
आदित्य रश्मिरूपी चरणों से या पादस्थानीय भूमि से (पत्तः) जल ग्रहण करता या निगलता है(जगार) (४) पशु पाद प्रकृति (पशु का चरण ही पद की प्रकृति है) पाद का ही नाम पद है ।
(५) दीनार का भाग भी पाद पद कहा जाता है । (प्रभाव पादः)
(६) प्रभागपादसामान्यात् इतराणि पदानि । प्रभाग पाद की तरह और पदार्थों के भी चार चरण या पाद होते हैं । जैसे ग्रन्थ के पद, क्षेत्र के पद ।
(७) आहवनीय स्थान ।
'पदं व्यवसित त्राण स्थान
लक्ष्माङ्कित वस्तुषु'
–अमरकोष
'पदं देवस्य नमसा व्यन्तः
श्रवस्यवः श्रव आपन्तमृक्तम् ।
नामानि चिद्दधिरे यज्ञियानि
भद्रायां ते रणयन्त संदृष्टौ'
ऋ. ६.१.४, मै.सं. ४.१३.६, २०६.१२, का.सं. १८.२०.तै.ब्रा. ३. ६.१०.२.
जो देव या अग्नि के आहवनीय स्थान को (देवस्य पादम्) नमस्कार, स्तुति या मन्त्र से (नमसा) देखते या मानते हुए (व्यन्तः) अन्न या यज्ञ चाहने वाले (श्रवस्यवः) दूसरों से अनुपयुक्त यश प्राप्त करते हैं (अपृक्तम् आपन्), हे अग्नि, वे भी (ते) स्तुत्य अग्नि के दर्शन के लिए (भद्रायां संदृष्टौ) अपने को रमाते हैं (रणयन्त) और तेरे यज्ञ योग्य नामों को या स्तोत्रों को धारण करते हैं वे भी अग्नि को पाते हैं ।
(८) वेद के चार पाद-चर्चा, श्रावक, चर्चक और श्रवणीय । केवल अध्ययन करना या मुख द्वारा उच्चारण मात्र चर्चा है । उस अध्ययन का उपदेश करने वाला गुरु श्रावक है । उसका अध्येता अर्थात् शिष्य चर्चक हैं और श्रवण करने योग्य वेद का समाप्त करना श्रवणीयपाद है । इन चार पादों से ऋग्वेद का अध्ययन होता है ।
(९) पद + घञ् = पाद । यत् उत्पद्यते स्थानादि तत्सरूपम् पांसौ अन्यत्र वा तत् पदम् (चलते समय धूलि आदि में उखड़ा पद्चिह्न) ।
(१०) अवकाश ।

पादगृह्य– (१) चरणों से पकड़ कर ।
'यत् प्राक्षिणाः पितरं पादगृह्य'
ऋ. ४. १८.१२.
'प्रतं क्षिणां पर्वते पादगृह्य'
ऋ. १०.२७.४

पाद्व– (१) प्रयत्नशील पुरुष (२) यदु का वंशज ।
'नि तुर्वशं नि याद्वं शिशीहि'
ऋ. ७.१९.८, अ. २०.३७.८.

पादि– पैर तले दबाना । पद् + णिच् ।
'अग्ने सपत्नानधरान् पादयास्मत्'
अ. १३.१.३१

पादुः– पद् + उण् = पादु । अर्थ (१) गमन, (२) कर्म –दया. (३) सरणि, पद्धति ।
'सपादुरस्य निर्णिजो न मुच्यते'
ऋ. १०.२७.२४, नि. ५.१९.
इस आदित्य का वह गमन (सपादुः) कभी श्रम से (निर्णिजः) विराम नहीं लेता (नमुच्यते) ।
(४) ज्ञानमय चेतनामय स्वरूप (५) ज्ञानप्रकाश –व्यापार ।

पान्तम् – पीने लायक सोमात्मक हवि, या दुग्ध, घृत आदि रस ।
'हविष्पान्तमजरम् स्वर्विदि'
ऋ. १०.८८.१, ऐ.ब्रा. ५.८.११, कौ.ब्रा. २३.३, नि. ७.२५.
पीने योग्य सोमात्मक या दुग्ध घृतादि रस का बना स्वच्छ हवि (२) पा + अनीयर = पानीय = पान्त (पृषोदरादिवत्)। पानीय, पानार्ह, पीने योग्य ।
'प्रवः पान्तमन्धसे धियायते'
ऋ.. १.१५५.१.

पान्ता- (१) रक्षक-दया. (२) पानकर - ।

पाषी - (१) शिला, पाषाण, (२) आकाश, (३) भूमि ।

'उप त्रितस्य पाष्योः अभक्त यद् गुहायदम्'

ऋ. ९.१०२.२, साम. २.३६४.

पाप - (१) पा (पीना) + प = पाप। (पानी विषिभ्यः पः) । पाता अपेयान्तम् (अपेय पदार्थों को पीने वाला) । अपेयानि अलेहलानि विषयप्रसक्तः विवति (विषयप्रसक्तः अलेहलानि (विषयप्रसक्तपुरुष अपेय पदार्थों को पीता है अतः वह पाप कहा गया है) ।

(२) पापत्यमानोऽवाङेव पतति इति पापः (जो कर्मों से पुनः नरक में गिराया जाय वह पाप या पापी है) । 'पापत्यभान' का ही पाप हो गया । (पृषोदरादिवत्) । (३) 'पा' धातु के यङ्लुङन्त रूप 'पापत्यति' का 'पा' और 'प' प्रत्य मिलकर पाप बना है ।

(४) अपेयों अर्थात् अरक्षणीयों की रक्षा करने वाला जिसकी रक्षा नहीं करनी चाहिए उसकी भी रक्षा करने वाला पाप है ।

(५) यङ्लुङन्त 'पत्' धातु से 'पाप' शब्द की सिद्धि की गई है ।

पापकृत् - पापाचरण करने वाला ।

'भवाशर्वा वस्यतां पापकृते'

अ. १०.१.२३.

पापकृत्वन् - पाप करने वाला ।

'पाप कृत्वानमागमम्'

अ. १९.३५.३.

पापत्व- (१) पाप कार्य ।

'न पापत्वाय रासीय'

ऋ. ७.३२.१८, अ. २०.८२.१

(२) पाप कर्म की वृद्धि ।

पापतीति - पुनः पुनः पतति, (बार -बार गिरती या पड़ती है) ।

'अधजिह्वा पापतीति प्रवृष्णः'

ऋ. ६.६.५

और प्रवर्षि अग्नि की ज्वाला लकड़ियों पर बार बार पड़ती है ।

पाप्मन् - पाप ।

'पाप्मने क्लीबम्'

वाज.सं. ३०.५, तै.ब्रा. ३.४.१.१.

पापाः - पाप परायण पुरुष ।

'येत्वा देवो ग्रिकं मन्यमानाः
पाप भद्रमुपजीवन्ति पज्राः'

ऋ. १.१९०.५

हे बृहस्पति, जो पाप परायण तथा धनी होकर भी धन को भोग प्रधान पापों में लगाकर जीर्ण हो (पापाः पज्राः) वे तुझ कल्याणकारी (भद्रम्) एवं तेजस्वी (ग्रिकम्) का अपमान करते हुए (मन्यमानाः) अपने ही लिए जीते हैं । (उपजीवन्ति)

पाया - पापकारिणी प्रवृत्ति ।

'यद्वा चेरिम पापया'

अ. ७.६५.२

पापासः- पाप + अच् (मतुप् अर्थ में) = पाप अर्थ है- पापी । पाप + जस् = पापासः ।

पाप्मा - (१) दुःखदायी चर्मरोग ।

'पाप्मा भ्रातृव्येण सह'

अ. ५.२२.१२.

(२) एक रोग जो दूसरे को मारने के लिए कच्चे बर्तन में रख कर किया जाता है और जिसके जल जाने पर फट् फट् आवाज होती है, (३) बारूद के समान कोई विस्फोटक पदार्थ ।

'अमाकृत्वा पाप्मानं
यस्तेनान्यं जिघांसति'

अ. ४.१८.३

(४) घातक प्रयोग, टोना ।

पापिष्ठाः- पाप से युक्त प्रवृत्तियाँ ।

'तासां पापिष्ठा निरितः प्रहिण्मः'

अ. ७.११५.३

पापी - पाप जनक बुरी प्रवृत्तियाँ ।

'या पापीस्ता अनीनशम्'

अ. ७.११५.४.

पापी लक्ष्मी - पाप कारिणी, कलंक दायिनी, दुष्टाचारिणी ।

'प्र पततः पापि लक्ष्मि'

अ. ७.११५.१

प्राक्त :- (१) आगे से ।

'प्राक्तो अपाक्तो अधरादुदक्तः'

अ. ८.४.१९

'प्राक्तो अपाची मनयंतदेनाम्'

अ. १८.३.३.

(२) पूर्व ।
'प्राक्तादपाक्तादधरादुदक्तात्'
ऋ. ७.१०४.१९.

प्रार्घर्मसत्- सर्वोत्कृष्ट तेजः स्वरूप में विद्यमान ।
'द्विबर्हज्मा प्राघर्मसत् पितानः'
ऋ. ६.७३.१, अ. २०.९०.१

प्राङ्- (१) उच्च योनि में जाने वाला जीव ।
'अपाङ् प्राङेति स्वधया गृभीतः'
ऋ. १.१६४.३८, अ. ९.१०.१६, ऐ.आ. २.१.८.११, नि. १४.२३.
(२) पूर्वदिशा ।

प्राङ् तिष्ठन् - इन्द्र ।
'इन्द्रः प्राङ् तिष्ठन्'
अ. ९.७.२०

प्राच्य विष- (१) प्राची दिशा के देशों के जन्तुओं और ओषधियों के विष (२) शरीर में फैलने वाला विष जो उसी स्थान पर सूजन कर दे प्राच्य है, (३) बहुत तीव्र विष ।
'अरसं प्राच्यं विषम्'
अ. ४.७.२.

प्राचाजिह्व- (१) दुग्ध देने के पहले जिसकी जिह्वा हो, - शिशु -(दया.) ।
(२) आगे जीभ निकालने वाला बालक, (३) प्राची दिशा में प्रीति प्रकट करने वाला सूर्य, (४) मुख्य उत्तम वाणी से युक्त ।
'प्राचाजिह्वं ध्वसयन्तं तृषुच्युतम्'
ऋ. १.१४०.३
आगे जीभ निकालने वाले, गिरते पड़ते शीघ्र ही फिसल जाने वाले बालक को ।
अथवा
प्राची दिशा में प्रीति प्रकट करने वाले, अन्धकार को नाश करते हुए, अति शीघ्रता से गति करने वाले सूर्य को, अथवा, मुख्य उत्तम वाणी से युक्त शत्रु को नाश करने वाले, शीघ्र ही शत्रु को सिंहासन से उखाड़ देने वाले सखा या संघ शक्ति को ।

प्राचामन्यु- (१) सर्वोत्कृष्ट ज्ञान से ज्ञान शाली - इन्द्र, परमेश्वर ।
'प्राचामन्यो अहंसन'
ऋ. ८.६१.९

प्राची - (१) प्रातः काल सूर्य जिस दिशा को प्रथम स्पर्श करता है ।
'प्राच्यै दिशे स्वाहा'
वाज.सं. २२.२४, तै.सं. ७.१.१५.१, मै.सं. ३.१२.७, १६२.१४, ३.१२.८, १६३.४, का.सं.(अश्व.) १.६.
(२) उत्तम प्रमयुक्त, ज्ञानवान् पूजनीय, (३) उत्तम प्रकाश से युक्त ।
'प्राची द्यावापृथिवी ब्रह्मणा कृधि'
ऋ. २.२.७, तै.सं. २.२.१२.६, मै.सं. ४.१२.२,१८०.९.
(४) प्र + अञ्च् + ङीप् = प्राची । अर्थ - प्रवृद्धा, (५) पूर्वकालीन, (६) महती ।
'धाता दधातु दाशुषे
प्राचीं जीवा तुमक्षिताम्'
अ. ७.१७.२.
धाता हवि देने वाले, या दानी या यज्ञशील पुरुष को अक्षुण्ण, प्रवृद्ध या पूर्वकाल के तुल्य जीविका दे ।
'प्राची जीवातु' से पूर्वकालीन जीविका का स्मरण होता है । प्राची का यह प्रयोग वस्तुतः ऐतिहासिक दृष्टि से विचारणीय है ।

प्राचीक कुभ- (१) प्राची अर्थात् पूर्व दिशा, (२) जगत् के उत्पन्न होने के पूर्व से उत्तम रूप से प्रकट होने वाले आर्जवी भाव अर्थात् विकृति भाव ककुप् ककुभिनी भवति, ककुप् कुब्जं कुजतः उब्जतेर्वा ।
कुजि स्मेय करणार्थः उब्जिरार्जवे भावे आर्जवीभावः प्रवृत्तिः प्रह्वता वा ।
'दाधर्थ प्राचीं ककुभं पृथिव्याः'
ऋ. ७.९९.२.

प्राचीनं ज्योतिः - (१) आहवनीय अग्नि, - (२) पूर्व दिशा की ज्योति सूर्य अर्थात् पूर्वदिशा । (३) प्राचीन पुरातन, सनातन से प्राप्त वेदमय ज्ञानमय ज्योति ।
'प्राचीनं ज्योतिः प्रदिशा दिशन्ता'
ऋ. १०.११०.७, अ. ५.१२.७, वाज.स. २९.३२, मै.सं. ४.१३.३, २०२.८, का.सं. १६.२०, तै.ब्रा. ३.६३.४, नि. ८.१२.
आहवनीय अग्नि को (प्राचीनं ज्योतिः) प्रदिश्यमान मन्त्र से (प्रदिशा) प्रदिशन करते हुए (दिशन्ता) सूर्य और अग्नि ।

वेदोक्त विधि के अनुसार (प्रदिशा) प्राचीन ज्योति हो अर्थात् पूर्व की ओर होकर (प्राचीनं ज्योतिः दिशन्ता)

प्राचीन पक्षः- सरल पक्षों से युक्त इषु - काम बाण ।
'प्राचीन पक्षा व्योषा'
अ. ३.२५.३

प्राचीन रश्मिः - (१) आगे बढ़ने वाली रश्मियों से युक्त अग्नि, (२) प्रकट रश्मियों से युक्त ।
'प्राचीन रश्मिमाहुतं घृतेन'
ऋ. १०.३६.६

प्राचीनं बर्हिः- (१) पूर्वदिशा में स्तीर्ण बिछाया हुआ, कुश-सा. (२) वस्तुओं को फैलाने वाला गृह की प्राची दिशा में यज्ञाग्नि ।
'प्राचीनं बर्हिः प्रदिशा पृथिव्याः'
ऋ. १०.११०.४, अ. ५.१२.४, वाज.सं. २९.२९, मै.सं. ४.१३.३, २०२.१, का.सं. १६.२०, तै.ब्रा. ३.६.३.२, नि. ८.९.
पूर्वदिशा में स्तीर्ण कुश (प्राचीनं बर्हिः) मन्त्र द्वारा या विधि पूर्वक काटा या बिछाया जाता है ।
अथवा वस्तुओं को फैलाने वाला ।
गृह की प्राची दिशा में यज्ञाग्नि स्थापित किया जाता है ।

प्राचीनोपवीत- दक्षिण स्कन्ध या यज्ञोपवीत धारण करने वाला ब्रह्मचारी ।
'तस्मात् प्राचीनोपवीतस्तिष्ठे'
अ. ९.१.२४.

प्राची प्रदिश्- (१) पूर्व दिशा, (२) सूर्य द्वारा प्रकाशित प्रदेश जिसमें रहने की वेदों में कामना की गई है।
'प्राचीं प्राचीं प्रदिशमारभेथाम्'
अ. १२.३.७

प्राचैः- उत्कृष्ट पद ।
'प्राचै र्देवासः प्रणयन्ति देवयुम्'
ऋ. १.८३.२, अ. २०.२५.२.

प्राजापत्य- प्रजापति विषयक ।
(१) अनुवाक, (२) प्रजापति या राजा केस्वरूपं वाला ।
'प्राजापत्याभ्यां स्वाहा'
अ. १९.२३.२६
(३) प्रजापति के विशेष गुणों को दिखलाने वाला ।
'अश्वस्तूपरो गोमृगस्ते प्राजापत्याः'
वाज.सं. २४.१, तै.सं. ५.५.२३.१, मै.सं. ३.१३.२, १६८.१०, का.सं. (अश्व.) ८.२.
(४) पुत्रोंत्पत्ति का कार्य ।
'कृणोमि ते प्राजापत्यम्'
अ. ३.२३.५.
(५) प्रजापति अर्थात् राजा द्वारा रक्षणीय ।
'अशूद्रा अब्राह्मणास्ते प्राजापत्याः'
वाज.सं. ३०.२२.

प्राजापत्य यज्ञ- जिस प्रकार प्रजापति सबको अन्न देकर प्राजापत्य यज्ञ करता है उसी प्रकार अतिथि सत्कार प्राजापत्य यज्ञ है ।
'प्रजापत्योवा एतस्य यज्ञः'
अ. ९.६.२८

प्राञ्च् (प्राक्) - पूर्व दिशा । प्र + अञ्च् + क्विप् = प्राञ्च ।
'राजा वृक्षं जंघनत् प्रागपागुदक्'
ऋ. ३.५३.११

प्राञ्चः तन्तवः - आसन्दी का लम्बा लपेट- नीवार आदि ।
'ऋचः प्राञ्चस्तन्तवः'
अ. १५.३.६.

प्राञ्जन- प्रलेय ।
'प्राञ्जनादुत पर्णधेः'
अ. ४.६.५

प्राणः- सर्वशरीरगामी वायु ।
'आयुर्नप्राणो नित्यो न सूनुः'
ऋ. १.६६.१.

प्राणत् - (१) जीता हुआ, सांस लेता हुआ ।
'यो विश्वस्य जगतः प्राणतस्पतिः'
ऋ. १.१०१.५
(३) प्राण क्रिया करता हुआ, प्राणश्वास त्यागता हुआ ।
'नमस्ते प्राण प्राणते'
अ. ११.४.८

प्राणतिः- प्राण लेने वाली चेतना शक्ति ।
'अप्राणेति प्राणेन प्राणतीनाम्'
अ. ८.९.९

प्राणथ- प्राणरूप ।

'यो देवानां चरसि प्राणथेन'
वाज.सं. ११.३९, मै.सं. २.७.४,७८.८, ३.१.५,७.२, का.सं. १६.४, श.ब्रा. ६.३.४.

प्राणदा- प्राण का देने वाला जठराग्नि ।
'प्राणदा अपानदा व्यानदाः'
वाज.सं. १७.१५, तै.सं. ४.६.१.४, मै.सं. २.१०.१, १३२.१३, श. ब्रा. ९.२.१.१७.

प्राणदवान् - प्राण देने वाले वायु, सूर्य, जल, आदि का स्वामी परमेश्वर ।
'यः प्राणदः प्राणदवान् बभूव'
अ. ४.३५.५.

प्राणन- प्राण लेना, सांस लेना, जीना ।
'विश्वस्य हि प्राणनं जीवनं त्वे'
ऋ. १.४८.१०
हे उषा, तुझ पर ही विश्व का प्राण लेना और जीना निर्भर है ।

प्राणपाः - प्राणों का पालक ।
'प्राणपा मे अपानपाः'
वाज.सं. २०.३४.

प्राणसंशित- प्राणों की शक्तियों में सुशिक्षित ।
'विष्णोः क्रमोऽसि सपत्नहा
प्राणसंशितः पुरुषतेजाः'
अ. १०.५.३५

प्राणायनः- प्राण से उत्पन्न प्राणों का आश्रय वसन्त ।
'वसन्तः प्राणायनः'
वाज.सं. १३.५४, तै.सं. ४.३.२.१. मै.सं. २.७.१९,. १०३.१५, का.सं. १६.१९.श.ब्रा. ८.१.१.५.

प्राणाह- ऊपर से बांधा हुआ ।
'प्राणाहस्य तृणस्य च'
अ. ९.३.४

प्रातः - (१) प्रभात बेला, (२) जीवन का प्रथम भाग ब्रह्मचर्याश्रम, ।
ततः सूर्योजायते प्रातरुध्यन् वैश्वानर अग्नि ही प्रातः काल उदित हो सूर्य हो जाता है ।
(३) प्र + अत + ऊरन् । प्रकृष्टम् अतति गच्छति इति प्रातः - (दया.) ।
(जो प्रकृष्ट रूप से व्यापक हो चलता है वह प्रातः है)
'ऊर्ध्वो अग्निः सुमनाः प्रातरस्थात्'
ऋ. ५.१.२, साम. २.१०९७, मै.सं. २.१३.७, १५५.१८

प्रातर्जित् - प्रातः अर्थात् अन्धकार को जीतने वाला भग नामक आदित्य ।
'प्रातर्जितं भगमुग्रं हुवेम'
ऋ. ७.४१.२, अ. ३.१६.२, वाज.सं. ३४.२५.
हम उष उग्र अन्धकार को जीतने वाले भगनामक आदित्य को बुलाते हैं ।
सूर्योदय से पूर्वकालीन आदित्य का नाम भग है जो प्रातः कालीन अन्धकार को दूर करता है ।

प्रातर्दनिः- शत्रुओं को अच्छी प्रकार छिन्न भिन्न करने वाल- सैन्य बल का स्वामी ।
'प्रातर्दनिः क्षत्रश्रीरस्तु श्रेष्ठः'
ऋ. ६.२६.८

प्रातर्पावा - प्रातः काल ही अपने कार्य पर दत्त चित्त होने वाला विद्वान् ।
'आसीदन्तु बर्हिषि मित्रो अर्यमा
प्रातर्यावाणो अध्वरम्'
ऋ. १.४४.१३, वाज.सं. ३३.१५, तै.ब्रा. २.७.१२.५.
मित्र अर्यमा तथा तथा प्रातः काल ही उपस्थित होने वाले विद्वान् आसन पर ही बिराजें ।
अथवा,
अवध्य एवं अहिंसनीय तथा तिरस्कार नहीं करने योग्य उच्च आदरणीय, उच्च पद को प्राप्त होकर सबका स्नेही (मित्र) न्यायाधीश (अर्यमा) और प्रातः काल ही अपने कार्य पर उपस्थित होने वाले (प्रातर्यावाणः) जन बड़े बड़े पदों पर और आसनों पर विराजे (बर्हिषि आसीदन्तु) ।

प्रातर्यावाणा -द्वि. व. (१) प्रातः शीघ्र ही सब कार्यों और उपदेशों को प्राप्त करने वाले स्त्री पुरुष (२) अश्विद्वय
'पातर्यावाणा रथ्येव वीरा'
ऋ. २.३९.२
(३) प्रातः काल आने वाले, (४) कार्य के प्रारम्भ में उपस्थित होने वाले ।
'प्रातयवाणा प्रथमा यजध्वम्'
ऋ. ५.७७.१, मै.सं. ४.१२.६, १९६.१, कौ.ब्रा. ८.६, तै.ब्रा. २.४.३.१३.

प्रातर्यावा विप्रः- (१) सबसे पूर्व उद्देश्य पर पहुँचने (२) वाला धनादि पूरक उत्तम मतिमान, ब्राह्मण ।

'विप्रेभिर्विप्र सन्त्य
प्रातर्यावभिरांगहि'
ऋ. ५.५१.३.

प्रातरित्वन् – प्रातरागायिन् । प्रातः + इ (गत्यर्थक) + क्वनिप् = प्रातरित्वन् (तुक् का आगम और इट् का अभाव) ।
प्रातः काल आने वाला ।
'यस्त्वायन्तं वसुना प्रातरित्वो
मुक्षीजयेव पदिमुत्सिनाति'
ऋ. १.१२५.२, नि. ५.१९.
क्योंकि रात में आते हुए तुझे राजा ने धनदान द्वारा अपने यहां इसी तरह से रोक लिया जैसे रस्सी में बांध पक्षी को रोक लिया जाता है । पुनः ।
(२) प्रातः काल का उठने वाला
'प्राता रत्नं प्रातरित्वा दधाति'
ऋ. १.१२५.१

प्रातर्युजा – (१) प्रातः काल में मिलने दिन रात्रि (२) सूर्य चन्द्र (३) सूर्य पृथिवी, (४) स्त्री पुरुष

प्रातःसवन– (१) प्रातः काल का सवन (२) वसु ब्रह्मचर्य का अवसर ।
'अग्निः प्रातः सवने प्रात्वस्मान्'
अ. ६.४७.१, तै.सं. ३.१.९.१, मै.सं. १.३.३६, ४२.८, ४.७.७, १०.२.४, का.सं. ३०.६,७, का.श्रौ.सू. ९.३.२१, आप. श्रौ.सू. १२.२९.१३.

प्रातःसाव– (१) प्रात् काल का सवन या यज्ञ, (२) जीवन का प्रथम काल ब्रह्मचर्याश्रम ।
'प्रातः सावे धियावसो'
ऋ. ३.२८.१

प्राता– (१) व्यापिका –दया. (२) पूर्ण पात्र होकर ।
'अपि प्राता निषीदति'
ऋ. ७.१६.८

प्रातिरत् – प्र + अतिरत् । (१) बढ़ाया – (२) छोड़ दिया ।
'अभि सिध्मो अजिगादस्य शत्रून्
वितिग्मेन वृषभेणा पुरोऽभेत् ।
सं वज्रेणा सृजद् वृत्रमिन्द्रः
प्र स्वां मतिमतिरच्छाशदानः'
ऋ. १.३३.१३, मै.सं. ४.१४.१३.२३७.१५, तै.ब्रा. २.८.४.४.,
इस इन्द्र का (अस्य) शत्रुओं का साधयिता या साधक वज्र (सिध्मः) शत्रुओं को लक्षित कर गया (शत्रून् अभि अजिगात्) इन्द्र ने भी उस तीक्ष्ण वर्षा प्रवर्तक अस्त्र से (तिग्मेन वृषभेण) वृत्रासुर या मेघों के नगरों को (पुरः) विविध प्रकार से छिन्न भिन्न किया (वि अभेत्) । तब इन्द्र ने अपने वज्र से वृत्रासुर या मेघ को मारा (वज्रेण वृत्रम् समसृजत्) । वृत्र ने भी बार बार भिध्यमान हो (शाशदानः) अपनी इस बुद्धि को कि 'जल नहीं दूँगा' छोड़ दिया ।
सायण के अनुसार – वज्र चला वृत्र को मारते हुए इन्द्र के हर्षित हो अपनी बुद्धि को और भी बढ़ाया (स्वां मतिं प्रातिरत्) ।

प्रान्ध– एकदम अन्धा ।

प्राय– ऊँची स्थिति ।
'ययोः प्रायं नान्वानशे कश्चन'
अ. ४.२५.२

प्रामम‌दुः– प्र + अममदुः । अत्यन्त प्रसन्न हुए ।
'प्र ये गृहादममदुस्त्वाया'
ऋ. ७.१८.२१.
जो गृहस्थाश्रम से अत्यन्त प्रसन्न हुए ।

प्रायणः – विशेष रूप से जाता हुआ
'प्रायणाय स्वाहा'
वाज.सं. २२.७, तै.सं. ७.१.१३.१, मै.सं. ३.१२.३, १६०.१७, का.सं. (आश्व.) १.४, तै.ब्रा. ३.८.१७.१, आप.श्रौ.सू. २०.६.२, ११.२.

प्रायश्चित्ति– प्रायश्चित की विधि ।
'प्रायश्चित्तिं यो अध्येति'
अ. १४.१.३०
(२) बिगड़े कार्य और पापाचरण को सुधारना
'प्रायश्चि त्ये स्वाहा'
वाज.सं. ३९.१२.

प्रायन् – चले जाते हैं ।
'पृथक् प्रायन् प्रथमा देवहूतयः'
ऋ. १०.४४.६, अ. २०.९४.६, नि. ५.२५.

प्रायणीय – (१) उत्कृष्ट पद की प्राप्ति, (२) प्रायणीय नामक यज्ञ
'प्रायणीयस्य तोक्मानि'
वाज.सं. १९.१३.

प्रायास– उत्तम कोटि का परिश्रम ।
'प्रायासाय स्वाहा'
वाज.सं. ३९.११.

प्रायु- (१) दूर देश में जाता हुआ (२) मृत्यु को प्राप्त होता हुआ ।
'ऊर्ध्वास्तस्थुर्ममुषीः प्रायवे पुनः'
ऋ. १.१४०.८
स्त्रियां दूर देश में जाते या मरते पति के लिये मरने को तत्पर हो जाती हैं ।

प्रायोगा - बड़ों से सत्कार्यों में प्रयुक्त स्त्री पुरुष या अश्विद्वय ।
'प्रायोगेव श्वात्र्या शासुरेथः'
ऋ. १०.१०६.२

प्रार्थ- प्रबल ।
'अभूदु प्रार्थस्तक्मा'
अ. ५.२२.९

प्रार्पणः- प्रकृष्ट दाता ।
'मनीषाणां प्रार्पणः सोमगोपाः'
१०.४५.५, वाज.सं. १२.२२, तै.सं. ४.२.२.३, मै.सं. २.७.९, ८६.११, का.सं. १६.९, आप.मं. पा. २.११.२७.

प्रावण- (१) उत्तम सैन्य दल, (२) प्रजाजन, (३) अधीनस्थ विनयशील सहायक मार्ग, (४) उत्तम योग्य पदार्थ ।
'प्रावणभिः सजोषसः'
ऋ. ३.२२.४, वाज.सं. १२.५०, तै.सं. ४.२.४.३, श.ब्रा. ७.१.१. २५, ३.२.८. य. १२.५०
(५) उत्कृष्ट सम्पत्तियों का लाभ कराने का साधन ।

प्रावन् - प्र + अवन् । उत्तम रीति से रक्षा किया या करते हैं । लट् के अर्थ में लङ् का प्रयोग है ।
'प्रावन् वाणीः पुरूहूतं धमन्तीः'
ऋ. ३.३०.१०, नि. ६.२.
जल नीचे की ओर जाते हुए नदियों या तालाबों में जा प्राणियों की रक्षा करते हैं ।

प्रावादिषुः- प्र + अवादिषुः = प्रावादिषु अर्थ है- जोरों से बोलते हैं । मेढ़की को बोली के सम्बन्ध में कथित । लट् के अर्थ में लुङ् का प्रयोग है ।
'वाचं पर्जन्यजिन्वतां
प्र मण्डूका अवादिषुः'
ऋ. ७.१०३.१, अ. ४.४५.१३, नि. ९.६.
मेघ को प्रसन्न करने वाली वाणी मेढ़क जोरों से बोलते हैं (प्रावादिषुः) ।

प्रावट् - वर्षाकाल ।
'तृष्यावतः प्रावृष्यागतायाम्'
ऋ. ७.१०३.३.

प्रावृत् - मढ़ना ।
'त्वचा प्रावृत्य सर्वं तत्'
अ. ११.८.१५.

प्रावृत- (१)सुशोभित । (२) घेरा हुआ ।
'यन्निर्णिजा रेक्णसाप्रावृतस्य'
ऋ. १.१६.२.२, वाज.सं. २५.२५, तै.सं. ४.६.८.१, मै.सं. ३.१६.१, १८१.९, का.सं. (अश्व.) ६.४.

प्रावृषीण- वर्षाकालीन ।
'यन्मण्डूकाः प्रावृषीणंवभूव'
ऋ. ७.१०३.७.

प्रावेपः- (१) खूब कांपने और कंपाने वाला भावोत्पादक ।
(२) मनुष्य को इधर उधर नचाने वाला -पाप ।
(३) जुए का पाश ।
'प्रावेपा मा बृहतो मादयन्ति'
ऋ. १०.३४.१, नि. ९.८.

प्रावेपाः- ब.व.। वि.। प्रवेपिन,प्रकर्षेण । प्रकृष्टो वेपः प्रवेयः स अस्य अस्ति इति प्रवेप + इन + प्रवेपिन ।
यहां प्रवेप + अण् = प्रावपे (प्रवपे से उत्पन्न पदार्थ । प्रवेप अर्थात् प्रकर्ष से कांपने वाले वृक्ष से उत्पन्न ' प्रवेपिन्' ही 'प्रावेप' है ।

प्राश् - प्रश्नकर्त्ता ।
'प्राशिमामुत्तरं कृधि'
अ. २.२७.७.

प्राश- प्र + आश । उत्तम रीति से व्यापक आत्मा, (२) प्रबल रूप से हृदय मे व्यापने वाले शोक, मोह, क्रोध ।
'प्राशं प्रति प्राशो जहि'
अ. २.२७.१.

प्राशव्य - (१) उत्तम भोजन करने योग्य पदार्थ ।
'प्रति प्राशव्याँ इतः'
ऋ. ८.३१.६

प्राश्वम् - प्र + अश्नवम् । अर्थ है । व्याप्त हो ।
'प्र ते सुम्ना नो अश्नवम्'
ऋ. ८.९०.६, साम. २.७६२.
हे इन्द्र, हमें तेरे सुख व्याप्त हों ।

प्राशिता- भोग करने वाला ।
'आर्षेयास्ते मा रिषन् प्राशितारः'
अ. ११.१.२५,३२.

प्राशु- (१) हवन, शीघ्र (२) उत्तम मार्ग से जाने वाला ।
'प्राशुःहवने शीघ्रः झटिति
समुद् यच्छमानो भवति
न नूनं ब्रह्मणामृणम्
प्राशूनामस्ति सुन्वताम्'
ऋ. ८.३२.१६.

प्राशुषाड् - शीघ्रगामी शत्रुओं को पराजित करने वाला ।
'सुप्राव्यः प्राशुषाडेषवीरः'
ऋ. ४.२५.६

प्राश्रृंग- हिंसा-साधन अस्त्रों के लिए हुआ ।
'प्राश्रृंगा माहेन्द्राः'
वाज.सं. २४.१७.

प्रासह् - (१) उत्तम रीति से शत्रुओं का पराजय करने वाला, (२) अति सहनशील ।
'सखायं विश्वायुं प्रासहं युजम्'
ऋ. १.१२९.४
समस्त उत्तम गुणों को प्राप्त करने वाले या दीर्घायु (विश्वायुम्) उत्तम रीति से शत्रुओं को पराजित करने वाले ।
(प्रासहम्) सब के सहायक (युजम्)

प्रासहारयि- सर्वोत्कृष्ट ऐश्वर्य ।
'द्युम्नस्य प्रासहारयिम्'
ऋ. ५.२३.१, तै.सं. १.३.१४.६.

प्रासावीत् - प्रसुवति, अभ्यनुजानानि, वर्तमान अर्थ में लुङ् का प्रयोग । अर्थ है । (१) सृष्टि करता है ।
'प्रासावीद् भद्रं द्विपदे चतुष्पदे'
ऋ. ५.८१.२, वाज.सं. १२.३, तै.सं. ४.१.१०.४, मै.सं. २.७.८, ८४.१४, ३.२.१,१५.१, का.सं. १६.८, श.ब्रा. ६.७.२.४. नि. १२.१३.
वह सविता द्विपद तथा चतुष्पद दोनों के लिए कल्याण की सृष्टि करता है (भद्रं प्रासावीत्)

प्रासृजत् - प्रकर्ष के साथ सृष्टि की ।
'प्र सीमादित्यो असृजत् विधर्ता'
ऋ. २.२८.४,
विविध प्रकार से रसों, रश्मियों या रश्मिजालों में स्थित सम्पूर्ण जगत् का धारण करने वाला (विधर्ता) आदित्य ने प्रकर्ष के साथ रश्मियों की सर्वत्र सृष्टि की (सीम प्रासृजत्) ।
वरुण ने नदियों के उपादान भूत उदक की या सत्य की सर्वतः सृष्टि की ।

प्राह्लादि- (१) प्रह्लाद से उत्पन्न विरोचन (२) प्रभूत शब्द करने वाली विशेष दीप्तियुक्त विद्युत् ।
'तस्या विरोचनः प्राह्लादिर्वत्सः'
अ. ८.१०.४.२.

प्राहित- योग्य कार्य में नियुक्त ।
'मरुद्भिरुग्नः प्राहितो न आगन्'
अ. २.२९.४

प्लायोगिः- (१) प्रायोगिः (प्रयोग कुशल) (२) उत्तम उद्यम से (प्रयस्) ज्ञान पूर्वक जाने वाला ।
'अधप्लायोगिरतिदासदन्यान्'
ऋ. ८.१.३३

प्लाशिन् - पेट में स्थित भोजन पाचक तिल्ली आदि यन्त्र ।
'प्लाशिभ्यो विवृहामि ते'
ऋ. १०.१६३.३, अ. २०.९६.१९, आप.मं.पा. १.१७.३.

प्लाशि- (१) छोटी आंत ।
'क्षुत् कुक्षिरिश वनिष्ठुः पर्वताः प्लाशयः'
अ. ९.७.१२.
(२) शिश्न जो मूत्रादि बहाता है, (३) प्राशिः उत्तम पदों और ऐश्वर्यों को प्राप्त कर भोगने वाला वैश्य, (४) समस्त पदार्थों का संग्रहीता
'प्लाशिर्व्यक्तः शतधारउत्सः'
वाज.सं. १९.८७, का.सं. ३८.३,

प्लाशी- (१) शरीर में स्थित पेट के भीतरी अन्न रस प्राप्त करने वाली नाड़ी ।
'गिरीन् प्लाशिभिः'
वाज.सं. २५.८, तै.सं. ५.७.१६.१, का.सं. (अश्व.) १३.६.

प्सा- खाना, ।
'वृक्षान् प्सातो वनस्पतीन्'
अ. १०.३.१४

पायन - पानम् (जल का पीना) ।
'क्षरन्नापो न पायना राये
सहस्राय तृष्यते गोतमस्य'

ऋ. १.११६.९
प्यासे प्राणी वर्ग और ओषधि वर्ग को पिलाने के लिए और पृथिवी के स्वामी के अनेक ऐश्वर्य धन धान्य उत्पन्न करने के लिए जल धाराएं फूट निकलती हैं ।

पायव - ब.व. । ए.व. ये रूप है । पायु । अर्थ है- पवित्र करने वाले ।
'पात्वग्निः शिवा ये अस्य पायवः'
अ. ६.३.२.

पायु- (१) रक्षक (२) सुरक्षित, (३) पालन कर्त्ता ।
'पूषा नो यथा वेदसामसद् वृधे
रक्षिता पायुरदब्धः स्वस्तये'
ऋ. १.८९.५
रक्षक, रक्षित एवं कभी विनष्ट न होने वाला सबका पोषक पूषा हमारे ऐश्वर्यों की वृद्धि तथा कल्याण के लिए ही ।
(४) पा + उण् = पायु । पालकारी साधन ।
'त्वं नो अग्ने तव देव पायुभिः
मघोनो रक्ष तन्वश्च वन्द्य'
ऋ. १. ३१.१२.
हे ज्ञानवान् परमेश्वर, अग्नि, तू ऐश्वर्य युक्त हम लोगों को हमारे सन्तानों के शरीरों की अपने पालन कारी साधनों से रक्षा कर (५) गुदा भाग ।
'पायुं ते शुन्धामि'
वाज.सं. ६.१४, श.ब्रा., ३.८.२.६.

पारः - संकटों से पार करने वाला, तारक ।
'अरमयः सुदुघाः पार इन्द्र'
ऋ. ५.३१.८.

पारयन्ती- पारि + शतृ + ङीष् = पारयन्ती । अर्थ- (१) पार लगाती हुई, (२) विजय दिलाती हुई । 'ज्या' के विशेषण के रूप में इसका प्रयोग हुआ है ।
'ज्या इयं समने पारयन्ती'
ऋ. ६.७५.३, वाज.सं. २९.४०, तै.सं. ४.६.६.२, मै.सं. ३.१६.३, १८५.१५, का.सं. (अश्व.) ६.१, नि. ९.१८.
यह ज्या धनुर्धारी को युद्ध मे जिताने वाली है ।

पारयिष्णु- (रोगों से) पार लगाने वाली ओषधि

पारस्वत- पूर्णपुरुष का ।
'यावदङ्गीनं पारस्वतम्'
अ. ६.७२.३

पार्जन्यः- (१) मेघ के समान सुखों का प्रदाता । (२) मेघों में विचरण करने में समर्थ ।
'सुपर्णः पार्जन्यः'
वाज.सं. २४.३४, तै.सं. ५.५.२१.१.मै.सं. ३.१४.१५,१७५.९, का.सं. (अश्व.) ७.११.

पार्थव- बड़े भारी राष्ट्र का स्वामी ।
'दूणाशेयं दक्षिणा पार्थवानाम्'
ऋ. ६.२७.८

पार्थ्यः- विस्तृत शक्ति का स्वामी ।
'सद्यो दिदिष्ट पार्थ्यः'
ऋ. १०.९३.१५

पार्थिवी- पृथ्वी की ।
'दिव्या पार्थिवीरिषः'
ऋ. ८.२५.६.

पार्य - (१) पालन करने वाला, (२) पार उतारने वाला ।
'यंते काव्य उशनामन्दिनं दात्
वृत्रहणं पार्यं ततक्ष वज्रम्'
ऋ. १.१२१.१२.
सब के हर्ष दायक शत्रु-नाशक संग्राम में पालन करने वाले और उससे पार उतारने वाले (पार्यम्) शत्रु के वर्जन या धारण करने में समर्थ जिस शास्त्रास्त्र या सैन्य बल को (वज्रम्) मेधावी पुरुषों द्वारा शिक्षित पुत्र या शिष्य (काव्य उशना) सर्व वशीकार में समर्थ, वशी पुरुष तुझ को (ते) प्रदान करता है तू उसे सदा तीक्ष्ण कर । (३) संकट आदि से पार करने का कार्य ।
'दिविच स्मैधि पार्ये न इन्द्र'
ऋ. ६.१७.१४.
(४) नदी के दूसरे तट पर लगा कास, (५) पालन करने योग्य (६) दूरवासी जन ।
'पार्याणि पक्ष्माणि अवार्या इक्षवः'
वाज.सं. २५.१, मै.सं. ३.१५.१, १७८.१.
(७) पार करना, अतिक्रमण करना, पराजय करना ।
'कविर्यदहन् पार्याय भूषात्'
ऋ. ४.१६.११.
क्रान्तदर्शी हे इन्द्र या राजन्, जिस दिन (यत् अहन्) तू आपत्ति को निवारने या शत्रुओं को

पार करने उनसे रक्षा करने की इच्छा करता है । (पार्याय) उसी दिन उन शत्रुओं का अतिक्रमण करता है (भूषात्) (८) पार लगाने वाला ।

'स्तवै पुरा पार्यादिन्द्रमह्नः'

ऋ. ३.३२.१४., तै.सं. १.६.१२.३, मै.सं. ४.१२.३, १८२.११, का. सं. ८.१६,३८.७.

(९) परा विद्या का विज्ञ ।

'नमः पार्याय'

वाज.सं. १६.४२, तै.सं. ४.५.८.२., मै.सं. २.९.८, १२६.९, का.सं. १७.१५.

(१०) पालन करने योग्य ।

'यत् पार्या युनजते धियस्ताः'

ऋ. ७.२७.१, साम. १.३१८, तै.सं. १.६.१२.१.मै.सं. ४.१२.३, १८४.१७, कौ.ब्रा. २६.१५.

पार्यःक्रतुः - परम स्थान प्राप्त करने वाला कार्य यज्ञादि ।

'तं हिन्वन्ति क्रतवे पार्याय'

ऋ. १०.२७.१६

पार्यधन- (१) मोक्ष रूप, उत्कृष्ट धन, (२) शत्रुओं का धन । पाराः शत्रवः तत्रभवं जनम् ।

'अवा नः पार्यधने'

ऋ. ८.९२.९, साम. २.९९४.

पार्वतेयी- पर्वत या मेघ की कन्या विद्युत् या वृष्टि ।

'पार्वतेयी प्रति त्वा पर्वती वेत्तु'

वाज.सं. १.१९.

पार्श्व- स्पृश् + शुन् + पर्शु । स्पृश् + श्वण् = पार्श्व । 'स्पृशेः श्वण् शुनौ पृच' । अथवा - पर्शु + णल् = पार्श्व । अर्थ है (१) पर्शूना समूहः (पसलियों का समूह) (२) पर्शुमयम् अङ्गम् (छाती के दोनों ओर के भाग जिससे पसली की हड्डियाँ आच्छादित रहती हैं) ।

'होता यक्षदश्विनौ छागस्य
हविष आत्ता पार्श्वथः श्रोणितः शिवामतः।
उत्सादतोऽङ्गादङ्गादवत्तानां करत एवा श्विना
जुषेता ँ हवि होतर्यज'

वाज.सं. २१.४३

पशुहवि मंत्र का शेष भाग है । मैत्रा वरुण कहते हैं- अग्नि (होता) अश्विनीद्वय या कर्म की पूजा करे (अश्विनौ यक्षत्) वे दोनों छाग की हवि खायें (छागस्यहविः आत्ताम्) और छाती के अगल बगल पंजरी से (पार्श्वात्), कटि प्रदेश से (श्रोणितः) बाहु प्रदेश से (उत् सादतः) इस प्रकार अंग अंग से (अङ्गादङ्गात्) अवदान धर्म से रखे इन अंगों को (अवत्तीनाम्) ही (एव) वे अश्विद्वय हवि को सेवन करें (हविः जुषेताम्) इस हवि को पा, वे सुख देते हैं (करतः) अतः हे होता, तू भी उसकी पूजाकर (यज) ।

पार्षद्वाणः - पार्षद् + वाण । वाणी या वेद वाणी का सेवन करने वाला विद्वान् ।

'पार्षद्वाणः प्रस्कण्वं समस्मदयत्'

ऋ. ८.५१.२.

पारावत - कबूतर ।

'अह्नो पारावतानालभते'

वाज.सं. २४.२५, मै.सं. ३.१४.६, १७३.९.

पारावतघ्नी- ऊर्मिभिः पारञ्च अपारञ्च उभेऽपि हन्ति (लहरों से पार और अपार दोनों को काटती है) । अर्थ है- (१) नदीं, पार अपार को तोड़ने वाली (२) सरस्वती नदी के विशेषण के रूप में प्रयुक्त ।

'पारावतघ्नीमवसे सुवृक्तिभिः
सरस्वतीमाविवासेम धीतिभिः'

ऋ. ६.६१.२, मै.सं. ४.१४.७, २२६.१०. का.सं. ४.१६, नि. २.२४.

पार अपार को तोड़ने वाली सरस्वती नदी को सुप्रवृत्त कर्मों या स्तोत्रों से परिचारित करें ।

(३) सायण ने इसका अर्थ-दूर देश में रहने वाले वृक्षादिकों को भी नष्ट करने वाली (परावति दूरदेशे विस्यमानद्यपि वृक्षा देः हन्त्री) - किया है ।

अमर कोष में -

'पारावादे परार्वाची तीरं' ....ऐसा कहा है ।

पारावार + हन् + टक् + ङीष् = पारावतघ्नी (उपधा का लोप, ह का घ) ।

पारावत = पारावार । पर = पार । अवर = अन्तर ।

(४) परब्रह्मस्वरूप 'अवत' अर्थात् प्राप्तव्य पद तक पहुँचाने वाली- वहाँ तक का ज्ञान देने वाली-सरस्वती ।

प्रार्चा - स्तुति करो ।
पार्थिव- पृथ्वी से प्राप्त होने वाला अन्न, सुवर्ण आदि धन ।
'यः पार्थिवस्य क्षम्यस्य राजा'
ऋ. २.१४.११.
पार्थिवंरजः- पृथ्वी लोक ।
'आरात्रि पार्थिवं रजः
पितुर प्रायि धामभिः'
अ. १९.४७.१, वाज.सं. ३४.३२, नि. ९.२९.
हे रात्रि,तू अन्तरिक्ष के साथ साथ पृथ्वी लोक को अन्धकार से व्याप्त कर देती है ।
पार्थिवं वसु - (१)अन्तरिक्ष का धन, पृथिवी शब्द में अन्तरिक्ष का भी वाचक है ।
'अध्वर्यवोयोदिव्यस्य वस्वो
यः पार्थिवस्य क्षम्यस्य राजा'
ऋ. २.१४.११.
हे अध्वर्ययो, जो इन्द्र द्युलोक, अन्तरिक्ष तथा पृथिवी के धन का राजा है ।
पार्ष्णि -ऐंडी ।
'पाष्ण्यौः प्रपदोश्च यत्'
अ. ६.२४.२.
'पार्ष्णिभ्यां प्रपदाभ्याम्'
ऋ. १०.१६३.४, अ. २.३३.५, २०.९६.२०.
(२) पार्ष्णि ग्राह या पीछे से आक्रमण करने वाली शत्रु सेना ।
'पार्ष्णया वा कशया वा तुतोद
ऋ. १.१६२.१७, वाज.सं. २५.४०.तै.सं. ४.६.९.२. का.सं. (अश्व.) ६.५.
'पदा प्रविध्य पार्ष्ण्या'
अ. ८.६.१७
पार्ष्णी- (१)घोड़े को एंडी देने की क्रिया, (२) पीठ से पीछे से आक्रमण करने वाली सेना ।
'पार्ष्ण्या वा कशया व तुतोद'
पारुष्ण- पारुष्ण नामक पक्षी ।
'अग्नये गृहपतये पारुष्णान्'
वाज.सं. २४.२४,मै.सं. ३.१४.५, १७३.८.
पार्ष्टेय - पृष्ट देश के मोहरों में पसिलयां में उत्पन्न होने वाले नासुर या राजयक्ष्मा आदि का क्रिमि ।
'अथो पार्ष्टेयं क्रिमीन्'
अ. २.३१.४.

पालित्य - केशों का पकना ।
'जरा खालत्यं पालित्यम्'
अ. ११.८.१९
पाव - पूञ् + घञ् = पाव । अर्थ है - पवित्र कारक व्यवहार ।
'पावकाः न सरस्वती'
ऋ. १.३.१०, साम. १.१८९, वाज.सं. २०.७८, मै.सं. ४.१०.१, १४२.७, ४.१-३. १५०.४.११.२. १६६.२, का.सं. ४.१६.
पावक - पु + ण्वुल = पावक । (१) पवित्र करने वाला, (२) सूर्य (३) अग्नि ।
'येना पावक चक्षसा भुरण्यन्तं जनां अनु
त्वं वरुण पश्यसि
विद्यामेषि रजस्पृथ्वहा
मिमानो अक्तुभिः
पश्यन् जन्मानि सूर्य'
ऋ. १.५०.६,७.
यहां सूर्य के लिए पावक और वरुण दोनों संज्ञाओं का प्रयोग हुआ है । (४) अग्नि की ज्वाला, जो वृष्टि आदि के द्वारा जगत् को पवित्र करती है ।
'सोमं पिब मन्दसानो गणश्रिभिः
पावकेभि र्विश्वमिन्वेभिरायुभिः'
ऋ. ५.६०.८
हे सर्वजनोपकार के वैश्वानर अग्नि, हे आनन्दित करने वाला (मन्दसानो) तू समूह रूप में आश्रित (गणश्रिभिः) पावक वृष्टि देने वाली (पावकैः) जगत् मात्र को तृप्त करने वाली (विश्वम् इन्वेभिः) आयुष्प्रद (आयुभिः) ज्वालाओं से सोमरस का पान कर (सोमं पिब)
पावकवर्चाः- (१) पवित्र करने वाले बल वाला अग्नि स ।
'पावक वर्चाः शक्रवर्चाः'
ऋ. १०.१४०.२, साम. २.११६७, वाज.सं. १२.१०७, तै.सं. ४.२.७.३. मै.सं. २.७.१४, ९५.१४, का.सं. १६.१४, श.ब्रा. ७.३.१.३० .
(२) पवित्र करने वाले तेज से युक्त - अग्नि
पावकवर्णः- (१)अग्निवत् तेजस्वी ।
'पावकवर्णाः शुचयो विपश्चितः'
ऋ. ८.३.३., अ. २०.१०४.१, साम. १.२५०, २.९५७, वाज.सं. ३३.८१ .

(२) अग्निवत् तेजस्वी तथ पवित्र करने वाला शरीर ।

पावकशोचिस् – पावक दीप्तिः (जिस का शोचिस् पवि्त्र करने वाला है) ।

'शीरं पावकशोचिषं
ज्यष्ठो यो दमेष्वा
दीदाय दीर्घश्रुत्तमः'

ऋ. ८.१०२.११.

देवों में मुख्य (ज्येष्ठः) विद्वत्तम (दीर्घश्रुत्तमः) जो अग्नि (यः) यजमानों के गृहों में आदीप्त किया जाता है (दमेषु आदीदाय) उस सभी प्राणियों में प्रविष्ट हो सोने वाले या व्याप्त (शीरम्)तथा करने वाले एवं दीप्ति धारण करने (पावक शोचिसम्) अग्नि की स्तुति करता हूँ। अग्नि का अर्थ परमेश्वर भी किया गया है ।

(२) पवित्र करने वाले अग्नि के तेज के समान तेज धारण करने वाला ।

'पावकशोचे तव हि क्षयं परि'

ऋ. ३.२.६, ऐ.ब्रा. १.२२.९, आश्व. श्रौ.सू. ४.७.४.

(३) पाप निवारक सर्वशोधक ज्ञान शोधक ज्ञान ज्योंति का स्वामी ।

'अर्चा पावक शोचिषे'

ऋ. ५.२२.१

पावका – (१) शुद्ध करने वाली । (२) जल से प्रक्षालित करने वाली –दुर्ग ।

(३) पवित्र व्यवहार बतलाने वाली– दया. ।

'पावका नःसरस्वती'

ऋ. १.३.१०, साम. १.१८९, वाज.सं. २०.८४.

शुद्ध करने वाली, या पवित्र व्यवहार बतलाने वाली जल से प्रक्षालित करने वाली, या पवित्र व्यवहार बतलाने वाली सरस्वती या वेदवाणी ।

पावकाजुहू– (१) अति पवित्र करने वाली, (२) आहुति या गर्भाधान करने योग्य या प्रेमोपहार देने के पात्र रूप पत्नी, (३) पवित्र कारक , शरीर शोधक अन्न ग्रहण करने वाली शक्ति ।

'पावकया जुह्वा वह्निरासा
अग्ने यजस्व तन्वं तव स्वाम्'

ऋ. ६.११.२.

पावमानम् – सामवेद का पाव मान काण्ड ।

'ऐन्द्राग्नं पावमानम्'

अ. ११.७.६.

पावमानी – (१) पवित्र करने वाली वेदमाता ।

'प्र चोदयन्तां पावमानी द्विजानाम्'

अ. १९.७१.१.

(२) पावमान सोम की ऋचा (३) अन्त करण को पवित्र करने वाली ज्ञान ऋचा ।

'यः पावमानीरध्ये त्यृषीभिःसंभृतंरसम्'

ऋ. ९.६७.३१, साम. २.६४८.

(४) पवमान सोमसम्बन्धी ऋचा ।

'पावमानीर्योऽध्येति'

ऋ. ९.६७.३२, साम. २.६४९, तै.ब्रा. १.४.८.४.

पावीरवी– पवि + र = पवीर । एक आयुध, इन्द्र का वज्र । पवीर + वतुप् = पवीर वत् । इन्द्र । पवीरवतः इन्द्रस्य वाणी पावीर वी । (१) इन्द्र की वाणी पावीरवी है ।

(२) अन्तरिक्ष में होने वाली ध्वनि, जिसे माध्यमिका ऐन्द्री वाणी कहते हैं ।

'पावीरवी तन्यतुरेकपादजः'

ऋ. १०.६५.१३, नि. १२.३०.

माध्यमिका ऐन्द्री वाणी (पावीरवी) अन्यों की वाणी का विस्तार करने वाली है (तन्यतुः) लिखा भी है ।

'तां विश्व रूपाः पशवो वदन्ति'

ऋ. ८.१००.११, मै.ब्रा. २.४.६, १०. पा.गृ.सू. १.१९.२, नि. ११.२९.

(यह वाणी विज्ञान माननीय है)

मेघ का गर्जन या विद्युत् की कड़क ही पावीरवी है ।

(३) आचार आदि को पवित्र करने वाली कन्या ।

'पावीरवी कन्या चित्रायुः'

ऋ. ६.४९.७, तै.सं. ४.१.११.२, मै.सं. ४.१४.३, २१९.३, का.सं. १७.१८.

पाशः– (पु.) पश् (बन्धनार्थक) + घञ् = पाश । (जिससे बान्धा जाय (तेन पश्यते) अर्थ है– रज्जु, रस्सी ।

'उदुत्तमं वरुण पाशमस्तम्
अवाधमं विमध्ययं श्रथाय'

ऋ. १.२४.१५, अ.७.८३.३, १८.४.६९, वाज.सं.

१२.१२.
हे आदित्य (वरुण) तू मेरे ऊपर वाले, निचले तथा बिचले बन्धन को ढीला कर या खोल (अवश्रथय)।
आधुनिक अर्थ - रस्सी, बन्धन जाल, वरुण का अस्त्र, द्युत क्रीड़ा में फेंके जाने वाला पाश, किसी बीने गए पदार्थ की कोर।

पाशद्युम्न- (१) जिसने धन यश पाया हो- दया. (२) धन के पाश में फंसा वैश्यवर्ग।
'पाशद्युम्नस्य वायतस्य सोमात्'
ऋ. ७.३३.२

पाशयति- 'पश्' धातु के प्र.पु.ए.व. का रूप। अर्थ पाश में बांधता है। पाश + यत् + टाप् = पाश्या। अर्थ- (१) पाशसमूह, निधा (निधा पाश्याभवति) (२) बालमय या स्नायुमय पाश समूह जिसे पक्षी आदि फंसाने के लिए पृथ्वी पर बिछाया जाता है (यो हि बालमयः स्नायुमयो या पाश समूह पक्ष्यादि गहणार्थः प्रकृप्तः स पाश्या इत्यु च्यते)।
आधुनिक अर्थ - (१) जल, (२) रज्जुओं का समूह।

पाठय- पिष्लृ (पोसना) + ण्यत् = पाष्य। अर्थ है- पोषण योग्य।
'वि वृत्रस्य समया पाष्यारुजः'
ऋ. १.५६.६

पास- रक्षा करना।
'आयु र्विश्वायुः परिपासतित्वा'
ऋ. १०.१७.४, अ. १८.२.५५, तै.आ. ६.१.२.

पांसव्य- मिट्टी ढोने वाला।
'नमः पांसव्याय च रजस्याय च'
वाज.सं. १६.४५, तै.स. ४.५.९.१, मै.सं. २.९.८, १२६.१३. का.सं. १७.१५.

पास्त्य- गृहों में बसी प्रजा का हितकारक ऐश्वर्य।
'आ दुरोषाः पास्त्यस्य होता'
ऋ. ४.२१.६

पांसु- (१) पादैः सूयन्ते (पैरों से उत्पन्न की जाती है। (२) गिरकर सो जाने वाली (पन्नाः शेरते,) (३) पिंशनीयाः भवन्ति (चूर्ण करने लायक होती है)। पाद + सू + क्विप् = पांसु। पन्न + रीङ् + उ = पांसु, (४) पसि (नाशन अर्थ में) + उ = पांसु। दूर करने योग्य मिट्टी। (५) धूलि।
'शिला भूमिरश्मा पांसुः'
ऋ. १२.१.२६.

पांसुर- (१) परमाणुओं से पूर्ण आकाश।
'समूढमस्य पांसुरे'
ऋ. १.२२.१७, अ. ७.२६.४, वाज.सं. ५.१५, तै.सं. १.२.१३.१, मै.सं. १.२.९,१८.१८, ४.१.१२, १६.५, का.सं. २.१०,श.ब्रा. ३.५.३.१३, नि. १२.१९.
इस जगत् के भली प्रकार तर्क से जानने योग्य सूक्ष्म रूप को भी वह कारण परमाणुओं से पूर्ण आकाश में स्थापित करता है। (२) धूलिमय (३) पाद + सू + क्विप् = पांसुः। अथवा, पन्न + शीङ् + उ = पन्नशु = पांसु। पसि + उ = पांसु (दूर करने योग्य मिट्टी)।
पादैः सूयन्ते (पैरों से धूलि उत्पन्न होती है)। पांसु + र = पांसुर। अर्थ है - धूलियुक्त। वेद में अन्तरिक्ष का विशेषण है।
सर्वभूतवृद्धिहेतु अन्तरिक्षः (४) प्यायी + उरक् = प्यायुर = पांसुर। पांसुल मिट्टी वाला स्थान है।
(५) मलीन अन्तरिक्ष।
इस आदित्य के तीन डेगों में एक पद (अस्य) मलीन अन्तरिक्ष में (पांसुरे) अन्तर्हित है (समूढम्)।

पांसुल- (१) प्रशान्तरेणुओं वाला अन्तरिक्ष- दया. (२) धूलियुक्त (३) लोकों को धारण करने वाला बल।
(४) भूम्यादि लोकमय पांसु से युक्त ब्रह्माण्ड-महीधर।

पाहि - पीजिए।
'वायवायाहि दर्शत
इमे सोमा अरङ् कृताः
तेषां पाहि श्रुधी हुवम्'
ऋ. १.२.१, नि. १०.२.
दर्शनीय वायुओ, ये सोम सुसंस्कृत हैं। हमारा आह्वान् सुनें तथा उन सोमरसों में अपना अंश पियें।

पिक - कोयल।
'कामाय पिकः'
वाज.सं. २४.३९, मै.सं. ३.१४.२०,१७७.२.

पिङ्ग- 'पिजि'।

पिजिवरणे अदादि, पिजि + अच् = पिङ्ग (कुत्व) ।
अर्थ – (१) वरण करने योग्य, सम्पन्न भूमि, मकान आदि से सुप्रतिष्ठित (२) उत्तम वाग्मी पुरुष ।
'बजः पिङ्गो अनीनशत्'
अ. ८.६.६

पिङ्गलिका– (१) गौरवर्ण की सुन्दर रूपवती ।
'कुमारिका पिंगलिका'
अ. २०.१३६.१४

पिंगा– (१) मधुरध्वनि करने वाली वाणी ।
'पिंगा परि चनिष्कदत्'
ऋ. ८.६९.९, अ. २०.९२.६.
(२) उत्तम मनोहर शब्द बोलने में चतुर कविमण्डली या (३) वादित्र मण्डली (४) पीतवर्ण वा झनझनाती डोरी ।

पिजवन – (१) जु (गत्यर्थक) + ल्युट् = जवन, अपि + जवन, = पिजवन (आचार्यभागुरी के मत से 'अपि' के 'अ' का लोप ।) पिजवन वह है जिसकी गति स्पर्धनीय हो ।
(२) जिसकी गति की शीघ्रता से अन्य गति वालों की गति नहीं मिल सके । (अमिश्रीभाव गतिःवा) । 'अपि' का अर्थ 'अमिश्रीभाव' और 'जु' धातु गमनार्थक है। अपि + जु + ल्युट् = अपिजवन = पिजवन (अभिश्रीभूत गमन) ।
(३) एक राजा का नाम जिस के पुत्र सुदास हुए ।

पिठी – (१) हिंसाकारिणी शक्ति, (२) दुष्ट पुरुषों को कष्ट देने वाली ।

पिठीनस् – हिंसा कारिणी शक्ति को नाक के समान धारण करने वाला शक्ति शाली नायक पुरुष ।
'त्वं रजिं पिठीनसे दशस्यन्'
ऋ. ६.२६.६.

पिण्ड – शरीर रूप पिण्ड ।
'ता ता पिण्डानां प्रजुहोम्यग्नौ'
ऋ. १.१६२.१९, वाज.सं. २५.४२, तै.सं. ४.६.९.३, का.सं. (अश्व.) ६.५.

पितरः– (१) जलों को पान करने वाले सूर्य के किरण, (२) पालक जन, (३) मृत पितर ।
'अधा यथा नः पितरः परासः'
ऋ. ४.२.१६, अ. १८.३.२१, वाज.सं. १९.६९, तै.सं. २.६.१२.४, ऐ.ब्रा. ७.६.४
(४) पालक मा बाप, गुरु, आचार्य, (५) पितृतुल्य जन, (६) रात्रि ।
'रात्रिः पितरः'
श.ब्रा. २.१.३.१.
(७) ओषधि लोक ।
'अथो ओषधिलोको वै पितरः'
श.ब्रा. १३.८.१.२०.
(८) प्रजाएं ।
'यमो वैवस्वतो राजा इत्याह
तस्यपितरो विशः'
श.ब्रा. १३.४.३.६, आश्व.श्रौ.सू. १०.७.२, शां.श्रौ.सू. १६. २.४–६.
'क्षत्रं वै यमः विशः पितरः'
श.ब्रा. ७.१.१.४
(९) पालक प्राण गण, (१०) अवान्तर दिशाएं ।
'अवान्तर दिशो वै पितरः'
श.ब्रा. १.८.१.४०
'होता जनिष्ट चेतनः
पिता पितृभ्य ऊतये'
ऋ. २.५.१
(११) पितृ शब्द का बहुवचन (१२) स्थविर वृद्ध जन, (१३) मर्त्य, (१४) घर के स्वामी । त इम आसत इति एव ।
'स्थविरा उपसमेता भवन्ति,
तानुपदिशति यजूंषि वेदः'
श.ब्रा. १३.४.३.६.
'मर्त्याः पितरः'
श.ब्रा. २.१.३.४.
(१५) देवगण ।
'देवाः वा एते पितरः'
गो.ब्रा. ३.१.२४.
(१६) तीन प्रकार के पितर हैं, अग्निष्वात्त, बर्हिषद् और सामवन्त ।
'त्रयाः वै पितरः । सामवन्तः
बर्हिषदः अग्निष्वात्ताः ।'
श.ब्रा. ५.५.४.२८.
(१७) ओषधियाँ ।
'यान् अग्निरेव दहन् स्वदयति
ते पितरोऽग्निष्वात्ताः'
श.ब्रा. २.६.१.७.

'ये वै अयज्वानो गृहमेधिनः
ते पितरो अग्निष्वात्ताः'
तै.ब्रा. १०.४.७.६.
'अथ ये दत्तेन पक्वेन
लोकं जयन्ति ते पितरो बर्हिषदः'
श.ब्रा. २.६.१.७.
(१८) छः ऋतुएं (१९) प्राण, (२०) सूर्य, (२१) मृत्यु के उपरान्त जीवात्मागण ।
'ये वै यज्वानः ते पितरो बर्हिषदः ।
ते.ब्रा. १.६.८.६
'तद्ये सामेनेजानाः ते पितरः सोमवन्तः'
श.ब्रा. २.६.१.७.
'अथो ओषधि लोको वै पितरः'
श.ब्रा. १३.८.१.२०.

पितरौ- (१) दो अरणि, (२) द्यौ और पृथिवी, (३) माता पिता ।
'उदीरथ पितरा जार आभगम्'
ऋ. १०.११.६, अ. १८.१.२३.
हे अग्नि (जार) जिस प्रकार (आ) सूर्य पृथ्वी के रस के प्रति अपने को प्रेरित करता है, उसी प्रकार अरणियों के प्रति द्यौ और पृथिवी के प्रति (पितरौ) प्रेरित कर (उदीरय) ।
जैसे अन्धकार विनाशक सूर्य (जारः) द्यावा पृथिवी को (पितरौ) ज्योति पहुंचाता है (भगम्) उसी प्रकार ऐ विवाहित पुरुष, तू माता पिता को सुख पहुँचा (पितरौ उदीरय) ।
(४) ईश्वरोपासक मुमुक्षु जन, (५) वेदज्ञ विद्वान्, (६) गृहस्थी जन (७) अवर, पर और मध्यम तीन प्रकार पितर हैं, (८) सौम्य, अवृक्त और ऋतज्ञ तीन विशेषण हैं । (९) पृथिवी पर शासन करने वाले अधिकारी वर्ग ।

पित्त- (१) पवित्र करने वाला या पालन करने वाला ।
'अग्ने पित्तमपामसि'
अ. १८.३.५, वाज.सं. १७.६, तै.सं. ४.६.१.२, मै.सं. २.१०.१, १३१.१०, का.सं. १७.१७, श.ब्रा. ९.१.२.२७.
(२) पित्त, (३) पित्त के समान पालनकारी, पवित्र कारी गुरुजन ।
'मतस्ने वायव्यैर्न मिनाति पित्तम्'
वाज.सं. १९.८५, मै.सं. ३.११.९, १५३.१२, का.सं. ३८.३, तै. ब्रा. २.६.४.३.

पित्ररस- (१) पालक परमेश्वर का ज्ञान प्रकाश, (२) प्राप्त करने योग्य रस रूप आत्मा ।
'महेयत् पित्र ईं रसं दिवे कः
अवत्सरत् पृशन्यश्चिकित्वान्'
ऋ. १.७१.५
मनुष्य जब सब से बड़े पालक परमेश्वर के ज्ञान प्रकाश को प्राप्त करने के लिये प्राप्त करने योग्य साक्षात् रस रूप आत्मानन्द का सम्पादन करता है तब वह ज्ञानवान् होकर (चिकित्वान्) परमेश्वर का स्पर्श करता हुआ (स्पृशत्यन्) अर्थात् उसका योगाभ्यास द्वारा आनन्द लेता हुआ बन्धन से मुक्त हो जाता है ।

पित्र्य- (१) पैतृक, पिता से प्राप्त ।
'भक्षीमहि पित्र्यस्येव रायः'
ऋ. ८.४८.७, का.सं. १७.१९, नि. ४.७.
हम सोम रस का या सृष्ट जगत् का भोग उसी प्रकार करें जैसे पिता से प्राप्त सम्पत्ति ।
(२) मित्रों का भी हितकारी, (३) मित्रों में सर्वश्रेष्ठ-अग्नि ।
'दूतो जन्येव मित्र्यः'
ऋ. २.६.७

पित्र्यसख्य - पिता पितामहादि से चला आता हुआ सौहार्द भाव ।
'युवोर्हि नः सख्या पित्र्यणि'
ऋ. ६.७२.२

पित्व- (१) अन्नादि खाद्यफल, (२) पद स्थान, (३) मान, आदर ।
'येभिः सपित्वं पितरो नं आसन्'
ऋ. १.१०९.७
जिन सूर्य-रश्मियों से जीवों के पालक ओषधिगण तथा कृषक गण समान रूप से अन्नादि खाद्य फल उत्पन्न करते हैं ।
अथवा,
ज्ञान के प्रकाश से मिलकर हमारे पालक गुरुजन समान पद स्थान मान आदर सत्कार प्राप्त करते हैं ।

पित्वस् - (न.) । अन्न ।
'पित्वो भिक्षेत् वयुनानि विद्वान्'
ऋ. १.१५२.६

पिता - पा (पालन करना) + तृच् = पितृ (इ का

आगम) । प्रथमा ए.व . में पिता । अर्थ - (१) पिता (२) पालयिता, (३) द्युलोक, (४) आदित्य, (५) इन्द्र, (६) पर्जन्य, मेघ (७) अदिति ।

'यामथर्वा मनुष्पिता
दध्यङ् धियामत्नतः '

ऋ. १.८०.१६

जिस कर्म को अथर्वा, मानवपिता, मनु और दध्यङ् ने किया ।

'द्यौर्मे पिता जनिता नाभिरत्र'

ऋ. १.१६४.३३, नि. ४.२१.

द्युलोक मेरा पिता है । अर्थात् पालयिता या रक्षक है, वह उत्पन्न करने वाला है ।

मेघ के अर्थ में -

'अत्रा पिता दुहितुर्गर्भमाधात्

ऋ. १.१६४.३३, अ. ९.१०.१२, नि. ४.२१.

इस अन्तरिक्ष में (अत्र) पर्जन्य अर्थात् मेघ (पिता) दूर निहित पृथ्वी पर (दुहितुः) सर्वोत्पादन समर्थ वृष्टि का जल (गर्भम्) बरसाता है (आधात्) ।

पालक सूर्य के अर्थ में -

'पिपर्ति पुपुरिर्नरा
पिता कुटस्य चर्षणिः '

ऋ. १.४६.४.

हे अश्विनीद्वय, या हे द्यावापृथिवी, (नरा) समय आने पर पूरा करने वाला या प्रीणयिता, पालक या तृप्त करने वाला (पपुरिः) सम्पूर्ण जगत् का पालक पितृस्थानीय (पिता) अच्छे बुरे कर्मों का द्रष्टा (कुटस्य चर्षणिः) सूर्य

पिता उम्रः- पालक सांढ ।

'द्रवन्नो वन्वन् क्रत्वा नार्वा
उम्रः पितेव जारयायि यज्ञैः '

ऋ. ६.१२.४.

वृक्षों का भक्षयिता (द्रवन्नः) वनों का संभजन करने वाला अग्नि (वन्वन्) अपने कर्म से (क्रत्वा) अनाश्रित घूटे सांढ की तरह (नार्वा पिता उम्र इव) यज्ञों से उत्पन्न किया जाता है । (यज्ञैः जारयायि) ।

पितामह- (१) पिता का पिता (२) पालक का भी पालक ।

'पितामहेभ्य स्वधायिभ्यः स्वधानभः '

वाज.सं. १९.३६., का.स. ३८.२, श.ब्रा. १२.८.१.७.

पित्र्या- (१) विवाह कर्त्ता, अर्थात् पति के माता पिता की हितकारिणी-स्त्री, (२) मातापिता और पत्नी के पालक गुरुजन में स्थित ।

'सेयमस्मे सनजा पित्र्याधीः '

ऋ. ३.३९.२

पित्र्या राष्ट्री - (१) पिता आदि से ज्ञान रूप में प्राप्त संसार (राष्ट्र) की स्वामिनी परमात्मशक्ति ।

'इयं पित्र्या राष्ट्र्ये त्वग्रे'

अ. ४.१.२, गो.ब्रा. २.२.६, आश्व.श्रौ.सू. ४.६.३.

(२) पिता आदि से प्राप्त शक्ति ।

राष्ट्री का अर्थ राष्ट्र पालन करने की शक्ति रूप लाठी ।

पित्र्यवती- पालक पिता वाली कन्या ।

'परिष्कृतास इन्दवो
योषेव पित्र्यवती '

ऋ. ९.४६.२

पितु - (१) अन्न के समान पालक औषधि ।

'पितुं नु स्तोषं महो धर्माणं तविषीम् '

ऋ. १.१८०.१.

(२) 'मा' (पीना या रक्षा करना) अथवा 'प्या' (वृद्धि करना) + तु (कर्त्ता या कर्म में) = पितु । धातु के वाद 'इ' का अन्तादेश । अर्थ - अन्न । अन्न रक्षि तव्य भी होता है । और रक्षा भी करता है, पीने योग्य बनाया जाता है या भोक्ता को पुष्ट करता, बढ़ाता या प्यायित करता है ।

'उतास्मा अभवः पितुः '

अ. ४.६.३

पितुकृत्तर - अधिक अन्न उपजाने वाला ।

'अग्नेश्चिदर्च पितृकृत्तरेभ्यः '

ऋ. १०.७६.५

पितुः यमः- (१) पिता का वीर्य, (२) सूर्य का जल ।

'पितुः पयः प्रतिगृभ्णाति माता '

ऋ. ७.१०१.३

पितु भाक्- (१) जो अन्न खा चुका होता है । (पितुभाज्) है ।

'नरश्च ये पितु भाजो व्युष्टौ

ऋ. १.१६४.१२.

(२) अन्नादि को प्राप्त करने वाला, (३) हवि

आदि करने वाला कृषक, (४) अन्नादि पालन सामर्थ्य को धारण करने वाला ।
'उत् ते वयश्चिद् वसतेरपप्तन्'
ऋ. १.१२४.१२, ६.४६.६,
हे उषा, तेरे विशेष रूप से प्रकट हो जाने पर (ते व्युष्टौ) जिस प्रकार पक्षीगण अपने घोसलों से (वयः चित् वसतेः) उड़ जाते हैं (उत् अपप्तन्) उसी प्रकार अन्नादि प्राप्त करने वाले (पितुभाज) कृषक भी हों।

पितृभृत् – अन्नादि पालक साधनों को धारण करने वाली प्रजा ।
'आ उत्वा पितुभृतः'
(२) अन्न धारण करने वाला ।
'पितृभृतो न तन्तुमित्'
ऋ. १०.१७२.३.
(३) 'पा' अथवा 'प्या' + तु = पितु । पितु + मतुप् = पितुमत् ' । अर्थ है- प्रशस्त हवि या अन्न से युक्त ।
'प्रमन्दिने पितुमदर्चता वचो
यः कृष्णगर्भा निरहन्नृजिश्वना
अवस्यवो वृषणं वज्रदक्षिणं
मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे ।'
ऋ. १.१०१.१
हे स्तोताओ, स्तोतव्य इन्द्र के लिए (मन्दिने) हवि रूपी अन्न से युक्त स्तोत्र का उच्चारण करो (पितुमत् प्रार्चत) । जिस इन्द्र ने (यः) ऋजिश्वा नामक राजा के साथ (ऋजिश्वना) कृष्ण नामक असुर की गर्भिणी स्त्रियों को (कृष्ण गर्भाः) मारा था, जिसने ऋजुगामी वज्र से काले मेघ के जल रूपी गर्भों को नीचे गिराया (ऋजिश्वना कृष्ण गर्भाः निरहन्) ऐसे मनोरथ पूर्ण करने वाले (वृषणम्) दाहिने हाथ से वज्र धारण करने वाले (वज्र दक्षिणम्) मरुतों के साथ रहने वाले (मरुत्वन्तम्) इन्द्र को अपनी रक्षा चाहने वाले (अवस्यवः) हम मैत्री स्थापन करने के निमित्त (सख्याय) आह्वान करते हैं (हवामहे)

पितुमत् वचः – अन्न से युक्त स्तोत्र ।
'प्रमन्दिने पितुमदर्चतावचः'
ऋ. १.१०१.१, साम. १.३८०, ऐ.ब्रा. ५.२०.१६, कौ.ब्रा. २६.१६, नि. ४.२४.

पितुमान् – (१) अन्नजल आदि प्राण पालक पदार्थों से युक्त ।
'सदासुगः पितुमां अस्तुः पन्थाः'
ऋ. ३.५४.२१, का.सं. १३.१५, आश्व. श्रौ.सू. २.५.६.
(२) अन्नादि साधनों वाला परमराजा, (३) उत्तम अन्न खाने वाला, (४) अन्न से भरा गृह आदि ।
'रण्वः संदृष्टौ पितमां इव क्षयः'
ऋ. १.१४४.७, १०.६४.११.

पितुमती- पा अथवा 'प्या' + तु = पितु । पितु + मतुम् + ङीप् = पितुमती । अन्न युक्त ।

पितुमती ऊर्ज- (१) अन्न युक्त बल -दया.
(२) अन्नयुक्त आज्य (३) अन्न युक्त रसात्मक क्षीरादि ।

पितुःधाम- (१) पितरों का स्थान, (२) मेघों का स्थान-अन्तरिक्ष ।

पितुः- नपात् – पिता के वंश को न गिरने देने वाला वंश ।
'पितुर्नपातमा दधीत वेधाः'
ऋ. १०.१०.१, अ. १८.१.१, साम. १.३४०.

पितुरसुः- उत्पादक बीज पर पिता के जीवन का अंश आत्मा ।
'मातुर्गर्भे पितुरसुं युवानम्'
अ. ७.२.१.

पितुष्पिता- (१) पिता का पिता, (२) जगत् पालक रश्मि समूह का पिता, अर्थात् आदित्य । (२) ज्ञानी अल्प वयस्क भी वृद्ध मनुष्य का पिता है - दया. ।
'कविर्यः पुत्रः स ईमा चिकेत
यस्ता विजानात् स पितुष्पितासत्'
ऋ. १.१६४.१६, अ. ९.९.१५, तै.आ. १.११.५, नि. १४.२०.
(३) ज्ञानी जो परमेश्वर की पुरुष और स्त्री शक्तियों को जानता है ।

पितुः योनिः- पिता का घर ।
'पूर्वस्य योनिं पितुराविवेश'
ऋ. ५.४७.३, वाज.सं. १७.६०, तै.सं. ४.६.३.४, मै.सं. २.१०.५, १३७.१४, का.सं. १८.३, श.ब्रा. ९.२.३.१८.

पितुषणिः- अन्न दाता ।
'किल्बिषस्पृत् पितुषणिर्ह्येषाम्'

ऋ. १०.७१.१०

पितृणामधिपतिः- (१) पितरों का स्वामी यम (२) पालक प्राणों का अधिपति ब्रह्मचारी, (३) शासकों का अधिपति, (४) किरणों या ऋतुओं का स्वामी सूर्य ।
'यमः पितृणामधिपतिः स मावतु'
अ. ५.२४.१४.

पितृणां कविः- पितरों या पालकों में सबसे अधिक प्रज्ञावान् क्रान्तदर्शी ।
'पितृणां कविः प्रमतिर्मतीनाम्'
अ. १८.३.६३.

पितृणां श्रवणम् - (१) पितरों का धन एवं यश, (२) कुलक्रम से प्राप्त ऐश्वर्य एवं यश ।
'सान्ते ददातु श्रवणं पितृणाम्'
मै.सं. ४.१२.६, १९५.९, आश्व.श्रौ.सू. १.१०.८, शां.श्रौ.सू. ९.२८.३, नि. ११.३३.
वह कुहू अर्थात् अमावास्या या गम्भीर गृहपत्नी हमें कुल क्रमागत ऐश्वर्य एवं यश दे ।

पितृभ्यः परिददत् - पितरों को समर्पित करें - पितरों के पास पितृलोक में ले जाएं ।
'स त्वैतेभ्यः परि ददत् पितृभ्यः'
ऋ. १०.१७.३, अ. १८.२.५४, तै.आ. ६.१.१, नि. ७.९.
हे मृतात्मा, वह आदित्य तुझे दक्षिणायन चन्द्रलोक में, उत्तरायण पितृलोक में ले जाए (स त्वा एतेभ्यः पितृभ्यः परिददत्) ।
मृतात्मा को आदित्य ही पितृलोक में पहुँचाते हैं ।

पितृमत् यमः- (१) पितरों से युक्त यम (२) प्रजापालक पुरुषों से युक्त राजा ।
'यमाय पितृमते स्वधा नमः'
अ. १८.४.७४

पितृमत् सोम- राष्ट्र के पालक पितृगुणों से युक्त सर्वप्रेरक सोम राजा ।
'सोमाय पितृमते स्वधानमः'
अ. १८.४.७२, आश्व.श्रौ.सू. २.६.१२, हि.गृ.सू. २.१०.७.

पितृयाण - (१) पितरों का मार्ग (२) शासकों का बनाया नियम ।
'प्रहिणोमि पथिभिः पितृयाणैः'
अ. १२.२.१०

पितृभ्यः- पितरों को या पितृलोक में ।
'स त्वैतेभ्यः परिददत् पितृभ्यः'
ऋ. १०.१७.३, अ. १८.२.४, नि. ७.९.

पितृलोक - (१) पितरों का लोक जहां वे मृत्यु के बाद मृतात्मा के रूप में विराजते हैं।
(२) पिता का घर
'पितृलोकात् पतिं यतीः'
अ. १४.२.५२

पितृबन्धु- मां बाप और परिवार ।
'छित्यस्य पितृबन्धु'
अ. १२.५.४३,

पितृवित्तः- पिता से प्राप्त धन ।
'रयिर्नयः पितृवित्तो वयोधाः'
ऋ. १.७३.१
पिता से प्राप्त धन जिस प्रकार सन्तान को सुखमय जीवन प्रदान करता है ।

पितृश्रवणः- माता पिता के समान प्रार्थनाओं को हितसे श्रवण करने वाला ।
'सादन्यं विदथ्यं सभेयं
पितृश्रवणं यो ददाशदस्मैः'
ऋ. १.९१.२०, वाज.सं. ३४.१०, मै.सं. ४.१४.१, २१४.३,
(२) पिता या पालक गुरुजनों के उपदेश का श्रवण करने वाला,
(३) पितरों का यश कीर्त्ति फैलाने वाला ।

पितृषद् - (१) पिता के घर में रहने वाली कन्या ।
'जामिमिच्छ पितृषदं न्यक्ताम्'
अ. १४.२.२३.
(२) पिता माता पर आश्रित कन्या ।

पितृषदन - पितरों का सदन यमलोक ।
'शुम्भन्तां लोकाः पितृषदनाः'
अ. १८.४.६७

पित्र्यैनस- माता पिता के प्रति किया पाप ।
'देवैनसात् पित्र्यान्नामग्राहात्'
अ. १०.१.१२

पित्रोः पुत्रः- (१) वायु और आकाश का पुत्र अग्नि -दया. ।
(२) माता पिता का पुत्र ।
'स वह्निः पुत्रः पित्रोः पवित्रवान्'
ऋ. १.१६०.३.

पित्रोः पूर्वः पुत्र- - (१) माता पिता से पूर्व विद्यमान पुत्र (२) सूर्य और पृथिवी दोनों को पूर्व विद्यमान पालक प्रभु ।
'पुत्रो यत् पूर्वः पित्रोर्जनिष्ट'
ऋ. १०.३१.१०

पिद्वः- पी (गत्यर्थक) धातु से सम्पन्न । टुक् का आगम हुआ है । अर्थ-ज्ञानवान् पुरुष ।
'पिद्वो न्यङ्कुः कक्कटस्तेऽनुमत्यै'
वाज.सं. २४.३२, तै.सं. ५.५.१७.१, मै.सं. ३.१४.१३, १७५.४.

पिधानम् - ढक्कन ।
'पर्णो राजा पिधानं चरूणाम्'
अ. १८.४.५३.

पिनती- नाश करती हुई ।
'उद्गावो यन्तु मिनतीर्ऋतेन'
ऋ. १०.१०८.११

पिन्वत् ऋतु- (१) बढ़ाने वाली हेमन्त ऋतु (२) अज पञ्चौदन का एक रूप ।
'एष वै पिन्वन्नामर्तुर्यदजः पञ्चौदनः'
अ. ९.५.३४

पिन्वतम् - दो ।
'धेनुं न इषं पिन्वतमसक्राम्'
ऋ. ६.६३.८, नि. ६.२९.
हमें धेनु तथा अन्यत्र नहीं होने योग्य अन्न दो ।

पिन्वती- बढ़ी हुई, तृप्त करने वाली शक्ति ।
'पिन्वतीपिन्वतीमेवाप्रियस्य भ्रातृव्यस्य श्रियमा दत्ते'
अ. ९.५.३४

पिन्वमानः- (१) पीता हुआ ।
'घृतमग्ने मधुमत्पिन्वमानः'
वाज.सं. २९.१, तै.सं. ५.१.११.१, मै.सं. ३.१६.२,१८३.१२, का.स. (अश्व.) ६.२.
हे अग्ने, तू मधुर घृत को पीता हुआ (२) प्रसन्न ।
'प्रपितामहान् पिन्वमानः'
अ. १८.४.३५

पिन्वमाने - द्वि.व. । (१) स्नेहों द्वारा एक दूसरे को सींचते बढ़ाते या निषेक करते हुए स्त्री पुरुष (२) शुतुद्रि (सतलज) और विपाशा (व्यास) नदियाँ
'समाराणे ऊर्मिभिः पिन्वमाने'
ऋ. ३.३३.२

पिनाक - पिष् (पीसना) धातु से सम्पन्न । 'प्रतिपिनष्टि अनेन इति पिनाकम्' (इससे शत्रुओं को मारते हैं) । अर्थ है (१) दण्ड, डंडा । रम्भः पिनाक इति दण्डस्य नामनीभवतः' (दण्ड के पर्याय रम्भक और पिनाक हैं)
'एष रुद्र ते भागस्तं जुषस्व
तेनावसेन परो मूजवतोऽतीहि
अपिततधन्वा पिनाकहस्तः कृत्तिवासः'
तै.सं. १.८.६.२.
हे भगवन् रुद्र, यही तेरा भाग है । उस पाथेय को लेकर (तेन अवसेन) मूजवान् नामक पर्वत के उस पर (मूजवतः परः) हाथ में पिनाक नामक दण्ड से (पिनाकहस्तः) धनुष पर बाण चढ़ा (अवततधन्वा) जा (अतीहि) और हमारे शत्रुओं का संहार कर ।
महीधर ने 'पिनाकहस्त' के स्थान में पिनाकवासः पाठ माना है ।
आधुनिक अर्थ - शिव का धनुष ।

पिनाक हस्तः- हाथ में पिनाक नामक दण्ड धारण किए हुए । रुद्र का विशेषण ।

पिपर्तन- पूर्ण करो ।
'यूयं न उग्रा मरुतः सुचेतुना
अरिष्टग्रामाः सुमतिं पिपर्तन'
ऋ. १.१६६.६.
हे उग्रमरुतो, सुन्दर बुद्धि वाले गण (सुचेतुना) सदा साथ रहने वाले (अरिष्टग्रामाः) आप हमारी बुद्धि पूर्ण करें (यूयं पिपर्तनु) ।
हे संघ शक्ति से सम्पन्न तेजस्वी विद्वान्, आप हमारी शिक्षा को (सुमतिम्) विज्ञान से (सुचेतना) पूर्ण करो (पिपर्तन) ।

पिपर्ति - 'प्री' (प्रसन्न करना, तृप्त करना) या 'पृ' (पूरा करना) का लट् प्र.पु.ए.व. का रूप । अर्थ है प्रसन्न करता है तृप्त करता है ।
'पिपर्ति पपुरिर्नरा'
ऋ. १.४६.४, नि. ५.२४.
हे अश्विनीद्वय या सांसारिक कार्य भार के चलाने वाले द्यावा पृथिवी (नरा) समय आने पर पूरा करने वाला या प्रीणयिता पालक या तृप्त करने वाला (पपुरिः) सूर्य जल से प्रसन्न या तृप्त करता है ।

पिप्पक - एक छोटा पक्षी ।
'कृकलासः पिप्पका शकुनिस्ते शरव्यायै'
वाज.सं. २४.४०, तै.सं. ५.५.१९.१, मै.सं. ३.१४.२१, १७७.५, का.सं. (अश्व.)७.९.

पिप्पल- (१) पीपल वृक्ष, (२)किए हुए पाप पुण्य आदि का फल जिसे जीव भोगता है ।
'तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्ति'
ऋ. १.१६४.२०, अ. ९.९.२०.मुण्डक. उप. ३.१.१, नि. १४.३०.
(३) मेघस्थ जल, (४) ऐश्वर्यवान् शत्रु ।
'रुशत् पिप्पलं मरुतो विधूनुथ'
ऋ. ५.५४.१२.

पिप्पली- पिप्पली नामक औषधि जो वात रोग तथा क्षिप्त रोग में बहुत प्रभावशाली है (सायण के मत से पिप्पली आदि सोंठ, मिर्च, पीपली, उस, 'व्योष' में पठित ओषधि का ग्रहण उचित है । ग्रीफिथ ने इससे 'पीपल की गुलरी' माना है। राजनिघण्टु में लिखा है-
'अश्वत्थी लघुपत्री स्यात्
पत्रिका ह्रस्व पत्रिका
पिपल्लिका वनस्था च
क्षुद्रा चाश्वत्य सन्निभः'
अश्वत्थी पिप्पलिका मधुर, कषाय, रक्तपित्तनाशक, विषदाहनाशक और गर्भिणी के लिये हितकारी है ।
इसके अतिरिक्त पिप्पली तृषा, ज्वर, उदर रोग, आमरोग, वातरोग, श्वास रोग, कास, श्लेष्मा और क्षय का भी नाशक है ।
वेद में प्रदर्शित गुण कटु गुण पिप्पली के प्रतीत होते हैं। इसका मूल पिप्पलीमूल है। वह वात, श्वेष्मा और कृमि का नाशक है। श्रेयसी और गजपिप्पली नामक इसके दो भेद हैं जो श्लेष्मा और वायु का नाश करते हैं, माता का दूध बढाती है। सामान्यतः पिप्पली सर्व रोग नाशक रसायन है ।

पिपीलिका- पिल + कि = पिपीलि (लिट् के ऐसा पिल् का द्वित्व) । उपधा का दीर्घ ।
पिपील + क (स्वार्थ में) + टाप् = पिपीलिका (पुनः पुनः पेलति गच्छति इति पिपीलिका) बार बार पिलती अर्थात् जाती है । अतः यह पिपीलिका है। हिन्दी में इसे पिपरी कहते हैं ।
'पिपीलिकावटश्वसः'
अ. २०.१३५.३

पिपीलिकामध्या- एक छन्द जिसका मध्यवर्ती पाद चींटी की कमर की तरह अन्य पार्श्ववर्ती पादों की अपेक्षा अक्षरों में बहुत छोटा हो । उष्णिक पिपीलिकामध्य छन्द में ११ + ६ + ११= २८ अक्षर होते हैं ।

पिप्युषी- दूध आदि से बढ़ाने वाली माता ।
'शिशुं न पिप्युषीव वेति सिन्धुः'
ऋ. १.१८६.५.
(२) पिलाने वाली माता ।
'तदाहना अभवत् पिप्युषी पयः'
ऋ. २.१३.१
(३) स्वयं परिपुष्ट, अन्यों के ज्ञान, बल, चारों पुरुषार्थों की वृद्धि करने वाली ।
'दुहानां धेनुं पिप्युषीमसश्चतम्'
ऋ. २.३२.३.
(४) पुष्ट करने वाली ।
'गामश्वं पिप्युषी दुहे'
ऋ. ८.१४.३, अ. २०.२७.३, साम. २.११८६

पिप्रत् - पालन करता हुआ ।
'प्रजामृतस्य पिप्रतः'
ऋ. ८.६.२, अ. २०.१३८.२, साम. २.६५९

पिप्रती- (१) पूर्णरूप धारण करते हुए द्यावा पृथिवी या स्त्री पुरुष ।
'तरन्ती पिप्रती ऋतम्'
ऋ. ४.५६.७, साम. २.९४८.
(२) प्रसन्न होती या करती हुई स्त्री
'जामिं पदेव पिप्रतीं प्राध्वरे'
ऋ. ८.१२.३१

पिपिष्वती- (१) बहुत अवयवों वाली ।
(२) मेघों में जल को छिन्न भिन्न कर पीसने वाली (३) प्रत्येक अंग पीस डालने वाली सेना
'त्वेषा विपाका मरुतः पिपिष्वती'
ऋ. १.१६८.७.

पिपील- कीड़ा मकोड़ा ।
'पिपीलः सर्प उतवाश्वापदः'
ऋ. १०.१६.६, अ. १८.३.५५, तै.सं. ६.४.२.

पिप्रु - (१) अपना ही पेट भरने वाला (२) तत् नामक दैत्य ।

'यः पिप्रुं नमुचिं यो रुधिक्राम्'

ऋ. २.१४.५

(३) न्याय को पूर्ण करने वाला (४) फैला हुआ।

'त्वं पिप्रुं मृगयुं शूशुवांसम्'

ऋ. ४.१६.१३.

(५) अपने ही को निरन्तर भरने पूरने वाला स्वार्थी पुरुष।

'त्वं पिप्रोर्नृभणः प्रारुजःपुरः'

ऋ. १.५१.५

हे मनुष्यों को वश में करने वाले या मनुष्यों द्वारा आदरणीय, या मनुष्यों की चित्त वृत्ति जानने वाले या उनके हितों में मनोयोग देने वाले (नृमणः), तू अपने ही को निरन्तर भरने पूरने वाले शत्रु के दुर्गों को (पिप्रोः पुरः) तोड़ फोड़ डाल (प्रारुजः) (५) पेटू।

'यः शम्बरं यो अहन् पिपुमव्रतम्'

ऋ. १.१०१.२.

(६) पालन और ऐश्वर्यों से पूर्ण करने वाला।

'अरन्धयौ वैदथिनाय पिप्रुम्'

ऋ. ५.२९.११.

(७) अपना धन भरने वाला

'वृणक् पिप्रुं शम्बरं शुष्णमिन्द्रः'

ऋ. ६.८.१८.

पिपीषत्- पान और पलिन की इच्छा करने वाला इन्द्र।

'प्रत्यस्मै पिपीषते'

ऋ. ६.४२.१, साम. १.३५२,२.७९०.

पिब्दनः- (१) गुप्त शब्द करने वाला (२) गुप्त पुरुष।

(३) पीसकर नष्ट कर देने योग्य (४) समझ में न आने वाली अप्रकट या कूट भाषा बोलने वाला अपने से भिन्न भाषाभाषी।

'विश्वासुनो विथुरा पिब्दना वसो'

ऋ. ६.४६.६, अ. २०.८०.२.

(५) पीड़ित करने योग्य दुष्टजन।

'एष वसूनि पिब्दना'

ऋ. ९.१५.६.

प्रिय- 'पृ' धातु से सिद्ध। अर्थ - (१) प्रिय बोलने वाला, (२) इष्ट पदार्थ, ।

'नोधा इवारकृतप्रियाणि'

ऋ. १.१२४.४, नि. ४.१६.

उषा ने नोधा ऋषि के समान इष्ट साधन किया है। पुनः,

(३) उत्तम कथा, स्तुति उपदेश आदि से प्रसन्न होने वाला

'कद्ध नूनं कधप्रियः'

ऋ. १.३८.१, ८.७.३१.

प्रियआत्मा - (१) प्रिय शरीर, (२) प्रिय पुत्र, (३) आत्मा।

'मा त्वा तपत् प्रिय आत्मा पियन्तम्'

ऋ. १.१६२.२०, वाज.सं. २५.४३, तै.सं. ४.६.९.३, का.सं. (अश्व.) ६.५.

प्रियङ्गु- प्रियङ्ग नामक क्षुद्रधान्य।

'प्रियङ्गवश्च मेऽणवश्च मे'

वाज.सं. १८.१२, तै.सं. ४.७.४.२.

प्रियजात् - उत्पन्न बालक के समान प्रजाओं को तृप्त करने वाला।

'नहिमन्युः पौरुषेयः
ईशेहिवः प्रिय जात'

ऋ. ८.७१.२.

प्रियधाम- प्रियस्थान।

'कदु प्रियाय धाम्ने मनामहे'

ऋ. ५.४८.१,

सुखकारक प्रिय स्थान के लिए हम याचना करते हैं।

प्रियपति- प्रियपति, (२) पालक।

'प्रियाणां त्वा प्रियपतिं हवामहे'

वाज.सं. २३.१९, मै.सं.. ३.१२.२०,१६६.११, का.सं. (अश्व.) ४.१.

प्रियप्राण- छठा प्राण।

'योऽस्यषष्ठः प्राणः प्रियो नाम त इमे पाश्वः'

अ. १५.१५.६.

प्रियमेधवत् - (१) सूक्ष्म मनोहर बुद्धिवाला।

(२) प्रिममेधा ऋषि के समान।

'प्रियमेधवदत्रिवत्
जातवेदो विरूपवत'

ऋ. १.४५.३, नि. ३.१७.

प्रियमेधस् -(१) प्रिया अस्य मेधाः (जिसे यज्ञप्रिय हो) । प्रिय + मेध + असुन् (२) एक वैदिक ऋषि।

(३) जिसे धारणावती बुद्धि प्रिय हो।

(४) दुर्ग के अनुसार 'मेधा' यज्ञ का वाचक है। अमर कोष में 'मेधा' धारणावती बुद्धि को कहा गया है।
'धीः धारणावती मेधा'
(५) यज्ञ से प्रेम करने वाली सूर्य की रश्मियाँ।
'वयः सुपर्णा उपसेदुरिन्द्रम्
प्रियमेधा ऋषयो नाधमानाः'
ऋ. १०.७३.११, साम. १.३१९, का.सं. ९.१९, ऐ.ब्रा. ३.१९.१२, तै.ब्रा. २.५.८.३, तै.आ. ४.४२.३, तै.आ. (आंध्र) १०.७३, आप.श्रौ.सू. ६.२२.१, नि. ४.३.
चलने वाली सूर्य की रश्मियाँ (वयः सुपर्णाः) सूर्य के निकट गईं (इन्द्रम् उपसेदुः)। वे रश्मियाँ यज्ञ से प्रेम करने वाली (प्रियमेधाः) प्रकाशक होने से सर्वद्रष्टा (ऋषयः) तथा लोकों की प्रज्ञा को जांचने वाली है (वाधमानाः) (५) यज्ञ या पवित्र आत्मा को प्रिय रूप से प्राप्त करने वाला साधक पुरुष।
'प्रियमेधासो अर्चत'
ऋ. ८.६९.८, अ. २०.९२.५, साम. १.३६२ यज्ञप्रिय, (७) सत्संगप्रिय (८) अन्नार्थी
'प्रियमेधासो अस्वरन्'
ऋ.८.३.१६, अ. २०.१०.२, ५९.२, साम. २.७१४.

प्रियरथ– (१)सुन्दर, (२) अति प्रिय रथ स्वरूप आत्मा।
'श्रुतरथे प्रियरथे दधानाः
सद्यः पुष्टिं निरुन्धनासो अग्मन्'
ऋ. १.१२२.७.
जिस प्रकार लोग गमन करने वाले रथ में पोषण कारी धन सम्पत् और अन्नादि रखकर और उस की रक्षा करते हुए आगे बढ़ते हैं उसी प्रकार पिता, गुरु और उपदेशक आदि प्रिय शिष्यों को कुमार्गों से रोकते हुए (निरुन्धानासो) जितेन्द्रिय होकर प्राप्तव्य (पज्रे) गुरूपदेश से श्रवण करने योग्य रमणीय (श्रुतरथे) और अति प्रिय रस स्वरूप आत्मा में (श्रुतरथे) पोषण सामर्थ्य को धारण करते हुए (पुष्टि दधानाः) शीघ्र ही गमन करते हैं।

प्रियवादी– मधुर भाषी।
'प्रियाय प्रियवादिनम्'
वाज.सं. ३०.१३, तै.ब्रा. ३.४.१.७.

प्रियावत् – प्रियतम।
'प्रियां प्रियावते हर'
अ. ४.१८.४.

प्रियासखाया– (१) ब्राह्मण और क्षत्रिय वर्ग, (२) दो प्रिय मित्र।
क्षत्रं वै प्रस्तरो विश इतरं बर्हिः
श.ब्रा.
बर्हिं विश प्रजाएं हैं और राजा के दो प्रिय क्षत्रिय और ब्राह्मण वर्ग हैं।
'प्रिया सखाया विमुचोपबर्हिः'
ऋ. ३.४३.१

प्रियोस्रियः– युवति वधू से प्रेम करने वाला।
'प्रियोस्रियस्य वृषभस्य रेतिनः'
ऋ. १०.४०.११

पियानः– परिपूर्ण भरापूरा, तृप्त।
'यदीमृतस्य पयसा पियानः
नयन्नृतस्य पथिभी रजिष्ठैः'
ऋ. १.७९.३
जिस प्रकार आकाश को पूर देने वाले जल के वाष्प मय रूप से (पयसा) खूब भरपूर तृप्त होकर (पियानः) वायु इस मेघ को या जल को अन्तरिक्ष के धूलि कणों से युक्त (रजिष्ठै) मार्गों से (पाथिभि) ले जाता है (नयन्)।

पियारु – पी (हिंसा अर्थ में) + आरु (शील अर्थ में) = पियारु। अर्थ–जिसका हिंसा करना शील या स्वभाव हो वह पियारु है।
दिवादिगणीय पीङ् धातु पानार्थक है पर यहां पर हिंसा अर्थ में आया है।
(१) हिंसक।
'अभिवृत्रं वर्धमानम् पियारुम्
अपादमिन्द्र तवसाजघन्थ'
ऋ. ३.३०.८, वाज.सं. १८.६९.
हे इन्द्र चारों ओर से बढ़ते हुए (अभिवर्धमानम्) हिंसक वृत्र या मेघ या दुष्ट जन को (वृत्रम्)।
(२) देवपीयु, (३) देवहिंसक (४) देवता की पूजा न करने वाला, (५) यज्ञविमुख (६) नास्तिक, (७) ज्ञान रस का पान करने वाला।
'बृहस्पते चयस इत् पियारुम्'
१.१९०.५, नि. ४.२५.

पिल् - गत्यर्थक धातु ।

पिलिप्पिला - (१) सुन्दर, शोभावती (२) पालन करने वाली राष्ट्र श्री ।

'श्री वैं पिलिप्पिला'

पुनः-

'कास्विदासीत् पिलिप्पिला'

वाज.सं. २३.११,५३.तै.सं. ७.४.१८.१, मै.सं. ३.१२.१९, १६६.५.

पिश्- हाथी ।

'पिशाइव सुपिशो विश्ववेदसः'

ऋ. १.६४.८

समस्त ऐश्वर्यों के स्वामी (विश्ववेदसः) सुदृढ़ शरीर वाले (सुपिशः) हाथी के समान (पिशा इव) गम्भीर वेदी हों ।

पिशंग- पीला ।

'तेऽरुणेभिः र्वर मा पिशङ्गैः
शुभे कं रथतूर्भिरश्वैः'

ऋ. १.८८.२.

पिशङ्गभृष्टि- (१) पीतवर्णन पाको यस्य सः -दया. । पीले रंग के प्रकाश से भुन जाने वाला (२) पीत वर्ण के तेजस्वी पुरुषों द्वारा पीड़ित होने वाला ।

'पिशंगभृष्टिमम्भृणम्'

ऋ. १.१३३.५

पिशङ्गरातिः- (१) सुन्दर दान वाले इन्द्र -परमेश्वर ।

'पिशङ्गराते अभिनः सचस्व'

ऋ. ५.३१.२.

हे सुन्दर दान वाले इन्द्र, हमारे सम्मुख आ (नः अभि सचस्व) ।

(२) सुवर्ण का दान देने वाला (३) कर रूप सुवर्ण एवं परिपक्व धान्य लेने वाला ।

विशङ्गरूपः- (१) पीत वर्ण का धन सुवर्ण (२) तेजोमय आत्मा ।

'पिशङ्गरूपं मघवन् विचर्षणे'

ऋ. ८.३३.३, अ. २०.५२.३, ५७.१६, साम. २.२१६.

(३) अग्नि के समान तेजो रूप ।

'पिशङ्गरूपो नभसो वयोधाः'

अ. ९.४.२२.

(४) सूर्य या सुवर्ण के समान पीला, उज्ज्वल काञ्चन गौर, (५) सूर्य ।

'पिशङ्गरूपः सदनानि गम्याः'

ऋ. १.१८१.५

(६) उज्ज्वल, पीले रंग का, (७) तेजस्वी

पिशङ्गसूत्र- दृढ, खूब बटा हुआ रस्सा ।

'पिशङ्गे सूत्रे खृगलम्'

अ. ३.९.३

पिशङ्गामला- अत्युज्ज्वल प्रकाश ।

'पिशङ्गा वसते मला'

ऋ. १०.१३६.२

पिशङ्गाश्वाः- (१) पीले घोड़ों वाले (२) मरुतों का विशेषण ।

'पिशङ्गाश्वा अरुणाश्वा अरेपसः'

ऋ. ५.५७.४.

पिशङ्गिलाः - समस्तरूपों को निगल जाने वाली ।

'अहोरात्रे वै विशंमिले'

श.ब्रा. १३.२.६.१६.

'कास्विदासीत् पिशङ्गिला'

वाज.सं. २३.११, ५३,तै.सं. ७.४.१८.१, मै.सं. ३.१२.१९,१६६.५, का.सं. (अश्व.) ४.७, श.ब्रा. १३..२.६.१७, तै.ब्रा. ३.९.५. ३.

पिशाच- कच्चे मांस पर गीध की तरह पड़ने वाला पुरुष ।

'पिशाचेभ्यो बिदलकारीम्'

वाज.सं. ३०.८.

पिशाच क्षयण- दूसरों के मांस के लोभी हिंसक क्रूर पुरुषों का नाशक ।

'पिशाचक्षयणमसि पिशाचचातनं
मे दाः स्वाहा'

अ. २.१८.४.

पिशाचचालन- मांसभोजी क्रूर पुरुषों का नाश करने का सामर्थ्य ।

पिशाचि- (१) यः पिशति (पीसने या दुःख देने वाला) -दया.

(२) देह के अवयव में व्याप्त (३) रक्त को चूसने वाला रोगकारी कारण, (२) खण्ड खण्ड होने वाला शत्रु सैन्य ।

पिशानः - सुशोभित करता हुआ ।

'आ रोदसी विश्वपिशः पिशानाः'

ऋ. ७.५७.३

पिशित- दूषित मांस ।

'मोच्छिषः पिशितं च नः'

अ. ६.१२७.१

पिशुन- पिश् (अवयव करना) + उनन् = पिशुन । अर्थ है - (१) पिंशति इति पिशुनः (बात को इधर उधर करने वाला, बढ़ा चढ़ाकर कहने वाला, भेद बुद्धि करने वाला) चुगलखोर । वेद में इसका पर्याय 'किमीदिन्' है ।
(२) अपराधों को तुरत सूचित करने वाला ।
'वैरहत्याय पिशुनम्'
वाज.सं. ३०.१३, तै.ब्रा. ३.४.१.७.

पिषती- पीसीजाती हुई ओषधि ।
'अथो पिनष्टि पिंषती'
ऋ. १.१९१.२

पिष्ट- पिष् + क्त = पिष्ट । अर्थ है- रूप ।

पिष्टतमा - (१) अति कुटी पिसी, (२) विचार, विवेक या तर्क द्वारा निर्धारित ।
'पिष्टतमया रभिष्टतमया'
वाज.सं. २१.४६.
(३) पिष् + क्त = पिष्ट, पिष्ट + तमप् + टाप् = पिष्टतमा । अर्थ है- सुरूपतमा, अत्यन्त रूपवती, (४) दृढ़ एवं सुरूप ।
'वनस्पते रशनया नियूय
पिष्टतमया वयुनानि विद्वान्'
ऋ. ८.२.२८
हे वनस्पते, अत्यन्त दृढ़ एवं सुरूप ज्वाला से निबद्ध कर अपने अधिकार में प्रयुक्त प्रज्ञानों को जानता हुआ ।

पीठसर्पी- सिंहासन या मुख्यासन पर विराजने वाला ।
'पृथिव्यै पीठ सर्पिणम्'
वाज.सं. ३०.२१.

पीतः - पिया जाकर, प्राप्त हुआ ।
'पीत इन्दविन्द्रमस्मभ्यं याचतात्'
ऋ. ९.८६.४१
हे प्रकाशक परमेश्वर (इन्दो), प्राप्त हुआ तू (पीतः) हमें (अस्मभ्यम्) तेजस्वी जीवात्मा को प्रदान करें (याचतात्) ।
हे पिया हुआ सोम (पीतइन्दो), तू इन्द्र से हमारे लिए (अस्मभ्यम्) जाँच (याचतात्) -सा.

पीति - पी + क्तिन् = पीति । (१) परम सेवा (२) पीना, पान करना, (३) सेवन करना ।
'कामीहि वीरः सदमस्य पीतिं
जुहोत वृष्णे तदिदेष वष्टि'
ऋ. २.१४.१.
यह तेजस्वी इन्द्र कामनावान् है । वह इसे ही चाहता है अतः इस वर्षा करने वाले को सदा इस अन्न रस का सेवन करा ।
(३) पा + क्तिन् = पीति । अर्थ है पाना ।
'अभित्वा पूर्वपीतये
सृजामि सोम्यं मधु'
ऋ. १.१९.९, नि. १०.३७.
पहले पीने के लिये सोममय मधुर रस को चारों ओर से बना रहा हूँ ।
(५) आदान शक्ति, (६) पालन शक्ति ।
'प्रोग्रां पीतिं वृष्ण इयर्मि सत्याम्'
ऋ. १०.१०४.३, अ. २०.२५.७, ३३.२. आश्व.श्रौ.सू. ६.४.१०, आश्व.श्रौ.सू. १०.१०४.३
(७) 'ओप्यायी' वृद्धि अर्थ में आया है । 'प्यायी' का 'पी' होकर क्तिन् प्रत्यय से 'पीति' हुआ है । अर्थ है- वृद्धि ।
'दिवेदिवे पीतिमिदस्य वक्षि'
ऋ. ७.९८.२, अ. २०.८७.२

पीथः- (१) पान, पीना, ।
'गोपीथाय प्रहूयसे'
ऋ. १.१९.१, साम. १.१६.
सोमरस या दुग्ध पान के लिये हे अग्नि, तू आहूत होता है ।

पीप्याना - (१) पापयमाना (स्तन पिलाती हुई) 'पीङ्' या 'पी' धातु के लिट् में 'कानाच्' प्रत्यय जोड़ा गया है। पीपी + आन = पीप्यान । दूधपिलाती हुई स्त्री ।
'निते नंसे पीप्यानेवयोषा'
ऋ. ३.३३.१०, नि. २.२७.
जैसे स्त्री बालक को दूध पिलाने के लिये झुक जाती है उसी प्रकार हम तेरे लिये झुक जाते हैं ।

प्रीः- पूर्ण अर्थ का प्रकाश करने वाली (वेदवाणी) ।
'पृञ्चन्तीर्वर्चसाप्रियः'
अ. २०.४८.२

प्लीहा- शरीरस्थ प्लीता ।
'उपलान् प्लीहा'
वाज.सं. २५.८, मै.सं. ३.१५.७, १७९.१४.

प्लीहाकर्ण- तीव्र गति से भीतर प्रवेश करने वाली ।
'प्लीहाकर्णः शुण्डाकर्ण'
वाज.सं. २४.४, मै.सं. ३.१३.५, १६९.९.

पीयका- प्राण हिंसा करने वाली व्याधि ।
'कुम्भीका दूषीकाः पीयकान्'
अ. १६.६.८

पीयत्- विनाशकारी ।
'यदावलस्य पीयतो जसुं भेत्'
ऋ. १०.६८.६, अ. २०.१६.६.

पीयु- हिंसक । पी (हिंसा करना) + यु = पीयु ।

पीयूष- (१) रस, (२) आपः (३) सौर्य रस जिससे अनेक लोकों की रचना हुई है ।
पयः पीयूषम् - वाज.सं.
रसो वै पयः-श.ब्रा. ४.४.४.८.
आपो हि पयः कौ.सू. ४.४. सौर्यं पयः
'वत्सो जरायु प्रतिधुक पीयूषः'
अ. ९.४.४, तै.सं. ३.३.९.२
(४) हिंसक पुरुषों को नाश, करने वाला बल या ज्ञान ।
'अंशोःपीयूषम् अपित्वो गिरिष्ठाम्'
ऋ. ३.४८.२
(५) (न) । पातुं योग्यम् -दया. । (पीने योग्य)
(६) अमृत (७) माता का दुग्ध
'अंशोः पीयूषं प्रथमं तदुक्थ्यम्'
ऋ. २.१३.१

पीला- (१) पीलु नामक ओषधि जो विष नाशक है, (२) चक्षु ।
'गुल्गुलूः पीला नलदी'
अ. ४.३७.३

पीलु- अन्न ।
'श्यामाकं पक्वं पीलु च'
अ. २०.१३५.१२, शां.श्रौ.सू. १२.१६.१.५.

पीलुमती- (१) मिट्टी के कणों वाली पृथिवी, (२) पालन साधन वृक्षादि से हरी भरी पृथिवी (३) कर्मफलों से युक्त राजसी ।
'पीलुमतीति मध्यमा'
अ. १८.२.४८

पीव - (१) प्यै (वृद्ध्यर्थक) + क्वनिप् = पीव (सम्प्रसारण और दीर्घ) । अर्थ है (१) बल, (२) पीव (२) अति बलवान, पुष्ट ।
'उताहमद्मि पीव इत्'
ऋ. १०.८६.१४, अ. २०.१२६.१४.
'वाताये पीव इद्भव'
ऋ. १.१८७.८-१०,का.सं. ४०.८.

पीवर- बलवान् ।
'कुसं पीवरो नवत्'
अ. २०.१३६.१२.

पीवरी- खूब अधिक मात्रा में ।
'पीवरीमिषं कृणुहीन इन्द्र'
साम. १.४.५५, ऐ.आ. ५.२.२.१७.

पीवरी इष् - (१) अति हृष्ट पुष्ट सेना (२) अति हृष्ट पुष्ट अन्न सम्पदा ।
'वहतं पीवरीरिषः'
ऋ. ८.५.२०

पीबस् - मेदा, चर्बी ।
'अभ्रं पीबो मज्जा निधनम्'
अ. ९.७.१८.
'नेव मांसे न पीबसि'
अ. १.११.४.

पीवस्वती - (१) पुष्ट करने वाली, (२) प्राण दायक जल, (३) दूध से प्राण या पुष्टि देने वाली माता ।
'पीवस्वतीर्जीवधन्याः पिबन्तुः'
ऋ. १०.१६९.१, तै.सं. ७.४.१७.१.
गायें पुष्टिकारक, प्राणदायक तथा जीव को तृप्त करने वाला जल पीयें (४) हृष्ट पुष्ट ।

पीवसा- द्वि.व. । (१) मित्रावरुण अथवा स्त्री पुरुषा का विशेषण (२) हृष्टपुष्ट, मोटे ताजे ।
'युवं वस्त्राणिवीवसा वसाथे'
ऋ. १.१५२.१, मै.सं. ४.१४.१०, २३१.७, कौ.ब्रा. १८.१३, तै.ब्रा. २.८.६.६, आश्व. श्रौ.सू. ३.८.१, आश्व.गृ.सू. ३.८.९.

पीबस्पाक - मेद तक को पका डालने वाला विष ।
'पीबस्पाकमुदारथिम्'
अ. ४.७.३.

पीवा- प्रवल, हृष्ट पुष्ट ।
'अग्नये पीवानम्'
वाज.सं. ३०.२१.

पीवानः- स्थूल, सबका पोषक, वृद्धिशील ।
'पीवानं मेषमपचन्त वीराः'
ऋ. १०.२७.१७

पीवोपवसन - (१) आहार व्यवहार द्वारा पुष्टि करने

वाला (२) पुष्टि कारी आवरण में सुरक्षित, (३) स्थूल पक्की पोशाक पहनने वाला (४) दृढ़ता से निवास करने वाला ।

पींष - पिश, पिष, पीष - सब को चूर्ण करने वाला हाथी ।
'सिंहस्य रात्र्युशती पींषस्य'
अ. १९.४९.४

पुच्छधि- 'पुच्छवत् आधीयत इति पुच्छधिः'
पुच्छ के समान जिस अंग को धारण किया है वह पुच्छधि है ।
'किमु ते पुच्छधावसत्'
अ. ७.५६.८

पुञ्जिकस्थला- पुञ्जरूप होकर स्थान में विद्यमान सेना ।
'पुञ्जिकस्थला च क्रतुस्थला चाप्सरसौ'
वाज.सं. १५.१५, श.ब्रा. ८.६.१.१६.

प्रञ्जिष्ठ- प्रञ्जों का अधिष्ठाता ।
'नमो निषादेभ्यः पुञ्जिष्ठेभ्यश्च वो नमः'
वाज.सं. १६.२७, मै.सं. २.९.५,१२४.७.

पुण्डरीक वान् - कमलों से युक्त ह्रद ।
'ह्रदो वा पुण्डरीकवान्'
अ. ६.१०६.१.

पुण्यगन्धा- (१) विराट् प्रकृति ।
'तां गन्धर्वाप्सरस उपाह्वयन्तु पुण्यगन्ध एहीति'
अ. ८.१० (५) ५.
(२) उत्तम गन्ध वाली शुभ लक्षणास्त्री ।
'स्त्रियोयाः पुण्यगन्धाः'
ऋ. ७.५५.८, अ. ४.५.३

पुण्यगन्धि- पुण्य गन्ध वाला ।
'तं पुण्यं गन्धं गन्धर्वाप्सरस उप जीवन्ति'
अ. ८.१० (५) ८

पुण्यजन- पुण्यात्मा लोग ।
'देवान् पुण्यजनान् पितॄन्'
अ. ८.८.१५, ११.९.२४.

पुत्रः - (१) पुत्र, (२) रश्मियों से उत्पन्न जल -सा. । दे. 'अन्ध' । (३) पुरु त्रायते । (पिता का उनके लिये अनेकों पापों से त्राण करता है, (४) 'निपाणात् पुत्रः' (निश्चित रूप से नित्य पिता को श्रद्धापूर्वक मन से तृप्त करता है) । नि + पृ + त्रक् = पुत्र (निका लोप, 'पृ' का पु) (५) पुं. नरकः ततः त्रायत इति पुत्रः (पुं नामक त्रायण इति पुत्रः (पुं नामक नरक में जाने से बचाता है अतः पुत्र है)
पुम् + त्रक् = पुत्र ।
'कविर्यः पुत्रः स ईमा चिकेत यस्ता विजानात् सपितुष्पितासत्'
ऋ. १.१६४.१६, अ. ९.९.१५, तै.आ. १.११.५, नि. १४.२०.
जो स्त्री पुरुष रूपी स्त्रियों का विद्वान् पुत्र (जल) है, वही इस पुरुष होंने वाले तत्व को जानता है ।
जों अल्प वयस्क पुत्र मेधावी हो वह इस सत्य कथन को समझता है । जो इन तत्वों को समझता है, वह पिता का पिता अर्थात् पितृवत् पूज्य है - दया. ।

पुत्रक - बहुत जनों और ज्ञानों की रक्षा करने वाला ।
'अर्चन्तु पुत्रका उत पुरं न धृष्णवर्चत'
ऋ. ८.६९.८, अ. २०.९२.५.

पुत्रकृथ- (१) पुत्र, उत्पन्न करने वाला ।
'स्वस्ति नः पुत्र कृथेषु योनिषु'
ऋ. १०.६३.१५, ऐ.ब्रा. १.९.४.
(२) पुत्र उत्पन्न करना ।
'पुत्र कृथेन जनयः'
ऋ. ५.६१.३.

पुत्रविद्य - पुत्र की प्राप्ति ।
'तास्त्वापुत्रविद्याय'
अ. ३.२३.६

पुत्रिणा - पुत्र वाले पति पत्नी ।
'पुत्रिणा ता कुमारिणा'
ऋ. ८.३१.८, आ. मं.पा. १.११.१०

पुनती- (१) पवित्र करती हुई -दया. (२) पवित्र करने वाला कर्म ।
'अभिक्रत्वा पुनती धीतिरश्याः'
ऋ. ४.५.७.
पवित्र करने वाले कर्मयाज्ञान से (पुनतीक्रत्वा) आदित्य को प्राप्त कर (अभ्यश्याः)
कर्म से अपने आप को पवित्र करती हुई (क्रत्वा पुनती) और बुद्धिमती होती हुई (धीतिः) समान गुण कर्म वाले पति को प्राप्त कर (अभ्यश्याः)

-दया.
(३) सत्यासत्य, धर्माधर्म का चलनी या सूप के समान विवेक करती हुई ।
'वैश्वदेवी पुनती देव्यागात्'
वाज.सं. १९.४४, मै.सं. ३.११.१०,१५६.५, का.सं. ३८.२, तै. ब्रा. १.४.८.२.

पुनते - पवित्र करते हैं ।
'येन देवाः पवित्रेण
आत्मानं पुनते सदा'
साम. २.६५५.२, तै.ब्रा. १.४.८.६, नि. ५.६.
जिस मन्त्र से (येन पवित्रणे) ऋत्विज् तथा यजमान (देवाः) सदा अपने को पवित्र करते हैं (आत्मानं सदा पुनते) ।

पुनन्ता- शरीर को निरन्तर पवित्र करने वाले प्राण अपान ।
'पवित्रवन्ता चरतः पुनन्ता'
ऋ. १०.२७.१७

पुनन्तु- पवित्र करें ।
'पावमानीः पुनन्तुनः'
सा. २.६५.२
पवमान देवता वाली ऋचाएं ।
(पावमानीः) हमें (नः) पवित्र करें (पुनन्तु) ।

पुनः- अ. । फिर ।
'पुनः पत्नीमग्निरदात्'
ऋ. १०.८५.३९, अ. १४.२.२, आप.मं.पा. १.५.४,९,१४.
(२) बार बार ।
'कुविन्नंसन्ते मरुतः पुनर्नः'
ऋ. ७.५८.५, नि. ४.१५.
वे मरुत अनेकों बार जलदान द्वारा अनुगृहीत करते हैं (नंसन्ते) ।
हे ईश्वरभक्त, सेवा करने पर हमारे प्रति अत्यन्त नम्र हो जाते हैं (कुवित् नंसन्ते) -दया.

पुनःपुनः - बार बार ।
'पर्यागारं पुनः पुनः'
अ. २०.१३२.१२, शां.श्रौ.सू. १२.१८.१८.

पुनर्णवः- पुनः पुनः नया होने वाला आत्मा ।
'पुनरागा पुनर्णवः'
ऋ. १०.१६१.५, अ. ८.१.२०,२०.९६.१०.

पुनर्भुवा- (१) पुनः पुनः उत्पन्न होने वाले रात्रि और दिन ।
'सनाद् दिवं परिभूमा विरूपे
पुनर्भुवा युवती स्वेभिरेवैः'
ऋ. १.६२.८.
रात्रि वाले अन्धकार से बने रूपों से और दिन कान्तिमान रूपों से एक दूसरे के पीछे क्रम से आती जाती है और दोनों अनादि काल से पुनः पुनः उत्पन्न होने वाले होकर (पुनर्भुवा) अपने आगमनों एवं व्यवहारों से सूर्य और पृथिवी की सेवा करते हैं या परिक्रमा करते हैं या उन पर आश्रित रहते हैं ।
(२) वे सैनिक जो तितर बितर होने के बाद पुनः सन्नद्ध हो गए हों ।
'विष्वक् पुनर्भुवा मनः'
अ. १.२७.२

पुनर्भू - (१) पुनर्विवाह करने वाली स्त्री ।
समान लोको भवति पुनर्भुवा परः पतिः'
अ. ९.५.२८
(२) या विवाहित पति मरणान्तरं नियोगने पुनः सन्तानोत्पादिका भवति-दया. (३) प्रतिदिन पुनः पुनः नए वेष में प्रकट होने वाली उषा या कुलवधू ।
'उच्छा व्यख्यद् युवतिः पुनर्भूः'
ऋ. १.१२३.२

पुनर्मघः - (१) पुनः पुनः नाना सम्पत्तियों का स्वामी ।
'पुनर्मघत्वं मनसा चिकित्सीः'
अ. ५.११.१
(२) कर्मफल एवं ऐश्वर्य से सम्पन्न आत्मा ।
'सं सुनुर्भवत् स भुवत् पुनर्मघः'
अ. ७.१.२

पुनःसर- बार बार प्रत्येक वस्तु में और बार बार काट लेने पर भी हरा कर देने वाला वीर्य ।
'यो अन्धोयः पुनः सरः
भगो वृक्षेषु आहितः'
अ. ६.१२९..२

पुनः सरा- (१) बार बार रोगी के मलमूत्र को बाहर करने वाली अर्थात् विरेचक ओषधि अपामार्ग, (२) बार बार शरीर में प्रवेश करने वाली मात्रा में कई बार दी जाने वाली ओषधि ।
'सहमानां पुनस्सराम्'
अ. ४.१७.२

पुनरायनम् - (१) लौटकर पुनः आना, (२) मोक्ष के बाद पुनः जन्म ग्रहण करना ।
'मधुमत्पुनरायनम्'
ऋ. १०.२४.६.

पुनर्वसू- (१) पुववर्सु नामक नक्षत्र ।
'पुनर्वसू सूनृता चारू पुष्यः'
अ. १९.७.२.
(२) द्वि.व. । पुनः पुनः नये नये धन को कमाने वाले, (३) पुनः पुनः राष्ट्र में बसने वाले, (४) अग्नि और सोम, (५) जीव और मन भी देह में पुनः पुनः बसने से पुनर्वसू हैं ।
'अग्नीषोमा पुनर्वसू
अस्मे धारयतं रयिम्'
ऋ. १०.१९.१

पुनर्हन् - फिर से बार बार दण्डित करने वाला-मारने वाला ।
'कुमार देष्णा जयता पुनर्हणः'
ऋ. १०.३४.७

पुनानः- (१) पवित्र करता हुआ, ।
(२) पूयमानः (पवित्र किया जाता हुआ) । सोम रस बनाने के सम्बन्ध में प्रयुक्त, (३) प्राप्त । परमात्मा के सम्बन्ध में प्रयुक्त ।
'नृभिः पुनानः अभि वासयाशिरम्'
ऋ. ९.७५.५
हे सोम, ऋत्विजों से पवित्र किया जाता हुआ तू (नृभिः पुनानाः) क्षीर आदि में मिल जा (आशिरम् अधिवासय)
हे परमात्मन्, मनुष्यों से प्राप्त हुए आप (नृभिः पुनानः) हमें अपने आश्रम में निवास कराइए (आशिरम् अभिवासय) ।

पुपुष्वान् - करता हुआ ।
ऋचां त्वः स्वकीय देवताओं की ऋचाओं का (ऋचाम्) यथाविधि कर्मों में उपभोग करता हुआ (पोषं पुपुष्वान्) रहता है (आस्ते) ।

पुपोष- पोषयति (पोसता है) । वर्तमान अर्थ में लिट् का प्रयोग ।

पुमान्- (१) पुमान् पुरुष (२) पूर्ण ज्ञानी, (३) समस्त पदार्थों में व्यापक (४) सबको बढ़ाने वाला, (५) सबसे महान् ।
'पुमानन्तर्वान् स्थविरःपयस्वान्'
अ. ९.४.३
(६) पु + मतुप् ।
'हस्तघ्नो विश्वा वयुनानि विद्वान्
पुमान् पुमांसं परिपातु विश्वतः'
ऋ. ६.७५.१४, वाज.सं. २९.५१, तै.सं. ४.६.६.५, मै.सं. ३.१६.३, १८७.५, का.सं. (अश्व.) ६.१, नि. ९.१५.
हस्तघ्न सब प्रकार से पुरुष की रक्षा करे जैसे प्रज्ञानों का ज्ञाता विद्वान् ।
(६) पुमान् पुंसमना भवति (स्त्री की अपेक्षा अधिक मन वाला पुरुष होता है) ।
पुस् (पुरुषार्थ करना) से पुमान् तू बना है । जिसे पौंस्य या बल हो वह पुमान् है ।
(८) पुरुमनस् = पुमस् । यास्काचार्य 'पुमस्' शब्द ही मानते हैं ।
(९) पुंस् (अभिवर्द्धनार्थक) धातु से पुंस् बना क्योंकि पुरुष अभिवर्द्धन शील हैं । पुंस् + मतुप् = पुमत् ।
उणादि कोष में पा (क्षणार्थक + डुमसुन् = पुंस सिद्ध हुआ है) क्योंकि मनुष्य सबका रक्षक है ।
'स्त्रियः सतीस्ताँ उ मे पुंस आहुः'
ऋ. १.१६४.१६, अ. ९.९.१५, तै.आ. १.११.४, नि. १४.२०.

प्रुष् - (१) सींचना ।
'इन्द्रः श्मश्रूणि हरिताभि प्रुष्णुते'
ऋ. १०.२३.४, अ. २०.७३.५
(२) जल बरसाया ।
'यदी घृतं मरुतः प्रष्णुवन्ति'
ऋ. १.१६८.८.
(३) जलाना ।
'घृतेन पाणी अभिप्रुष्णु ते मखः'
ऋ. ६.७१.१, कौ.ब्रा. २०.४.

प्रुष्णत्- (१) स्थूल बूंदों से सींचता हुआ या नदी ताल आदि को भरता हुआ मेघ, (२) प्रजा को धन धान्य से पूर्ण करता हुआ ।
'प्रुष्णते स्वहा'
वाज.सं. २२.२६, तै.सं. ७.५.११.२, का.सं. (अश्व.) ५.२.

प्रुषायत् - आकर्षण करता हुआ ।
'स्तम्भीद्ध द्यां स धरुणं प्रुषायत्'
ऋ. १..१२१.२

वह सूर्य आकाशस्थपिण्डों को आकर्षण करता हुआ बल से थामता है ।

प्रुष्वा- (१) जलबिन्दु का फुहारा ।
'शं ते प्रुष्वाव शीयताम्'
अ. १८.३.६०
(२) मेघ के स्थूल बिन्दु, सेचन करने वाली धारा, (३) प्रजा को समृद्ध करने वाली शक्ति ।
'प्रुष्वाभ्यः स्वाहा'
वाज.सं. २२.२६, का.सं. (अश्व.) ४.२.४) वृक्षों को सींचने वाले फुहार ।
'पुष्वा अश्रुभिः'
वाज. सं. २५.९, मै.सं. ३.१५.८,१८०.२.

प्रुषितप्सुः- प्रुषित + प्सुः । स्निग्ध या परिवक्व रूप वाला, (२) दृढ़ शरीर वाला, (३) अग्नि सूर्यादि से पुषित, (४) परिपक्व घृतादि से सेवित अन्न का भोजन करने वाला (५) स्निग्ध, परितप्त वा तपस्वी देहवाला ।
'तूतु जानो महमेते ऽश्वेभिःप्रुषित प्सुभिः'
ऋ. ८.१३.११.

प्लुषिः- एक जन्तु ।
'वाचं प्लुषीन्'
वाज.सं. २४.२९, मै.सं. ३.१४.८, १७४.१.

प्लुषी- द्वि.व.। दाहक-काटने पर दाहकारी जीव ।
'द्वाविति प्लुषी इति'
ऋ. १.१९१.१.

प्सुर्- (१) रूपवान (२) सुन्दर भूमि (३) देहवान् प्राणी ।
'अभिप्सुरः पुषायति'
ऋ. १०.२६.३
(४) प्सान्ति इति प्सवः अश्वा' अर्थ है- घोड़ा ।
'वहन्त्वरुणप्सवः'
ऋ. १.४९.१

पुर् - (१) पालन करने वाली पुरी या नगरी के चारों ओर लगी परकोट या परिवा ।
'प्राच्यां, त्वादिशि पुरा संवृतः स्वाधायामा दधामि'
अ. १८.३.३०

पुरः - अ. । पुरस्तात् । अग्रे- प्रत्यक्ष । (१)सामने , आगे ।
'रथे तिष्ठन् नयति वाजिनः पुरः'
ऋ. ६.७५.६, वाज.सं. २९.४३.तै.सं. ४.६.६.२, मै.सं. ३.१६.३. १८६.३, का.सं. (अश्व.) ६.१.नि. ९.१६.
रथ में बैठे अश्वों को आगे बढ़ाता जाता है
(२) सब से आगे ।
'एष छागः पुरो अश्वेन वाजिना'
ऋ. १.१६२.३, वाज.सं. २५.२६, तै.सं. ४.६.८.१, मै.सं. ३.१६. १, १८१.११, का.सं.(अश्व.) ६.४.

पुरएत - (१) आगे आगे चलने वाला ।
'विद्वान् पथ पुरएत ऋजु नेषति'
ऋ. ५.४६.१.

पुरएता- (१) अग्रणी, (२) पथप्रदर्शक ।
'अदब्धाः सु पुरएता भवानः'
ऋ. १.७६.२, आप.श्रौ.सू. २४.१२.१०.
(३) सबसे पूर्व विद्यमान परमेश्वर ।
'अदाभ्यः पुरएता'
ऋ. ३.११.५, साम. १.९०.६, तै.ब्रा. २.४.८.१.
'बृहस्पतिः पुरएता ते अस्तु'
अ. १७.८.१, तै.सं. १.२.३.३, ३, १.१.४, कौ.ब्रा. ७.१०, आश्व.श्रौ.सू. ४.४.२, शां.श्रौ.सू. ५.६.२.

पुरन्ध्या - (१) अनेक प्रज्ञा से उत्साहित या अनेक पुत्री वाली (२) सरस्वती का विशेषण ।
'विश्वेदेवा सः श्रृण्वन् वचांसि मे सरस्वती सह धीभिः पुरन्ध्या'
ऋ. १०.६५.१३
सभी देवता और अनेक प्रजा से उत्साहित या अनेक पुत्री वाली सरस्वती भी सुनें ।

पुरन्धि- (१) पुरां धी । (पुरां दारयितृतमः) (१) पुरों का दारयिता इन्द्र । पुर् + दृ + क्विप् = पुरन्धि । पुर् का पुरम् और वर्ण विपर्यय से दृ का धि (२) पुर् का अर्थ मेघौघ भी है । मेघौघों के दारण करने वाले इन्द्र हैं ।
(३) वरुण भी पुरन्धि हैं क्योंकि वे मेघों को आवृत करते हैं । (४) बहुधी, बहुकर्मा, बहुत बुद्धि का कर्म करने लगा । 'भग' जिसे इन्द्र या वरुण भी कहते है ।
"पुरन्धिः बहुधीः तत् कः पुरन्धिः । भगः । पुरस्तात् तस्य अन्वादेशः इति एकम् , इन्द्र इत्यपरम् । स बहुकर्म तमः । पुरांच दारमितृतमः । वरुण इत्य परः । तं प्रज्ञया स्तौति । (५) इन्द्र (६) जीवात्मा या आत्मा ।
'ताँ अध्वर उशतो यक्ष्यग्ने

श्रुष्टी भगं नासत्या पुरन्धिम्'

ऋ. ७.३९.४

हमारे यज्ञ में अपने अपने अंश चाहने वाले (उशतः) विश्वेदेवों को पूज तथा भग, अश्विनी कुमारों एवं इन्द्र को भी ।

(७) बहुकर्मतम, (८) बुद्धिमान् देव (९) अतिबुद्धि वाला ।

'जरुथं हन्यक्षि राये पुरन्धिम्'

ऋ. ७.९.६, नि. ६.१७.

हे अग्नि, धन प्राप्ति के लिए बहुकर्मतम तुझे (पुरन्धि) वसिष्ठ ने पूजित किया ।

अथवा ,

हे अग्नि, तू परुषभाषी राक्षस गण को मार (जरुथंहन्) धनवान् यजमान के लिए (राये) बुद्धिमान् देवगण की पूजा कर (पुरन्धि यक्षि) अथवा,

हे नायक विद्वान् बहुत बुद्धि वाले आपके प्रति (पुरंन्धि त्वाम्) धनाढ्य मनुष्य (वसिष्ठः) आदर भाव को पहुँचाता हुआ (जरुथं हन्) धर्मधन की प्राप्ति के लिए (राये) आप की संगति करता है । (यक्षि) (१०) बहुत बुद्धि वाला, बुद्धिमान् -सा. (११) माध्यमिका वाक् भी पुरन्धि है (१२) सायण के अनुसार सरस्वती पुरन्धि है, क्योंकि वह बहुत बुद्धि वाली है ।

पुरन्धि – (१) प्रचुरधन देने वाला इन्द्र ।

'अंत्रा पुरन्धिरजहादरातीः'

ऋ. ४.२६.७, नि. ११.२.

यहां प्रचुर धन देने वाले इन्द्र ने शत्रुओं को मारा ।

पुरन्धी – बहुत से शास्त्रों को धारण करने वाली बुद्धि ।

'स राये स पुरन्ध्याम्'

ऋ. १.५.३, अ. २०.६९.१, साम. २.९२. जै.ब्रा. १.२२६,

पुरयः– (१) अग्रणी, (२) पुर या नगर का नियन्ता– नगराध्यक्ष ।

'उत्तमऋजे पुरयस्य रध्वी'

ऋ. ६.६३.९

पुरःसदः– ब.व. । (१) आगे जाने वाले, (२) पुरों में रहने वाले प्रजा गण, (३) शरीरों में रहने वाले जीव ।

'पुरः सदः शर्मसदो न वीराः'

ऋ. १.७३.३, ३.५५.२१.

(४) उच्च पदों पर स्थित नायकगण ।

पुरःसद् – (१) आगे रहने वाला (२) दिशा में नियुक्त राष्ट्र रक्षक ।

'अग्नि नेत्रेभ्यो देवेभ्यः'

पुरःसद्भ्यः स्वाहा ।'

वाज.सं. ९.३५.श.ब्रा. ५.२.४.५.

पुरःसर– आगे चलने वाला हरकारा ।

'कीर्तिश्च यशश्च पुरःसरौ'

अ. १५.२.८.

पुरस्तात् – आगे , पूर्व ।

'उत् पुरस्तात् सूर्य एति'

ऋ. १.१९१.८, अ. ५.२३.६.

पुर्वणीक – पुरु + अणीक । अर्थ है (१) बहुत सी सेनाओं से युक्त, (२) बहुत से बलों और ज्ञानोपदेश के मुखों या वचनों से युक्त परमेश्वर ।

'रेवदस्मभ्यं पुर्वणीक दीदिहि'

ऋ. १.७९.५, साम. २.९१२, वाज.सं. १५.३६, तै.सं. ४.४.४.५, मै.सं. २.१३. ८,१५७.१२, का.सं. ३९.१५.

हे पुर्वणीक, तू हमारे लिए उत्तम ऐश्वर्यों से युक्त ज्ञान का प्रकाश कर ।

पुरा– पहले, पूर्व, प्राचीन काल में ।

'जीवान्नो अभिधेतन
आदित्यासः पुरा हथात्
कद्धस्थ हवनश्रुतः'

ऋ. ८.६७.५, नि. ६.२७.

पुराचित् – पहले के समान ।

'निष्म मावते वहथा पुराचित्

ऋ. ६.६५.४.

पुराजः– (१) पूर्वकाल में उत्पन्न ।

'आहुर्विप्रासो अश्विना पुराजाः'

ऋ. १.११८.३, ३.५८.३.

पुराजाः– (१) पूर्ववत् जन्म लेने वाला जीव ।

'अन्तर्येमे अन्तरिक्षें पुराजाः'

ऋ. १०.५.५.

(२) सबसे पुरातन या पूर्व उत्पन्न, वयोवृद्ध

'नव्यं कृणोमि सन्यसे पुराजम्'

ऋ. ३.३१.१९

पुराजाः- द्वि.व. । पुरु + जा । सब के आगे अग्रणीवत् चलने वाले अश्विद्वय ।
'पुरुदंसा पुरुतमा पुराजा'
ऋ. ७.७३.१, का.सं. १७.१८.

पुरुणः- (१) पुरा नवं भवति (पहले का पदार्थ) । जो पहले से चला आता हो, प्राचीन, प्रत्न, प्रदिव, प्रवयाः, प्राकृनम् , प्रत्नम्, ये सब प्राण के पर्यायवाची हैं ।
(२) पुरातन पुरुष, पूर्व कालीन पुरुष ।
'न पुराणो मघवन् नोतनूतनः'
ऋ. १०.४३.५, अ. २०.१७.५.
हे इन्द्र या परमेश्वर, तेरे उस बल का या तेज का अनुकरण न तो किसी वर्तमान कालीन और न प्राचीन पुरुष ने ही किया है ।

पुराणवत् - पुराना ।
'अपि वृश्च पुराणवत्'
ऋ. ८.४०.६, अ. ७.९०.१.

पुराणवित् - सृष्टि के पूर्व के पदार्थों का यथार्त, यथार्त ज्ञान को जानने वाला ।
'स मन्येत पुराण वित्'
अ. ११.८.७.

पुराणम् ओकः- पुराना घर ।
'पुराणमोकः सख्यं शिवः वाम्'
ऋ. ३.५८.६, आश्व.श्रौ.सू. ९.११.१९, शा.श्रौ.सू. १५.८.२१.

पुराण्योः सद्मनः केतुः- (१) सनातन से चले आए आकाश और भूमि के बीच कर्म व्यवहारों को जानने और जनाने वाला सूर्य, (२) राजसभा और प्रजाजन सभा के बीच ध्वजा के समान तेजस्वी उच्च पद पर स्थित पुरुष ।
'पुराण्योः सद्मनोः केतुरन्तः'
ऋ. ३.५५.२.

पुरां दर्मा - देहादि पुरों और नाना लोकों को भी प्रलय या मोक्षावसर में तोड़ने वाला ।
'मूरा अमूरं पुरां दर्माणम्'
ऋ. १०.४६.५.

पुरां दर्म- (१) पुरों को विदीर्ण करने वाला सूर्य, (२) इन्द्र (३) शत्रुओं के नगरों को तोड़ने वाला ।
'पुरां दर्मो अयामजः'
ऋ. ३.४५.२, साम. २.१०६९

पुरानारी- (१) पूर्वकाल में समस्त विश्व के नायक परमेश्वर के अधीन रहने वाली प्रकृति ।
'संहोत्रं स्म पुरानारी
समनं वाव गच्छति'
ऋ. १०.८६.१०, अ. २०.१२६.१०

पुराषाट् - (१) शत्रुओं को विजय करने वाला- इन्द्र ।
'यद्वा वानपुरुतमं पुराषाट्'
ऋ. १०.७४.६, ऐ.ब्रा. ३.२२.२, ६,४.२९.१४.

पुरीकय- विशाल कछुए की कठोर त्वचा वाला जानवर ।
'शिशुमारा अजगराः पुरीकयाः'
अ. ११.२.२५.

पुरीतत्- (१) हृदय की नाड़ी ।
'पशुपतेः पुरीतत्'
वाज.सं. ३९.९.
(२) आंत ।
'यंतो हृदयं यकृन्मेधा व्रतं पुरीतत्'
अ. ९.७.११,
'अन्तरिक्षं पुरीतता'
वाज.सं. २५.८, वाज.सं. (का.) २७.११, तै.सं. ५.७.१६.१ मै.सं. ३.१५.७,१७९.१२, का.सं. (अश्व.) १३.६.

पुरीष- (१) महान्, (२) परिपूर्ण, (३) अविकाल, अनन्त, अखण्ड सामर्थ्य और ऐश्वर्य ।
'अवः सूर्यस्य बृहतः पुरीषात्'
ऋ. १०.२७.२१
(४) सर्वपोषक अन्न ।
'द्वा बृबूकं वहतः पुरीषम्'
ऋ. १०.२७.२३, नि. २.२.२
(४) पृ + ईषन् = पुरीष । सब का पोषक पालपिता का पूरयिता । 'पृ' धातु पालन और पूरण अर्थ में आया है ।
'शृ पृभ्यांकिच्च' से ईषन् प्रत्यय ।
अर्थ - पूरा करने वाला ।
'पृथिव्याः पुरीषमस्यप्सोनाम'
वाज.सं. १४.४, तै.सं. ४.३.१२.१, मै.सं. २.८.१,१०७.१, का.सं . १७.६, श.ब्रा. ८.२.१.७.
हे इष्टके, तू अप्स अर्थात् रस नामक पृथ्वी की पूरयित्री है। (६) पोषक रस - (७) पालक । वायु और आदित्य (द्वा) ओषधियों के पोषक

रस (पुरीषम्) तथा जल को (बृबूकम्) पृथ्वी से आदित्य मण्डल में ले जाते हैं (बहतः)। आधुनिक अर्थ - विष्ठा, पाखाना, मल , कूड़ा करकट।
(८) ऐन्द्र, (९) दक्षिणा, (१०)नक्षत्र, (११) देव, (१२) वयस् (१३) प्रजा (१४) पशु, (१५) पुरीतत् (१६) मांस।

पुरीषवाहणः- ऐश्वर्य को वहन करने वाला।
'अग्नेः पुरीष वाहणः'
वाज.सं. ११.४४, तै.सं. ४.१.४.२, मै.सं. २.७.४, ७९.२. का.सं. १६.४, श.ब्रा. ६.४..४.३.

पुरीष्य- (१) जो श्री अर्थात् लक्ष्मी का प्राप्त हो
पुरीष्य इति वै तमाहुः यः श्रियं गच्छति।
श. २.१.१.१७
(२) अग्नि का विशेषण।
'अयमग्निः पुरीष्यः'
वाज.सं. ३.४०, आश्व.श्रौ.सू. २.५.१२, शां.श्रौ.सू. २.१५.४.
(३) समस्त प्रजाओं को पालन करने में समर्थ।
'अग्निं पुरीष्यमङ्गिरस्वदच्छेमः'
वाज.सं. ११.१६,तै.सं. ४.१.२.५, ५.१.२.४,मै.सं. २.७.२,७५.८, ३.१.३.४.१३, का.सं. १६.१, १९.२, श.ब्रा. ६.३.३.३.

पुरीषा- (१) अन्यों को पुष्ट करने वाले स्त्री पुरुष।
'मेषे वेषा सपर्या पुरीषा'
ऋ. १०.१०६.५

पुरीष्यासः-(१) अन्न, ऐश्वर्य, पृथिवी, इन्द्रादिपद, विद्वान प्रजाजन , पशु आदि से सम्पन्न, (२) पुरीतत नाड़ी तक पहुंचने वाले, (३) मांसतक में व्यापक।
'पुरीष्य इति वैतमाहुः यः श्रियं गच्छति।'
श.ब्रा. २.१.१.७.
'ऐन्द्रं हि पुरीषम्'
श.ब्रा. ८.७.३.७.
'दक्षिणाः पुरीषम्'
श.ब्रा. ८.७.४.१५.
नक्षत्राणि पुरीषम्
श.ब्रा. ८.७.४.१४.
'देवाः पुरीषम्'
श.ब्रा. ८.७.४.१७.
'वयांसि पुरीषम्'
श.ब्रा. ८.७.४.१३.
'प्रजा पुरीषम्'
श.ब्रा.८.७.४.१६.
'मांसं पुरीषम्'
श.ब्रा. ८.७.४.१९.

पुरीषिणी- (१) पुरों की इच्छा करने वाली (२) जल वाली।
'मावः परिष्ठात् सरयुः पुरीषिणी'
ऋ. ५.५३.९

पुरीषिन् - (१) ब्रह्माण्ड रूप पुर में विद्यमान परमपुरुप (२) वृष्टि के उदक के सम्पन्न सूर्य
दिव आहुः परे अर्धे पुरीषिणम्
ऋ. १.१६४.१२,अ. ९.९.१२, प्रश्न उप. १.११
(३) पुरवासी।
प्रजा वै पशवः पुरीषम
तै. सं. २.६.४.३.
'पुरीष्य इति वै तमाहुः
यः श्रियं गच्छति'
श.ब्रा. २.१.१.७
'पुरीषिणः प्रथमानाः पुरस्तात्'
अ. ११.१.३२.
(४) संवत्सर, (५) सूर्य पुराणां सहितानाम् पदार्थानाम् ईपितों-मिलावट को अलग कराने वाला (६) वर्षा द्वारा जल बरसाने वाला (७) सर्वशक्ति सम्पन्न, (८) ब्रह्माण्ड रूप पुर का संचालक परमेश्वर।
'दिवआहुः परे अर्धे पुरीषिणाम्'
ऋ. १.१६४.१२, अ. ९.९.१२.

पुरु - (१) बहुत। पृ (पूरणार्थक धातु) से सिद्ध।
'पुरुत्वा दाश्वान् वोचे
अरिरग्ने तव स्विदा'
ऋ. १.१५०.१, साम. १.९७., नि. ५.७.
हे अग्ने, तुझे बहुत दान देने वाला मैं तेरा ही सेवक तुझे पुकारता हूँ। या अनेक वरदान मांगता हूँ।
(२) पूर्ण करने वाला। (३) ऋग्वेद कालीन एक जन। ऋग्वेद के समय इसकी कई शाखाएं हो चुकी थीं। ये पुरु पुरुष्णी (रावी) के पूर्व रहते थे। भरत और कुशिक पुरु की ही शाखाएं हैं। कुशिक के नेता विश्वामित्र सुदास के समर्थक थे। भरतों की ही शाखा तृत्सु थी।

वध्यश्व, दिवोदास और सुदास । तीनों पितामह, पिता और पुत्र थे । दिवोदास सुदास को भरत भी कहा जाता था । दाशराज्ञ युद्ध में पुरुओं ने भरतों के शत्रुओं का साथ दिया था । भरतों के द्वारा पुरुओं की पराजय में वसिष्ठ का भी हाथ था (ऋ.७.८.४) दिवोदास के पुत्र परुच्छेप ऋषि ने दिवोदास को पुरु कहा है । पुरुओं के तीन राजा - पुरुकुत्स, तत्पुत्र दस्यु और तत्पुत्र कुरु श्रवण ऋग्वेद में मिलते हैं ।
(४) प्रचुर मात्रा में, बहुत ।
'पुरुवारं पुरुत्मना'
ऋ. १.१४२.१०, नि. ६.२१.
(५) सबको पूर्ण करने वाला परमेश्वर ।
'स्योनां मे सीद पुरुः'
अ. १९.६१.१.

पुरुकुत्स - (१) पुरुकुत्स नामक यजमान ।
(२) कृषक-दया. ।
'यूने वृत्रं पुरुकुत्साय रन्धीः'
ऋ. १.१७४.२.
हे इन्द्र, तूने स्तुतिशील पुरु कुत्सके लिए (यूने पुरुकुत्साय) धन सम्पादित किया (वृत्रं रन्धीः) ।
राजन् , तूने पुरुषार्थी कृषक के लिए कष्टों को दूर किया ।
(३) बहुत से शास्त्रास्त्रों का स्वामी (४) बहुत से शत्रुओं को उखाड़ फेकने वाला राजा ।
'पुरोवज्रिन् पुरुकुत्सायदर्दः'
ऋ. १.६३.७

पुरुक्षु- (१) बहुत सी अन्न समृद्धि से युक्त
'पुरुवीरस्य नृवतः पुरुक्षोः'
ऋ. ६.२२.३, अ. २०.३६.३.
(२) बहुतों से प्रशंसित ।
'तावस्मभ्यं पुरुवारं पुरुक्षुम्'
ऋ. २.४०.४, तै.ब्रा. २.८.१.५.
(३) भली प्रकार बसाने वाला ।
'रयिं धत्तं वसुमन्तं पुरुक्षुम्'
ऋ. ७.८४.४.

पुरुकृत् - (१) बढ़ाने वाला ।
'पौरो अश्वस्य पुरुकृद्गवामसि'
ऋ. ८.६१.६, अ. २०.११८.२, साम. २.९३०.
(२) बहुत से कामों सुखों और प्रजाओं को भी उत्पन्न करने वाला-इन्द्र, परमेश्वर ।
'शचीव इन्द्र पुरुकृत् द्युमत्तम'
ऋ. १.५३.३, अ. २०.२१.३.
(३) भोक्ता जीव के समस्त कामनाओं को पूर्ण एवं उनका पालन करने वाला परमेश्वर,
(४) इन्द्रियों को पूर्ण करने वाला ।

पुरुकत्वा - (१) बहुत से कर्म करने वाला विद्वान् पुरुष ।
'मितज्ञुभिः पुरुकृत्वा जिगाय'
ऋ. ६.३२.३.

पुरुकुत्स- (१) बहुत से वज्रों का विद्युत् से युक्त वायु, (२) बहुत से शस्त्रास्त्रों से सुसज्जित राष्ट्र ।
'यूने वृत्रं पुरुकुत्साय रन्धीः'
ऋ. १.१७४.२.

पुरुगूर्त- जिसके लिए बहुत से लोग उद्यम किया करते हैं - इन्द्र ।
'पुरुहूतोयः पुरुगूर्तऋभ्वां'
ऋ. ६.३४.२

पुरुजा- (१) सर्व प्रथम उत्पन्न अग्नि, (२) सनातन परमात्मा -दया. ।

पुरुणामन् - (१) बहुत से नामों वाला ।
'पुरुणामन् पुरुष्टुत'
ऋ. ८.९३.१७,साम. १.१८८,.
(२) बहुत प्रकार से वशी करण साधनों से सम्पन्न ।
'पुरुणामानमेकजम्'
अ. ६.९९.१

पुरुणीथा- (१) पुरुन् नयति + भया सा पुरुणीथा- धर्मनीति- दया. (२) बहुस्तोत्र ।
(३) बहुस्तुत - यास्क (४) बहुत स्तोत्रों से यहाँ इस शब्द को तृतीयान्त माना गया है,
(५) धर्मनीति के द्वारा (तृतीयान्त)
'पुरुणीथा जातवेदो जरस्व'
ऋ. ७.९.६.
हे बहुस्तुत अग्नि, (पुरुणीथा), हमारे दिए हुए इस हवि को सर्वतो भाव से ग्रहण कर (आजरस्व) ।
अथवा,
हे अग्नि ! बहुत स्तोतों से देवों की स्तुति कर ।
अथवा,

हे मनुष्यों मात्र को शिक्षा देने वाला विद्वान् (जातवेदाः), धर्मनीति के द्वारा (पुरुणीथा) दुःखों को दूर कीजिए (जास्व) ।
(५) बहुत सी वाणियों, मार्गों या उपायों से सम्पन्न ।

पुरुतम- सब में श्रेष्ठ ।
'मरुतां पुरुतममपूर्व्यम्'
ऋ. ५.५६.५.

पुरुतमा- द्वि.व. । (१) अश्विद्वय, (२) बहुतों में उत्तम ।
'पुरुदंसा पुरुतमा पुराजा'
ऋ. ७.७३.१, का.सं. १७.१८.

पुरुत्मा- (१) इन्द्रियों के बीच आत्मा, (२) सबमें रहने वाला इन्द्र परमेश्वर ।
'श्रवस्कामं पुरुत्मानम्'
ऋ. ८.२.३८
(३) अनेक रूपों वाला ।

पुरुत्रा - (१) पुरु + त्रा = पुरुत्रा । बहुधा, बहुत प्रकार से ।
'पुरुत्रा ते मनुतां विष्ठितं जगत्'
ऋ. ६.४७.२९. अ. ६.१२६.१, वाज.सं. २९.५५, तै.सं. ४.६.६.६, मै.सं. ३.१६.३, १८७.८, का.सं. (अश्व.) ६.१., नि. ९.१३.
हे दुन्दुभिः, तेरे शब्द को स्थावर तथा जंगम जगत् (विष्ठितं जगत्) बहुत प्रकार से (पुरुत्रा) जान जाय (मनुताम्) ।
(२) आत्मा को भोग्य सुखों द्वारा प्रसन्न करने वाली इन्द्रियों या बहुत पदार्थों में ।
'विमेपुरुत्रा पतयन्ति कामाः'
ऋ. ३.५५.३

पुरुदत्र- (१) नाना दानयोग्य धनों का स्वामी -इन्द्र ।
'अभिप्रमन्द पुरुदत्र मायाः'
ऋ. ६.१८.९

पुरुद्रप्साः- (१) बहुत प्रकार के बलों, वीर्यों को धारण करने वाले, (२) बहुत जल धारण करने वाले मरुत् ।
'पुरुद्रप्सा अञ्जिमन्तः सुदानवः'
ऋ. ५.५७.५

पुरुदमासः- ब.व. । (१) इन्द्रियों को दमन करने वाले, (२) बहुत से घरों वाले धनाढ्य ।
'वयं हि वां पुरुदमासो अश्विना'
अ. ७.७३.१

पुरुदंससा- अनेक कर्म सिद्ध करने वाले ।

पुरुदिनेषुहोता- (१) बहुत दिन नित्य यह स्तोत्र मेरा हो, ऐसा कहने वाला -इन्द्र ।
(२) बहुत दिनों के व्यतीत हो जाने पर प्रलय के बाद वेदों का प्रदाता परमेश्वर ।
'यस्येदिन्द्रः पुरुदिनेषुहोता'
ऋ. १०.२९.१, अ. २०.७६.१
जिस स्तोत्र के लिए इन्द्र भी, यह स्तोत्र सदा मेरा है, ऐसा कहने वाला है ।
जिस वेद का बहुत दिनों के व्यतीत हो जाने पर प्रलय के पश्चात् (पुरुदिनेषु) परमेश्वर ही प्रदाता है (इन्द्र इत् होता) ।

पुरुद्रुह - बहुतों के साथ द्रोह करने वाला ।
'पुरुद्रुहो हि क्षितयो जनानाम्'
ऋ. ३.१८.१.

पुरुधः- (१) बहुत से लोकों को धारण करने वाला- परमेश्वर सूर्य ।
'उत त्र्युधा पुरुध प्रजावान्'
ऋ. ३.५६.३.
(२) बहुत से ज्ञानों धनों को धारण करने वाला ।
'देवानां दूतः पुरुध प्रसूतः'
ऋ. ३.५४.१९

पुरुधप्रतीकः- (१) बहुतों को धारण करने वाले के प्रति प्राप्त होने वाला -दया ।
(२) बहुतों को धारण पोषण करने के सामर्थ्य से प्रसिद्धि प्राप्त ।
'महानि चक्रे पुरुधप्रतीकः'
ऋ. ३.४८.३
(३) बहुत प्रकार के स्थावरे जंगमों को धारण करने वाले सामर्थ्य से युक्त सूर्य (४) बहुतों को धारण करने में समर्थ ज्ञान और बल से सुखरूप ।
'ता अवासयत् पुरुधप्रतीकः'
ऋ. ३.७.३.

पुरुधा- (१) पुरु + धा = पुरुधा । अनेक प्रकार से (२) नाना रूप ।
'पुपोष प्रजाः पुरुधा जनाना'
ऋ. ३.५५.१९, नि. १०.३४.
त्वष्टा सविता ने ही नाना रूप प्रजाओं को

जन्माता एवं पोषता है ।

पुरुनिष्ठ - (१) अनेक प्रकार श्रद्धा या स्थानों वाला -दया. (२) इन्द्रियों के बीच निष्ठावान् जितेन्द्रिय ।
(३) पालनीय प्रजाजनों को बीच स्थिर ।
'युवा कविः पुरुनिष्ठ ऋतावा'
ऋ. ५.१.६, तै.सं. १.३.१४.१, मै.सं. ४.११.१, १६२.५.

पुरुनिष्षः- बहुतों से स्थित इन्द्र ।
'शुचिरसि पुरुनिष्ठाः'
ऋ. ८.२.९

पुरुनिष्षि- (१) जो अनेकों शास्त्रों एवं मंगलों का सदा सेवन करे, (२) पुष्कल शास्त्रों को पढ़ाने वाला, (३) धर्मयुक्त कर्मों में विचारने वाला (४) अनेक अज्ञानादि दोषों को दूर करने में समर्थ आचार्य या परमेश्वर ।
'उक्थमिन्द्राय शंस्यं
वर्धनं पुरुनिष्षिधे'
ऋ. १.१०.५
अनेक शास्त्रों का ज्ञान कराने अथवा अनेक अज्ञानादि दोषों को दूर करने में समर्थ ज्ञान वाणी का उपदेश करने वाले आचार्य को प्रसन्न करने के लिए मान आदर बढ़ाने वाला वचन कहना चाहिए ।

पुरुनृम्ण- (१)बहुत ऐश्वर्य वाला इन्द्र, परमेश्वर, भगवान् ।
'पुरुनृम्णाय सत्वने'
ऋ. ८.४५.२१

पुरुपन्थाः - (१) बहुतों को नाना प्रकार के जीवनोपाय रूप मार्ग देने में समर्थ, (२) बहुतों को वृत्ति देने वाला -राजा, (३) बहुत से मार्गों से सम्पन्न देश या देश का राजा ।
'अश्वानां पुरुपन्था गिरे दात्'
ऋ. ६.६३.१०

पुरुप्रजात- इन्द्रियों में नाना रूप होकर प्रकट हुआ- प्राण ।
'विदत् पुरु प्रजातस्य गुहा यत्'
ऋ. १०.६१.१३

पुरुप्रशस्तः- बहुतों से प्रशंसित ।
'पुरुप्रशस्ते अमतिर्न सत्यः'
ऋ. १.७३.२

पुरुप्रियः- (१) अनेक मनोरथों वाला ।
(२) बहुतों का प्रिय परमेश्वर या अग्नि ।
'पुरुप्रियो भन्दते धामभिः कविः'
ऋ. ३.३.४, नि. ५.२.
वह बहुतों का प्रिय कवि तेजों से वेद का बखान करता है - दया. ।
ऐसे अग्नि को अनेक मनोरथों वाला (पुरुप्रियः) आत्मदर्शी विद्वान् (कविः) अनेक प्रकार के नामों या स्तोत्रों से स्तुति करता है (धामभिः भन्दते) ।

पुरुपुत्रा- बहुत पुत्रों वाली या बहुत पुरुषों का त्राण करने वाली पृथ्वी ।
'सकृत् स्वं ये पुरुपुत्रां महीम्'
ऋ. १०.७४.४, वाज.सं. ३३.२८.

पुरुपेशा- (१) बहुत सी रूपवती स्त्रियाँ (२) नाना रूप की ओषधियाँ, (३) बहुत से सुवर्ण वाली ऐश्वर्य -सम्पन्न प्रजा ।
'भुवदग्निः पुरुपेशासु गर्भः'
ऋ. २.१०.३.

पुरुप्रैषाः- ब.व. । (१) मरुतों का विशेषण ।अर्थ (२) बहुतों को बरसाने वाले, (३) बहुत से ऐश्वर्यों के लिए उत्कट इच्छा वाले ।
पुरुप्रैषा अहन्यो नैतशः'
ऋ. १.१६८.५

पुरुभुजा- द्वि.व. । पुरुभुजौ । (१) बहुभोजी, (२) बहु पालक (३) अश्विदय का विशेषण ।
'पुरुहिवां पुरुभुजा देष्णम्'
ऋ. ६.६३.८
हे बहुभोगी या बहुपालक अश्विनी कुमारो, तुम दोनों का दातव्य धन बहुत है (पुरु देष्णम्)
(४) स्वा. दयानन्द ने इस शब्द को राजा और राजपुरुषों का विशेषण माना है ।
(५) अनेक खाने पीने के पदार्थों को देने वाले अग्नि और जल ।
'पुरुभुजा चनस्यतम्'
ऋ. १.३.१
(६) बहुत सी प्रजाओं और राष्ट्रों को पालने वाले (७) बहुत योद्धा वीरजनों से युक्त ।

पुरुभू- (१) बहुत अधिक संख्या में शिष्य प्रशिष्यों द्वारा वद्ध हो जाने वला गुरु ।
'हिरण्ययेन पुरुभू रथेन'

ऋ. ४.४४.४, अ. २०.१४३.४.
(२) बहुत से जनों में भूमियों के बीच राजा के तुल्य ।
'दक्षाय रायः पुरुभूषुनव्यः'
ऋ. ९.९४.३

पुरुभूतमा (१) बहुत से प्रजाजनों में उत्तम सामर्थ्यवान् ऐश्वर्य पुत्रादि को उत्पन्न करने वाले, (२) बहुतों से उत्तम आश्रय रूप मित्रा वरुण ।
'इहत्या पुरुभूतमा
पुरू दसांसि बिभ्रता'
ऋ. ५.७३.२.
(३) बहुतों के प्रति सद्भावना करने वाले अश्विद्वय (४) स्त्रीपुरुष ।
'इहत्या पुरुभूतमा
देवा नमोभिरश्विना'
ऋ. ८.२२.३

पुरुभोजनाः- (१) बहुत से भोग्य पदार्थों को देने वाला, (२) बहुत प्राणियों को पालन करने वाला ।
'गिरिंन पुरुभोजसम्'
ऋ. ८.८८.२, अ. २०.९.२, ४९.५, साम. २.३६.
(३) नाना भोग्य पदार्थों से सम्पन्न ।
'इन्द्रः ससान पुरुभोजसं गाम्'
ऋ. ३.३४.९, अ. २०.११.९
(४) बहुत से भोग्य ऐश्वर्यों से समृद्ध -ईश्वर ।
'दत्राणि पुरुभोजसः'
ऋ. ८.४९.२ अ. २०.५१.२, साम. २.१६२.
(५) बहुत से प्रजाओं को पालन करने वाली ।
'पुनानोअर्कं पुरुभोजसं नः'
ऋ. ७.९.२

पुरुमन्तू- द्वि.व. । (१) बहुतों से मान आदर करने योग्य, (२) अति अधिक ज्ञानशील (३) अश्विद्वय, ।
'वसूरुद्रा पुरुमन्तू वृधन्ता'
ऋ. १.१५८.१
प्रजाओं को बसाने और स्वंय भी राष्ट्र और गृह में बसने वाले (वसू) दुःखों को दूर करने, उत्तम उपदेशों को देने और ५४ वर्ष का ब्रह्मचर्य करने वाले (रुद्रा), परस्पर बढ़ते और अधीनों की वृद्धि करते हुए (वृधन्ता), बहुतों से मान आदर करने योग्य स्त्री पुरुष , माता पिता अध्यापक उपदेशक ।

पुरुश्चन्द्र- (१) पुष्कल सुवर्णदियुत -दया. । बहुत सुवर्णादि से युक्त (२) बहुतों को सुखी करने में समर्थ, (३) बहुत से उत्तम प्रजा सन्तान आदि वाला लोक ऐश्वर्य या धन ।
'वस्वो रायः पुरुश्चन्द्रस्य भूयसः'
ऋ. २.२.१२.

पुरुमन्द्रा- द्वि.व. । (१) बहुत से मनुष्यों को सुखी, प्रसन्न, आनन्दित करने वाले अश्विद्वय या स्त्री पुरुष ।
'पुरुमन्द्रा पुरूवसू'
ऋ. ८.५.४,८.१२.

पुरुमायः- (१) अनेक निर्माण कारिणी शक्तियों से युक्त ।
'सत्यः सत्वा पुरुमायः सहस्वान्'
ऋ. ६.२२.१. अ. २०.३६.१.
(२) बहुत अधिक बुद्धि से बनाया हुआ, (३) बहुत सी आश्चर्य कारिणी घटनाओं को करने वाला -रथ, शरीर ।
'आ वां रथं पुरुमायं मनोजुवम्'
ऋ. १.११९.१
(४) बहुत सी प्रजाओं से सम्पन्न ।
'सं सहसे पुरुमायो जिहीते'
ऋ. ३.५१.४.

पुरुमाय्यः - (१) बहुत मतिमान, (२) बहुतों में आज्ञापक इन्द्र ।
'वाजेषु पुरुमाय्यम्'
ऋ. ८.६८.१०

पुरुमित्र- (१) बहुत से मित्र राजाओं से सहायवान् राजा (२) बहुत मित्रों वाला (३) विशेष हर्ष से युक्त ।
'न्यूहथुः पुरुमित्रस्य योषाम्'
ऋ. १.११७.२०,१०.३९.७.

पुरुमीढ- (१) पुरूणि मीढानि अपत्यानि धनानि वा यस्य ।
अति अधिक पुत्रों और धनों से युक्त
'कण्वः कक्षीवान् पुरुमीढो अगस्त्यः'
अ. १८.३.१५
(२) बहुतों को ज्ञान से सेचन करने वाला विद्वान् ।

'अग्नि राये पुरुमीढ श्रुतं नरः'
ऋ. ८.७१.१४, अ. २०.१०३.१, साम. १.४९
(३) बहुतों को दान देने वाला (४) बहुत से ऐश्वर्य से स्वयं समृद्ध ।
'युवां गोतमः पुरुमीढो अत्रिः'
ऋ. १.१८३.५.
(५) बहुत धनों का दाता (६) बहुत सींचा हुआ, (७) ज्ञान सम्पन्न पुरुष ।

पुरुमेधः- (१) बहुत से शत्रुओं का नाश करने वाला, (२) बहुत यज्ञ करने वाला ।
'पुरुमेधश्चित् तकवे नरं दात्'
ऋ. ९.९७.५२, साम. १.५४१, २.४५४.

पुरुयोजना- ब.व.। (१) बहुत से योजन, (२) बहुत से योजन अर्थात् योगों से बने पदार्थ ।
'यदाशुभिः पतसि योजना पुरु'
ऋ. २.१६.३.

पुरुरथः- (१) बड़े रथ वाला, आदित्य (२) बहुरंहणः रथः । 'रथ' शब्द रंह (गमनार्थक) से अच् प्रत्यय कर रथ बना है । (३) बहुत चलने वाला ।
'अतूर्तपयथाः पुरुरथो अर्यमा
सप्तहोता विषु रूपेषु जन्मसु'
ऋ. १०.६४.५, नि. ११.२३.
आदित्य सदा नियमपूर्वक पंथ वाले, अत्यन्त गति या बड़े रथ वाले, अन्धकार के नाशक तथा सात किरणों वाले हैं । वे दक्षिणायन और उत्तरायण के कारण विषम रूप जन्मों में प्रवृत्त रहते हैं ।
(४) बहुरंहणः (बहुत रथों वाला आदित्य का विशेषण ।

प्रसखाः- (१) पुरु अनेक विधं स्तनयित्नु शब्दं भृशं करोति यः स पुरुरवाः (अनेक प्रकारसे गर्जन करने वाला पुरुरवा है)। पुरु + रु (शब्द करना) + असुन् = पुरुरवस् । (२) पुरुरवा नामक उर्वशी का पति, (३) विद्युत, (४) घनघोर घटा वाला मेघ जो बराबर गरजता है (बहुधा रोरूयते स्तनयति) (५) माध्यमिक देव, (६) प्राण (प्राण एवहि पुरुरवाः)
'महे यत्त्वा पुरुरवो रणाय
अवर्धयन् दस्युहत्याय देवाः'
ऋ. १०.९५.७, नि. १०.४७.
हे पुरुरवा, देवों ने तुझे महान् युद्ध के लिए तथा मेघ वध के लिए जो बढ़ाया, इसीलिये नदियाँ या देवस्त्रियां तुझे बढ़ाती है ।
आधुनिक अर्थ-पुरुरवा नामक एक राजा जो बुध और इला के पुत्र थे । और चन्द्रवंश के प्रवर्तक थे । मित्र और वरुण के शाप से जब उर्वशी पृथ्वी लोक में आई तब पुरुरवा से उसे प्रेम हो गया, परन्तु पीछे वह स्वर्ग चली गई । पुरुरवा इससे बहुत दुःखी हुए । उर्वशी पांच वार उनके पास आई और उन से पांच पुत्र उत्पन्न हुए। विक्रमोर्वशीय में कथा इससे भिन्न है।

पुरुरावन् - (१) कर्मों का उपभोग तथा सन्तानों को देने वाला संसार ।
(२) अनेक प्रकार से दुःख देने वाला-रुलाने वाला ।
'पुरुराव्णो देव रिषस्पाहि'
वाज.सं. ३.४८, ८.२७, श.ब्रा. २.५.२.४७, ४.४.५.२२,१२.९.२.४, ला. श्रौ.सू. २.१२.९.
हे देव, अवभृथ नामक यज्ञ या वरुण, (देव), अनेकों कर्मों के उपभोग तथा सन्तापों को देने वाले संसार के (पुरुराव्णः) बन्धन से (रिषः) रक्षा कर (पाहि) ।
हे पूज्य प्रभो, अनेक विधि दुःख देने वाले पाप से (पुरुराव्णरिषः) मेरी रक्षा कर (पाहि) -दया.

पुरुरूप - (१) नाना रूपों या पदार्थों को बनाने वाला-परमेश्वर स्रष्टा ।
'त्वष्ट्रे पुरुरूपाय स्वाहा'
वाज.सं. २२.२०.तै.सं. ७.३.१५.१, मै.सं. ३.१२.५,१६२.५, का. सं. (अश्व.) ३.५ श.ब्रा. १३.१.८.७, तै.ब्रा. ३.८.११.२.
(२) नाना रुचिकर रूपों वाला अग्नि ।
'बृहत्केतुं पुरुरूपं धनस्पृतम्'
ऋ. ५.८.२

पुरुवर्पस् - (१) बहुत रूपों वाला परमात्मा या इन्द्र (२) अग्नि, वायु, आदित्य, विष्णु, मित्र, वरुण आदि अनेक रुपों वाला ।
'स्तुषेय्यं पुरुवर्पसमृभ्वम्'
ऋ. १०.१२०.६, नि. ११.२१.
स्तुत्य तथा बहुत रूपों वाला इन्द्र या परमात्मा को ।

पुरुवसु- (१) बहुतों को बसाने वाला (२) अग्नि।
'त्वंनरां शर्धोअसि पुरुवसुः'
ऋ. २.१.५.
(३) बहुत से लोकों या जनों में बसा हुआ इन्द्र, परमेश्वर।

पुरुवारः- (१) प्रचुर (२) सभी मनुष्यों से वर्णीय -दया.।
(२) बहुत देशान्तरों को आवृत करता हुआ, (२) बहुत बार।
'पुरुवारम् पुरुत्मना
त्वष्टा पोषायविष्यतु'
ऋ. १.१४२.१०, नि. ६.२१.
वैद्युताग्नि हमारे पालन पोषण के लिय स्वयं संचित जल को प्रचुर मात्रा में बहुत देशों को आवृत करता हुआ बरसावे।
(४) बहुत से प्रजाजनों से वरण करने योग्य (५) बहुत से शत्रुओं का वारण करने वाला।
'युवं पेयवे पुरुवारमश्विना'
ऋ. १.११९.१०
हे स्त्री पुरुषों, हे राजप्रजा वर्गों, हे राष्ट्र के नायक पुरुषों आप दोनो उत्तम आसन को प्राप्त करने वाले (पेदवे) के लिए बहुत से प्रजाजनों से वरण करने योग्य और बहुत से शत्रुओं का वारण करने वाले (पुरुवारम्)....

पुरुवारपुष्टिः- (१) जिससे बहुत वरणीय पुष्टि होती हो-वायु-दया.।
(२) बहुत से अभिलाषा करने योग्य ऐश्वर्यों और काम सुखों की सम्पत्ति को देने वाला परमेश्वर या राजा।
'स मातरिश्वा पुरुवारपुष्टिः
विदद्गातुं तनयाय स्वर्विदत्'
ऋ. १.९६.४

पुरुवीरः- (१) बहुत वीरों से युक्त (२) अतिवीर।
'पुरुवीरस्य नृवतः पुरुक्षोः'
ऋ. ६.२२.३, अ. २०.३६.३.
बहुत वीरवाले, परिचारकों से युक्त एवं बहुत अन्नयुक्त धन का। अथवा,
अतिवीर सैनिकादि अनेक मनुष्यों से युक्त तथा भली प्रकार बरसाने वाले राजा रुपी धन का।

पुरुश्चन्द्र - (१) बहुतों का आह्लादक, उत्साहवर्धक, सुखशान्ति दाता (२) सुवर्णादित ऐश्वर्यों वाला,।
'स नो महां अनिमानः
धूमकेतुः पुरुश्चन्द्रः'
ऋ. १.२७.११.साम. २.१०१४.
'सं वाजेभिः पुरुश्चन्द्रैरभि द्युभिः'
ऋ. १.५३.५, अ.२०.२१.५, मै.सं. २.६.६, २०.४, का.सं. १०.१२.

पुरुशाकः- (१) महान् शक्तिशाली परमेश्वर (२) महान् शक्तिशाली।
'सहस्रमूलः पुरुशाको अत्रिः'
अ. १३.३.१५.
(३) बहुत शाकादि उत्पन्न करने वाला, (४) इन्द्रिय गणों की शक्ति वाला आत्मा।
'तदोकसे पुरुशाकाय वृष्णे'
ऋ. ३.३५.७
(४) बहुत शक्तियों का स्वामी।
'व्यन्तु ब्रह्माणि पुरुशाक वाजम्'
ऋ. ७.१९.६, अ. २०.३७.६.
'शचीवतस्ते पुरुशाक शाकाः'
ऋ. ६.२४.४.

पुरुशाकतमा - (१) अश्विद्वय का विशेषण, (२) बहुत सी शक्तियों से सम्पन्न अश्विद्वय, (३) स्त्री पुरुष।
'ता वल्गूदस्रा पुरुशाकतमा'
ऋ. ६.६२.५

पुरुष- (१) पुरि + शी + खच् = पुरिशय = पुरुष (निपातन से सिद्ध)। पुरिशेत इति पुरुषः (शरीर या बुद्धि में शयन करने वाला या अधिष्ठान करने वाला आत्मा)।
(२) पुरि + सद् (बैठना, वास करना) घञ् = पुरिषाद = पुरुष । पुरुषः पुरिषादः (शरीर या बुद्धियों में विषयोपलब्धि के लिए रहने वाला) आत्मा (३) पृ (पूरणार्थक) + कुषन् = पुरः कुषन् = पुरुष। पूर्णम् अनेन पुरुषेण जगत् इति पुरुष। परमात्मा सर्वव्यापी है और इससे सम्पूर्ण जगत् पूर्ण है अतः वह पुरुष है।
(४) पूरयति अन्तः इत अन्तः पुरुषः (जो अन्तः को पूर्ण करता है। वह आत्मा ही पुरुष है।
(५) मनुष्य। मनुष्य का पुंरुषत्व इसी में है कि वह उन्नति करे - पूर्णता प्राप्त करे।
(६) पर्वन् + उषच् (मनुष्य अर्थ में) = पुरुष

(वन् का लोप वाहुलक नियम से)

(७) औपमन्यव आचार्य के मत से पर्वन् + मतुप् = पुरुष है ।

'यस्मापरं नापरमस्ति किञ्चित्
यस्मान्नाणीयो न ज्यायोऽस्ति कश्चित्
वृक्ष इव स्तब्धो दिवि तिष्ठत्येकः
तेनेदं पूर्णं पुरुषेण सर्वम् ।'

तै.आ. १०.१०.३, महा.ना.उप. १०.४, नि. २.३.

जिससे परे कोई पदार्थ नहीं, जिससे न कुछ छोटा है, न बड़ा, जो एक द्युलोक में वृक्ष की तरह स्तब्ध खड़ा है, उसी पुरुष से यह सम्पूर्ण जगत् पूर्ण है ।

(८) हिंसक, (९) चोर पुरुष, ।

'व्याघ्रः पुरुषो वृकः'

अ. ४.३.१.

(१०) जीवात्मा, चेतन ।

'पञ्चस्वन्तः पुरुष आविवेश'

वाज.सं. २३.५२, श.ब्रा. १३.५.२.१५, आश्व.श्रौ.सू. १०.९२, शां.श्रौ.सू. १६.६.४, वै.सू. ३७.२, ला.श्रौ.सू. ९.१०.१२.

(११) सर्वप्राणिसमष्टिरूपो ब्रह्माण्ड देहो विराडाख्योयः पुरुषः (सभी प्राणियों का समष्टि रूप ब्रह्माण्डमय शरीर वाला, विराट् नामक पुरुष)

(१३) सर्वत्र पूर्णो जगदीश्वर-दया. ।

(१४) नाना इमे वै लोकाः पूः । अयमेव पुरुषः योऽयं पवते । सोऽस्यां पुरि शेते तस्मात् पुरुषः- श.ब्रा. । (ये नाना लोक ही पुर है, यही पुरुष है जो इनमें व्याप्त है- इनमें वह शयन करता है, इसीसे वह पुरुष है) ।

पुरुषजीवनी- पुरुष शरीर को जीवन प्रदान करने वाली या प्राणधारण करने में समर्थ ओषधि ।

'उग्राः पुरुषजीवनीः'

अ. ८.७.४

पुरुषजीवन- पूर्ण जीवन प्राप्त करने वाला आंजन

'भद्रं पुरुष जीवनम्'

अ. १९.४४.३

पुरुषता- पुरुषों में, जनता के बीच लोगों में ।

मानो वर्हिः पुरुषता निदेकः

ऋ. ७.५.७५.८

पुरुषत्रा- पुरुषों को बीच ।

'मा नो निकः पुरुषत्रा नमस्ते'

ऋ. ३.३३.८

पुरुषत्वत् - बहुत से पुरुषों से युक्त ।

दीनैर्दक्षैः प्रभूतीपुरुषत्वता'

ऋ. ४.५४.३, तै.सं. ४.१.११.१, मै.सं. ४.१०.३, १४९.१६.

पुरुषत्वता- पुरुषार्थ ।

'न तस्यविद्म पुरुषत्वता वयम्'

ऋ. ५.४८.५.

पुरुष तेजाः- आत्मा के समान तेजस्वी ।

'प्राण संशितः पुरुषतेजाः'

अ. १०.५.३५

पुरुषन् - पुरुष बनता हुआ ।

'वत्साः पुरुषन्त आसते'

अ. २०.१३४.२, शां.श्रौ.सू. १२.२३.१.

पुरुषन्ति- बहुत ऐश्वर्यों का देने वाला ।

'याभिर्ध्वसन्ति पुरुषन्तिमावतम्'

ऋ. १.११२.२३.

पुरुषन्त्यौ - बहुत ऐश्वर्यों देने वाले आत्मा परमात्मा ।

ध्वस्तयोः पुरुषन्त्योः
आ सहस्राणि दद्महे'

ऋ. ९.५८.३, साम. २.४०९.

पुरुषमृग- (पुरुषों को अपने उपदेश, आचार, व्यवस्था द्वारा पवित्र करने वाला, (२) पुरुष विश्वानर ।

'पुरुषमृगश्चन्द्रमसः'

वाज.सं. २४.३५, तै.सं. ५.५.१५,१ मै.सं. ३.१४.१६, १७५.१२, का .सं. (अश्व.) ७.५.

पुरुष रेषणः- (१) पुरुषों का विनाश करने वाला -अग्नि, (२) मृत्यु का रौद्र संहार ।

'शान्तः पुरुष रेषणः'

अ. ३.२१.९

पुरुषवध- पुरुष की हत्या ।

'सर्वेपुरुष वधाः'

अ. १२.५.१४

पुरुषवाक् - पुरुष वाणी बोलने वाली सारिका ।

'सरस्वत्यै शारिः पुरुष वाक्'

वाज.सं. २४.३३, तै.सं. ५.५.१२.१, मै.सं. ३.१४.१४,१७५.६, का.सं. (अश्व.) ७.२.

पुरुषव्याघ्र - पुरुषों में व्याघ्र के समान शूरवीर

पुरुष ।

'पुरुष व्याघ्राय दुर्मदम्'

वाज.सं. ३०.८, तै.ब्रा. ३.४.१.५.

पुरुषहविः - (१) पुरुष मेघ यज्ञ में पुरुष की हवि, (२) आत्मा की हवि अर्थात् परमात्मा के प्रति समर्पण ।

'यत् पुरुषेण हविषा
देवा यज्ञमतन्वत'

ऋ. १०.९०.६, अ. ७.५.४, १९.६.१०, वाज.सं. ३१.१४, तै.आ. ३.१२ .३.

पुरुषो ह वै नारायणोऽकामयत । अतिष्ठेयं सर्वाणि भूतानि अहमेवे दं सर्वं स्याम् इति । स एतं पुरुषमेधं पञ्चरात्रं यज्ञ क्रतुं अपश्यत् । तम् आहरत् । तेनायजत । तेनेष्ट्वा व्यतिष्ठत् ।
अतितिष्ठतिसर्वाणि भूतानि

'इदं सर्व भवति'

श.ब्रा. १३.५.६.१

(३) मन्त्र के पुरुष शब्द का अर्थ अश्वरूप हवि है ।

'अथ स पुरुषो ब्रह्मणे ब्राह्मणमालभते'

तै.ब्रा. ३.४.१.१.

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र आदि रूप में बहुतसे पुरुष पशु हैं । उनमें यज्ञ विस्तार का वर्णन किया गया है ।

गीता में भी-

'श्रेयान् द्रव्य मयात् यज्ञात्
ज्ञानयज्ञः परन्तप'

गी. ४.३३.

पुरुष्यः- पुरुषों का हितकारी

'उतोघा ते पुरुष्या इदासन्'

ऋ. ७.२९.४

पुरुषाद- पुरुष + अद् + विद् = पुरुषाद

'अदोऽनन्ने' पा. ३.२.६८, से कर्त्ता मे हेतु , ताच्छील्य और आनुलोम्य अर्थ में विट् प्रत्यय होता है।

(१) 'यः पुरुषान् जनान् अदतिं (जो पुरुषों को खाता है वह पुरुषाद है) ।

(२) अथवा पुरुषों को खाने के लिये शत्रुओं के प्रति आक्रमण करने वाला ।

पुरुषाद् - (१) मनुष्यों को भी खा जाने वाला सिंह, व्याघ्र आदि पशु

'सिंहा व्याघ्राः पुरुषादश्चरन्ति'

अ. १२.१.४९

(२) देह पुर में वसे जीव को खाने वाले

'सतोवयः प्रपतान् पूरुषादः'

ऋ. १०.२७.२२, नि. २.६.

पुरुषी- मानव स्त्री

'पर्जन्यः पुरुषीणाम्'

ऋ. ७.१०२.२, तै.ब्रा. २.४.५.६, तै.आ. १.२९.१.

पुरुषेषिता - (१) कुसंगी दुष्ट पुरुषों से प्रेरित पीड़ा व्याधि

'यदिवा पुरुषेषिताः'

अ. २.१४.५.

पुरुसम्भृत- (१) खान जिसमें प्रचुर धन भरा हो, (२) इन्द्रियों या बहुत सी प्रजाओं द्वारा सम्यक् प्रकार से धारित

'निखातं चिद्यः पुरुसम्भृतंवसू'

ऋ. ८.६६.४

'पुरुस्पृत् - पुरु + स्पृत् (१) बहुतों से स्पृहणीय

'महत्तन्नाम गुह्य पुरुस्पृक्'

ऋ. १०.५५.२, शां.श्रौ.सू. १८.१.८.

पुरुस्पृह् - (१) बहुतों का इच्छित प्रजाओं को चाहने योग्य ऐश्वर्य

'रयिं समुद्रादुत वा दिवस्परि
अस्मे धत्तम् पुरुस्पृहम्'

ऋ. १.४७.६.

(२) बहुतों से स्पृहा करने वा

'पावकासः पुरुस्पृहः
द्वारो देवीरसश्चतः'

ऋ. १.१४२.६

पुरुहन्मा - (१) बहुत कष्टों का या बहुतों का नाशक, (२) बहुत पदार्थों का ज्ञाता

'इन्द्रं तं शुम्भ पुरुहन्मन्नवसे'

ऋ. ८.७०.२, अ. २०.९२.१७,१०५.५ साम. २.८४.

(३) बहुत कष्टों का या बहुतों का नाशक

पुरुहूत - (१) पुरु + हू + क्त = पुरुहूत । पुरुभिः हूतः (बहुतों से स्तुत या आहूत, (२) इन्द्र का एक नाम ।

'उताभ्यो पुरुहूत श्रवोभिः'

ऋ. ३.३०.५

(३) पार्थिव उदक, (४) नदी, तालाब आदि जिसमें वर्षा का जल चारों ओर से बहकर आता

है ।

'सुगान् पथो अकृणोन्निरजेगाः
प्रावन् वाणीः पुरुहूतं धमन्तीः '

ऋ. ३.३०.१०, नि. ६.२.

हे इन्द्र, तूने जल के निर्गमन के लिए सुगम मार्ग बनाए और वे जल भी उन मार्गों से नीचे जाते हुए नदियों में जा प्राणियों की रक्षा करते हैं ।

(५) देवताओं के रक्षार्थ आहूत इन्द्र,
(६) निर्वाचित राजा- दया. ।

पुरूची - (१) पुरुणि सुखानि अञ्चती (बहुत सुखों की देने वाली)

(२) बहुत से पदार्थों और देशों तक पहुंचाने वाली ।

'अश्विना परि वामिषः पुरूची '

ऋ. ३.५८.८

(३) सर्व व्यापक वाणी ।

'हन्वोर्हि जिह्वामद्धात् पुरूची '

अ. १०.२.७.

(४) बहुत से ऐश्वर्य प्राप्त करने वाला प्रजाजन ।

'शतं जीवन्तु शरदः पुरूचीः '

ऋ. १०.१८.४; अ. १२.२.२३; वाज.सं. ३५.१५; श.ब्रा. १३.८.४.१२; तै.ब्रा. ३.७.११.३; तै.आ. ६.१०.२; आप.श्रौ.सू. ९.१२.४; १४.२२.३; आप.मं.पा. २.२२.२४.

(५) बहुत ऐश्वर्य पूर्ण ।

पुरूतम - बहुत सी प्रजाओं में सबसे श्रेष्ठ ।

'पुरुतमं पुरूणाम् '

ऋ. १.५.२; ६.४५.२९; अ. २०.६८.१२; साम. २.९१; जै.ब्रा. १.२२६.

पुरूरवाः - (१) पुरुरवा नामक राजा जो ऊर्वशी का प्रेमी था, (२) अनेक सैन्यदल के प्रति आज्ञा करने वाला से नायति ।

'पुरुरवः पुनरस्तं परेहि '

ऋ. १०.९५.२; श.ब्रा. ११.५.१.७.

पुरूरुणाः - पुरु + उरुणा । (१) बहुत प्रकार का महान और उत्तम ।

'पुरूरुणा चिद्ध्यस्त्यवो नूनं वां वरुण '

ऋ. ५.७०.१; साम. २.३३५; पंच.ब्रा. १३.२.४; आश्व.श्रौ.सू. ७.२.२.

पुरूवसुः - (१) इन्द्रियों में बसने वाला आत्मा ।

'संधाता संधिं मधवा पुरूवसुः '

ऋ. ८.१.१२; अ. १४.२.४७; साम. १.२४४; मै.सं. ४.९.१२: १३४.१; पंच.ब्रा. ९.१०.१; तै.आ. ४.२०.१; का.श्रौ.सू. २५.५.३०; आप.मं.पा. १.७.१.

(२) बहुतों से लोकों में बसने और बहुतों को बसाने में समर्थ ।

'पुरुहूत पुरूवसोऽसुरघ्नः '

ऋ. ६.२२.४; अ. २०.३६.४.

पुरूवृत् - समस्त शरीर में घूमने वाला-रक्त ।

'पुरूवृतः सिन्धुसृत्याय जाताः '

अ. १०.२.११

पुरोगवः - (१) अग्रगामी ।

'इन्द्र ऐतु पुरोगवः '

अ. १२.१.४०

(२) पुरोहित, आचार्य ।

'सूर्याया अश्विना वराग्निरासीत् पुरोगवः '

ऋ. १०.५८.८; अ. १४.१.८

(३) आगे बढ़ना ।

'यज्ञानेतरसं पुरोगवायः '

अ. २०.१३५.७

(४) आगे चलने वाला, (५) समक्ष वाणी को प्रकट करने वाला ज्ञानवान् पुरुष ।

'अग्निरासीत् पुरोगवः '

ऋ. १०.८५.८, अ. १४.१.८

पुरोगवाः- रथ में आगे जोते बैल

'पुरोगवा ये अभिशाचो अस्य '

अ. १८.४.४४

पुरोगवी- (१) वाणी को आगे फेंकने वाली जिह्वा ।

'जिह्वा वाचः पुरोगवी '

ऋ. १०.१३७.७, अ. ४.१३.७.

पुरोगाः- पुरस् + गम् + विट् = पुरोग । 'विडवनोः' से आत्व । (१) पुरोगामी, (२) मुख्य, अग्रणी, (३) अग्नि का एक पर्याय ।

'अग्निर्देवानामभवत् पुरोगाः '

ऋ. १०.११०.११, अ.५.१२.११, वाज.सं. २९.३६, मै.सं. ४.१३.५,२०. ५.५, का.सं. १६.२०, तै.ब्रा. ३.६.३.४, नि. ८.२१.

अग्नि देवताओं में मुख्य या अग्रणी हुआ ।

'पुरोगा अग्नि र्देवानाम् '

ऋ. १.१८८.११

पुरोऽनुवाक्या - अथर्ववेद के प्रकरण ।

'ऋचः पुरोऽनुवाक्याभिः'
वाजः सं. २०.१२, २७,श.ब्रा. १२.८.३.३,

पुरोडाश- (१) आदरपूर्वक सामने रखा हुआ भोजन या ऐश्वर्य ।
'व्रीहि शूर पुरोडाशम्'
ऋ. ३.४६.३, अ. २०.२३.३, का.सं. २६.११, तै.ब्रा. २.४.६.२, नि. ४.१९.
(२) पुरः दाश्यते दीयत इति पुरोडाशः (जो सामने भोजन के लिये प्रस्तुत किया जाता है वह पुरोडाश है) ।
यह सुन्दरतम सात्त्विक भोजन है । आजकल के प्रचलित पूडी, पूरी आदि शब्द इसी पुरोडाश का बिगड़ा रूप है ।
(३) पशु
पशुर्वै पुरोडाशः'
पशु ही पुरोडाश हैं ।
(४) ब्राह्मण, (५) आत्मा, (६) मस्तिष्क
'आत्मा वै यजमानस्य पुरोडाशः'
तै.ब्रा. ३.२.२.७
'एत् पुरोडाशमेव कूर्मं भूत्वा सर्पन्तम्'
श.ब्रा. १.६.२.३
'स एष उभत्र्याच्युत आग्नेयोऽष्टाकपालः पुरोडाशो भवति'
श.ब्रा. १.६.२.५.
हविः पुरोडाशं स्रुचो यज्ञायुधानि
अ. १८.४.२
(७) काम करने के पूर्व ही दिया गया पेशगी बयाना ।
'पुरोडाशान् बध्नन्नश्विभ्याम्'
वाज.सं. २१.५९, वाज.सं. (का.) २३.५८.
(८) प्रकाश, (९) सुसंस्कृत अन्न ।
'पुरोडाशेन सविता जजान'
वाज.सं. १९.८५, वाज.सं. (का.) २१.८५, मै.सं. ३.११.९, १५३.११, का.सं. ३८.३, तै.ब्रा. २.६.४.३,

पुरोडा- आगे रखा हुआ ।
'पुरोडा अग्ने पचतः'
ऋ. ३.२८.२, आश्व.श्रौ.सू. ६.५.२५, नि. ६.१६.

पुरोडाशवत्सा - पुरोडाश अर्थात् अन्न को बछड़ा बनाने वाली वशा -गौ ।
'पुरोडाशवत्सा सुदुघा'
अ. १२.४.३५

पुरोडाशौ- (१) आकाश और द्युलोक
'क्रोडौ ते स्तां पुराडाशौ'
अ. १०.९.२५

पुरोधा- पुरोहित का कार्य ।
'अस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् कर्मण्यस्यां पुरोधायामस्यां प्रतिष्ठायामस्याम्'
अ. ५.२४.१-१७

पुरोभूः- सब से पूर्व और सब के आगे होकर रहने वाला अग्रणी नायक।
'सतः सतः प्रतिमानं पुरोभूः'
ऋ. ३.३१.८

पुरोयावा- आगे चलने वाला
'पुरोयावान् माजिषु'
ऋ. ५.३५.७, ८.८४.८, तै.सं. ३.५.११.५, मै.सं. ४.१०.३, १४८.१४, का.सं. १५.१२, ऐ.ब्रा. १.१६.३३.

पुरोयुधा- द्वि.व. । (१) इन्द्रापर्वता का विशेषण । इन्द्रापर्वत का अर्थ है- इन्द्र और पर्वत, आचार्य और पिता । पुरोयुधा का अर्थ- (१) सब से आगे जाकर युद्ध करने वाले, (२) पूर्व अवस्था- बाल्य काल में ताड़न करने वाले आचार्य और पिता । (३) आगे बढ़कर लड़ने वाले इन्द्र वरुण ।
'युवं तमिन्द्रापर्वता पुरोयुधा'
ऋ. १.१३२.६, वाज.सं. ८.५३. श.ब्रा. ४.६.९.१४, आश्व.श्रौ.सू. ८.१३.२३, वै.सू. ३४.१, आप.श्रौ.सू. २१.१२.९.
'पुरोयोधा भवतं कृष्ट योजसा'
ऋ. ७.८२.९

पुरोयोध- आगे बढ़कर प्रहार करने वाला योद्धा ।
'पुरोयोधश्च वृत्रह्न'
ऋ. ७.३१.६, अ. २०.१८.६

पुरोरथ - रथ के सामने ।
'प्रौष्वस्मै पुरोरथमिन्द्राय शूषमर्चत'
ऋ. १०.१३३.१, अ. २०.९५.२, साम. २.११५१, तै.सं. १.७.१३.५, मै.सं. ४.१२.४, १८९.७, तै.ब्रा. २.५.८.१
हे स्तोताओं, प्रकृष्ट तथा प्रशस्त स्तुतियों से इस इन्द्र के रथ के सामने खड़े होकर इसके बल की स्तुति करो ।

पुरोरुच्- सूर्य के आगे चलने वाली दीप्ति ।

'पुरोरुचा पूर्वकृद् वावृधानः '
वाज.सं. २०.३६, मै.सं. ३.११.१,१३९.१२, का.सं. ३८.६, तै.ब्रा . २.६.८.१.

पुरोहितः- (१) सब के पूर्व विद्यमान् सूर्य , (२) सर्वोपरि साक्षी ।
'मह्ना देवानामसुर्यः पुरोहितः '
ऋ. ८.१०१.१२, अ. २०.५८.४, साम. २.११३९, वाज.सं. ३३.४०.
(३) पुरोहित, (४) सबके सामने अध्यक्ष या मार्ग दर्शक ।
(४) मुख्य भाग पर नियत ।
'स संनयः सविनयः पुरोहितः '
ऋ. २.२४.९
'अग्निमीडे पुरोहितम् '
ऋ. १.१.१, आ.सं. ३.४, तै.सं. ४.३.१३.३, मै.सं. ४.१०.५, १५५.१, का.सं. २.१४, गो.ब्रा. १.१.२९, आश्व.श्रौ.सू. २.१.२६, शां.श्रौ.सू. ६.४.१, १४.५२.१, आश्व.गृ.सू. ३.५.६, शां.गृ.सू. ४.५.७, नि. ७.१५.
(६) परमात्मा या अग्नि का विशेषण ।
'यद्देवापिः शन्तनवेपुरोहितो
होत्राय वृतः कृपयन्नदीधेत् '
ऋ. १०.९८.७

पुरोहितिः- आदरपूर्वक भली वस्तुओं की भेंट
'इयं देव पुरोहितिर्युवभ्याम् '
ऋ. ७.६०.१२, ६१.७

पुरोहिते – पुरोहित के तुल्य एक दूसरे के कार्य का साक्षी, द्यावापृथिवी या स्त्री पुरुष ।
'उर्वी पृथ्वी होतृवूर्ये पुरोहिते '
ऋ. ६.७०.४

पुलस्तिः- बड़े बड़े भारी पदार्थों को उठाने वाले यन्त्रों का निर्माता ।
'नमः कपर्दिने च पुलस्तये च '
वाज.सं. १६.४३, वाज.सं. (का.) १७.७.२, तै.सं. ४.५.९.१

पुल्वघः – पु.वि. (१) बहुत खाने वाला । पुरु + घस् + क्विप् (ताच्छील्यविशिष्ट कर्त्ता अर्थ में) = पुल्वघ (धातु में अट् का आगम) ।
'संज्ञापूर्व को विधि रनित्यः' इस परिभाषा से उपधा का दीर्घ नहीं हुआ । अर्थ है – बह्वादी
(२) सर्व संहारक – ज. दे.श.
'क्व स्य पुल्वघो मृगः
कमगं जनयोपनः '
ऋ. १०.८६.२२, अ. २०.१२६.२२, नि. १३.३.
सूर्य के अस्त हो जाने पर लोग विस्मित होकर कहते हैं-बहुत खाने वाला, सततगामी लोगों को मोहने वाला कहाँ गया ?
ऊर्ध्वगामी मुक्तात्मा के ब्रह्म धाम जाने पर प्रश्न –
तब तेरा वह सर्व संहारक तथा अन्तर्धान होने वाला (पुल्वघः मृगः) जनों को मोहने वाला स्वरूप कहाँ चला जाता है ?
(३) सन्तत गमनः (सदा चलने वाला) (सूर्य का विशेषण)
(४) पुरु + अघ = पुल्यघ ।
अतिपापभागी

पुलुकाम – पुरुकामः पुरु कामयते, बहुकामवान् भवति (बहुत कामना वाला) । र, ल की समानता प्रसिद्ध है ।
'इमं नु सोममन्तितः
हृत्सु पीतमुपब्रुवे
यत् सीमागश्चकृमा तत् सु मृळतु
पुलकामो हि मर्त्यः '
ऋ. १.१७९.५
अगस्त्य और लोपामुद्रा का संवाद सुन अन्तेवासी ब्रह्मचारी पाप का प्रायश्चित करने के लिए कहता है । शौनक के अनुसार इस के जाप से पापों से मुक्ति तो मिलती ही है मनुष्य की सभी कामनाएं भी सिद्ध होती हैं ।
'इमंनु सोममित्यते द्वे
ऋचौ प्रयतो पुमान् सर्वान्
कामान् अवाप्नोति पापेभ्यश्च प्रमुच्यते '
मैं समीप में वर्तमान (अन्तितः) पीए जाते हुए (पीतम्) अपने हृदय प्रदेशों में अवस्थित (हृत्सु) इस सोम को (इमं सोमम्) सर्वतः (सीम्) शीघ्र (तु) निकट जा हृदय से प्रार्थना करता हूँ (उप ब्रुवे) कि जो गुरुजनों के काम प्रलाप के श्रवण से हुए पाप को हम ने किया है (चकृम) उसे यह सोम ऐसा परिमार्जित करे कि हमें सुख हो (सुमृडतु), क्योंकि मनुष्य बहुत कामना वाला होता है अर्थात् वह स्वभावतः थोड़ा कर्म कर बहुत कामनाओं की पूर्ति चाहता है और अवश

हो पाप कर्म कर डालता है। यह सोम पीया जाकर वह पाप दूर करे।

पुंश्चली- नारी
'श्रद्धा पुंश्चली'
ऋ. १५.२.५

पुंश्चलू- पुरुषों में अतिचंचल स्वभाव वाला पुरुष या स्त्रीं।
'कामाय पुंश्चालूम्'
वाज.सं. ३०.५, तै.ब्रा. ३.४.१.१.

पुष्कर - (१) पोषति भूतानि अवकाशदानेन पुष्णाति (अवकाशदान द्वारा जीवोंको पोषता है)। अर्थ है अन्तरिक्ष। अंग्रेजी का sky शब्द 'पुष्कर' का ही बिगड़ा रूप प्रतीत होता है। जैसे पुष्कर -ष्कअ - स्काय sky (२) जल कलश - सा.
(३) जलम्, उदकम्
उदकं पुष्करं पूजाकरं पूजयितव्यमिदम् (जल का नाम भी पुष्कर है क्योंकि जल से पूजा की जाती है, या जल पूजनीय है)।
(४) 'वपुष्करं वा' (पुष्कर वपुष्कर अर्थात् शरीर को पुष्ट करने वाला है। सुन्दर गन्ध के ग्रहण से शरीर पुष्ट होता है)।
पुष् (पोषणार्थक) + करन् = पुष्कर। यहां पुष् धातु में णिच् निहित है।
'विश्वे देवाः पुष्करे त्वाददन्त'
ऋ. ७.३३.११, नि. ५.१४.
जल या स्खलित वीर्य को सूर्य की किरणें या विश्वेदेवों ने अन्तरिक्ष या जल कलश में रख दिया।
(५) सबको पुष्ट करने वाला अन्तरिक्ष, (६) सूर्य या (७) मेघ
'त्वामग्ने पुष्करादधि
अथर्वा निरमन्थत'
ऋ. ६.१६.१३, साम. १.९, वाज.सं. ११.३२, १५.२२, तै.सं. ३.५.११.३, ४.१.३.२, ४.४.१, मै.सं. २.७.३, ७७.४, का.सं. १६.३, वै.सू. ५.१४, श.ब्रा. ६.४.२.२.
आधुनिक अर्थ- नीलकमल, हाथी, जिह्वा का अन्तिम छोर, नगाड़े के चमड़े का वह स्थान जहाँ बजाने वाले चोट देते हैं, तलवार का फल, तलवार की म्यान, बाण, वायु, आकाश, वातावरण, पिंजड़ा, जल, मद, नृत्य कला, युद्ध, संघ, अजमेर का पुष्कर क्षेत्र, तालाब, झील, एक प्रकार का सर्प, एक प्रकार का नगाड़ा, सूर्य, एक प्रकार का मेघ, कृष्ण का एक विशेषण, शिव का एक विशेषण, ब्राह्मण के सात भागों में एक भाग।

पुष्करपर्ण - पुष्कर का पत्ता।
पुष्करपर्णं पचम्
अ. ८.१० (५) ६.

पुष्करस्रक् - पुष्टिकर पदार्थों के द्वारा बने शरीर वाला।
'कुमारं पुष्करस्रजम्'
वाज.सं. २.३३, आश्व. श्रौ.सू. २.७.१४, शां.श्रौ.सू. ४.५.८, आप.श्रौ.सू. १.१०.११, कौ.सू. ८९.६, साम.मं.ब्रा. २.३.१६

पुष्करस्रजा- द्वि.व.। पुष्टि करने वाले और सर्जन करने वाले मूल कारण- वीर्य और रज।
'गर्भं ते अश्विनोभा धत्तां पुष्करस्रजा'
अ. ५.२५.३

पुष्करसादः- (१) तालाब को बनाने वाला, (२) पुष्ट करने वाला, (३) दीर्घ दुर्गों को बनाने वाला, (४) वीवर नामक जन्तु जो गृह बनाने में चतुर होता है।
'कलविङ्को लोहिताहिः
पुष्करसादस्ते त्वाष्ट्राः'
वाज.सं. २४.३१

पुष्करिणी- (१) पुष्ट करने वाली शक्ति, (२) कमल से भरी पोखरी।
'उपत्वा तिष्ठन्तु पुष्करिणीः समन्ताः'
अ. ४.३४.५-७
'भोजस्येदं पुष्करिणीव वेश्म'
ऋ. १०.१०७.१०, नि. ७.३.
दाता के लिए पुष्करिणी के सदृश गृह मिलता है।
(३) पुष्ट करने वाली जलभरी थैली, (४) गर्भ डिम्बा।
'यथा वातः पुष्करिणीं
समिंगयति सर्वतः'
ऋ. ५.७८.७, बृ.आ. उप.६.४.२२.

पुष्ट- (१) वेतनादि से पुष्ट भृत्य जन।
'अर्यः पुष्टेषु मत्सखा'
ऋ. १०.८६.१, अ. २०.१२६.१, शां.श्रौ.सू.

१२.१३.२, वै.सू. ३२.१७, नि. १३.४.
(२) पुष्टि
'मयि पुष्टं पुष्ट पतिर्दधातु'
अ. ७.१९.१, १९.३१.६, मै.सं. २.१३.२३, १६९.५, का.सं. १३.१५.१६, ४०१, तै.आ. (आंध्र) १०.६७.२
(३) पुष्ट, (४) कल्याण, पुष्टि ।
'देवानां पुष्टे चकृया सुबन्धुम्'
ऋ. १.१६२.७, वाज.सं. २५.३०, तै.सं. ४.६.८.३, मै.सं. ३.१६.१, १८२.५, का.सं. (अश्व.) ६.४.
उस अश्व को विप्र ऋषि देवताओं के कल्याण तथा पुष्टि के लिये बनावे ।
(४) पोषण कार्य

पुष्टपति– (१) नाना प्रकार के पुष्टि कारक पदार्थों का स्वामी पूषा–परमेश्वर ।
'यस्य व्रते पुष्टपतिर्निविष्टः'
ऋ. खि. ७.९६.१, अ. ७.४०.१, तै.सं. ३.१.११.३, मै.सं. ४.४०.१, १४२.१४, का.सं. १९.१४, आश्व.श्रौ.सू. ३.८.१, शा.श्रौ.सू. ६.११.८.
(२) पोषण क्रिया का स्वामी–परमेश्वर ।
'मयि पुष्टं पुष्टपतिर्दधातु'
अ. १.७.१९.१, १९.३१.६.

पुष्टानां पतिः– (१) हृष्ट पुष्ट बालकों के पिता या पालक, (२) रुद्र, (३) पशुओं का पालक–रुद्र ।
'पुष्टानां पतये नमः'
वाज.सं. १६.१७, तै.सं. ४.५.२.१, मै.सं. २.९.३, १२२.१०, का.सं. १७.१२

पुष्टावान् – (१) हृष्टपुष्ट पशु का स्वामी ।
'पुष्टावन्तो यथा पशुम्'
ऋ. ८.४५.१६, साम. १.१३६
(२) पुष्टि कारक पदार्थ घास दान आदि को हाथ में घास दान आदि को हाथ में लिए हुआ ।

प्रुषित – (१) स्निग्ध, (२) अतिअधिक दाहकारी –अग्नि ।
'अत्यो न पृष्ठं पुषितस्य रोचते'
ऋ. १.५८.२

पुष्टिः– (१) पुष्ट करना ।
'ऊर्जव्यस्य पुष्टिः'
(अन्नों की पुष्टि के लिये)।
(२) सुख को बढ़ाने वाली ।
'पुष्टिर्नरण्वा क्षितिर्न पृथ्वी'
ऋ. १.६५.५.
(३) पोषणकारी शक्ति ।
'पुष्ट्या सह जज्ञिषे'
अ. १९.३१.९
(४) हृष्ट पुष्ट जीव ।
'सो अर्यः पुष्टीर्विज इवा मिनाति'
ऋ. २.१२.५, अ. २०.३४.५

पुष्टिमत् – पुष्टिकारक ।
'अर्यो वा पुष्टिमद्वसु'
ऋ. १०.८६.२, अ.२०.१२६.३

पुष्टिम्भर– पोषणकारी सम्पदा अन्न, पशु आदि को धारण करने वाला ।
'कथामहे पुष्टिम्भराय पूष्णे'
ऋ. ४.३.७

पुष्टिवर्धनः– (१) पुष्टि बढ़ाने वाला (२) अन्न आदि पुष्टिकारक समृद्धि को बढ़ाने वाला ।

पुष्टिवर्धना– (१) राष्ट्र की पुष्टि बढ़ाने वाले – इन्द्राग्नी (२) सेनापति और ग्रामणी
'इन्द्राग्नी पुष्टिवर्धना'
वाज.सं. २१.२०, मै.सं. ३.११.११, १५८.१४, का.सं. ३८.१०, तै.ब्रा. २.६.१८.४

पुष्प– (१) पुप् (विकास अर्थ में) + क्त = पुष्प पुष्पं पुष्यतः, पुष्प पुप् धातु से बना है । अर्थ है – फूल
(२) विकसित करने वाला ।
'सिन्धोर्गर्भोऽसि विद्युतां पुष्पम्'
अ. १९.४४.५
आधुनिक अर्थ– फूल, मासिक स्राव, आंख का एक रोग, कुबेर का विमान, वीरता , प्रेम की भाषा में नम्रता ।

पुष्पवती– (१) फूलों से युक्त ओषधि
ओषधीः प्रतिमोदध्वं
पुष्पवतीः प्रसूवरीः।
ऋ. १०.९७.३, वाज.सं. १२.७७.
'पुष्पवतीः प्रसूमतीः'
अ. ८.७.२७, का.सं १६.१३.

पुष्पा– एक औषधि ।
'पुष्पां मधुमतीमिह'
अ. ८.७.६

पुष्पिणी– फूलने वाली ओषधि ।
'अपुष्पा याश्च पुष्पिणीः'

ऋ. १०.९७.१५, वाज.सं. १२.८९, तै.सं. ४.२.६.४.

पुष्यः- पुष्य नामक नक्षत्र ।
'पुनर्वसू सूनृता चारु पुस्यः'
अ. १९.७.२

पुष्यस्- (१) पुष्ट करना ।
'प्रवाजेभिस्तिरत पुष्यसेनः'
ऋ. ७.५७.५
(२) पुष्ट होना ।
'द्युम्नं वृणीत पुष्पसे स्वाहा'
ऋ. ५.५०.१, वाज.सं. ४.८,११.६७,२२.२१.

पुंसः- ब.व. (१) परमेश्वर के पुरुष रूप, जैसे- अग्नि, इन्द्र, मित्र, वरुण आदि (२) सूर्य की रश्मियां जो पुरुषवत् वीर्ययुत जल पृथ्वी पर बरसती हैं । (३) प्राण ।
'स्त्रियः सतीस्तां उ मे पुंस आहुः'
ऋ. १.१६४.१६, अ. ९.९.१५, नि. १४.२०.

पुंसवन- प्रमान् के उत्पन्न होने का विधान ।
'तत्र पुंसवनं कृतम्'
अ. ६.११.१

पूः - (१) सब मनोरथों का पूरक अग्नि ।
'परित्वाग्ने पुरं वयम्'
ऋ. १०.८७.२२, अ. ७.७१.१, ८.३.२२, वाज.सं. ११.२६, तै.सं. १.५.६.४, ८.५, ४.१.२.५, मै.सं. २.७.२, ७६.८, का.सं. १६.२, १९.३, ३८.१२, श.ब्रा. ६.३.३.२५.

पूतदक्ष- (१) पवित्र करने में दक्ष,
'मित्रं हुवे पूतदक्षम्
वरुणं च रिशादसम्'
ऋ. १.२.७, साम. २.१९.७, वाज.सं. ३३.५७
पवित्र करने में दक्ष मित्र को या उदजन वायु को बुलाता हूँ । तथा धातुओं को मुर्चा द्वारा खाने वाले ओषजन वायु को (दिशादशम् वरुणम्) मैं ग्रहण करता हूँ ।
(२) पवित्र करने में दक्ष उदजन वायु । 'मित्र' का विशेषण ।
उदजन और ओषजन वायु के योग से ही जल निर्माण होता है ।
(२) पवित्र करने वाला ।
'ऋतस्य वो रथ्यः पूतदक्षान्'
ऋ. ६.५१.९

पूतुद्रुः- (१) शरीररूप वृक्ष को सदा पवित्र करने वाला- जीवात्मा (२) सर्वारिष्ट निवर्तकः रक्षा *'मण्युपादानभूतः वृक्षविशेषः'*
(सब अरिष्टों का निवारक रक्षा मणि स्वरूप एक वृक्ष)
(३) महान् ब्रह्माण्डमय वृक्ष को पवित्र करने वाला- परमेश्वर ।
(४) वृक्ष रूप ब्रह्म ।
'ऊर्ध्वमूलो अवाक् शाखः
एषोऽश्वत्थः सनातनः
पूतुद्रुर्नाम भेषनम्'
अ. ८.२.२८

पूतभृत्- सोम रखने का पात्र ।
'पूत भृच्च म आधवनीयश्च मे'
वाज.सं. १८.२१

पूतबन्धनी - (१) पवित्र गुणों से गुंथी बुद्धि ।
'यत्रा मतिर्विध्यते पूतबन्धनी'
ऋ. ५.४४.९

पूति- 'पूयी' (विशरण और दुर्गन्ध अर्थ में) आया है । पू + क्ति = पूति । अर्थ -
(१) विशरण-तितर बितर करना ।
'पूतिं सेनां कृणोत्वमूम्'
अ. ८.८.२.

पूतिधान्या- पवित्र धन धान्य से युक्त शाला-भवन ।
'बृहच्छन्दाः पूतिधान्या'
अ. ३.१२.३.

पूतिरज्जुः - पूयी विशरणे दुर्गन्धे च (पू धातु विशरण और दुर्गन्ध अर्थ में आया है) ।
अर्थ- (१) विस्फोट उत्पन्न करने वाला पदार्थ,
(२) जीर्ण रस्सी ।
'पूतिरज्जु रुपध्मानी'
अ. ८.८.२

पूत्रिम- पवित्र ।
'हिरण्यं वर्चस्तदु पूत्रिममेव'
अ. ६.१२४.३

पूयमान- अभिषिक्त
'विश्वासरद् भोजना पूयमानः'
ऋ. ९.८७.६

पूर्ण- (१) भरा हुआ, व्याप्त ।
'तेनेदं पूर्णं पुरुषेण सर्वम्'
तै.आ. १०.१०.३, महा.ना उप. १०.४, नि. २.३.

उस पुरुषं से यह सब कुछ पूर्ण भरा या व्याप्त है ।
(२) पूर्णता,धन पुत्र आदि सुख से भरापूरा ।
'पूर्णञ्च मे पूर्णतरञ्च मे'
वाज.सं. १८.१०, तै.सं. ४.७.४.२, मै.सं. २.११.४, १४२.१, का.सं. १८.९.

पूर्णतर- अधिकाधिक ऐश्वर्य वृद्धि ।

पूर्णवन्धुर- पूर्णरूप से वन्धा हुआ या स्नेह बन्धन में बन्धा हुआ ।
'प्र नूनं पूर्णवन्धुरः
स्तुतो याहिवशाँ अनु'
ऋ. १.८२.३, मै.सं. १.१०.३, १४२.१२, तै.सं. १.८.५.१, का.सं. ९.६.

पूर्त- (१) आत्मा को पूर्ण बनाने की साधना
'विद्धि पूर्तस्य नो राजन्'
अ. ६.१२३.५
(२) कूप तालाब आदि बनवाना
'दक्षिणेष्टं पूर्तञ्च'
अ. ११.७.९
(३) पूर्ण करने वाला बल ।
'नहि ते पूर्तमक्षिपत्
भुवन्नेमानां वसो'
ऋ. ६.१६.१८
(४) उपकार, (५) पालन के लिए बनवाया गया कूप, तड़ाग आदि ।

पूर्तिकामः- (१) समस्त संसार रूप यज्ञ को पूर्ण करने की अभिलाषा वाला परमेश्वर, (२) पूर्ण करने की अभिलाषा वाला ।
'को यज्ञकामः क उ पूर्तिकामः'
अ. ७.१०३.१

पूर्धि- पिपूर्हि, पूरय (पूर्ण कर) । पृ (पूर्ण करना) के लोट् म.पु. ए.व.का रूप ।
'अप ध्वान्तमूर्णुहि पूर्धि चक्षुः'
ऋ. १०.७३.११, साम. १.३१९, तै.ब्रा. २.५.८.३, का.सं. ९.१९., ऐ.ब्रा. ३.१९.१४, कौ.ब्रा. २५.३, तै.आ. ४.४२.३, तै.आ. (आंध्र) १०.७३, आप.श्रौ.सू. ६.२२.१, नि. ४.३.
हे आदित्य ! इस चक्षुरोधक अन्धकार को (ध्वान्तम्) दूर कर (अप ऊर्णुहि) तथा प्रकाश के चक्षु को पूर्ण कर (चक्षुःपूर्धि) ।

पूर्पति- पुर या नगर का स्वामी ।
'मित्रायुवो ने पूर्पतिं सुशिष्टौ'
ऋ. १.१७३.१०

पूर्भित्तमः - (१) शत्रुओं के दृढ़ दुर्गों का भेदन करने में अतिकुशल (२) जीवों के पुर रूप देह बन्धनों का भेद न करने वाला परमेश्वर-इन्द्र ।
'पूर्भित्तमं मघवन्निन्द्र गोविदम्'
ऋ. ८.५३.१

पूर्भिद् - पुर् + भिद् + क्विप् = पूर्भिद्, (१) इन्द्र का विशेषण ।

पूर्भिद्य- नगरों को तोड़ने आदि का कार्य ।

पूर्याण - (१) पुर अर्थात् नगर को जाने वाला मार्ग, (२) मार्ग,
'प्रेहि प्रेहि पथिभिः पूर्याणैः'
अ. १८.१.५४

पूर्वः अग्निः - सब से पूर्व और सब से पूर्ण ज्ञानी, (२) अग्रणी प्रवत्तर्क परमेश्वर, (३) पूर्व दिशा से निकलने वाला सूर्य ।
'अङ्गिरसामयनं पूर्वो अग्निः'

पूर्वकामकृत्वा- (१) मनुष्य की पूर्व की अभिलाषाओं को योजनाओं को काट जलने वाला-ज्वर, (२) पूर्ण कार्य वीर्य बल को काट डालने वाला ।
'नमः शीताय पूर्वकामकृत्वने'
अ. ७.११६.१

पूर्वकृत्- (१) पूर्वविद्यमान अन्धकार को नष्ट करने वाला, (२) पूर्व ही शत्रु पर आक्रमण करने वाला, (३) पूर्वबलवान् शत्रु का नाशक ।
'पुरोरुचा पूर्वकृद् वावृधानः'
वाज.सं. २०.३६, मै.सं. ३.११.१,१३९.१२, का.सं. ३८.६, तै.ब्रा . २.६.८.१

पूर्वकृत्वरी- पूर्व से ही शत्रुओं का नाश करने योग्य बनाई हुई भूमि ।
'तं नो भूमेरन्धय पूर्वकृत्वरि'
अ. १२.१.१४

पूर्वगत्वा- पूर्वगामी आदर्श पुरुष
'एष स्य वां पूर्व गत्वेव संख्ये'
ऋ. ७.६७.७

पूर्वचित् (पूर्वचित्ताः) - (१) परिचित, (२) पूर्व प्राप्त, (३) विज्ञानवान् (४) पूर्वकाल के ज्ञाता (५) पूर्व के राजाओं के कार्यों को बनाने वाले ।
'मा त्वा निक्रन् पूर्वचितो निकारिणः'

अ. ७.८२.३, वाज.सं. २७.४, तै.सं. ४.१.७.२, मै.सं. २.१२.५, १४८.१७, का.सं. १८.१६

पूर्वचित्ति – (१) पूर्व ज्ञान की प्राप्ति, (२) पूर्व निर्धारित समझौता।

'तद् ब्रह्म पूर्वचित्तये'

ऋ. ८.३.९. अ. २०.९.३, ४९.६

(३) पूर्णज्ञानी, (४) सबसे पूर्व कार्य कर्त्ता, (५) पूर्ण संसार को बनाने वाला – परमेश्वर।

'श्रुधि स्वयावन् सिन्धो पूर्वचित्तये'

ऋ. ८.२५.१२

(६) पूर्व का ज्ञान, (७) पूर्ण ज्ञान।

'इतं न पूर्वचित्तये'

ऋ. ९.९९.५

(८) सबसे पूर्व स्मरण करने योग्य स्थिति।

'का स्विदासीत् पूर्वचित्तिः'

वाज.सं. २३.११, ५३, तै.सं. ७.४.१८.१, मै.सं. ३.१२.१९, १६६.४, का.सं.(अश्व.) ४.७, श.ब्रा. १३.२.६.१४.

(९) पूर्ण ज्ञान वाला, (१०) पूर्व विद्यमान् पदार्थों का ज्ञान (११) पूर्व विद्यमान चेतनावान् आत्मा।

'होतेव पूर्वचित्तये प्राध्वरे'

ऋ. ८.१२.३३

(१२) सब से पूर्व मान आदर (१३) पहला चयन

'मही जज्ञुर्मातरा पूर्वचित्तये'

ऋ. १.१५९.३.

माता पिता दोनों और ज्ञान कराने वाले आचार्य जन को अधिक पूज्य जानें (१४) पूर्व के विद्वानों और विजय शील राजाओं द्वारा संचित ज्ञान (१५) पहले से ही समस्त बातों की जानकारी।

'इडे द्यावापृथिवी पूर्वचित्तये

ऋ. १.११२.१, ऐ.ब्रा. १.२१.१३, कौ.ब्रा. ८.६

(१८) पूर्वोक्त मुख्य पुरुषों को उचित रीति से चेताना, बतलाना, (१९) पूर्व के गौरव को पुनः प्राप्त करना, (२०) राज्यैश्वर्य की वृद्धि।

'व्रतान्यस्थ सश्चिरे
पुरूणि पूर्वचित्तये,

ऋ. १.८४.१२, अ. २०.१०९.३, साम. २.३५७. मै.सं. ४.१२.४, १९०.१. का.सं. ८.१७.

विदुषी प्रजाएं राज्यै एश्वर्य की वृद्धि के लिए अथवा पूर्वोक्त मुख्य पुरुषों को उचित रीति से बतलाने के लिये या पूर्वकालीन गौरव को पुनः प्राप्त करने के लिये (पूर्वचित्तये) अपने राजा के बहुत से नियमों, विधानों और कर्तव्यों को धारण करें।

(२१) एक अप्सरा का नाम, (२२) पूर्व प्राप्त देशों में धन संग्रह-करने वाली (२३) पूर्व ही समस्त कर्त्तव्य का निर्धारण करने वाली।

'उर्वशी च पूर्वचित्तिश्चाप्सरसौ'

वाज.सं. १५.१९, वाज.सं. (का.) १६.४.९, तै.सं. ४.४.३.२, मै.सं. २.८.१०, ११५.६, का.सं. १७.९, श.ब्रा. ८.६.१.२०.

पूर्वज– पूर्व उत्पन्न

'नमः पूर्वजाय चापरजाय च'

वाज.सं. १६.३२, तै.सं ४.५.६.१, मै.सं. २.९.६, १२५.३, का.सं. १७.१४

पूर्वजावरी– (१) सबसे से पूर्व उत्पन्न होने वाली द्यावा पृथिवी, (२) सन्तानों से पूर्व उत्पन्न होने वाले माता पिता।

'परिक्षिता पितरा पूर्वजावरी'

ऋ. १०.६५.८

पूर्वतम– विनिगीषु पुरुषों में सब से श्रेष्ठ– इन्द्र।

'पूर्वतमं सदेवानाम्'

अ. २०.१२८.१६

पूर्वतरा– पूर्व प्रकट होने वाली खिलती हुई उषा।

'ईयुष्टे ये पूर्वतरामपश्यन्
व्युच्छन्ती मुषसं मर्त्यासः'

ऋ. १.११३.११, तै.सं. १.४.३३.१, तै.आ. ३.१८.१.

जो पूर्व प्रकट होने वाली खिलती हुई उषा देखते हैं, वे सुख को प्राप्त होते हैं।

पूर्वथा– (१) पूर्व + थाल् = पूर्वथा। अर्थ है – पूर्ववत् पहले की तरह।

'यामथर्वा मनुष्पिता
दध्यङ् धियमत्नता'

ऋ. १.८०.१६, नि. १२.३४.

पुनः –

'तस्मिन् ब्रह्माणि पूर्वथा
इन्द्र उक्था समग्मत
अर्चन्ननु स्वराज्यम्'

ऋ. १.८०.१६, नि. १२.३४

(२) प्राचीन राजाओं की तरह (३) प्राचीन कालीन ऋषियों की तरह। (४) पूर्वकाल में।

'अक्नुनुषासो वयुनानि पूर्वथा'
ऋ. १.९२.२, साम. २.११०६.
उषाएं पूर्व दिशा में प्रकाश करती हैं।
अथवा,
कन्याएं जीवन के पूर्वकाल में अनेक ज्ञानों और कार्यों का सम्पादन करें।
(६) पूर्व के दिशा में।
'पुनर्ज्योतिर्युवतिः पूर्वथाकः'
ऋ. ५.८०.६
(७) पूर्व के समान, (८) पूर्व प्रचलित रीति के अनुसार।
'नू इत्था ते पूर्वथा च प्रवाच्यम्'
ऋ. १.१३२.४
इस प्रकार नवीन रीति और पूर्व प्रचलित रीतिं से भी जो प्रवचन करने योग्य है।

पूर्वपाः– पूर्वकाल का अनुभवी पालक या दान करने वाला।
'सुतस्य पूर्वपा इव'
ऋ. ८.१.२६, साम. २.७४३.

पूर्वपाप्य– (१) पूर्व ही पालन करने का आदर भेंट का दिया जाना, (२) पूर्व पालन का पूर्व आयु का रक्षण पोषण का भार।
'वृष्णे न पूर्वपाय्यम्'
ऋ. ८.३४.५

पूर्वपीतिः – (१) पहले पीना या पहले पीने के लिए।
'अभिःत्वा पूर्वपीतये'
ऋ. १.१९.९, ८.३.७, अ. २०.९९.१, साम. १.२५६, २.९२३, ऐ.ब्रा. ४.२९.१३, ५.१८.२१. ऐ.आ. ५.२.२.२, आश्व.श्रौ.सू. ५.१५.२, शां. श्रौ.सू. ७.२०.३, वै.सू. ३९.६, नि. १०.३७.
(२) पूर्वरीति से प्राप्ति या पान करना, (३) पहले प्राप्त करना या पीना।

पूर्वपेय– पूर्वपुरुषों से प्राप्त करने योग्य उत्तम पद।
'सा नो भूमिः पूर्वपेये दधातु'
अ. १२.१.३.

पूर्वभाक् – पूर्वपुरुषाओं से उपार्जित ज्ञान को प्राप्त करने वाला
'प्रशंसन्ति कवयः पूर्वभाजः'
ऋ. ५.७७.१, मै.सं. ४.१२.६, १९६.२, तै.ब्रा. २.४.३.१३

पूर्वयावा – (१) सबसे प्रथम सत् रूप में प्राप्त होने योग्य, (२) अग्रणी
'विशां दैवीनामुत पूर्वयावा'
ऋ. ३.३४.२, अ. २०.११.२

पूर्ववत् – (१) पहले की भांति, (२) अपने से पूर्व विद्यमान गुरु, माता पिता और पूज्य पुरुषों से युक्त
'ययातिवत् सदने पूर्वच्छुचे'
ऋ. १.३१.१७

पूर्वस्मात् अपरः– मुख्य पद से दूसरा
'त्वोतो वाज्य ह्रयोऽभि पूर्वस्मादपरः
प्र दाश्वाँ अग्ने अस्थात्'
ऋ. १.७४.८

पूर्वसू– पूर्वसन्तान उत्पन्न करने वाली माता
'स पीयूषं धयति पूर्वसूनाम्'
ऋ. २.३५.५

पूर्वहूतिः– पूर्व + हू + क्तिन् = पूर्वहूति।(१) पहला आह्वान् –सा. (२) आरम्भ –ज.दे.श.
'विशामक्तोरुषसः पूर्वहूतौ'
ऋ. ७.३९.२, वाज.सं. ३३.४४, नि. ५.२८.
रात के बाद (अक्तोः) उषा के आगमन काल में (उपसः) पहले ही आह्वान् में (पूर्वहूतौ) –सा.।
रात के चले जाने पर तथा उषा के आरम्भ होने पर (उषसः पूर्वहुतौ) ज.दे.श.
(३) सबसे पहले आह्वान्, नामस्मरण।
'विष्णु मगन् वरुणं पूर्वहूतिः'
अ. ७.२५.१, २
(४) जिस गृह में विद्यावृद्धों का आह्वान होता है। –दया.
'ओषा अगन् प्रथमा पूर्वहूतौ'
ऋ. १.१२३.२

पूर्व्य– (१) सबसे मुख्य, सबसे पूर्व होने वाला। (२) पूर्व + यत् = पूर्व्य, सनातन, पूर्वकाल से चला आता हुआ, (३) मुख्य–सा.
'अहं भुवं वसुनः पूर्व्यस्पतिः
अहं धनानि संजयामि शश्वतः
मां हवन्ते पितरं न जन्तवो
अहं दाशुषे विभजामि भोजनम्'
ऋ. १०.४८.१
मैं इन्द्र धन का मुख्य, असाधारण या सनातन

स्वामी हूं, (अहं वसुनः पूर्व्यः पतिः भुवम्) । मैं बहुत शत्रुओं का धन एक साथ ही जीतता हूँ (अहं शश्वतः धनानि संजयामि) । मुझे ही जीव पिता के समान पुकारते हैं (मां जन्तवः पितरः न हवन्ते) । मैं हवि देने वाले यजमान को भोजन देता हूं (अहं दाशुषे भोजनं विभजामि) ।

(४) सबसे पूर्व विद्यमान (५) पूर्ण

'रुद्रा गृणन्त पूर्व्यम्'

ऋ. ८.३.७, अ. २०.९९.१, साम. १.२५६,२.९२३.

(६) अपने से पूर्व विद्यमान विद्या और वयस में वृद्ध पुरुष का हितकारी ।

'त्वं वृध इन्द्र पूर्व्यो भूः
वरिवस्यन्नुशने काव्याय'

ऋ. ६.२०.११

पूर्व्यःपतिः– (१) पूर्वकालीन पालक अग्नि –सा. (२) जगत् का मुख्य मालिक परमेश्वर –दया. ।

'उतो नो अस्य पूर्व्यः पतिर्दन्'

ऋ. १.१५३.४

और हमारे इस यजमान के पूर्व कालीन पालक अग्नि दाता बनें (दन्) –सा.

और इस जगत् का मुख्य मालिक परमेश्वर इन पदार्थों को हमें दें (न दन्) –दया.

'अहं भुवं वसु नः पूर्व्यस्पतिः'

ऋ. १०.४८.१, ऐ.ब्रा. ५.२१.६, कौ.ब्रा. २२.४, २६.१६.

मैं ही धन का मुख्य, असाधारण या सनातन स्वामी हूँ ।

पूर्व्यं ब्रह्म– (१) पूर्ण या पुरातन ब्रह्म (२)वेद का उपदेश

'युजे वां ब्रह्म पूर्व्यं नमोभिः'

ऋ. १०.१३.१, अ. १८.३.३९, वाज.सं. ११.५,तै.सं. ४.१.१.२, मै.सं. २.७.१, ७४.२, का.स. १५.११, ऐ.ब्रा. १.२९.२, श.ब्रा. ६.३.१.१७, श्वेत उप. २.५. आश्व. श्रौ.सू. ४.९.४.

'अस्ताविं मन्म पूर्व्यं
ब्रह्मेन्द्राय वोचत'

ऋ. ८.५२.९, अ. २०.११९.१, साम. २.१०२७.

पूर्व्यं व्योम – (१) पूर्व विद्यमान एवं विद्या बल में पूर्ण विशेष रूप से सब की रक्षा करने वाला

(२) पूर्व का क्षितिज ।

'सत्या काशिरं पूर्व्ये व्योमनि'

ऋ. ९.७०.१

पूर्व्यस्तुति – पूर्वपुरुषों से प्राप्त उत्तम ज्ञानोपदेश

' इयं वामस्य मन्मनः
'इन्द्राग्नी पूर्व्यस्तुतिः'

ऋ. ७.९४.१, साम. २.२६६, का.सं. १३:१५.

पूर्वा– (१) पूर्वभूत, पहले की हुई ।

'कतरा पूर्वाकतरापरायोः'

ऋ. १.१८५.१, ऐ.ब्रा. ५.१३.१०, कौ.ब्रा. २३.८, ऐ.आ. १.५.३.४, नि. ३.२२.

(२) धनैश्वर्य से पूर्ण प्रजा

'प्र पूर्वाभिस्तिरते राष्टि शूरः'

ऋ. १.१०४.४

पूर्वा उषसः– (१) पूर्व काल की अनादि परम्परा से होंने वाली उषाएं

(२) पूर्व या उपासक को प्रिय लगने वाली कान्ति या ज्ञानदीप्तियाँ

'उषसः पूर्वा अधयद् व्यूषुः'

ऋ. ३.५५.१

पूर्वापरम्– एक दूसरे के आगे पीछे

पूर्वापरं चरतो माययैतौ

ऋ. १०.८५.१८, अ. ७.८१.१, १३.२.११, १४.१.२३, मै.सं. ४.१२.२, १८१.३, तै.ब्रा. २.७.१२.२, ८.९.३.

पूर्वाफल्गुग्यो– द्वि.व.। पूर्वा फल्गुणी नामक नक्षत्र

पुण्यं पूर्वाफल्गुन्यौ चात्र हस्तः

अ. १९.७.३

पूर्वाभूमिः– सृष्टि की पूर्व भाविनी

'कारण रूप दशा
ये त आसीत् भूमिः पूर्वा'

अ. ११.८.७

पूर्वायुष् – पूर्व + आ + पुष । अपने पूर्वज जन को पुष्ट करने वाला अर्थात वंश वृद्धि करने वाला गृहस्थाश्रम

'पूर्वापुषं सुहवं पुरुस्पृहम्'

ऋ. ८.२२.२

पूर्वाषाढ़ा– पूर्वासाढ़ा नामक नक्षत्र

'अन्नं पूर्वा रासतां मे अषाढ़ाः'

अ. १९.७.४

पूर्वासी – (१) पहले से आसन वृत्ति से बैठा हुआ पुरुष (२) अपने राज्य में जमे रहना आसन

कहलाता है। (३) सन्धि, विग्रह, यान, आसन, संश्रय, और द्वैधीभाव ये छः अंग हैं, (४) जो राजा आक्रमण न कर स्वयं अपने राज्य में जमा रहता है वह आसन कहलाता है।

पूर्व्यानाभिः- (१) पूर्व का कोई बांधने वाला कारण, (२) पूर्व का दिया वचन
'सं यद् ददे नाभिः पूर्व्यावाम्'
ऋ. ७.५६.२२, अ. २०.१४३.५

पूर्व्या निविद् - (१) पुरातन वेदवाणी
'सत्तो होता निविदः पूर्व्या अनु'
ऋ. २.३६.६

पूर्वीआपः - (१) पूर्व उत्पन्न आप्त बन्धुजन, (२) पूर्व विद्वानों से प्राप्त एवं सुपरीक्षित आप्त विद्याएं
'आपो अग्निं यशसः सं हि पूर्वीः'
ऋ. ३.१.११

पूर्वीइष् - (१) समृद्ध अन्न
'पूर्वीरिषो बृहतीरादेअर्घाः'
ऋ. ६.१.१२, मै.सं. ४.१३.६, २०७.१४, का.सं. १८.२०. तै.ब्रा. ३.६.१०.५.
(२) पूर्व प्राप्त जल, (३) प्रथम मन से चाही वस्तु (४) इष्टतम धारा, (५) पूर्ण सम्पन्न प्रजा
'पूर्वीरिषश्चरति मध्व इष्णन्'
ऋ. १.१८१.६

पूर्वी ऊतयः- पूर्वकाल में की गई रक्षाएं।
'व्यूतयो रुरुहुरिन्द्रपूर्वीः'
ऋ. ६.२४.३.
हे इन्द्र, तेरी पूर्वकाल में की गई रक्षाएं वृक्ष की शाखाओं की तरह बढ़ती हैं।

पूर्वीः उषसः- (१) पूर्वकालीन उषाएं (२) सदा से चली आ रही उषाएं
'पूर्वीरुषसः शरतश्च गूर्ताः'
ऋ. ४.१९.८

पूर्वीगीः- अभिप्राय या तत्व ज्ञान से पूर्ण वाणी
'गिरश्च ये ते तुविजात पूर्वीः'
ऋ. १०.२९.५, अ. २०.७६.५

पूर्वी द्यौःक्षाः- (१) सनातन से चले आए आकाश और भूमि (२) सनातन से चली आने वाली ज्ञान प्रकाश युक्त और भूमि की प्रजाएं

पूर्वीधारा - (१) पूर्व एवं ज्ञानपूर्ण पूर्वाचार्यों की उपदिष्ट सनातन सत्य ज्ञानमयी वेदवाणी
'ऋतस्य धारा अनु तृन्धि पूर्वीः'
ऋ. ५.१२.२.

पूर्वीः निष्पिधः- (१) सनातन से चली आई वेदादि शास्त्रों से प्रतिपादित निषेध आज्ञाएं (२) अनुशासन और कार्यों को साधन करने वाली सेनाएं या चेष्टाएं, (३) सनातन वेद आज्ञाएं
'पूर्वीरस्य निष्पिधोःमर्त्येषु'
ऋ. ३.५१.५.

पूर्वीः शतं पुरः - (१) पहले से ही विद्यमान सैकड़ो नगरियां। पलने के स्थान या अड्डे
'अध्वर्यवोयः शतं शम्बरस्य.
पुरो बिभेदाश्मनेव पूर्वी'
ऋ. २.१४.६

पूर्वी शरदः- (१) आयु के पूर्व के वर्ष
'पूर्वीरहं शरदः शश्रमाणा'
ऋ. १.१७९.१
(२) पुरातन वर्ष, (३) पूर्व पूर्व विद्यमान हिंसाकारिणी सेनाएं
'किं स ऋधक् कृणवद्यं सहस्रम्
मासो जभार शरदश्च पूर्वीः'
ऋ. ४.१८.४

पूर्वीशुरुधः- पूर्वकालीनजल।
'ऋतस्य हि शुरुधः सन्ति पूर्वीः'
ऋ. ४.२३.८, आश्व.श्रौ.सू. ९.७.३६. नि. ६.१६, १०.४१
मध्यम ऋतदेव के ही पूर्व कालीन जल हैं।

पूर्वीश्चन - पूर्व से ही की गई
'पूर्वीश्चन प्रसितपस्तरन्ति तम्'
ऋ. ७.३२.१३, अ. २०.५९.४

पूर्वीसु पूर्व्यः- पूर्व विद्यमान प्रजाओं में सर्वप्रथम सत्कार योग्य इन्द्र
'उग्रं पूर्वीषु पूर्व्यम्
हवन्ते वाजसाजये'
ऋ. ५.३५.६

पूर्वेऋषयः- पूर्व कालीन ऋषि जन।
'न भूमना ऋषयः पूर्वे जीतारः'
स्तुति करने वाले पूर्वकालीन ऋषियों ने जिस प्रकार वार्ष, साहस्त्रिक सत्र से सृष्टि की

पूर्वे पितरः - (१) पूर्व विद्यमान पालक (२) पूर्वभूत पितर लोग
'मा पूर्वे अग्ने पितरः पदज्ञाः'

ऋ. ३.५५.२

पूरु – पृ (पूरणार्थक एवं कामनार्थक) + उ = पूरु। अर्थ – (१) वर्षा की कामना करने वाला प्राणी।

'प्र नू महित्वं वृषभस्य वोचम्
यं पूरवो वृत्रहणं सचन्ते।'

ऋ. १.५९.६, नि. ७.२३

मैं वर्षा बरसाने वाले वैश्वानर अग्नि या विद्युत की महिमा कहता हूँ जिसे वर्षा चाहने वाले सेवते हैं।

(२) मनुष्य। वह पालनीय पूरणीय या वर्धनीय है।

(३) देवराज यड्वा ने निघण्टु व्याख्या में लिखा है कि भोजदेव ने इसे पवनार्थक 'पुञ्' क्रु प्रत्यय कर सिद्ध किया है।

(४) भोज के अनुसार पूरु का अर्थ 'पवित्र' है।

(५) प्रपूर्ण, सुख या पालन करने वाला

'अंहो राजन् वरिवः पूरवे कः'

ऋ. १.६३.७

प्राप्तव्य राष्ट्र के पालन के लिए (अंहोः पूरवे)...... (६) वैदिक काल का एक राज परिवार (७) प्राण मात्र पर आजीविका करने वाला (८) अन्यों का प्राणप्रद पदार्थ देने वाला, (९) सबको विद्यादि से प्रपूर्ण करने वाला उच्च कोटि का पुरुष। (१०) पूरुओं का कुल

'यत् पूरौ कच्च वृष्ण्यम्'

ऋ. ६.४६.८

मनुष्य के अर्थ में –

'विश्वानि पूरो रप पर्षि वह्निः
आसा वह्निर्नो अच्छ'

ऋ. १.१२९.५

मनुष्यों के सब दुःखों को दूरकर (पुरोः विश्वानि अप) और समीप रहकर या अपने प्रमुख पद से (ग्रासा) या मुख द्वारा आज्ञा या उपदेश द्वारा (आसा) पालन कर (पर्षि)।

पूरवः– (१) आत्मशक्ति को पूर्ण करने वाले इन्द्रियगण, (२) पुर वासी जन, (३) पुरुवंशी

'विदुष्टे अस्य वीर्यस्य पूरवः'

ऋ. १.१३१.४, अ. २०.७५.२

पूरुष– पुरुष

'अनृतमाह पूरुषः'

अ. १९.४४.८

पूल्य– न.। फुल्ली, खील जिससे आहुति दी जाती है,

'पूल्यान्यावपन्तिका'

अ. १४.२.६३

पूषक– पोषक शक्ति

'अदूहमित्यां पूषकम्'

अ. २०.१३१.१८

पूषण– (१) सूर्य, (२) ओषधिआदि को पुष्ट करने वाला चन्द्र लोक (३) पृथिवी, (४) अन्न,

पूषण्वत्– (१) सब को पुष्ट करने वाली पृथिवी का स्वामी इन्द्र, परमेश्वर

'पूषण्वते ते चकृया करम्भम्'

ऋ. ३.५२.७

(२) जिसमें पोषण करने वाले गुणहो, (३) पोषक साधनों और पोषक वर्गों का स्वामी।

'पूषण्वते मरुत्वते
विश्वदेवाय वायवे'

ऋ. १.१४२.१२

पूषण्वान् – (१) पृथ्वी को धारण करने वाला, (२) पोषक अन्न सम्पत्ति और प्रजाओं के पोषक अधिकारियों से युक्त, (३) पुष्टि कारक भूमि और अन्नों से युक्त

'सुबर्हिरग्निः पूषण्वान्'

वाज.सं. २१.१५, मै.सं. ३.११.११, १५८.४, का.सं. ३८.१०, तै.ब्रा. २.६.१८.२.

पूषरातयः(१) मरुद्गण का विशषेण (२) जिन्हें पूषण अर्थात् सूर्य से दान मिलता है वे मरुद्गण (३) स्वामी से वेतनादि प्राप्त करने वाले वीर पुरुष।

'इन्द्रज्येष्ठा मरुद्गणाः
देवासः पूषरातयः'

ऋ. १.२३.८, २.४१.१५.

पूषर्या– द्वि.व.। परिपुष्ट

'वंसगेव पूषर्या शिम्बाता'

ऋ. १०.१०६.५

पूषा – पुष् + कनिन् = पूषन् (निपातन से सिद्ध। (१) एक वैदिक देवता, (२) यत् रश्मिपोषं पुष्यति तत् पूषा (जब सूर्य तेज से अपूर्ण हो रश्मियों से पुष्ट होता है तब उसे

'पूषन' कहते हैं) । पूषा देव
वामंवामं त आदुरे
देवो ददात्वर्यमा
वामं पूषा वामं भागे
वामं देवः करूडती
ऋ. ४.३०.२४, नि. ६.३. ।
(३) सूर्य ।
'आजासः पूषणं रथे
निशृम्भास्ते जनश्रियम्'
देवं वहन्तु बिभ्रतः ।
ऋ. ६.५५.६, नि. ६.४.
सूर्य की क्षिप्त प्रक्षिप्त होने वाली एवं कभी विश्राम न लेने वाली किरणें प्राणियों के आश्रमभूत सूर्य को द्युलोक रूपी रथ में धारण करती हुई सर्वत्र पहुंचा रही हैं ।
(४) पूर्वाह् कालीन सूर्य पूषा है ।
(५) आदित्य के अर्थ में प्रयोग के लिए
'पूषा त्वेतश्च्यावयतु प्रःविद्वान्'
ऋ. १०.१७.३, अ. १८.२.५४, तै.आ. ६.१.१. आश्व श्रौ.सू. ६.१०.१९, नि. १०.९.
अव्यवहित ज्ञान एवं प्रत्यक्षदर्शी आदित्य (विद्वान् पूषा) तुझे इस लोक से (त्वा इतः) उत्तम लोक में ले जाय (प्रच्या वयतु) ।
पुनः –
'शुक्रं ते अन्यद् यजतं ते अन्यत्
विषुरूपे अहनी द्यौरिवासि
विश्वाहि माया अवसि स्वधायो
भद्रा ते पूषन्निह रातिरस्तु ।'
ऋ. ६.५८.१
हे पूषन् , तेरा शुक्लवर्ण एक दिन होता है (तो शुक्रम अत्यन्त्) जो यज्ञ करने के योग्य है (यजेतम्) तथा तेरा दूसरा कृष्ण वर्ण रात होता है (अन्यत्) जो भगांश होने से अयज्ञीय है । इस प्रकार तू नाना रूपों में दिन रात होता है (अहनी असि) जैसे द्युलोक प्रकाश और अप्रकाश भेद से दो प्रकार का होता है । (द्यौरिव) और तू द्यु के समान सर्वव्यापी है और हे अन्नमय (स्वधावः) जितनी प्रज्ञाएं हैं सबको तू ही देता या पालता है (विश्वा हि मायाः अवसि) इस प्रकार तुझ आदित्य का स्तुत्य दान इस यज्ञ कर्म में सुलभ हो ।

(६) सर्व पोषक परमात्मा, (७) राजा, (८) राष्ट्र के सभी मार्गों पर चुंगी ग्रहण करने वाला, (९) राष्ट्र का अधिकारी , (१०) कोषाध्यक्ष, (११) अन्नपति, (१२) गृहपति (१३) राष्ट्र के करों का संग्रह करने वाला
'पूषा भगं भगपतिः'
श.ब्रा. ११.४.३.१५
'योषा वै सरस्वती वृषा पूषा'
श.ब्रा. २.५.१.११.
'प्रपथे पथामजनिष्ट पूषा'
ऋ. १०.१७.६, अ. ७.९.१०, मै.सं. ४.१४.१६, २४.३.१३, तै.ब्रा. २.८.५.३, आश्व.श्रौ.सू. ३.७.८.

पृक्ष – (१) पृथ्वी पर अन्न आदि नाना भोग्य पदार्थ, (३) विरुद्धस्वभाव के जनों और पंच भूतों का परस्पर सम्पर्क – संगति
'पृक्षो वहतमश्विना'
ऋ. १.४७.६
'पृक्षो यदत्र महिना वि ते भुवत्'
ऋ. २.१.१५
(२) जो पूछा जाय – प्रश्न – दया.
(३) प्रश्न करने योग्य ज्ञान रहस्य (४) सेचन करने वाला, (५) जीवन प्रद, (६) सुव्यवस्थित करने वाला, (६) सर्वत्र संगत, (८) सर्वत्र व्यापक प्रभु ।
'तमस्य पृक्षमुपरासु धीमहि'
ऋ. १.१२७.५
(९) परस्पर का संग, अनुराग, प्रेम
'यत्तिष्ठथः क्रतुमन्ता नु पृक्षे'
ऋ. १.१८३.२.
(१०) सम्पर्क करने योग्य, (११) भोग्य प्रद ऐश्वर्य, (१२) अपने से सम्पर्क करने वाला – सुसम्बद्ध
'प्रखादः पृक्षः अभिमित्रिणो भूत्'
ऋ. १.१७८.४

पृक्ष् – (१) सुख और पुष्टि को देने वाला अन्न, (२) अन्न आदि पुष्टि कारक पदार्थ
'युवोर्वपुरभि पृक्षः सचन्ते'
ऋ. ४.४४.२, अ. २०.१४३.२

पृक्षयाम – (१) प्रश्नों का यम नियम –दया.
(२) प्रश्न करने योग्य ज्ञान रहस्यों के निमित्त यम नियमों का आचरण करने वाला ब्रह्मचारी

'स्तुषे सा वां वरुण मित्र रातिः
गवां शता पृक्ष यामेषु पज्रे'
ऋ. १.१२२.७
हे वरुण या गुणों में उत्कृष्ट, पापों से निवारक। तथा मित्र स्नेह वान् मैं आप दोनों की स्तुति करता हूँ, क्योंकि सैकड़ो गौओं और भूमियों के समान उपकार करने वाले या अमूल्य सैकडों ज्ञान वाणियों का (गवांशता) प्रश्न करने योग्य ज्ञान-रहस्यों के निमित्त यमनियमों का आचरण करने वाले ब्रह्मचारियों में (पृक्षयामेषु) तुमलोगों का दान ही श्रेष्ठ दान है।

पृक्षः वप्रः - (१) जीव का सेवन करने योग्य स्वरूप जो सन्तान उत्पन्न करने में मूल कारण है। जीवाणु, जीवात्मा, (२) बाल्य काल का पोषणीय देह
'पृक्षो वपुः पितुमान् नित्य आशये'
ऋ. १.१४१.२
जीवात्मा की तीन दशाएं हैं। इसके सेवन करने योग्य स्वरूप जो सन्तान उत्पन्न करने में भूल कारण हैं उसे (पृक्षो वपुः) उत्तम अन्न खाने वाला या वीर्य पालक पुरुष (पितुमान्) सदा स्थिर होकर (नित्यः) धारण करता है। (आशये)।
अथवा,
अन्नादि साधनों वाला रक्षक (पितुमान्) इस पुरुष के पोषजीय देह को (पृक्षः वपुः) बाल्य काल में पुष्ट करते हैं।

पृक्षस् - येन पृंक्ते स (जिससे सम्पर्क करता है)।
पृची + असुन् = पृक्षस्।
अर्थ - (१) विद्या -सम्पर्क,
'त्रिः पृक्षो अस्मे अक्षरेव पिन्वतम्'
ऋ. १.३४.४
तुम दोनों तीन बार हमें अक्षय जलों के समान विद्या सम्पर्क प्राप्त कराओ या अन्न आदि पदार्थ प्रदान करो।
(२) सेवन करने योग्य, (३) पोषण करने योग्य,

पृथुध - (१) प्र + क्षुध् + क्विप् = प्रक्षुध्। प्रकर्पेण क्षोधितुं भोक्तभिष्टः - दया.
(२) अन्नादि के द्वारा पुष्ट होने वाला, (३) पृक् + सु + धा = पृक्षुध्। सम्पर्क द्वारा उत्तम रीति से निषेक द्वारा धारण कराने वाला
'आ पृक्षुधो वीरुधो दंसु रोहिति'
ऋ. १.१४१.४
जो लताओं पर लगने वाले फूल के समान अन्नादि के द्वारा पुष्ट होने वाले या सम्पर्क द्वारा उत्तम रीति से निषेकसंस्कार द्वारा धारण कराने वाले रूप से बीज को जन्म देने वाले पुरुष के (पृक्षुधः वीरुधः) गृहों में या गृहजीवों या जायाओं में (दंसु) गर्भ रूप से वृद्धि प्राप्त करता है।

पृच् - (१) सम्पर्क बनाए रखने वाला,
'पृञ्चन्ति सु वां पृचः'
ऋ. ५.७४.१०
(२) प्राप्त करना
'गव्या पञ्चन्तो अश्वया मधानि'
ऋ. ७.६७.९

पृच्छ्य - पूछने योग्य, प्रश्न करने योग्य,
'आपृच्छ्यो विश्पतिः विक्षु वेधाः'
ऋ. १.६०.२
वह समस्त प्रजाओं का पालक और न्याय विधान का कर्त्ता (वेधाः) प्रजाओं के बीच में (विक्षु) न्याय निर्णय आदि पूछने योग्य हैं।

पृच्छ्यमाना - द्वि.व.। (१) अन्नों से आज्ञाग्रहणार्थ या संदेहत्रि निवारणार्थ पूछे जाने वाले इन्द्राग्नी
'पृच्छ्यमाना सखीपते'
ऋ. ८.४०.३

पृञ्चन्ता- द्वि.व.। (१) अच्छी प्रकार संगठित करते हुए, (२) सुखों को कराने वाले
'इषं पृञ्चन्ता सुकृते सुदानवे'
ऋ. १.४७.८

पृञ्चन्ति - संयुक्त करते हैं।

पृणत् - पालक, परिपूरक
'भद्रा वो रातिः पृणतो न दक्षिणा'
ऋ. १.१६८.७

पृणन् - (१) आश्रित जन, (२) समाज की रक्षा करने वाला
'पृणन्तो अक्षिताः सन्तु'
अ. ६.१४२.३
(३) आश्रित जन या समाज का पालक,
(४) भरण पोषण करने वाला
'मा पृणन्तो दुरितमेन आरन्'
ऋ. १.१२५.७

दूसरे भरण पोषण करने वाले पुरुष (पृणन्तः) दुःख या दुखस्था प्राप्त करने वाले पापा चरण को (दुरितम् एवः) न करें।

पृणन्नापिः– पृणन् + आपिः। इच्छा पूर्त्ति करने वाला बन्धु

'पृणन्नापरिपृणन्तममिष्यात्'

ऋ. १०.११७.७

पृत् – (१) सेना, (२) संग्राम।

'यमग्ने पृत्सु मर्त्यम्
अवा वाजेषु यं जुनाः'

ऋ. १.२७.७, साम. २.७६५, वाज.सं. ६.२९, तै.सं. १.३.१३.२, मै.सं. १.३.१, ३०.१, का.सं. ३०.९, श.ब्रा. ३.९.३.३२.

हे परमेश्वर, अग्ने, विद्वन्, जिस मनुष्य को तू सेनाओं के बीच में से बचाता या अधिक तेजस्वी बनाता और संग्रामों के बीच में जिसे प्रेरित करता है (यं जुनाः)।

'चर्कृत्यं मरुतः पृत्सु दुष्टरम्'

ऋ. १.६४.१४

'पृत्सु तूर्षु श्रवः सु च'

अ. २०.१९.७

पृतन्यत् – (१) सेना द्वारा आक्रमण करने वाला

'इन्द्र इव दस्यूनव धूनुष्व पृतन्यतः'

अ. १९.४६.२

'सासह्याम पृतन्यतः'

ऋ. १.८.४, ८.४०.७, ९.६१.२९, अ. २०.७०.२०, साम. २.१२९, तै. सं. ३.५.३.२, का.सं. ४.४.

(२) सेवा की इच्छा वाला

'अभिष्याम पृतन्यतः'

ऋ. २.८.६, ९.३५.३, . ७.९३.१.

(३) युयुत्समान, युद्ध की इच्छा करता हुआ।

(४) सेना लेकर आक्रमण करे,

'यो नः पृतन्यादेण तंतमिद्धतम्'

ऋ. १.१३२.६, वाज.सं. ८.५३, श.ब्रा. ४.६.९.१४, वै.सू. ३४.१, आप श्रौ.सू. २१.१२.९.

पृतना – (१) युद्ध।

'यं नु नकिः पृतनासु स्वराज
द्विता तरति नृतमं हरिष्ठाम्'

ऋ. ३.४९.२

(२) संघ।

'दीर्घ प्रयज्यु'

पृतनासे ही platoon पलटन हो गया है।

(३) सेना की एक टुकड़ी जिसमें २४३ गज, २४३ रथ, ७२९ अश्व और १२२५ पदाति (पैदल) हो (४) काम्य पदार्थों से पूर्ण लोक

पृतनासु प्रवन्तवे

ऋ. १.१३१.५, अ. २०.७५.३

पृतनाज् – पृतनानां सेनानां विजेता पृतनाज्। पृतना + जि = पृतनाज् (सेनाओं का विजेता)।

'अरिष्टनेमिं पृतनाजिमाशुं
स्वस्तये तार्क्ष्यमिहा हुवेम'

ऋ. १०.१७८.१,. अ. ७.८५.१.

अप्रतिहत वज्रप्रहार, सेनाओं के विजयिता, शीघ्र चलने वाले तार्क्ष्य को इस कार्य में अपने कल्याण के लिए हम बुलाते हैं।

पृतन्यु– (१) संघ की अभिलाषा करने वाला शत्रु –सा. (२) सेना युक्त शत्रु –दया.

'वज्रेण शत्रुमवधीः पृतन्युम्'

ऋ. १.३३.१२.

हे इन्द्र, संघ की अभिलाषा करने वाले शत्रु को मार –सा.

हे राजन्। सेना के साथ आने वाले शत्रु को मार – दया. (३) युद्धेच्छुः (४) सेना द्वारा युद्ध करने वाला शत्रु

पृतनाज्य – (१) पृतना + अज + यत् = पृतनाज्य। पृतनां सेनानाम् अजनम् गमनम् यत्र (जहां सेनाओं का गमन होता हो)।

(२) जल

'जघ्नथुर्नरा पृतनाज्येषु'

ऋ. ७.९९.४

पृतनाजित् – सेनाओं द्वारा संग्राम में विजय करने वाला

'पृतनाजितं सहमानमग्निम्'

अ. ७.६३.१, तै.आ. १०.२.१, महा.ना.उप. ६.६.

'पृतनाषाडमर्त्यः'

ऋ. १.१७५.२, साम. २.७८३

पृतनाषाट् – शत्रु सेना को पराजित करने वाला

'आ वीरं पृतनाषहम्'

ऋ. ८.९८.१०, अ. २०.१०८.१, साम. १.४०५, २.५१९.

पृतनाषाह्य – (१) संग्रामों और शत्रु सेनाओं को

पराजित करने वाला बल
'पृतनाषाह्याय च'
ऋ. ३.३७.१, अ. २०.१९.१, वाज.सं. १८.६८.
(२) परसेना विजयी सेना, सर्वोत्तम विजेता
(३) सेनाओं को पराजित करने में समर्थ -इन्द्र

पृत्सुति- सम्पर्क कारकाणां सुतयः ऐश्वर्य -प्रापिका सेना।
पृची + क्विप् = पृत् (वर्णत्यत्यय संत्)। पृत् + सु + क्तिन् = प्रत्सुति)
अर्थ- (१) ऐश्वर्य प्राप्त करने वाली सेना
'अभितिष्ठेम पृत्सुतीरसुन्वताम्'
ऋ. १.११०.७
हमलोग ऐश्वर्य और अभिषेकादि के विरोधी (असुन्वताम्) या यज्ञ विरोधियों की सेनाओं का मुकाबला करें (पृत्सुतीः अभितिष्ठेम) (२) सर्वसाधारण के प्रति प्रेरणा और दान शीलता, (३) वीर सेना -दया.
'मरुतां पृत्सुतिर्हासमाना'
ऋ. १.१६९.२.
(४) सब प्राणियों के पालक अन्न की उत्पत्ति, (५) सेनादि का संचालन
'अस्मिन्न इन्द्र पृत्सुतौ यशस्वति'
ऋ. १०.३८.१

पृत्सुती - सेना
'अभिष्याम पृत्सुतीर्मर्त्यानाम्'
ऋ. ५.४.१, तै.सं. १.४.४६.३, का.सं. ७.१६.

पृथक् - अ.। प्रथ के सम्प्रसारण रूप पृथ + अजि = पृथक्। भिन्न पदार्थ और पदार्थों को छोड़ विस्तृत होता है। अतः वह पृथक् है (यत् प्रथति) अर्थ है-विलग
यह एक अव्यय है
'पृथक् प्रायन प्रथमा देवहूतयः'
ऋ. १०.४४.६, अ. २०.९४.६, नि. ५.२५.
'प्रजीरयः सिस्रते सध्र्यक् पृथक्'
ऋ. २.१७.३
(२) सब से अधिक

पृथक् सूक्त - अथर्ववेद का १८ वां काण्ड
'पृथक् सहस्राभ्यां स्वाहा'
अ. १९.२२.१९

पृथवानः - विस्तत बला वाला
'प्रतद् दुःशीमे पृथवाने वेने'
ऋ. १०.९३.१४

पृथि- (१) विशाल राष्ट्र, (२) विशाल राष्ट्र का स्वामी, (३) विशाल बुद्धि।
'याभिर्व्यश्वमुत पृथिमावतम्'
ऋ. १.११२.१५

पृथिव्यां गूढ़ः- (१) भूगर्भ में छिप कर रहनेवाला शत्रु, छिपा शत्रु
'गूढः पृथिव्या मोत् सृपत्'
अ. ६.१३४.२

पृथिव्याः परः अन्तः - (१) पृथ्वी का दूसरा छोर -वेदि अर्थात् यज्ञवेदि, (२) ज्ञानवान् सर्ववेत्ता और सब पदार्थों का लाभ कराने वाला परमेश्वर जो प्रकृति रूप पृथिवी का परम् सर्वोत्कृष्ट पालक और पूरक 'अन्तः' अर्थात् उसमें व्यापक, चेतन है।
(३) आकाशवायु विदन्ति शब्दान् यस्याम् सा आकाशवायुरूपा -दया.
'इयं वेदिः परो अन्तः पृथिव्याः'
ऋ. १.१६४.३५,अ.९.१०.१४, वाज.सं. २३.६२, श.ब्रा. १३.५.२.२१, आश्व.श्रौ.सू. १०.९.३, सा.श्रौ.सू. ९.१०.१४.

पृथिव्याम् एकादशदेवाः- (१) पृथिवी की ग्यारह दिव्य शक्तियाँ, (२) स्वामी दयानन्द के अनुसार पृथिवी, अप, तेज, वायु, आकाश, आदित्य, चन्द्र, नक्षत्र, अहंकार, महत्तत्व और प्रकृति ही ग्यारह दिव्य शक्तियाँ हैं।
'ये देवाः पृथिव्यामेकादश स्थ'
अ. १९.२७.१३

पृथिव्याः योजना- (१) पृथ्वी के साथ योग रखने वाले या कोश योजन आदि भाग, (२) पृथ्वी से युक्त प्राणी
'अष्टौ व्यख्यात् ककुभः पृथिव्याः
त्री धन्व योजना सप्त सिन्धून्'
ऋ. १.३५.८, वाज.सं. ३४.२४.

पृथिव्या वृषभः- पृथ्वी लोक का सर्वश्रेष्ठ सुखवर्षक नरपति
'वृषभो दिवो रजसः पृथिव्याः'
ऋ. ८.५७.३, . २०.१४३.९

पृथिवी- प्रथ् + पिवन् = पृथिव ; पृथिव + ङीष् = पृथिवी। प्रथ् धातु प्रख्यानार्थक है। शाकटायन के अनुसार 'प्रथनात् पृथिवी' हुआ

है। पृथ् अर्थात् विस्तृत होने से यह पृथ्वी कही गई है। इसे किसने विस्तृत किया तथा विस्तारयिता ने किस आधार पर होकर इसे रखा (व एनाम् अप्रथयिष्यत् क्रिमाधारश्च)।
अर्थ- (१) पृथिवी।
'मित्रोदाधार पृथिवीमुतद्याम्'
ऋ. ३.५९.१, तै.सं. ३.४.११.५.का.सं. २३.१२, ३५.१९. तै.ब्रा. ३.७.२.४, आप.श्रौ.सू. ९.२.६, नि. १०.२२.
मित्र ही पृथिवी और स्वर्ग को धारण या रक्षा करते हैं। (२) फैली हुई।
कुणुष्व पाजः प्रसितिनं पृथ्वीम्'
ऋ. ४.४.१, वाज.सं. १३.९, तै.सं. १.२.१४.१, मै.सं. २.७.१५, ९७.७, का.सं. १०.५, १६.१५, ऐ.ब्रा. १.१९.८, कौ.ब्रा. ८.४, श.ब्रा. ७.४.१.३३, आश्व श्रौ.सू. ४.६.३, नि. ६.१२.
हे सेनापति। तू फैले हुए जाल के सामने अपने में बल धारण कर दया।। (३) विद्युत।
'वडित्था पर्वतानां
खिद्रं बिभर्षि पृथिवि'
ऋ. ५.८४.१, तै.सं. २.२.१२.२, मै.सं. ४.१२.२, १८१.१, का.सं. १०.१२, आप.मं.पा. २.१८.९, नि. ११.३७
हे विद्युत् (पृथिवि), तू मेघों को छोड़ने वाला बल (खिद्रं बल्) रखती है (विभर्पि)। -सा. हे विद्युत्। सचमुच (बल्) मेघों को छेदने का बल रखती है।
(४) माध्यमिका देवता अन्तरिक्ष भी पृथिवी है।
(५) खाद
'पृथिवीं त्वा पृथिव्यामावेशयायि'
अ. १२.३.२२; १८.४.४८,
(६) अपान वायु
'अप्रथयन् पृथिवीं मातरं वि'
ऋ. १०.६२.३.

पृथिवी प्रः - समस्त पृथिवी को नाना पदार्थों से पूर्ण करने वाला
'पृथिवी प्रो महिषो नाधमानस्य गातुः'
अ. १३.२.४४.

पृथिवी संशितः- पृथ्वी की शक्तियों से सुशिक्षित
'पृथिवी संशितोऽग्नितेजाः'

पृथिवीपद् - पृथिवी पर विराजने वाला पिता
'स्वधा पितृभ्यः पृथिवीपद्भ्यः'
अ. १८.४.७८, आप.श्रौ.सू. १.९.६, कौ.सू. ८७.८, गो.गृ.सू. ४. ३.१०.हि. गृ.सू. २.१२.४.

पृथिविष्ठाः- पृथिवी पर विद्यमान
'ऋज्रासो मा पृथिविष्ठाः सुदासः'
ऋ. ७.१८.२३

पृथिविसद् - भूमण्डल पर प्रतिष्ठित
'पृथिविसदं त्वा ऽन्तरिक्षसदम्'
वाज.सं. ९.२

पृथी - (१) विस्तृत भूमि का रक्षक
'पृथी यद्वां वैन्यः सादनेषु'
ऋ. ८.९.१०, अ. २०.१४०.५,
(२) बड़े भारी ऐश्वर्य या राज्य का स्वामी

पृथु - पृथ् + कु = पृथु। विस्तृत, महान्।
'उरुः पृथुः सुकृतः कर्तृभिर्भूत्'
ऋ. ६.१९.१, वाज.सं. ७.३९, तै.सं. १.४.२१.१, मै.सं. १.३.२५, ३८.१३, का.सं. ४.८. कौ.ब्रा. २१.४, श.ब्रा. ४.३.३.१८, तै.ब्रा. ३.५.७.५,
यह अन्धकार -निवारक, विस्तृत सूर्य कर्म कर्त्ता मनुष्यों से सुकृत हों।
'अरित्रं वां दिवस्पृथु तीर्थे
सिन्धूनां रथः धिया युयुज्र इन्दवः'
ऋ. १.४६.८

पृथुच्छर्दिः- विस्तृत पालनकारी शरण
'प्रास्मै यच्छतमवृकं पृथुच्छर्दिः'
ऋ. ८.९.१,अ. २०.१३९.१

पृथुज्रयः - अति विस्तृत शक्ति वाला
'पृथुज्रयमश्विना संगतिं गोः'
ऋ. ४.४४.१, अ. २०.१४३.१

पृथुज्रयाः- प्रथजवः - पृथुजवः - बहुवेगः (बहुत वेग वाला) पृथु + ज्रि + आसुन् = पृथुज्रयसः 'ज्रयस्' का अर्थ वेग है।
अर्थ है - (१) तीव्र वेग से जाता हुआ, अतिवेगवान्।
'इनतमः सत्वभिर्योह शूषैः
पृथुज्रया अमिनादायुर्दस्योः'
ऋ. ३.४९.२
वह प्रसिद्ध ईश्वर तम अतिसमर्थ, बहु सत्व संयुक्त बलों से अतिवेगवान् दुष्ट जनों की आयु या भोजन को नष्ट भ्रष्ट करता है। (२) वेग से

दूसरे को जीतने वाला

पृथुज्रयी- बड़े-बड़े लोगों से भी वेग या शक्ति पैदा करने वाला

'पृथुज्रयी असुर्येव जञ्जती'

ऋ. १.१६८.७

पृथुजाघना - (१) विशाल जंघों या नितम्ब वाली, (२) विस्तृत व्यापक शक्तिवाली प्रकृति

'पृथुष्टो पृथुजाघने'

ऋ. १०.८६.८, अ. २०.१२९.८

पृथुग्मा- परिमाण में बहुत बड़ा

'पृथुग्मानं वाश्रं वावृधध्यै'

ऋ. १०.९९.१

पृथुगिरिः- (१) भारी मेघ, (२) पर्वतवत् शरीर पिण्ड

'त्रिशोकाय गिरिं पृथुम्'

ऋ. ८.४५.३०

पृथुपर्शुः- (१) बड़े बड़े हल फावड़ा आदि लेकर चलने वाला कृषक, (२) फरसा लिए सैनिक

'प्राचा गव्यन्तः पृथुपर्शवो ययुः'

ऋ. ७.८३.१

पृथुप्रगमा - (१) रथ, यान, तोपखाना आदि विस्तृत लश्कर सहित आगे बढ़ने वाला, (२) बड़े यान से जाने वाला

स धा नः सूनुः शवसा पृथप्रगामा सुशेवः'

ऋ. १.२७.८, साम. २.९८५.

पृथु प्रगाण- (१) बड़े बड़े शब्द करने वाला मेघ, (२) विस्तृत उत्तम उपदेश करने वाला

'पृथु प्रगाणमुशन्त मुशानः'

ऋ. ३.५.७

पृक्षप्रयुज्- (१) शुभ गुणों से आर्द्र हो प्रकृष्ट यज्ञ करने वाला - दया.

(२) अन्नों को अच्छी प्रकार देने वाला (३) सर्वरस संचक परमेश्वर की उत्तम पूजा करने वाली उत्तम वाणी

पृथुपाजस् - (१) विस्तीर्ण वल (बहुत बलवान्)

'वैश्वानराय पृथुपाजसे विपो रत्ना विधन्त धरुणेषु गातवे'

ऋ. ३.३.१

(२) महान् तेज

'उपो न जारः पृथु पाजो अश्रेत्'

ऋ. ७.१०.१

'वैश्वानरः पृथुपाजा अमर्त्यः'

ऋ. ३.२.११.

पृथुपाणि- (१) विस्तृत बाहुवाला। (२) विस्तीर्णः पाणिरिव किरणाः यस्य स-दया. सूर्य, (३) अति विस्तृत ज्ञान, व्यवहार वाला

'प्र बाहवा पृथुपाणिः सिसर्ति'

ऋ. २.३८.२

पृथुवुघ्न- (१) आकाश, (२) सूर्य, (३) महान् प्रवन्धक

'दीर्घो रयिः पृथुबुघ्नः राभावान्'

ऋ. ४.२.५, तै.सं. १.६.६.४, ३.१.११.१, मै.सं. १.४.३, ५१.३, १.४.८.५६.९, का.सं. ५.६; ३२.६.

(४) विशाल मूल वाला

'ग्रावारिा पृथुबुध्नः'

वाज.सं. १.१४,श.ब्रा. १.१.४.७.

(५) बड़े आश्रय या बड़े मूल भाग वाला, (६) उलूखल (ओखल) का विशेषण

'यत्रग्रावा पृथुबुध्नः ऊर्ध्वः भवति सोतवे'

ऋ. १.२८.१

'अध यदेषां पृथु बुध्नास एताः'

ऋ. १.१६९.६

'उरुं गभीरं पृथुबुध्नामिन्द्र'

ऋ. १०.४७.३, मै.सं. ४.१४.८, २२७.७, तै.ब्रा. २.५.६.१

पृथुवुध्नग्रावा - विशाल आधार वाला ओखल

'अयं ग्रावा पृथुबुध्नो वयोधाः'

अ. १२.३.१४

पृथुष्टुः- विशाल केश पाश वाली

'पृथुष्टो पृथुजाघने'

ऋ. १०.८६.८, अ. २०.१२६.८

पृथुष्टुका- (१) विस्तीर्ण जघना (२) पृथु केशस्तुका वा स्त्यै + डुक् = स्तुक्। स्त्यै + डुक् = ष्टुक् अर्थ है - संघात (Stock) पृथु वृहत् केशस्य संघातः यस्याः सा पृथुष्टुका (जिसके केशों का संघात बृहत् हो वह पृथुष्टुका है)।

यास्क ने स्तुक् को संघातार्थक माना है; किन्तु यह केश समूह के लिये प्रयुक्त होता है। जांघ में भी मांस का अधिक संग्रह होने से स्तुक् नाम पड़ा है।

विस्तीर्ण केश कलाप वाली, (२) विस्तीर्ण जंघा वाली, (३) अतिशय पूजनीया।

'सिनीवालि पृथुष्टुके'

ऋ. २.३२.६, अ. ७.४६,१, वाज.सं. ३४.१०, तै.सं. ३.१.११.३, मै.सं. ४.१२.६, १९५.४, का.सं. १३.१६, वै.सू. १.१४, साम.मं.ब्रा. २.६.२, नि. ११.३२.

हे विस्तीर्ण जघन, विस्तीर्ण केश कलापे, या अतिपूजनीय दृष्टचन्द्रा अमावास्या या ऋतुगम्या स्त्री (सिनीवालि) ।

(४) बहुत पुत्रों वाली, (५) बहुतों से प्रशंसित, (६) विशाल मध्य भाग वाली, (७) उत्तम कामना वाली, (८) द्युलोक के प्रति सदा खुली रहने वाली, (९) पृथु संयमित केश भारास्तुक। स्तक का अर्थ केश भी है और पुत्र भी ।

(१०) सभा, पृथ्वी और स्त्री तीनों अर्थों में गृहीत । स्वामी दयानन्द ने स्त्री परक अर्थ किया है,

(११) अल्प चन्द्र कला युक्त चन्द्रमा की अधिष्ठात्री देवता

पृदाकवः - पृत् + आकवः ।

अर्थ - (१) सेना संग्रामों में आज्ञा देने वाले, (२) मनुष्यों को आदेश देने वाले

'पृदाकवः'

अ. २०.१२९.९, शां.श्रौ.सू. १२.१८.८.

पृदाकु - पृत् = (१) वाणी का सेवन करने वाला

'पृदाकू रक्षिता'

अ. ३.२७.३, तै.सं. ५.५.१०.१, आप.मं.पा. २.१७.१५.

(२) अजगर

'माहिर्भूर्मा पृदाकुः'

वाज.सं. ६.१२, ८.२३, श.ब्रा. ४.४.५.३, आप.श्रौ.सू. १३.१८.७ .

'शार्दूलो वृकः पृदाकुस्ते मन्यवे'

वाज.सं. २४.३३, मै.सं. ३.१४.१४, १७५.७

पृदाकुसानु - (१) पृत् + आकु + सानु । पृत् -संग्राम के अवसरों पर सन्मार्ग बतलाने वाला और उन्नति पद पर स्थित (२) इन्द्र, परमेश्वर

'पृदाकुसानुर्यजतो गवेषणः'

ऋ. ८.१७.१५

पृशन्- (१) परस्पर लड़ने भिड़ने योग्य,

'मांश्चत्वे वा पृशने वा वधत्रे'

ऋ. ९.९७.५४, साम. २.४५६.

पृशन्यन् - स्पर्श करता हुआ

पृशनायुः- परस्पर स्पर्श संपर्क या प्रेम चाहती हुई

'ता अस्य पृशनायुवः'

ऋ. १.८४.११, अ. २०.१०९.२, साम. २.३५६, मै.सं. ४.१२.४, १९०.२.

पृशनी- (१) शास्त्रादि वर्षण करने वाली सेना

'द्रुहो निषत्ता पृशनी चिदेवैः'

ऋ. १०.७३.२

(२) सम्पत्ति

'न ता नु मे पृशन्यो जगृभ्रे'

ऋ. १०.६१.८

पृश्नि - (१) प्र + अश् (व्याप्ति अर्थ में) + नि = पृश्नि । अर्थप्रोज्ज्वलवर्णः आदित्यः । एवम् आदित्यम् प्राश्नुते व्याप्नोति (प्रोजवलवर्ण आदित्य को यह व्याप्त करता है)

(२) कुछ विद्वान् स्पृश + नि = पृश्नि, ऐसी व्युत्पत्ति करते हैं । इस अर्थ में पृश्नि सदा रसों को लेने वाला है (स हि नित्य कालमेव आदानेन रसानां संस्पर्ष्टा भवति) ।

(३) स्पृश् धातु नाश करना अर्थ में भी आया है । सूर्य चन्द्र आदि ग्रहों की ज्योति का नाशक है; क्योंकि आदित्य के संस्पर्श से ही उनकी ज्योति विवष्ट हो जाती है । (संस्पर्ष्टा भासं ज्योतिषाम्) ।

(४) अथवा दीप्ति से यह सर्वतः स्पृष्ट होता है । (संस्पृष्टो भासा इति वा) । यहां 'स्पृश् + नि' में 'नि' कर्म वाच्य में होगा ।

(५) द्युलोक । द्युलोक भी ज्योतियां तथा पुण्यवान् लोगों से स्पृष्ट होता है । (संस्पृष्टा ज्यो तिभिः पुण्य कृद्भिश्च) ।

'ससस्य चर्मन्नधिचारु पृश्नेः
अग्रेरूप आरुपितं जबारू'

ऋ. ४.५.७

सृष्टि की आदि में या पूर्व दिशा में (अग्रे) पृथ्वी के निकट से (रुपः) निश्चल द्युलोक के ऊपर (ससस्य पृश्नेः अधि) चलने के निमित्त (चर्मन्) आदित्य आरोपित हुआ (आरुपितम्) जैसे द्युलोक में (पृश्नेः अग्रे) आरोपणकर्त्ता परमात्मा का (रूपः) आदित्य मण्डल आरोपित है उसी प्रकार वीर्य पति के शरीर में आरोपित है ।

(६) नाना वर्ण की, (७) हृष्टपुष्ट ।

'सोमं श्रीणन्ति पृश्नयः'
ऋ. १.८४.११, ८.६९.३, अ. २०.१०९.२, साम. २.३५६, वाज.सं. १२.५५, तै.सं. ४.२.४.४, ५.५.६.३, मै.सं. २.८.१, १०६.५, ३.२.८., २८.१५, ४.१२.४, १९०.२, का.सं. १६.१९, श.ब्रा. ८.७.३.२१. तै.ब्रा. ३.११.६.२.
(८) सर्प की एक जाति, चितकबरा साँप
'कैरात पृश्न उपतृण्य बभ्रो'
अ.५.१३.५
(९) चित्र विचित्र वर्ण वाला
'पृश्निस्तिरश्चीनपृश्निरूर्ध्वपृश्निस्ते मारुताः'
वाज.सं. २४.४, तै.सं. ५.६.१२.१, मै.सं. ३.१३.५, १६९.८, का.सं. (अश्व.) ९.२.
(१०) प्रश्नोत्तर और समाधान करने में कुशल,
(११) पीला मेढ़क
'पृश्निरेको हरित एक एषाम्'
ऋ. ७.१०३.६
(१२) अन्तरिक्ष -दया.

पृश्निगर्भा - पृश्नि का अर्थ आदित्य है और उस का गर्भभूत जल है क्योंकि जल रश्मियों के गर्भ में आठ मास रहता है (पृश्नेः गर्भभूताः रश्म्यवर्णताः परिपक्वाः मासांष्टकेन संभृताः अपः) । अर्थ - (१) जल ।
'अयं वेगश्चोदयत् पृश्निगर्भाः'
ऋ. १०.१२३.१, वाज.सं. ७.१६, तै.सं. १.४.८.१, मै.सं. १.३.१०, ३४.१, का.सं. ४.३. ऐ.ब्रा. १.२०.२; ३.३०.३, कौ.ब्रा. ८.५; श.ब्रा. ४.२.१.८;१०, आश्व. श्रौ.सू. ४.६.३, ५.१८.५, १०.३९.
यह वेन नामक मध्यमस्थानीय देव (विद्युत्) आदित्य की रश्मियों में रहने वाले जलों को (पृश्निगर्भा) वर्षाऋतु में पृथ्वी की ओर प्रेरित करता है ।
(२) नाना सूर्यों को अपने गर्भों गर्भ में लेने वाली -आपः

पृश्निगावः- ब.व.। (१) सूर्य से उत्पन्न नाना रंग की किरणें
(२) नाना वर्ण के बैल
(३) भूमि रूप गौएं
'पृश्निगावः पृश्निनिप्रेषितासः
श्रुष्टिं चक्रुर्नियुतो रन्तयश्च'
ऋ. ७.१८.१०

पृश्निगुः- (१) अन्तरिक्षे गन्ता (विमान द्वारा अन्तरिक्ष में जाने वाला) दया.
(२) नाना प्रकार की गौओं का पालक
'याभिः पृश्निगुं पुरुकुत्समावतम्'
ऋ. १.११२.७

पृश्नि निप्रेषित - (१) पृथिवी पर या अन्तरिक्ष से प्रेरित, (२) विद्वान् पुरुषों द्वारा खेत में चलाया गया बैल
(३) सूर्यवत् तेजस्वी पुरुषों से प्रेरित या शासित

पृश्निमातरः- (१) मरुद्गण जो पृश्नि अर्थात् अन्तरिक्ष में उत्पन्न होते हैं, (२) राजा से बनाए गया पृथ्वी माता से उत्पन्न सैनिक गण, (३) प्राण गण
'उग्रा हि पृश्नि मातरः
ऋ. १.२३.१०
(४) जल सेचन में समर्थ मेघों के उत्पादक वायु, (४) अन्तरिक्ष में उत्पन्न होने वाले वायु (६) रसों को अपने भीतर ले लेने में समर्थ पृथ्वी से उत्पन्न ओषधियाँ
'यदा वः पृश्निमातरः
पर्जन्यां रेतसावति'
अ. ८.७.२१
(७) पृथ्वी को अपनी माता मानने वाले, (८) मेघों के उत्पादक, (९) अन्तरिक्ष में उत्पन्न
'पृषदश्वाःमरुतः पृश्निमातरः'
ऋ. १.८९.७, वाज.सं. २५.२०, का.सं. ३५.१, आप.श्रौ.सू. १४. १६.१.

पृश्निपर्णी- (१) पृश्निपर्णी नाम की ओषधि जो कुष्ठ आदि रोगों को मूल से नष्ट करने वाली है । सायण इसे चित्रपर्णी और कात्यायन श्रौत सूत्र कार भाष्यकर्त्ता ने माषपर्णी कहा है । कुछ लोग इसे 'लक्ष्मणा' कहते हैं जो पुत्र जननी है । पृष्टिपर्णी, श्वपुच्छी, कलशी, धावनी, गुहा, श्रृगाल, विश्वा, श्रृगालपुच्छी, सिंह पुच्छी आदि भी इसके नाम हैं ।
यह कटु उष्ण, अम्लतिक्त अतिसार, कास, वातरोग, ज्वर, उन्माद, व्रण और दाह को नाश करती है ।

पृश्निपुत्राः - (१) सूर्य के पुत्र वायु (२) पृथ्वी के पुरुषों के पालक (३) तेजस्वी राजा और अन्न

दात्री भूमि और निष्पक्षपात गुरु और सेक्ता पिता के पुत्र
'पृश्नेःपुत्राः उपमासो रभिष्ठाः'
ऋ. ५.५८.५, मै.सं. ४.१४.१८, २४७.१५, तै.ब्रा. २.८.५.७.

पृश्निबाहुः– पीले चितकबरे रंग की बाहुओं वाला मेढ़क
'वदन्तु पृश्निबाहवो मण्डूका इरिणानु'
अ. ४.१५.१२

पृषत् – (१) त्वचा से जल बहाने वाला और दर्द करने वाला रोग,
(२) श्वेतकुष्ठ
'निरितो नाशया पृषत्'
अ. १.२३.२, ३; तै.ब्रा. २.४.४.१,२,

पृषती– (१) विचित्रा मेघ माला, –स्कन्दस्वामी
(२) देह में चेतना रस और आनन्द का संचन करने वाली रक्तनाड़ी, (३) नाना रंगवाली घोंड़ी
(४) शत्रुपर शस्त्र वर्षा करने वाली सेना
(५) जलबिन्दु पंक्ति
'उपो रथेषु पृषतीरयुग्ध्वम्'
ऋ. १.३९.६
(६) चित्रवर्णा प्रकृति, (७) समृद्ध प्रजा
'दिवं देवः पृषतीमाविवेश
अ. १३.१.२४
(८) पालन या पूर्ण करने वाली शक्ति,
(९) आत्मा को पूर्ण करने वाली शक्ति
'यज्ञैः संमिश्लाः पृषतीभिर्ऋषिभिः'
अ. २०.६७.४
(१०) आनन्द रस बरसाने वाले आत्मा और मन। प्राण और अपान
'हरी ते युञ्जा पृषती अभूताम्'
ऋ. १.१६२.२१, वाज.सं. २५.४४, तै.सं. ४.६.९.४, का.सं. (अश्व .) ६.५.
(११) जल सेचन करने वाली घटा
'यत् प्रायासिष्ट पृषतीभिरश्वैः'
ऋ. ५.५८.६
(१२) विचित्र वर्ण के विन्दु (१३) छींट वाली पोंषाक पहनने वाली स्त्री
'पृषती क्षुद्रपृषती स्थूलपृषती ता मैत्रावरुण्यः'
वाज.सं. २४.२, मै.सं. ३.१३. ३,१६९.४, का.सं. (अश्व.) ९.२.

पृषद् योनिः– (१) मेघ , (२) सुख वर्षणकारी अन्तरात्मा में उत्पन्न वाणी, (३) परिषद् या जूरी से उत्पन्न वाणी
'पृषद् योनिः पञ्चहोता श्रृणोतु'
ऋ. ५.४२.१.

पृषदश्वः– (१) मेघ रूप अश्वों वाला, (२) मृग के समान शीघ्रगामी अश्वों वाला वीर पुरुष .
'स हि स्वसृत् पृषदश्वो युवा गणः'
ऋ. १.८७.४

पृषदश्वाः– (१) हृष्ट पुष्ट अश्व वाले मरुद्गण, (२) पुष्ट अश्वों के समान तीव्रगामी, (३) महान् आकाश में व्यापनेवाले मरुत्
'पृषदश्वा मरुतः पृश्निमातरः'
ऋ. १.८९.७, वाज.सं. २५.२०
(४) सिञ्चन किए जलाग्नि से वेगपूर्वक जाने वाले, (५) हृष्ट पुष्ट अश्व वाले सैन्यजन
'यं मर्त्यं पृषदश्वा अवाथ'
ऋ. ७.४०.३

पृषदश्वा मरुतः– (१) जल सेचन करने वाले व्यापक मेघों से युक्त वायु
'पृषदश्वा मरुतः पृश्निमातरः'
जल सेचन करने वाले व्यापक मेघों से युक्त, जल संचन में समर्थ मेघों के उत्पादक वायुगण।

पृषदश्वासः– एक वचन में पृषदश्व अर्थ – (१) स्थूल हृष्ट पुष्ट अश्वों वाले (२) वर्षणशील मेघों से युक्त मरुत्
'पृषदश्वासो अनवभ्रराधसः'
ऋ. २.३४.४; ३.२६.६
(३) हृष्ट पुष्ट अश्वों से युक्त
'पृषदश्वासोऽवनयो न रथाः'
ऋ. १.१८६.८

पृषादाज्य – (१) दधिघृतादि भोज्य पदार्थ
'सम्भृतं पृषदाज्यम्'
ऋ. १०.९०.८, अ.१९.६.१४, वाज.सं. ३१.६, तै.आ. ३.१२.४.

पृषध्र – जल संचक मेघ को धारण करने वाला
'पृषध्रे मेध्ये मातरिश्वनि'
ऋ. ८.५२.२.

पृषत् – (१) नाना फल देता हुआ (२) अन्तरात्मा या अन्न से सिञ्चन करने वाला

'पृषन्तं सृप्रमदब्ध मूर्वम्'
ऋ. ४.५०.२, अ. २०.८८.२.

पृष्टः - (१) व्यापक, (२) पूछा जाने वाला, (३) आश्रद् लेने योग्य
'पृष्टो दिवि पृष्टो अग्निः पृथिव्याम्
पृष्टो विश्वा ओषधीराविवेश'
ऋ. १.९८.२, वाज.सं. १८.७३, तै.सं. १.५.११.१, मै.सं. २.१३.११; १६१.१४, का.सं. ४.१६; ४०.३ तै.ब्रा. ३.११.६.४.
(४) स्पृश् + थक् = पृष्ठ। सभी अंगों से संस्पृष्ट है। 'संस्पृष्टमंगैः'।

पृष्ठयज्वा - (१) यः पृष्ठेन यजति -दया.
(२) अपने पीछे आने वाले शिष्यों को ज्ञान का दान करने वाला, (३) पीठ पीछे भी गुरु जनों का आदर सत्कार करने वाला
'घर्मस्तुभे दिव आ पृष्ठयज्वने'
ऋ. ५.५४.१

पृष्ठबन्धु - (१) यः पृष्ठान् जनान् उत्तरणे बध्नाति -दया.
(जो प्रश्न पूछने वालों को उत्तर द्वारा बांध देता है - विद्वान्)
(२) प्रश्न करने वाले शिष्य का बन्धुरूस आचार्य -ज.दे.श.
(३) जिज्ञासु जीव का बन्धु परमेश्वर
(४) पृष्ट अर्थात् कर्मफल देने में बन्धुवत् स्नेह वान्
'त्वे पूर्वीः सन्दधुः पृष्टबन्धो
ऋ. ३.२०.३, तै.सं. ३.१.११.७, मै.सं. २.१३.११, १६२.४

पृष्ठवाड्गौ - (१) पृष्ट से भार उठाने वाला बैल, (२) अपने ऊपर राष्ट्र भार लेने वाला पुरुष
'पृष्ठवाड् गौर्वयो दधुः'
मै.सं. ३.११.११; १५८.९

पृष्ठ्य - (१) वर्षण करने योग्य
(२) पृष्ट में विद्यमान
'पुमाँ अग्निः पयसा पृष्ठ्येन'
ऋ. ४.३.१०
(३) पीछे दिया हुआ, (४) आनन्द संचक-अन्न
'समन्धसा ममदः पृष्ठ्येन'
ऋ. ४.२०.४

पृषातक - घृतविन्दु
'अलाबूनि पृषातकानि'
अ. २०.१३५.३

पृषातकी- स्पर्श से दुःख देने वाली
'निर्दहनी या पृषातकी'
अ. १४.२.४८

पृष्ट्या- पीठ पीछे बंधी गाड़ी
'राजाश्वः पृष्ट्यामिव'
अ. ६.१०२.२

पृष्ट्यामय- पीठ का रोग,
'बलासं पृष्ट्यामयम्'
अ. १९.३४.१०

पृष्ट्यामयी- स्पश् + क्तिन् = पृष्टिं (पीठ)। (पृष्टि + आमय = पृष्ट्यामय। अर्थ - पीठ का रोग। पृष्ट्यामय + इन् = पृष्ट्यामयिन्। अर्थ-पृष्टक्लेशः। पीठ का रोगी -सा.।
(२) चित्रा नक्षत्र का विशेषण। चित्रा नक्षत्र में अनेक धव्वे रहते हैं। इसी से उसे पृष्ट्यामयी कहते हैं-दया.

पृष्टि - (१) स्पृश् + क्तिन् = पृष्टि, पीठ।
(२) पंसुली
'पृष्टीर्मे राष्ट्रमुदरम्'
वाज.सं. २०.८, मै.सं. ३.११.८,१५२.५, का.सं. ३८.४, तै.ब्रा. २.६.५.५.(३) पीठ देने वाला सहकारी
'तस्याग्ने पृष्टीर्हरसा श्रृणीहि'
ऋ. १०.८७.१०, अ. ८.३.१०
(४) पीठ का मोहर
'देवानां पत्नीः पृष्टयः'
अ. ९.७.६.
(५) सर्वस्पर्शकारी (६) मर्मवेधी कार्य
'पृष्टीरपि श्रृणीमसि'
अ. २.७.५

पृष्टिवाह् - पीठ पर लादकर चलने वाला अश्व।
'अश्वा भूत्वा पृष्टिवाहो वहाथः'
अ. १८.४.१०

पृश्निवाहु- तेजस्वी वाहुवाला
'भवश्च पृश्निबाहुश्च'
अ. ८.८.१७

पेत्व- (१) परिपालक प्रभु
'पेत्वस्तेषामुभयादम्'

अ. ५.१९.२
(२) भेड़, (३) एक बलकारी ओषधि
'अजस्य पेत्वस्य च'
अ. ४.४.८
(४) अति वेग से जाने वाला सवार
'वारुणः कृष्ण एक शितिपात् पेत्वः'
वाज.सं. २९.५८, तै.सं. ५.५.२४.१, का.सं. (अश्व.) ८.३.
(५) अश्व सैन्य, (६) पालक बल, (७) प्रापण प्राप्त कराने वाला -दया.
'सिंह्यं चित् पेत्वे ना जघान'
ऋ. ७.१८.१७

पेदु- (१) गमन्
'नि पेदव ऊहथुराशुमश्वम्'
ऋ. १.११७.९, ७.७१.५.
(२) दूर या विजयार्थ जाने वाला वीर पुरुष,
(३) पेदु नामक एक राजा
'युवं श्वेतं पेदव इन्द्र जूतम्
अहिहनमश्विना दत्तमश्वम्'
ऋ. १.११८.९
(४) ज्ञान करने वाला, कर्मफल प्राप्त करने वाला जीव
'युवं श्वेतं पेदवेऽश्विनाश्वम्'
ऋ. १०.३९.१०
(५) दूर देश जाने वाला

पेमिशाने - द्वि.व, वि.। (१) रूप से अपने को सजाती हुई उषाएं या (२) सायं प्रातः
'छन्दः पक्षे उषसा पेपिशाने'
अ. ८.९.१२

पलेति- गच्छति (जाता है)।
'पिल्' धातु गत्यर्थक है

पेत्वौ- द्वि.व. । (१) अश्विद्धय का विशेषण,
(२) मेघ
'वसातिषुस्म चरथ
असितौ पेत्वाविव'
नि. १२.२.
हे अश्विद्वय ! तुम रातों में चलते हो क्योंकि तुम काले मेघ की तरह हो।

पेट्र - जो अंग पीस गया हो
'अस्ति पेट्रं त आत्मनि'
अ. ४.१२.२.

प्रेङ्ख- (१) झुला, (२) परम उत्तम गन्तव्य पद
'प्र प्रेङ्ख ईखयावहै शुभेकम्'
ऋ. ७.८८.३
(३) उत्तम गति से जाने वाला-सूर्य
'दिवि प्रेङ्खं हिरण्ययं शुभे कम्'
ऋ. ७.८७.५

प्रेणि - (१) शत्रुनाश के लिये प्रेरणा करने में समर्थ, (२) प्रेरक, (३) आज्ञापक (४) प्रेरक आत्मा
'याभिर्वशमश्व्यं प्रेणिमावतम्'
ऋ. १.११२.१०
जिन उपायों से क्रियाओं सहित राष्ट्र पर वश करने वाले अश्व सेनाओं के स्वामी (अश्व्यम्) सबके आज्ञापक सेनापति को (प्रेणिम्) प्राप्त होते हो।
अथवा
जिन उपायों से सब के वशी प्राणों के पति (अश्वयम्) प्रेरक आत्मा को प्राप्त होते हो। (प्रेणिम आवतम्)

प्रेणी - प्रियतमा पत्नी
'इदं यत् प्रेण्यः शिरः
दत्तं रोमेन वृष्ण्यम्।'
अ. ६.८९.१

प्रेता - आगे आगे जाने वाला शिष्य या गुरु
'नित्यास ईं प्रेतारो अरक्षन्'
ऋ. १.१४८.५
स्थिर ध्रुव उसके आगे आगे जाने वाले शिष्य या गुरु उसकी रक्षा करें।

प्रेति- प्र + इति = प्रेति।
(१) मृत्यु
'अयज्वानः सनकाः प्रेतिमीयुः'
ऋ. १.३३.४
अयज्ञशील, अधार्मिक परस्पर संगति न करने वाले, परस्पर, द्रोही, राजा को न देने वाले (अयज्वानः) तथा दूसरों का माल हड़पने वाले क्षुद्र भोगी, स्वल्प ऐश्वर्य वाले अल्प धनी दरिद्र (सनकाः) विविध रूप से भी आक्रमण करें तो मरण को प्राप्त हों (प्रेतिम् ईयुः)।
(२) प्रेरणा, शास्त्र प्रेरणा, (३) उत्तम विज्ञानयुक्त पुरुष
'प्रेतिना धर्मणा धर्मं जिन्व'
वाज.सं. १५.६

प्रेतीषणिः (१) प्रेति + इषणि । प्राप्त पदार्थों को देने या चाहने वाला - अग्नि, (२) उत्तम पद को प्राप्त करने की सदा इच्छा करने और अन्यों को प्रेरणा करने वाला
'प्रेतीषणि मिषयन्तं पावकम्'
ऋ. ६.१.८

प्रेनिः- वज्र
'मेनिः शतवधा हि सा'
अ. १२.५.१६

प्रेव- पराची इव, पराङ्मुखी इव पराङ्मुखी के सदृश ।

प्रेष् (षः)- (१) प्रेषित आज्ञा, (२) राज्य प्रबन्ध की व्यवस्था
'तस्य प्रेषो दीदियुस्तमिमा ऋचः'
ऋ. १.३९.११
इस अग्नि की प्रेषित आज्ञाएं चमक उठें ।
(३) प्रेरक आज्ञा
'एष्टा रायः प्रेषे भगाय'
वाज.सं. ५.७, तै.सं. १.२.११.१; ६.२.२.६, का.सं. २४.९.श.ब्रा. ३.४.३.२१, शां.श्रौ.सू. ५.८.५, आप.श्रौ.सू. ११.१.१२.

प्रेषत् - (१) तृप्ति करता है, (२) उत्तम मार्ग मे चलावे (प्रेपतु)
'प्रेषद् वेषद् वातो न सूरिः'
ऋ. १.१८०.६

प्रेष्ठ- (१) अतिप्रिय
'वयमद्येन्द्रस्य प्रेष्ठाः'
ऋ. १.१६७.१०, आश्व.गृ.सू. २.६.१४.
(२) सबसे अधिक प्रिय अग्नि, (३) परमात्मा
'प्रेष्ठः श्रेष्ठः उपस्थसत्'
ऋ. १०.१५६.५, साम. २.८८१
पुनः-
'पितुर्न पुत्र उपसि प्रेष्ठः'
ऋ. ५.४३.,७, मै.सं. ४.९.३.१

प्रेषा- (१) प्रेरणा, (२) यः प्रकृष्टम् इष्यते बोधसमूहः -दया.
(३) प्रेरक
'ऋतस्य प्रेषा ऋतस्य धीतिः'
ऋ. १.६८.५
हे परमेश्वर, सर्वव्यापक सर्व ज्ञानमय, अनादि सत्य स्वरूप तेरी ही ये समस्त उत्तम कोटि की प्रेरणाएं हैं-आनन्दरस का पान भी अथवा तू सत्य व्यवस्था का प्रेरक और धारक है ।

प्रेष्ठौ- द्वि.व. । अश्विद्वय का विशेषण या स्त्री पुरुष का विशेषण
'कदु प्रेष्ठाविषां रयीणाम्'
ऋ. १.१८१.१

प्रेपित - (१) भेजा हुआ, (२) उत्तम इच्छा से युक्त (प्र + इपित) ।
श्रुष्टी वे व प्रेषितो वामबोधि'
ऋ. ७.७३.३

प्रेहि- आगे बढ़
'प्रेह्यभीहि धृष्णुहि'
ऋ. १.८०.३, साम. १.४१३
आगे बढ, प्रमाण करशत्रुओं के सामने बढ़, और उन्हें परास्त कर ।

प्रेरवः- जलों को पान करने वाली सूर्य की रश्मियाँ
'नरो हितमवःमेहन्ति पेरवः'
ऋ. ९.७४.४, का. सं. ३५.६

पेरु- (१) समस्त दुःखों से पार उतारने वाला
'शं नो अपां नपात् पेरुरस्तु
ऋ. ७.३५.१३, अ. १९.११.३
(२) सर्वपालक, (३) राष्ट्रपति (४) जल और अग्नि से युक्त महानौका, (५) पार करने वाला (६) पालक आत्मा
'युक्तो ह यद्वां तौग्र्याय पेरुः'
ऋ. १.१५८.३
(७) पूरक -दया. (८) मेघ, (९) पालक, (१०) अर्द्धाङ्ग सुप्रसन्न पूरकपति
'प्र या वाजं न हेषन्तं पेरुमस्यसि अर्जुनि'
ऋ. ५.८४.२, तै.सं. २.२.१२.३.

पेरुक - उत्तम प्रजापालक राष्ट्र
'सुमीढ़े शतं पेरुके च पक्वा'
ऋ. ६.६३.९

पेशन- उत्तम
'स तु वस्त्राण्यध पेशनानि'
ऋ. १०.१.६

पेशनी- पोरु एवं नाना अवयवों से युक्त
'केनांगुलीः पेशनीः केनखनि'
अ. १०.२.१

पेशल- अतिसुन्दर

'सरस्वती मनसा पेशलं वसु'
वाज.सं. १९.८३, मै.सं. ३.११.९; १५३.७, का.सं. ३८.३, तै.ब्रा . २.६.४.२.

पेशस् - (१) पिश् + असुन् = पेशस् । पेश इति रूपनाम (पेशस् का अर्थ रूप है) । पिश् धातु अवयव अर्थ में और भट्टोंजि दीक्षित के अनुसार 'दीपन करना' अर्थ में भी है । जैसे
'त्वष्टा रूपाणि पिंशतु'
ऋ. १०.१८४.१, अ. ५.२५.५, श.ब्रा. १४.९.४.२०, त्वष्टा रूपों को विकसित करें ।
(२) धन
'पेशो मर्या अपेशसे'
ऋ. १.६.३, अ. २०.२६.६; ४७.१२; ६९.११, साम. २.८२०, वाज.सं. २९.३७, तै.सं. ७.४.२०.१, मै.सं. ३.१६.३; १८५.८, का.सं. (अश्व.) ४.९.

पेशस्करी - (१) सुवर्ण को तपा-तपा कर शुद्ध करने की शैली, (२) रूप बनाकर बैठने वाली व्याभिचारिणी स्त्री -दया.
'निष्कृत्यै पेशस्कारीम्'
वाज.सं. ३०.९, तै.ब्रा. ३.४.१.४.

पेशस्वती - रूपवती
'होता यक्षत् पेशस्वतीः'
वाज.सं. २८.३१, तै.ब्रा. २.६.१७.५.

पेशिता- पिंश् (नाशने) + तृच् = पेशितृ । प्र.ए.व. में 'पेशिता'
अर्थ - (१) प्रत्येक अवयव का ज्ञान कराने वाला, (२) शत्रुओं को पीस डालने वाला
'देवलोकाय पेशितारम्'
वाज.सं. ३०.१२, तै.ब्रा. ३.४.१.८.

पेष्ट्र -,रोटी,
'शुने पेष्ट्रमिवावक्षामम्'
अ. ६.३७.३

पेषी- (१) पति के पास जाने वाली स्त्री, पति से संगता, (२) दूध पान कराने वाली स्त्री,
(३) दानशील
'पेषी विभर्षि महिषी जजान'
ऋ. ५.२.२

पैङ्गराज- 'पिजिः भापार्थः'
(पिजि धातु भाषण करना अर्थ में प्रयुक्त है) , पिजि धातु से ही पेङ्ग बना है । अर्थ - (१) उत्तम उपदेश, अध्यापन कार्य एवं उत्तम सूक्त पद्यादि कहने वालों में श्रेष्ठ
'वाचस्पतये पैङ्गराजः'

पैजवन- पिजवन + अण् = पैजवन् । पिजवन् का अपत्य पैजवन है । पिजवन् का अर्थ स्पर्द्धनीयगति । अर्थ है- (१) पिजवन नामक ऋषि का पुत्र । (२) स्पर्धा करने योग्य, (३) वेग, गति । आचार व्यवहार करने वाले अनुकरणीय चरित्रवान् पुरुष का पुत्र
(४) वेगयुक्त -दया.
(५) पैजवन नामक एक वैदिक राजा
'अर्हन्नग्ने पैजवनस्य दानम्'
ऋ. ७.१८.२२.

पैजवन सुदास - (१) एक वैदिक राजा (२) चरित्र वान्पुरुष का उत्तम दानशील पुत्र (३) सर्वाति शापी सर्वप्रदप्रभु ।

पैतृमत्य- उत्तम पितामह वाला
'ब्राह्मणमद्य विदेयं पितृमन्तं पैतृमत्यमृषिमार्षेयम्'
वाज.सं. ७.४६, वाज.सं. (का.) ९.२.६,श.ब्रा. ४.३.४.१९.

पैद्व- (१) सुखेन प्रापकः-दया. । सुख से प्राप्त कराने वाला (२) सुखपूर्वक स्थानान्तर पहुंचाने में समर्थ साधन, (३) अपने प्राप्तव्य पद को पहुंचा हुआ कृतकत्य आत्मा
'तद्वां दात्रं महि कीर्तेन्यं भूत् पैद्वो वाजी सदमिद्धव्यो अर्यः'
ऋ. १.११६.६
वह तुम दोनों का बहुत बड़ा कीर्त्तिजनक दान है । उसी से वेग से जाने वाला साधन सुख से स्थानान्तर पहुंच ने में समर्थ होता है ।
(४) अश्व
'पैद्वो न हि त्व महिनाम्नाम्'
ऋ. ९.८८.४
(५) पैद्वनामक, द्रव्य जो कसर्णील नामक सर्प का विनाश करता है । श्वेतसर्प और काले सर्प का भी विनाशक है । यह रथर्वी और पृदाकू नामक सर्प का भी नाशक है । (६) करवीर, गिरिकर्णिक अश्व क्षुरक या अश्वगन्धा नामक औषधि, (७) केशव के मत से पैद्व एक जन्तु है जो तलिणी कहलाता है जो पीले रंग का चिटकने दार होता है । इसके भय से सर्प नहीं

आता ।

प्रैणानः- (१) सबको प्रेरित या तृप्त करता हुआ
'मध्वा यज्ञं नक्षति प्रैणानः'
ऋ. ५.२७.३

प्रैष- (१) उत्तम आज्ञा कर्म (२) भृत्य
'प्रैषेभिः प्रैषानाप्नोति'
वाज.सं. १९.१९

प्रैषयुः- इष्यते सर्वैः विज्ञापते यत् तत् याति प्राप्नोति स प्रैषपुः -दया.
प्र + इष् + क = प्रैष, प्रैष + या + कु = प्रैपयु
अर्थ - (१) उत्तम ज्ञानों और प्राप्तव्य परम पद को प्राप्त करने में कुशल, (२) बाण चलाने में सिद्ध हस्त, (३) लक्ष्य वेध में चतुर
'प्रैषषुर्न विद्वान्'
ऋ. १.१२०.५

प्रैष्य- एक देश से दूसरे देश में भेजा जाने वाला
'प्रैष्यं जनमिव शेवधिम्'
अ. ५.२२.१४

प्रैषा- प्रकृष्ट उत्तम मानस इच्छा
'प्रैषा यज्ञे निविदः स्वाहा'
अ. ५.२६.४

पोत्र- पूञ् (पवित्र करना) + त्रन् = पोत्र (१) पवित्र करने वाला, (२) पोता का यज्ञ -सा. (३) हवि का सुगन्धिप्रद भाग - दया.
'अपाद्धोत्रादुत पोत्रादमत्त'
ऋ. २.३७.४
इन्द्र होता के यज्ञ से सोमरस पीकर हृष्ट हुआ, -सा.
हवि के वृष्टि प्रद भाग से पान करे सुगन्धि प्रद भाग से पान करे ।
-दया. ।
'पोत्रात् यज्ञं पुनीतन'
ऋ. १.१५.२
(४) शुद्ध आत्मा, (५) पवित्र कर्त्तव्य
'पोत्रादा सोमं पिबता दिवोनरः'
ऋ. २.३६.२, अ. २०.६७.४
(६) यज्ञवत् पवित्र कार्य (७) अग्नि
'तवाग्ने होत्रं तव पोत्रमृत्वियम्'
ऋ. २.१.२; १०.९१.१०
(८) सबको पवित्र करने वाला
'मरुतः पोत्रात् सुष्टुभः'
अ. २०.२.१
(९) पवित्र करने वाला कर्म
'वेषि होत्रमुत पोत्रं जनानाम्'
ऋ. १०.२.२, आप.श्रौ.सू. २४.१३.३.

पोता - (१) पवित्र करने वाला । अग्नि परमेश्वर ।

पोप्रुथत् - 'प्रुथ' धातु फनफनाना अर्थ में है । अर्थ है - (१) नथुने फुन फुनाता हुआ अश्व
'शश्वदिन्द्रः पोप्रुथद्भिर्जिगाय'
ऋ. १.३०.१६
इन्द्र सदा नथुने फुनफुनाते घोड़ों से विजय प्राप्त करें ।

प्रो - प्र. + उ । आगे । अंग्रेजी का pro शब्द आगे के अर्थ में आया है । जैसे project
'प्रो अयासीदिन्दुरिन्द्रस्य निष्कृतम्'
ऋ. ९.८९.१६, साम. १.५५.७; २.५०,२, पंच ब्रा. १४.३.४.

प्रोक्षणी- (१) दिव्य जल, (२) आनन्दधारा, ज्ञान (३) सोम विन्दुरस
'एवमगन् बर्हिषा प्रोक्षणीभिः'
अ. ५.२६.६

प्रोक्षित - (१) अभिषिक्त
'देवा आशापासा एतं देवेभ्योऽश्वं मेधाय प्रोक्षितम्'
वाज.सं. २२.१९,तै.सं. ७.१.१२.१, मै.सं. ३.१२.४; १६१.१०, का.सं. (अश्व.) १.३, श.ब्रा. १३.१.६.२, ४.२.१६; तै.ब्रा. ३.८.९.३.

प्रौढः- विवाहित पुरुष

प्रोथत् - स्वयं सब पदार्थों को स्वतः प्राप्त कराने वाला
'प्रोथते स्वाहाः'
वाज.सं. २२.७., तै.सं. ७.१.१९.१, मै.सं. ३.१२.३; १६०; १३, का .सं. (अश्व.) . १.१०

प्रोथन् - सर्वत्र व्याप्त
'इन्दुं प्रोथन्तं प्रवपन्तमर्णवम्'
ऋ. १०.११५.३

प्रोथमानः- सर्वत्र व्यापक होता हुआ
'इनोन प्रोथमानो यवसे वृषा'
ऋ. १०.११५.२

प्रोष्ठ- (१) आंगन, (२) उत्तम भवन

प्रोष्ठपदा- प्रोष्ठपदा नामक नक्षत्र
'आ मे द्वया प्रोष्ठपदा सुशर्म'

अ. १९.७.५.

प्रोषु- प्र + उ + सु = प्रोषु' प्रकृष्ट और प्रशस्त ।
प्रौष्वस्मै पुरोरथम् इन्द्राय शूषमर्चत ।
ऋ. १०.१३३.१, २०.९५.२, साम. २.११५.१, तै.सं. १.७.१३.५, मै. सं. ४.१२.४, १८९.७, तै.ब्रा. २.५.८.१.
हे स्तोताओं, प्रकृष्ट तथा प्रशस्त स्तुतियों से (प्र उ सु) इस इन्द्र के आगे खड़े होकर (पुरोरथ) इसके बलकी स्तुति करो (शूषम् अर्चत) ।

प्रोष्ठेशवा - (१) आंगन या उत्तम भवन में सोने वाली
'प्रोष्ठेशया बहचेशया'
ऋ. ७.५५.८, अ. ४.५.३
(२) झूले में सोने की अभ्यासिनी, (३) मुखभाग में रखने वाली वाणी

पोषः- (१) पालन पोषण ।
'त्वष्टा पोषाय विष्यतु'
ऋ. १.१४२.१०, नि. ६.२१.
वैद्युताग्नि हमारे पालनपोषण के लिये जल वरसावें ।
(२) पुष्प + अच = पोष । उपभोग ।
'ऋचां त्वः पोषमास्ते पुपुष्वान्'
ऋ. १०.७२.११, नि. १.८.
एक होता (त्वः) यज्ञकाल में स्वकीय देवताओं की ऋचाओं का (ऋचाम्) यथाविधि कर्मों में उपभोग (पोषम्) करता हुआ (पुपुष्वान्) रहता है । (आस्ते) ।
(३) सर्व पोषक -अग्नि
'विभुः पोषं उत त्मना'
ऋ. ५.५.९, तै.सं. ३.१.११.२

पोषयितु- पोषि (ण्यन्त पुष्)+ इष्णुच् = पोषयितु ।
अर्थ - (१) पोषण करने वाला
'गामश्वं पोषयित्वा'
ऋ. ४.५७.१, तै.सं. १.१.१४.२, मै.सं. ४.११.१; १६०.४; का.सं. ४.१५, आप.मं. पा. २.१८.४७, नि. १०.१५.
इस पोषण करने वाले गौ और अश्व को ऐसी आज्ञा दें ।

पोषयिष्णु - पोषण करने वाला
'अयं वो गोष्ठ इह पोषयिष्णुः'
अ. ३.१४.६

पोष्य- पोषण करने योग्य, वृद्धि करने योग्य
'आवहन्ती पोष्या वार्याणि'
ऋ. १.११३.१५, आश्व. श्रौ.सू. ६.१४.१८.

पोष्या- पोषण करने योग्य स्त्री
'ममेयमस्तु पोष्या'
अ. १४.१.५२

पोष्यावत् - अपने अधीन पोष्य स्त्री, पुत्र, भृत्य परिजन याचक अतिथि आदि का स्वामी
'अभिवो अर्चे पोष्यावतो नॄन्'
ऋ. ५.४१.८

पौञ्जिष्ठ - (१) केवट, मल्लाह,
'पौञ्जिष्ठ इव कर्वरम्'
अ. १०.४.१९
(२) काष्ठ खण्डों के पुञ्जों पर बैठकर नदी पार करने वाला, (३) बड़े पशुओं की खालों की मशक बनाकर उस पर तैरने वाला पुरुष
'नदीभ्यः पौञ्जिष्ठम्'
वाज.सं. ३०.८, तै.ब्रा. ३.४.१.५.

पौतक्रत- पवित्र ज्ञान और पवित्र कर्म करने वाला परमेश्वर
'दश मह्यं पौतक्रतः'
ऋ. ८.५६.२

पौत्रअध- पुत्र की हत्या रूप पाप
'मा दंपती पौत्रमघं निगाताम्'
अ. १२.३.१४

प्रौढ प्राण - द्वितीय प्राण
'योऽस्य द्वितीयः प्राणः प्रौढोनामा'
अ. १५.१५.४

पौर- (१) पूर्ण करने वाला
'पौरो अश्वस्य पुरुकृत गावम्'
ऋ. ८.६१.६, अ. २०.११८.२, साम. २.९३०
(२) पुर निवासी जन
'पौर पौराय जिन्वथः'
ऋ. ५.७४.४
(३) पुर रूप शरीर में रहने वाला आत्मा, (४) ब्रह्माण्ड में रहने वाला परमेश्वर

पौर्णमास- (१) समस्त संसार का रचयिता
'पौर्णमासं यजामहे'
अ. ७.८०.२

पौर्णमासी- (१) पूर्ण रूप से समस्त जगत् को अपने भीतर मापने या बनाने वाली महती शक्ति,

(२) पूर्णिमा तिथि
'उन्मध्यतः पौर्णमासी जिगाय'
अ. ७.८०.१, तै.सं. ३.५.१.१, तै.ब्रा. ३.१.१.१२,

पौरुकुत्सि- (१) बहुत शत्रुनाशक शस्त्रास्त्र धारण करने वाला - त्रसदस्य नामक वैदिक राजा
'प्र पौरुकुत्सिं त्रसदस्युमावः'
ऋ. ७. १९.३, अ. २०.३७.३
(२) पुरु कुत्स का पुत्र (३) बहुत से शास्त्रों का धारक सैन्य का नायक

पौरुकुत्स्य- (१) अनेक प्रकार के शस्त्रास्त्रों को धारण करने वाला, (२) एक वैदिक राजा जो अपने दानों के लिये प्रसिद्ध था ।
(३) बहुत से सैन्य समुदाय या शास्त्रधर सैनिकों का अध्यक्ष
(४) पुत्र कुत्स का पुत्र
'उत त्ये मा पौरुकुत्स्यस्य सूरेः'
ऋ. ५.३३.८

पौरुषेय- (१) सामान्य लोगों की स्तुति या निन्दा की कथा
'अपक्रामन् पौरुषेपात्'
अ. ७.१०५.१

पौरुषयेक्रविष- पुरुष का मांस
'यः पौरुषेयेण क्रविषा समङ्क्ते'
ऋ. १०.८७.१६, अ. ८.३.१५, कौ.सू. ११२.१.

पौरुषेयवध- पुरुषों का पुरुषों द्वारा वध
'पौरुषेयोवधः प्रहेतिः'
वाज.सं. १५.१५, तै.सं. ४.४.३.१, मै.सं. २.८.१०; ११४.१८, का.सं. १७.९, श.ब्रा. ८.६.१.१६.

पौरुषेयी- पुरुष के व्यवहार योग्य पदार्थों को लेने देने की विधि
'नियो गृभं पौरुषेयीमुवोच'
ऋ. ७.४.३

पौल्कस- पुल्कस नामक घृणित पदार्थ के साथ व्यवहार करने वाला पुरुष
'बीभत्सायै पौल्कसम्'
वाज.सं. ३०.१७, तै.ब्रा. ३.४.१.४.

पौंस्यं - (१) पुरुषार्थ बल ।
'भूरि चकर्थ युज्येरस्ये
समानेभिर्वृषभ पौंस्योभिः'
ऋ. १.१६५.७, मै.सं. ४.११.३; १६९.३, का.सं. ९.१८.नि. ६.७.
(२) यौवन,
'स तुर्वणिर्महाँ अरेणु पौंस्ये'
ऋ. १.५६.३, नि. ६.१४.
वह क्षिप्रकारी या शत्रु वध के लिए शीघ्र संभजन करने वाला इन्द्र (गुतुर्वणिः) या स्वा. दयानन्द के अनुसार शीघ्र प्रदाता महात्मा तेजस्वी पुरुष पौरुष या अनवद्य यौवन में (अरेणुपौंस्ये) महान् है ।
(३) पुरुषत्व के योग्य यौवन काल ।

पौरुण- पृथ्वी के हित के लिए प्रवृत्त
'पौष्णो विष्यन्दमाने'
वाज.सं. ३९.५

पौंस्य धनु- ब्रह्मचर्य रूप धनुष
'धनुष्टन्वन्ति पौंस्यम्'
ऋ. ९.९९.१, साम. १.५५१.

फ

फट् - (१) फटने की ध्वनि, फट जाना, विनाश (२) तन्त्र में इसका प्रयोग होता है ।
'बहुलाः फट् करिक्रति'
अ. ४.१८.३

फर्वर- पूर्ण करने योग्य कार्य
'उष्टारेव फर्वरेषु श्रयेथे'
ऋ. १०.१०६.२

फल् - (१) फट कर दो भागों में टूटा खुर (२) स्त्री पुरुष दो मूर्तियों में हुए प्रजापति,
(३) कर्मफल भोगने के लिये शरिरस्थ जीव
'फलित्यभिष्ठितः'
अ. २०.१३५.१, शां.श्रौ.सू. १२.२३.२.

फलव- व्यर्थ, निस्सार
'अनिरेण वचसा फलग्वेन'
ऋ. ४.५.१४.

फलिग- (१) शस्त्रास्त्र से युक्त, अंग छेदन करने वाला सशस्त्रास्त्र
'वलं रुरोज फलिगं रवेण'
ऋ. ४.५०.५, अ. २०.८८.५, तै.सं. २.३.१४.४, मै.सं. ४.१२.१, १७८.५, का.सं. १०.१३.
(२) मेघ, (३) फलयुक्त सशस्त्र सैन्य से आक्रमण करने वाला
'य उद नः फलिगं भिनत्'

ऋ. ८.३२.२५
(४) फलीनां गमयिता –मेघः
'सरण्युभिः फलिगमिन्द्र शक्र'
ऋ. १.६२.४
हे शक्तिशाली ऐश्वर्यवान् इन्द्र या राजन्, जिस प्रकार सूर्य वेग से जाने वाली रश्मियों से (सरण्युभिः) मेघ को (फलिगम्) ....

फलिनी– फल वाली ओषधि
'याः फलिनीर्या अफला'
ऋ. १०.९७.१५, वाज.सं. १२.८९.तै.सं. ४.२.६.४, मै.सं. २.७.१३; ९४.११, का.सं. १६.१३
'फलिनी रफला उत'

फलीकरण– छिलका
अ. ८.७.२७
'कब्रु फलीकरणाः शरोऽभ्रम्'
अ. ११.३.६

फल्गुनी– एक नक्षत्र, पूर्वाफाल्गुनी उत्तर फाल्गुनी
'मघासु हन्यते गावः
फल्गुनीषु व्युह्यते'
अ. १४.१.१३

फल्गूः– स्वल्प बल वाली
'फल्गू र्लोहितोर्णी पलक्षी'
वाज.सं. २४.४

फाणि – (धा) सचालित करना
'योव्यतीं रफाणयत्'
ऋ. ८.६९.१३, अ. २०.९२.१०

फारिवार– अति अधिक उत्तम आयु
'भगेविता तुर्फरी फारिवारम्'
ऋ. १०.१०६.८

फाल– हल का फार
'कृषन्नित् फाल आशितं कृणोति'
ऋ. १०.११७.७

फालात् जातः – (१) शत्रुनाशक सामर्थ्य से सामर्थ्यवान् (२) फाल से बनाया गया मणि-यन्त्र तावीज
'फालात् ज्ञातः करिष्यति'
अ. १०.६.२

फेन – (१) झाग, जल प्रवाह के घर्षण से उठने वाला फेन
'फेनमस्यन्ति बहुलांश्च बिन्दून्'
अ. १२.३.२९.
(२) स्य यायते वर्द्धते इति फेनः –दया.
'अपां फेनेन नमुचेः'
ऋ. ८.१४.१३, अ. २०.२९.३, साम. १.२११, वाज.सं. १९.७१, श. ब्रा. १२.७.३.४.
(३) चक्रवृद्धि ब्याज से प्राप्त धन
'अवत्मना भरते केतवेदाः
अवत्मना भरते फेनमुदन्'
ऋ. १.१०४.३

फेन्य– फेन मय दुग्ध आदि का सेवन करने वाला
'नमः शप्याय च फेन्याय च'
वाज.सं. १६.४२, तै.सं. ४.५.८.२